Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

औषधि चिकित्सा

(आयुर्वेदीय फार्माकोपिया)

लेखक

प्रो० यदुनाथ सिंह

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

(हिन्दी साहित्य प्रभाग)

[illegible]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वर्गीय-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.....
पु०सं०.....2330
भारती पुस्तकालय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वनौषधि-निदर्शिका

[आयुर्वेदीय फार्माकोपिया]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वनौषधि-निर्दशिका

[आयुर्वेदीय फार्माकोपिया]

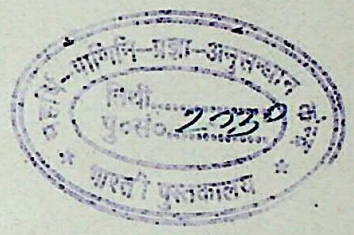

मूल्य १५०) एक सौ पचास रुपया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

हिन्दी समिति प्रभाग ग्रन्थमाला—१७४
Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वनौषधि-निदर्शिका

(आयुर्वेदीय फार्माकोपिया)

हिन्दी-समिति-प्रभाग-उत्तरप्रदेश
पुस्तक संख्या 2330

लेखक
प्रोफेसर रामसुशील सिंह
एम० ए०, ए० एम० एस०, शास्त्री, मौलवी,
कामिल, एफ० आर० ए० एस० (लन्दन)
अध्यक्ष
रसशास्त्र विभाग, चिकित्सा-विज्ञान संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
(हिन्दी समिति प्रभाग)
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
महात्मागांधी मार्ग, लखनऊ २२६००१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम संस्करण : १९६९
द्वितीय संस्करण : १९८३

[redacted]

मूल्य १५०) एक रु. ५०. रुपया

मुद्रक
जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०
गोलघर, वाराणसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

2030

प्रकाशकीय

(प्रथम संस्करण)

वनों में निवास करनेवाले भारत के प्राचीन ऋषियों ने प्रकृति के नाना तत्त्वों एव रहस्यों का पता लगाकर ज्ञान-विज्ञान की जिन शाखाओं का विकास किया, उनमें आयुर्वेद भी एक है। अतएव देशी चिकित्सा-प्रणालियों में आयुर्वेद का अपना विशेष महत्त्व है। कारण यह है, कि बड़ी-बड़ी नदियों से अभिसिंचित और उत्तुंग पर्वत-श्रेणियों से परिवेष्ठित यहाँ की उर्वरा भूमि में उगनेवाली भाँति-भाँति की वनस्पतियों में ऐसे पदार्थ पाये जाते हैं जो हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभकारी ही नहीं, आयु बढ़ानेवाले भी सिद्ध हुए हैं।

आयुर्वेद की चिकित्सा में काष्ठ ओषधियों—अनार, अड़ूसा, अजमोद आदि का उपयोग किया जाता है। ये औषधियाँ लाभप्रद होने के साथ ही सस्ती भी होती हैं। कुछ तो अनेक स्थानों में बिना मूल्य ही थोड़े परिश्रम से मिल जाती हैं। बहुत-से लोग औषधियों का नाम जानते हैं, और उन्हें पहचानते भी हैं किन्तु उनके गुण और दोषों को न जानने के कारण उनका ठीक-ठीक उपयोग नहीं कर सकते। अतः इस पुस्तक में औषधियों का नाम अकारादि क्रम से देकर उनके गुणों और उपयोग का विवरण दिया गया है। भिन्न-भिन्न प्रचलित नाम भी दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त औषधियों के संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी, फारसी और लैटिन नामों का भी उल्लेख कर दिया गया है। अतः एक व्यापक दृष्टिकोण लेकर यह पुस्तक तैयार की गयी है।

नामों की उपर्युक्त विशेषता के अतिरिक्त इसमें प्रत्येक औषधि के प्राप्तिस्थान का—औषधि किस देश, प्रदेश में प्राप्त की जा सकती है—विस्तृत वर्णन है। सक्षिप्त परिचय में औषधि के आकार-प्रकार का, मूल, शाखा और पत्त आदि का पूर्ण परिचय दिया गया है जिससे औषधि के पहचानने में पूरी सहायता मिले। औषधियों को किस ढंग से रखा जाय, वह कितने दिनों तक गुणयुक्त, सुरक्षित रह सकती है, आदि आवश्यक ज्ञातव्य बातों का वर्णन इस पुस्तक में पाठकों को मिलेगा। हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रो० रामसुशील सिंह, अध्यक्ष रसशास्त्र विभाग, इस ग्रन्थ के लेखक हैं। आप अपने विषय के प्रसिद्ध विद्वान् और इस शाखा के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विशेषज्ञ हैं, आपने प्रगाढ़ अनुभव के आधार पर इस पुस्तक का प्रणयन किया है। आशा है, इस ग्रन्थ के प्रकाशन से आयुर्वेद में आस्था रखनेवाले लोगों एवं विद्यार्थियों को यथेष्ट लाभ होगा।

लोलाधर शर्मा 'पवतीय'
सचिव, हिन्दी समिति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय संस्करण पर अनुवीक्षण

'वनौषधि निर्दशिका' लगभग १३ वर्ष पूर्व हिन्दी समिति ग्रन्थमाला के १७४वें पुष्प के रूप में प्रकाशित हुई थी। इसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर संस्थान के रसशास्त्र-विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ० रामसुशील सिंह ने बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इसमें आयुर्वेदीय और यूनानी दोनों चिकित्सा-पद्धतियों में प्रयोग होनेवाली औषधियों के वानस्पतिक द्रव्यों का विवरण देने के साथ-साथ उनके प्राप्ति-स्थान का भी निर्देश किया गया है। यह पुस्तक पाठकों के लिए और जिज्ञासु अनुसंधत्सुओं के लिए विशेष उपयोगी प्रमाणित हुई है। इसका एक उद्देश्य यह भी था कि औषध द्रव्यों एवं योगों के विनिश्चय, मानकीकरण और एकरूपता को संस्थापित किया जा सके, जिसके लिए निरन्तर शोध, प्रयोग और विचार-गोष्ठियों की आवश्यकता है। यदि यह क्रम चलता रहता, तो पुस्तक और भी अधिक समृद्ध बन सकती थी। आयुर्विज्ञान और यूनानी चिकित्सा-पद्धति की उपयोगिता और जन-जन को सुलभ कर सकने की उसकी प्रकृतिदत्त पद्धति के कारण, वर्तमान चिकित्सकों का ध्यान इसकी ओर पुनः आकर्षित हुआ है। सहस्रों वर्षों की प्राचीन परम्पराओं की अपार ज्ञानराशि संचित किये हुए यह पश्चिमी चिकित्सा-पद्धति के समकक्ष प्रतिष्ठित हो सकने की सम्भावनाओं से अनुप्राणित हो चुकी है। अतएव इसके द्रव्यों एवं तत्त्वों के पुनर्परीक्षण की आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ ने इस क्षेत्र में जो जिज्ञासा जाग्रत की है उसकी क्रमिकता को उद्भासित करने की दृष्टि से इसके दूसरे संस्करण का इस आशा से प्रकाशन किया जा रहा है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-शास्त्र के अधिकारी विद्वान् इसकी कमियों को पूरा करने में उसी प्रकार दत्तचित्त होकर समर्पित भाव से अग्रसर हो उठेंगे जैसा उन्होंने इसके प्रारम्भिक आह्वान में आयोजित किया था। उत्तर प्रदेश सरकार के लिए भी यह एक चुनौती और अनुष्ठान के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत है। यह संस्करण उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें समिति के संकल्पों का समाहार है।

डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'
उपाध्यक्ष,
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,
लखनऊ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष सम्मति

मैंने प्रोफेसर आर० एस० सिंह द्वारा लिखित एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित **वनौषधि-निर्दशिका** के द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण को आद्योपान्त देखा। प्रोफेसर सिंह द्रव्यगुण एवं रसशास्त्र विषयों के अनुभवी एवं सफल अध्यापक, शोधकर्ता तथा देश-विदेश में विख्यात एवं मान्य विद्वान् हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय चिकित्सा-पद्धति की अभिरुचि एवं औषधियों की लोकप्रियता एवं माँग में दिनोदिन वृद्धि हो रही है। प्रान्तीय तथा केन्द्रीयस्तर पर पुनरुत्थान की दिशा में स्नातक एवं स्नातकोत्तरस्तर पर शिक्षण, शोध तथा प्रमाणित, विश्वस्त औषधियों के उत्पादन एवं साहित्यसृजन की दिशा में समयानुसार यथासम्भव प्रयास भी हो रहा है, जिससे समस्त देश में भारतीय चिकित्सापद्धतियों के शिक्षण, चिकित्साव्यवसाय एवं भैषज्यनिर्माण आदि सभी क्षेत्रों में एकरूपता लायी जा सके। फलतः केन्द्र द्वारा **भारतीय चिकित्सापरिषद्** (सेन्ट्रल कौन्सिल आफ इण्डियन मेडिसिन (C. C. I. M.) एवं **केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसन्धान परिषद्** (सेन्ट्रल कौन्सिल फार रिसर्च इन आयुर्वेद एण्ड सिद्ध (C. C. R. A. S.) आदि संस्थानों की स्थापना **भारतसरकार के स्वास्थ्य एवं परिवारकल्याण-मन्त्रालय** द्वारा की गयी है।

गुरु-शिष्य तथा ग्रन्थविशेष की परम्परा के स्थान में युगानुरूप विषयानुसार **स्नातक** एवं **स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम** का निर्माण कर उसे देश के समस्त मान्य आयुर्वेदिक महाविद्यालयों में तत्सम्बन्धित विश्वविद्यालयों के माध्यम से प्रवृत्त किया जा चुका है। इस प्रकार देश में आयुर्वेदीय शिक्षा की दृष्टि से एकरूपता स्थापित करने का सक्रिय प्रयास चल रहा है।

चिकित्सा-व्यवहार में मानकित विश्वस्त औषधियों की उपलब्धि एक चिरकालीन समस्या बनी हुई है। मूलतः इसका सम्बन्ध निर्मित भैषज्यकल्पों में प्रयुक्त काष्ठौषधियों तथा अन्य एकल-उपादान द्रव्यों से हैं, जो आज शास्त्र, बाजार एवं व्यावहारिक समस्त स्तरों में विभिन्नता, अनिश्चितता तथा मतभेद के भ्रामकजाल में निलम्बित हैं। अतः भारतीय चिकित्सापद्धतियों की समुन्नति एवं लोकप्रियता की उपलब्धि की दिशा में ऐसे निदर्शक साहित्य-सृजन की प्राथमिक आवश्यकता है, जो वनौषधियों के वास्तविक स्वरूप, उपलब्धिसाधन, युग की बदलती अवस्थाओं में तत्सम्बन्धी भ्रान्तियों के निवारण के साथ-साथ अनुसन्धानों की उपलब्धियों का भी दिग्दर्शक हो सके। व्यवहारोपयोगिता की दृष्टि को ही इन विषयों के अध्ययन-अध्यापन में भी प्राथमिकता देना अपेक्षित है।

मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि, प्रोफेसर सिंह की रचना **'वनौषधि-निर्दशिका'** इस दिशा में एक सफल प्रयास है। न केवल आयुर्वेद के अध्यापक एवं छात्रगण तथा औषधिनिर्माता इससे लाभान्वित होंगे, अपितु सम्पूर्ण वैद्य समाज तथा वनौषधि संग्रहकर्ता, विक्रेता एवं वनस्पतियों में अभिरुचि रखनेवाले सभी इस उत्कृष्ट ग्रन्थ से लाभान्वित होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

नई दिल्ली, १९८२

कविराज आशुतोष मजूमदार

प्रेसिडेण्ट, सेन्ट्रल कौन्सिल आफ इण्डियन मेडिसिन,

सदस्य गवर्निंग बाडी फार दि सेण्ट्रल कौन्सिल फार रिसर्च इन आयुर्वेद एण्ड सिद्धसिस्टम, राष्ट्रपति के आनररी फिजिशियन, आनररी डायरेक्टर

एम० एम० एल० सेण्टर फॉर रुहुमेटिक डिजीजेज आदि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम संस्करण का लेखकीय प्राक्कथन

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् अपनी सरकार ने देश की सार्वदेशिक समुन्नति के लिए जिस तत्परता एवं उत्साह से प्रयास किया है, और कर रही है, यह सर्वविदित है। इस अभियान के अन्तर्गत भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों को भी समुन्नत एवं स्वतंत्र सत्ता के स्तर पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। चिकित्सा की सफलता के लिए सक्रिय एवं विश्वस्त औषधियों की उपलब्धि सर्वमान्य तथ्य है। किन्तु आज आयुर्वेदीय एवं यूनानी ओषधियों में इस कठिनाई का अनुभव सर्वत्र किया जा रहा है। निर्मित योगों में न तो एकरूपता ही पायी जाती है, और न तो उपभोक्ता को यह विश्वास होता है कि बहुमूल्य उपादान उसमें डाले गये हैं या नहीं। योगों में बहुशः पड़नेवाली काष्ठौषधियों में भी बहुत मिलावट होने लग गयी है। एक ही नाम से सर्वथा भिन्न औषधियाँ बेची जाती हैं, अथवा वास्तविक औषधि का प्रयोग उस नाम से न होकर सर्वथा भिन्न द्रव्य के नाम से होता है। किन्तु इस दुर्व्यवस्था का कारण केवल यही नहीं है, कि ऐसा जान-बूझकर किया जाता है, अपितु कभी-कभी अज्ञान के कारण भी ऐसी स्थिति होती है। अतएव इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों के लिए भी एक फार्माकोपिआ की नितान्त आवश्यकता है, जिससे औषध-द्रव्यों एवं योगों के विनिश्चय, मानकीकरण एवं एकरूपता लाने में सहायता मिल सके। किन्तु ऐसी फार्माकोपिआ को मान्यता प्रदान करने के लिए उसकी रचना राजकीयस्तर पर आवश्यक हो जाती है। उक्त तथ्य को दृष्टि में रखते हुए ही भिन्न-भिन्न राज्य-सरकारों ने तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय ने भी आयुर्वेदीय एवं यूनानी फार्माकोपिआ समितियों का गठन कर उनमें सक्रियता प्रदान की। राज्य-सरकारों द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयासों में उत्तर प्रदेश प्रथमोल्लेखनीय है, जिसका मुख्य श्रेय माननीय मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानुजी गुप्त को है, जिनके पूर्वस्वास्थ्यमंत्रित्व काल में आयुर्वेदीय एवं यूनानी फार्माकोपिआ समितियों का संगठन हुआ और उनको सदैव उनका प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा। कुछ वर्षों बाद उक्त समितियों को समाप्त कर दिया गया, जिससे सब कार्य यथास्थान रह गया। समुपस्थित ग्रन्थ में जिस आलेख-प्रारूप का अवलम्बन किया गया है, वह उक्त फार्माकोपिआ समिति द्वारा ही निर्धारित किया गया था। इसमें प्रस्तुत एकौषधि फार्माकोपिअल आलेख तत्कालीन निदेशक, आयुर्वेद-यूनानी सेवाएँ उत्तर प्रदेश के आदेश पर लेखक द्वारा लिखे गये हैं, जिसका प्रकाशन उत्तर प्रदेश की हिन्दी-समिति द्वारा वर्तमान निदेशक, आयुर्वेदिक-यूनानी सेवाएँ उत्तर प्रदेश के अनुमोदन पर किया गया है। अतएव राज्य-सरकार द्वारा स्थापित आयुर्वेदिक यूनानी फार्माकोपिआ के न होने से और इसका प्रकाशन उसके संरक्षण में न होने से ग्रन्थ का विषय फार्माकोपिअल होने पर भी इसके नामकरण में किंचित् परिवर्तन करके मुख्य शीर्षक 'वनौषधि-निर्दशिका' तथा 'आयुर्वेदीय फार्माकोपिआ' शीर्षक कोष्ठक में रखा गया है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में अधिक प्रचलित आयुर्वेदीय एवं यूनानी योगों में उपादान रूप से पड़नेवाले वानस्पतिक द्रव्यों का समावेश है, जिसमें प्रत्येक द्रव्य के बारे में फार्माकोपिआ की दृष्टि से यथासम्भव उपलब्ध विषयों के समावेश का प्रयास किया गया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साथ ही आयुर्वेद-यूनानी के स्नातकीय एवं स्नातकोत्तर शिक्षण में पाठ्यक्रमोपयोगी हो इसका भी ध्यान रखा गया है। आदर्श आयुर्वेदीय एवं यूनानी फार्माकोपिआ के निर्माण की दिशा में यह प्रारम्भिक प्रयास है, अतएव इसमें कमियों का होना भी सम्भव है, किन्तु फार्माकोपिआ का क्रमिक विकास इसी प्रकार होता है और उसके उपयोगी अंशों का लाभ उठाना चाहिए तथा उसमें परिवर्धन एवं सुधार का निरंतर प्रयास होते रहना चाहिए। एतदर्थ लेखक का सभी विद्वानों एवं विशेषज्ञों से विनम्र निवेदन है, और आशा है कि उनका सहयोग सदैव प्राप्त होता रहेगा।

अन्त में, मैं उन सभी विद्वानों एवं कृतियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनका उपयोग इस ग्रन्थ में किया गया है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश की सरकार एवं तत्कालीन तथ वर्तमान आयुर्वेद निदेशक के प्रति भी इस कार्य में उनकी अभिरुचि के लिए धन्यवाद प्रकाश करता हूँ।

रामसुशील सिंह
द्रव्यगुण विभाग,
आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर संस्थान,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय संस्करण का लेखकीय प्राक्कथन

वनौषधि-निदर्शिका का परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण प्रायः नवीन ग्रंथ के रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। वास्तव में कई वर्षों से पूर्व-संस्करण की प्रतियाँ विक्रयार्थ अनुपलब्ध रही हैं, किन्तु देश के विभिन्न क्षेत्रों से पाठकों की निरंतर अत्यधिक माँग होती रही है। उनकी पुस्तक के अध्ययन एवं तद्गत सूचनाओं को व्यवहारोपयोग में लाने की अभिरुचि एवं प्रवृत्ति उत्साहजनक रही है। यह लेखक तथा प्रकाशक दोनों के लिए हर्ष का विषय है।

यह मान्य तथ्य है कि भारत का पूर्व एवं पश्चिम के बाह्य देशों से प्राचीनकाल से ही बराबर व्यावसायिक सम्बन्ध रहा है, जिससे भारतीय द्रव्यों के निर्यात के साथ अनेक द्रव्यों का आयात भी होता रहा है। उत्तर-पश्चिमी सीमा-क्षेत्रों से स्थल एवं जलमार्ग से मध्य-एशिया, ईरान, अफगानिस्तान, पश्चिम-एशिया एवं भूमध्यसागरीय देशों के विभिन्न ओषधियों एवं औषधोपयोगी उत्पादों का आयात प्रचुर प्रमाण में भारतीय बन्दरगाहों एवं पण्यकेन्द्रों में होता रहा है। इसी प्रकार दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों से भी वहाँ के अनेक विशिष्ट-उत्पादों, यथा लवंग, पिप्पली, चोबचीनी, कुलंजन, कपूरकचरी, पतंग आदि आयातित होती रही हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत की स्वतंत्र राष्ट्रीय सत्ता के साथ, उत्तर-पश्चिमी एवं पूर्वी सीमाप्रदेश में राजनैतिक परिवर्तनों के कारण तथा सामान्यरूप से निरन्तर मूल्य वृद्धि होने से भारतीय बाजारों में विगत दशकों में बराबर हेर-फेर, मिलावट एवं नये स्थानापन्न द्रव्यों का प्रचार आदि समस्याएँ नियमित रूप धारण किये हुए हैं। आयुर्वेद की शास्त्र एवं व्यवहार-परम्परा अति प्राचीन होने से ओषधियों के नामों की अभिधेयता में भी पर्याप्त नानारूपिता दिखायी देती है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों एवं योग-संदर्भों में अनेक बार एक ही नाम से भिन्न-भिन्न औषधियाँ अभिप्रेत प्रतीत होती हैं। साथ में क्षेत्रपरकता तो है ही जिसके परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में एक ही नाम से सर्वथा पृथक् वनस्पतियों का प्रचार देखा जाता है। एक ही वनस्पति के स्थानिक, बाजारू एवं शास्त्रीय नामों के अनुबन्ध में भी काफी असामञ्जस्य दिखायी देता है। इस प्रकार भैषज्य-व्यवस्था के सभी स्तरों पर अपने ढंग की समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ हैं, जो योगों के मानकीकरण एवं एकरूपता लाने में बाधक हैं। भारत-सरकार एवं राज्य-सरकारों की तज्ज्ञविशेषज्ञ समितियों एवं प्रोफेशनल शैक्षणिक संस्थाओं से अध्यापक, मनोनीतसदस्य, शोधकर्ता, परामर्शदाता एवं परीक्षक आदि के रूप में लेखक का चिरकालीन सक्रिय सम्बन्ध होने से, सम्बन्धित विभिन्न वर्गों की समस्याओं एवं स्थितियों को अवलोकन करने का सुअवसर बराबर प्राप्त होता रहा। इसका उपयोग वनौषधियों के क्षेत्रीय एवं स्थानिक नामों के सुनिश्चितीकरण एवं उनके यातायात की स्थिति के प्रत्यक्षीकरण के लिए भी किया गया। स्वास्थ्यमंत्रालय द्वारा आयुर्वेदीय फार्माकोपिआ कमेटी का गठन राष्ट्रीय स्तर पर किया गया था। आयुर्वेदीय भैषज्य के मानकीकरण एवं एकरूपता लाने की दिशा में एकल ओषधियों (*Single Drugs*) की मौलिक समस्या को दृष्टिगोचर करते हुए 'कण्ट्रोवर्सियल-ड्रग्स सब-कमेटी' का संगठन किया गया था, जिसकी बैठकें प्रत्येक राज्य में हुई थीं, जिनमें वहाँ के औषधिनिर्माता, चिकित्सक, अध्यापक आदि सभी वर्गों के लोग परस्पर विचार-विनिमय हेतु आमंत्रित किये जाते थे। इसके परिणामस्वरूप अब सभी प्रान्तों के आयुर्वेदज्ञों में सामान्य मानदण्ड को आधार मानकर एकौषधियों की सामान्य मान्यता की ओर प्रवृत्ति हुई है। देश के विस्तृत क्षेत्र एवं आवासी अति-संख्यक मानवजाति को देखते हुए ओषधियों की माँग एवं आपूर्ति की स्थिति के अनुसार अनुपलब्ध एवं महार्घ औषधियों के लिए तद्वत् निकटतम गुणकर्मवाली सुलभ औषधि को स्थानापन्न (*Substitute*) रूप में स्वीकार्य करने की भी गुञ्जाइश रखी गयी है। कभी विदेशी प्रजाति से प्राप्त औषधि की अपेक्षा देशी प्रजाति से प्राप्त वही औषधि समान ही नहीं, अपितु श्रेष्ठतर सिद्ध होती है। पहले बाजारों में प्रायः बाहर से आनेवाली बड़ी पिप्पली (जिसे सिंहली पिप्पली कहते थे) ही प्रचलित थी। किन्तु आयात-निर्यात की वर्तमान परिस्थितियों में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब 'देशी छोटीपिप्पली' ही मिलती है, और गुण की दृष्टि से यह कहीं श्रेष्ठतर भी है। प्राप्तिसाधन जनक वनस्पतियों (*Source-plants*) के निर्धारण (*Specification*) की दिशा में भी वर्तमान शोध कार्यों के परिणामस्वरूप नयी उपलब्धियाँ हुई हैं। जैसे कृमिघ्न औषध के रूप में 'वायविडंग (विडङ्ग)' अति प्राचीनकाल से व्यवहार प्रचलित एवं सुपरिचित है। अभी तक सभी लेखक इसके प्राप्तिसाधन वनस्पति का विनिश्चय **Embelia ribes** *Burm. f.* से करते आ रहे हैं, किन्तु बाजारों में जो विडङ्ग आता है, उसमें उक्त प्रजाति के अतिरिक्त **E. tsjeriam-cottam** *A. D. C.* प्रजाति के फल भी काफी मात्रा में मिले होते हैं। अतः आज के युग में यह जिज्ञासा का विषय है, कि क्या यह उसमें अपद्रव्य या अग्राह्य मिलावट है ? कृमिघ्न क्रिया के लिए लेखक तथा उसके सहयोगियों द्वारा आधुनिक सर्वमान्य शोधविधाओं द्वारा दोनों प्रजातियों से पृथक्-पृथक् प्राप्त विडङ्ग फलों का परीक्षण करने से परिणामतः दूसरी प्रजाति का विडङ्ग पहली प्रजाति की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठतर पाया गया। फार्माकोपिया के क्रमिक विकास की आपूर्ति की दृष्टि से उक्त परिणामों के साक्ष्य के आधार पर विडंग के प्राप्तिसाधन में इस प्रजाति की मान्यता आवश्यक एवं विधानुरूप है। इसी प्रकार शास्त्रों में त्रिवृत् (निशोथ) जो आयुर्वेदीय-यूनानी (एवं कुछ समय पहले आधुनिक चिकित्सा एवं फार्माकोपिआ में भी मान्य) चिकित्सा एवं योगकल्पना में बहुश. प्रयुक्त होता है, रंगभेद से श्वेत तथा कृष्ण (कभी-कभी रक्त भी) करके दो प्रकार का बताया गया है। इस धारणा को लेकर बाजारों में निशोथ नितान्त भ्रान्तिपूर्ण स्थिति में पड़ गया है और उपलब्ध होते हुए भी अनुपलब्ध है। वास्तविकता यह है, कि उक्त भेदों की प्राप्तिसाधनवनस्पति प्रजाति एक ही है, और इसकी कोई अन्य उपजाति, भेद-प्रभेद नहीं है। केवल उद्भव क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति भेद से निशोथ की उक्त काली या सफेद (जो काली न हो) जड़ें प्राप्त होती हैं। काली जड़ों में रेचक कर्म सफेद की अपेक्षा कुछ तीव्रतर होता है। यह भी व्यवहार्य है, न कि जैसा कि शास्त्रों में इसे उग्रस्वभावी तथा अग्राह्य कहा गया है। बंगाल-आसाम तथा दक्षिण में पश्चिमीघाट के जंगलों से संग्रहीत निशोथ की जड़ें गाढ़े रंग की (=काली निशोथ) तथा मैदानी भागों तथा सूखे जंगलों की निशोथ पतली एवं हल्के रंग की (= सफेद निशोथ या कभी अरुणाभ = रक्त निशोथ) होती है। कलकत्ता एवं केरल के बाजारों से मैंने उक्त 'काली निशोथ' तथा यहाँ से आयातित अहमदाबाद के बाजार से भी उक्त काली निशोथ का संग्रह किया था। कानपुर के बाजार में विधारा नाम से जो औषधि मिलती है, वह वास्तव में स्थानिक क्षेत्रों से प्राप्त 'सफेद निशोथ' होती है। भारतवर्ष के विभिन्न बाजारों से जो नमूने मैंने संग्रहीत किये थे उनमें अधिकांश (७-८ नमूने) निशोथ न होकर सर्वथा भिन्न जड़ें थीं। फार्माकोपिआ के उपबृंहण हेतु इस प्रकार का सतत शोध कार्य तथा तद्गत उपलब्धियों का समावेश कर वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन एवं भ्रान्तियों का निराकरण आवश्यक है।

कुछ समय पहले तक 'ह्रीवेर' जो संहिताओं से लेकर अद्यावधि अनेक कल्पों एवं प्रक्रियाओं में हमारे सम्मुख आता है, सन्दिग्धता के आवरण में पूर्णतः तिरोहित रहा है। अब इसका वानस्पतिक विनिश्चय हो गया है। अतः फार्माकोपिआ के आलेखों में ऐसी सुनिश्चित नयी प्रविष्टियाँ भी आवश्यक हैं।

आज जो आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति चल रही है, वह रसचिकित्सा प्रधान है। मध्य-युगीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों एवं निघण्टुओं का साहित्यिक स्वरूप भी इसी प्रकार का लक्षित होता है। रसशास्त्रीय वनस्पतियों की समस्या अपने विशिष्ट प्रकार की है। इनके नामों का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों एवं कोशों में प्रायः नहीं मिलता। अतः इनका वास्तविक विनिश्चय जटिलतर हो गया है। लेखक द्वारा रसशास्त्रीय वनस्पतियों के विनिश्चय की दिशा में स्वतन्त्र अध्ययन एवं अन्वेषण के परिणामस्वरूप अब इनमें अनेक का विनिश्चय सम्भावित हो गया है।

भारतीय इतिहास की भाँति इसकी वनस्पतियों के नामों एवं प्राचीन इतिवृत्त का भी ऐतिहासिक महत्त्व है। आजकल इस दिशा में पी-एच० डी० एवं पोस्ट डॉक्टोरल स्तर पर उच्चस्तरीय ऐतिहासिक शोधकार्य हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक तथ्य प्रकाश में आये हैं और आयुर्वेदीय वनस्पतियों के स्वरूपनिर्धारण एवं इतिवृत्त विनिश्चय में भी सहायक हुए हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उक्त सभी दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुये, इस संस्करण में आलेखों की नवीन प्रविष्टियों के साथ विगत-वर्षों की बहुस्रोतीय-नवीन उपलब्धियों का समावेश विशिष्ट लेखकीय टिप्पणों द्वारा यथावश्यक आद्योपान्त किया गया है, जिससे ग्रंथ की उपयोगिता का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया है। इस प्रकार ग्रन्थ का नवीन संस्करण अपने परिवर्द्धित एवं उपबृंहित नवीन स्वरूप में विभिन्न क्षेत्रीय नवीन एवं पुराने, सभी प्रकार के पाठकों की सेवा में इस विनम्र निवेदन के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है, कि यदि कोई नवीन सुझाव उनकी आवश्यकता की दृष्टि से हो, तो लेखक को सूचित कर अनुग्रहीत करेंगे, ताकि अग्रिम संस्करण में तद्विषयक सूचना का समावेश सम्भावित हो सके। आशा है, पाठकगण तथा सभी विद्वानों एवं विशेषज्ञों का सहयोग सदैव प्राप्त होता रहेगा।

मैं चि० डा० बी० एन० सिंह बी० ए० एम० एम० एस०, एम० डी०, पी० एच० डी० (द्रव्यगुण), एफ० आर० ए० एस० (लन्दन) रीडर द्रव्यगुणविभाग के लिए शुभाशंसन करता हूँ, जिन्होंने इस संस्करण में आद्योपान्त सहायक का कार्य किया है।

अन्त में, मैं हिन्दीसंस्थान (उ० प्र०) के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने शीघ्रातिशीघ्र पुस्तक को उपलब्ध कराने में विशेष अभिरुचि एवं सक्रियता प्रदर्शित की है। जीवन शिक्षा मुद्रणालय के संचालल श्री तरुणभाई जी भी हमारे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। मुद्रक होने के साथ-साथ स्वयं भी शिक्षाविद् एवं लेखक होने से शीघ्रता के साथ पुस्तक की सुन्दर, उत्तम एवं शुद्ध छपाई के प्रति उनकी जागरूक एवं उदार वृत्ति उल्लेखनीय रही है। प्रेस के अन्य सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग रहा है, जिसके लिये वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। मुद्रण की त्वरा में यत्किंचिद् मुद्रणदोष या अशुद्धियाँ रह गयी हों तो पाठक उदारतावश क्षमा करेंगे।

रामसुशील सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
रसशास्त्र-विभाग, चि० वि० सं०
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

गंगादशहरा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संकेताक्षर

अं०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अफ०	अफगानी
अम०	अमेरिकी
अस०	असमिया (आसामी)
इ०	इरानी
उ०	उर्दू
उड़ि०	उड़िया
उ० प्र०	उत्तरप्रदेश
क०	कश्मीरी
क० अ०	कल्पस्थान
कना०	कनाडी, कन्नड़
काठि०	काठियावाड़
कु०	कुमाऊँ
कों०	कोंकण
को०	कोल
खर०	खरवार
खा०	खासिया
गढ़०	गढ़वाली
गु०	गुजराती
गो०	गोवा
ग्रा०	ग्राम
च०	चरक
चि०	चिकित्सास्थान
त०, ता०	तमिल, तामिल
तु०	तुर्की
ते०	तेलुगु
तो०	तोला
था०	थारो
द०	दक्षिण
देहरा०	देहरादून
ध० नि०	धन्वन्तरीय निघण्टु
ने०	नेपाली
पं०	पंजाबी
पहा०	पहाड़ी
पुर्त०	पुर्तगाली
फा०	फारसी
फैमि०	फैमिली
फ्रां०	फ्रांसीसी
बं०	बंगाली
बम्ब०	बम्बई
भा० प्र०	भावप्रकाश
भा० बाजा०	भारतीय बाजार
भोटि०	भोटिया
म०	मराठी
मणि०	मणिपुरी
मल०	मलयालम
मा०	माशा
मार०	मारवाड़ी
माल०	मालवा
मि० ग्रा०	मिलीग्राम
मि० मि०	मिलीमीटर
मुंग०	मुंगेर
यू०	यूनानी
र०	रत्ती
राज०	राजस्थान
रा० नि०	राजनिघण्टु
रा० पु०	राजपुताना
ले०	लेटिन
लेप०	लेपचा
सं०	संस्कृत
संथा०	संथाल
सिंध	सिंधी
सिंह	सिंहली
सु०	सुश्रुत
सें० मी०	सेंटीमीटर
हिं०	हिंदी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयानुक्रमणिका

नाम	पृष्ठ
[अ]	
अंकोल (अङ्कोल)	१–२
अंजबार	२–३
अंजरूत	३
अंजीर	४–५
अकरकरा	५–६
अखरोट	६–७
अगर	७–९
अग्निमन्थ	९–१०
अजमोद (अजमोदा)	१०–११
अजवायन	११–१२
अजवायन खुरासानी	१२–१३
अडूसा	१३
अतीस	१४–१५
अनन्नास	१५–१६
अनार	१६–१८
अपराजिता	१८–१९
अफ़संतीन	१९–२०
अफीम	२०–२३
अमरबेल	२३–२४
अमलतास	२४–२५
अमलवेतस	२५–२६
अयापान	२६
अर्जुन	२६–२७
अलसी	२७–३०
असगंध	३०–३१
[आ]	
आंबाहल्दी	३१
आंवला	३२
आक	३२–३४
आम	३४–३६
आमड़ा	३६–३७
आलूबोखारा	३७–३८
[इ]	
इंगुदी	३८–३९
इन्द्रायण	३९–४०
इमली	४०–४२
इलायची छोटी	४२–४४
इलायची बड़ी	४४–४५
इसबगोल	४५–४७
इसरौल	४७–४८
[ई]	
ईख	४८–५०
[उ]	
उटंगन	५०
उन्नाव	५०–५१
उलटकम्बल	५१–५२
उषक	५२–५३
उस्तखुद्दूस	५३–५४
[ऊ]	
ऊदसलीब	५४–५५
[ए]	
एरंड	५५–५६
[क]	
कंघी	५६–५७
कंजा	५७–५९
ककड़ी	५९–६०
ककोड़ा	६०–६१
कचनार	६१–६२
कचूर	६२–६३
कटाई छोटी	६३–६४
कटाई बड़ी	६४–६५
कतीरा देशी	६५–६७
कत्था	६७–६९
कनेर	६९–७०
कपास	७०–७२
कपूर	७२–७४
कपूरकचरी	७४–७५
कबर	७५
कबाबचीनी	७५–७७
कमल	७७–७८
कमीला	७८–७९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
करजीरी	७९–८१
करञ्ज	८१–८२
करफ्स	८२–८३
करीर	८३–८४
करेरुआ	८४
करेला	८४–८६
कलिहारी	८६–८७
कसे (शे) रू	८७–८८
कसौंदी	८८–८९
काँदा	८९–९१
काकडासींगी	९१–९२
काजू	९२–९३
कायफल	९३–९४
कालमेघ	९४–९५
कालादाना	९५–९६
काश (स)	९६–९७
कासनी	९७–९८
काहू	९८–९९
किरमाला	९९–१०१
कुनरू, जंगली	१०१–१०२
केंवाच	१०२–१०३
केवड़ा	१०३–१०४
केस(श)र	१०४–१०६
कैथ	१०६–१०७
कुकरौंधा	१०७–१०८
कुचिला	१०८–११०
कुटकी	११०–१११
कुटज	१११–११२
कुलंजन	११२–११४
कुलंजन, देशी	११४
कुलथी	११४–११५
कुष्ठ (कूट कड़ुआ)	११५–११७
कूष्माण्ड (पेठा)	११७–११८
कोकम	११८–११९
[ख]	
खतमी	११९–१२०
खस	१२०
खाकसी	१२०–१२१
खुब्बाजी	१२१–१२२
खूनखराबा	१२२–१२३
[ग]	
गंधाबिरोजा	१२३–१२५
गंभार (गम्भारी)	१२५–१२६
गजपीपल	१२६–१२७
गावजवाँ	१२७–१२८
गुंजा (घुंघची)	१२९–१३०
गुड़मार	१३०–१३१
गुडूची (गिलोय)	१३१–१३२
गुलशकरी	१३२–१३३
गुलाब	१३३–१३४
गूगल (गुग्गुलु)	१३४–१३५
गूमा	१३५–१३६
गूलर	१३६–१३८
गोखरू छोटा	१३८–१३९
गोखरू बड़ा	१३९–१४०
[घ]	
घीकुआर	१४०–१४२
[च]	
चकवड़	१४५–१४६
चनसुर	१४६
चन्दन लाल	१४३–१४४
चन्दन सफेद	१४४–१४५
चव्य	१४७
चाकसू	१४७–१४८
चाङ्गेरी	१४८
चित्रक	१४८–१५०
चिरचिटा (अपामार्ग)	१५०–१५१
चिरायता	१५१–१५३
चिरौंजी	१५३
चूका	१५४
चोबचीनी	१५४–१५५
[छ]	
छड़ीला	१५५
[ज]	
जटामांसी	१५६–१५७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
जदवार	१५७–१५८
जमालगोटा	१५८–१६०
जयन्ती (जैंत)	१६०–१६१
जलकुम्भी	१६१
जवास(सा)	१६१–१६३
जामुन	१६३–१६४
जायफल (जातीफल)	१६४–१६६
जीरा (सफेद)	१६६–१६७
जीरा(स्याह)	१६७–१६९
जीवन्ती	१६९–१७१
जूफा	१७१
जौ (यव)	१७१–१७२
[झ]	
झाऊ	१७२–१७४
[त]	
तरोई तोरई (कड़वी)	१८६
ताड़ (ताल)	१७४–१७५
तालमखाना	१७५–१७६
तालीसपत्र	१७६–१७७
तितलौकी	१७७–१७८
तिन्तिडीक (सुमाक)	१७८–१७९
तिल (तिल्ली)	१७९–१८१
तुलसी	१८१
तुवरक	१८१–१८३
तुतमलंगा	१८३–१८४
तेजपत्र	१८४–१८५
तोदरी	१८५–१८६
त्रायमाण	१८७–१८८
[द]	
दन्ती	१८८–१९०
दारुहल्दी	१९०–१९३
दालचीनी एवं तज	१९३–१९४
दुग्धफेनी	१९५–१९६
दुद्धी, छोटी	१९६–१९७
दूब (दूर्वा)	१९७
देवदार	१९७–१९९
[ध]	
धतूरा	१९९–२००
धनिया	२००–२०२
धनिया नेपाली (तुम्बरु)	२०२–२०४
धमासा	२०४
धाय (धवई)	२०४–२०५
[न]	
नरसल (नल)	२०५–२०६
नागकेस(श)र	२०६–२०७
नागरमोथा	२०७–२०८
नारङ्गी (नारंग)	२०८–२०९
नारियल	२०९–२११
नारियल, दरियाई	२११
नाशपाती	२११–२१२
निर्गुण्डी (मेउड़ी)	२१२–२१३
निर्मली	२१३–२१४
निशोथ	२१४–२१६
नीबू	२१६–२१७
नीम	२१७–२१९
नील	२१९–२२०
[प]	
पतंग	२२०–२२२
पत्ता अजवायन	२२२
पद्मकाष्ठ	२२२–२२३
पपीता	२२४–२२५
परजाता (हरसिंगार)	२२५–२२६
परवल (जंगली परवल)	२२६–२२८
पर्पट (पित्तपापड़ा)	२२८–२२९
गिरिपर्पट	२३०–२३२
पलाश (स)	२३२–२३४
पठा (पीढ़ी)	२३४–२३६
पाढ़ल (पाटला)	२३६–२३७
पाताल गरुडी (छलहिण्ट)	२३७–२३८
पान (ताम्बूल)	२३८–२३९
पानड़ी	२३९–२४०
पारिभद्र (फरहद)	२४०–२४१
पालकजूही	२४१
पाषाणभेद	२४१–२४३
पिप्पली (पीपल)	२४३–२४४
पियाबांसा	२४५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
पियाराँगा	२४६
पीपर (अश्वत्थ)	२४६–२४८
पीलु (छोटा तथा बड़ा)	२४८–२४९
पुदीना	२४९–२५०
पुनर्नवा (गदहपूरना)	२५०–२५१
पुष्करमूल	२५१–२५२
प्याज (पलाण्डु)	२५२–२५३
प्रसारिणी	२५३
प्रियंगु	२५३–२५४
[फ]	
फालसा (परूषक)	२५४–२५५
[ब]	
बंदाल (देवदाली)	२५५–२५७
बकायन (महानिम्ब)	२५७–२५८
बछनाग (वत्सनाभ)	२५८–२५९
बनफ़शा (बनफ्सा)	२५९–२६०
बबूल	२६०–२६२
बरगद (वट)	२६२–२६३
बरना (वरुण)	२६३–२६४
बला (बरियारा)	२६४–२६६
बहमन, लाल	२६६
बहमन, सफेद	२६६–२६७
बहेड़ा (बिभीतक)	२६७–२६८
बाकुची (बावची)	२६८–२६९
बादाम मीठा	२६९–२७०
बायबिडङ्ग (विडङ्ग)	२७०–२७३
बिखमा (प्रतिविषा)	२७३–२७४
बिजयसार (बीजक)	२७४–२७६
बिहीदाना	२७६–२७७
बेदमुश्क	२७७–२७८
बेल (बिल्व)	२७८–२७९
बोल (मुरमकी)	२८०
ब्राह्मी	२८०–२८२
[भ]	
भँगरैया [भृङ्गराज]	२८२–२८३
भव्य (चालता)	२८३–२८४
भाँग (विजया)	२८४–८७
भारङ्गी (भार्गी)	२८७–२८८
भिलावाँ (भल्लातक)	२८८–२९०
भुंई आँवला	२९०–२९१
[म]	
मँगरैला (उपकुञ्चिका)	२९१–२९२
मकोय (काकमाची)	२९२
मखाना (मखान्न)	२९२–२९३
ममीरा (पीतमूला)	२९३–२९४
मयूरशिखा	२९४–२९५
मरिच; काली	२९५–२९६
मरोड़फली	२९६–२९७
मस्तगी रूमी	२९७–२९८
महुआ	२९८–३००
मांसरोहिणी	३००–३०१
माजूफल	३०१–३०३
मानकन्द	३०३
मालकँगनी	३०३–३०५
माषपर्णी	३०५
मुचकुन्द	३०५–३०७
मुण्डी	३०७
मुद्गपर्णी	३०७–३०८
मुनक्का (दाख)	३०८–३०९
मुनक्का, काला	३०९
मुनक्का, सुलतान	३०९
मुलेठी	३०९–३११
मुश्कदाना	३११–३१२
मुसली, स्याह	३१२–३१३
मुसली, सफेद	३१३–३१४
मूर्वा	३१४–३१६
मूली	३१६–३१७
मेथी	३१७–३१८
मेहदी	३१९–३२०
मैदालकड़ी	३२०–३२१
मैनफल	३२१–३२२
मौलसिरी	३२२–३२३
[य]	
युकेलिप्टस	३२३–३२४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
[र]	
रतनजोत	३२४–३२५
राई	३२५–३२६
राल	३२६–३२७
रास्ना	३२७–३२८
रीठा (अरिष्टक)	३२८–३२९
रेवन्दचीनी	३२९–३३१
रोहीतक	३३१–३३३
[ल]	
लवंग (लौंग)	३३३–३३४
लहसुन (रसोन)	३३४–३३५
लाख (लाक्षा)	३३५–३३६
लिसोड़ा	३३७–३३८
पठानीलोध	३३८–३४०
लोबान	३४०–३४१
[व]	
वंशलोचन	३४१–३४२
वचा (घोड़वच)	३४२–३४५
बालवच	३४५–३४६
विदारीकन्द	३४६–३४७
विधारा, बंगीय	३४७–३४९
[श]	
शंखपुष्पी	३४९–३५०
शिलारस	३५०–३५१
शीशम	३५१–३५२
शृंगीविष	३५२–३५३
[स]	
सतावर	३५३–३५४
सनाय	३५४–३५६
सप्तपर्ण	३५६–३५७
समुंदरसोख	३५७–३५८
समुद्रफल	३५८–३५९
सरपत	३५९
सरफोंका (शरपुंखा)	३५९–३६१
सरसों	३६१
सरिवन (शालपर्णी)	३६२–३६३
सर्पगन्धा	३६३–३६५
सलई (शल्लकी)	३६५–३६७
सहदेवी	३६७–३६८
सहिजन	३६८–३६९
सारिवा, श्वेत एवं कृष्ण	३६९–३७२
सालममिश्री	३७२–३७३
सिंघाड़ा	३७३–३७४
सिरस (शरीष)	३७४–३७५
सुगन्धवाला (तगर)	३७५–३७७
सुदाब	३७७–७८
सुनिषण्णक	३७९–३८०
सुपारी (पूग)	३८०–३८२
सुरंजान	३८२–३८४
सूरन (शूरण)	३८५–३८६
सेमल (शाल्मली)	३८६–३८७
सेव (सिम्बितिका)	३८७–३८८
सेहुण्ड (स्नुही)	३८८–३८९
सोंठ (शुण्ठी)	३८९–३९०
सोआ (शतपुष्पा)	३९०–३९२
सोनापाठा (श्योनाक)	३९२–३९५
सोम (एफिड्रा)	३९५–३९६
स्वर्णक्षीरी (सत्यनाशी)	३९६–३९८
[ह]	
हंसराज (हंसपदी)	३९८–३९९
हड़जोड़ (अस्थि शृंखला)	३९९
हरड़ (हरीतकी)	३९९–४०१
हरमल	४०१
हल्दी (हरिद्रा)	४०१–४०३
हाऊबेर (हपुषा)	४०३–४०५
हिंस्रा (हइँसा	४०५
हींग (हिंगु)	४०५–४०७
हुरहुर	

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वनौषधि-निदर्शिका

[आयुर्वेदीय फार्माकोपिया]

अङ्कोल (ढेरा)

नाम। सं०–अङ्कोल, अङ्कोट, दीर्घकील। हिं०, द०–ढेरा, टेरा, थैल, अङ्कूल। को०–अंकोल। संथा०–ढेला। बं–आंकोड़। (सहारनपुर)–विसमार। म०–आंकुल। गु०–ओंक्ला। आलांजिउम् साल्वीफ़ोलिउम् **Alangium salvifolium** (*L.f.*) *Wang.* (पर्याय–*A. lamarckii Thw.*)।

वानस्पतिक कुल। अंकोट-कुल (कॉर्नासी *Cornaceae*)।

प्राप्तिस्थान – अंकोट का पेड़, हिमालय की तराई, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, राजस्थान, दक्षिण भारत एवं बर्मा में पाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय – अंकोट के वृक्षस्वभाव के बड़े क्षुप अथवा छोटे वृक्ष (लगभग ३ मीटर से ६ मीटर या १० से २० फुट ऊँचा) होते हैं, जो प्रायः वनों अथवा शुष्क एवं उच्च भूमि में उत्पन्न होते हैं। पुराने वृक्षों की प्रशाखाएँ तीक्ष्णाग्र होने से कण्टकीभूत-सी (*spinescent*) मालूम पड़ती हैं। इसका प्रधान काण्ड (काण्डस्कन्ध) लगभग २॥ फुट व्यास में मोटा एवं गोल तथा धूसरित रंग के छाल से युक्त (*bark ; grey*) होता है। पत्तियाँ एकदलपत्र या अपत्रक (*simple*), एकान्तर क्रम से स्थित ७॥ सें०मी० से १५ सें०मी० या ३ से ६ इंच लम्बी और विभिन्न आकार-प्रकार की होती हैं। माघ से चैत तक अर्थात् आरम्भिक ग्रीष्मकाल में यह पेड़ फूलता-फलता है। पुष्पितावस्था में वृक्ष प्रायः पत्रशून्य होता है। फल वैशाख से सावन तक पकते रहते हैं। पुष्प सफेद, पीताभ-सफेद, १.५ सेंटीमीटर से २ सेंटीमीटर ($\frac{3}{4}$ इंच से $\frac{4}{5}$ इंच) लम्बे तथा सुगंधित, पुष्पवाहक दण्ड पर एक-एक अथवा स्तबक या गुच्छों में (*solitary or fascicled*) निकलते हैं। पुष्पक्रम या पुष्पव्यूह एवं कैलिक्स या पुष्पबाह्यकोष (*inflorescence and calyx*) मृदु मखमली रोमावृत (*woolly*) होता है। पेटल (*petal*), अर्थात् पंखुड़ी या दलपत्र संख्या में ५-१० लगभग २.५ सें. मी. (१ इंच) लम्बे; पुंकेशर (*stamens*) संख्या में ३० तक, छोटे तथा रोमावृत, ऐन्थर या परागकोश (*anthers*) अपेक्षाकृत काफी लम्बे होते हैं। ओवरी या अण्डाशय (*ovary*) अधस्थ एवं एककोष्ठीय (*inferior and 1-celled*), कुक्षिवृन्त या स्टाइल (*style*) काफी लम्बा एवं सूत्राकार (*filiform*)।

उपयोगी अंग। मूलत्वक् (जड़ की छाल), पत्र, फल, बीज एवं बीजों से प्राप्त तैल।

मात्रा। मूलत्वक् चूर्ण–लगभग १२० मि० ग्रा० से ३०० मि० ग्रा० या १ रत्ती से २½ रत्ती (रक्तशोधक, कुष्ठनाशक आदि); ०.४ ग्राम से ०.६ ग्राम या ३ रत्ती से ५ रत्ती (स्वेदजनन, मूत्रल एवं प्रवाहिकानाशक)। लगभग २.९ ग्राम या ३ माशा (वामक मात्रा)।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा–(मूल) वजनी या भारी-सा; ठस, पीताभ वर्ण का तथा तैलीय रंग का होता है। इसकी छाल दालचीनी की तरह भूरे रंग की, और बाह्य तलपर छोटी-छोटी गोल ग्रंथिल रचना से युक्त होती है, तथा बाहरी छाल पतले-पतले पर्तनुमा टुकड़ों में छूटती है। छाल स्वाद में तिक्त, एवं गंध हल्की उत्क्लेशकारक होती है। जड़ एवं जड़ की छाल पर फ़ेरिकपरक्लोराइड सॉल्यूशन डालने से यह मटमैले हरे रंग की हो जाती हैं। फल या बेरी (*Berry*)–१५.६ मि० मी० या $\frac{5}{8}$ इंच लम्बे तथा ९.४ मि० मी० या $\frac{3}{8}$ इंच चौड़े, अंडाकार (*ellipsoidal*), पकने पर काले रंग के हो जाते हैं, जिनका गूदा (*pulp*) कालीआभा लिये लाल रंग का होता है। स्वाद में कसैलापन लिये खट्टा एवं किंचित् मधुर होता है। फल बाहर से सूक्ष्म एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोमल लोमावृत अथवा उक्त लोमों के झड़ जाने से अन्ततः चिकने हो जाते हैं। गुठली अपेक्षाकृत बड़ी एवं कड़ी (*endocarp bony*) होती है, जिसमें दीर्घवत् या लम्बोतरा बीज (*Seeds : oblong*) होता है। अंकोट तैल प्राप्त करने की विधि—एक प्याले के मुँह को कपड़े से बाँध कर अंकोल के बीज की गिरी को काटकर इस पर बिछा दें और एक टुकड़ा अभ्रक का इस पर रख कर कोयलों की आग करें। इसकी गर्मी से तैल टपक कर प्याले में एकत्रित हो जाता है। औषधि में इसी का व्यवहार करें। पत्तियाँ—७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इंच से ६ इंच लम्बी, २.५ से ५ सें० मी० या १-२ इंच चौड़ी, रेखाकार-आयताकार (*linear-oblong*) से अंडाकार या दीर्घवृत्तीय या लम्बगोल (*elliptic*), निशिताग्र (*acute*) अथवा लम्बाग्र या लम्बानुकीली (*acuminate*) अथवा कुण्ठाग्र (*obtuse*) होती हैं। पत्तियों के तल प्रायः चिकने होते हैं। मुख्य शिरा की पार्श्वगामी शाखाएँ (*lateral nerves*) ५ से ८ तथा सूक्ष्म होती हैं। पत्तियाँ आधार की ओर क्रमशः कम चौड़ी (*base acute*) अथवा किन्हीं पत्तियों में आधार गोला (*rounded*) भी होता है। पर्णवृन्त ०.५ सें० मी० से १.२५ सें० मी० या $\frac{1}{5}$ से $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा एवं रोमावृत होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—उपयुक्त अंगों का संग्रह कर शीतल एवं अनार्द्र स्थान में मुखबन्द डिब्बों में रखना चाहिए। तैल को अम्बरी रंग की शीशियों में अच्छी तरह डाट बंद कर शीतल एवं अँधेरी जगह में रखें।

संगठन—इसकी जड़ (मूलत्वक्) में अङ्कोटीन (ऐलेन्जीन) (*Alangine*) नामक अत्यन्त तिक्त ऐल्केलॉइड (०.८%) पाया जाता है। यह जल में तो अविलेय किन्तु अल्कोहल, क्लोरोफॉर्म एवं सालवेंट ईथर में घुल जाता है। तैल में भी ०.२% ऐल्केलॉइड पाये जाते हैं। चर्बी का अंश अपेक्षाकृत कम पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष। तैल कई वर्षों तक।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, सर। रस—तिक्त, कटु, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—विषघ्न। प्रधानकर्म—कफवातशामक एवं पित्तसंशोधन, वेदनास्थापन, शोथहर, विषघ्न, यकृदुत्तेजक, (अधिक मात्रा में) वामक, रेचन, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, त्वग्दोषहर। फल—वातपित्तशामक, बल्य, बृंहण, दाहप्रशमन। तैल—वेदनास्थापन, व्रणरोपण।

मुख्य योग—अंकोल तैल।

विशेष—अल्प मात्रा में ऐलेन्जीन हृदय पर अवसादक प्रभाव के कारण रक्तभार (*blood pressure*) को कम करता है; किन्तु इससे आन्त्र की पुरस्सरण गति (*peristaltic movement*) में वृद्धि होती है।

अंजबार

नाम। अ०—अंजबार, अंजि (जु) बार। भारतीय बाजार—अंजबार, अंजुबारे रूमी। अं०—ऐल्पाइन नॉट-वीड (*Alpine Knot-weed*), नॉट-वीड (*Knot-weed*)।

ले०-पॉलीगोनुम् बिस्टॉर्टा (**Polygonum bistorta** *Linn.*)

वानस्पतिक कुल। चुक्र-कुल (पॉलिगोनासी *Polygonaceae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तरी एशिया एवं यूरोप। इसकी कुछ निकटतम जातियों का प्रसार भारतवर्ष में भी हो गया है। पंजाब, कश्मीर तथा सिक्कम तक हिमालय प्रदेश में पॉलीगोनुम् वीविपारुम् (*P. vivíparum L.*) के स्वयंजात पौधे मिलते हैं। इसकी जड़ों का भी व्यवहार अंजबार के ही नाम से किया जाता है। पंजाब के बाजारों में अंजबार के नाम से प्रायः यही मिलता है। पंजाब एवं कश्मीर में इसको 'मस्लून' तथा 'बिल्लौरी' भी कहते हैं। पॉलीगोनुम् बिस्टॉर्टा श्यामदेश में नहरों और नदियों के किनारे तथा झीलों के आसपास होता है। इसकी जड़ों का आयात फारस से 'अंजुबारे रूमी' नाम से होता है।

संक्षिप्त परिचय—अंजबार का क्षुप १२० सें० मी० से १५० सें० मी० या ४-५ फुट तक ऊँचा तथा बहुशाखी होता है। काण्ड गोल, धारीदार तथा ललाई लिये और ग्रंथियों पर पर्णसंसक्त होता है। पत्तियाँ एकान्तर क्रम से स्थित, २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बी, रूपरेखा में अंडाकार या भालाकार, सवृन्त, कुछ चर्मिल (*coriaceous*), खाकस्तरी या नीलाभ वर्ण की होती हैं। पुष्प श्वेत, गाढ़े लाल अथवा हरितवर्ण से चित्रित होता है। बीज त्रिकोणाकार, चमकीले और काले रंग के होते हैं। जड़ (मूल) लम्बी, कठोर, तन्तुल तथा कालिमा लिये लाल रंग की होती है।

उपयोगी अंग—मूल या जड़—(विशेषतः मूलत्वक्)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्रा—१·९४ ग्राम से ३·९ ग्राम (२ से ४ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—भारतीय अंजबार *(Palygonum vivi-parum Linn.)* अंजबारे रूमी का उत्तम प्रतिनिधि है। भारतीय 'मांसरोहिणी' की छाल भी अंजबार की उत्तम प्रतिनिधि हो सकती है। पॉलीगोनुम् वीविपारुम् के छोटे-छोटे बहुवर्षायु पौधे होते हैं, जो हिमालय प्रदेश में २९४३ किलोमीटर से ३९६० किलोमीटर या ९,००० फुट से १३,००० फुट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। मूलकांड *(Root-stock)* काष्ठीय एवं बहुवर्षायु; काण्ड १० सें० मी० से ३० सें० मी० या ४ इंच से १२ इंच लम्बा एवं पतला; पत्तियाँ २.५ सें०मी० से १५ सें०मी० (१से५ इंच) लम्बी, साधारण *(simple)*, सोपपत्र, रेखाकार या रेखाकार आयताकार, अग्र पर सहसा नुकीली या कुण्ठिताग्र तथा सूक्ष्म गोलदन्तुर धारवाली एकान्तर क्रम से स्थित होती हैं। पुष्प गुलाबी रंग के होते हैं, जो २.५ सें० मी० से १० सें० मी० (१ इंच से ४ इंच लम्बी) खड़ी *(erect)* मंजरियों में निकलते हैं। कहीं-कहीं पुष्पों के स्थान में बल्बिल या पत्रकंद *(bulbils)* भी पाये जाते हैं। फल छोटे-छोटे *(nutlets)* तथा त्रिकोणीय या दोनों ओर उन्नतोदर *(biconvex)* होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—अंजबार को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—जड़ में पॉलिगोनिक एसिड, टैनिक एसिड एवं गैलिक एसिड, श्वेतसार एवं कैल्सियम् ऑक्जलेट आदि पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव—अंजबार प्रथम कक्षा में शीत एवं रूक्ष होता है। यह शीतसंग्राही, रक्तस्तम्भन, आन्त्रामाशयबलप्रद, पित्त एवं रक्तप्रकोप संशमन होता है। चिरकालीन अतिसारों में यह बहुत गुणकारी होता है। रक्तातिसार, रक्तप्रवाहिका, रक्तमूत्र, रक्तप्रदर आदि में इसका उपयोग होता है। क्षतों पर सूक्ष्म चूर्ण छिड़कने से भी यह रक्तस्तम्भक क्रिया करता है। अहितकर—शीत प्रकृति के लोगों के लिए।

निवारण—सोंठ एवं मधु।

मुख्य योग—शर्बत अंजबार (सादा एवं मुरक्कब) एवं लऊक अंजबार।

विशेष—यूनानी चिकित्सक शर्बत अंजबार का प्रयोग बहुशः करते हैं। रक्तप्रदर में अन्य औषधियों के साथ इसका उपयोग सहायक औषधि के रूप में अथवा अनुपान के रूप में कर सकते हैं।

अंजरूत

नाम। फा०—अंजरूत। हिं०—लाई, लाही। बम्बई—गूजर (फारसी 'गूजद' का अपभ्रंश)। अ०—कोहल फारसी, कोहल किरमानी। ले०-आस्ट्रागालुस् सार्कोकोला *(Astragalus sarcocola Dymock.)*। लेटिन नाम वृक्ष का है।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल (लेगूमिनोसी *Leguminosae*)

प्राप्तिस्थान—अंजरूत 'शाइका' नामक कँटीले वृक्ष का गोंद होता है। उक्त वृक्ष फ़ारस तथा तुर्किस्तान में प्रचुरता से पाया जाता है। बम्बई बाजार में इसका आयात फारस से होता है।

उपयोगी अंग—गोंद (अंजरूत)।

मात्रा—लगभग ½ ग्राम (०.४८ ग्रा०) से १ ग्राम (०.९६ ग्रा०) या ½ माशासे १ माशा।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा—अंजरूत के संहतीभूत दाने होते है, जो सहज में ही खंडित एवं चूर-चूर हो जाते हैं। यह अपारदर्शक, अर्धस्वच्छ, निर्गन्ध और मिठास लिये अत्यंत तिक्त होता है, तथा गहरे लाल से पिलाई लिये सफेद अथवा भूरे रंग में बदलता रहता है। गरम करने से यह फूलता है, और जलते समय इसमें से जलती हुई चीनी की-सी गंध आती है।

मिलावट—संग्रह में असावधानी के कारण गोंद में प्रायः वृक्ष के अन्य अंग पुष्प, पत्र एवं डंठल के टुकड़े भी मिले होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—अंजरूत को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—अंजरूत में ६५.३०% सार्कोकोलीन, ४.१०% निर्यास, ३.३०% सरेसी पदार्थ, काष्ठमय द्रव्य आदि २६.८०%। सार्कोकोलीन ४० भाग शीतल जल तथा २५ भाग उबलते जल एवं ऐल्कोहॉल में घुल जाता है।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल पर्यन्त।

स्वभाव। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। यूनानी मतानुसार उष्ण एवं रूक्ष है। कर्म—कफरेचन, पिच्छिल, श्वयथुविलयन, व्रणलेखन-रोपण।

विशेष—विभिन्न श्वयथुविलयन एवं अस्थिभग्न-संधानीय लेपों में यह उत्तम आधारद्रव्य होता है। प्रायः इसका उपयोग यूनानी वैद्यक में होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अंजीर

नाम। सं०–अंजीर, फल्गु। हिं०–अंजीर। फा०–अंजीर। अ०–तीन। अं०–फिग (*Fig.*)। ले०–फ़ीकुस्कारिका (**Ficus carica** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। वट-कुल (उर्टीकासी *Urticaceae*)।

प्राप्तिस्थान–अंजीर एशिया माइनर का आदिवासी पौधा समझा जाता है। पूरब में तुर्की से लेकर पश्चिम में स्पेन, पुर्तगाल तक भूमध्यसागर तटवर्ती प्रदेशों में प्रचुरता से बोया जाता है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका (*U.S.A.*), अरब, फारस, अफगानिस्तान एवं चीन, जापान में भी यह व्यावसायिक रूप से उत्पन्न किया जाता है। बिलोचिस्तान, पंजाब तथा कश्मीर एवं दक्षिण भारत में पूना, बेलारी, अनन्तपुर एवं मैसूर में भी काफी परिमाण में अंजीर के बगीचे लगाये गये हैं। माला में गुथे हुए इसके सुखाये पक्वफल बाजारों में मेवाफरोशों एवं पसारियों के यहाँ मिलते हैं। भारतीय बाजारों में अंजीर का आयात विदेशों से तथा उपर्युक्त भारतीय केन्द्रों से भी होता है।

संक्षिप्त परिचय–अंजीर के छोटे या मध्यम कद (४.५७ मी० से ९.१४ मी० या १५-३० फुट ऊँचे) के पतझड़ करने वाले वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ चौड़ी-लट्वाकार अथवा गोलाकर-सी तथा ३-५ खण्डों से युक्त होती हैं। पत्रकोणों में सवृन्त फल लगते हैं, जो रूपरेखा में सेवाकार किन्तु छोटे तथा पकने पर लाल हो जाते हैं। बट-कुल के अनुसार इसका फल भी उदुम्बरक या साइकोनस (*syconus ar syconium*) या कुम्भव्यूहोद्भव होता है, जिसमें कुम्भव्यूह का दल्यक्ष मोटा और मांसल हो जाता है। एक अग्र पर छिद्र होता है और अन्तः पृष्ठ पर पुंपुष्प और स्त्रीपुष्प होता है। प्रत्येक स्त्रीपुष्प से एक वास्तविक फल बनता है, जो युतेत्फल या एकोन (*achene*) या अष्ठिफल (ड्रूप *drupe*) होता है। उक्त फलों को ही लोग व्यवहार में बीज कह देते हैं। इसके तने को काट कर लगा देने से वृक्ष लग जाता है। इसी प्रकार कलम (*cuttings*) से इसकी खेती की जाती है। २-३ वर्ष का होने पर ही वृक्ष फल देने लगते हैं और १४-१५ वर्ष तक काफी सक्रिय रहते हैं। अंजीर से प्रतिवर्ष २ फसलें तैयार होती हैं। भारतवर्ष में एक फसल जुलाई से अक्टूबर तक, दूसरी जनवरी से मई तक होती है। पक्व फलों का संग्रह वृक्षों से तोड़ कर किया जाता है। किन्तु साधारणतया जब फल अपने-आप टूट कर गिरते हैं, तो जमीन से ही संग्रह अधिक उपयुक्त समझा जाता है। संग्रह के बाद ५-७ दिन तक धूप में सुखाते हैं। सुखाने के पूर्व फलों को दबा कर पिचका दिया जाता है। इससे माला बनाने में सुविधा होती है। पैकिंग के पूर्व फलों को (३% बल के) लवण-जल में डुबोते हैं, जिससे यह मुलायम बने रहते हैं और स्वाद में भी अभिवृद्धि हो जाती है।

उपयोगी अंग–पक्व फल।

मात्रा–२-३ दाना।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–शुष्क अंजीर मुलायम, गूदेदार, पीताभ या भूरे रंग का, लगभग ५ सें० मी० या २ इंच लम्बा और इतना ही चौड़ा होता है। फल का मांसल या गूदेदार भाग वास्तव में दल्यक्ष या पुष्पधर (*receptacle*) ही होता है, जो अन्दर से खोखला या गह्वर-युक्त होता है, जिसमें अनेक दाने होते हैं। उक्त दाने, जिनको व्यवहार में बीज कह दिया जाता है, वास्तव में अष्ठिफलिका (*druplets*) होते हैं। फलों के शीर्ष पर एक छिद्र होता है, जो शल्कपत्रों के अवशेष से आवृत होता है। आधार या मूल की ओर डंठल-सा होता है। अंजीर में एक हल्की मनोरम सुगंधि-सी होती है तथा स्वाद में यह मधुर होता है। जल में विलेय सत्व (*water-soluble extractive*) कम से कम ६०% प्राप्त होता है। मधुर परिपुष्ट फल सर्वोत्तम होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–देशी एवं विलायती, जंगली, पहाड़ी एवं बागी या कर्षित (*cultivated*)। बागी भी स्थान भेद से तथा सफेद, लाल, काला आदि रंग भेद से अंजीर नाना प्रकार का होता है। इसका एक भेद 'शाह अंजीर' है जो बहुत गुदार एवं मधुर रस से परिपूर्ण होता है। बाजारों में जो अंजीर आता है, वह प्रायः कर्षित वृक्षों के ही फल होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–अंजीर को मुखबंद पात्रों में शुष्क स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–अंजीर में ४२% से ६२% तक शर्करा (जिसमें मुख्यतः इनवर्टसुगर (*invert sugar*) होता है, लौह, फास्फोरस, कैल्सियम् आदि खनिज द्रव्य, तथा विटामिन '*A*', '*C*' एवं '*B*' तथा '*D*' पाये जाते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ताजे फलों में सुखाये फलों की अपेक्षा विटामिन्स अधिक होते हैं। इनके अतिरिक्त फिसिन (*Ficin*) नामक आन्त्र-कृमिनाशक सत्व भी अल्प मात्रा में पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—ताजे पक्व फल तो अधिक टिकाऊ (१ मास तक) नहीं होते। किन्तु संस्कारित एवं सुखाये हुए फल १ वर्ष तक ठीक बने रहते हैं।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—वातपित्त शामक, स्नेहन, अनुलोमन, सारक, यकृदुत्तेजक, प्लीहावृद्धिहर, रक्तशोधक, रक्त-पित्तहर, कफनिस्सारक, मूत्रल, वृष्य, वर्ण्य, दाहप्रशमन, बल्य, बृहण। बाह्यतः इसका लेप व्रणशोथहर है। यूनानी मतानुसार अंजीर प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय में तर है। यह तोषमादर्वकर, कोष्ठमृदुकर, दोषपाचन, स्वेदन एवं कफोत्सारि तथा मूत्रल होता है। अंजीर को मेवे की तरह खाया जाता है और औषध की भाँति भी उपयोग किया जाता है। यह अत्यंत पुष्टिकर जीवनीय मेवा है। इसीलिए यह शरीर का परिबृंहण करता तथा रंग को निखारता है। शारीरिक दोषों के पाचन एवं कब्ज निवारण के लिए तथा श्वास कास में कफोत्सर्ग के लिए इसका उपयोग करते हैं। यकृत्प्लीहा के अवरोधोद्घाटनार्थ एवं प्लीहा की सूजन उतारने के लिए भी इसका पुष्कल प्रयोग करते हैं। व्रणशोथपाचन के लिए इसका लेप लगाते हैं। अखरोट के साथ खाने से यह उत्तम वाजीकरण होता है।

मुख्य योग—शर्बत अंजीर।

अकरकरा (आकारकरभ)

नाम। सं०—आकारकरभ। हिं०—अकरकरा, करकरा। अ०—आक़िरक़िर्हा, ऊदुल्क़ई। फा०—बेख तर्खून कोही। अं०—पाइरेथ्रम्रूट (*phyrethrum root*), स्पेनिश पेलिटरी (*Spanish Pellitory*), पेलिटरी रूट। (*Pellitory Root*)। ले०—पीरेथ्रुम् राडिक्स (*Pyrethrum Radix* (*Pyreth. Rad.*)।

वनस्पतिका नाम—आनासीक्लुस् पीरेथ्रुम् (**Anacyclus pyrethrum** *C. D.*)

वक्तव्य—आक़िरक़र्हा अरबी अक़र (=काटना) और तक़रीह (=जख्म डालना) से व्युत्पन्न है। ऊदुल् क़र्ह का अर्थ 'व्रणकारक काष्ठ' है। 'पीरेथ्रुम्' यूनानी 'पायरोस' (*Pyros* = अग्नि) से व्युत्पन्न है।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोज़िटी *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तरी अफरीका, अलजीरिया तथा अरब। अल्जीरिया में काफी परिमाण में इसका संग्रह किया जाता है और भारतीय बाजारों में इसका आयात मुख्यतः यहीं से होता है। भारतीय उद्योगों एवं बंगप्रदेश में भी कहीं-कहीं इसके लगाये हुए पौधे मिलते हैं। औषधीय दृष्टि से विदेशी अकरकरा अधिक वीर्यवान् एवं उत्तम होता है, किन्तु महँगा बिकता है।

संक्षिप्त परिचय—अकरकरा के वर्षानुवर्षी या बहुवर्षायु कोमल शाकीय पौधे (*perennial herb*) होते हैं। जड़ से ही गुलाबपुष्पवत् पत्तियों का पुंज (*rosette of pinnatifid radical leaves*) तथा अनेक शाखाएं निकलती हैं। शाखाएँ रोंगटेदार और पृथ्वी पर फैल होती हैं, केवल शाखाग्र ऊपर को उठे (*erect*) होते हैं। इसकी शाखाएँ पत्र और पुष्प सफेद बाबूने के सदृश होते हैं; परन्तु डण्ठल पोली होती है। गुजरात और महाराष्ट्र देश में इसकी डण्डी का अचार और साग बनाते हैं। पुष्प शाखाओं पर गोल, गुच्छेदार छत्री के आकार के मुण्डकों में निकलते और पीले रंग के होते हैं। फल अभिलट्वाकार चर्मफल या एकीन (*achene*) जिनमें एक छोटा बाह्य-दल-रोम या पैपस (*pappus*) होता है। अकरकरा की जड़ तर्क्वाकार (*fusiform*) तथा लम्बी होती है। औषधि में इन्हीं जड़ों का व्यवहार होता है। इसमें सोआ के सदृश बीज आते हैं।

उपयोगी अंग—मूल।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ ग्राम से १ ग्राम या २ से ८ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में अकरकरा के ७.५ सें०मी० से १० सें० मी० या ३ से ४ इंच (१५ सें० मी० या ६ इंच तक) लम्बे तथा ०.९ सें०मी० से १.२५ सें०मी० या $\frac{3}{8}$ से $\frac{1}{2}$ (पौन इंच तक) इंच मोटे बेलनाकार अथवा अग्र की ओर क्रमशः पतले (*tapering*) टुकड़े मिलते हैं, जो बाहर से भूरे रंग के तथा झुर्रीदार मालूम होते हैं। ऊपरी सिरे पर पत्रों के अवशेष (*remains of the leaves*) से बने बेरङ्ग बालों की एक चोटी-सी होती है। जड़ को जहाँ से तोड़ें वहीं से टूट जाती है। टूटे हुए तल की रचना पहिए के आरों की भाँति (*radiate*) मालूम पड़ती है, तथा मज्जक या पिथ (*pith*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का अभाव-सा मालूम होता है। इसमें पीताभ ऊर्ध्व वाहिनी (*xylem*) एवं श्वेताभ मज्जक-किरणों (*medullary rays*) की कतारें आरावत् होती हैं। मूलत्वक् लगभग $\frac{1}{8}$ इंच मोटी होती है, जो काष्ठीय भाग से चिपकी होती है। मूलत्वक् एवं मज्जक-किरणों में हल्के भूरे रंग की अनेक रेजिन-ग्रंथियाँ (*resin glands*) होती हैं। अकरकरा की जड़ को मुंह में रखने से चरपरी लगती तथा जिह्वा में जलन-सी होने लगती है। इसको चबाने से मुंह से लालास्राव होने लगता है और सम्पूर्ण मुख एवं कण्ठ में चुनचुनाहट और कांटे से चुभते मालूम होते हैं। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम २०%; भस्म—अधिकतम ७%; सुरासार (ऐल्कोहॉल ७०%) में घुलनशील सत्व—कम-से-कम १४%।

संग्रह एवं संरक्षण—अकरकरा की जड़ में कीड़े लगने की सम्भावना बहुत रहती है। अतएव इसको अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में रख कर अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। मूलचूर्ण को रखना हो तो ऐसी शीशियों में रखें, जिसमें नमी बिल्कुल न पहुँच पाये तथा प्रकाश से बचाना चाहिए। उग्र स्वभाव की होने के कारण इसका संग्रह भी पृथक् अन्य विषाक्त औषधियों के साथ करना चाहिए।

संगठन—अकरकरा की जड़ का मुख्य सक्रिय तत्त्व पेलिटोरीन (*Pellitorine*) या पाइरेथ्रीन (*Pyrethrine* $C_{14}H_{24}ON$) नामक सत्व होता है, जो रंगहीन क्रिस्टल्स के रूप में प्राप्त होता है। अकरकरा की तीक्ष्णता एवं लालास्रावजनक क्रिया इसी के कारण होती है। क्रिया की दृष्टि से यह पिप्पली आदि में पाये जाने वाले या पाइपरीन सत्व से मिलता-जुलता है। इसके अतिरिक्त अंशतः उत्पत् तैल, स्थिर तैल (*Hydrocarbons*) एवं ५०% तक इन्युलिन तत्त्व पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—अच्छी तरह रखने से अकरकरा की जड़ में ७ वर्ष तक वीर्य बना रहता है।

स्वभाव। गुण-रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु। विपाक—कटु वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—वातकफनाशक, कटु-पौष्टिक, लालास्रावजनक, नाड़ीबल्य, वेदनास्थापन, कामोद्दीपक (तिलाऽके रूप में अथवा मौखिक प्रयोग से)। यूनानी मतानुसार तीसरे दर्जे में रूक्ष एवं उष्ण है। अहितकर—फुफ्फुस को। निवारण—कतीरा। प्रतिनिधि—पीपल।

मुख्य योग—आकारकरभादि चूर्ण, माजून, योगराजगुग्गुलु।

विशेष—असली एवं विदेशी अकरकरा का मूल्य बढ़ जाने से आजकल बाजारों में नकली अथवा देशी अकरकरा भी मिलाकर या अकरकरा के नाम से बेचा जाता है। अतएव औषधि खरीदते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। बाजारों में अकरकरा असली तथा नकली और मोटा तथा पतला भी आता है। असली अकरकरा में अधिक तेजी होती है; जिसे खाते ही जीभ में झनझनाहट होने लगती है, तथा पानी विशेष निकलता है। इसका प्रभाव देर तक रहता है। नकली अकरकरा में झनझनाहट अपेक्षाकृत कम होती है तथा इसका प्रभाव भी थोड़ी देर तक रहता है।

अखरोट (अक्षोट)

नाम। सं०—अक्षोट, अक्षोड। हिं०—अखरोट। बं०—आखरोट। म०, गु०—अखरोड। जौनसार—आखोर। अ०—जौज। फा०—गौज़, चारमग्ज़, गिर्दगाँ। अं०—(फल) वॉलनट (*Wal-nut*), (वृक्ष) बॉलनट-ट्री (*Wal-nut Tree*)। ले०—जुग्लांस रेगिआ (**Juglans regia** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। अक्षोट-कुल (जुग्लांडासी *Juglandaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में ०.९१४ किलो० मी० से ३.६५ कि० मी० या ३,००० से लेकर १०,००० फुट की ऊँचाई तक—भूटान से लेकर कश्मीर, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान तक तथा पूरब में खसिया की पहाड़ियों पर अखरोट के जंगली एवं लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। अखरोट के काष्ठवत् छिलकेदार समूचे फल तथा फलों की गिरी अखरोट नाम से बाजारों में पंसारियों के यहाँ तथा मेवाफरोशों की दूकानों में मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—अखरोट के ऊँचे-ऊँचे पतझड़ करने वाले सुगंधित वृक्ष होते हैं, जिसकी नयी शाखाओं का पृष्ठ मखमली (*velvety*), छाल धूसर तथा उसमें अनुलम्ब दिशा में (खड़ेखड़) दरारें होती है, पत्तियाँ अयुग्म पक्षाकार (*imparipinnate*), १५ सें० मी० से ३७.५ सें० मी० या ६ से १५ इंच लम्बी, और नवीन होने पर सघन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तूलरोमश होती हैं। पत्रक-संख्या में ५ से १३, लम्बाई ७.५ सें०मी० से २२ सें०मी० या ३ से ८ इंच, चौड़ाई में ५ से० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच, अण्डाकार आयताकार और सरल धार वाले होते हैं। पुष्प एक लिङ्गी होते हैं। नर पुष्प ५ से १२.५ सें० मी० या २ से ५ इञ्च लम्बी हरित वर्ण की नम्य मंजरियों (*catkins*) में निकलते हैं; स्त्री पुष्प (१-३) शाखाओं पर पत्तियों के अभिमुख निकलते हैं। बाह्यकोश ४ खण्डयुक्त तथा दलपत्र संख्या में ४ तथा हरिताभवर्ण के होते हैं। पुंकेशर १०-२० होते हैं। फल लगभग ५ सें० मी० या २ इंच लम्बे, गोलाकार, मदनफल के आकार के, तथा हरित वर्ण के होते हैं। इनपर जगह-जगह पीत बिन्दु-से होते हैं। फलत्वचा, चर्मिल एवं सुगंधित। गुठली (*Nut*) १से१॥ इंच लम्बी, रेखायुक्त, कड़ी एवं दो कोष्ठों वाली, गिरी धूसर-श्वेत, टेढ़ी-मेढ़ी, रूपरेखा में मस्तिष्क जैसी तथा पृष्ठतल पर दो खंडों में विभक्त-सी, खाने में स्वादिष्ट और अन्य गिरियों की भाँति इसमें भी काफी स्नेहांश पाया जाता है। वसन्त में पुष्प तथा शरद में फल आते हैं।

उपयोगी अङ्ग—गिरी (मज्जा) एवं गुठली तथा गिरी का तेल (अखरोट का तेल)।

मात्रा—गिरी—११.६ ग्राम से २३ ग्राम या १ से २ तोला। तेल—३ ग्राम से ११.६ ग्राम या ३ माशा से १ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—फलमज्जा (गिरी) को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। तैल को मुखबंद शीशियों में शीतल एवं अँधेरी जगह में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन—अखरोट में ४०% से ४५% तक स्थिर तैल पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें जुगलेंडिक एसिड (*Juglandic acid*) एवं रेजिन (राल) आदि भी मिलते हैं। फलों में ऑक्जेलिक एसिड पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। गिरी—२ वर्ष। तैल—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य-उष्ण। कर्म-वातशामक, कफपित्तवर्धक, मेध्य, दीपन, स्नेहन, अनुलोमन, कफनिस्सारक, बल्य, वृष्य, बृंहण। इसका लेप—वर्ण्य, कुष्ठघ्न, शोथहर एवं वेदनास्थापन। गिरी या मज्जा तथा इससे प्राप्त तैल को छोड़ कर अखरोट के शेष अंग संग्राही होते हैं। अखरोट के तेल का उपयोग बादाम के तेल की तरह किया जा सकता है; गुठली या छिलके का भस्म दंतमंजन चूर्णों में डालते हैं। रक्तार्श में उक्त भस्म का मौखिक सेवन करने से यह रक्तस्राव को रोकता है। यूनानी मतानुसार अखरोट द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं तृतीय में तर है। यह ताजे बादाम से अधिक गरम है। अखरोट की गिरी उत्तमांगों को, विशेषकर मस्तिष्क को बल प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त यह बुद्धि एवं मन आदि अन्तर्ज्ञानेन्द्रियों को भी पुष्ट करती तथा वाजीकर, मृदुसारक, विलयन एवं लेखनीय होती है। अखरोट को अधिकतया वाजीकर योगों में समाविष्ट कर उपयोग करते हैं। भुना हुआ शीतकास में उपकारी बताया जाता है। अर्दित, पक्षाघात एवं आमवात आदि व्याधियों में इसका वाह्यांतरिक प्रयोग किया जाता है। ताजी गिरी को पीस कर लेप करने से व्रणचिह्न मिट जाता है और मुँह पर मलने से चेहरे की झाईं दूर हो जाती है। अखरोट का तेल बादाम के तेल की भाँति उष्ण एवं दोषादिविलयन है तथा शीतप्रकृति एवं शीत-व्याधियों एवं तज्जन्य वेदनाओं में उपयोगी होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारण—सेव एवं सिकंजबीन।

मुख्य योग—हब्बुल् जौज।

अगर (अगुरु)

नाम। सं०—अगुरु, कृमिजग्ध, लोह। बं०—अगरु। हिं०—म०, गु०—अगर। अ०—ऊद। अं०—एलो वुड (*Aloe Wood*), ईगल वुड (*Eagle Wood*)। ले०—ऑक्वीलारिआ आगाल्लोचा (*Aquilaria agallocha Roxb.*)।

वानस्पतिक कुल। अगुर्वादि-कुल (थीमेलासीई—*Thymelaceae*)।

प्राप्तिस्थान—आसाम, बंगाल; पूर्वी हिमालय पर्वत, खसिया पर्वत, भूटान, सिल्हट, टिपेरा पहाड़ी, मर्तबान पहाड़ी मलाबार, मलयाचल और मणिपुर तथा दक्षिण प्रायद्वीप मलक्का और मलाया द्वीप। इनमें सिल्हट का अगर सर्वोत्तम होता है।

संक्षिप्त परिचय—इसके सदाहरित ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लगभग १८.२९ मीटर से ३०.४८ मीटर (६०-१०० फुट) होते हैं, जिनके कांण्ड-स्कन्ध का घेरा १.५२४ मीटर से २.४३ मीटर या ५ से ८ फुट तक, काण्डत्वक् या तने की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छाल पतली तथा भोजपत्र के समान, पत्तियाँ ६.२५ सें० मी. से ७.५ सें.मी. या २॥ इंच से ३ इंच लम्बी, नुकीली एवं चर्मिल (*leathery*) होती हैं। ग्रीष्म में पुष्प आते हैं, जो सफेद रंग के तथा गुच्छों में लगते हैं। फलागम वर्षा में होता है। फल २.५ सें.मी. से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बे एवं मखमल के समान कोमल होते हैं। पुराने वृक्ष का सारकाष्ठ अगुरु के नाम से व्यवहृत होता है। पहले तो इसकी लकड़ी बहुत साधारण पीले रंग की और गंधरहित होती है; पर कुछ दिनों में धड़ और शाखाओं में जगह-जगह एक प्रकार का रस आ जाता है, जिसके कारण उन स्थानों की लकड़ियाँ भारी हो जाती हैं। इन स्थानों से लकड़ी काट ली जाती है और 'अगर' के नाम से बिकती है। यह रस जितना ही अधिक होता है, उतनी ही लकड़ी उत्तम और भारी होती है। पर ऊपर से देखने में यह नहीं जाना जा सकता कि किस पेड़ में अच्छी लकड़ी निकलेगी। बिना सारा पेड़ काटे इसका पता नहीं लग सकता। प्रायः कम-से-कम २० वर्ष पुराने पेड़ की ही लकड़ी अगर के लिए काटी जाती है। लकड़ी का बुरादा धूप, दशांग आदि में पड़ता है। बम्बई में जलाने के लिए इसकी अगरबत्ती बहुत बनती है। सिलहट में अगर का इत्र बहुत बनता है। 'चोबा' नामक सुगन्ध इसी से बनता है।

उपयोगी अङ्ग—काष्ठ (*Wood*) एवं अगर का इत्र या तैल (*Essential Oil*)।

मात्रा—(१) चूर्ण—$\frac{५}{६}$ ग्राम से २ ग्राम या ५ रत्ती से १५ रत्ती। (२) तैल—१ बूंद से ५ बूंद।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में मिलने वाला अगुरुकाष्ठ, काले-भूरे रंग के छोटे-बड़े टुकड़ों के रूप में प्राप्त होता है। जो अगर जल में डूब जाता है, उसे "ग़र्क़ी / जल में डूबने वाला" तथा जो आंशिक जलमग्न होता है उसे "नीम ग़र्क़ी = आधा डूबने वाला" और जो तैरता रहता है, उसको 'समालह' कहते हैं। इनमें अन्तिम सामान्य होता है। ग़र्क़ी काला होता है और अन्य काले और धूसर वर्ण के होते हैं। औषधीय कार्य के लिए ऊदे ग़र्क़ी, जो सिलहट से प्राप्त होता है, सर्वोत्तम होता है। इसे तिक्त, सुगन्धमय, तैलीय तथा किंचित् कषैला होना चाहिए। हलके तथा गहरे दोनों रंगों के टुकड़े लम्बाई के रुख गहरे रंग की नसों से चित्रित होते हैं। इसे चबाने से दाँतों से चिपट जाते तथा मृदु मालूम होते हैं।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—इसमें चन्दन, तगर (तगर के नाम पर बिकने वाली नकली लकड़ियों) अथवा अन्य सस्ते दामों वाली सुगन्धित लकड़ियों का उपयोग मिलावट के लिए करते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पूर्वी बंगाल एवं आसाम के जंगलों से अगर का संग्रह किया जाता है। अगर संग्रह के लिए भी अनुभव एवं दक्षता की आवश्यकता है। वृक्षों का चुनाव कर लेने के बाद उन्हें गिरा दिया जाता है; और तमाम काण्ड को चीर कर अगरगर्भित काष्ठखण्ड को पृथक् कर लिया जाता है। काण्डस्कन्ध से जहाँ शाखाएँ फूटती हैं, उन स्थलों में अगर की उत्पत्ति अधिक देखी जाती है। अगर को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में संग्रहीत करना चाहिए।

संगठन—अगर में एक उड़नशील एवं ईथर में विलेय तैल तथा एक राल होते हैं। राल ऐल्कोहल् में घुलनशील किन्तु ईथर में अविलेय होती है।

वीर्यकालावधि—५ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—वातकफशामक। (इसका लेप) शोथहर तथा वेदनास्थापक, नाड़ी संस्थान पर उत्तेजक एवं बल्य, मुखदुर्गन्ध-नाशन, दीपन-पाचन, अनुलोमन, हृदयोत्तेजक, मूत्राशय-शैथिल्यहर।

यूनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष एवं उत्तमांगों को बल देने वाला, दोषतारल्यजनक, प्रमाथी, आमाशय एवं मूत्राशय दौर्बल्यहर; वाजीकरण।

अहितकर—उष्ण प्रकृति को निवारण कपूर एवं गुलाब-पुष्पार्क। प्रतिनिधि—दालचीनी, लौंग, केसर आदि।

मुख्ययोग—(१) आगुर्वादि तैल, (२) जुवारिश ऊद (शीरीं एवं मुलय्यिन)

विशेष—अगर का उपयोग व्यवसाय में अगरबत्ती तथा धूपबत्ती बनाने में भी किया जाता है।

चरकोक्त (सू० अ० ४) श्वासहर, एवं शीतप्रशमन महाकाषायों में तथा (विमान स्थान अ० ८) तिक्तस्कन्ध के द्रव्यों में और शिरोविरेचन द्रव्यों में एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) एलादिगण, सालसारादिगण एवं श्लेष्म-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संशमन (सू० अ० ३९) वर्ग की औषधियों में अगरु का का भी उल्लेख है।

अगेथू–दे० 'अग्निमन्थ'।

अग्निमन्थ

नाम। सं०–(वृहत्) अग्निमंथ, गणिकारिका, तर्कारी। हिं०–गिनेरी, गनियारी, अगेथू। नेपा०–गिनेरी। गढवाल–वाकर। उड़ि०–गन्धौना। कु०–अग्नो। बं०–गणियारी। ले०–प्रेम्ना लेटीफोलिआ (**Premna Iatifolia** *Roxb.*)।

वानस्पतिक कुल। (वर्बेनासी *Verbenaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष, विशेषतः हिमालय की तराई के प्रदेश, बंगाल, बिहार, उत्तरी सरकार, कर्नाटक एवं पूर्वीय तथा पश्चिमी समुद्रतट के शुष्क जांगल प्रदेश। दशमूल का उपादान होने से इसका मूल बाजारों में पसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त परिचय–'गनियारी' के झाड़दार छोटे वृक्ष या गुल्म होते हैं। पत्तियाँ कुछ-कुछ दुर्गन्धयुक्त, प्रायः लट्वाकार, कभी-कभी अंडाकार, ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ३ इंच से ५ इंच लम्बी, ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (२ इंच से ३ इंच) चौड़ी, अखण्ड और अधस्तल पर अथवा नवीन होने पर दोनों तलों पर मृदुरोमश, मसलने पर दुर्गन्धयुक्त और सूखनेपर काली हो जाती हैं। पुष्प-व्यूह त्रि-विभक्त और व्यास में २ इंच से ५ इंच, रोमश और कोणपुष्पकों से युक्त; बाह्यकोश शीर्षपर दन्तुर, और दाँत संख्या में ५ होते हैं; आभ्यन्तरकोश, द्वि-ओष्ठीय। फल गोल, अग्रपर दबा हुआ और व्यास में ⅛ सें० मी० या ¼ इंच तक होता है। इसका काण्डत्वक् धूसरित या कृष्णाभ वर्ण का होता है।

उपयोगी अंग–मूल (विशेषतः मूलत्वक्) एवं पत्र।

मात्रा–मूलत्वक् लगभग ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–अग्निमन्थ (१) बृहत् एवं (२) क्षुद्र भेद से दो प्रकार का होता है। बृहद् अग्निमंथ से उपर्युक्त वनस्पति तथा स्थानापन्न रूप से इसकी अन्य कतिपय जातियों का, तथा क्षुद्राग्निमंथ (अरणी–सं०; अरनी, टेकार, रैन–हिं०) से क्लेरोडेन्ड्रॉन फ्लोमिडेज (**Clerodendron phlomides** *Linn. f.(Family: Verbenaceae*) का ग्रहण किया जाता है। भावप्रकाश आदि निघण्टुओं में दोनोंका वर्णन एकसाथ ही किया गया है। वृहद् एवं क्षुद्र अग्निमंथ का एक दूसरे के अभाव में ग्रहण किया जा सकता है। वृहदग्निमंथ की उपर्युक्त जाति के अतिरिक्त इसकी कतिपय अन्य जातियों का भी ग्रहण एवं संग्रह इसके नाम से किया जाता है। (१) प्रेम्ना इन्टेग्रिफोलिआ (**P.integrifolia** *Linn.*)–यह प्रायः समुद्र-तटवर्तीय प्रदेशों में पाया जाता है। बंगाल में विशेषतः इसी का संग्रह किया जाता है। इसके स्कन्ध तथा शाखाओं पर काँटे होते हैं। इसकी जड़ लम्बी, बेलनाकार, ठोस तथा बाह्यतः हल्के-भूरे रंग की तथा अन्दर पीताभवर्ण की होती है। तोड़ने पर यह खट से टूटजाती है। इसमें कोई विशेष गंध या स्वाद नहीं पाया जाता (दक्षिण भारत विशेषतः ट्रावन्कोर-कोचीन में) अग्निमंथ के नाम से (२) बृहद् अग्निमंथ की प्रेम्ना सेर्राटीफोलिआ (**P. serratifolia** *L.*) नामक जाति का ग्रहण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं अभाव में प्रेम्ना मूक्रोनाटा (**P.mucronata** *Roxb.*) तथा प्रेम्ना बारबेटा (**p. barbata** *Wall.* एवं प्रेम्ना कोरिएसिआ (**P. coriacea** *Clarke*) नामक जातियों का भी प्रयोग लोग अग्निमंथ नाम से करते हैं। क्षुद्राग्निमंथ, अरणी या टेकार :—टेकार के बड़े गुल्म होते हैं। शाखाएँ प्रायः प्रसरणशील और टहनियाँ श्वेताभ एवं मृदुरोमश होती हैं। पत्तियाँ चौड़ी–लट्वाकार अथवा कुछ-कुछ तिर्यगाकार, अखण्ड या दूर-दूर गोलदन्तुर, प्रायः ५ सें० मी० × ३.७५ सें० मी० या २ इंच × १॥ इंच बड़ी, और सवृन्त होती हैं। पुष्प सफेद तथा अत्यंत सुगन्धित, पत्रकोणीय या अग्र गुच्छों में निकलते हैं। अष्ठिलफल (*drupe*) अभ्यण्डाकार, शीर्षपर दबाहुआ, परन्तु अन्त में शुष्क होकर चार खंडों मे फट जाता है। इसके गुल्म प्रायः गावों के आस-पास बाड़ों-बगीचों एवं खण्डहरों में मिल जाते हैं

संग्रह एवं संरक्षण–जाड़ों में अग्निमंथ की जड़ का संग्रह कर, मिट्टी आदि को साफ करके छाया शुष्क कर लें और मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि–६ मास।

स्वभाव। गुण–रूक्ष, लघु। रस–तिक्त, कटु, कषाय, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–कफवातशामक, वेदनास्थापन, शोथहर, दीपन–पाचन,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुलोमन, कटुपौष्टिक, रक्तशोधक, कफघ्न, प्रमेहघ्न शीतप्रशमन, अनुवासनोपग आदि।

मुख्य-योग—यह 'बृहत् पंचमूल' तथा 'दशमूल' का उपादान है। चरकोक्त (सू० अ० ४) अनुवासनोपग, शोथहर, शीतप्रशमन महाकषायों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) वरुणादि, वीरतर्वादि एवं महत्पंचमूल गणों में अग्निमंथ का भी पाठ है।

अजमोद (अजमोदा)

नाम। सं०—अजमोदा, दीप्यक। हिं०—अजमोद। बं०—राणधोनी, वनजोयान्, रान्धनी। म०—रानधणे (जंगली धनिया), अजमोदा। गु०—अजमोद, बोडी अजमोद। मा०—मजमोदा। सिंध—बनजाण। फा०, अ०—करफ़से हिंदी। ले०—ट्राकीस्पेर्मुम् रॉक्सबुर्घिआनुम् **Trachyspermum roxburghianurn**(*D.C.*) *Sprague.* [*Syn.* कारुम् रॉक्सबुर्घिआनुम् *Carum roxburghianum Benth. & Hook f.*]।

वानस्पतिक कुल। गर्जरादि-कुल (उम्बेल्लीफेरी *Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष में जगह-जगह विशेषतः दक्षिण भारत तथा बंगाल में इसकी खेती की जाती है।

संक्षिप्त परिचय—अजमोदा के एक वर्षायु छोटे पौधे होते हैं, जो ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट ३ फुट तक ऊँचे होते हैं, तथा देखने में अजवाइन के पौधों के ही समान मालूम पड़ते हैं। इनकी शाखाओं पर बड़े-बड़े छत्ते लगते हैं। उनपर श्वेतरंग के पुष्प आते हैं और जब वे छत्ते पक और फूट जाते हैं तब उनमें से जो दाने उत्पन्न होते हैं, उनको अजमोद कहते हैं।

उपयोगी अंग—सुखाये हुए पक्व फल (व्यवहार में इनको बीज कहते)।

मात्रा—लगभग १ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—अजमोद का फल लगभग $\frac{५}{३२}$ सें० मी० या $\frac{१}{८}$ इंच लम्बा, रूपरेखा में गोल, अजवायन के बीज से बड़े तथा धूसर वर्ण के होते हैं। इनके ऊपर छोटे-छोटे दाग भी होते हैं। छत्रक-कुल के अन्य फलों की भाँति, यह भी दो एकस्फोटीखण्डों (*mericarps*) के परस्पर जुटने से बनते हैं। प्रत्येक फलखण्ड में ५ उन्नत रेखाएँ (*ridges*) तथा लगभग १५ तैलनलिकाएँ या तैलिकाएँ (*vittae*) होती हैं। उक्त उन्नतरेखाएँ रेखान्तरित अवकाश की अपेक्षा कुछ फीके वर्ण की होती हैं। अजमोद के बीजों (फलों) को मुख में चाबने से धनिये—जैसे स्वाद (*coriander-like flavour*) की अनुभूति होती है। बीजों को मसल कर सूँघने से एक विशिष्ट प्रकार (सौंफ के समान) की बहुत हल्की सुगन्धि मालूम पड़ती है।

मिलावट एवं प्रतिनिधि द्रव्य—कोंकण में अजमोद की एक जंगली जाति (कारुम् स्ट्रिक्टोकार्पुम् **Carum stricto-carpum**) प्रचुरता से होती है। इसके लिए भी मराठी नाम 'रानधणे' प्रयुक्त होता है, जो वस्तुतः उपर्युक्त अजमोद का है। इसके फल (बीज) अजमोद के फलों की अपेक्षा काफी छोटे (लगभग आधे) होते हैं।

कोई-कोई 'अजमोद' और 'करफ्स' को एक ही द्रव्य मानते हैं। इसका कारण यह है कि करफ्स भी बाजार में करफ्स या 'बोड़ी अजमूद' के नाम से मिलता है। किन्तु करफ्स बिल्कुल पृथक् द्रव्य है, और इसका आयात भारतीय बाजारों में प्रधानतः फारस से होता है। करफ्स छत्र-कुल के ही एक पृथक् पौधे (आपिउम् ग्रावेओलेन्स **Apium graveolens** *Linn.*) के पक्व फल होते हैं, जो उपर्युक्त अजमोद के दानों से बहुत छोटे होते हैं, और रंग में भी इन दोनों में स्पष्ट अन्तर होता है। अधिक-से-अधिक भारतीय अजमोद को 'करफ्से हिंदी' कहा जा सकता है। इसका पृथक् वर्णन किया जायगा।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों (बीजों) को छायाशुष्क करके अच्छी तरह डाटबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—अजमोद के बीजों में एक उड़नशील तेल (*volatile oil*) पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस-कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म-रोचन, दीपन, शूल-प्रशमन, वात-कफनाशक, हिचकी, आध्मान, कृमि, अरुचि और उदर-रोगनाशक। चरकोक्त (सू० अ० ४) दीपनीय एवं शूलप्रशमन महाकषायों तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) पिप्पल्यादि गण के द्रव्यों में अजमोदा भी है।

मुख्य योग—अजमोदादि चूर्ण, अजमोदादि वटक।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष–अजवाइन की भाँति ही अजमोद का उपयोग किया जाता है।

अजवायन (यवानी)

नाम। सं०–यमानिका, उग्रगंधा, यवानी, भूतीक। हिं०–अजवायन, जवाइन। बं०–अजोवान, जोयान्। पं०–जवैण। म०–ओंवा। गु०–अजमा। अ०–अमनुल् मुलूकी, कम्मून–एल् मुलूकी। फा०–नानखाह। अं०–किंग्स क्युमिन (*King's Cumin*), बिशप्सवीड (*Bishop's Weed*)। ले०–ट्राकीस्पेर्मुम् आम्मी **Trachyspermum ammi** (*L.*) *Sprague ex Turrill.* (पर्याय–*Carum Copticum Benth.*)।

वानस्पतिक कुल। गर्जर-कुल (उम्बेल्लीफ़ेरी *Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष (विशेषतः पंजाब, बंगाल, मालवा) तथा अफगानिस्तान, ईरान और मिस्र में इसकी खेती की जाती है।

संक्षिप्त परिचय–अजवायन के क्षुप ३० सें०मी० से १.२० मीटर या १ फुट से ४ फिटतक ऊँचा, प्रायः मसृण अथवा किंचित् रोमश होते हैं। पत्र शतपुष्पा के पत्तों के समान २–३ पक्षाकारी होते हैं। इसकी डालियों पर छत्रक (*umbels*) से आते हैं, जिन पर सफेद फूल लगते हैं। जब छत्ते पक जाते हैं तब उनमें अजवाइन उत्पन्न होती है। इनको पीटने (*threshing*) से छोटे-छोटे दाने से निकलते हैं। इन्हीं को 'अजवाइन' कहते हैं। भारतीय कृषक प्रायः धनिये के साथ इसे खेतों में बोते हैं। बोने का समय अक्टूबर से नवम्बर (कार्तिक-अगहन) और काटने का समय फर्वरी है।

उपयोगी अङ्ग–बीज (फल), पत्र, तैल, अर्क।

मात्रा। फलचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। तैल–१५ से ३० बूँद। अर्क–२३.३ ग्राम से ४६.६ ग्राम या २ तो० से ४ तो०। सत-अजवाइन $\frac{1}{12}$ ग्राम से $\frac{1}{6}$ ग्राम या $\frac{1}{2}$ रत्ती से २ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–अजवायन (फल) रूपरेखा में अजमोदा के समान तथा धूसर वर्ण (*greyishg-browu*), बाह्यतल खुरदरा एवं सूक्ष्म उभारदार होता है। गर्जर-कुल के अन्य फलों की भाँति यह भी दो एकस्फोटी खण्डों (*mericarps*) के परस्पर जुटने से बना होता है। प्रत्येक खण्ड पर ५ उन्नत रेखाएँ (*prominent ridges*) होती हैं। इनकी मध्यस्थ नालियाँ गाढ़े भूरेरंग की होती हैं, और प्रत्येक परिखा में एक तेलनलिका या तैलिका (*vitta*) होती है। संधि स्थान (*commissural sides*) पर दो तेलनलिकाएँ (*vittae*) होती हैं। अजवाइन में जंगली पुदीने (हाशा) की भाँति तीव्र सुगंधि पायी जाती है। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य–अधिकतम २०%।

संग्रह एवं संरक्षण–पक्व फलों (बीजों) को लेकर अनार्द्र शीतल स्थान में अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में रखना चाहिए। सत-अजवायन को अच्छी तरह मुखबंद शीशियों में शीतल एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए। यह अत्यंत उड़नशील होता है।

संगठन–फलों में एक उड़नशील तेल (४% से ६%) होता है। इसमें आसुत अर्क के ऊपरी धरातल पर एक प्रकार का, स्फटिकीय द्रव्य (*stearoptin*) इकट्ठा होता है, जिसे अजवायन का फूल या सत (थाइमोल *Thymol*) कहते हैं। इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में 'क्युमिन', 'टर्पीन' तथा 'थाइमीन' भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–अच्छी तरह सुरक्षित रखने से इसमें ४ वर्ष तक वीर्य रहता है।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–दीपन-पाचन, वातानुलोमन, शूलप्रशमन, जीवाणुनाशक, गर्भाशयोत्तेजक, उदर-कृमिनाशक (अंकुशमुखकृमि पर विशिष्ट घातक क्रिया)। अफीम सेवन जन्य विकृतियों का शमन करती है। अहितकर–शिरःशूलकारक, शुक्र एवं स्तन्यापनयन। निवारण–धनिया, एवं उन्नाव। प्रतिनिधि–कलौंजी एवं कालाजीरा। चरकोक्त (सू० अ० ४) शीतप्रशमन महाकषाय में यवानी (भूतीक नाम से) का भी उल्लेख है।

मुख्ययोग–यमानीषाडव, यमान्यादिचूर्ण, यमानीसत्व (सत-अजवाइन), यवान्यर्क, यवानिकादिक्वाथ, माजून नानखाह, माजून नानखाह हकीम अलीजीलानी।

विशेष–यूनानी मतानुसार यह तृतीयकक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। अजवायन का सत यद्यपि हिंदुस्तान में भी बनाया जाता है, तथापि यह अधिकतया विदेशों से ही आता है। युनानी हकीम बहुत काल से इसका योगनिर्माण कर उपयोग करते हैं और इसे अत्यंत गुणदायक और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आशु-प्रभावकर पाते हैं। इसके अन्दर अजवाइन के समस्त गुण अधिक वीर्य के साथ पाये जाते हैं। अंग्रेजी दवाखानों में मिलने वाला 'थाइमोल *Thymol*' यमानी सत्व ही होता है। किन्तु आजकल यह जंगली पुदीना (हाशा) तथा अन्य द्रव्यों से भी प्राप्त किया जाता है, और रासायनिक संश्लेषण पद्धति द्वारा कृत्रिम रूपसे भी बनाया गया है।

अजवायन खुरासानी

नाम। सं०—पारसीकयमानी। हिं०—खुरासानी अजवायन। अ०—बंज सीकरान, खदाउर्रज़ाल। फा०—बंग, बंक, बंग दीवाना। अं०—हेनबेन (*Henbone*)। ले०—हिओस्सिआमुस् रेटीकुलाटुस् (**Hyoscyamus reticulatus** *Linn.*)। बीज। अ०—बज़्रुलबंज। फा०—तुख्मबंग। अं०—हेन-बेन सीड्स (*Henbane Seeds*)।

वानस्पतिक कुल। कण्टकारी-कुल (सोलानासी *Solanaceae*)।

प्राप्तिस्थान—बलूचिस्तान, खुरासान, एशियामाइनर एवं मिस्र आदि।

संक्षिप्त परिचय—'बज़्रुल् बङ्ग' या 'तुख्मबङ्ग,' जो खुरासान से भारतवर्ष में अधिक आता है, भारतीय चिकित्सकों ने अजवायन के समान समझ कर उसका नाम 'खुरासानी' या 'पारसीकयमानी' रखदिया, जो अब उर्दू में एवं तिब्ब में अजवायन खुरासानी के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु इस बात को भलीभाँति स्मरण रखना चाहिए कि, गुण-कर्म एवं वानस्पतिक दृष्टि से दोनों ही औषधियाँ सर्वथा भिन्न हैं। अतएव खुरासानी अजवायन को यमानी या अजवाइन का भेद नहीं समझना चाहिए। खुरासानी अजवाइन एक विषैली औषधि है। इसका क्षुप अजवाइन के क्षुप से ऊँचाई में कुछ बड़ा, कांड मोटा और राईदार, पत्र गुलदाउदी या बिल्लीलोटन के समान बहुत मोटे, चौड़े एवं लम्बोतरे से होते हैं। पत्रतट कटे हुए कंगूरेदार, रंग में कालापन लिये हरे और रोईदार। पुष्प सफेद अनार की कलियों के समान, परंतु पंखड़ियों के कंगूरे, मध्य एवं मूल भाग ललाई लिये होते हैं। औषधि में प्रायः इनके बीजों व्यवहार होता है। भारतवर्ष में इसका आयात प्रधानतः फारस से होता है।

उपयुक्त अंग—बीज, पंचांग।

मात्रा—½ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में मिलने वाले बीज प्रायः रूपरेखा में वृक्काकार (*reniform*) एवं चपटे (*compressed laterally*) तथा खाकस्तरी भूरेरंग के (*greyish-brown*) होते हैं। बीजों का बाहरी छिलका या बीजकवच (टेस्टा *testa*) सूक्ष्म रेखांकित (*finely reticulated*) होता है। अन्दर का मग्ज स्नेहमय (*albumen oily*) होता है। बीजगर्भ (*embryo*) अंग्रेजी संख्या नव (*9*) के आकार का होता है, जिसका नीचे का पुच्छाकार भाग आदिमूल या मूलांकुर (*radicle*) से बनता है। बीजों का स्वाद तिक्त, कटु एवं तैलीय (*oily*) होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—कभी-कभी व्यवसायी लोग खुरासानी अजवायन में 'हुलहुर' के बीजों का मिलावट कर देते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—बीजों को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए। विषैला होने से इसको पृथक् स्थान में रखना चाहिए अथवा इस पर विषैला द्योतक निर्देशपत्रक (लेबिल) लगा देना चाहिए।

संगठन—इसमें हायोसायमीन (*hyoscyamine*) नामक विषैला ऐल्केलॉइड पाया जाता है, जिसकी रासायनिक रचना ऐट्रोपीन से मिलती-जुलती है। इसके सूच्याकार या त्रिपार्श्विक क्रिस्टल्स होते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण-गुरु, रूक्ष। रस-तिक्त, कटु कषाय। विपाक-कटु। वीर्य-उष्ण। प्रभाव-मादक। यूनानी मतानुसार तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है। प्रधानकर्म-अवसादक, स्वापजनन, निद्रल, रक्तस्तम्भन एवं दोष विलोमकर्ता, अग्निदीपन एवं ग्राही। अहितकर-मस्तिष्क को। निवारण-शुद्ध मधु। प्रतिनिधि-अफीम एवं पोस्ते का दाना।

मुख्य योग—खुरासानी अजवायन के बीज कतिपय यूनानी योगों में पड़ते हैं।

विशेष—पुष्प के रंगभेद से खुरासानी अजवायन के कई भेद होते हैं। इसकी एक निकटतम प्रजाति हिओस्सिआमुस् मूटिकुस् (**Hyoscyamus muticus** *Linn.*) है जिसे 'कोही भांग' कहते हैं, पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वजीरिस्तान में यह प्रचुरता से पायीजाती है। काली खुरासानीअजवायन (हिओस्सिआमुस नीगेर **Hyoscyamus niger** *Linn.)* भी हिमालय प्रदेश में काश्मीर से गढ़वाल तक १५२४ मी० से ३३५२·८ मीटर या ५,००० से ११,००० फुट तक प्रचुरता से पायी जाती है। इसका ग्रहण ब्रिटिश फॉर्माकोपिआ में भी किया गया था।

अडूसा (वासक)

नाम। सं०—वासा, वासक, वृष, अटरूषक। हिं०—बाँसा, रूस, अरूसा, अडूसा, बसौंटा, वाकस (बिहार)। पं०—बाँसा, बहेंकड़, बौंकड़। म०—अडुलसा। गु०—अरडुसो (सी)। अ०— हशीशतुस्सुआल। फा०—बाँसः, ख्वाजा। अं०—एढाटोडा *(Adhatoda)*। ले०—आढाटोडा वासिका **Adhatoda vasica** *Nees.)*।

वानस्पतिक कुल। वासकादि-कुल (आकान्थासी *Acanthaceae)*।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में १,२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक इसके स्वयंजात पौधे बहुधा कड़ी, कंकरीली-पथरीली भूमि में समूहबद्ध उगते हैं।

संक्षिप्त परिचय—अडूसा के सदाहरित क्षुप या गुल्म होते हैं, जिनमें एक दुर्गन्धि *(fetid smell)* होती है। पत्तियाँ १० सें०मी०से २० से०मी० या ४ इंच से ८ इंच लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ७.५ से० मी० या १.४ से ३ इंच चौड़ी, भालाकार, या अंडाकार, अग्र नुकीला, आधार की ओर चौड़ाई क्रमशः कम होती जाती है। पर्णवृन्त १·५ से ३·७५ सें० मी० या १ से १॥ इंच लम्बा होता है। मंजरियाँ ५ से १० सें० मी० या २ से ४ इंच लम्बी, सघन तथा विदण्डिक पुष्पों को धारण करती हैं। पुष्प सफेद रंग के, पुष्पबाह्य कोश *(calyx)* ८.३ मि० मी० से १२.५ मि० मी० या ⅓ से ½ इंच लम्बा ५ समान खंडों में विभक्त, खण्ड *(lobes)* प्रायः समान तथा भालाकार *(lanceolate)* होते हैं। अभ्यंतरकोश *(coolla)* सफेद रंग का द्वि-ओष्ठीय (*bi-labiate*)सा होता है, जिससे सिंह-मुखाकृति मालूम होती है। अधरोष्ठ पर बैंगनी रंग की दो तिरछी धारियाँ तथा आभ्यन्तर कोष के भीतरी भाग पर रक्ताभायुक्त लोहित वर्ण के धब्बे पड़े होते हैं। पुंकेशर दो। फल *(capsule)* १७.५ मि० मी० या ⅔ इंच लम्बा मुद्गराकार *(clavate)*, अनुलम्ब दिशा में परिखा-युक्त *(chanelled)* जिसमें ४ बीज होते हैं। बीज ५ मि० मी० या ⅕ इंच लम्बे, चिकने एवं उभारयुक्त *(tubercled)* होते हैं। पुष्पागम शरदृतु में होता है। कहीं-कहीं उपयुक्त भूमि एवं जलवायु में वासा के वृक्षस्वभाव के बड़े गुल्म हो जाते हैं।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, मूलत्वक्, पंचांङ्ग।

मात्रा। पत्रस्वरस—५.८ मि० लि० से १७.५ मि० लि० या ६ माशा से १॥ तोला।

पुष्प—६२५ मि० ग्रा० से १.२५ ग्राम ५ से १० रत्ती।

मूलत्वक्चूर्ण—२५० मि० ग्रा० से ६२५ मि० ग्रा० या २ से ५ रत्ती।

मूलक्वाथ—२९.१५ मि० लि० से ५८·३० मि० लि० या २॥ से ५ तो०।

संग्रह एवं संरक्षण—वासा के सदाहरित पौधे सर्वत्र सुलभ हैं, अतएव पत्रों का संग्रह ताजी अवस्था में कर व्यवहार किया जासकता है। संग्रह करना हो तो पत्र पुष्पादिक को छाया-शुष्क करके अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखें।

संगठन—पत्र एवं मूलत्वक् (जड़ की छाल) में वासीन (वासकीन) या वासीसीन (*Vasicine* : $C_{11}H_{12}N_2O$) नामक क्रिस्टलीय ऐल्केलॉइड (*crystalline alkaloid*) पाया जाता है, जो अत्यंत तिक्त (*bitter*) होता है। इसका रासायनिक स्वरूप बहुत कुछ हरमल में पाये जाने वाले क्षारोद या ऐल्केलाइड 'पेगेनीन' से मिलता-जुलता है। इसके अतिरिक्त पत्र में एढाटोडिक एसिड (*Adhatodic acid*), एक उत्पत् तैल, वसा, रेजिन (राल), लबाबी तत्त्व, शर्करांश एवं पीतरंजक तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—६ मास।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रधानकर्म—कफनिस्सारक, श्वास-कास एवं रक्तपित्तनाशक एवं क्षयनाशक। अहितकर—शीत प्रकृति को। निवारण—कालीमिर्च एवं मधु।

मुख्य योग—वासावलेह, वासारिष्ट, वासापानक, वासादि-वाटिका, वासाचन्दनादि तैल, वासक क्षार (पंचांङ्गका) तथा फूलों का गुलकन्द।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतीस (अतिविषा)

नाम । सं०—अतिविषा, शुक्लकन्दा, भंगुरा, घुणवल्लभा, शिशुभैषज्या । हिं०—अतीस । म०, गु०—अतिविष । पं०—पतीस, बतीस । बं०—आतईच । क०—पतीस, पत्रीस । ता०—अतिबिदयम् । ले०—आकोनीटुम् हेटेरोफ़ील्लुम् (**Accnitum heterophyllum** *Wall.*) ।

वानस्पतिक-कुल । वत्सनाभ-कुल (रानन्कुलासी *Ranunculaceae*) ।

प्राप्तिस्थान—हिमालय के सिन्धु नदी से कुमाऊँ तक के १.८२ किलोमीटर से ४.५७ किलोमीटर या ६,००० से १५,००० फुट की ऊँचाई के प्रदेश । अतीस की कन्दाकार जड़ पंसारियों के यहाँ मिलती है ।

संक्षिप्त परिचय—इसके ३० सें० मी० से १२० सें० मी० (१ से ४ फुट) ऊँचे क्षुप होते हैं । शाखाएँ चिपटी होती हैं । प्रत्येक पौधे में प्रायः एक ही काण्ड होता है, जिस पर अनेक पत्तियाँ निकली (*leafy*) होती हैं । काण्ड के अधः भाग की पत्तियाँ सनाल या पर्णवृन्तयुक्त (*stalked*) और रूपरेखा में तश्तरीनुमा गोलाकार या मण्डलाकार (*orbicular*) या चौड़ी-लट्वाकार (*broadly ovate*) अथवा हृदयाकार (*cordate*) तथा पांच खण्डों में विभक्त-सी (*5-lobed*) होती हैं, जिनके किनारे कुण्ठिताग्र-दन्तिल या तीक्ष्णाग्र-दंतिल (*teeth obtuse or acute*) होते हैं । ऊपर की पत्तियाँ विनाल (*sessile*) तथा काण्ड-संसक्त (*stem-clasping*) होती हैं । इनके किनारे तीक्ष्णाग्र-दन्तुर या दंतिल (*sharply-toothed*) होते हैं । पुष्प २.५ सें० मी० से ३.७४ सें० मी० या १ से १॥ इंच लम्बे, हरिताभ-नीले रंग के और देखने हैं फणाकार टोपी (*helmet*) की तरह होते हैं । इनपर बैंगनीरंग की धारियाँ (*purple veins*) होती हैं । मूल द्विवर्षायु होता है, जिनमें दो कन्द होते हैं, एक पिछले वर्ष का और दूसरा नये साल का । औषधि में इन्हीं कन्दाकार जड़ों का व्यवहार 'अतीस' के नाम से होता है ।

उपयोगी अंग—अतीस की जड़ में दो कन्द होते हैं, जिनमें एक पुराने साल का और दूसरा नये साल का पुराने साल का कन्द (*the mother roots*) नये साल की अपेक्षा बड़ा तथा धूसर (*grey*) वर्ण का; तथा नयाकन्द (*The young daughter-tuber*) अपेक्षाकृत छोटा तथा श्वेतवर्ण का होता है । औषधीय दृष्टि से यही श्रेष्ठतर एवं ग्राह्य है ।

मात्रा—$\frac{५}{६}$ ग्राम से ३$\frac{३}{४}$ ग्राम या ५ से ३० रत्ती (३।।माशा) तक ।

बल्यरूप से—$\frac{५}{६}$ ग्राम से २ ग्राम या ५ से १५ रत्ती ।

ज्वरघ्न—२.५ ग्राम से ६ ग्राम या २॥ माशा से ६ माशा तक ।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—औषधीय दृष्टि से नया एवं छोटा कन्द (*the young daughter-roots*) उत्तम होता है, जिसपर इतस्ततः टूटी हुई सूत्राकार जड़ों के चिह्न (*scars*) पाये जाते हैं । यह प्रायः १.८७५ सें० मी० से ५ सें० मी० या $\frac{३}{४}$ इंच से २ इंच तक लम्बे, रूपरेखा में अभिशंक्वाकार (*obconical*) अथवा अण्डाभ (*ovoid*) होते हैं, जो अग्र की ओर कभी-कभी द्विधा-विभक्त-से होते हैं । शीर्ष पर शल्कपत्रमय कलिका (*scaly leaf-bud*) के अवशेष भी होते हैं । तोड़ने पर यह खटसे टूटता है, और अन्दर पिष्टमय पदार्थ निकलता है (*Fracture short and starchy*) । टूटे हुए तल पर परिधि के पास अनेक बिन्दु-से दिखाई देते हैं, जो वाहिनीपूलों या बंडलों (वैस्क्युलर बंडल *vascular-bundles*) के चिह्न होते हैं । अतीस स्वाद में अत्यंत तिक्त होती है, तथा इसमें कोई विशेष गंध नहीं पायी जाती ।

मिलावट—दक्षिण भारत में कहीं-कहीं क्रिप्टोकोरीने स्पीरालिस (**Cryptocoryne spiralis** *Fisch.*: *Family*: *Araceae*) के कन्दाकार भौमिककाण्ड (*Rhizome* अतीस के नाम से बेचे जाते हैं । इसको तेलगू भाषा में नत्ती-अतिवस (*Natti-ativasa*) तथा तामिल में नत्तातिविदयम् (*Nattativadayam*) कहते हैं ।

संग्रह एवं संरक्षण—शरद् के अन्त में जब फल पक जाते हैं, मूलों को खोद कर छोटे कन्दों को संग्रहीत कर अनार्द्र शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में रखना चाहिए । इसमें कीड़े लगने की सम्भावना अधिक रहती है ।

संगठन—वत्सनाभ जाति की होने पर भी अतीस विषैली नहीं होती । इसमें अतिसीन (*Atisine* नामक एमॉरफस (*amorphous*) ऐल्केलॉइड पाया जाता है, जो स्वाद में अत्यन्त तिक्त होता है । इसके अतिरिक्त वत्सनाभाम्ल (एकोनीटिक एसिड *Aconitic acid*),

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टेनिक एसिड, पेक्टस तत्त्व (*Pectcus substance*), स्टार्च, वसा, इक्षुशर्करा तथा भस्म के मिश्रण २ प्रतिशत तक पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–दीपन-पाचन, ग्राही, ज्वरातिसार-नाशक, कृमिघ्न, छर्दि, कन्स-नासक एवं अर्शोघ्न। बालकों के ज्वरातिसार, छर्दि, कास आदि रोगों में विशेष रूप से उपयोगी है। यूनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है।

मुख्य योग – अतिविषादि चूर्ण, बालचतुर्भद्रा। चरकोक्त (सू० अ० ४) लेखनीय एवं अर्शोघ्न गण की औषधियों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) पिप्पल्यादि, मुस्तादि और वचादि गण की औषधियों में अतिविषा भी है।

विशेष – आयुर्वेदीय निघण्टुओं में रंगभेद से अतीस के तीन-चार प्रकार बताये गये हैं—यथा, श्वेत, पीत, रक्त एवं कृष्ण आदि। सम्प्रति व्यवहार में प्रायः श्वेत अतीस ही उपलब्ध होती है। अनेक कार्यों के लिए अतीस, अंग्रेजी फार्माकोपिआ में उल्लिखित अनेक औषधियों के उत्तम प्रतिनिधि के रूप में व्यहृत की जासकती है यथा :—

ज्वरप्रतिषेधक रूप से–सिंकोना, क्विनीन आदि।

ज्वरघ्न या संतापहर–लाइकर अमोनियाई एसिटास, वाइनम् एन्टीमोनिएलिस।

तिक्तबल्य रूप से–जेंशन एवं कलम्बा आदि।

अनन्तमूल, दे० 'सारिवा'।

अनन्नास (अनानास)

नाम। हिं०–अनन्नास, अनानास, कटहल सफरी। बं०–अनानाश, अनारस। म०–अन्नास्। गु०–अन्नास। मल०–पर्रेंगिचक्क (यूरूपीय फणस)। अं०–पाइन एपल (*Pine-Apple*)। यू०, फ्रां०, पुर्त०, अम०–एनानास। ले०-आनानास कोमोसुस(**Ananas comosus** *Linn.*) *Merril.* (पर्याय–*A. sativus Schult. f.*)। अन्नानास की विभिन्न प्रान्तीय संज्ञाएँ इसको अमेरिकन 'अनासो' तथा 'नानस' संज्ञा से व्युत्पन्न हुई हैं।

वानस्पतिक-कुल। अनन्नास-कुल (ब्रोमेलिआसी *Brome liaceae*)।

प्राप्तिस्थान – अनन्नास ब्रेजिल (दक्षिण अमरीका) का आदिवासी पौधा है। इस समय समस्त भारतवर्ष में (विशेषतः बंगाल, आसाम तथा पश्चिमी समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में) इसकी प्रचुर मात्रा में खेती की जाती है। इसके पक्व फल मौसम में मेवाफरोशों के यहाँ बिकते हैं। पश्चिमी समुद्रतटवर्तीय अनानास सर्वोत्कृष्ट होता है।

संक्षिप्त परिचय –अनन्नास के द्विवर्षायु, ६० सें० मी० या २ फुट तक ऊँचे शाकीय पौधे (*erect herb* होते) हैं, जो आपाततः देखने में 'रामबास' या घृतकुमारी के पौधों-जैसे लगते हैं। पौधे के मध्य भाग से छोटा प्रकाण्ड निकलता है, जिसके मूल में चारों ओर पत्र-पुञ्ज(*rosette of leaves*) होता है। पत्तियाँ ३० सें०मी० से ६० सें०मी० या १ से २ फुट लम्बी, पतली किन्तु मजबूत रेशेदार रचनावाली होती हैं, और इनके किनारों पर छोटे तीक्ष्णाग्र कंटक होते हैं। उक्त प्रकाण्ड पर शंक्वाकार रूपरेखा का अवृत्तकाण्डज पुष्पव्यूह (शूकी) होता है, जिसमें शल्कपत्र प्रचुरता से होते (*scaly conical spike*) हैं। उक्त पुष्पव्यूह ही क्रमशः वृद्धि को प्राप्तकर मांसल फल के रूप में परिणत हो जाता है, जो पकने पर नारंगी के समान पीतवर्ण का हो जाता है। फलों पर अनेक छोटे छोटे कण्टकमय पत्र होते हैं, जिनको छत्र (*crown*) कहते हैं। अनानास के फल औसतन १॥से२ सेर वजनके होते हैं। उक्त कण्टकमय पत्र फलों पर तिरछी पंक्तियों में स्थित होते हैं। अतएव फलों को छीला भी प्रायः तिरछे रूप से ही जाता है। अन्दर-अन्दर पीले या लालिमा लिये पीले रंग का स्वादिष्ठ खटमिट्ठा गूदा निकलता है।

उपयोगी अंग – पक्व एवं अपक्व फल तथा पत्र।

मात्रा। फलस्वरस–२३.३२ ग्रा० से ५८.३१ ग्राम या २ से ५ तोला।

पत्रस्वरस–११.६६ ग्राम से २३.३२ ग्राम या १ तोला से २ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण – पक्व फलों को लेकर उसके गूदे का शर्बत या मुरब्बा बना कर रखा जाता है। ठंढी जगह में रखने से फल भी महीनों तक ज्यों-का-त्यों बना रहता है।

संगठन – इसमें ब्रोमेलिन (*Bromelin*) नामक तत्त्व पाया जाता है। ताजे फल के रस में शर्करा (८%-५%), ०.३%-०.९%) अम्ल, विटामिन '*A*' तथा '*C*' और एक मांसतत्त्व को पचाने वाला किण्व (*proteid-digesting ferment*) तथा दूध को जमानेवाला किण्व (*milk-*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

curdling ferment) पाया जाता है। भस्म में फास्फोरिक एसिड, चूना, मैगनीसियम्, लौह तथा सोडियम्, पोटैसियम् के लवण पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। (फल)–३ मास तक।
मुरब्बा एवं शर्बत के रूप में–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–(पके फल में) मधुर तथा (कच्चे फल में) अम्ल। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–वात-पित्तशामक, रोचन, दीपन, अनुलोमन, रेचन, हृद्य, रक्तपित्तशामक, अश्मरीभेदन, मूत्रल, बल्य, ज्वरघ्न। कच्चे फल का स्वरस तीव्र गर्भाशयोत्तेजक, आर्त्तवजनन तथा अधिक मात्रा में गर्भपातक। पत्रस्वरस–तीव्र रेचन एवं कृमिघ्न। यूनानी मतानुसार अनानास दूसरे दर्जे में शीत एवं तर होता है। अहितकर-कंठ को। निवारण–नमक, नीबू का रस, शर्करा, आर्द्रक स्वरस।

मुख्य योग–शर्बत अनन्नास, अनन्नास का मुरब्बा, अर्क अनन्नास।

विशेष–मात्रातियोग से यह गर्भपातक प्रभाव करता है। अतएव गर्भवती स्त्रियों में इसका प्रयोग सतर्कता पूर्वक करना चाहिए।

अनार (दाडिम)

नाम। सं०–दाड़िम, लोहितपुष्पक, दन्तबीज। हिं०–अनार। बं०–दाड़िम। म०–डालिंब। गु०–दाड़म। अ०–रुम्मान। फा०–अनार, नार। अं०–पॉमेग्रेनेट (*Pomegranate*)। ले०–पूनिका ग्रानाटुम् (**Punica granatum** *Linn.*)। मीठा (मधुर) अनार। अ०–रुम्मान हुलुब्ब। फा०–अनार शीरी। बड़े दाने का गुठली रहित (बेदाना) काबुली-अनार सर्वोत्तम होता है। इसका रस मीठा होता है। खटमिट्ठा (मधुराम्ल) अनार–रुम्मान मुज्ज। फा०–अनार मैखोश। अनार चाशनीदार। इसका रस खटमिट्ठा होता है। खट्टा (अम्ल) अनार–अ०–रुम्मान हामिज। फा०–अनारतुर्श। इसका रस खट्टा होता है। अनार का छिलका। हिं०–न(ना)सपाल। अ०–कश्रुर्रुम्मान। फा०–पोस्त अनार। (जड़)। फा०–पोस्तवेख् अनार। सं०–दाड़िम-मूलत्वक्। हिं०–अनार के जड़की छाल। अनार दाना। हिं०–अनारदाना। फा०–तुख्म अनार। अनार का फूल–हिं०–अनार का फूल। फा०–गुल अनार। अ०–वर्दुर्रुम्मान। यह गुलनार से भिन्न है। गुलनार–फा०–गुलनार, अनारगली। जुलनार इसकाअरबी रूपान्तर है।

वानस्पतिक कुल–दाड़िम-कुल (पूनिकासी *Punicaceae*)।

प्राप्तिस्थान–पश्चिम हिमालय और सुलेमान की पहाड़ियों पर तथा ईरान एवं अफगानिस्तान में यह स्वयंजात होता है। सर्वत्र भारतवर्ष में अनार लगाया भी जाता है। काबुल, कन्धार के अनार सर्वोत्तम होते हैं।

संक्षिप्त परिचय–अनार के पर्णपाती बड़े गुल्म (*sbrub*) या छोटे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ अभिमुख या विपरीत (*opposite*) या लगभग-अभिमुख (*sub-opposite*) या समूहबद्ध, (*clustered*) २.५ सें० मी० से ६.५ सें० मी० या १ से २½ इंच लम्बी, आयताकार या दीर्घवत् (*oblong*), अभिलट्वाकार या अभिप्रासवत् या प्रतिभालाकार (*oblanceolate*), कुण्ठिताग्र (*obtuse*) तथा चिकनी होती हैं। आधार की ओर चौड़ाई क्रमशः कम होती जाती है, और अन्ततः छोटे पर्णवृन्त (*petiole*) में अन्त होता है। पत्रतट अखण्डित होते हैं। पुष्प अवृन्त या वृन्तरहित (*sessile*) अग्र्य (*terminal*) तथा एकल (*solitary*) अथवा तीन पुष्प वाले व्यूह (*3-flowered cyme*) में निकलते हैं। पुष्पबाह्यकोष या बाह्यदलपुंज (*calyx*) हरिताभ-रक्तवर्ण, नलिकाकार तथा मांसल एवं ५-७ खण्डयुक्त, दलपत्र (*petals*) संख्या में बाह्यकोषखण्डों के बराबर १.२५ सें०मी० से २.५ सें०मी० या ½ से १ इंच लम्बे चिगुरे हुए (*wrinkled*) तथा चमकीले लालरंग के होते हैं। फल गोलाकार (जंगली वृक्षों के व्यास में ३.७५ सें०मी० या १॥ इंच किन्तु लगाये हुए वृक्षों के ७.५ सें० मी० या ३ इंच तक) होते हैं, जिनके आधार पर पुटपत्रों के अवशेष लगे होते हैं, जिससे चूड़ावत् रचना मालूम होती है। फलाभ्यन्तर झिल्लीदार पर्दों द्वारा अनेक कोष्ठों में विभक्त होते हैं, जिनमें गुलाबी या लाल वर्ण युक्त दन्ताकार अनेक बीज ठसाठस भरे होते हैं। माघ तथा फागुन में इसके नये पत्ते लगते हैं। इसके फूल हर मौसम में लगते हैं, किन्तु चैत, वैशाख में बहुत लगते हैं। आषाढ़ से भादों तक फल पकते हैं।

उपयोगी अंग–फल, फलत्वक् या नसपाल (*rind*), पुष्पकलिका, पत्र एवं बीज (अनारदाना)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्रा। फलरस–२ तोला से ५ तोला।

फलत्वक्चूर्ण (अनार का छिलका)–२ ग्राम से ५ ग्राम या २ माशा से ५ माशा।

मूलकत्वक्चूर्ण (जड़ की छाल का चूर्ण)–३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

अनार की कली–३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा। अनारदाना–६ ग्राम ९ ग्राम या ६ से ९ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–अनार के फल का छिलका (फलत्वक्)–छोटे-बड़े न्यूनाधिक नतोदर टुकड़ों के रूप में मिलता है। कुछ टुकड़ों में दंष्ट्राकार, नलिकामय पुष्पबाह्यकोष *(toothed tubular calyx)* लगे होते हैं, अन्दर जिनके पुंकेसर एवं स्त्रीकेशर *(stamens and styles)* के अवशेष भी होते हैं। किन्हीं टुकड़ों में छोटा फलवृन्त लगा होता है, अथवा उसके टूटे होने पर तज्जन्य चिह्न *(scar)* पाया जाता है, जो व्यास में ०.५ सें०मी या $\frac{1}{5}$ इंच होता है। छिलका $\frac{1}{2}$ सें०मी० से $\frac{1}{5}$ से०मी० या $\frac{1}{20}$ इंच से $\frac{1}{10}$ इंच तक मोटा होता है और तोड़ने पर खट से टूट जाता है। बाह्यतः छाल पीताभ-भूरे रंग की अथवा हलके लालरंग की तथा खुरदरी होती है। अन्तस्तल पीले या हल्के भूरेरंग का होता है, जिसपर बीजों के दवाव से बने मधुमक्खी के छत्ते की भाँति छोटे-छोटे खाने-से चिह्न होते हैं। इसमें कोई विशेष गंध नहीं होती, किन्तु स्वाद में अत्यंत कसैला होता है। अनार के छिलके में विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं। भस्म(*ash*) ४% तक प्राप्त होती है। काण्डत्वक् (*stem bark*) एवं मूलत्वक् (*root bark*)–काण्ड के छिलके के छोटे-बड़े टुकड़े होते हैं, जो लगभग $\frac{5}{16}$ सें० मी० या $\frac{1}{6}$ इंच मोटे होते हैं तथा धनुषाकार मुड़े होते (*transversely curved*) या किनारे अन्दर को लपेटे से (*quills*) होते हैं। बाह्यतल पीताभ से खाकस्तरी–भूरे रंग का होता है, जिसपर जगह-जगह खाकस्तरी चकत्ते एवं लेन्टिसेल्स (*lenticels*) के चिह्न पाये जाते हैं। इसपर अनुलम्ब दिशा में झुर्रियाँ भी पड़ी होती हैं। अन्तस्तल हल्के पीलेरंग का या पीताभ-भूरेरंग का तथा सूक्ष्मरेखांकित (*finely striate*) होता है। तोड़ने पर छाल खट से टूटती है (*fracture short*); तथा टूटे हुए तल पर हरिताभ वर्ण की बाह्यत्वचा का अन्तः भाग (*greenish phelloderm*) दिखाई पड़ता है। इसमें एक हल्की गंध पायी जाती है, तथा स्वाद में कसैली एवं किंचित् तिक्त होती है। मूलत्वक्–जड़ की छाल के भी धनुषाकार टुकड़े होते हैं, जो बाहर से भूरापन लिये पीलेरंग से गाढ़े भूरेरंग के तथा अन्तस्तल पर गाढ़े पीलेरंग के होते हैं; किन्तु इन टुकड़ो को तोड़ने पर टूटे हुए तल पर हरिताभ फिलोडर्म का अभाव होता है। अनार का काष्ठीय भाग एवं अन्य विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य–अधिकतम ८%; भस्म–अधिकतम १५%; ऐल्केलाइड्स; की सकल (*total*) मात्रा–कम से कम ०.४%। शक्ति-प्रमापन (*Assay*)–छाल में ऐल्कलाइड्स की मात्रा का प्रमापन किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयोगी अंगों को मुखबंद शीशियों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन। फलत्वक् (फल के छिलके) में २८% तक टैनिक एसिड (*gallotanni acid*) तथा पीत रंजकतत्त्व (*yellow colouring matter*) पाया जाता है। काण्डत्वक् एवं मूलत्वक् में ०.५ से ०.९ प्रतिशत तक ऐल्केलॉइड्स पाये जाते हैं, जिनमें पेलीटिएरीन (*Pelletierine*) मुख्य होता है। शुद्ध पेलीटिएरीन रंगहीन द्रव के रूप में होता है, जो ऑक्सीजन के संपर्क से भूरेरंग के रालीय द्रव के रूप में परिणत हो जाता है। इसके अतिरिक्त २२% तक टैनिक एसिड होता है।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, कषाय अम्ल। विपाक–मीठे अनार का मधुर, खट्टे अनार का अम्ल। वीर्य–अनुष्ण। प्रधान कर्म–मीठा अनार त्रिदोषघ्न तथा खट्टा अनार वातकफनाशक होता है। इसके अतिरिक्त मेध्य, हृद्य, शोणितस्थापन, स्नेहन एवं कफनिस्सारक, दीपन–पाचन एवं शुक्रल। कलिका-ग्राही तथा अतिसार-प्रवाहिकानाशक। छाल-ग्राही एवं तिक्त, अतिसार-प्रवाहिकानाशक तथा कृमिघ्न। चरकोक्त (सू० अ० ४) हृद्य एवं छर्दिनिग्रहण महाकषायों के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) परूषकादिगण में 'दाडिम' भी है। यूनानी मतानुसार मीठा अनार पहले दर्जे में शीत एवं तर (स्निग्ध), यकृत् और हृदयबलकारक, उरः कंठ-मार्दवकर, संताप एवं दाहप्रशमन होता है। खट्टा अनार दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष तथा खटमिट्ठा अनार सम-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकृति के समीप शीत एवं तर होता है। अनार का छिलका, जड़ की छाल, अनारदाना तथा गुलनार आदि सभी शीत एवं रूक्ष माने जाते हैं। अहितकर–शीत प्रकृति को। गुलनार–शिरः शूल एवं विबन्धकारक।

निवारण — (१) अनार का छिलका–अदरक।
(२) अनारदाना–जीरा।
(३) गुलनार–कतीरा।

प्रतिनिधि द्रव्य–(१) अनार का छिलका–जरेवर्द (गुलाब पुष्पकेशर)।
(२) अनारदाना–सुमाक।
(३) गुलनार–अनार कली या छाल तथा जुफ्त बलूत।

मुख्य योग–दाडिम चतुःसम, दाडिमाष्टक चूर्ण, दाड़िमाद्य घृत, दाडिमाद्य तैल, जुवारिश अनारैन, शर्बत अनार, जुवारिश अनारशीरी।

विशेष–काण्डत्वक् एवं मूलत्वक् में पाये जाने वाले ऐल्केलॉइड पैलीटिएरीन का टैनेट लवण (*Palletierine Tannate*) का उपयोग कद्दूदाना या स्फीतकृमि (*Tapeworm*) एवं चूर्णकृमि (*Thread-worm*) के लिए विशिष्ट कृमिनाशक औषधि के रूप में किया जाता है। मात्रा–२ ग्रेन से ८ ग्रेन (१ रत्ती से ४ रत्ती)।

अपराजिता

नाम। सं०–अपराजिता, गिरिकर्णिका, विष्णुक्रान्ता। हि०–कोयल। म०–गोकर्णी। गु०–गरणो। ले०–क्लीटोरिआ टेरनाटेआ **Clitoria ternatea** *Linn.*।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : प्रजापति-उपकुल (लेगूमिनोसी : पैपिलिओनासी *Leguminosae ; Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में गाँवों के आस-पास तथा बगीचों में और मन्दिरों की वाटिकाओं में इसकी लगायी हुई तथा वन्य लताएँ पायी जाती हैं। कहीं-कहीं अपराजिता के बीज 'कालादाना' के नाम से बेचे जाते हैं। कहीं-कहीं बाजारों में अपराजिता की सुखाई हुई जड़ पंसारी भी रखते हैं।

संक्षिप्त परिचय–अपराजिता की सुन्दर और पतले काण्ड की बहुवर्षायुस्वरूप की चक्रारोही लताएँ होती हैं। शोभा के लिए इसको प्रायः बागों में लगाते हैं। पत्तियाँ पक्षवत्, प्रायः पंच-पत्रक, पत्रक २.५ सें०मी० से ५ सें०मी० या १ इंच से २ इंच लम्बे तथा अंडाकार होते हैं। किसी-किसी पत्ती में पत्रक ३-४ जोड़े भी होते हैं, किन्तु अग्र पर एक अयुग्म पत्रक होता है। पुष्प २.५ सें०मी० से ५ सें०मी० या १ इंच से २ इंच बड़े, गाढ़े नीले रंग के (दलपत्रों के किनारे का भाग प्रायः नीलवर्ण का अन्दर का भाग सफेद) अथवा श्वेतवर्ण होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत पुष्पदण्ड पर एकाकी क्रम से स्थित होते हैं। निपत्रिका या कोणपुष्पक (*bracteoles*) स्थायी एवं पर्णसदृश होते हैं। पुष्प में ध्वजदल (*standard*) चिमचे के आकार का तथा पक्ष-दलों के नीचे फैला रहता है। फली चपटी और लगभग ७.५ सें०मी० से १२.५ सें०मी० या ३ इंच से ५ इंच (प्रायः २-३ इंच) तक लम्बी होती है, जिसमें धूसरवर्ण के अनेक बीज भरे होते हैं। पुष्प के रंगभेद से यह मुख्यतः २ प्रकार की होती है—(१) श्वेतापराजिता, श्वेतगिरिकर्णिका या श्वेतविष्णुक्रान्ता अथवा सफेदकोयल। (२) वह जिसमें नीलफूल आते हैं, इसको नीलापराजिता, नीलगिरिकर्णिका, कृष्णक्रांता या नीलीकोयल आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। नीलापराजिता का एक और उपभेद होता है, जिसमें दोहरे फूल लगते हैं। औषध्यर्थ अपराजिता के मूल एवं बीजों का व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग–मूल, बीज एवं पत्र।

मात्रा। मूलचूर्ण–१.५ ग्राम से ३ ग्राम या १॥ माशा से ३ माशा। बीजचूर्ण–१.२५ ग्राम से २.५ ग्राम या १० रत्ती से २० रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। बीज–अपराजिता के बीज प्रायः ½ सें० मी० या ¼ इंच या कुछ अधिक लम्बे होते हैं। बीजकवच या टेस्टा (*testa*) चमकीले एवं चिकने तथा कालिमा लिये धूसररंग का होता है, जिसपर छोटे-छोटे हरे-काले दाग से पड़े होते हैं। अन्दर द्विदल होते हैं, जिनमें प्रचुरता से स्टार्च के कण पाये जाते हैं, तथा स्वाद में ये कटु एवं तिक्त होते हैं। बीजों से ६% भस्म प्राप्त होती है। मूल या जड़–अपराजिता की ताजी जड़ सफेद, मांसल तथा व्यास में २.५ सें० मी० या १ इंच (या कभी और भी अधिक) मोटी होती है। मूलत्वक् मुलायम, काफी मोटी तथा रेशेदार होती है, और काष्ठीय भाग से आसानी से पृथक् हो जाती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–अपराजिता बीज और काला

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दाना दोनों पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। अतएव कालादाना के नाम से अपराजिता बीज का ग्रहण करना युक्तियुक्त नहीं है। रेचन कर्म के लिए किन्हीं अवस्थाओं में काला दाना के स्थान में इनका व्यवहार किसी सीमा तक किया जा सकता है। अपराजिता के पुष्पभेद से विभिन्न भेदों के बीजों के गुणकर्म में कोई अन्तर नहीं होता।

संग्रह एवं संरक्षण—मूल का संग्रह जाड़ों में करना चाहिए। बीजों का संग्रह पक्व फलियों से करें। इन्हें मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन—अपराजिता के मूलत्वक् में श्वेतसार टैनिन, और राल प्रभृति तत्त्व तथा बीजों में एक स्थिर तैल, एक तिक्त-राल (जो इसका सक्रिय घटक होता है) एव टैनिन आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। मूल—१ वर्ष। बीज—२ वर्ष।

स्वभाव। रस—कषाय, तिक्त। विपाक—कटु। वार्य—शीत। कर्म—त्रिदोषघ्न विशेषतः कफवात नाशक; शोथ एवं व्रणवाचक, शिरोविरेचन, कण्ठ्य, चक्षुष्य, स्मृति एवं बुद्धिवर्धक, कुष्ठघ्न, आमपाचन, विषघ्न, मृदुभेदन, मूत्रजनन, श्वास-कासहर। मल-भेदन, वेदनास्थापन, मूत्रजनन, शिरोविरेचन। अपराजिताबीज मृदुभेदन है। अधिक मात्रा में देने से पेट में मरोड़ होकर पतले दस्त आते हैं। इस रूप में इसकी क्रिया 'जलापा' की भाँति होती है। रेचन के साथ-साथ ये भेदन भी होते हैं। मरोड़ एवं ऐंठन आदि के निवारण के लिए इसमें सोंठ मिलाना चाहिए। उदर-रोग, कफविकार एवं आमवातादि में इसके मूल एवं बीज उपयोगी होते हैं। बालकों के श्वास-काल में बीजों को थोड़ा भून कर पीस लें, और इसमें थोड़ा गुड़ और सेंधा नमक मिलाकर देने से दस्त के साथ कफ निकलकर आराम हो जाता है। अर्धावभेदक (अधकपारी) में मूलस्वरस का नस्य दिया जाता है। त्वग् रोगों में पत्तियों का फाण्ट दिया जाता है। पत्रकल्क का प्रलेप शोथों पर किया जाता है।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० २ एवं वि० अ० ८) तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) शिरोविरेचन द्रव्यों में ('श्वेता' एवं 'गिरिकर्णिका' नाम से) अपराजिता भी है।

अफ़संतीन

नाम। हिं०, द०—विलायती अफ़संतीन। अ०—अफ़संतीन। फा०—मरवा, मूयबखुशा। अं०—मग-वर्ट (*Mug-Wort*)। ले०—आर्टेमिसिआ एब्सिन्थियम् (**Artemisia absinthium** *Linn.*)

वानस्पतिक-कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोज़िटी *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तरी अफरीका, दक्षिण अमरीका, यूरोप के कतिपय पहाड़ी प्रदेश, साइबेरिया, मंगोलिया, खुरासान तथा भारत में कश्मीर (१५२४ मीटर से २१३०·८ मीटर या ५,००० फीट से ७,००० फीट की ऊँचाई तक) आर्टेमीसिआ एब्सिन्थियम् के पौधे जंगलीरूप से पाये जाते हैं। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्यतः फ़ारस से होता है। शुष्क पंचाङ्ग बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलता है। इसे कभी-कभी 'विलायती अफ़संतीन' के नाम से भी अभिहित करते हैं।

संक्षिप्त परिचय—अफ़संतीन के सुगंधित, बहुवर्षायु या वर्षानुवर्षीय शाकीय (*herbaceous perennial*) पौधे होते हैं। काण्ड ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३फुट ऊँचा, सीधा या स्वावलम्बी, कोणाकार तथा अनुलम्ब उन्नत रेखाओं से युक्त (*angular and ribbed*) तथा अनेक शाखा-प्रशाखामय होता है। पत्तियाँ २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बी, रूपरेखा में लट्वाकार अथवा अभिलट्वाकार किन्तु २-३—पक्षवत् खण्डित (*2-3–pinnatifidly cut*) होती हैं। खण्ड (*segments*) रेखाकार अथवा भालाकार या कुण्ठिताग्र तथा फैले हुए (*spreading*) होते हैं। अफ़संतीन का सम्पूर्ण पौधा कोमल रेशमी सफेदरोइयों से व्याप्त होता है, जिससे इसकी शाखाएँ एवं पत्रादि रजतवर्ण के प्रतीत होते हैं। पुष्प-मुण्डक व्यास में $\frac{5}{8}$ सें० मी० से $\frac{5}{4}$ सें० मी० या $\frac{1}{4}$ इंच से $\frac{1}{2}$ इंच तथा अधोमुख होते हैं, जो शाखाग्रघ मंजरियों में स्थित होते हैं। पुष्प बाबूना के फूल के समान, उससे छोटे, पिलाई लिये सफेद होते हैं। व्यूहासन या पुष्पधर (*receptacle*) पर लम्बे एवं सीधे रोम होते हैं। इसमें छोटे-छोटे दाने (फल) लगते हैं, जिसके भीतर इस्पंद के समान सूक्ष्म बीज भरे होते हैं। गंध अति तीक्ष्ण एव अप्रिय-सी और स्वाद अत्यंत तिक्त होता है। औषधि में इसके पंचांग का व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग—ताजा एवं शुष्क पंचाङ्ग (विशेषतः पत्र एवं पुष्पयुक्त शाखा)।

मात्रा—२ ग्राम से ५ ग्राम या २ माशा से ५ माशा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—अफ़संतीन का पौधा भी दमनक की भाँति होता है। काण्ड सरल एवं शाखायुक्त, पत्र लगभग ५ सें० मी० या २ इंच तक लम्बे और काफी मात्रा में उपस्थित होते हैं। शाखाएँ एवं पत्र आदि सभी श्वेत रोमावृत होने के कारण रजतवर्ण के प्रतीत होते हैं। इसमें छोटे-छोटे फल दानों के रूप में लगते हैं, जिनके भीतर हरमल की तरह बीज होते हैं। अफ़संतीन का पंचाङ्ग स्वाद में अत्यंत तिक्त होता है, तथा इससे एक तीक्ष्ण एवं अप्रिय गंध आती है। स्थान भेद से बाजारों में यह भिन्न-भिन्न नामों (यथा नब्ती, रूमी एवं खुरासानी आदि) से मिलता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पौधे का संग्रह फलागम के बाद करना चाहिए। पंचाङ्ग को छायाशुष्क करके मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—अफ़सन्तीन में एब्सिन्थिन (*Absinthin*) नामक तिक्त एवं पीताभ-भूरे रंग का क्रिस्टलाइन स्वरूप का ग्लुकोसाइड पाया जाता है, जो ऐल्कोहाल में तो घुल जाता है, किन्तु ईथर एवं क्लोरोफॉर्म में अविलेय होता है। इसके अतिरिक्त अनेब्सिन्थिन (*Anabsinthin*) नामक एक दूसरा तिक्तसत्व भी पाया जाता है। अफ़संतीन के औषधीय गुणकर्म मुख्यतः इन्हीं तिक्त सत्वों के कारण होते हैं। उपर्युक्त तिक्त सत्वों के अतिरिक्त इसमें एक उत्पत् तैल (*Absinthe or Wormwood-oil*) ताजे पौधे में ०.१२% से ०.५१% तक) भी पाया जाता है। इसका मुख्य घटक थूजोन (*Thujone*) नामक तत्व होता है, जिसमें कर्पूरवत् गुणकर्म पाये जाते हैं। अधिक मात्रा में सेवन करने से उक्त तैल विषाक्तप्रभाव (*Narcotic poison*) करता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, दीपन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, मूत्रार्त्तवजनन, मेध्य, हृदयोत्तेजक, वातशामक, स्थानिक प्रयोग से शोथहर एवं वेदनास्थापन। यूनानीमतानुसार अफ़सन्तीन प्रथमकक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष होता है। यकृत्प्लीहा के रोगों, जैसे यकृच्छोथ, प्लीहाशोथ, जलोदर और जीर्णज्वरों में अफ़संतीन विपुल प्रयोग में जाता है। नियतकालिक ज्वरों में वेग रोकने के लिए भी इसे देते हैं। मंदाग्नि एवं केंचुए (*Round worm*) को नष्ट करने के लिए भी इसे पिलाते हैं। अनार्तव और कृच्छ्रार्तव में इसका काढ़ा उपयोग करते हैं। मस्तिष्कदौर्बल्य, मृगी, शिरःशूल, कम्पवात, पक्षवध, अंगघात एवं अर्दित इत्यादि मस्तिष्क एवं वातरोगों में इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—शिरःशूलजनक। निवारण—अनारका शर्बत और अनीसूँ।

विशेष—अफ़संतीन में पाया जाने वाला उत्पत् तैल मात्राधिक्य में सेवन किये जाने पर विषैला प्रभाव (*Violent narcotic poison*) करता है। कभी-कभी अफ़संतीन के सघन विस्तृत क्षेत्रों में यात्रा करने पर भी इसका उक्त शिरःशूलजनक अहितकर प्रभाव लक्षित होता है।

मुख्य योग—अर्क़ अफ़सन्तीन, शर्बत अफ़संतीन, हब्ब अफ़सन्तीन।

अफीम (अहिफेन)

नाम। (१) क्षुप (सं०) तिलभेद, खसतिल, अहिफेन क्षुप। हिं०—पोस्ता। अ०—नवातुल् खश्खाश। फा०—कोकनार। अं०—ह्वाइट या ओपियम् पॉपी (*White or Opium Poppy*)। ले०—पापावेर सॉम्नीफेरम् (**Popaver somniferum** *Linn.*)।

(२) फल वा डोंड़ा। सं०—खाखस, खसफल। हिं०—पोस्त, पोस्ता या अफीम का डोंडा (बोंडी, डोंड़ा)। अ०—क़िश्रुल् खश्खाश। फा०—पोस्ते ख़श्ख़ाश, पोस्ते कोकनार। म०—खसखशीचें बोंड। गु०—खसखसना डोडा। अं०—पॉपी कैप्सूल्ज (*Poppy Capsules*), पॉपी हेड्स (*Poppy Heads*)। ले०—पापावेरिस काप्सूली (*Popaveris Capsulae*)।

(३) बीज। हिं०—खसखास, पोस्तदाना। अ०—बज़्रुल् खश्खाश। फा०—तुख्मे ख़श्ख़ाश (कोकनार), ख़श्ख़ाश। म०—, गु०—खसखस। अं०—ह्वाइट पॉपी सीड्स।

(४) आक्षीर (*Latex*) या निर्यास। सं०—अहिफैन, फणिफेन, आफूक। हिं—अफीम। बं०—आफिम्। म०—अफू। गु०—अफीण। अ०—अफ्यून, लब्नुल् ख़ख़ाश। फा०—तिर्याक। अं०, ले०—ओपियम् (*Opium*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक कुल। अहिफेन कुल (पापावेरासी *Papaveraceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के बिहार, राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य एवं पश्चिम भारत और मालवा में पोस्ते की खेती की जाती है। नेपाल में भी खेती होती है। विदेश में ब्रह्मा, चीन, इरान, एवं एशिया माइनर में भी इसकी प्रचुर मात्रा में खेती की जाती है। मिस्र तथा यूनान एवं यूगोस्लाविया आदि यूरोपीय देशों में भी पोस्ता प्रचुर मात्रा में पैदा किया जाता है।

संक्षिप्त परिचय—पुष्प के रंगभेद से इसके २ अन्य भेद भी होते हैं। (१) लाल पोस्ता या पापावेर सॉम्मीफेरुम प्र० ग्लेब्रुम् (**Papavar somniferum** *var.* **glabrum** *Boiss.*) तथा (२) काला पोस्ता या पापावेर सॉम्नीफेरुम प्र० नीग्रुम (**P. somnifeaum** *var.* **ntgrum** *D.C.*)। प्रथम भेद में पुष्प गुलाबी (*purplish*) होते हैं। यह टर्की में अधिक पाया जाता है। भारतवर्ष में कश्मीर तथा यतस्ततः थोड़ा-बहुत अनेक स्थानों (मैदानों) में भी होता है। काले पोस्ते के फूल बैंगनी रंग के तथा बीज खाकस्तरी (*slate-coloured*) होते हैं। औषधीय एवं अफीम की दृष्टि से इसका सफेद भेद ही महत्त्व का है। यहाँ पर इसी का वर्णन किया गया है। उपर्युक्त नाम सफेद पोस्त (खशखाश सफेद या खशखाश बुस्तानी) के हैं। यूनानी वैद्यक में खशखाश शब्द से पोस्ते का डोंडा (पोस्त खशखाश) विवक्षित होता है। परन्तु जनसाधारण पोस्ता के दाने को खशखश कहते हैं। केवल खशखाश शब्द से पोस्ते का सफेद भेद ही विवक्षित होता है, जिसका यहाँ वर्णन किया जायगा।

पोस्ते के ०.९ मीटर से १.२ मीटर या ३ फुट से ४ फुट ऊँचे अर्धवार्षिक क्षुद्रक्षुप होते हैं। इसकी शाखाएँ तथा पत्तियाँ क्षोदलिप्त (*glaucous*) होती हैं। पत्तियाँ लगभग १० सें० मी० या ४ इंच लम्बी, चौड़ी एवं अवृन्त-सा या डंठलरहित (*sessile*) होती हैं। इनका फलक-मूल (*base of lamiua*) हृदयाकार एवं काण्ड-संसक्त (*amplexicaul*), तथा पत्रतट आरावत् दंतुरित (*dentate*) होता है। पुष्प एकल (*solitary*) तथा पुष्पदण्ड किंचित् लोमश होता है। बाह्यकोष के पत्र कैडुकस (*caduouus*) अर्थात् कलिकायुष्क या शीघ्रपाती होते हैं। फूल नीली आभा लिये सफेद जिसका अधः भाग बैंगनी होता है, अथवा सफेद रंग के तथा बैंगनी या चित्रित (*variegated*) होते हैं। इसका फल अर्थात् सम्पुटिका या कैप्सूल (*capsule*) प्रत्येक पौधे में ५-८ तक तथा अनार की भाँति गोल या अण्डाकृति होता है। इसके नीचे की ओर ग्रीवा तथा ऊपर कंगूरेदार चोटी होती है। फल का रंग पिलाई लिये भूरा होता है। रचना भीतर से खानेदार होती है, जिसमें बहुत-से छोटे-छोटे प्रायः सफेद पर कभी-कभी भूरे या काले रंग के बीज पाये जाते हैं। डोड़ी के पक्व हो जाने पर स्फुटन के लिए फल के ऊर्ध्व भाग में कुक्षियों के नीचे कपाटाकार छिद्र (*small valves*) हो जाते हैं, जो प्रायः संख्या में स्त्रीकेशरों (*carpels*) के बराबर होते हैं।

पूर्ण प्रगल्भ किन्तु कच्चे डोड़ों (*fully grown unripe capsules*) पर चीरा लगाने से एक गाढ़ा दूध (आक्षीर) या लैटेक्स (*Letex*) सा निकलता है। इसका संग्रह कर सुखा लिया जाता है। यही व्यावसायिक एवं औषधीय अफीम है। पक्व एवं सुखाये हुए डोंड़े तथा बीज (पोस्तदाना) भी पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

उपयोगी अंग—अफीम (कच्चे फलों या डोड़ों का सुखाया हुआ दूध (*Latex*), दूध निकाले या बिना निकाले पके फलों का सुखाया हुआ छिलका (पोस्ते की डोड़ी या पोस्ते खश्खाश); बीज (तुख्मे खशखाश या पोस्तदाना) एवं बीजोत्थ तेल (रोग़न खशखाश)।

मात्रा। अफीम—३० मि०ग्रा० से १२५ मि०ग्रा० या ½ रत्ती से २ रत्ती।

पोस्तखश्खाश—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

पोस्तदाना—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

रोग़न खशखाश—आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—(१) फल (पोस्ते की डोंड़ी—पोस्त खश्खाश)—यह पोस्ते के सुखाये हुए पक्व फल अंडाकार (*ovoid*) या गोलाकार (*globular*) होते हैं। आधार की ओर का भाग ग्रीवा की भाँति संकुचित होता है, और शीर्ष पर कंगूरेदार चोटी होता है। उक्त डोड़ी हल्के पीताभ-भूरेरंग का होता है, जिसपर इतस्ततः गाढ़ेरंग के दाग होते है। फल का आभ्यन्तर झिल्लीनुमा पर्दों द्वारा कई कोष्ठों में विभक्त होता है। इसका स्फुटन चोटी के नीचे कई सूक्ष्म छिद्रों द्वारा होता है। बाजार में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो पोस्त मिलता है, वह प्रायः अफीम निकाले हुए डोंड़े होते हैं, किन्तु जिस पोस्ते से अफीम न निकाली हुई हो वह अफीम निकाले हुए पोस्ते से अधिक वीर्यवान् होता है। बाजार में जो डोंड़ी मिलती है वह प्रायः समूची नहीं होती बल्कि उसके छोटे बड़े-टुकड़े होते हैं। इन टुकड़ों पर अफीम निकालने के लिए लगाये हुए चीरों (*incisions*) के चिह्न वर्तमान होते हैं।

(२) पोस्ते का दाना (खस्खास)—पोस्ते के बीज छोटे-छोटे प्रायः $\frac{1}{25}$ इंच से $\frac{1}{20}$ इंच (१ मि० मि० से १.२५ मि० मी०) लम्बे तथा प्रायः सफेद रंग के या कोई खाकस्तरी (*grey*) रंग के होते हैं। रूपरेखा में ये बीज किंचित् वृक्काकार (*reniform*) होते हैं। इनपर स्पष्ट रेखाएँ (*conspicuous raised reticulations*) मालूम होती हैं। उक्त बीज प्रायः गंधहीन तथा स्वाद में किंचित् तिक्त एवं अन्य तैलीय बीजों की भाँति होते हैं। खशखश मन्सूर एवं स्याह के बीज कृष्णवर्ण के होते हैं। पोस्ते के बीजों में प्रायः ५०% तक तेल होता है। रोग़न खश्खाश (खस्खास का तेल) – यह हल्के सुनहले रंग का, प्रायः गंधहीन एवं स्वाद में रुचिकर होता है। आपेक्षिक घनत्व (*specific gravity*) ०.९१४ से ०.९२७ होता है। १८ सेंटीग्रेड पर यह जम जाता है। २५ भाग ऐल्कोहॉल् में घुल जाता है। उबलते ऐल्कोहॉल् में अपेक्षाकृत अधिक घुलनशील (६ भाग में १ भाग) होता है। रासायनिक संगठन में यह तीसी के तेल (*Linseed oil*) से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। रोग़न खसखास जैतून के तेल (*Olive oil*) का उत्तम-प्रतिनिधि द्रव्य है, और उसमें मिलावट के लिए प्रयुक्त भी होता है।

अफीम – यह पोस्ते के डोंड़ों का सुखाया हुआ आक्षीर या लैटेक्स (*Latex*) होता है, जो पूर्ण प्रगल्भ किन्तु कच्चे डोड़ों (*fully grown unripe capsules*) पर चीरा लगा कर प्राप्त किया जाता है। देश के भेद से बाजार में ४ प्रकार की अफीम मिलती है। (१) भारतीय या देशी अफीम (*Indian Opium*); (२) तुर्की अफीम (*Turkish Opium*); यूरोपीय अफीम (*European Opium*) एवं फारसी अफीम (*Persian Opium*)। भारतीय अफीम के घनाकार टुकड़े (*cubical pieces*) आते हैं, जो वजन में लगभग १ सेर (९०० ग्राम) के होते, तथा टिशू पेपर (*tissue paper*) में लपेटे हुए होते हैं। तोड़ने में ये कभी भंगुर (*hard and brittle*) तथा कभी नम्य (*plastic*) होते हैं। रंग में उक्त अफीम कालिमा लिये गाढ़े भूरेरंग की एक विशिष्ट प्रकार की उग्र गंध से युक्त होती है। स्वाद तिक्त होता है। अफीम में कम-से-कम ९.५% मॉर्फीन (*Morphine*) होता है।

परीक्षण – (१) ०.१ ग्राम (१॥ ग्रेन) अफीम ५ मि० लि० (सी० सी० = ७५ बूंद) जल मे गरम कर घोलें। फिर इनको छान लें। इसमें कतिपय बूंद फेरिक क्लोराइड (*Ferric Chloride*) को डालने से यह बैंगनी लिये गाढ़े लालरंग का (*deep purplish-red*) हो जाता है। इसमें डायल्यूट हाइड्रोक्लोरिक एसिड अथवा मरक्यूरिक क्लोराइड सॉल्यूशन मिलाने से भी कोई परिवर्तन नहीं होता। (२) एक परखनलिका में ३ ग्रेन (०.९ ग्राम) अफीम का चूर्ण लेकर उसमें ५ सी० सी० क्लोरोफॉर्म मिलायें और १० मिनट तक उसे खूब हिलायें ताकि परस्पर मिलजाय। इसमें कतिपय बूंद डायल्यूट सॉल्यूशन ऑफ अमोनिया मिलावें। इस विलयन को शीशे के टुकड़े (*watch glass*) पर फैला दें। क्लोरोफार्म स्वयं उड़ जायगा और खाकस्तरी सफेद (*greyish-white*) रंग का पदार्थ लगा रह जायगा। इस पर १ बूंद फार्मेल्डिहाइड सॉल्यूशन तथा ५ बूंद सल्फ्यूरिक एसिड डालें। शीशे पर गाढ़े लालरंग (*deep crimson colour*) का परिवर्तन होगा।

संग्रह एवं संरक्षण – अफीम को अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में रखना चाहिए। अफीम निकालने के बाद इसके पौधे खेतों में छोड़ दिये जाते हैं। जब डोंड़ें पककर सूख जाते हैं, तो उनको तोड़ लिया जाता है और पीट कर बीजों को पृथक् कर लेते हैं। सूखे हुए पके डोड़ों के टुकड़े तथा बीज पृथक् रूप से बाजारों में मिलते हैं। इनको अनार्द्र शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए।

संगठन – पोस्त (डोड़ों) में अल्प प्रमाण में अफीम (०.१ से ०.३ प्रतिशत मॉर्फीन) तथा अंशतः कोडीईन, पापावरीन, नार्कोटीन एवं मेकोनिक एसिड आदि पाये जाते हैं। बीजों में हल्के पीले रंग का (५०% तक) मीठा स्थिर तैल होता है, जिसे पोस्ते का तेल (रोग्न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खश्खाश) कहते हैं। अफीम में मार्फीन, नार्कोटीन एवं कोडीईन आदि ऐल्केलॉइड्स पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक अन्य प्राथमिक ऐल्केलॉइड्स (*Primary alkaloids*) तथा एपोमॉर्फीन, एपोकोडीन आदि अनेक द्वितीयक ऐल्केलॉइड्स (*Secondary Alkal-acids*), क्लोबतत्त्व (*Neutral principes*), लेक्टिक एसिड एवं मेकोनिक एसिड आदि सेन्द्रिय अम्ल (*Organic acids*), जल, राल, ग्लूकोज, वसा, उड़न-शील तैल, आदि तत्त्व भी होते हैं।

वीर्यकालावधि—अच्छी तरह संरक्षित करने से अफीम में कई वर्षों तक वीर्य बना रहता है। इसी प्रकार पोस्ते का तेल भी कई वर्षों तक बिगड़ता नहीं।

स्वभाव। गुण—सूक्ष्म, रूक्ष। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—मादक। प्रधान कर्म—स्वापजनन, वेदनास्थापन, संग्राही, शुक्रस्तम्भन, ज्वरघ्न, प्रसेकावरोधक।

अहितकर—कामावसादकर, और समस्त बाह्याभ्यंतर शक्तियों को निर्बल बनाता है।

निवारण—केसर और जुन्दबेदस्तर।

प्रतिनिधि—खुरासानी अजवायन।

फल—अन्य कर्म अफीम की भाँति। विशेषतः शुष्ककास हर। यूनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में शीत और पहले दर्जे में रूक्ष।

अहितकर—फुफ्फुसों और शीत प्रकृति के लिए।

निवारण—शुद्ध मधु, शर्करा और मस्तगी।

प्रतिनिधि—अल्प मात्रा में अफीम।

बीज—दूसरे दर्जे में शीत और पहले में तर। काला पोस्ते का दाना (खश्खाश स्याह) सभी कर्मों में सफेद की अपेक्षा बलवत्तर होता है।

अहितकर—अधिकतर फुफ्फुस को अहितकर है। काला मस्तिष्क के लिए अहितकर है। निवारण—मस्तगी, तज, अजमोदा, खांड और शहद। काले पोस्तदाने के लिए सौंफ। प्रतिनिधि—काहू के बीज; काले का जंगली काहू।

रोगन खश्खाश—निद्रल, वेदनाशामक।

मुख्य योग। (१) अफीम—अहिफेनासव, बृहद्गंगाधर चूर्ण, कर्पूररस, निद्रोदया वटी, महावातराज रस, दुग्धवटी। (२) फल—शर्बत खश्खाश, लऊक खश्खाश, लऊक सपिस्ताँ, दियाकूजा।

विशेष—(१) अहिफेन को योगों में डालने के पूर्व इसको शुद्ध कर लेना चाहिए। इसके लिए इसको पानी में घोल, कपड़े से छान कर आगपर गाढ़ा कर लें। तदनन्तर इसको अदरख के स्वरस की २१ भावना देने से यह शुद्ध हो जाता है।

(२) अफीम एक विषैला द्रव्य है। इसका पाठ 'उपविषों' में आया है। पोटासियम् परमैंगेनेट का विलयन मुखद्वारा देने से उत्तम प्रतिविष या अगद (*Antidote*) का कार्य करता है।

अमरबेल (अमरवल्ली)

नाम। सं०—आकाशवल्ली, अमरवल्ली। हिं०—आकास-बेल, अमरबेल। को०—ज्ञार्भसिग। खर०—अलजजरी। बं०—फलगुसी। फा०—अफ़्तीमून हिंदी। अं०—डोडर (*Dodder*)। ले०—कस्कूटा रिफ्लेक्सा (**Cuscuta reflexa** *Roxb.*)।

वानस्पतिक कुल—त्रिवृत्-कुल (कॉन्वॉल्वुलासी *Convolvu-laceae*)।

प्राप्तिस्थान—आकासबेल की पराश्रयी लता सर्वत्र भारतवर्ष में पेड़ों तथा झाड़ियों पर चढ़ी हुई मिलती है। बाजार में पंसारियों के यहाँ इसका शुष्क पंचाङ्ग (लता) एवं बीज भी मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—आकासबेल की पत्ररहित परोपजीवी लता होती है, जो हरियाली लिये पीले या लालरंग की डोरे-सी कीकर, बेर, अडूसा आदि वृक्षों पर अथवा बागों तथा खेतों की हेज (*hedge*) पर जाल की तरह फैली हुई होती है। फूल छोटे, सफेद रंग के तथा घंटा-कृति तथा कुछ सुगंधित होते हैं, जो एकल क्रम से (*solitary*) अथवा छत्राकार गुच्छकों (*umbellate clusters*) में निकलते हैं। पुष्पवृन्त छोटे, चिकने तथा कुछ टेढ़े होते हैं। सम्पुटोफल (*capsule*) छोटे-छोटे (व्यास में $\frac{1}{2}$ सें०मी० से $\frac{1}{4}$ सें०मी० या $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ इंच) मटर के आकार के गोल-गोल होते हैं। बीज २-४, काले तथा चिकने होते हैं। पंचाङ्ग का स्वाद तिक्त होता है। यद्यपि बीज से लता उगती है, किन्तु वृक्ष पर फैलने के बाद इससे मूल निकलकर वृक्षकांड में चिपक जाते हैं, जिनसे इसको पोषण प्राप्त होता है। इन पोषक मूलों के निकलने के बाद पहले की जड़ सूख जाती है। इसी से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसे 'आकाशबेल' कहते हैं। पुष्पागम वसन्त में तथा फलागम ग्रीष्म में होता है।

उपयोगी अंग—लता एवं बीज।

मात्रा। लतास्वरस—११.६ मि० लि० से २३.३ मि०लि० या १ से २ तोला।

बीजचूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ से ६ माशा।

लता (बाह्यप्रयोग के लिए)—आवश्यकतानुसार।

संग्रह एवं संरक्षण—उपयुक्त अंगों को शुष्क करके मुखबन्द पात्रों में उचित स्थान में रखें।

संगठन—काण्ड एवं बीज में कस्कूटीन (*Cuscutine*) नामक ऐल्केलॉइड पाया जाता है। इसके अतिरिक्त क्वर्सेटिन (*Quercetin*) तथा रालीय तत्त्व भी होता है। बीजों में अमरबेलिन नामक रंजकतत्त्व, तथा पीताभहरित वर्ण का एक तैल भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, पिच्छिल। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—कफपित्तहर, वेदनास्थापन, शोथहर, केश्य, दीपन-पाचन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, (बीज-पित्तविरेचक), रक्तशोधक, हृद्य, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कटुपौष्टिक। यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष है।

विशेष—यूनानी वैद्यक में प्रसिद्ध अफ्तीमन ओषधि आकाशबेल की ही एक विदेशी जाति हैं, जिसे कस्कूटा एउरोपेआ (*Cuscuta europea L.*) कहते हैं। कोई-कोई हकीम अकाशबेल का भी प्रयोग उन सभी अवस्थाओं में करते हैं, जिनमें अफ़तीमून विलायती प्रयुक्त होती है।

अमलतास

नाम। सं०—आरग्वध। हिं०—अमलतास, सियारडण्डा। फा०—ख्यारचम्बर। अ०—ख्यारशम्बर। अं०—केसियाफ्रूट (*Cassia Fruit*)।

केसियाफ्रुक्टुस ले०—(*Cassiae Fructus*)।

वृक्ष का नाम—कास्सिआ फिस्टुला (**Cassia fistula** *Linn.*)

वानस्पतिक कुल—शिम्बीकुल—इम्लिका-उपकुल (लेगूमिनोसी : सिजलपिनेसिई *Leguminosae : Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्त भारत। सर्वत्र इसके जंगली अथवा लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। सौन्दर्य के लिए सड़कों के किनारे तथा बगीचों में भी इसके रोपित वृक्ष मिलते हैं। सूखी पक्वफलियाँ तथा फलों का गूदा (फलमज्जा) बाजारों में पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय। वृक्ष—मध्यमाकारी, ६.४० मीटर से ९.१४ मीटर या ७-१० गज ऊँचा, मसृण। मूल—साधारण। तना—०.९ मीटर से १.२ मीटर या ३-४ फीट, गोल, मसृण। पत्र—संयुक्तदलपर्ण। पत्रक—४-८ जोड़ों में, लम्बाई—२२.५ सें० मी० से ४० सें० मी० या ९ से १६ इंच, लट्वाकार लम्बगोल, हरित वर्ण, उभयपृष्ठमसृण। पुष्प-पीत वर्ण। पुष्प—आभ्यन्तर कोषदल—५, पुष्पवृन्त—३.७५ सें० मी० से ५.६ सें० मी० या डेढ़ से सवा दो इंच लम्बा। पुष्पबाह्यकोष १२ सें० मी० या २॥ इंच लम्बा। पुंकेशर—संख्या में १०। फली ३० सें०मी० से ६० सें०मी० या १-२ फीट लम्बी, व्यास में लगभग २.५ सें० मी० (१ इंच), अधोलम्बी, अपक्वावस्था में हरित तथा पक्वावस्था में रक्ताभ-कृष्ण एवं कठोर। फलमज्जा—वर्ण में कृष्ण तथा साधारण मधुर। बीज—संख्या में ४० से १०० तक, चौड़े-लट्वाकार।

उपयोगी अंग—मूलत्वक्, फलमज्जा तथा पत्र एवं पुष्प।

मात्रा—मूलत्वक्क्वाथ—५ तोला।

मज्जा (गूदा)—८ ग्राम से १२ ग्राम (८ माशा से १) तोला)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—अमलतास की फली एक हाथ या उससे भी अधिक लम्बी, मजबूत, काष्ठीय, सवृन्त, अग्रपर नोकदार तथा रूपरेखा में बेलनाकार किन्तु पार्श्वों में कुछ चपटी (*subcylindrical*) और व्यास में १ इंच होती है। पकने पर यह गाढ़े भूरे रंग की या काली हो जाती है। बाह्यतः आपाततः देखने में चिकनी, किन्तु समीप से देखने पर सर्वत्र बेड़े-बेड़े दरार की भाँति सूक्ष्म रेखाएँ होती हैं। उसके भीतर पैसे के बराबर अनेक परत होते हैं, जिससे फली अनेक कोष्ठों में विभक्त होती है। प्रत्येक कोष्ठ में अफीम के समान काले रंग का तथा दुर्गंधयुक्त, चिपचिपा एवं मधुर गूदा भरा होता है, जो बाद में सूख कर सिकुड जाता और कोष्ठ के पार्श्वों में लगा होता है। प्रत्येक कोष्ठ में एक बीज होता है, जो अंडाकार चिपटा, चिकना, रक्ताभ भूरे रंग का ½ इंच लम्बा और १/१६ इंच चौड़ा होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

जल में घुलनशीलसत्व (फलों से प्राप्य) न्यूनतम ३.० प्रतिशत।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलियों एवं अन्य उपयोगी अंग (मूलत्वक् और पत्र आदि) को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में रखें।

संगठन—मज्जा में म्यूसिलेज, पेक्टिन, शर्करा, किंचित् उड़नशील तेल तथा हाइड्रॉक्सीमेथिल ऐन्थ्राक्विनोन्स।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—मृदुरेचन। चरकोक्त (सू० अ० २) विरेचन द्रव्यों में तथा (सू० अ० ४) कुष्ठघ्न एवं कण्डूघ्न महाकषायों के द्रव्यों में और तिक्त स्कन्ध (वि० अ० ८) तथा सुश्रुतोक्त आरग्वधादि और श्यामादिगण एवं अधोभागहर द्रव्यों में 'आरग्वध' या 'कृतमाल' भी है।

मुख्य योग—आरग्वधारिष्ट, आरग्वधादिसूत्रवर्ति एवं लड्डक अमलतास आदि।

विशेष—इसके ताजे पुष्पों का उपयोग गुलकन्द बनाने के लिये किया जासकता है।

अम्लवेतस (अमलवेत)
(थैकल ?)

नाम। सं०—अम्लवेतस, शतवेधि। हिं०—अमलवेत। बं०—थैकल। ले०—गार्सीनिआ पेडुन्कुलाटा (**Garcinia pedunculata** *Roxb.)*।

वानस्पतिक कुल। वृक्षाम्ल-कुल (गुट्टीफेरी *Guttiferae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तर-पूर्वी बंगाल, आसाम (सिलहट, मनीपुर) आदि में 'थैकल' के जंगली वृक्ष पाये जाते हैं। खट्टे फलों के लिए इसके वृक्ष लगाये भी जाते हैं। कलकत्ता बाजार में पक्व फलों के सुखाये हुए टुकड़े प्रचुरता से बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—थैकल के १५.२३ मीटर से १८.२८ मी० या ५० फुट से ६० फुट ऊंचे वृक्ष होते हैं, जिसका काण्डस्कन्ध आधार की ओर कुछ फूला हुआ, शाखाएँ प्रायः छोटी तथा चारों ओर फैली होती हैं। पत्तियाँ १५ सें० मी० से ३० सें० मी० या ६ इंच से १२ इंच लम्बी, ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ३ इंच से ५ इंच चौड़ी, रूपरेखा में अभिलट्वाकार या अभि-भालाकार, मध्यशिरा मोटी और स्पष्ट होती है। जनवरी से मार्च तक पुष्प आते हैं, और फल अगले मई-जून में पकते हैं। फल, गोल, नासपाती के आकार का, किन्तु उसका अपेक्षा दुगुना या तिगुना बड़ा, कच्चे पर हरा और पकने पर पीला और चिकना होता है। इसके गूदे का रस अत्यंत तीक्ष्ण एवं खट्टा होता है। इसमें सूई गल जाती है। कलकत्ते में फलों के सुखाये हुए टुकड़े 'थैकल' के नाम से बिकते हैं, जिसका प्रयोग वर्गीय वैद्य अम्लवेतस के स्थान में करते हैं।

उपयोगी अंग—फल।

मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम (११.६ ग्राम) या ३ माशा से ६ माशा (१ तोला) तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—थैकल कलकत्ता के बाजारों में एक अत्यम्ल, शुष्क, परंतु कृष्णवर्ण द्रव्य मिलता है, जो आकार में आम या गलगल (नीबू) के शुष्क टुकड़ों की भाँति होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—अम्लवेतस एक संदिग्ध द्रव्य है। अतएव भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस नाम से अनेक द्रव्य प्रचलित हैं। उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं मध्य भारत आदि में अम्लवेतस के नाम से तन्तुओं (टहनियों) के गुच्छे से मिलते हैं, जो स्वाद में अत्यंत खट्टे होते हैं। यह सभवतः रेवन्दचीनी की सुखाई हुई टहनियाँ होती हैं। कहीं-कहीं अम्लवेत के नाम से नीबू जाति के सीट्रस मैक्सिमा **Citrus maxima**(*Burm.*)*Merrill*(पर्याय सीट्रस डेकूमाना **Citrus decumana** *Linn.*)नामक वृक्ष के फल व्यवहृत होते हैं। इसके फल आकार में गोले तथा बहुत बड़े (व्यास में ६.८ इंच), पकने पर पीले या रक्तपीतवर्ण के होजाते हैं। गूदा सफेद या लाल तथा अत्यंत खट्टा होता है। अम्लवेत के स्थान पर 'थैकल' एवं उक्त 'चकोत्रा नीबू' का व्यवहार किया जा सकता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों को कतरेनुमा काटकर सुखाकर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—थैकल में प्रधानतः सेवाम्ल या मेलिक एसिड (१३% से २०%) तक पायाजाता है। चकोत्रे नीबू में सीट्रिक एसिड, गन्धकाम्ल, शर्करा प्रभृति तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—अम्ल (अति)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विपाक–अम्ल । वीर्य–उष्ण । कर्म-रोचन. दीपन–पाचन, अनुलोमन, भेदन, हृदयोत्तेजक, हिक्कानिग्रहण, कासश्वासहर, मूत्रल, पित्तरक्तसंशमन। यूनानी मतानुसार अमलवेद दूसरे दर्जे से में शीत एवं रूक्ष है। इसका रस (अथवा फल) दीपन-पाचन चूर्णों में मिलाकर खिलाते हैं। नीबू के रस की भाँति इसके रस के शर्बत से पित्त एवं रक्तगत उद्वेग शमन होता है। चरकोक्त (सू० अ० ४) दीपनीय, हृद्य एवं श्वासहर महाकषायों में 'अम्लवेतस' भी है।

अयापान

नाम। हिं०, बं०, गु०–अयापान। अं०–अयापान-टी (*Ayapana Tea*)। ले०–एउपाटोरिडम् अयापाना **Eupatorium ayapana** *Vent.*(पर्याय–*E. triplinerve Vahl.*)।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजिटी:*Compositae*)।

प्राप्तिस्थान–अयापान वास्तव में अमेरिका का आदिवासी पौधा है। सम्प्रति समस्त भारतवर्ष के बगीचों में लगाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय–आयापान के सुगन्धित गुल्मक होते हैं, जिसकी शाखाएँ चिकनी एवं फैली हुई तथा स्वावलम्बी, और पत्तियाँ छोटे वृन्तयुक्त (*sub-sessile*), रूपरेखा में भालाकार एवं लम्बाग्र, चिकनी तथा तीन स्पष्ट शिराओं से युक्त, काण्ड पर अभिमुखक्रम से स्थित होती हैं। पुष्प सिलेटी नीलेरंग के होते हैं, जो मुण्डकों में निकलते हैं। (फल) ऐकीन (*achenes*) पंचकोणीय एवं रुण्डित (*truncate*) होता है।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग (विशेषतः पत्र)।

मात्रा। पत्रस्वरस–३ माशा से १ तोला तक।
प्रवाही घनसत्व (*Liquid Extract*)–३० बूंद से ६० बूंद।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–अयापान की पत्तियों में एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में भी यह सुगंधित होती हैं। इनमें कम-से-कम १% उड़नशील तैल, ०.१% अयापिन (*Ayapin*) एवं अयापानिन (*Ayapanin*) नामक तत्त्व पाये जाते हैं। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं। इनके आधार पर इसकी परीक्षा करें।

संग्रह एवं संरक्षण–प्रगल्भ पत्तियों को संग्रहीत कर छाया-शुष्क कर लें और अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखें।

संगठन–अयापान की पत्तियों में (१.१३%) एक उड़नशील तेल पाया जाता है। सूखी पत्तियों में एक क्रिस्टलाइन सत्व ($C_{12}H_{10}O_4$) तथा ताजी पत्तियों में अयापिन एवं अयापानिन नामक दो क्रिस्टलाइन स्वरूप के तत्त्व पाये जाते हैं, जिनमें तीव्र रक्तस्तम्भक गुण पाया जाता है।

स्वभाव–अयापान एक उत्तम रक्तस्तम्भक औषधि है। इसकी यह क्रिया स्थानिक प्रयोग से तथा आन्तरिक रक्तस्रावी अवस्थाओं में मौखिक सेवन से होती है। एतदर्थ ताजी पत्तियों का स्वरस अधिक उपयुक्त होता है। शोणितमेह एवं रक्तष्ठीवन आदि में इसका स्वरस अथवा प्रवाही घनसत्व तथा रक्तार्श आदि में स्थानिक क्रिया के लिए इसका व्यवहार मलहर के रूप में कर सकते हैं। मौखिक सेवन से साधारण मात्राओं में यह हृदयोत्तेजक एवं बल्य प्रभाव भी करता है; किन्तु अधिक मात्रा में सारक होता है। पत्तियों का उष्णफाण्ट कुछ हृल्लासजनक, स्वेदजनन एवं शीतप्रशमन होता है।

अरणी—देखो 'अग्निमन्थ'।

अर्जुन

नाम। सं०–अर्जुन, पार्थ, ककुभ। हिं०–अर्जुन, कोह, कौह, कहुआ। म०–अर्जुनसादडा। पं०–जुमरा। ता०–मरुतै। ते०–तेल्लमद्दि। बं०–अर्जुन। ले०–टेर्मिनालिआ अर्जुना **Terminalia arjuna** *W. & A.*।

वानस्पतिक कुल–हरीतक्यादि-कुल (कॉम्ब्रेटासी : *Combretaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में, विशेषतः हिमालय की तराई में, छोटा नागपुर, मध्य भारत, मध्य प्रदेश, बम्बई एवं मद्रास के जंगलों में इसके स्वयंजात वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। बगीचों में तथा सड़कों के किनारे लगाये हुए वृक्ष भी मिलते हैं। ब्रह्मा के जंगलों में भी यह पाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय–अर्जुन के ऊँचे-ऊँचे १८.२९ मी० से २४.३८ मी० (६० से ८० फुट) तथा पतझड़ करने वाले (*deciduous*) विशाल वृक्ष होते हैं। छाल (*bark*) बाहर से श्वेताभ (*whitish*) तथा अन्दर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से चिकनी, मोटी एवं हल्के गुलाबी रंग की (*pinkish grey*) होती है, जो पतले-पतले चप्पड़ों (*thin flakes*) में छूटती है। इसकी पत्तियाँ लगभग अभिमुख (*sub-opposite*), ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० (३ इंच से ८ इंच) तक लम्बी, रूपरेखा में दीर्घवत् या आयताकार (*oblong*) या अंडाकार (*elliptic*), कुण्ठिताग्र (*obtuse*) अथवा किन्हीं-किन्हीं में अग्र पर सहसा नुकीली (*shortly acute*) तथा बनावटमें चर्मिल (*coriaceous*) होती हैं। इसकी पत्तियों के किनारे सरल या किन्हीं-किन्हीं में सूक्ष्मदन्तुर (*crenulate*) होते हैं। पर्णवृन्त छोटा (लगभग ½ सें० मी० या किंचित् अधिक) तथा दो ग्रंथियों से युक्त होता है। पुष्प पीताभवर्ण के तथा शाखाग्रों पर खड़ी पुष्पगुच्छमय मंजरियों (*erect terminal panicles*) में निकलते हैं। पुष्पों में प्रायः दलपत्र (*petals*) नहीं होते। फल देखने में कमरख की तरह तथा ५–७ पंखसदृश उभारों (*wings*) से युक्त, किन्तु कड़े (*woody*) तथा २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इंच से २ इंच) लम्बे होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में पुष्प एवं शरद् में फल आते हैं।

उपयोगी अंग—काण्ड-त्वक् (तने की छाल)।

मात्रा। त्वक् चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशासे ३ माशा)। क्षीरपाक में-६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १ तोला)। क्वाथ—२३ ग्राम से ४६ ग्राम (२ तो० से ४ तो०)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में मिलने वाली छाल विभिन्न लम्बाई की तथा चपटी या अन्दर की ओर किंचित् मुड़ी हुई (*half quills*) होती है। यह टुकड़े १५ सें० मी० (६ इंच) तक लम्बे, १० सें० मी० (४ इंच) तक चौड़े एवं ३.१२५ मि० मी० से १० मि० मी० (⅛ इञ्च से ⅜ इंच) तक मोटे होते हैं। बाह्य वल्कल या एपिडर्मिस (*epidermis*) पतला एवं खाकस्तरी रंग (*grey*) का किन्तु अन्तस्त्वचा गुलाबी (*pink*) रंग की होती है। मुख में चाबने पर छाल का अन्तर्वस्तु रेशेदार तथा कुरकुरा एवं कसैला होता है। छाल का अन्तस्तर (*internal surface*) हल्के रंग का तथा सूक्ष्म रेखांकित (*finely striated*) होता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतय २% होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—अर्जुन की छाल को सुखा कर अनार्द्र-शीतल स्थान में बन्द डिब्बों में रखें।

संगठन—इसमें अर्जुनीन (*Arjunine*) नामक रंगहीन, क्रिस्टलाइन तत्त्व, अर्जुनेटिन (*Arjunetin* $C_{11}H_{12}O_4$), लेक्टोन एवं टैनिन (१५½%), एक उत्पत् तैल, तथा २५%तक जल में घुलनशील कैल्सियम्-साल्ट्स तथा अल्पमात्रा में मैगनीसियम् साल्ट, आर्गेनिक एसिड्स एवं रंजक तत्त्व (*colouring matter*) पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—हृद्य। प्रधानकर्म—रक्तस्तम्भक, हृद्य, रक्तपित्तशामक, प्रमेहनाशक। चरकोक्त (सू० अ० ४) उदर्दप्रशमनमहाकषाय एवं कषायस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) सालसारादि गण एवं न्यग्रोधादि गण के द्रव्यों में अर्जुन भी है।

मुख्य योग—अर्जुनारिष्ट, अर्जुनघृत, ककुभादि चूर्ण, अर्जुन क्षीरपाक।

विशेष—अंग्रेजी दवाखानों में अर्जुन की छाल का प्रवाही घनसत्व (लिक्विड एक्स्ट्रैक्ट) भी मिलता है। मात्रा—३० बूँद से ६० बूँद।

अलसी (तीसी)

नाम। सं०—अतसी, नीलपुष्पी, क्षुमा। हिं०—अलसी, तीसी। बं०—मशिना। म०—जवस। गु०—अलसी। क०—अलिश। अ०—कत्तान। फा०—तुख्मे कत्तान। अं०—लिनसीड (*Linseed*), फ़्लैक्सीड (*Flax Seed*)। ले०—(१) बीज—लीनुम् (*Linum*), लीनी सेमिनी (*Lini Seminae*)। (२) वनस्पति—लीनुम्-ऊसीटाटीस्सिमुम् (**Linum usitatissimum** *Linn.*)। इस पौधे के रेशों से बने कपड़े (क्षौमवस्त्र) को भी अरबी में कत्तान कहते हैं।

वानस्पतिक कुल। अतस्यादि-कुल (लीनासी *Linaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में जाड़े की फसल के साथ तीसी की काफी परिमाण में खेती की जाती है। हिमालय प्रदेश में भी १.८ किलोमीटर या ६००० फुट की ऊँचाई तक तीसी बोई जाती है। इसके अतिरिक्त विदेशों में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका (*U. S. A.*), कनाडा, रूस, आर्जेन्टाइना एवं हालैंड तथा मिस्र आदि में भी प्रचुर मात्रा में तीसी की खेती की जाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय—भारतवर्ष में तीसी जाड़े की फसल में गेहूं, जौ, चने के साथ बोयी जाती है। इसके २ से ४ फुट तक ऊँचे तथा कोमल, एकवर्षायु क्षुप होते हैं। पत्तियाँ-छोटी, रेखाकार-भालाकार, अग्र नुकीला (*acute*) तथा फलक तीन स्पष्ट नाड़ियों से युक्त (*3-nerved*) होते हैं। पुष्प आसमानी रंग के, व्यास में १ इंच तक (*2.5 cm. across*) तथा पुष्पव्यूह सवृन्तकाण्डज होता है, जो समस्थकाण्डज की भाँति (*corymbose panicles*) मालूम होता है। इसमें छोटे-छोटे गोल, घुंडीदार फल (*globular capsules*) लगते हैं, जो अन्दर कई कोष्ठों में विभक्त होते हैं। प्रत्येक फल में १०, चपटे, चमकदार, चिकने तथा चपटे एवं गाढ़े भूरेरंग के बीज पाये जाते हैं। देश एवं उत्पत्तिस्थान भेद से तीसी के बीजों के आकार-प्रकार एवं रंग में भेद पाया जाता है। इस प्रकार श्वेत, पीत, रक्त एवं कुछ कालापना लिये भेद से तीसी के बीज कई प्रकार के प्राप्त होते हैं। इसमें उष्ण प्रदेशों की तीसी आकार में अपेक्षाकृत बड़ी एवं भूरे या लाल रंग की होती है। यह अधिक उत्तम समझी जाती है। तीसी के पौधे से बहुत उत्तम प्रकार का रेशा (*fibres*) प्राप्त किया जाता है, जिससे कपड़ा बनाया जाता है। इसके कपड़े को क्षौम या कत्तान (लिनेन *Linen*>लोन) कहते हैं।

उपयोगी अंग—बीज एवं बीजों से प्राप्त तैल (तीसी का तेल) एवं पुष्प। बीजचूर्ण का बाह्यतः प्रयोग पुल्टिस के रूप में होता है। सांस्थानिक क्रिया के लिए चूर्ण एवं बीजों से प्राप्त लुआब (*mucilage*) का व्यवहार मुखद्वारा किया जाता है। तीसी का तेल एक मीठा तेल होता है, जो जलाने एवं खाने के काम में लाया जाता है, तथा औषधीय रूप में भी व्यवहृत होता है।

मात्रा। बीजचूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। तैल—६ माशा से १ तोला।

पुष्प-कल्क—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। बीज—अलसी के बीज स्वाद में तैलीय एवं लसदार होते हैं। जल में भिगोने पर बीज एक पतले, फिसलनदार एवं वर्णरहित श्लैष्मिक कला के आवरण से आवृत हो जाते हैं। यह शीघ्र जेलीरूप में घुल जाता है, तथा बीज कुछ फूल जाता एवं उनका पालिश जाता रहता है। बीजाण्डद्वार (*micropyle*) तथा नाभि (*hilum*) नुकीले सिरे के पास स्थित होते हैं। ताजे, भारी और मोटे बीज उत्तम होते हैं। तीसी का चूर्ण (लीनुम कॉन्टूसुम *Linum Contusum* (*Linum Contus.*)—ले०; क्रश्डलिनसीड *Crushed Linseed*; लिनसीड मील (*Linseed Meal*)—अं०। यह पीताभ-भूरेरंग का स्थूल चूर्ण (*coarse powder*) होता है, जिसमें बीज के भूरे छिलके (*brown testa*) के छोटे-छोटे कण दिखाई देते हैं। गर्म जल में मिलाने पर इसके गंध एवं स्वाद में कोई विकृति नहीं होती। प्रयोग करना हो तब ताजा चूर्ण बनाना चाहिए।

परीक्षण—तीसी के बीजों में सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% होते हैं। भस्म (*ash*)—अधिकतम ५%। अम्ल में अघुलनशील भस्म (*acid-insoluble ash*)—अधिकतम १%। जलमें घुलनशील सत्व (*water-soluble extractive*) कम-से-कम १५%। स्थिर तैल (*fixed oil* : तीसी का तेल) कम-से-कम ३०%। स्टार्च एवं स्टार्चबहुल अन्य बीजों के परीक्षण के लिए निम्न परीक्षा कर सकते हैं—१ ग्राम (८ रत्ती) तीसी के चूर्ण को ५० सी० सी० आसुत जल (*distilled water*) में मिला कर उबालें। विलयन ठंढा होनेपर इसे छान लें। पुनः छाने हुए द्रव में आयोडोन सॉल्यूशन मिलावें। स्टार्च की उपस्थिति में विलयन का रंग हल्का नीला हो जाता है।

मिलावट एवं प्रतिनिधि द्रव्य—कभी-कभी इसमें सफेद अग्राह्य बीज (*white linseed*) मिले होते हैं। चूंकि तीसी प्रायः गेहूँ, सरसों आदि अन्य अनेक बीजों के साथ बोयी जाती है, अतएव व्यावसायिक बीजों में ये बीज भी मिले होते हैं। इनको छलनी द्वारा पृथक् कर देना चाहिए। पुल्टिस के लिए प्रयुक्त बीजों से तो कम-से-कम सरसों, राई आदि तीक्ष्ण एवं क्षोभक प्रभाव करने वाले बीज अवश्य पृथक् कर देने चाहिए। तीसी के चूर्ण में इसकी खली के चूर्ण (*powdered linseed cake*) का मिलावट किया जा सकता है। इससे स्थिर तैल की प्राप्ति बहुत कम (६% से ८%) होती है। वैसे तीसी चूर्ण से बीजों की भाँति कम-से-कम ३०% तैल मिलना चाहिए।

(२) अलसी या तीसी का तेल (ओलियम् लोनी *Oleum Lini* (*Ol. Lini*)—ले०; लिनसीड ऑयल (*Linseed*

Delhi Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Oil)–अं० । यह एक स्थिरतैल (*fixed oil*) या मीठा तेल होता है, जो तीसी के सुखाये हुए पक्व बीजों से कोल्हू में पेरकर प्राप्त किया जाता है। यह पीताभ-भूरे द्रव के रूप में प्राप्त होता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की हल्की गंध होती है, तथा स्वाद में मीठा (*bland*) होता है। हवा में अधिक समय तक खुला रहने से कुछ गाढ़ा हो जाता है। इस क्रिया से रंग भी गाढ़ा हो जाता तथा गंध कुछ उग्र हो जाती है। अब चखने से कुछ कड़वा-सा (*acrid*) मालूम होता है। इस तेल को पतला लेप के रूप में फैलाने से चमकीले वार्निश की तरह जमजाता है। इसीलिए जिस पात्र में बराबर तीसी का तेल रखा जाता है, उसपर गाढ़े रंग का वार्निश-सा चिट्ट जमा हो जाता है। यह–१५° तापक्रम पर जमने लगता है। २०° तापक्रम पर प्रति मिलि-लिटर (सी० सी०) तेल का भार ०.९२४ से ०.९३४ ग्राम होता। आपेक्षिक गुरुत्व–०.९२४–०.९३४। अपवर्तनांक (*Refractive Index*) ४०° पर १.४७२५-१.४७५०।

एसिड वैल्यू (*Acid Value*)–अधिकतम ५।

आयोडीन वैल्यू (*Iodine Value*)–१७० से २००।

साबुनीकरण वैल्यू (*Saponification Value*) १८७ से १९५।

मिलावट–इसमें खनिज तैलों (*Mineral oils*), राल (*Resins*) तथा रालीय तेल (*resin oils*) अथवा अन्य सस्ते मोटे तेल विशेषतः कुसुम्भ या बर्र के तेल का मिलावट किया जाता है।

परीक्षण–(१) न सूखने वाले तेल (*Non-drying oils*)—तीसी के तेल का शीशे पर प्रलेप करने से यह वार्निश की भाँति सूखजाता है। न सूखने वाले तेलों का मिलावट होने पर ऐसा नहीं होता। (२) खनिज तेल–पोटैसियम् हाइड्राक्साइड के एल्कोहॉलिक विलयन में थोड़ा-सा तीसी का तेल मिलाकर साबुनीकरण करें। इस घोल में पुनः आसुत जल (*distilled water*) मिलाने से यदि विलयन स्वच्छ हो जाय और उसमें तैलीय बिन्दु न दिखें, तो यह खनिज अम्लों के अभाव का द्योतक होता है। रेजिन एवं रेजिन आयल्स–२ मि० लि० (सी०सी०) तेल में २ मि० लि० एसीटिक ऐन्हाइ-ड्राइड (*Acetic Anhydride*) मिलावें और इस मिश्रण को खूब हिला कर रख दें। अब दूसरे पात्र में भार से २ भाग सल्फूरिक एसिड तथा १ भाग जल मिलावें। पहले वाले मिश्रण में कतिपय बूंद दूसरा मिश्रण मिलावें। यदि अब मिश्रण का रंग बैंगनी न हो तो यह मिलावट का अभावद्योतक है।

संग्रह एवं संरक्षण–सुखाये हुए पक्व तीसी के बीजों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। तीसी चूर्ण एवं तेल को अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में रखना चाहिए।

संगठन–(१) बीज–तीसी के बीजों में ३०%से४०%तक स्थिर तैल (*fixed oil*), २०% से २५% तक प्रोटीन, तथा ६% लवाब (म्यूसिलेज) पाया जाता है। लवाबी अंश प्रायः बीज के छिलके या बाह्यस्तर (*epidermis*) में होता है। इसके अतिरिक्त कुछ मौमीय पदार्थ (*wax*), रालीयपदार्थ (*resin*) तथा फास्फेट्स एवं १८% तक शर्करांश एवं अत्यल्प मात्रा में लाइनेमेरिन (*Linamarin : phaseo-lunatin*) नामक ग्लाइकोसाइड भी पायाजाता है। कच्चे बीजों में स्टार्च के कण पाये जाते हैं। कच्चे बीजों एवं पुष्प में अत्यल्प मात्रा (०.६९% तक) हाइड्रोसायनिक एसिड तथा लाइपेरीन (*liparine*) नामक ऐल्केलॉइड भी पाया जाता है।

(२) तैल–तेल में प्रधानतः लिनोलीक (*linoleic*) तथा लिनोलेनिक एसिड्स के ग्लिसराइड्स तथा ८%से १०%तक घनवसाम्ल (*solid fatty acids*) होते हैं।

वीर्यकालावधि–बीजों में २ वर्षतक वीर्य रहता है। तथा तैल अच्छी तरह सुरक्षित करने से चिरकाल पर्यन्त सक्रिय रहता है। चूर्ण का प्रयोग प्रायः ताजा ही करना चाहिए।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस–मधुर, तिक्त। विपाक-कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म-बाह्यतः स्थानिक प्रयोग से शोथविलयन एवं फोड़े-फुन्सी को शीघ्रतापूर्वक पकाता है। इसका लुआब कफनिस्सारक एवं कासहर है। बीज एवं तैल पौष्टिक, वाजीकर एवं किंचित् सर हैं। यूनानीमतानुसार तीसी के बीज पहले दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष तथा तेल उष्ण एवं तर होता है। अग्नि-दग्ध पर इसका तेल चूने के पानी में मिलाकर लगाने से फौरन लाभ होता है। अहितकर–मन्दाग्निकारक है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवारण–धनिया और सिकंजबीन। प्रतिनिधि–मेथी के बीज।

मुख्य योग–अतस्यादिलेप, मरहमदाखोलून। शल्य-चिकित्सा में तीसी के पुल्टिस (उपनाह) का प्रयोग शोथपाचन के लिए किया जाता है।

असगंध (अश्वगंधा)

नाम। सं०–अश्वगंधा, वाराहकर्णी। हिं०-असगंध, आकसन अकसन। म०-डोरगूंज, आसंध। गु०-आसंध, घोड़ाआहन घोड़ा आकुन। फा०–बहमने बरीं। अं०-विन्टर-चेरी *(Winter-Cherry)*। ले०--विदानिआ सोम्नीफ़ेरा **Withania somnifera** *Dunal.* (पर्याय--*W. asvagandha ?*)

वानस्पतिक कुल–कण्टकारी-कुल (सोलानासी *Solanaceae*)।

प्राप्तिस्थान। प्रायः समस्त भारतवर्ष, विशेषतः शुष्क प्रदेशों तथा हिमालय प्रदेशों में १६६१.३८ मीटर (१.६६ कि० मी०) या ५,५०० फुट की ऊँचाई तक इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। कहीं-कहीं इसकी खेती भी की जाती है। पहले असगंध नागौर प्रदेश में बहुत होता था, और वहाँ से सर्वत्र भेजा जाता था। इसी हेतु इसको नागौरी असगंध भी कहते हैं। यही असगंध सर्वोत्तम होता है।

संक्षिप्त परिचय–असगंध के १.५ मीटर से १.८ मीटर या ५ से ६ फुटतक ऊँचे तथा सीधे गुल्मक *(erect undcrshrub)* प्रायः शाखा-बहुल होते हैं। पत्र जोड़े-जोड़े, ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ से४इंच लम्बे तथा २.५ सें०मी० से ५ सें० मी० (१ से २ इंच) चौड़े, बाह्यरूपरेखा में चौड़े-लट्वाकार, अग्र की ओर क्रमशः कम चौड़े (*subacute*) तथा पत्र-तट अखण्डित, पत्रवृन्त ⅝ सें० मी० से ⅝ सें० मी० (¼ से ¼) इंच लम्बे होते हैं। असगंध का समस्त पौधा सूक्ष्म श्वेतरोमावृत होता है। ताजे पौधे को मसल कर सूँघने से घोड़े के मूत्र की भाँति गंध आती है। इसीलिए इसको 'अश्वगंध' कहा जाता है। उक्त गंध अपेक्षाकृत इसकी ताजी जड़ में अधिक पायी जाती है। पुष्प हरिताभ अथवा बैंगनी आभालिये पीताभ तथा वृन्तरहित (*sessile*) अथवा ह्रस्ववृन्त (*subsessile*) तथा पत्रकोणोद्भूत छत्रकसम गुच्छकों *(umbelliform cymes)* में पाये जाते हैं। प्रत्येक गुच्छक में ५-५ पुष्प होते हैं। बाह्यदलपुंज या कैलिक्स (*calyx*), घंटिकाकार तथा मृदुरोमावृत होता है, जो फलों के साथ बढ़कर उनको रसभरी के फलों की भाँति आवृत कर लेता है। किन्तु अग्रपर यह खुला होता है। अग्रपर यह ५-६ खण्डों में विभक्त (*5-6 toothed*) होता है। दलपुंज या कोराला घंटिकाकार, बाह्यतलपर मृदुरोमावृत तथा ३-६ खण्डों में विभक्त होता हैं। पुंकेशर संख्या में पाँच, फल (*berries*) छोटे, लाल, मसृण, मटराकार तथा एक झिल्लीवत् कुन्ड (*calyx*) से आवृत और शिखर पर खुले होते हैं। बीज, असंख्य अति क्षुद्र, ⅛ इंच लम्बे, पीताभ श्वेत, रूपरेखा में वृक्काकार, पार्श्वद्वय संकुचित तथा बीजवाह्यावरण अर्थात् बीजचोल (*testa*) मधुमक्खी के छत्ते की भाँति होता है। इसके बीजों से दूध जमजाता है।

उपयोगी अंग–मूल, पत्र एवं बीज तथा क्षार।

मात्रा–मूल ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। क्षार–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–असगंध की जड़ मूली की भाँति कुछ-कुछ शंक्वाकार किन्तु उसकी अपेक्षा काफी पतली, पेन्सिल की मोटाई से लेकर २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१इंच से १॥ इंच) व्यास की मोटाईतक तथा ३० सें०मी० से ४५ सें०मी० (१ फुटसे १॥ फुट)तक लम्बी होती है। बाह्य तल पर हल्के धूसर वर्ण की किन्तु तोड़ने पर भीतर सफेद होती है। स्वाद में यह तिक्त होती है। बाजारों में मिलने वाली शुष्क जड़ १० सें मी० से २० सें० मी० (४ से ८ इंच) लम्बी अथवा छोटे-बड़े टुकड़ों के रूप में होती है। शिखर से किंचित् नीचे स्थूलतम भाग की मोटाई का व्यास ६.२५ मि०मी० से १२.५ मि० मी० (¼ से ½ इंच) होता है। यह मसृण, चिक्कण बाहर से हल्का पीताभ धूसरवर्ण का और भीतर से श्वेत तथा तोड़ने पर भंगुर (*fracture short and starchy*) होता है। मूल विरला ही सशाख होता है। शिखर से संश्लिष्ट कतिपय कोमल काण्ड के अवशेष वर्तमान होते हैं। असगंध स्वयंजात (जंगली) और खेती कियाहुआ दो प्रकार का होता है। बाजारू असगंध प्रायः खेती किये हुए पौधों का जड़ होता है। जंगली पौधों की अपेक्षा कर्षित पौधों की जड़ों में स्टार्च का संग्रह अधिक पाया जाता है, और इसके स्वरूप, गुणों एवं रसादिक में भी कुछ अन्तर हो जाता है। आभ्यन्तर प्रयोग के लिए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाजारू या खेती किए हुए पौधों की जड़, तथा लेपादि बाह्यप्रयोग तथा तैलादि में जंगली असगंध के मूल लेने चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण–उत्तम जड़ों को लेकर सुखा लें और वायु-धूलि रहित अनार्द्र एवं शीतल स्थान में मुखबन्द डिब्बों में रखें।

संगठन–अश्वगंधा की जड़ में एक उड़नशील तेल तथा विथेनिओल (*Withaniol* $C_{25}H_{35}O_5$) नामक तत्त्व पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सोम्नीफेरिन (*Somniferin* $C_{12}H_{16}N_2$) नामक क्रिस्टलाइन ऐल्केलॉइड एवं फाइटॉस्टेरोल (*Phytosterol*) आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, कषाय, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य-उष्ण। प्रधान कर्म-वातकफनाशक, बल्य, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, नाड़ीबल्य, दीपन-पाचन आदि। अहितकर-उष्ण प्रकृति को। निवारश-कतीरा एवं घी। प्रतिनिधि-बहमन सफेद (कामशक्ति वर्धक एवं कटिमूलादि के लिए), मीठा कूट (श्वास-कासहर प्रभाव के लिए), सूरंजान (आमवात या गठिया आदि के लिए)। चरकोक्त (सू० अ० ४) बृंहणीय एवं बल्य महाकषायों तथा मधुरस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में अश्वगंधा भी है।

मुख्य योग–अश्वगंधादिष्ट, चूर्ण, अश्वगंधारिष्ट, अश्वगंधा-रसायन, अश्वगंधाघृत।

विशेष–साधारणतः अश्वगंधा की जो जड़ें बाजार में मिलती हैं, वे कृषिजन्य पौधों की जड़ें होती हैं। इन्हें 'नागौरी असगंध" कहते हैं। असगंध के पौधे वन्यज या स्वयंजात स्वरूप के पाये जाते हैं। तैलादि पाक के लिए अथवा अन्य बाह्य उपयोग के लिए ये अधिक उपयुक्त होते हैं। एतदर्थ इनका ग्रहण ताजी अवस्था में करना अधिक श्रेयस्कर है। क्योंकि, अश्वगंधा का भी उल्लेख उन द्रव्यों के साथ मिलता है, जिनका प्रयोग आर्द्रावस्था में करना चाहिए। वीदानिआ कोआगुलान्स (**Withania coagulans Dunal.**) अश्वगंध की एक निकटतम जाति है, जिसे पुनीर या देशी असगंध कहते हैं। पंजाब, सिंध, अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान आदि प्रदेशों में अथवा भारतवर्ष में अन्यत्र भी इतस्ततः इसके जंगली पौधे मिलते हैं। इसके फलों का उपयोग रेनेट की भाँति दूध जमाने के लिए किया जाता है।

आंबाहल्दी (आम्रहरिद्रा)

नाम। सं०–कर्पूरहरिद्रा, बनहरिद्रा। हिं०–आंबाहल्दी। फा०–दारचोबा। अं०–मेंगो जिंजर (*Mango Ginger*), वाइल्ड टर्मेरिक (*Wild Turmeric*)। ले०–कुर्कुमा आरोमाटिका (**Curcuma aromatica** *Salisb.*)।

वानस्पतिक कुल। हरिद्राकुल (स्किटामिनासी *Scitaminaceae*)।

प्राप्तिस्थान–जंगली प्रदेश, विशेषकर पूर्वी हिमालय, बंगाल आदि में यह स्वयंजात होती हैं, तथा कहीं-कहीं इसकी खेती भी की जाती है। कंद पसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त परिचय। क्षुप-द्विवर्षायु, काण्डहीन, हरिद्राक्षुप के समान किन्तु पत्र अपेक्षाकृत बड़े और गोल, जो ३० सें० मी० से ६० सें० मी० (१ से २ फुट) लम्बे, गोल, स्निग्ध, बैंगनी हरित वर्ण तथा विशिष्ट गन्धयुक्त होते हैं।

उपयोगी अंग–कन्द।

मात्रा। चूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–आंबाहल्दी के कन्दों का चौड़ा भाग रूप-रेखा में आयताकार अथवा शंक्वाकार, व्यास लगभग ५ से० मी० या २ इंच या कभी-कभी इससे भी अधिक, बाह्यतल गाढ़े खाकस्तरी या भूरेरंग का, जिसपर जगह-जगह मुद्रिकाकार चिह्न तथा मोटे सूत की भाँति इतस्ततः निकली हुई रचनाएँ मालूम होती हैं। किन्हीं-किन्हीं कन्दों के सिरों पर गोलाकार शाखाएँ अथना भौमिक काण्ड लगा होता है। आंबाहल्दी को तोड़ने पर टूटा हुआ तल हल्दी की भाँति गाढ़े नारंगी के रंग का दिखाई पड़ता है। कन्दों से कपूर की-सी उग्र गन्ध आती है।

संग्रह एवं संरक्षण–शुष्क कन्द को ग्रहण कर सूखे और निर्वात स्थल पर भलीभाँति मुखबन्द शीशियों में रखें।

संगठन–सुगन्धित एवं उड़नशील तैल।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। रस–तिक्त, कटु। गुण–लघु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण।

मुख्य योग–दार्वी रसाञ्जन।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आँवला (आमलकी)

नाम। सं०—आमलकी, धात्रीफल। हिं०—आँवला। अ०—आमलज। फा०—आमलह। अं०—एम्बलिक माइरोबलन्स (*Emblic Myrobalans*)। ले०—एम्बलिका ऑफ़ीसिनालिस (**Emblica officinalis** *Gaertn.*) (पर्याय—*Phyllanthus emblica Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। एरण्ड-कुल (एउफॉर्बिआसी *Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान-समस्त भारत, लंका, चीन, तथा मलाया आदि में आँवले के वृक्ष बहुतायत से आरोपित किये जाते हैं। जंगलों में इसके स्वयंजात वृक्ष भी पाये जाते हैं, किन्तु इनसे प्राप्त फल छोटे तथा अधिक कसैले होते हैं। बलमी आँवला के फल काफी बड़े (१ तो० से ½ छटाँक तक) होते हैं। पक्व हरे फल जाड़ों में बाजारों में बिकते हैं। सुखाये हुए पक्व तथा अपक्व फल पंसारियों के यहाँ हमेशा मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय। वृक्ष-मध्यमाकारी। कांड-धूसर-स्निग्ध। शाखा-साधारण गोल। पत्र-पीताभ, आकृति में इमली-पत्र के समान, लम्ब-गोल, ⅓ सें० मी० से ⅝ सें० मी० (०.३ से ०.५ इंच) लम्बे लघुवृन्तयुक्त (*subsessile*) पतली-पतली अनुशाखाओं पर सघन द्विपंक्तिक्रम से स्थित। पुष्प-एकलिंगी, सघन, हरिताभ पीत। पुष्पवृन्त-छोटा। नरपुष्प—बहुसंख्यक। पुष्प-बाह्य कोषदल—लम्बगोल, कुंठिताग्र, $\frac{1}{10}$ इंच लम्बा। परागकोष संख्या में ३। स्त्रीपुष्प-अल्पसंख्यक; पुष्पबाह्यकोषदल, नरपुष्प के समान। गर्भाशय—त्रिकोषीय। फल—मांसल, पीताभ हरित, अंडाकार, ६ रेखाओंयुक्त, व्यास में लगभग ७.५.१० सें० मी० या ३-४ इंच। बीज—संख्या में त्रिकोणाकार, कठोर। पुष्पागम काल—आश्विन।

उपयोगी अंग—फल (ताजे एवं शुष्क)।

मात्रा। फलचूर्ण ३ ग्राम से ११.६ ग्राम (३ माशे से १ तोला)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—आँवले के ताजे फल अखरोट के फलों के बराबर तथा गोलाकार, गूदेदार, चिकने तथा पीताभ-हरित वर्ण के होते हैं। इस पर खरबूजे की भाँति ६ फाँकदार धारियाँ होती हैं। स्वाद में यह किंचित् खट्टा, कषैला तथा कड़ुवा होता है। बाजार में जो सूखा आँवला मिलता है, उसमें कच्चे तथा पक्व दोनों ही प्रकार के सुखाये फल मिले होते हैं। सुखाये हुए कच्चे फल कालिमा लिये खाकस्तरी रंग के तथा पके हुए शुष्क फल पीताभ-भूरे रंग के होते हैं। च्यवनप्राशावलेह एवं मुरब्बा बनाने के लिए बड़े एवं ताजे पक्व आँवलों का व्यवहार करना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—माघ, फाल्गुन में पक्व फलों को ग्रहण कर, छाया में सुखा कर वायु-धूल रहित, अनार्द्र और शीतल स्थान में मुखबन्द किये डिब्बों में रखें।

संगठन—फल में टैनिन होती है, जिसमें गैलिक एसिड, इलेगिक एसिड होता है। पेक्टिन और विटामिन सी (*C*) की प्राप्ति का यह मुख्य साधन है। इसमें १०० ग्राम में ६०० से ९०० मिलीग्राम तक विटामिन सी (*C*) पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण-लघु, रूक्ष, शीत। रस-लवण रस को छोड़कर शेष पाँचों रस (किंतु अम्ल प्रधान)। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—त्रिदोषहर, दीपन रसायन, चक्षुष्य, केश्य, मेध्य, दाहप्रशमन आदि। चरकोक्त (सू० अ० ४) विरेचनोपग एवं वयःस्थापन महाकषायों तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) परूषकादि एवं त्रिफला-गण में आँवला भी है।

मुख्य योग—च्यवनप्राशावलेह, आमलकी रसायन, धात्रीलौह, त्रिफला, धात्र्यरिष्ट तथा इन्नीफल उस्तखुद्दूस।

आक (अर्क)

नाम। सं०—अर्क, मन्दार, अकौआ। बं०—आकंद। कु०—आंक। म०—रुई। गु०—आकडो। क०, सि० पं०—अक। अ०—उषर, उष्षर, उषार। फा०—खरक, दरख्ते जहरनाक, ज़हूक। अं०—मडार (*Madar*), जायगेंटिक स्वॉलो-वर्ट (*Giagantic Swallow - Wort*)। ले०—(१) सफेदमदार—कालोट्रॉपिस जीगांटेआ **Calotropis gigantea** *R. Br.* (२) लालमदार—कॉलोट्रॉपिस् प्रोसेरा **Calotrpis procera** *R. Br.*। आक की वे सभी संज्ञाएँ जो भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में व्यवहृत हैं, प्रायः संस्कृत 'अर्क' शब्द से बिगड़ कर बनी जान पड़ती हैं। विषैला होने से फारसी में इसे 'दरख्ते जहरनाक' कहते हैं। बुर्हान महोदय के अनुसार 'उशर' फ़ारसी भाषा का शब्द है और प्रायः उन सभी वनस्पतियों के लिए व्यवहार में आता है, जिनमें दूध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता है, और विशेषतः ऐसे पौधों के लिए जिनको हिन्दुस्तान में 'आक' कहते हैं। इससे ज्ञात होता है, कि 'उशर' अरबी भाषा का शब्द नहीं, जैसा प्रायः कोशों में लिखा मिलता है; प्रत्युत आर्य्य-भाषा, सम्भवतः संस्कृत 'उष (जलाना)' शब्द से व्युत्पन्न जान पड़ता है।

अर्कशर्करा। अ०—सुक्करुल् उषर, समरो उषर। फा०—शकरक, शकर कोही, शकर उषर। हि०, उर्दू—आक की शकर, आक का गोंद, शकर मदार, आक की मिश्री।

वानस्पतिक कुल, अर्क-कुल (आस्क्लेपिआडासी *Asclepiadaceae*)।

प्राप्तिस्थान—(१) कालोट्रॉपिस जिगाटेआ-समस्त भारतवर्ष के उष्ण एवं शुष्क प्रदेश तथा मलाया द्वीप-समूह एवं दक्षिण चीन। (२) कालोट्रॉपिस् प्रोसेरा—भारत के मध्य एवं पश्चिम प्रदेश, फारस से अफ्रीका तक।

संक्षिप्त परिचय—आक के ९० सें० मी० से २.७ मीटर या ३ फुट से ९ फुट ऊँचे, (किन्तु सफेद मदार का पुराना पौधा कहीं-कहीं इससे भी ऊँचा छोटे वृक्ष की भाँति देखने में आता है) वर्षानुवर्षी या बहुवर्षायु तथा बहुशाखी क्षुप होते हैं, जो एक प्रकार के दुग्धमय एवं चरपरे रस(*acrid juice*) से परिपूर्ण होते हैं। प्रायः ऊषर और शुष्क भूमि में, जहाँ किसी अन्य प्रकार के पौधे प्रफुल्लित नहीं रह सकते, इसके क्षुप बहुतायत से हरे-भरे दिखायी देते हैं। तने और प्रधानशाखा की त्वचा बहुत हल्की, पीताभ-खाकस्तरी रंग की तथा नरम और विदीर्ण होती है। कोमल शाखाएँ धुनी हुई रूई की तरह सफेद रोईं (*covered with adpressed white tomentum*)से घनावृत होती हैं। पत्तियाँ अभिमुख, छोटे डंठलों वाली (*subsessile*,)१०सें०मी० से २२सें०मी० (४ इंच से ८इंच लम्बी),२.५ सें०मी०से१० सें०मी० या १ इंच से ४ इंच चौड़ी, अभिलट्वाकार (*obovate*) अथवा दीर्घवत्-आयताकार (*oblong*), अग्र पर सहसा नुकीली या लम्बाग्रवाली (*acute or acuminate*), चर्मिल (*coriaceous*), आधार की ओर किंचित् हृदयाकार तथा अधस्तल पर रूईकी भाँति रोमावृत (*cottony beneath*) होती हैं। लालमदार की पत्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक लम्बी तथा चौड़ी (२० सें० मी०—२२.५ सें०मी० × १० सें०मी०या ८ से ९ इंच × ४ इंच) तथा अधस्तल पर अपेक्षाकृत कम रोयेंदार होती हैं। पुष्प—सफेद मदार में बाहर से सफेद मायल बैंगनी रंग के, तथा लाल मदार में बैंगनी-लाल रंग के होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत (*axillary or subterminal pednuculate simple or compound umbels or corymbs*) में स्थित होते हैं। फल (डोंड़ा) या पुटिका अथवा फॉलिकिल (*follicles*) युग्म, मसृण, स्फुटनशील, लम्बोतरा, उभरा हुआ और बीच से मुड़ा (*recurved*) होता है, जिससे उसकी नोक, पक्षी के चोंच जैसी मालूम होती हैं। बीज—लट्वाकार, चपटे, ५/८ सें० मी० या ½ इंच लम्बे तथा स्याही मायल होते हैं, जिनके ऊपरी सिरों पर जो डोंड़े के सिरे की ओर होता, है चमकीले रेशम की भाँति रोमों का गुच्छा (*bright silky-white coma*) लगा होता है। मदार के पौधे प्रायः सालभर में कभी फुल-फल से खाली नहीं रहते, किन्तु अपेक्षाकृत जाड़ों में अधिक फलते-फूलते हैं।

उपयोगी अंग—मूल, पत्र, पुष्प, क्षीर (*the milky juice*) एवं मन्दारशर्करा आदि।

मात्रा। मूलत्वक् चूर्ण—½ ग्राम से २ ग्राम या ½ माशा से १ माशा तक। बल्य रूप में—½ ग्राम से ¾ ग्राम या१॥ रत्ती से ५ रत्ती। वामक मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा तक।

क्षीर—½ ग्राम से ½ ग्राम या १ रत्ती से २ रत्ती (२ रत्ती से ६ रत्ती)। पुष्प—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—दोनों प्रकार के मदार का मूलत्वक् प्रायः समान होती हैं, जो २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ से २ इंच चौड़े एवं ३. १२५ मि० मी० से ५ मि० मी० या ⅛ से ½ इंच मोटे, छोटे-छोटे सिकुड़े हुए या अन्दर को मुड़े हुए टुकड़ों (*short curved or quilled pieces*) के रूप में प्राप्त होती है। इनके बाह्यतल पीताभा-खाकस्तरी रंग के, कोमल, कार्की (*corky*) तथा अनुलम्ब दिशा में दरारयुक्त होते हैं। तोड़ने पर यह खट से टूटते तथा छोटे-छोटे दानेदार टुकड़े निकलते हैं। कभी-कभी इसमें सूत्राकार जड़े लगी होती हैं तथा कभी काष्ठीय भाग भी बद्ध होते हैं। इनमें एक विशिष्ट प्रकार की गंध होती है, तथा स्वाद में किंचित् लुआबी और तिक्त एवं चरपरे (*acrid*) होते हैं। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण। मूलत्वक् का संग्रह अप्रैल, मई के महीनों में करना चाहिए। एतदर्थ प्रायः रेतीली भूमि में उगे पौधे अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं। जड़ को खोदकर निकाल, छाया में सुखा लें, और छाल पृथक्कर मुख-बंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें। रखने पर कीड़े आदि के लगने से कुछ महीनों में ही छाल खराब हो जाती है। पत्तों का संग्रह जाड़ों या गर्मियों में करें। वर्षाऋतु में जब अन्य पौधे हरे भरे होते हैं, तब मदार (अर्क) एवं जवास प्रायः पत्ररहित हो जाते हैं।

संगठन–मदार में एक प्रकार का कड़ुआ और चरपरा पीला राल होता है, जो इसका प्रभावकारी अंश है। इसके जड़ की छाल में 'मदार एल्बन *mudar alban*' और 'मदार फ्लुएविल *mudar fluavil*' नामक तत्त्व पाये जाते हैं। ये गटापरचा में पायेजाने वाले एल्बन' और 'फ्लुएविल" के बहुत कुछ समान होते हैं। मदार एल्बन या "मन्दारीन" एक स्फटिकीय सत्व होता है, जो ऐल्कोहल और ईथर में विलेय तथा ठंडे पानी और जैतून के तेल में अविलेय होता है। इसके अतिरिक्त इसमें रबड़ की-सी (*caoutchoue*) एवं पपेन की भाँति प्रोटीन-विलायक किण्व-सा तत्व भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि– १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–वेदनास्थापन, शोथघ्न, व्रणशोधन, कुष्ठघ्न, वमनोपग, दीपन-पाचन, वामक, कफनिस्सारक, श्वासहर।

यूनानी मतानुसार आक का दूध विष के साथ चौथे दर्जे में उष्ण ए ' रूक्ष हैं।

मुख्य योग–अर्क-लवण, अर्क तैल, अर्केश्वर, हब्ब हैजा।

विशेष–(१) चरकोक्त (सू० अ० ४) भेदनीय, स्वेदोपग, वमनोपग महाकषायों में 'सदापुष्पा' नाम से तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) अर्कादिगण एवं अधोभागहर गण (सू० अ० ३९) में अर्क का भी उल्लेख है। (२) अर्क-लवण बनाने के लिए मदार के बड़े पत्तों को लेकर एक के ऊपर एक करके तथा प्रत्येक पत्ती पर सेंधानमक का चूर्ण छिड़कते जायँ। इस प्रकार रख करके ऊपर कपड़ा लिपेट कर कपड़मिट्टी करें। अब इसे उपलों के बीच रख कर पुटपक्व कर लें। इस प्रकार प्राप्त भस्म 'अर्क-लवण' होती है।

आम (आम्र)

नाम–सं०–आम्र, सहकार, चूत, रसाल। हिं०–आम, आँब। बं०–आम। म०–आंबा। गु०–आंबी। सिं०–अम्ब। क०–अंब, अंभ। पं०–अंब। फा०–अंबः। अ०–अंबज। ता०–माङ्गामरम्, मामरम्। अं०–मैंगो-ट्री (*Mango Tree*)। ले०–मांगीफ़ेरा इंडिका (**Mangifera indica** *Linn.*)। अंग्रेजी, लेटिन एवं तमिल नाम इसके वृक्ष के हैं।

कलमी आम। हिं०–पैवंदीआम्ब। अं०–ग्राफ्टेड मैंगो (*Grafted Mango*)।

वानस्पतिककुल। भल्लातक-कुल (आनाकार्डिआसी *Anacardiaceae*)।

प्राप्तिस्थान–आम भारतवर्ष एवं पूर्वी द्वीप-समूह का आदिवासी पौधा है। यह ग्रीष्म-प्रधान देश का वृक्ष है। शीत-प्रधान देश में नही उगता। छोटा नागपुर एवं भारतवर्ष के दक्षिण में यह पहले जंगली होता था। हिमालय पर भूटान से कुमायुँ तक इसके जंगली पौधे मिलते हैं। उत्तर पश्चिम प्रान्त को छोड़कर अब सारे भारतवर्ष में इसके वृक्ष लगाये गये हैं, और काफी फूलते-फलते हैं।

परिचय–आम के बड़े-बड़े सदाहरित वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ अपत्रक (*simple*) तथा एकान्तरक्रम से स्थित (*alternate*) किन्तु शाखाग्रों पर पुंजीभूत तथा महुए के पत्तों की तरह एक डंठल पर चारों ओर आवर्त रूप से स्थित होती हैं। अतः आम के वृक्ष छायादार होते हैं। प्रगल्भ पत्ते १५ सें.मी. से ३० सें.मी. या ६ इंच से १२ इंच लम्बे ३.७५ सें.मी. से ५ सें.मी. या १॥ इंच से २ इंच चौड़े, लम्बोतरे (*oblong*) अथवा अभिलट्वाकार-भालाकार(*obovate–lanceolate*),अखण्डित (*entire*) रचना में चर्मिल (*coriaceous*) तथा गाढ़े हरेरंग के और चिकने होते हैं। पत्र-तट या पत्तों के किनारे प्रायः लहरदार (*wavy*) होते हैं। आधार की ओर चौड़ाई कम होती जाती है। मुख्य शिरा से अनेक शिराएँ निकल कर दोनों पार्श्वों में धनुषाकार टेढ़ी होकर (*arcuate*) फैलाती हैं। पर्णवृन्त या डंठल (*petiole*) २.५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इंच से २॥ इंच तक लम्बा होता है, और आधार पर अधिक मोटा होता या फूला होता है। नये पत्ते (नूतन पल्लव) कोमल, गुलाबीरंग के तथा स्वाद में कसैले होते हैं। इनको मसलकर सूंघने से एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि मालूम होती है। माघ में इसमें पुष्प आना प्रारम्भ हो जाता है, और फाल्गुन के महीने (मार्च-अप्रैल) में इसके पेड़ शाखाग्रों पर मंजरियों या पुष्प-गुच्छों (*terminal panicles*) से लद जाते हैं। सहपत्र या कोणपुष्पक पत्र (*bracts*) अंडाकार एवं खातेदार (*concave*) होते हैं। आम की पुष्पमंजरियों को मौर (बौर) कहते हैं। इनमें एक विशिष्ट प्रकार की मीठी सुगंधि होती है। आम जब बौरने लगता है, तो उसके कोमल कल्लों एवं मंजरी पर एक प्रकार का विशेषगंधि चिपचिपा निर्यासवत् पदार्थ स्रवित होकर लगा रहता है। आम के फूल व्यास में ⅛ सें० मी० या $\frac{3}{16}$ इंच तथा पीताभ-हरित वर्ण के होते हैं। एक ही मंजरी में केवल नरपुष्प तथा द्विलिंगी (*bisexual*) दोनों ही प्रकार के फूल होते हैं। बाह्य कोष (पुटचक्र) या बाह्य दलपुंज (कैलिक्स *calyx*) ४-५ खंडोंवाला, जो पतनशील होते हैं। आभ्यन्तर कोश (*corolla*) भी ४-५ खण्डों वाला होता है। पुष्पासन आभ्यन्तर कोष के अन्दर उठा हुआ और मांसल (*disc fleshy*) होता है। पुंकेसर संख्या में ४-५, जो उक्त पुष्पासन पर लगे होते हैं। इनमें सांगोपांग एवं पूर्णविकसित (*perfect*) एक ही होता है, जो शेष पुंकेसरों की अपेक्षा बड़ा होता है। अण्डाशय अवृन्त (*sessile*) होता है। चैत के आरम्भ में बौर झड़ने लगते हैं, और सरसई (सरसों के बराबर) फल बैठने लगते हैं। जब कच्चे फल बेर के बराबर हो जाते हैं, तब वे 'टिकोरे' कहलाते हैं। जब वे पूरे बढ़ जाते है और उनमें जाली (अस्थि) पड़ने लगती हैं, तब उन्हें अँबिया या केरी कहते हैं। डाल से तोड़ने पर इससे जो एक प्रकार का चिपचिपा मंद तारपीनवत् गंधमय द्रव (गम-रेजिन *gum-resin*) स्रवित होता है, वह अत्यंत दाहक (*irritant*) होता और शरीर के जिस भाग पर लग जाता है, वहाँ जलन एवं प्रदाह पैदा करता है, और एक प्रकार का काला धब्बा डाल देता है। इसे चोपी या चेंपी कहते हैं। आकार-परिमाण के विचार से आम अनेक प्रकार का होता है। कभी-कभी तो वह पेवन्दी बेर से भी छोटा, किन्तु कभी छोटी हांडी या बच्चे के शिर के बराबर का होता है। सामान्यतया आम का अष्ठिफल (*drupe*) ५ सें० मी० से १५ सें० मी० या २ इंच से ६ इंच लम्बा, आकार में लम्बगोल (*ovoid*) तथा चपटा (*laterally compressed*) होता है। इसके अग्र भाग की ओर एक छोटा-सा नुकीला उभार (*protuberance*) होता है। गुठली (*putamen*) प्रायः रेशेदार (*fibrous*) होती है।

उपयोगीअंग—फल, बीजमज्जा (*kernel*), छाल एवं कोमलपत्र तथा गोंद (*gum*)।

मात्रा—(१) बीजमज्जा का चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

(२) क्वाथ—५ तो० से १० तो०।

(३) स्वरस (कोमल पत्तियों का)—१ तो० से २ तो०।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। (१) गुठली (*Nut*)—आम की सुखाई हुई गुठली पंसारियों के यहाँ मिलती है। आम के आकार-प्रकार भेद से गुठली के आकार-प्रकार में भी काफी भिन्नता पायी जाती है। सामान्यतः गुठली दीर्घाण्डाकार या ईषत् वृक्काकार, दोनों पार्श्वों से दबी हुई, चपटी तथा ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १॥ से २॥ इंच लम्बी और २.५ से ३.७५ सें० मी० या १ से १॥ इंच तक चौड़ी होती है। खूब सूख जाने पर गिरी ढीली पड़ जाती है, और ऊपर के कड़े छिलके या जाली (*shell*) के भीतर गतिशील जान पड़ती है। गुठली का अन्तस्तर (*endocarp*) भी कड़ा (*woody*) होता है। मींगी (*seed*) सर्वथा वृक्काकार होती है, जो सूखने पर बहुत कड़ी, सफेद अथवा भूरेरंग की और ३.७५ सें० मी० से ५ सें०मी० या १॥ इंच से २ इंच लंबी एवं २.५ सें०मी० से ३.७५ सें.मी. या १ से १॥ इंच चौड़ी तथा दो दलों (*cotyledons*) में विभक्त होती है। ताजी होने पर यह लगभग तिहाई और लम्बी तथा चौड़ी, सफेद एवं नरम होती है। मींगी के ऊपर भी दो पतले झिल्लीदार आवरण होते हैं, जिनमें बाहरी झिल्ली सफेद तथा एरिल (*aril*) के स्वभाव की होती है। अन्तस्तर में भी दो झिल्लियाँ होती हैं, जो परस्पर चिपकी रहने से पृथक् नहीं मालूम होतीं। गिरी का स्वाद हल्का तीतापन लिये कसैला होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु इसमें कोई विशेष गंध नहीं पायी जाती। ताजे कच्चे आम की गिरी को चाकू से काटने पर चाकू एवं गिरी दोनों पर बैंगनी धब्बा पड़ता है, जो टैनिक एसिड की उपस्थिति का द्योतक होता है।

गोंद (*Gum*)—आम के पेड़ से निकले हुए गोंद के विभिन्न-आकार के छोटे-बड़े विषमाकार टुकड़े (*irregular-shaped pieces*) अनेक अत्यंत सूक्ष्म अश्रुबिंदुवत् टुकड़ों के परस्पर मिलने से बना हुआ साधारण लाली लिये हुए पीले या रक्ताभ-धूसर वर्ण का होता है। जल में विलेय होता है; किन्तु रंग एवं विलेयता में बहुत भिन्नता देखने में आती है। गोंद में एक मंद सुगंधि भी आती है, जो ताजे गोंद में अधिक स्पष्ट होती है। शुष्क गोंद भंगुर (*brittle*) तथा तोड़ने पर टूटा-तल (*fractured surface*) मटमैले रंग का होता है।

छाल (*Bark*)—छाल बाहर से गहरे भूरेरंग की और लम्बाई के रुख विदारयुक्त (*cracks*) भीतर से पीताभश्वेत या लालीलिये हुए, स्वाद में कसैली एवं प्रियगंधि होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों की बीजमज्जा (सुखाकर) तथा गोंद को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में रखें।

संगठन। (१) कच्चाफल—जलीयांश २१%, जलविलेय सत्व (*watery extract*) ६१.५ प्रतिशत, काष्ठोज या सेलूलोज (*cellulose*) ५%, अविलेय भस्म (*insoluble ash*) १.५% और विलेय भस्म १.९%। विलेयभस्म में पोटाश, तिन्तिड़ीकाम्ल (टारटेरिक एसिड (*tartaric acid*), निम्बूकाम्ल (सीट्रिक एसिड *citric acid*) तथा सेवाम्ल (मेलिक एसिड *malic acid*) होते हैं। फल में विटामिन सी (*C*) प्रचुर मात्रा में होता है। पकाफल—इसमें पीत रंजकद्रव्य पाया जाता है, जो हरितरंजकपदार्थ (*chlorophyll product*) होता है और ईथर, कार्बन-बाइ-सल्फाइड तथा बेंजोल में शीघ्र घुल जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें अत्यल्प मात्रा में गैलिक एसिड तथा सीट्रिक एसिड भी होता है। छाल एवं बीज—में टैनिन (*tannin*) होती है।

वीर्यकालावधि। बीजमज्जा—६ महीने से १ वर्ष। गोंद—कई वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष (पकाफल—गुरु, स्निग्ध)। रस—कषाय (पकाफल—मधुर; कच्चा फल—अम्ल)। विपाक—कटु। वीर्य-शीत। कर्म। बीजमज्जा—कफ-पित्तशामक, स्तम्भन, मूत्र संग्रहणीय, रक्तरोधक, व्रणरोपण। कच्चा फल—त्रिदोषकारक, (आग में भूना हुआ कच्चा फल) दाहप्रशमन, रोचन, दीपन, रक्तपित्त-कोपक। पक्व फल—वात-पित्तशामक, स्नेहन, अनुलोमन, सारक, हृद्य, शोणितास्थापन, वृष्य, बल्य, वर्ण्य, बृंहण। अहितकर—आम के कच्चे फल को अधिक खाने से मन्दाग्नि, विषमज्वर, रक्तविकार, निबन्ध एवं नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं। निवारण—सोंठ, जीरा, काला नमक। चरकोक्त (सू० अ० ४) हृद्य, छर्दिनिग्रहण, पुरीष-संग्रहणीय एव मूत्रसंग्रहणीय। महाकषायों तथा कषाय स्कन्ध एवं अम्लस्कन्ध के द्रव्यों मे आम्र या इसके अंगों का उल्लेख है।

मुख्य योग—पुष्यानुगचूर्ण, आम्रपानक, आम का मुरब्बा।

विशेष—अंशुघात या लू लगने पर आम के पन्ने का बाह्या-भ्यन्तरिक प्रयोग बहुत उपयोगी होता है। एतदर्थ इसका सर्वांग पर लेप तथा रोगी को पिलाया भी जाता है।

आमड़ा (आम्रातक)

नाम। सं०—आम्रातक, कपीतन, मर्कटाम्र। हिं०—अ (आ) मड़ा। बं०—आमड़ा। म०—आंबाड़ा। गु०—जंगली आंबो। अं०—हॉग-प्लम-ट्री (*Hog-Plum Tree*), वाइल्ड मैंगो (*Wild Mango*)। ले०—स्पाण्डिआस पीन्नाटा (**Spondias pinnata** (*L.*) *Kurz.*)। (पर्याय—*S. mangifera Willd.*)।

वानस्पतिक कुल। भल्लातक-कुल (आनाकार्डिआसी *Anacardiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय की तराई एवं बाहरी हिमालय (विशेषतः घाटियों में) ९१४.४० मीटर या ३,००० फुट की ऊँचाई तक तथा दक्षिण के पठार में आमड़े के स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। बगदेश में इसके वृक्ष बहुतायत से देखे जाते हैं। समस्त भारतवर्ष में बगीचों में आमड़े के लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। कच्चे एवं पके फल फसल में तरकारी बाजार में बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—आमड़े के पतझड़ करने वाले या पर्णपाती वृक्ष होते हैं, जिसकी छाल खाकस्तरी रंग की तथा तना एवं शाखाएँ चिकनी होती हैं। पत्तियाँ विषमपक्षाकार (*imparipinnate*), १२ इंच से १८ इंच लम्बी तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। आपाततः देखने में यह जिंगनी की पत्तियों की तरह, किन्तु उसकी अपेक्षा मोटी एवं कोमल होती हैं। पत्रक संख्या में ९–११, सम्मुख क्रम से स्थित, ७.५ सें० मी० से २२.५ सें०मी० × ३.७५ सें०मी०–१० सें०मी०(३ से ९ इंच × १॥ से ४ इंच) बड़े, रूपरेखा में आयताकार-अंडाकार, नुकीले एवं लम्बे अग्रवाले, सरलधारयुक्त, मुलायम एवं चिकने होते हैं, और पतझड़ के पूर्व पीले पड़ जाते हैं। पत्रकवृन्त छोटे होते हैं। आम के ही साथ इसका भी पतझड़ होता है। मंजरी (बौर) भी आपाततः देखने में उसी की तरह होती है, जिसमें छोटे-छोटे (व्यास में ५ मि० मी० या $\frac{1}{5}$ इंच) सफेद फूल होते हैं। इसमें छोटे-छोटे फल घौंद मे लगते हैं। फल अक्टूबर मास में पकता है। वृक्ष में पका फल रहते-रहते पतझड़ हो जाता है और मंजरियाँ निकल आती हैं। कोई-कोई वृक्ष वर्ष में दो बार फलता है। कच्चे बालफलों का अचार बनाया जाता है, और पकेफल खटमिट्ठे होते है, जो यों ही खाये जाते हैं। इसके बड़े-बड़े एवं प्राचीन वृक्ष में पुराने कटे या चिड़चिड़ाये भाग से प्रचुर परिमाण में एक रालदार गोंद टपकती है, जो वृक्ष के तने के समीप भूमि पर मोटे, चिपड़े, लंबोतरे वा विषम खण्ड रूप में एकत्रित अथवा थोड़ी मात्रा वृक्ष पर ही लगी पायी जाती है। साधारण वृक्ष की भाँति इसके पौधे भी पैदा किये जाते हैं। शाखाओं को काट कर लगा देने से भी वृक्ष तैयार हो जाते हैं। आमड़े के वृक्ष के सभी अंगों में एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि पायी जाती है।

उपयोगी अंग–फल, गोंद।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–आमड़ा का फल अंडाकार, गुदार, मसृण, कुक्कुटाण्ड या बड़े बेर के बराबर विविध आकार का २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इंच से १½ इंच) लम्बा, $\frac{15}{8}$ सें० मी० से $\frac{25}{8}$ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच से १½ इंच) मोटा, कच्चे पर हरा तथा कसैलापन लिए खट्टा, और पकने पर पिलाई लिए तथा कुछ खटमिट्ठा होता है। इसकी गुठली लंबोतरी, कास्ठीय, बहुत कड़ी, बाहर से तंतुल, अन्दर पंचकोष्ठीय होती है, जिनमें केवल १-३ कोष्ट बीजोत्पादक होते हैं। बीज रूपरेखा में भालाकार होते हैं। फल में आम से मिलती-जुलती विशिष्ट सुगंधि होती है। स्थानभेद से किसी फल में तो गूदा बहुत कम तथा कसैला और अधिक खट्टा तथा किसी में गूदा अधिक रसदार तथा अधिक मधुरता युक्त होता है। गोंद–इसका निर्यास पिलाई लिये या हलके भूरे रंग का वृक्ष से लटकता हुआ मिलता है। बाह्यतः यह चिकना एवं चमकीला होता है। यह जल में अर्धविलेय होता है, और बहुत-सी बातों में बबूल के गोंद से मिलता-जुलता है। छाल–चिकनी, सुगंधित, मसालेदार तथा खाकीरंग की होती है।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–अम्ल, कषाय, मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य-उष्ण (कच्चा), शीत (पक्व)। प्रधान कर्म–कच्चाफल कफपित्तवर्धक एवं वातशामक तथा पकाफल वातपित्तशामक और कफवर्धक होता है। इसके अतिरिक्त यह रोचन, हृद्य, रक्तस्तम्भक, सारक, दाहप्रशमन, बल्य, वृष्य, बृंहण भी होता है। छाल एवं पत्र स्तम्भक होते हैं।

विशेष–चरकोक्त 'हृद्य' महाकषाय में आम्रातक भी है।

आलूबोखारा

नाम। फा०, हिं०–आलू (बु) बोखारा। फा०–आलू, आलूबोखारा। अ०–इज्जास, इजास। सं०–आरुक? आलुक?। पं०, म०, गु०–आलुबुखारा। मा०–आलुबुखारो। क०–अअर। अं०–दी बोखारा प्लम् (*The Bokhara Plum*)। ले०–प्रूनुस् कॉम्यूनिस **Prunus communis** *Huds.* (पर्याय–प्रूनुस डोमेस्टिका *Prunus domestica Linn.*)। वक्तव्य–'आलूबोखारा' से इसका 'काला' और बड़ा भेद तथा 'आलू' से बोखारा का 'पीला' भेद अभिप्रेत होता है, जो ताजगी की दशा में कहरुबाइ पीला, उज्ज्वल, खटमिट्ठा एवं स्वादिष्ट होता है। आलूबोखारा बागी एवं पहाड़ी भेद से २ प्रकार का होता हैं। बागी कई प्रकार का होता है; उसमें एक प्रकार बड़ा और काला है। इसी को साधारणतया 'आलूबोखारा' कहते हैं।

वानस्पतिक कुल। तरुणी-कुल (रोजासी *Rosaceae*)।

प्राप्तिस्थान–यह मध्य-एशिया, पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालय में गढ़वाल से कश्मीर तक १५२३ मीटर से २१३३.६ मी० (५,००० फुट से ७,००० फुट) की ऊँचाई तक जंगली होता या लगाया जाता है। परन्तु बोखारा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रांत का सर्वोत्तम समझा जाता है। हिंदुस्तान में आलूबोखारा, अफगानिस्तान एवं बलख आदि से आता है।

संक्षिप्त परिचय—आलूबोखारा के गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं, जिसके शाखाग्र कभी-कभी तीक्ष्ण (*spinescent*) होते हैं। कोमल शाखाएँ मृदुरोमावृत होती हैं। पत्तियाँ लट्वाकार या लट्वाकार—भालाकार (*ovate-lanceolate*), जिनके किनारे सूक्ष्मदंतुर (*serrate*) होते हैं। पुष्प १-१ या गुच्छों में निकलते हैं। फल गोलाकार तथा बाह्यभित्ति (*pericarp*) गूदेदार होती है।

उपयोगी अंग—बीज रहित शुष्कफल तथा गोंद (समग़ फारसी)।

मात्रा—३ दाना से ५ दाना (फल)। विरेचनार्थ—१५ से २० दाना।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में आलूबोखारा के शुष्क फल सर्वत्र मिलते हैं, जो लगभग ३६.२५ मि० मी० या १। इंच लम्बा, काला और झुर्रीदार होते हैं। भीतर का गूदा कालाई लिये भूरा या लाल होता है। यह निर्गन्ध एवं खटमिट्ठा तथा चाशनीदार होता है। गोंद—इसके गोंद को फारसी गोंद कहते हैं। यह बब्बूल के गोंद (अरबी गोंद—गम अरेबिक) का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों को ग्रीष्म ऋतु में ग्रहणकर गुठली निकाल कर सुखा लें, और अनार्द्र-शीतल स्थान में कार्कयुक्त शीशियों में रखें। पक्व फलों को संग्रह कर पहले कृत्रिम ऊष्माद्वारा कुछ सुखाकर बाकी धूप में सुखा लेते हैं।

संगठन—फल में मैलिक एसिड (*Malic acid*), सिट्रिक अम्ल (*Citric acid*), शर्करा, ऐल्ब्युमिनॉइड्स, पेक्टिन एवं भस्म आदि पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। **गुण**—लघु, स्निग्ध। **रस**—मधुर, अम्ल। **विपाक**—मधुर। **वीर्य**—शीत। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में शीत एवं तर है। आलूबोखारा दाह-प्रशमन, तृष्णाहर, पित्तरेचक और पित्तशामक है। यह पैत्तिक शिरःशूल, पित्तज्वर, वमन, तृषा, कामला, दाह, हृल्लास और पित्तप्रधान रक्तविकारों में दिया जाता है। तृषा तथा हृल्लास में इसको मुख में रख कर चूसना चाहिए अथवा इसका शर्बत दिया जाता है।

मुख्य योग—शर्बत आलू।

विशेष—यूनानी वैद्यक में आलूबोखारे का प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है। यह एक उपयोगी द्रव्य है। इसका व्यवहार सभी चिकित्सकों को करना चाहिए।

इङ्गुदी

नाम। सं०—इङ्गुदी, तापसद्रुम। हि०—हिंगोट, इंगुआ। खर०—इंगन। म०—हिंगण। गु०—इंगीरियो। मा०—हिंगोरिया। ले०—बालानीटेस एजिप्टिआका **Balanites aegyptiaca** *Linn-) Del.* (पर्याय—बालानीटेस रॉक्सबुर्गी *B. roxburghti Planch.*)।

वानस्पतिक कुल। इङ्गुदी-कुल (सीमारुबासी *Simarubaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के शुष्क प्रदेशों के जंगलों में, विशेषतः दक्षिण-पूर्वी पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, सिक्कम, गुजरात, बिहार, खानदेश एवं दकन आदि में होती है। इसके शुष्क पक्व एवं अधपके फल सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—इंगुदी के काँटेदार छोटे वृक्ष ३ मीटर से ६ मीटर (१० से २० फुट) ऊँचे या गुल्म होते हैं। पत्तियाँ द्विपत्रक और अवृन्त तथा पत्रक अखण्ड, अण्डाकार अभिलट्वाकार या अभिप्रासवत् और $\frac{1}{2}$५ सें०मी० से $\frac{2}{2}$५सें०मी०($\frac{3}{4}$ इंच से१। इंच)लम्बे होते हैं। पत्तियों के पार्श्व में दृढ़, स्थूल कण्टक होते हैं। वसन्त में पुष्पागम होता है; तथा पुष्प पीलेरंग के और सुगन्धित होते हैं और ४-१० के गुच्छों में निकलते हैं। फल अष्ठिल (*drupe*), अंडाकार, प्रायः २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ से २ इंच) लम्बे और गुठली पंचकोणीय, एक-गह्वर तथा एक-बीज होती है, किन्तु इसमें एक उग्र अरुचिकारक हीक होती है। फलमज्जा में सैपोनिन होने से कहीं-कहीं इसका उपयोग सिल्क एवं सूई के रेशों को साफ करने के लिए किया जाता है। गुठली में छेद कर अन्दर से साफ करके सुंघनी रखने की नसदानी बनाने के लिए भी उपयोग करते हैं। फल एवं बीजों से प्राप्त का तैल व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोगी अंग—फल एवं तैल।

मात्रा। फलमज्जा—$\frac{1}{2}$ ग्राम से $\frac{5}{2}$ ग्राम (५ से १० रत्ती)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तैल—१ से २० बूंद। बाह्यप्रयोग के लिए आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—इंगुदी का अष्ठिल फल अंडाकार (*oval drupe*) होता है, जो ५ सें० मी० (२ इंच) तक लम्बा तथा ३.७५ सें० मी० (१॥ इंच) तक चौड़ा होता है। बाह्यभिति (*epicarp*) प्रायः चिकनी तथा भंगुर होती है, और इस पर लम्बाई के रुख लगभग दस हलखात होते हैं। फलमज्जा (*mesocarp*) हरिताभ वर्ण की तथा स्पर्श में साबुन की तरह चिकनी होती है जो अंदर की पंचकोणीय गुठली के साथ चिपकी होती है। गुठली के अन्दर एक बीज होता है, जिसमें प्रचुर मात्रा में तैल पाया जाता है। इन बीजों एवं फल-मज्जा को कोल्हू में पेरकर इंगुदी का तैल प्राप्त किया जाता है। बाजारों में जो फल मिलते हैं, उनमें अधपके फल भी मिले होते हैं। इसका बाह्यतल झुर्रीदार होता है तथा देखने में हरिताभ-पीत वर्ण का होता है। इंगुदी का तैल सुनहले पीलेरंग का तथा स्वादहीन होता है, और इसका आपेक्षिक गुरुत्व (१५.५° सें० पर) ०.९१८५ होता है, और यह ०° तापक्रम पर जमजाता है। इसमें सल्फ्यूरिक एसिड मिलाने से तेल का रंग भूरा हो जाता है, जो तैल को काफी हिलाने पर भी ज्यों-का-त्यों बना रहता है। सूर्यप्रकाश के प्रभाव से इङ्गुदी का तेल शीघ्रतापूर्वक विरंजित हो जाता है। सेपोनिफिकेशन वैल्यू—१९५.२। आयोडीन वेल्यू—८८.३।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में पक्वफलों का संग्रहकर छायाशुष्क कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। तैल को अम्बरी रंग की शीशियों में बंद कर अँधेरे एवं शीतल स्थान में रखें। इसे सूर्यप्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन—फल-मज्जा में म्युसिलेज, शर्करा एवं सेपोनिन (१.३२%) तथा कुछ सेन्द्रिय अम्ल आदि तत्त्व पाये जाते हैं। बीज की गिरी में ४३% तक तैल (इङ्गुदी का तेल) पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। तैल—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—तिक्त, कटु (फल मज्जा—तिक्त, मधुर)। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—कृमिघ्न। प्रधानकर्म—अल्प मात्रा में फल मज्जा शिरोविरेचन एवं कफनिःसारक, विषघ्न तथा अधिक मात्रा में रेचक एवं कृमिघ्न होती है। इसके अतिरिक्त यह मूत्रल, शुक्रघ्न एवं कुष्ठघ्न है। इसका तेल केश्य, व्रणरोपण, जन्तुघ्न एवं त्वचारोगनाशक होता है।

विशेष—इङ्गुदी की क्रिया बहुत-कुछ सेनेगा की भाँति होती है। इसका उपयोग भी इमल्सन बनाने के लिए किया जा सकता है। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) शिरोविरेचन द्रव्यों में इङ्गुदी का भी उल्लेख है।

इन्द्रायण (इन्द्रवारुणी)

नाम। सं०—इन्द्रावारुणी, विशाला। हिं०—इन्द्रायन, फरफेंदू, इनारून। पं०—कौड़तुंबा, कौड़तुम्बा। म०—इन्द्रावण। गु०—इन्द्रावण। बं०—राखालशशा। अ०—हं (हिं) जल, अल्क़म। फा०—खर्पुज़ेतल्ख़। अं०—कोलोसिन्थ (*Colocynth*), बिटरगोर्ड (*Bitter-Gourd*)। ले०—सीट्रूलुस कोलोसींथिस (**Citrullus colocynthis** *Schrad*)।

वानस्पतिक कुल। कूष्माण्ड-कुल (कूकुरबिटासी *Cucurbitaceae*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्त भारत, विशेषतः उत्तर पश्चिमी रेगिस्तानी प्रदेश, मध्य एवं दक्षिण प्रदेश एवं गुजरात आदि। विदेशों में अरेबिया, सीरिया, मिस्र, स्पेन, सिसली और मोरक्को आदि में इसकी बेल जंगलीरूप से उपजती है।

संक्षिप्त परिचय। लता—प्रसरी, बहुवार्षिक, 'छोटी इन्द्रायण' की लता की अपेक्षा लम्बी। मूल—बहुवार्षिक। तना—द्विधा, त्रिधा विभक्त सूत्रयुक्त। पत्र—दोनों पृष्ठों पर रोमश, ऊपरी पृष्ठ पीताभ हरित और कधःपृष्ठ भस्म के समानवर्ण का, श्वेत धारियोंयुक्त, ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (डेढ़ से ढाई इञ्च) लम्बा और २.५ से ५ सें० मी० (एक से दो इञ्च) चौड़ा। फल—आकार में लम्बगोल। अपक्वफल—वर्णमेंहरित,श्वेताभ-हरित धारियों युक्त। पक्व फल का रंग पीताभ-भूरा होता है। बीज-पीताभ-कृष्ण, गोल और चिपटा। वर्षा में इसकी बेल उत्पन्न होती है, वर्षांत में फल लगते और शरद के अन्त में पकते हैं। इसी समय इसके सूखे हुए फल बाजार में लाये जाते हैं।

उपयोगी अङ्ग—मूल, फल का गूदा, बीज एवं पत्र।

मात्रा—६ ग्राम से १२ ग्राम (½ तोला से १ तोला)।

मूलचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशा)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फल-मज्जा—१ ग्राम से २ ग्राम (१ माशा से २ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में इन्द्रायण के पक्व फल के काट कर सुखाये टुकड़े मिलते हैं। कभी सुखाये गूदे के टुकड़े पृथक् रूप से भी होते हैं, जो सफेद या पीताभश्वेत एवं हल्के गूदेदार टुकड़ों के रूप में होते हैं। फलत्वक् प्रायः १ मिलिमिटर मोटा तथा बाह्यतः मटमैले पीले रंग का, चिकना तथा कणदार और अन्तस्तल श्वेताभ-वर्ण का होता है, जिसपर बीजों की रूपरेखा के खातोदर चिह्न पाये जाते हैं। इन्द्रायण के गूदे में प्रायः कोई गंध तो नहीं होती, किन्तु स्वाद में यह अत्यंत तिक्त (तीता) होता है। बीज—इन्द्रायण के बीज रूपरेखा में कुछ अण्डाकार-से, चपटे तथा २५ मि० मी० या $\frac{७}{१०}$ इञ्च लम्बे एवं ४.१ मि०मी० ५ मि०मी० या $\frac{१}{६}$ इञ्चसे $\frac{१}{२}$ इञ्च तक चौड़े होते हैं। बीजत्वक् (*testa*) पीताभश्वेतसे गाढ़े-भूरे-रंग का, चिकना तथा बहुत कड़ा होता है। बीज-मज्जा में एक स्थिर तैल (*fixed oil*) पाया जाता है। अम्ल में अघुलनशील भस्म अधिकतम ४ प्रतिशत, बीज अधितम ५ प्रतिशत; फलत्वचा-अधिकतम २ प्रतिशत; पेट्रोलियम् ईथर में घुलनशील सत्व अधिकतम ३ प्रतिशत।

संग्रह एवं संरक्षण ' पक्व फल-मज्जा एवं शुष्कमूल को ग्रहण कर निर्वात, शुष्क और शीतल स्थान पर मुखबन्द किये हुए डिब्बों या शीशियों में रखना चाहिए।

संगठन—कोलोसिंथिन, कोलोसिंथेटिन, पेक्टिन, गोंद एवं भस्म ११ प्रतिशत। बीजमें—स्थिर तैल १५ प्रतिशत, ऐल्ब्यूमिन ६ प्रतिशत, भस्म ३ प्रतिशत।

वीर्यकालावधि। छिलकायुक्त इन्द्रायन के गूदे में चार वर्ष तक और छिलका उतारे हुए में १ वर्ष तक वीर्य शेष रहता है। इसलिए उचित यह है कि आवश्यकता पड़ने पर ही गूदा निकालें। गूदा को अरबी में 'शहम हंज़ल' कहते हैं। मात्र हंज़ल शब्द से उसका फल विवक्षित होता है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—तीव्र रेचक, कफपित्त-नाशक कृमिहर, शोथघ्न, उदररोगनाशक, कामला-नाशक, श्वास-कासहर, कुष्ठघ्न, आमनाशक, गुल्म-नाशक, गर्भाशयोत्तेजक, प्रमेहघ्न, विषघ्न, केश्य आदि। इन्द्रायण की फल-मज्जा एवं मूल भेदन एवं रेचन होने से इनका प्रयोग उदररोग, गुल्म, कामला, आमवात, तथा कृमि आदि रोगों में किया जाता है। इससे पेट में मरोड़ आकर पतले दस्त होते हैं। बृहदन्त्र एवं यकृत् पर इसकी क्रिया मुसब्बर की भाँति होती है। मरोड़ के निवारणके लिए इसके साथ सोंठ, सौंफ, खुरासानी अजवायन आदि मिलाकर देना चाहिए। तिक्त, कटु होने से अल्प मात्रा में यह कटुपौष्टिक भी होता है। बीजों में रेचक गुण नहीं होता। बीज केश्य एवं खालित्य-पालित्यनाशक होता है। चरकोक्त (सू० अ० १) षोडश मूलिनी द्रव्यों में तथा (सू० अ० २ में कहे) विरेचन द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) श्यामादिगण एवं अधोभागहर द्रव्यों में भी (गवाक्षी नाम से) है।

मुख्य योग—नारायण चूर्ण, अभयारिष्ट, मतबूख़ हफ्त रोजा, हब्ब शहमहंज़ल, हब्ब इन्द्रायन आदि।

विशेष—गर्भिणी स्त्रियों, बच्चों एवं दुर्बल व्यक्तियों में इसका प्रयोग यथासंभव नहीं, अथवा सतर्कता से करना चाहिए।

इमली (अम्लिका)

नाम। सं०—अम्लिका, चिञ्चा। हिं०—इमली। बं०—तेतुल। म०—चिंच। गु०—आँबली। क०—तम्बर। ते०—चिन्त। ता०—आंविलम्, शिञ्चम्, पुलि। मल०—कोलपुलि। अ०—तम्रे हिन्दी। फा०—खुर्माए हिन्दी। अं०—टेमरिंड (*Tamarind*)। ले०—टामारींडुस इंडिकुस (*Tamarindus indicns Linn*)। इसकी अंगरेज़ी एवं लेटिन संज्ञा, 'टामारींडुस्', इसकी अरबी संज्ञा 'तमरहिन्दी' से जिसका अर्थ 'हिन्दी (भारतीय) खजूर' है, व्युत्पन्न है।

वानस्पतिक कुल—शिम्बी-कुल : अम्लिका-उपकुल (*Family; लेगूमिनोसी : सेसालपीनिआमी : (Leguminosae ; Subfamily ; Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। सघन छाया होने के कारण सड़कों के किनारे भी इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। मध्य प्रदेश, मध्य भारत एव दक्षिण भारत में इसके जंगली वृक्ष भी प्रचुरता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अफरीका (विशेषतः मिस्र), अमेरिका, ब्रह्मा एवं पूर्वी भारतीय द्वीप में भी इमली होती है।

संक्षिप्त परिचय—इमली के ऊँचे वृक्ष होते हैं, तथा प्रसिद्ध हैं। पत्र—सपक्षक, १० से २० युग्म (*Pairs*); पत्रक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभिमुख क्रम से स्थित तथा ५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (२ से ५ इंच) लम्बे प्राक्ष या रेकिस (*rachis*) पर धारण किये जाते हैं। पत्रक (*leaflet*) १.२५ सें० मी० से १.७५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ से $\frac{7}{10}$ इंच) लम्बे, $\frac{3}{4}$ सें० मी० $\frac{5}{8}$ सें० मी० ($\frac{3}{10}$ इञ्च से $\frac{5}{8}$ इञ्च) तक चौड़े, रेखाकार-आयताकार (*linear-oblong*), कुण्ठिताग्र तथा अग्र पर प्रायः कुछ कटेसे (*emarginate*), चिकने तथा रचना में चर्मिलसम (*subcortaceous* होते हैं। पत्रकों के डंठल बहुत छोटे (*minutely petioluled*) होते हैं। पुष्प गुच्छबद्ध होकर नीचे को लटके रहते हैं (*flowers in few-flowered lax subterminal racemes*)। वाह्यदलपुंजनलिका (*calyx tube*) शंक्वाकार, आभ्यन्तरकोष में तीन दलपत्र, जिनमें २ छोटे तथा बीच का बड़ा एवं टोप के आकार का (*hooded*) होता है। यह पीताभवर्ण के तथा लाल धारियों से चित्रित होते हैं। प्रगल्भ पुंकेशर संख्या में तीन। गर्भाशय संवृत्त (*stipitate*) होता है, जिसका वृन्त पुष्पबाह्यकोष नलिका से संसक्त (*adnate*) होता है। फली (*Pod*) ७.५ सें० मी० से २२ सें० मी० (३ इंच से $8\frac{1}{2}$ इंच) लम्बी तथा २ सें० मी० से २.५ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ से १ इंच) चौड़ी, लम्बगोल एवं चपटी तथा अस्फोटी होती है, जिसका बाहरी छिलका कड़ा एवं पकने पर चिनक कर टुकड़ों में पृथक् होता (*crustaceous brittle epicarp*) है। अन्दर १.२५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इंच) व्यास के गोले, चपटे गाढ़े भूरेरंग के कई बीज (चिआँ) होते हैं। पुष्पागम ग्रीष्म में होता है, और फल जाड़े के अन्त में पकते हैं।

उपयोगी अंग—फल का गूदा, बीज; पत्र, पुष्प एवं क्षार (फलत्वक् एवं काण्डत्वक् का)।

मात्रा। फल—६ ग्राम से २४ ग्राम (६ माशा से २ तो०)। बीजचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ माशा से ३ माशा)। क्षार—६२५ मि० ग्रा० से २ ग्राम (५ रत्ती से १५-१६ रत्ती)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—इमली की फलियाँ ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० (३ इंच से ६ इंच) लम्बी, चपटी तथा अंगुली के बराबर मोटी, सीधी या हांसिए की भाँति वक्र होती हैं, जो डंठल के सहारे अधोमुख लटकी (*pendulous*) रहती हैं। फली की बहिर्भित्ति (*epicarp*) कच्ची अवस्था में तो गूदे से संसक्त-सी ती रह है; किन्तु पकने पर भंगुर एवं कड़ी हो जाती है जो तोड़ने पर आसानी से पृथक् हो जाती है। इसके अन्दर गूदेदार मध्यभित्ति (*mesocarp*) होती है। इसके अन्दर पतली किन्तु कुछ चिमड़ी एवं झिल्लीदार अन्तर्भित्ति (*endocarp*) होती है, जिसके अन्दर बीजों की पंक्ति होती है। कच्ची अवस्था में गूदा हरिताभ एवं अत्यंत खट्टा होता है, किन्तु पकने पर यह लाल या लालिमा लिये भूरेरंग का होता है। मध्यभित्ति के पृष्ठ एवं उदर संधि पर २ मोटी नसें डंठल से निकल कर अग्र तक फैली होती हैं। इनसे छोटी-छोटी शाखाएँ निकल कर दोनों तलों पर फैली रहती है। साधारणतया दो प्रकार की इमली की फलियाँ मिलती हैं। एक का गूदा लाल रंग का तथा बीज अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। इस प्रकार की इमली औषधीय प्रयोगों के लिए अधिक उत्तम समझी जाती है। यह गुजरात की तरफ अधिक होती हैं। वहाँ से काफी मात्रा में इसका निर्यात विदेशों को होता है। दूसरी प्रकार की इमली जो पहली की अपेक्षा अधिक होती है, इसका गूदा लालिमा लिये भूरेरंग का होता है। बाजारों में फलियों के छिलका एवं बीज निकाल कर गूदेदार भाग के पिण्ड से मिलते हैं, जिनमें छिलके के छोटे-छोटे टुकड़े, नसें एवं यदा-कदा बीज भी मिले होते हैं। औषधिनिर्माण में इनको पृथक् कर व्यवहृत करना चाहिए। पुराना होने पर यह काले रंग का चिपचिपा पिण्ड-सा हो जाता है। संरक्षण की दृष्टि से दूकानदार इसमें कुछ नमक या चीनी मिला देते हैं, किन्तु औषधीय प्रयोग के लिए यह ठीक नहीं समझा जाता। इमली में फलकी भाँति हल्की सुगंधि (*odour-fragrant and fruity*) तथा स्वाद में रुचिकारक खटमिट्ठा होता है। बीज-इमली के बीज (चिआँ) लालिमा या कालिमा लिये भूरे रंग के, चमकदार, रूपरेखा में चतुष्कोणाकार, चपटे अथवा लट्वाकार गोलाकार, १.५ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच) लम्बे, १.२५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इंच) तक चौड़े एवं $\frac{1}{2}$ सें० मी० ($\frac{1}{4}$ इंच) मोटे होते हैं। चपटे तलों पर फीके रंग का एक बड़ा चिह्न-सा (*scar or areole*) दिखाई पड़ता है, जिसपर चारो ओर सूक्ष्म रेखाएँ फैली-सी (*radially striated*) मालूम पड़ती है। बीज-द्विदल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*cotyledons*) कड़े होते हैं, और उनके अन्तर्मध्य प्रांकुर या प्लूम्यूल (*plumule*) एवं मूलांकुर या रेडिकल (*radicle*) स्थित होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—इसको मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र एवं शीतल स्थान में रखना चाहिए। खटाई के कारण इमली के गूदे को ताम्र पात्रों में नहीं रखना चाहिए। पकी इमली छील कर उसके बीज, रेशा आदि निकाल कर गूदे के पिण्ड बना कर उसे तेल से चिकना दें तो नहीं खराब होता।

संगठन—इसमें सिट्रिक अम्ल ४%से६%, टार्टरिक एसिड ५% से ८%, पोटासियम् बाइटार्ट्रेट ४.७% से ६% तथा अंशतः मेलिक एसिड (*Malic acid*) एवं २५% तक शर्करा तथा अघुलनशील तत्त्व १२% से २०% तक होते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—गुरु, रुक्ष। रस—अम्ल (पकी हुई-मधुर, अम्ल)। विपाक-अम्ल। वीर्य-उष्ण। प्रधान कर्म—पकी इमली का गूदा—रोचन, तृष्णा—छर्दिनिग्रहण, दीपन, यकृदुत्तेजक एवं भेदन तथा हृद्य एवं रक्तवातप्रशमन। यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष हैं। अहितकर—कासजनक। निवारण—शर्करा और उन्नाव। प्रतिनिधि—शांत्यर्थ आलूबोखारा एवं जरिष्क। बीज—प्रमेहनाशक, संग्राही, वीर्यस्तम्भन एवं वीर्यशोषण। यूनानी मतानुसार तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष। अहितकर—कब्ज उत्पन्न करता है। निवारण—शर्करा या यवासशर्करा। क्षार—मूत्रल, उदरशूल एवं गुल्मनाशक।

मुख्य योग—जुवारिशे तम्रे हिंदी, शर्बते तम्रे हिंदी (अम्लिका पानक)।

विशेष—इमली का पन्ना या शर्बत बनाते समय उसको जल में भिगोने के उपरान्त हाथ से न मला जाय। केवल निथरा हुआ पानी और शर्करा मिला कर पिलायें, क्योंकि इमली को मलने से उसका स्वाद खराब हो जाता है। इमली के बीज से मज्ज निकालने के लिए इसको कुछ दिन जल में भिगो कर या भाड़ में भुनवा कर छील लेते हैं। किन्तु भुनवाने से रूक्षता बढ़ जाती है।

इलायची छोटी (सूक्ष्मैला)

नाम। सं०—एला, सूक्ष्मैला, द्राविडी। हिं०—छोटी इलाची (इलायची, लाची), गुजराती इलायची, सफेद इलायची। बम्बई—मलवारी इलायची। गु०—एलची, मलबारी एलची। ता०—एलम्। अ०—काकुलः सिगार, शूशमीर। फा०—हीलबवा, हील, हील उन्सा, इलायची खुर्द। अं०—लेसर कार्डेमम् *Lesser Cardamom*, कार्डेमम् *Cardamom*। ले०—(१) डोंड़ी या फल—कार्डामोमी फ्रुक्टुस *Cardamomi Fructus*। (२) वनस्पति—एलेट्टारिआ कार्डामोमुम् **Elettaria cardamomum** *Maton*। औषधीय प्रयोग के लिए इसका भेद मिनिस्कुला **Elettaria cardamomum** *Maton var.* **miniscula** *Burkill.* अधिक उत्तम समझा जाता है।

वानस्पतिक-कुल। आर्द्रक-कुल (जिंजिबरासी *Zingiberaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिणी और पश्चिमी भारतवर्ष, मैसूर, कुर्ग, ट्रावनकोर, मदुरा और कोचीन के पहाड़ी जंगलों में यह आप से आप होती है, और इसकी खेत भी की जाती है। वहाँ के रबर और चाय के क्षेत्रों में अपेक्षाकृत इसकी खेती अधिक होती है। ब्रह्मा एवं लंका में भी छोटी इलायची की जंगली जातियाँ पायी जाती हैं।

संक्षिप्त परिचय—छोटी इलायची के १.२० मीटर से २.४०—२.७० मीटर (४ फुट से ८—९ फुट) ऊँचे सदाहरित, बहुवर्षायु शाकीय पौधे (*perennial herb*) होते हैं, जिनका भौमिककाण्ड कन्दवत् (*fleshy rhizome*) होता है। इसके ऊपरी भाग से इधर-उधर ८-२० पत्र-वेष्टित खड़ी डालियाँ निकलती हैं। पत्तियाँ एकान्तर क्रम से स्थित (*alternate*), ३० सें० मी० से ६० सें० मी० (१२ इंच से २४ इंच) तक लम्बी ७.५ सें० मी० (३ इंच) तक चौड़ी, रूपरेखा में आयताकार—भालाकार (*oblong-lanceolate*) होती हैं। ज्वार-बाजरे के पत्तों की भाँति फलकमूल काण्ड को आवेष्ठित (*sheathing*) किये होता है। पुष्पवाहक दण्ड काण्ड के अधःभाग से निकलता तथा भूमि पर लटका होता है। मंजरियाँ गुच्छमय (*panicle*) ३० से ६० सें० मी० (१ से २ फुट) लम्बी होती हैं तथा सफेद और लाल फूलों को धारण करती हैं। छोटी इलायची के लिए तर एवं छायादार जगह अधिक उपयुक्त होती है। यह कुहरा तथा समुद्र की ठंढी हवा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाकर खूब बढ़ती है। क्वार-कार्तिक में बोयी जाती है, अर्थात् इसकी बेहन डाली जाती है। १७-१८ महीने के बाद जब पौधे लगभग १२० सें० मी० या ४ फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर सुपारी के पेड़ों के नीचे लगा देते हैं। एक ही वर्ष के भीतर यह चैत-वैसाख में फूलने लगता है, और आषाढ़-सावन तक डोंड़ी लगती है। क्वार-कार्तिक में फल तैयार हो जाता है। इसके गुच्छे या घौद तोड़ लिये जाते हैं, और दो-तीन दिन सुखा कर फलों को मल कर अलग कर लिया जाता है। पेड़ १०-१२ वर्ष तक रहता है। पत्तों एवं पुष्प को मसल कर सूंघने से इलायची की सुगंधि आती है। छोटी इलायची की ढोढ़ी या डोड़ा अथवा फल त्रिकोष्ठीय सामान्य स्फोटी फल (*3-celled loculicidally dehiscent capsule*), अंडाभ लम्बोतरा (*ovoid*) होता है और कच्चेपन पर हरे रंग का, पकने के बाद पीला तथा सूखने पर सफेद हो जाता है। फलों के अन्दर बीज भरे होते हैं, जो बीजोपांग या एरिल (*aril*) से आवृत होते हैं। कुर्ग से इलायची गुजरात होकर अन्य प्रान्तों को जाती थी, इसीसे इसे 'गुजराती इलायची' भी कहते हैं। स्थानभेद से इलायची के पौधों एवं फलों के स्वरस में थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है, जिसके आधार पर मलाबारी, मैसूरी तथा मैंगलोर की इलायची कहते हैं।

उपयोगी अंग—बीज।

मात्रा—इलायची बीज $\frac{1}{2}$ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—इलायची का फल अथवा ढोंढ़ी १ सें० मी० से २ सें० मी० ($\frac{3}{8}$ से $\frac{4}{5}$ इंच) लम्बी, अण्डाकार (*ovoid*) अथवा लम्बगोल एवं किंचित् चतुष्कोणाकार (*oblong*) तथा किंचित् त्रिपार्श्व (*three-sided*) होती है। अग्र (*apex*) की ओर नोकदार, जहाँ पुष्प के अवशिष्ट (*remains of the flower*) लगे होते हैं और आधार या मूल (*base*) गोलाकार होता है, अथवा डंठल का अवशेष (*remains of the stalk*) लगा होता है। छिलका कागज की तरह मोटा हरिताभ-बादामी रंग का होता है, जो कभी चिकना होता है और किसी-किसी फलमें लम्बाई के रुख धारियाँ (*longitudinally striated*) पड़ी होती हैं। फल में ३ कोष्ठ (*loculi*) होते हैं, जिनमें दो-दो कतारों में बीज ठसाठस भरे होते हैं। मैसूरी इलायची प्रायः अंडाकार (*oval*), १ सें० मी० ($\frac{3}{8}$ इंच) से २ सें० मी० ($\frac{4}{5}$ इंच) लम्बी एवं हल्के क्रीमरंग की (*pale cream*) होती है, जिसका छिलका प्रायः चिक्कण (*smooth surface*) होता है। मलाबारी इलायची अपेक्षाकृत छोटी, किन्तु मोटी (*plumper*) होती है, जिसके छिलके पर प्रायः अनुलम्ब दिशा में रेखाएँ या झुर्रियाँ (*somewhat wrinkled longitudinally*) होती हैं। मंगलौरी इलायची मलाबारी से मिलती-जुलती है, किन्तु उसकी अपेक्षा अधिक गोलाकार (*globular*), लम्बाई में बड़ी तथा छिलका कुछ खुरखुरा होता है। अलेप्पी की इलायची (*Aleppy Cardamom fruits*) मालाबारी से मिलती-जुलती है, किन्तु छिलका प्रायः हरिताभ या हरित-पीत वर्ण का होता है। बाजार में मिलने वाली उत्तम एवं असली छोटी इलायची में मैसूरी इलायची ही अधिक मात्रा में होती है। ताजी, मोटी एवं तीव्र सुगंधियुक्त इलायची उत्तम एवं ग्राह्य होती है। बीज ४ मि० मि० ($\frac{5}{32}$ इंच) लम्बे, ३ मि० मि० ($\frac{1}{8}$ इंच) चौड़े कुछ-कुछ त्रिकोणाकार (नोक तेज नहीं), कड़े तथा ललाई लिये काले अथवा हल्के भूरे रंग के होते हैं। बाह्यतल झुर्रीदार जिसमें अनुप्रस्थ दिशा में ६-८ झुर्रियाँ (*transversely rugose with 6-8 rugae*) पायी जाती हैं। बीज सूक्ष्म रंगहीन एरिल (*aril*) द्वारा आवृत होते हैं। बीजों के अन्दर का भाग (*perisperm*) सफेद होता है। बीजों में एक उग्र मनोरम सुगंधि आती है, तथा स्वाद में चरपरा एवं सुगंधित होते हैं। खाने के बाद मुँह में ठंढक-सी प्रतीत होती है। भभके में इसके बीजों से एक सुगन्धित तेल (इलायची का तेल) आसुत किया जाता है, जो हल्के पीलेरंग का होता है। स्वाद एवं सुगन्धि इलायची के बीजों-जैसी होती है। २० तोले इलायची के बीजों से लगभग १ तो० तेल प्राप्त होता है।

विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम १%। भस्म—अधिकतम ६%। अम्ल में अघुलनशील भस्म—अधिकतम $3\frac{1}{2}$%। ऐल्कोहॉल (४५%) में विलेय सत्व—लगभग ७%। बीजों में उड़नशील तेल—कम से कम ४%।

मिलावट एवं स्थानापन्न द्रव्य—लंका की जंगली या देशी इलायची (**Elettaria cardamomum** *var.* **major**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Thwaites) के फल भी बाजारों में छोटी इलायची के नाम से बेचे जाते हैं। किन्तु ये असली इलायची की अपेक्षा अधिक लंबोतरे होते हैं, तथा छिलका भी बहुत झुर्रीदार (*shrivelled appearance*) तथा गाढ़े खाकस्तरी-भूरे (*dark greyish-brown*) रंग का होता है। इसके बीजों की लम्बाई में सिर्फ ४ झुर्रियाँ पायी जाती हैं। आमोमुम् केपुलागा **Amomum kepulaga** *Sprague and Burkill* (*Famiiy; Zingiberaceae*) के फल भी इलायची के नाम पर दे दिये जाते हैं। इनके बीजों पर १४ झुर्रियाँ पायी जाती हैं और इनको मुँह में चाबने से बड़ी इलायची के बीजों की भाँति कर्पूर-सी सुगंधि मालूम पड़ती है। छोटी इलायची में भी कभी-कभी अर्क खींचे हुए फल (*Exhausted Cardamom*) मिला दिये जाते हैं। इनका रंग भी फीका होता है और इनमें सुगंधि भी कम पायी जाती है। कभी-कभी कच्चे या अप्रगल्भ फल (*immature fruits*) अथवा कीड़ों-मकोड़ों से खाये हुए फल भी मिला दिये जाते हैं। कभी-कभी फटे फल (*partially opened fruits*) भी मिले होते हैं। उपर्युक्त सभी प्रकार के फल औषधीय दृष्टि से हीनकोटि के तथा अग्राह्य हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पके हुए फलों को अनार्द्र-शीतल स्थान में अच्छी तरह डाटबन्द पात्रों अथवा बड़ी शीशियों में रखना चाहिए। इसके बीज वायु में खुला रहने से बिगड़ जाते हैं, अतएव बिना जरूरत उनको छिलके से बाहर नहीं निकालना चाहिए। बीजों को निकालने के बाद तुरंत प्रयुक्त करना चाहिए। इनका संग्रह नहीं करना चाहिए। इलायची के तेल को अम्बरी रंग की शीशियों में अच्छी तरह डाट बंदकर ठंढी एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन—इसमें ३ प्रतिशत से ८ प्रतिशत एक उड़नशील तेल पाया जाता है, जिसमें प्रधानतः टर्पीनीन (*Ter pinene*) एवं टर्पिनिओल (*Terpineol*) होता है। उत्पत् तेल के अतिरिक्त ३% से ४% श्वेतसार (स्टार्च) एवं पीत रंजकतत्त्व आदि भी होते हैं।

वीर्यकालावधि—३ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कटु, मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—दुर्गन्धनाशक, रोचन, अनुलोमन, हृद्य, हृल्लास—वमन एवं तृष्णानाशक, श्वास-कासहर। अहितकर—फुपफुस को। निवारण—वंशलोचन एवं बड़ी इलायची। प्रतिनिधि—बड़ी इलायची, कबाबचीनी, हब्ब बल्साँ। चरकोक्त (सू० अ० २) शिरोविरेचन द्रव्यों में तथा (सू० अ० ४ में कहे गये) श्वासहर एवं अंगमर्दप्रशमन महाकषायों के द्रव्यों में और (वि० अ० ८) कटुस्कन्ध के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) एलादि गण में एला या छोटी इलायची का भी पाठ है।

मुख्य योग—एलादि गुटिका, एलादिमोदक, एलाद्यरिष्ट, एलादिचूर्ण, एलादिक्वाथ, अर्क इलायची।

विशेष—औषध्यर्थ छोटी इलायची का ग्रहण ब्रिटिश फॉर्माकोपिआ तथा इंडियन फॉर्माकोपिआ में भी किया गया है। इसके बीज अनेक योगों में पड़ते हैं। टिंचर कार्डे० को० भी, जो लाल रंग के द्रव के रूप में मिलता है, छोटी इलायची का योग है। इसका उपयोग मिक्सचर्स को रंगीन करने तथा वातानुलोमन कर्म के लिए सहायक औषधि के रूप में बहुशः किया जाता है।

इलायची बड़ी (बृहदेला)

नाम। सं०—बृहदेला, स्थूला, बहुला, पृथ्वीका। हिं०—बड़ी इलायची (लाची, इलाची), लाल (सुर्ख) इलायची, बँगला इलायची, नेपाली इलायची, इलाची पूर्वी। बं—बड़एलाच, बड़एलाची, नेपाली एलाच। गु०—एलचा। अ०—काकुले कुबार, काकुले जकर, काकुले जंजी, हील जकर। फा०—हील कलाँ। अं०—दी ग्रेटर कार्डेमम् (*The Greater Cardamom*)। ले०—आमोमुम् सुबूलाटुम् (**Amomum subulatum** *Roxb.*)।

वानस्पतिक कुल। आर्द्रक-कुल (जिंजिबरासी *Zingiberaceae*)।

प्राप्तिस्थान—यह नेपाल, सिक्किम, आसाम की तराई में दलदली या नमभूमि तथा बंगाल एवं लंका में जंगली रूपसे होती हैं; तथा उक्त स्थानों में इसकी खेती भी की जाती है। दक्षिण भारत में समुद्र तट के समीपवर्ती स्थानों में भी कहीं-कहीं पायी जाती है।

संक्षिप्त परिचय—बड़ी इलायची के ६० सें० मी० से १२० सें०मी० (२ फुट से ४ फुट) ऊँचे सदाहरित, बहुवर्षायु क्षुप होते हैं। काण्डस्तम्भ एक तथा कंदोद्भव होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्तियाँ आर्द्रक की पत्तियों की तरह तथा ३० से ६० सें०मी०(१से२ फीट)लम्बी एवं ७·५से१० सें०मी०(३से४ इंच)चौड़ी होती हैं। पत्तियों को मसलने से बड़ी इलायची की विशिष्ट सुगंधि आती है। पुष्प-रक्ताभ श्वेत अथवा पीत तथा ५ सें.मी.से ७.५ सें.मी.(२ इंच से ३ इंच)लम्बी गुच्छमय मंजरियों में धारण किये जाते हैं। फल २.५ सें.मी. (१ इंच) तक लम्बे, रक्ताभ-धूसर वर्ण के तथा गुच्छों में लगते हैं। फलों में एक विशिष्ट प्रकार की हल्की सुगन्धियुक्त भूरे रंग के बीज भरे होते हैं। पुष्पागम वर्षा ऋतु में तथा फलागम शरद् ऋतु में होता है।

उपयोगी अंग—फल (बीज) एवं बीजों से प्राप्त तैल।

मात्रा—०.५ ग्राम से १.५ ग्राम (४ रत्ती से १॥ माशा) तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बड़ी इलायची के फल अंडाकार अथवा त्रिपार्श्विक, साधारणतः २.५ सें० मी० (१ इंच) या उँगली के पोर के इतना लम्बा और १.२५ सें० मी० (½ इंच) परिधि में, ललाई लिये भूरा होता है। इनके अग्र (*apex*) पर तंतुओं का एक गुच्छा लगा होता है, जो प्रायः कालान्तर से झड़ जाता है। कोई-कोई फल इससे भी छोटे होते हैं। छिलका मोटा एवं रक्ताभ धूसरित होता है, और लम्बाई के रुख इस पर धारियाँ होती हैं। पकने पर किसी-किसी फल का छिलका स्वयं फट जाता है। बीज छोटी इलायची की तरह, पर उससे बड़े, करीब-करीब गोल तथा किंचित् कोणाकार, भूरे तथा चाबने से कपूर जैसी हल्की सुगंधि आती है। ताजी अवस्था में ये बीज, बीजकोष में एक प्रकार के मधुर, चिपचिपे गूदे (*dark viscid saccharine pulp*) द्वारा संलग्न होते हैं। सुखने पर उक्त द्रव जाता रहता है। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २%।

तैल—बीजों से एक पीतवर्ण का उड़नशील तैल प्राप्त होता है, जिसमें काफी मात्रा में सिनिओल (*cineole*) पाया जाता है। इसका गंध एवं स्वाद बीजों की भाँति होता है। इसका प्रयोग औषधियों को सुस्वादु बनाने के लिए किया जाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—बंगाल में इससे मिलती-जुलती दूसरी जाति जिसे, मोरंग-इलायची कहते हैं प्रचुरता से पायी जाती है। इसका वानस्पतिक नाम आमोमुम् आरोमाटिकुम् (*Amomum aromaticum Roxb.*) है। इसके फलों एवं बीजों का व्यवहार बड़ी इलायची के स्थानापन्न के रूप में किया जा सकता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों को संग्रह कर अनार्द्र एवं शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में संग्रहीत करना चाहिए।

संगठन—बड़ी इलायची के बीजों में एक उड़नशील तेल पाया जाता है, जिसमें काफी मात्रा में सिनिओल (*Cineole*) होता है।

वीर्यकालावधि—जब तक बीज छिलके के अन्दर रहता है, २ वर्ष तक इसकी शक्ति बनी रहती है। छिलके रहित बीजों में १ वर्ष तक वीर्य रहता है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—छोटी इलायची की भाँति।

मुख्य योग—जुवारिश अनारैन।

विशेष—बड़ी इलायची, छोटी इलायची की उत्तम प्रतिनिधि है, और उसकी अपेक्षा काफी सस्ती है।

इसबगोल (ईषद्गोल)

नाम। सं०—ईषद्गोल, अश्वकर्णबीज, स्निग्धजीरक (नवीन)। हिं०—इसबगोल, इसरगोल। गु०—ओ (ऊ) थमी जीरूँ। अ०—बज्रकतूना। फा०—अस्पग़ोल। बम्ब०, पं०—इसपगोल। अं०—इस्पगोल (*Ispagul*), स्पॉजेल सीड्स (*Spogel Seeds*), सिलियम् सीड्स (*Psyllium Seeds*)। ले०—इस्पागुला *Ispaghula* (*Ispgh.*)। वनस्पति का नाम—प्लांटागो ओवाटा (**Plantago ovata** *Forsk.*)। इसके सभी नाम प्रायः फारसी भाषा के 'अस्पग़ोल' (अस्प = घोड़ा + गोल = कान) से व्युत्पन्न हैं। इसका बीज घोड़े के कान-जैसा होता है, इसलिए इसको इस नाम से अभिहित किया गया।

वानस्पतिक कुल—ईषद्गोलादि-कुल (प्लांटाजिनासी (*Plantaginaceae*)।

प्राप्तिस्थान—इसका मूल उत्पत्तिस्थान फारस है। पंजाब, सिंध के मैदानों तथा सतलज के पश्चिम की ओर को नीची पहाड़ियों पर भी उगा हुआ मिलता है। पश्चिम की ओर यह स्पेन तक होता है। भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों, विशेषतः गुजरात में इसकी न्यूनाधिक खेती भी की जाती है। भारतवर्ष में इसका काफी मात्रा में आयात फारस से होता है।

संक्षिप्त परिचय—इसबगोल के ९० सें० मी० (३ फुट) तक ऊँचे, प्रायः काण्डहीन, कोमल एकवर्षायु क्षुप होते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, जो प्रायः कोमल रोमावृत होते हैं। पत्तियाँ देखने में धान की पत्तियों के समान ७.५ से० मी० से २२.५ सें० मी० (३ इंच से ९ इंच) तक लम्बी, $\frac{5}{8}$ सें० मी० ($\frac{1}{4}$ इंच) तक चौड़ी, लम्बी-रेखाकार तथा अग्र की ओर नुकीली या कम चौड़ी और फलक पर तीन स्पष्ट नाड़ियाँ होती हैं। पत्तों के किनारे सरल या दूर-दूर दन्दानों (*distantly toothed*) वाले होते हैं। पुष्पध्वज अर्थात् पुष्पदंड या स्केप (*scape*) गेहूँ की बाली की भाँति टहनी के सिरे पर निकलता है, जो पत्तियों के ऊपर दिखाई देता है अथवा कभी पत्तियों से छोटा होता है। पुष्प छोटे-छोटे तथा लम्बगोल अथवा अण्डाभ या बेलनाकार मंजरियों (*ovoid or cylindric spikes, $\frac{1}{2}$ to $1\frac{1}{2}$ inches long*) में निकलते हैं। फल $\frac{5}{8}$ सें० मी० ($\frac{1}{4}$ इंच) लम्बा, लम्बगोल तथा सामान्य स्फोटी अर्थात् कैप्सूल (*capsule*) होता है, जिसका ऊपरी आधा भाग टोप की भाँति स्फुटन में खुलता है। अन्दर नौकाकार अनेक छोटे-छोटे बीज भरे होते हैं।

उपयोगी अंग—बीज (इसबगोल) एवं बीजत्वक् (ईसबगोल की भूसी)।

मात्रा। बीज—३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा)। फांट तथा हिम के लिए—६ ग्राम से ११.६ ग्राम (६ माशा से १ तो०)।

भूसी—१ ग्राम से ३ ग्राम (१ से ३ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—इसबगोल के बीज नौकाकार, कड़े, पारभासी (*translucent*), गुलाबी लिये खाकस्तरी रंग से (*pinkish-grey*) भूरे रंग के, $\frac{5}{16}$ सें० मी० ($\frac{1}{8}$ इंच) तक लम्बे एवं $\frac{5}{32}$ सें० मी० ($\frac{1}{16}$ इञ्च) से भी कम चौड़े होते हैं। इनका एक तल उन्नतोदर (*convex*) तथा एक नतोदर (*concave*) होता है। उन्नतोदर तल के मध्य में लालिमा लिये भूरे रंग का एक चमकदार तथा अंडाकार चिह्न होता है। नतोदर तल में मध्य में नाभि या वृंतक अर्थात् हाइलम (*hilum*) होती है, जो एक महीन सफेद झिल्ली से आवरित होती है। इसबगोल के बीजों में कोई विशेष गंध नहीं होती और स्वाद में यह लुआबी (*mucilaginous*) होते हैं। १०० बीजों का भार कम-से-कम ०.१७ ग्राम और अधिकाधिक ०.२२ ग्राम। अन्य इन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम २%। भस्म अधिकतम ३%। अम्ल में अघुलनशील भस्म—अधिकतम ६%। परीक्षण— २५ मि० लि० आयतन की कार्कयुक्त एक शीशे की परख नलिका (*stoppered cyltnder*) में २० मि० लि० के चिह्न तक जल भर दें। इसमें १ ग्राम इसबगोल डाल कर २४ घंटे तक रखा रहने दें। बीच-बीच में कभी-कभी इसको हिलाते रहें। २४ घंटे के बाद नलिका को खूब हिला कर १ घंटे तक रख दें। इस प्रकार १० मि० लि० आयतन की वृद्धि बीजों में होती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—इसबगोल की जाति के अन्य अनेक पौधों के बीज भी असली इसबगोल से स्वरूपतः एवं क्रिया में मिलते-जुलते हैं। अतएव इनका उपयोग स्वतंत्र रूप से इसबगोल नाम से अथवा मिलावट करने के लिए किया जाता है:—

(१) प्लांटागो आम्प्लेक्सिकाउलिस् (**Plantago amplexicaulis** *Cav.*) से श्यामता लिये भूरा इसबगोल प्राप्त होता है, जो प्रायः भारतीय बाजारों में उपलब्ध होता है। ये बीज भी रंग-रूप में इसबगोल ही की तरह और नोकदार, परन्तु इससे बड़े (औसतन $\frac{1}{8}$ इञ्च दीर्घ) होते हैं। यह पंजाब, मालवा एवं सिंध के मैदानों में स्वयंजात होता है, और दक्षिण यूरोप तक फैला हुआ है। फारस से भारतवर्ष में प्रचुरमात्रा में इसका आयात होता है। बारतंग (प्लांटागो माजोर **Plantago major** *Linn.*) भी इसबगोल की ही जाति का पौधा होता है। इसके पत्र भेड़ की जीभ की तरह होते हैं। बीज, लंबगोल, बनफ़शई लिये काले और इसबगोल जैसे होते हैं। जल में भिगोने पर इसमें इसबगोल जैसा लबाब निकलता है। स्वाद फीका एवं हीकदार होता है। बारतंग हिमालय के निम्न प्रदेश, आसाम, ब्रह्मा, कोंकण, पश्चिमी घाट, नीलगिरी, पुल्नी की पहाड़ियाँ, लंका, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, मलाया तथा यूरोप एव फारस आदि में प्रचुरता से होता है। इसका भी भारत में आयात प्रधानतः फारस से होता है। प्लांटागो लांसेओलाटा (**P. lanceolata** *Linn.*) के बीज भी बारतंग तथा इसबगोल के बीजों में मिलाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पंजाबी तुख्ममलंगा (सैल्विया ईजिप्टिआका **Salvia aegyptiaca** *Linn.* (*Family*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*Labiatae*) के बीज भी काफी लबाबी होते हैं और इसबगोल में मिलाये जाते हैं। विदेशी ईसबगोल प्लांटागो प्सीलिलियम् (**Plantago psyllium** *Linn.*) एवं प्लांटागो आरेनारिआ (**P. arenaria** *Waldst and Kit.*) के सुखाये हुए पक्व बीज भी कभी-कभी होते हैं। देशी एवं विदेशी ईसबगोल एक दूसरे के उत्तम प्रतिनिधि हैं।

इसबगोल की भूसी—यह बीजों के आकार के सफेद झिल्लीदार एवं पारभासी (*translucent*) टुकड़े होते हैं जो २ मि० मी० से ३ मि० मि० लम्बे तथा १ मि०मि० से ३ मि० मि० चौड़े होते हैं। यह गंधहीन तथा स्वाद में लबाबी (*mucilaginous*) होते हैं। इसमें अन्य सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २%; भस्म—अधिकतम २.९% तथा अम्ल में अघुलनशील भस्म—अधिकतम ०.४५% होते हैं।

परीक्षण—इसबगोल के बीजों की भाँति २५ मि० लि० वाली कार्कयुक्त नलिका में २० मि० लि० के चिह्न तक पानी भर कर उसमें १ ग्राम भूसी डाल कर ४ घंटे तक फूलने दें। बीच-बीच में कभी-कभी हिला दें। इसके बाद खूब हिला कर १ घंटे तक छोड़ दें। इस प्रकार भूसी फूल कर जेली की भाँति हो जाती तथा २० मि० लि० आयतन को ग्रहण करती है।

संग्रह एवं संरक्षण—इसबगोल के बीजों एवं भूसी को अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—बीजों में काफी मात्रा में म्युसिलेज (*mucilage*), ऐल्ब्युमिन तत्त्व, ५% हल्के पीले रंग का अर्ध-घन तैल, फाइटॉस्टेरोल तथा अक्युबिन (*Acubin* : $C_{13}H_{19}O_8, H_2O$) नामक ग्लूकोसाइड पाया जाता है। भूसी में प्रधानतः म्युसिलेज तथा सेलूलोज पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—स्नेहन एवं मादर्वकर, अतिसार-प्रवाहिकानाशक। भूसी—बल्य एवं मृदुसारक। यूनानी मतानुसार ईसबगोल दूसरे दर्जे में तर होता है। अहितकर—नाड़ी दौर्बल्यकारक एवं क्षुधानाशक। निवारण—सिकंजबीन। प्रतिनिधि—शीतजनन एवं मृदुकरण के लिए बिहीदाना।

विशेष—इसबगोल का प्रयोग प्रायः एकौषधि के रूपमें किया जाता है। इसबगोल की भूसी पौष्टिक होने के साथ-साथ मृदुसारक भी है। दौर्बल्य एवं विबन्ध युक्त अवस्थाओं में यह एक उत्तम सहायक औषधि है। एतदर्थ इसका सेवन रात्रि में सोने के पूर्व करना चाहिए।

इसरौल (ईश्वरमूल)

नाम। सं०—ईश्वरमूल, नाकुली, ईश्वरी। हिं०—ईश्वरमूल इसरौल, इसरमूल, इशरोल (ड़)। फा०—जरावंदे हिंदी। म०—सापसण, सापसन, सापसंद। संथा०—गद; वनझिंगना—(वटिया)। अं०—इन्डियन बर्थवर्ट (*Indian Birthwort*)। ले०—आरीस्टोलोकिआ ईन्डिका (**Aristolochia indica** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। ईश्वर्यादि-कुल (आरीस्टोलोकिआसी *Aristolochiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष की निचली पहाड़ियों एवं मैदानी जंगलों में न्यूनाधिक मात्रा में पायी जाती है। इसकी लताएँ विशेषकर नेपाल एवं बंगाल तथा दक्षिण भारत में कोंकण आदि में बहुतायत से मिलती हैं। सुखाये हुए काण्ड एवं जड़ के टुकड़े अत्तारों एवं देशी दवा बेचने वाले पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—इसरौल की प्रायः काष्ठीय, बहुवर्षायु, प्रतानिनी लताएँ होती हैं। मूलस्तम्भ काष्ठीय और काण्ड पतले, लम्बे, मूल के पास काष्ठीय, तथा नालीदार (*grooved*) होते हैं। पत्तियाँ प्रायः ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इंच से ४ इंच) लम्बी, १.२५ सें० मी० से ३ सें० मी० (½ इंच से १.२ इंच) तक चौड़ी (किसी-किसी में ६.२५ सें० मी० से १२.५-१५ सें० मी० या २॥ इंच से ५-६ इंच तक लम्बी, ७.५ सें० मी० या ३ इंच तक चौड़ी), लम्बाग्र और एक विशेष आकार की होती है, जिनमें फलकमूल पर चौड़ी, उसके बाद कम चौड़ी और ऊपर की ओर सबसे अधिक चौड़ी होती है। उनके कोण में उपपत्र सदृश कोणपुष्पक होता है। फलक मूल से ३—५ शिराएँ प्रायः पाणिवत् क्रम में निकली रहती हैं। पत्ती को मलने से या यूंही सूँघने से एक विशेष प्रकार की एक तीव्र गंध आती है। इसमें कुआर-कार्तिक में एक विचित्र आकृति के गुड़चियाये हुए बैंगनी रंग के पुष्प लगते हैं, जो १७.५ मि० मी० से ३.७५ सें० मी० या ०.७ से १॥ इंच तक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लम्बे होते तथा पत्रकोणों में निकलते हैं। कोणपुष्पक छोटे, प्रासवत् और लम्बाग्र होते हैं। सवर्ण कोश अर्थात् परिदलपुंज (*perianth*) के पत्र परस्पर संयुक्त होकर आधार पर गोलाकार, फिर नालाकार और अन्त में तुरही की तरह फैले हुए मुख का होता है, जो पीछे की ओर १.२५ सें० मी० से १.७५ सें० मी० (½ इंच से ¾ इंच) लम्बी एक बाह्यवृद्धि से युक्त होता है। परागाशय कुक्षिवृन्त से जुड़े रहते हैं। फूलों के झड़ जाने पर सतगुतिया जैसे (किन्तु अपेक्षाकृत छोटे) गोल या चौड़ा-आयताकार फल लगते हैं, जो फट जाने पर हवाई छतरी जैसा हो जाता है। बीज चिपटे, त्रिकोण और सपक्ष (*winged*) होते हैं। औषध्यर्थ इसकी जड़ एवं काण्ड का व्यवहार इसरौल के नाम से होता है।

उपयोगी अंग—मूल एवं काष्ठीय काण्ड।

मात्रा—½ ग्राम से ¾ ग्राम या ५ रत्ती से १० रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—उक्त काण्ड छोटे से बड़े टुकड़ों के रूप में होता है, अथवा कभी-कभी पूरे काण्ड के लपेटे हुए बंडल भी होते हैं। रूपरेखा में यह गोलाकार तथा मुटाई में ¼ सें० मी० से ¾ सें० मी० (⅛ इंच से ½ इंच) या कभी अधिक व्यास का होता है। इस पर पत्र एकान्तर क्रम से स्थित होते हैं। काण्डस्त्वक् मोटी, मुलायम तथा पीताभ भूरेरंग की होती है, जिस पर अनुलम्ब दिशा में अनेक उन्नत रेखाएँ होती हैं, तथा जगह-जगह बहुत छोटे-छोटे ग्रंथिल उत्सेध (*warty projection*) होते हैं। स्वाद में यह तिक्त एवं कर्पूर के समान गंध से युक्त होता है। इसकी जड़ बहुत लम्बी, ग्रंथिल तथा ऊपर सबसे मोटी तथा नीचे की ओर उत्तरोत्तर पतली छोटी अंगुलि से लेकर अंगुष्ठ से भी अधिक होती है। मूलत्वक् मुलायम एवं बादामी रंग की होती है। काष्ठीय भाग सफेद होता है। तोड़ने पर जड़ रेशेदार टूटती (*Fracture fibrous*) है। स्वाद में यह कुछ तिक्त होती है। काण्ड को छोड़ कर इसमें शेष विजातीय अपद्रव्य अधिकतम २%, अम्ल में अघुलनशील भस्म अधिकतम १०%, एवं वायव्य काण्ड अधिकतम १०% होने चाहिए।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—संग्रहकर्ता भूल से ईश्वरमूल की अन्य जातियों के मूल एवं काण्ड का भी संग्रह कर लेते हैं, जिनमें निम्न जातियाँ विशेष महत्त्व की हैं। (१) आरीस्टोलोकिआ ब्राक्टेआटा (**A. bracteata** *Linn.*) इसको कीटमारी, धूम्रपत्रा—(सं०), कीड़ामारी—(गु०, म०) कहते हैं। इसके पत्ते चौड़े हृदयाकार या वृक्काकार होते हैं, और सूखने पर धूम्र के रंग के हो जाते हैं; (२) आरी० टागाला (**A. tagala** *L.*) कभी कभी इसकी जड़ एवं काण्ड का भी मिलावट असली ईश्वरमूल में कर दिया जाता है।'

संग्रह एवं संरक्षण—इसरमूल को अच्छी तरह मुखबन्द शीशियों में अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरे स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—इसमें एक उड़नशीलतेल एवं ऐरिस्टोलोकीन (*Aristolochine*) नामक ऐल्केलॉइड तथा कुछ नाइट्रोजन घटित अम्लयौगिक (*nitrogenous acids*) पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—त्रिदोषहर, विशेषतः कफवातशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, विषघ्न, अल्प मात्रा में कटुपौष्टिक, अधिक मात्रा में ज्वरनाशक (विशेषतः विषमज्वर एवं सूतिकाज्वरनाशक), दीपन, ग्राही, रक्तशोधक, मूत्रल, स्वेदजनन, कफनिःसारक, गर्भाशयोत्तेजक आदि।

ईख (इक्षु)

नाम। सं०—इक्षु। हिं०—ईख, ऊख, गन्ना। बं०—इक्षु, आक। पं०—इख। गु०—शेरडी। म०—ऊंस। नेपाल—उक। अ०—कसबुस्सुक्कर। फा०—नैशकर। अं०—शुगरकेन *Sugar-cane*)। ले०—साक्कारुम् ऑफ़ीसिनारुम (**Saccharum officinarum** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। तृण-कुल (ग्रामिनी: *Gramineae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के समस्त उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में ईख की लम्बे परिमाण में खेती की जाती है। जाड़े के अन्त में तथा ग्रीष्म में समूचा गन्ना बाजारों में बिकता है। इसके रस से बने गुड़, खांड, चीनी, मिश्री आदि सर्वत्र बाजारों में मिलते हैं। 'पुराना गुड़' तथा 'इक्षुमूल' पंसारियों के यहाँ प्राप्त होते हैं।

संक्षिप्त परिचय—यह शर जाति का क्षुप है, जिसके काण्ड (डंठल) में मीठारस भरा होता है। इसका काण्ड १.८ मीटर से ३.६ मीटर (६ फुट से १२ फुट) ऊँचा होता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, जिसपर ६-६ या ७-७ अंगुल पर गाँठें होती हैं, और सिरे पर लम्बी-लम्बी ९० सें० मी० से १२० सें० मी० या ३ से ४ फुट लम्बी, ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ से ३ इंच चौड़ी पत्तियाँ होती हैं, जिनको 'गेंड़ा' कहते हैं। यह मवेशियों के लिए चारे का काम देती है। पत्तियों के किनारे या तट तेज होते हैं। काण्ड पर भी सूखी, काण्डसंसक्त पत्तियाँ होती हैं, जिनको 'पताई' कहते हैं। यह जलाने तथा छप्पर एवं चटाई बनाने के काम आती है। पुष्पों की चूड़ा सरपत की तरह पक्षतुल्य होती है। ऊख की फसल तैयार होने में प्रायः १२ महीना लग जाता है। जनवरी-फरवरी में गन्ना बोया जाता है, और अगले वर्ष दिसम्बर-जनवरी तक यह पककर काटने योग्य हो जाता है। इसके काण्ड को कोल्हू में दबाकर रस निकाला जाता है, जिसे पकाकर गुड़, खाँड़ एवं देशी शक्कर (*unrefined sugar*) बनायी जाती है। ईख से चीनी की फैक्टरियों में साफ चीनी (*refined sugar*) बनायी जाती है। इससे मिश्री बनायी जाती है। ईख की अनेकों जातियाँ तथा भेद पाये जाते हैं। काण्ड के रंगभेद से भी इसके अनेकों भेद होते हैं। ईख की उक्त सभी जातियों तथा भेदोपभेदों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—(१) ऊख; (२) गन्ना; और (३) पौंढ़ा। ऊख का डंठल पतला, छोटा और कड़ा होता है। इसका कड़ा छिलका कुछ हरापन लिये पीला होता है, और जल्दी छीला नहीं जा सकता। इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी, नरम और गहरे रंग की होती हैं। इसकी गाँठों में उतनी जटाएँ नहीं होतीं। केवल नीचे दो-तीन गाँठों तक होती हैं। इसका गुड़, चीनी आदि खाने में अधिक अच्छी होती है। गन्ना ऊख से मोटा और लम्बा होता है, और पत्तियाँ ऊख की अपेक्षा अधिक लम्बी-चौड़ी एवं किनारों पर तीक्ष्ण होती हैं। इसका गुड़, चीनी आदि जो बनता है, उसका रंग साफ नहीं होता। पौंढा—यह ऊख की विदेशी जाति है। उत्तर प्रदेश में अवध के जिलों में इसकी खेती अधिक होती है। इसका डंठल मोटा और गूदा बहुत नरम होता है। छिलका कड़ा, किन्तु छीलने पर आसानी से उतर आता है। यह यहाँ अधिकतर चूसने के काम आता है।

उपयोगी अंग—रस, मूल एवं रस से बने गुड़, शर्करा सिरका एवं मिश्री आदि।

मात्रा। स्वरस—२ से ५ तोला।
मूल—३ माशा से २ तोला (क्वाथार्थ)।
गुड़ (मृदुकरणार्थ विरेचन औषधियों के साथ)—२ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—ऊख का छिलका पतला किन्तु काफी कड़ा होता है, क्योंकि इसमें प्रचुरता से सिलिका (*silica*) होती है। काण्ड का अनुप्रस्थ-विच्छेद (*transverse section*) करने पर परिधि की ओर तन्तुवाहिनी मूल या बंडल (*fibro-vascular bundles*) काफी मात्रा में पाये जाते हैं। मध्य का भाग मुख्यतः तनुभित्तिक ऊति अर्थात् मृदूतक या पेरेंकाइमा (*parenchyma*) का बना होता है, जो मुलायम तथा गूदेदार होता है। इनकी कोशाओं में शर्करा विलयन, स्टार्च के कण एवं ऐल्ब्युमिनीय पदार्थ (*albuminous matter*) भरे होते हैं। मज्जक-कोषाओं (*medullary cells*) में कुछ पेक्टिन भी पायी जाती है। गुड़—गाढ़े रंग के छोटे-बड़े ढेलों के रूप में प्राप्त होता है, जिसमें तेजी लिये अत्यंत मिठास होती है। अन्त में कुछ तिक्त अनुरस (*bitterish aftertaste*) की भी अनुभूति होती है। खांड कालिमा लिये लालरंग के अर्ध-घन के रूप में होती है, जिसके द्रवांश एवं अक्रिस्टली अंश (*uncrystallisable portion*) को पृथक् करने से देशी चीनी या शक्कर प्राप्त होती है। आजकल फैक्टरियों में साफ चीनी व्यावसायिक खपत के लिए प्राप्त की जाती है। इससे मिश्री बनायी जाती है। भैषज्य-कल्पना में अब प्रायः साफ चीनी एवं मिश्री का व्यवहार किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—भैषज्य-कल्पना में पुराने गुड़ की आवश्यकता होती है। अतएव गुड़ को शीशे के जारों में अथवा अन्य उपयुक्त पात्रों में रखकर, संग्रहतिथि लिख देनी चाहिए। मूल एवं अन्य उपयोगी अंगों को भी अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में रखें।

संगठन—ईख के रस में इक्षुशर्करा (सुक्रोज), लवाब, राल, वसा एवं जल तथा ग्वानीन (*Guanine*) नामक एक जलविलेय सफेद स्फटिकीय चूर्ण तथा कैल्सियम् ऑक्जलेट पाया जाता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वीर्यकालावधि। मूल–१ वर्षतक। शर्करादि–दीर्घकाल पर्यन्त।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–वातपित्तशामक, कफवर्धक, सारक, हृद्य, रक्तपित्तशामक, श्लेष्मनिस्सारक, मूत्रल, बल्य, बृंहण, वृष्य, स्तन्यजनन आदि। यूनानी मतानुसार ईख पहले दर्जे में गरम और दूसरे में तर है। अहितकर–श्लेष्म प्रकृतिको। निवारण–अनीसूं। गुड़–दूसरे दर्जे में गरम और तर तथा पुराना गुड़ गरम और खुश्क है। चीनी–सफेद चीनी पहले दर्जे में गरम और तर। शकर सुर्ख (शकर खाम–लालचीनी) सफेदशकर की अपेक्षा अधिक गरम होती है। पुरानी होने पर शकर की तरी कम और खुश्की अधिक हो जाती है। अहितकर–उष्ण प्रकृति को। निवारण–बादाम और दूध।

मुख्य योग–तृणपंचमूल, लऊक़ आबनैशकरवाला।

विशेष–भैषज्य-कल्पना में गुड़ एवं शर्करा का उपयोग शर्बत, पानक, अवलेह, पाक, गुलकन्द एवं गुटिका आदि के निर्माण में आधारद्रव्य के रूप में किया जाता है।

उटंगन

नाम। हिं०–उटंगन, उतंजन। भा० बाजार–उतंजन। बम्ब०, पं०–उट्टंगन। म०–उटंगन। गु०–उटींगण। ले०–ब्लीफारिस एडूलिस (**Blepharis edulis** *Pers.*)।

वानस्पतिक कुल। वासक-कुल (आकान्थासी : *Acanthaceae*)।

प्राप्तिस्थान–मिस्र, फारस, बलूचिस्तान एवं सिंध तथा पंजाब। भारतवर्ष (बम्बई) में उट्टंगन का आयात मुख्यतः मिस्र तथा फारस से होता है। उत्तर भारत में भी उटंगन के बीजों का संग्रह किया जाता है।

संक्षिप्त परिचय–उटंगन के कंटीले क्षुप होते हैं। पत्तियाँ २.५ सें.मी. से ५ सें.मी. (१ इंचसे २ इंच या अधिक) लम्बी, रूपरेखा में रेखाकार या आयताकार किन्तु कुछ चौड़ी तथा आरावत् दन्तुरधार वाली होती हैं। पत्तियों तथा काण्ड पर सर्वत्र छोटे-छोटे कांटे से होते हैं। शरीर पर पौधा लगने से लाली, खुजली तथा जलन मालूम होती है। पुष्प विदण्डिकशूकी के आकार की मंजरियों (*spikes*) में निकलते हैं। फल, स्फोटी (*capsules*) होते हैं। औषधि में बीजों का व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग–बीज।

मात्रा–३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–बाजारों में मिलने वाले उटंगन बीजों में फलों (*capsules*) के टूटे हुए टुकड़े तथा कभी-कभी समूचे फल भी मिले होते हैं, जो ¾ सें० मी० (⅓० इंच) लम्बे, ½ सें० मी० (⅕ इंच) चौड़े, संकुचिताग्र, पार्श्वों में चिपटे (*laterally compressed*) तथा रेखांकित होते हैं। बाह्य सतह प्रायः चिकना और बादामी (*Chestnut*) रंग का होता है। उक्त फल द्विकोष्ठीय, एवं द्विबीजयुक्त होते हैं। बीज चपटे चमकीले एवं भूरेरंग के तथा रूपरेखा में हृदयाकार और कुछ तीसी के बीजों से मिलते-जुलते एवं रोमाच्छादित होते हैं। बीजों को जल में भिगोने पर ये बाल जल सोखकर फूल जाते और पुष्कल चिपचिपा लबाब उत्पन्न करते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण – उटंगन के बीजों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन – बीजों में एक तिक्त सफेद स्फटिकीय तत्त्व तथा एक अन्य सफेद स्फटिकीय तत्त्व जो तिक्त नहीं होता, ये दो सत्त्व पाये जाते हैं। इसके जलीय सत्त्व में पुष्कल-मात्रा में लबाब और ऐल्ब्यूमेन होता है।

वीर्यकालावधि – १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–मधुर, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। कर्म–नाड़ीबल्य, मूत्रल, वृष्य, बल्य, बृंहण। यूनानीमतानुसार यह पहले दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष (मतांतर से मोतदिल) तथा बाजीकर, वीर्य स्तम्भन, वीर्यपुष्टि(सांद्र)कर, वृक्क एवं कटि को शक्ति देने वाला, मूत्रल तथा पेशाब की जलन को दूर करनेवाला होता है।

मुख्य योग – नपुंसकता, शीघ्रस्खलन, शुक्रतारल्य एवं शुक्रमेह आदि में प्रयुक्त होने वाले माजूनों एवं चूर्णों में उटंगन के बीज भी डाले जाते हैं।

उन्नाव (राजबदर)

नाम। सं०–राजबदर, सौवीर, सौवीरक, सौवीरबदर। हिं०–उन्नाव, तितमबेर, कंडियारी। पं०–संजीत। बम्ब०–उन्नाव, खोरासानी बेर। अ०–उन्नाब। फ़ा०–सीलानः, सिंजद जीलानी, सिंजद खोरासानी। अं०–जुजुब (*Jujub*)। ले०–ज़ीज़िफुस साटीवा **Zizyphus**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

sativa *Gaertn.* (पर्याय–*Z. vulgaris Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। बदरादि-कुल (रहाम्नासी *Rhamnaceae*

प्राप्तिस्थान – पंजाब, हिमालय प्रदेश (पंजाब से बंगाल तक) कश्मीर, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, चीन। भारतवर्ष में इसका आयात फ़ारस एवं चीन से होता है।

संक्षिप्त परिचय–उन्नाव के काँटेदार खड़े गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं, जो देखने में बदर (ज़ीज़िफ़ुस जुजुबा (**Zizyphus jujuba** *Lam.*) के वृक्ष की भाँति होते हैं, किन्तु इसकी पत्तियाँ बदर की पत्तियों की अपेक्षा बड़ी एवं मोटी तथा एक पृष्ठ पर रोंईदार होती हैं। इसका काष्ठ, छाल एवं फल सब लाल होते हैं। पुष्प पत्रकोणोद्भूत, सवृन्त मुण्डकाकार गुच्छकों में निकलते हैं। वाह्यकोष ५ खण्डोंवाला, दलपत्र (*petals*) ५, पुंकेशर ५, तथा गर्भाशय द्विकोषीय; कुक्षिवृन्त द्विधा-विभक्त (*style branched*)। फल लालरंग के गोल अष्ठिफल (*drupe*) होते हैं, जो झरबेरी के फल से किंचित् वृहत् (१ इंच से १॥ इंच लम्बा और ¾ इंच चौड़ा) होते हैं।

उपयोगी अंग–शुष्क फल, पत्र, छाल एवं गोंद।

मात्रा। फल–५ से ७ दाने (१५ दाने तक)।

पत्रचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–भारतीय बाजारों में उन्नाव का आयात प्रधानतः चीन एवं फारस की खाड़ी पर स्थित बन्दरगाहों से होता है। चीन से आने वाला उन्नाव २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इंच से १॥ इंच) लम्बा और (१.८५ सें० मी० (¾ इंच) चौड़ा, बेर की तरह गोल होता है। फल का छिलका लाल तथा अत्यंत झुर्रीदार, गूदा गूठली से चिपका हुआ, स्पंज की तरह हल्का और सुषिर, मीठा तथा पीले रंग का होता है। गुठली (*stone*) कड़ी, झुर्रीदार (*rugose*) ७-१०वाँ इंच लम्बी, तथा अग्र की ओर नुकीली होती है। बीज लम्बगोल, चपटे, भूरेरंग के तथा ४-१०वाँ इंच लम्बा २-१०वाँ इञ्च चौड़ा होता है। फारस की खाड़ी से आने वाला उन्नाव चीनी की अपेक्षा छोटा होता है। उत्तम उन्नाव वह है, जो बड़ा, और खूब पका, लाल, गुदार तथा स्वादिष्ट हो और कसैला यथासम्भव कम-से-कम हो। देशी उन्नाव नेपाल और रंगपुर की ओर से आने वाला भी मधुर और कम कसैला होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–इसे अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में तथा अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–फल में लुआब और शर्करा; और छाल तथा पत्तियों में टैनिन होती है। काष्ठ के जलीयसार में एक प्रकार का क्रिस्टली सत्व (उन्नावाम्ल) एवं टैनिन (*Ziziphotannic acid*) और कुछ शर्करा होती है।

वीर्यकालावधि–अच्छी तरह रखने से इसमें २ वर्ष तक वीर्य रहता है।

स्वभाव। गुण–स्निग्ध। रस–मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–कफनिस्सारक एवं उरोमार्दव-कर, रक्तविकारशामक, तृषाहर। पत्रचूर्ण–इक्षुमेह-नाशक है। अहितकर–आमाशय को तथा आनाहकारक एवं कामावसादक। निवारण–शर्करा, अर्कगुलाब, मधु। प्रतिनिधि–सपिस्ताँ (लिसोढा)।

मुख्य योग–शर्बतउन्नाव। श्वासपथ के रोगों में प्रयुक्त क्वाथों में भी यह सहायक औषधि के रूप में पड़ता है।

उलटकम्बल

नाम। सं०–पिशाचकार्पास (नवीन)। बं०–ओलोटकंबल। हिं०–उलटकंबल। बम्ब०–ओलक्तंबोल। अं०–डेविल्स कॉटन (*Devil's Cotton*)। ले०–आब्रोमा आंउगुस्टा (**Abroma augusta** *Linn. f.*)।

वानस्पतिक कुल। पिशाचकार्पास-कुल (स्टेर्कुलिआसी *Sterculiaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में विशेषतः उत्तर प्रदेश से सिक्कम ९१४.४० मीटर (३,००० फुट तक) तथा बंगाल, आसाम, खसिया (४००० फुट तक) आदि में इसके जंगली तथा लगाये हुए क्षुप मिलते हैं। दर्शनीय गंभीर रक्तवर्णीय फूलों के लिए यह बागों में भी आरोपित होता है। इसकी मूलत्वक् औषधि में व्यवहृत होती है, जो पंसारियों के यहाँ मिलती है। इसका आयात मुख्यतः बंगाल से होता है।

संक्षिप्त परिचय–उलटकंबल के बड़े गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ रोमावृत होती हैं। पौधे के अधः भाग की पत्तियाँ गोलाकार-हृदयाकार, खण्डयुक्त अथवा दन्तुर किनारों वाली तथा लम्बे वृन्तयुक्त होती हैं। ऊपर की पत्तियाँ लट्वाकार, भालाकार अथवा हृदयाकार १५ सें० मी० (६ इंच) तक लम्बी तथा

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोटे वृन्तयुक्त होती हैं। यह ऊर्ध्व तल पर प्रायः चिकनी तथा अधस्तल पर रोमश होती हैं। पुष्प गाढ़े बैंगनी रंग के होते हैं, जो शाखाओं पर या पत्तियों के अभिमुख छोटी मंजरियों में निकलते हैं। पुटपत्र या बाह्य दलपत्र (*sepals*) पीताभ-हरित, २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बे और रूपरेखा में भालाकार और नुकीले अग्र वाले होते हैं। दलपत्र (*petals*) गाढ़े बैंगनी रंग के, खातोदर (बाहर की ओर फूले हुए) तथा २.५ सें० मी० (१ इंच) लम्बे होते हैं। फल (*capsule*) पांच स्पष्ट खंडों एवं कोणों वाला होता है और शीर्ष पर कमल के फल की तरह कटा हुआ या छिन्नाभ (*truncate*) तथा ५ सें० मी० या २ इञ्च तक लम्बा होता है, जिसमें मूली के बीज के बराबर अनेक काले बीज भरे होते हैं। फल के अन्दर बीजों के चारों ओर कड़े रेशम-जैसे तन्तु या लोम होते हैं, जिनको स्पर्श करने से स्थानिक क्षोभ एवं खुजली-सी मालूम होती है। पुष्पागम वर्षा में तथा फलागम जाड़ों में होता है। इसके काण्डत्वक् से रेशम-जैसे मजबूत रेसे प्राप्त होते हैं, जिनका उपयोग रस्सी बनाने के लिए किया जाता है। मूलत्वक् का उपयोग चिकित्सा में होता है।

उपयोगी अंग—ताजी या सुखाई हुई जड़ (विशेषतः छाल—मूलत्वक्)।

मात्रा। ताजा मूलत्वक् स्वरस—१॥ से ३ माशा। त्वक्चूर्ण—१ ग्राम से १॥ ग्राम या १ माशा से १॥ माशा। ताजा मूल—४ ग्राम से ८ ग्राम या ४ माशा से ८ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—उलटकंबल के जड़ की छाल बाहर से मटमैले भूरे रंग की होती है, तथा बाह्य तल पर अनुलम्ब दिशा में झुर्रियाँ पड़ी होती हैं, और जगह-जगह छोटे-छोटे ग्रंथिल चिह्न (*warty markings*) से होते हैं। अन्तस्तल श्वेताभ-पीतवर्ण का तथा अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्मरेखांकित (*longitudinally striate*) होता है। शुष्क छाल प्रायः ½ मि० मि० से १ मिलिमीटर मोटी होती है, किन्तु पुराने वृक्षों एवं मोटी जड़ों की छाल अपेक्षाकृत अधिक मोटी होती है। जड़ या छाल को जल में भिगोने पर अत्यंत लबाबी मालूम होती है और देर तक जल में पड़ा रहने पर लबाब पृथक् प्राप्त किया जा सकता है। उक्त मूलत्वक् प्रायः स्वादरहित, चिपचिपी (*slimy*), गंधहीन तथा चिमड़ी (*tough*) होती है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—उलटकंबल की जड़ एवं मूलत्वक् को हवा में शुष्क कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्रशीतल स्थान में रखें।

संगठन—उलटकंबल की जड़ में काफी मात्रा में लुआबी तत्त्व, कार्बोहाइड्रेट, रेजिन, तथा अल्पमात्रा (०.०१%) में ऐल्केलॉइड तथा (०.१%) जल-विलेय भस्म होती है। इसमें काफी मात्रा में मैगनीसियम् भी होता है, जो हाइड्रॉक्सी-एसिड के साथ संयुक्तावस्था में पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—६ मास।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—गर्भाशययोत्तेजक, आर्त्तवजनन तथा वेदनास्थापन एवं गर्भाशयबल्य। उलट कंबल की विशिष्ट क्रिया गर्भाशय पर होती है। इससे आर्त्तव साफ आता तथा नियमित हो जाता है, और आर्त्तवपीड़ाशामक होने से इसका प्रयोग रजोरोध एवं कष्टार्त्तव आदि विकृतियों में किया जाता है। एतदर्थ मूलत्वक् का ताजा स्वरस अधिक उपयुक्त होता है। क्योंकि ऐल्कोहॉल् आदि संरक्षक द्रव्यों के संपर्क से इसके सक्रिय तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

विशेष—प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। किन्हीं विद्वानों ने इसके लिए 'भारद्वाजी' पर्याय का उल्लेख किया है। किन्तु भारद्वाजी 'अरण्यकार्पास' को कहते हैं। 'पिशाचकार्पास' इसका अभिनव संस्कृत नाम है।

उषक

नाम। हिं०, भा० बाजार—उषक, काँदर। अफ़गानी—कंदल। अ०—उषक, ऊषज। फा०—उषः, ऊषः। यू०—अमोनियाकोन (*Ammoniakon*)। ले०—डोरेमा आम्मोनिआकुम् (**Dorema ammoniacum** *Don.*)। लेटिन नाम इसकी वनस्पति का है।

वानस्पतिक कुल। छत्रक-कुल (उम्बेल्लीफ़ेरी *Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान—फारस, अफ़गानिस्तान, यूरोप। उषक का आयात बम्बई बाजार में फारस से होता है। बम्बई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके व्यापार की बड़ी मंडी है। यहाँ से अन्य बाजारों में भेजा जाता है।

संक्षिप्त परिचय—उषक एक उड़नशील तैल युक्त रालीय गोंद (*oleo-gum-resin*) होता है, जो प्रधानतः उक्त वनस्पति तथा इसकी अन्य प्रजातियों से भी संग्रहीत किया जाता है। उक्त निर्यास का संग्रह प्रायः मई-जून के महीनों में किया जाता है। जब पौधे में पुष्पागम एवं फलागम हो जाता है, तो एक प्रकार के कीटों द्वारा इसके काण्ड एवं फलादि पर क्षत किया जाता है, जिससे एक गाढ़ा स्राव निकल कर तने एवं फलादि पर एकत्रित हो जाता है। जो स्राव पौधे पर नहीं जमता वह नीचे गिर जाता है। उसका भी संग्रह कर लेते हैं।

उपयोगी अंग—उड़नशील तैलयुक्त रालीय गोंद या निर्यास (*Oleo-gum-resin*)।

मात्रा—०.५ ग्राम से १.५ ग्राम या ४ रत्ती से १॥ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—फारस से जो उषक आता है, संग्रहकर्ताओं की असावधानी के कारण उसमें क्षुप के सभी टूटे-फूटे अंग तथा मिट्टी आदि अपद्रव्य भी मिले होते हैं। इससे अश्रुवत् बड़े दाने पृथक् छाँटे जाते हैं; जो सर्वोत्तम एवं अपेक्षाकृत अधिक मूल्य पर बिकते हैं। उषक के अश्रुवत् गोल दाने (५ मि० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इंच से १ इंच व्यास तक के) या इन दानों की परस्पर मिली हुई बड़ी-बड़ी डलियाँ होती हैं। इनको तोड़ने पर मोम की तरह टूटती हैं, और टूटातल पीताभ-श्वेत होता है। देर तक पड़ा रहने से कालाई लिये हो जाता है, किन्तु भीतर से यह अस्वच्छ दुग्धवत् या पीताभ वर्ण होता है। हल्की गरमी या आर्द्रता से नरम हो जाता है। गंध हल्की और विशेष प्रकार की होती है। स्वाद तिक्त, संक्षोभक और हृल्लासजनक होता है। यूनानी हकीमों के मत से जो सफेद, नरम, स्वच्छ एवं शुद्ध हो और जल में शीघ्र घुल जाय, जिसमें नीलेपन की झलक हो तथा स्वाद में तिक्त हो और जिसमें कुंदुर या जुंदबेदस्तर-जैसी सुगंध आती हो, वह उषक उत्तम समझा जाता है। परीक्षण—जल में घोलने पर दुधिया घोल (इमल्सन) बन जाता है; और इस प्रकार प्राप्त इमल्सन में सॉल्यूशन ऑव क्लोरिनेटेड सोडा डालने से इल्मसन नारंगी की तरह लाल वर्ण का हो जाता है। दूसरे उषक में अम्बेलिफेरोन (*umbelliferone*) नहीं पाया जाता।

संग्रह एवं संरक्षण—इसको अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए और आर्द्रता या नमी पात्र के अन्दर न पहुँचे इसका ध्यान रखना चाहिए।

संगठन—उषक में ०.०८% से ०.३०% उत्पत्तैल (६% तक), ६०% से ७०% रेजिन तथा लगभग २०% गोंद एवं आर्द्रता और भस्म प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, शोथहर, लेखन, वातनाशक, नाड़ीबल्य, दीपन-पाचन, अनुलोमन, सारक, उदरकृमिनाशक, यकृत्प्लीहाशोथहर, कफनिस्सारक, मूत्रार्त्तवजनन, स्वेदजनन। शरीर से इसका निस्सरण श्वासनलिका, त्वचा एवं वृक्कों से होता है। यूनानी मतानुसार उषक दूसरे दर्जे में गरम और पहले में रूक्ष होता है।

विशेष—उषक के गुण-कर्म बहुत-कुछ जवाशीर (*Galbannm*) तथा हींग की भाँति होते हैं।

उस्तखुद्दूस (उस्तूखद्दूस)

नाम। हिं०—घारू; (भा० बाजार)—उस्तूखुद्दूस। अ०—आनिसुल्अरवाह; (पुष्प)—ज़रम; ज़हरुल्ज़रम। बम्ब०—अल्फाजन। बं०—तुनतुना। अं०—अरेबिअन या फ्रेंच लेवेंडर (*Arabian or French Lavander*)। ले०—लावेंडूला स्टीकास **Lavendula stoechas** *Linn.*।

वानस्पतिक कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटी *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान—यूरोप के भूमध्यसागरतटवर्ती क्षेत्रों में पुर्तगाल, फ्रांस से लेकर पूरब में एशिया-माइनर, अरब तक इसके स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। यूरोपीय देशों में इसका सुगंधित तैल भी पृथक् किया जाता है। इसका शुष्क पुष्पव्यूह पंसारियों एवं यूनानी दवा बेचने वालों के यहाँ मिलता है। भारतवर्ष में इसका आयात यूरोप एवं अरब से होता है।

उपयोगी अंग—फूल एवं पत्र।

मात्रा—३ ग्राम से ५ ग्राम (७ ग्राम) या ३ माशा से ५ माशा (७ माशा) तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—उस्तखुद्दूस का फूल सफेदी लिये नीले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रंग का और उसमें कुछ पिलाई और ललाई की भी झाँई पायी जाती है। उनके ऊपर बारीक कोमल रोम पाये जाते हैं। इसमें कर्पूर-जैसी तीव्र सुगंधि आती है। इसके सूँघने से छींके आती हैं। स्वाद किंचित् तीक्ष्ण एवं तिक्त होता है। इससे लालिमा लिये पीले रंग का एक उड़नशील तैल प्राप्त होता है, जो रोजमेरी के तेल से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। बीज कँगनी की तरह किंतु उससे छोटा, महीन, किंचित् चपटा और कालाई लिये पीला होता है। इसके मलने से कपूर-जैसी सुगंधि आती है। इसका स्वाद भी तीक्ष्ण एवं तिक्त होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—तुलसी-कुल की अन्य दो वनस्पतियाँ भारतवर्ष में भी पायी जाती हैं, जिनका ग्रहण उस्तुखुद्दूस के नाम से किया जाता है। इन्हें 'भारतीय उस्तुखुद्दूस' कह सकते हैं। भारतीय उस्तुखुद्दूस का व्यवहार विदेशी उस्तुखुद्दूस के प्रतिनिधि के रूप में कर सकते हैं। किन्तु साधारणतया 'विदेशी उस्तुखूददूस', भारतीय की अपेक्षा अधिक वीर्यवान् होता है :—(१) कश्मीरी-प्रूनेल्ला वुल्गारिस **Prunella vulgaris** *Linn.* (पर्याय—ब्रूनेल्ला वुल्गारिस **Brunella vulgaris** *L.*)—इसके क्षुप समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में कश्मीर से भूटान तक (१२०४ मीटर से ३३३७.७ मीटर या ४,००० फीट से ११,००० फीट) तथा खसिया की पहाड़ियों पर (१२०४ मीटर से १८२८.८ मीटर या ४,००० फुट से ६,००० फुट) एवं दक्षिण भारत में पुल्नी एवं ट्रावन्कोर की पहाड़ियों पर पाये जाते हैं। फूल बनफशाई बैंगनी होता है। इसे पंजाब में 'औस्तखद्दूस' कहते हैं। (२) जंगली लवंडर (लावेन्डुला बर्मानी **Lavendula burmani** *Benth.* (पर्याय—*L. bipinnata O. Ktze.*)—इसके क्षुप छोटा नागपुर, आबू पहाड़, तथा दक्षिण-पश्चिम भारत में कोंकण, खानदेश एवं दकन आदि में पाये जाते हैं। बम्बई बाजार में यह 'जंगली लवंडर' के नाम से बिकता है। गुजराती में इसे 'सरपनों छरो' कहते हैं। फूल नीला, सफेद और अत्यंत सुगंधित होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—उस्तुखुद्दूस को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन—इसके पुष्पों से रक्ताभ-पीत वर्ण का उड़नशील तेल प्राप्त होता है, जो इसका मुख्य सक्रियघटक है।

वीर्यकालावधि—कुछ महीने।

उपयोग—यूनानी मतानुसार यह पहले दर्जे में उष्ण तथा दूसरे में रूक्ष होता है। उस्तुखुद्दूस श्वयथुविलयन, प्रमाथी, वातनाड़ी एवं मस्तिष्कसंशोधक, बलदायक, दीपन, वातानुलोमन और श्लेष्म-विरेचन है। उस्तुखुद्दूस को अधिकतया पक्षवध, अर्दित, अपस्मार, शीतल प्रसेक और प्रतिश्याय, एवं विस्मृति आदि मस्तिष्क एवं वातरोगों में व्यवहृत करते हैं। मस्तिष्क को मल से शुद्ध करने के लिए यह उत्तम औषधि है। उरो रोगों में पित्तज एवं कफज दोषों के उत्सर्ग के लिए बहुत उपकारक होता है। कफरोग एवं श्वास (दमा) में जूफा, सौंफ, मुलेठी आदि उपयुक्त औषधियों के साथ इसका व्यवहार किया जाता है। **अहितकर**—यह पिपासाजनक और हृल्लासकारक है। पित्तल प्रकृति वालों को इसका उपयोग उचित नहीं है। **निवारण**—पित्तशामक द्रव्य, यथा नीबू का शर्बत आदि।

मुख्य योग—शर्बत उस्तूखुद्दूस, अतरीफल उस्तूखुद्दूस।

ऊदसलीब

नाम। (१) **वदेशी जाति**—हिं०, भा० बाजा०—ऊदसालप। अ०—ऊदुल्सलीब (*Wood of the Cross*), ऊदसलीब। ले०—पेओनिआ ऑफ़िसिनालिस (**Paeonia officinalis** *Linn.*)। (२) **भारतीय जाति**। पं०—मामेख। कश्मीर—मिद, महामेद। अं०—हिमालयन पेओनी (*Himalayan Peony*), पेओनी रोज (*Peony Rose*)। ले०—पेओनिआ एमोडी (**Paeonia emodi** *Wall.*)।

वानस्पतिक-कुल। वत्सनाभ-कुल (राननकुलासी *Ranunculaceae*)

प्राप्तिस्थान—विदेशी ऊदसलीब का मुख्य उत्पत्ति स्थान यूरोप है। भारतवर्ष (बम्बई) में इसका आयात मुख्यतः टर्की से होता है। भारतीय बाजारों में जो ऊदसलीब की जड़ मिलती है, वह मुख्यतः विदेशी ही होती है। 'भारतीय ऊदसलीब' इसका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है, और इसका प्रयोग उन सभी अवस्थाओं में किया जा सकता है, जिनमें विदेशी ऊदसलीब के निर्देश हैं। यह पश्चिमी हिमालय प्रदेश में कश्मीर और हजारा से कुमायूँ तक १५२३ मीटर से ३०४६ मीटर या ५,०००

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फुट से १०,००० फुट की ऊँचाई तक के प्रदेशों में पायी जाती है।

संक्षिप्त परिचय। पेओनिया इमोडी—इसके कोमल काण्डीय छोटे-छोटे पौधे होते हैं, जिनका भौमिक भाग बहुवर्षायु स्वरूप का (*perennial*) होता है। काण्ड ३० सें०मी० से ६० सें० मी० या १ फुट से २ फुट ऊँचा, खड़ा (*erect*) तथा पत्रबहुल होता है। पत्तियाँ १.८ से ३.६ मीटर (६ इंच से १२ इंच) लम्बी, सपत्रक एवं एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। पत्रक ३, जो प्रायः विपक्षवत् खण्डित (*3-parted*) होते हैं। खण्ड, भालाकार नुकीले अग्र एवं सरल धारवाले होते हैं। पुष्प बड़े (७.५ से १० सें० मी० या ३ से ४ इंच व्यास के) किन्तु संख्या में कम होते हैं, जो ऊपरी पत्तियों के कोणों से लम्बे पुष्पवृन्तों पर निकलते हैं, और अत्यंत आकर्षक होते हैं। बाह्य दलपुंज संख्या में ५, गोलाकार, खातोदर, हरित वर्ण के तथा स्थायी (*persistent*) होते हैं। दलपत्र (*petals*) संख्या में ५-१०, चौड़े, लट्वाकार, खातोदर तथा लाल या सफेद रंग के होते हैं। फल (*follicles*) लम्बगोल तथा २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बे होते हैं। जिनमें कई बड़े बीज होते हैं मूल में अंगुली के समान मोटे लम्बोतरे कंद (*tubers*) होते हैं, जो तंतुगुच्छ द्वारा काण्ड से लगे रहते हैं। औषधि में इन्हीं का व्यवहार होता है। पुष्पागम मई-जून में होता है।

उपयोगी अङ्ग—कंदाकार मूल (*Tubers*)।

मात्रा। चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजारों में मिलने वाले ऊदसलीब के कन्द प्रायः विदेशी ऊदसलीब की जड़ें होती हैं, जो २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इंच से २ इंच) लंबी १.२५ से सें.मी.१.८ सें.मी. ($\frac{1}{2}$ इंच से $\frac{3}{4}$ इंच) मोटी (व्यास की) तथा मध्य में मोटी और दोनों छोरों की ओर क्रमशः पतली होती हैं, जिससे यह देखने में तर्क्वाकार मालूम होती हैं। इनका बाहरी पृष्ठ भूरा होता है, जिसपर लम्बाई के रुख झुर्रियाँ या रेखाएँ पड़ी होती हैं। अन्दर का भाग पिष्टमय (*starchy*) तथा सफेद होता है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर वल्कल (*cortex*) का भाग कड़ा, दानेदार तथा पीताभ वर्ण का मालूम होता है। स्वाद किंचित् चरपरा होता है। जिन कन्दों को चाबने पर थोड़ी देर बाद तीक्ष्णता, चरपराहट, थोड़ी-सी कड़ुआहट मालूम हो और जिह्वा पर खिंचावट पैदा हो, वह उत्तम समझा जाता है। भारतीय ऊदसलीब की जड़ सफेदी मायल लगभग उँगली के बराबर मोटी और कुछ मिठास लिये कसैली होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—जड़ों का संग्रह फूल-फल आने के बाद करना चाहिए; और मिट्टी आदि को जल से धोकर, छाया-शुष्क कर लें तथा मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। चूर्ण को अच्छी तरह डाटबंद शीशियों में ठंढी तथा अँधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन—ताजी जड़ों में अल्प मात्रा में एक उत्पत् तैल तथा पिष्टमय पदार्थ, शर्करा, वसा, मैलेट्स (*Malates*), ऑक्जलेट्स (*Oxalates*), फॉस्फेट्स एवं अल्पतः टैनिन आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—७ वर्ष।

स्वभाव। ऊदसलीब तीसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष होती है। यह स्रोतोद्घाटक, श्वयथुविलयन, दोषतारल्यजनन, लेखन, मूत्रल, रजःप्रवर्तक, वेदनास्थापन तथा नाड़ीबल्य है। अपस्मार, कम्पवायु, अर्दित, पक्षवध, उन्माद, मस्तिष्कशोथ, अपतन्त्रक और बालापस्मार आदि रोगों में पुष्कल व्यवहृत होती है। यकृद्वरोध, कामला, आमाशय-शूल तथा वस्ति एवं वृक्क-शूल में भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—गर्भवती स्त्रियों को तथा अधिक मात्रा में देने से सिर-दर्द, कान में आवाज, दृष्टिभ्रम और वमन होता है। निवारण—गुलकंद, मुलेठी और शहद।

विशेष—ऊदसलीब का प्रयोग विशेषतः चूर्ण के रूप में होता है।

एरंड (अरंड)

नाम। सं०—एरण्ड, गन्धर्वहस्त, रूब, पंचांगुल। हिं०—अरण्ड, अरण्डी रेंडी। बं०—भेरेड (डा)। (द०) यरण्डो। म०—एरण्ड, एण्डीचें बीज। गु०—एरण्डी। अं०—कैस्टरसीड (*Castor Seed*)। (वृक्ष) ले०—रीसीनुस् कोम्मूनिस (**Ricinus communis** *Linn*,)।

वानस्पतिक कुल। एरण्ड-कुल (एउफ़ॉर्बिआसी *Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समग्र भारतवर्ष-विशेषतः उत्तर प्रदेश, बंगाल, मद्रास और बम्बई। इसकी खेती की जाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय–(भेद) रक्त, श्वेत एरण्ड। वृक्ष–वार्षिक, २.४० मीटर से ४.५ मीटर (८ से १५ फुट) ऊँचा और पतला, लम्बा और स्निग्ध। मूल–साधारण, झखड़ेदार, लोमश। काण्ड–स्निग्ध, हरित, श्वेत। शाखा–हरित-श्वेत, मध्यमाकारी, दण्डाकृति। पत्र–चौड़े, पाँच से सात फांकयुक्त। पत्रवृन्त–२५ सें० मी० से ३५ सें० मी० (१० इंच से १४ इंच) लम्बा और पोला। पुष्प–एक-लिंगी, रक्तबैंगनी। केशर–पीतवर्णयुक्त। फल–कंटक-युक्त और बड़े गुच्छों में, फलों के ऊपर हरित आवरण। बीज–प्रत्येक फल में बीज संख्या ३, बीजत्वचा कठोर, कृष्ण-रक्त अथवा कृष्ण-श्वेत। बीजमज्जा–श्वेत, स्निग्ध।

उपयोगी अंग–मूल, त्वक्, पत्र, काण्ड, बीज, तैल।

मात्रा। बीजमज्जा–६ ग्राम से ११.६ ग्राम (६ माशे से १ तोला)। मूलत्वक्, पत्रकल्क–१ तोला से २ तोला। तेल–६ माशे से २½ तोला। मूलत्वक्क्वाथ–५ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–बीज में चर्बीयुक्त तेल अधिकतम ४५ प्रतिशत। विजातीय सेन्द्रियद्रव्य अधिकतम २ प्रतिशत। तैल–२० शतांश पर आपेक्षिक गुरुत्व–०.९५३–०.९६४; ४० शतांश पर अपवर्तनांक–१.४६९५–१.४७३०। ९० प्रतिशत शक्ति के ऐल्कोहल के ३.५ भाग में घुलन-शील। एसिड वेल्यू–अधिकतम ४। आयोडीन वेल्यू–अधिकतम ८२-९०; सैपोनीफिकेशन वेल्यू–१७७ से १८७ इस तैल को समान आयतन के जलविरहित ऐल्कोहल में मिलाने पर मिश्रण स्वच्छ रहता है।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयोगी अंगों को कार्तिक–अगहन मास में ग्रहण कर अनार्द्र और शीतल स्थान पर भली-भाँति मुखबन्द की हुई शीशियों में रखें।

संगठन। बीज में–स्थिर तैल, रिसनीन, रिसीन, श्वेत सार, म्युसिलेज, शर्करा और क्षार आदि। तैल में–वसाम्ल, रिसिनोलिक अम्ल, ओलिक अम्ल, लिनोलिक अम्ल, स्टियरिक अम्ल और हाइड्रॉक्सीस्टियरिक अम्ल आदि। पत्ती, काण्ड एवं जड़–इनमें भी वही तत्त्व पाये जाते हैं, जो एरण्ड के बीज में पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। बीज–२ वर्ष; तैल–१ वर्ष; मूल–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सूक्ष्म। रस–मधुर, कटु, कषाय। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफवातशामक, पित्तवर्धक, (तैल) विशेषतः पित्तशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, अंगमर्दप्रशमन, भेदन, स्वेहन, कृमिनिःसारक, कफघ्न, मूत्रविशोधन, स्तन्यजनन एवं शुक्र तथा गर्भाशय शोधन, स्वेदोपग, स्वेदजनन एवं कुष्ठघ्न तथा ज्वरघ्न आदि। एरण्ड तैल एक निरापद रेचन है। इस दृष्टिसे कोष्ठशुद्धि के लिए एक परमो-पयोगी औषधि है। इसके साथ ही यह उत्तम वात-नाशक औषधि है। अतएव वातव्याधियों में कम मात्रा (६ माशा से १ तोला) में इसका उपयोग औषधि के रूप में भी कर सकते हैं। इससे एक तो कोष्ठ-शुद्धि भी होती रहती है, और साथ ही यह वातनाशक कर्म भी करता रहता है। अर्श एवं भगंदर तथा गुदभ्रंश के रोगियों में 'एरण्डपाक' का सेवन करने से बिना जोर लगाये पाखाना साफ हो जाता है, जिससे रोगी को उक्त व्याधियों से होने वाले दैनिक कष्ट से मुक्ति मिल जाती है। औषधीय कर्म के साथ ही यह पोषण का भी काम करता है। वक्तव्य–एरण्डतैल में एक अरुचिकारक हीक आती है। अतएव कोमल प्रकृति के रोगियों में इसके सेवन में कठिनाई का अनुभव होता है। इसके निवारण के लिए या तो तेल को थोड़े से गरम दूध में मिला कर दें, अथवा नाक को बन्दकर तेलपान करने में सरलता से इसे पी सकते हैं। बाद में ताम्बूल वगैरह का सेवन कर लेने से मुँह का बदजायका दूर हो जाता है।

मुख्य योग–एरण्डादि क्वाथ, रास्नादि क्वाथ, बृ० सैन्धवादि तैल, विषगर्भ तैल, एरण्डपाक, जिमादे शीरेशुतुर।

विशेष–चरकोक्त (सू०अ०४) भेदनीय, स्वेदोपग एवं अङ्ग-मर्दप्रशमनगण तथा मधुरस्कन्ध के द्रव्यों में और सुश्रु-तोक्त (सू०अ०३८) विदारिगन्धादिगण तथा (सू०अ० ३९) अधोभागहर एवं वातसंशमन वर्ग के द्रव्यों में 'एरण्ड' की भी गणना है।

कंघी (अतिबला)

नाम। सं०–अतिबला, कंकतिका, ऋष्यप्रोक्ता। हिं०–कंघी, ककही, ककहिया। बं०–पेटारि। बि०–ककहिया। म०–मुद्रा। गु०–खपाट, डाबली, कांसकी। सिं०–पटतिर। अ०–मश्तुल्गौल। फा०–दरख्तेशान। अं०–कन्ट्रीमैलो (*Country Mallow*)। ले०–आबूटिलॉन इंडिकुम् (**Abutilon indicum** *G. Don.*)।

वानस्पतिक कुल। कार्पासादि-कुल (माल्वासी *Malvaceae*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रदेश तथा लंका आदि।

संक्षिप्त परिचय—अतिबला के क्षुप वर्षा में उत्पन्न होते हैं, जो लगभग १.५ मीटर से १.८ मीटर या ५ फुट से ६ फुट ऊँचा गुल्म या कभी-कभी गुल्मक (*undershrub*) स्वरूप के होते हैं। सम्पूर्ण पौधा सूक्ष्म शुभ्ररोमान्वित (*minutely hoary tomentose*) होता है। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० या ३ इंच तक लम्बी, पान के आकार की, चौड़ी पर अधिक नुकीली, पत्र-तट दन्दानेदार, रंग में पत्तियाँ भूरापन लिए हरे रंग की तथा दोनों पृष्ठों पर शुभ्ररोमान्वित होती हैं। पत्रवृन्त लम्बा (फलक की लम्बाई के $\frac{1}{3}$ के बराबर) होता है। पुष्प पीले रंग के व्यास में २.५ सें० मी० या १ इंच, ५-५ पंखड़ियों वाले तथा पत्रकोणोद्भूत एकल पुष्पदंड पर धारण किये जाते हैं। स्त्रीकेशर संख्या में १५-२० तक। पुष्पों के झड़ जाने पर चक्राकृति मुकुट के आकार के फल लगते हैं, जो अपक्वावस्था में मृदु श्वेतरोमावृत एवं पीताभ हरित वर्ण के और पकने पर कृष्णाभ तथा चिकने हो जाते हैं। फलों में १५-२० खड़ी-खड़ी कमरखीया कंगसी (फांकें) मण्डलाकार सन्निविष्ट होती हैं, जिनके पक जाने पर प्रत्येक कमरखी या फाँक के बीच कई-कई काले-काले दाने निकलते हैं, जो छोटे और चपटे होते हैं और इनका सिरा बारीक होता है। अतिबला के बीजों को भी 'बीजबन्द' कहते हैं। इन बीजों से अत्यंत लवाब निकलता है। यह शरद् ऋतु में पुष्पित होता तथा शीतकाल में इसका फल परिपक्व होता है। वर्ष के अधिकांश समय तक इसके फल लगे रहते हैं।

उपयोगी अंग—मूल, छाल, पत्र, बीज एवं पंचाङ्ग।

मात्रा। पत्र—५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा। मूल एवं बीज चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। मूलक्वाथ—२९.१५ ग्राम से ५८.३० ग्राम या २½ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्धा परीक्षा। छाल—रेशामय फीते के आकार के लम्बे टुकड़ों के रूप में होती है, जो बाह्यतः रंग में दालचीनी के छिलके की भाँति होती है; तथा इस पर सूक्ष्म रेखाएँ (*striae*) होती हैं। इसका अन्तस्तल सफेद रंग का तथा सूक्ष्मरेखांकित (*striated*) होता है। छाल स्वाद में साधारण कसैली तथा तिक्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—शीतकाल में फलागम के बाद उपयोगी अंगों का ग्रहण कर, छायाशुष्क कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—पत्र में काफी मात्रा में लुआब (*mucilage*), किंचित् टैनिन तथा सेन्द्रिय अम्ल एवं अंशतः एस्पेरेगिन (*asparagin*) आदि तत्त्व पाये जाते हैं। जड़ में भी एस्पेरेगिन पायी जाती है। भस्म में क्षारीय सल्फेट्स, क्लोराइड्स, मैग्नीसियम् फास्फेट एवं कैल्सियम् कार्बोनेट आदि तत्त्व मिलते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। इसके गुण-कर्म एवं प्रयोग बला की ही भाँति हैं। यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष समझी जाती है। अहितकर—दुर्बल व्यक्तियों को। निवारण—मधु एवं कालीमिर्च। प्रतिनिधि—आलूबोखारे का शर्बत एवं आँवले का मुरब्बा। चरकोक्त (सू० अ० ४) बृंहणीय महाकषाय (भद्रौदनी नाम से) एवं बल्य महाकषाय एवं मधुरस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त वातसंशमन एवं मधुर द्रव्यों में अतिबला भी है।

मुख्य योग—महाविषगर्भ तैल।

विशेष—कंघी की एक छोटी जाति होती है, और जमीन पर बिछी होती है। इसके सम्पूर्ण अवयव उपर्युक्त कंघी की भाँति किन्तु छोटे होते हैं। कंघी की उपर्युक्त जाति की अपेक्षा एक बड़ी जाति भी होती है, जिसके क्षुप, पुष्प, फल आदि अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। इसे **आबूटिलॉन हिर्टुम** (**A. hirtum** *G. Don.*) कहते हैं।

औषधीय व्यवहार की दृष्टि से भारतवर्ष में अतिबला को वही स्थान प्राप्त है, जो यूरोप में खत्मी एवं खुब्बाजी आदि को है। मूत्रलक्रिया की दृष्टि से यह ऋक्ष-द्राक्षा (*Uva Ursi*) एवं बुकू (*Buchu*) नामक विदेशी औषधियों की प्रतिनिधि है।

कंजा (करंजुवा)

नाम। सं०—पूतिकरञ्ज, प्रकीर्य, कण्टकिकरञ्ज, कुबेराक्ष। हिं०—करंजुवा, कंजा, काँटाकरंज, सागरगोटा। संथा०—वघनी। बं०—नाटाकरंज। म०—सागरगोटा। गु०—कांकच, कांचका। फा०—खाये इब्लीस। अ०—हब्बुल उक़ाब। अ०—बॉडकनट (*Bonduc Nut*); फीवरनट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*Fever Nut*)। ले०—सेसालपीनिआ क्रोस्टा **Caesalpinia crista** *Linn.* (पर्याय—*C. bonducella Fleming.*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : अम्लिका-उपकुल (लेगुमिनोसी : सेसालपीनिआसी (*Leguminosae : Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों (विशेषत: बंगाल तथा दक्षिण भारत) में २५,०० फुट की ऊँचाई तक (पहाड़ियों पर) इसकी कँटीली, क्षुपस्वभाव की लताएँ पायी जाती हैं। बगीचों में मेड़ पर इसकी झाड़ी भी लगायी जाती है। इसके शुष्क-पक्व बीज बाजारों में पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—लताकरञ्ज के सघन एवं विस्तृत तथा कँटीले गुल्म होते हैं, जिसकी शाखाएँ लम्बी तथा आरोहणशील होती हैं। शाखा, पत्रदण्ड एवं पुष्पदण्ड पर सूक्ष्म, कठोर प्राय: पीले काँटे होते हैं। पत्रदण्ड के काँटे प्राय: टेढ़े होते हैं। छोटी शाखाएँ घनरोमश होती हैं। उपपक्ष (*pinnae*) ६-८ जोड़े तथा ७.५ सें०मी० से २० सें०मी० (३ इंच से ८ इंच) लम्बे होते हैं। पत्रक ६-१० जोड़े, जो १.२५ सें०मी० से २.५ सें०मी० × १ सें० मी० से १.५ सें० मी० (½ से १ इंच × ⅜ इंच से ⅝ इंच), रूपरेखा में आयताकार या अंडाकार, कुण्ठिताग्र एवं अग्र पर लोमयुक्त (*mucronate*) तथा अतिसूक्ष्म वृन्तकयुक्त होते हैं, जो उपपक्षों पर अभिमुख क्रम से स्थित होते हैं। पुष्प हल्के पीले रंग के होते हैं, जो १५ सें० मी० से ३० सें० मी० (६ इंच से १२ इञ्च) लम्बी शाखाग्र या पत्रकोणों के ऊपर काण्ड पर स्थित मञ्जरियों (*recemes*) पर निकलते हैं। मञ्जरियाँ अग्र की ओर उत्तरोत्तर सघन होती हैं। कोणपुष्पक (*bracts*) ½ इञ्च लम्बे, रेखाकार, भालाकार, तथा अग्रपर मुड़े हुए होते हैं। बाह्यदलपुंज (बाह्यकोश) या कैलिक्स (*calyx*) १.२५ सें० मी० से ०.७५ सें० मी० (½ इंचसे ⅜० इञ्च) लम्बा तथा सूक्ष्म मुरचई रोमावृत्त होता है। दलपत्र (*petals*) १ सें० मी० से १.२५ सें० मी० (⅜ इंच से ½ इञ्च) लम्बे, अभिप्रासवत् (*oblanceolate*) तथा पीले रंग के (कोई-कोई लाल बिन्दुकित) होते हैं। फली चौड़ी आयताकार, ५ सें०मी० से ७.५ सें०मी० × ३.७५ सें०मी० से ५ सें०मी० (२ इंच से ३ इञ्च × १॥ से २इञ्च), स्फोटी एवं बाह्य तल पर ½ से ¾ इञ्च लम्बे, कुछ लचीले काँटों (*wiryprickles*) से ढँकी होती है। फली का आकार सामान्यतया करञ्जफली जैसा होता है। प्रत्येक फली में १-२ बीज होते हैं, जो धूम्रवर्ण, गोल अथवा अंडाकार तथा कठोर आवरणवाले होते हैं। पत्र एवं बीज की गिरी स्वाद में अत्यंत तिक्त होती है, किन्तु मूल एवं मूलत्वक् कड़वे नहीं होते। पुष्पागम वर्षा ऋतु (जुलाई से सितम्बर) में तथा फलियाँ जाड़ों में लगती एवं पकती हैं।

उपयोगी अंग—बीजमज्जा, पत्र, मूल। बीजों से गिरी प्राप्त करने के लिए पहले बीजों को मन्द आँच पर कड़ाही आदि में थोड़ा सेंकना चाहिए। इससे बीज कुछ फूल जाते तथा बीजों का कवच (*shell*) और भी भंगुर हो जाता है। अब यह आसानी से पृथक् किया जा सकता है।

मात्रा। बीजमज्जा—१¼ ग्राम से २½ ग्राम या १० रत्ती से २० रत्ती। मूलचूर्ण—१ ग्राम से १॥ ग्राम या १ माशा से १॥ माशा। पत्रस्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कंजा के बीज बेर की तरह गोल अथवा अंडाकार, व्यास में १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० या ½ से ¾ इञ्च तक, कड़े छिलके (*shell*) से युक्त होते हैं, जो धूम्रवर्ण या सीसके रंग का तथा भंगुर होता है। पकने पर छिलके में अनुप्रस्थ दिशा में स्थित अनेक सूक्ष्म दरारें (*horizontal cracks*) होती हैं। नाभि (*umbilicus*) पर एक अर्धचन्द्राकार चिह्न-सा होता है। बीजमज्जा में पिलाई लिये सफेद रंग के द्विदल (*cotyledons*) तथा जीभी की भाँति आदिमूल या मूलांकुर (*radicle*) होता है, जो स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं। बीजमज्जा का सूक्ष्मदर्शक से परीक्षण करने पर म्युसिलेज, स्टार्च, तैल एवं ऐल्ब्युमिन की उपस्थिति पायी जाती है। परक्लोराइड ऑव आयर्न के सम्पर्क से बीजत्वक् या बीजचोल (*testa*) की कोशाएँ काले रंग की हो जाती हैं, जो टैनिन की उपस्थिति का द्योतक है। करंजुवा के पत्र भी स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं, किन्तु मूल एवं मूलत्वक् में तिताई या कड़ुआहट प्राय: नहीं पाया जाता।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों के अन्त में फलियों का संग्रह कर धूप में सुखाने से स्वयं फट जाती हैं और बीज

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पृथक् हो जाते हैं। लताओं पर पड़ी हुई फलियाँ भी बाद में अपने आप फूटती हैं, जिससे बीज नीचे गिर जाते हैं। बीजों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–कंजा के बीजों में बांडुसिन (*Bonducin* $C_{20}H_{28}O_8$) नामक एक तिक्त अक्रिस्टलीय ग्लुकोसाइड (*bitter amorphous glucoside*) पाया जाता है. जो सफेद चूर्ण के रूप में प्राप्त होता है, और जल में तो नहीं घुलता किन्तु ऐल्कोहॉल एवं स्थिर तैलों में सुविलेय होता है। इसके अतिरिक्त अप्रिय गंधयुक्त हल्के पीले रंग का एक गाढ़ा तेल (२०% से २४% तक) तथा स्टार्च, सुक्रोज, एवं फाइटॉस्टेरोल आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–बीज २ वर्ष। चूर्ण–६ मास।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफवातनाशक, शोथहर, वेदनास्थापन, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कटुपौष्टिक, रेचन, कृमिघ्न, यकृत्प्लीहोदरनाशक, रक्तशोधक, कफघ्न, श्वासहर, गर्भाशयोत्तेजक, मूत्रल, ज्वरघ्न कुष्ठघ्न। कंजा के बीज नियतकालिक-ज्वरहर होते हैं, और इस रूप में यह कुनैन का उत्तम प्रतिनिधि है। करंजुवा की जड़ एवं पत्र रेचन, वात, कफ तथा शोथ का नाश करने वाले हैं। युनानी मतानुसार करंजुवा तीसरे दर्जे में उष्ण एवं पहले दर्जे में रूक्ष होता है। वृषणशोथ में इसका चूर्ण एरण्डपत्र पर छिड़क कर बाँधते हैं। वातानुलोमन होने से यह वातिक शूल में उपयोगी होता है। एतदर्थ करंजुवा की आधी गिरी सात नग लौंग के साथ बारीक पीस कर खिलाते हैं। चिरकालीन विषमज्वर, शीतपूर्व अन्य जीर्णज्वरों में इसे चिरायता आदि अन्य औषधियों के साथ चूर्ण रूप में अथवा वटिका रूप में व्यवहृत करते हैं। श्वास के रोगियों में भी इसका उपयोग किया जाता है। इससे सिद्ध तैल खुजली आदि त्वग् रोगों में स्थानिक रूप से तथा रक्तविकारों में मौखिक रूप से गिरी, पत्र एवं मूलचूर्ण का व्यवहार किया जाता है। ज्वरोत्तरकालिक दौर्बल्य एवं अग्निमांद्य आदि निवारण के लिए भी इसे देते हैं। सूतिका ज्वर में तथा सूतिकावस्था में ज्वर न भी हो तो इसका प्रयोग उपयोगी है।

मुख्य योग–करञ्जादिवटी, विषमज्वरान्तक चूर्ण। कुबेराक्षवटी (का० हि० वि० वि०)।

ककड़ी (कर्कटी)

नाम। (१) सं०–कर्कटी। हिं०–ककड़ी, जे (जि) ठुई ककड़ी, तरककड़ी। बं०, म०, गु०–काँकड़ी। अ०–क़िस्साऽ। फा०–खियार्जः, ख़ियार तवील (दराज)। अं०–स्नेक कुकुम्बर (*Snake Cucumber*)। ले०–कूकूमिस ऊटीलीस्सिमुस **Cucumis melo** *var.* **utilissimus** *Duthie & Fuller*. (पर्याय–*Cucumis utilissims Roxb.*)। (२) फूट ककड़ी (सं०) उर्वारु, एर्वारु। हिं०–बड़ी ककड़ी, फूट की ककड़ी। अ०–क़िस्साऽ। फा०–ख़ियार्जः; गाज़रूनी (नीशापूरी)। अं०–कुकुंबर मोमोर्डिका (*Cucumber Momordica*)। ले०–कूकूमिस मोमोर्डिका **Cucumis melo** *var.* **momordica** *Duthie & Fuller*.।

वानस्पतिक कुल। कूष्माडादि-कुल (कूकूरबिटासी : *Cucurbitaceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में विशेषतः उत्तर प्रदेश, बंगाल, पंजाब आदि में इसकी काफी परिमाण में खेती की जाती है।

संक्षिप्त परिचय–जेठुई ककड़ी की जमीन पर फैलने वाली लता होती है। इसके बीज फागुन-चैत में बोये जाते हैं और वैसाख-जेठ में फलती है। इसीसे इसे 'जेठुई ककड़ी' कहते हैं। इसकी बेल खीरे के बेल जैसी होती है, किन्तु इसके पत्ते खीरे के पत्तों से छोटे और चिकने होते हैं। इसका फूल पीला होता है, और फल गोल तथा कुछ इंचों से लेकर २ हाथ (६० सें० मी० या ३ फुट) या अधिक लम्बे, कुछ मुड़े हुए होते हैं, जिन पर लम्बाई के रूख उभरी हुई रेखाएँ होती हैं। ककड़ी जब छोटी होती है तो बहुत नरम और रोयेंदार होती है। रंग में यह हल्के या गाढ़े हरे रंग की होती है। इसके बीज खरबूजे के बीजों से अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। गर्मी के दिनों में ककड़ी काफी परिमाण में बिकती है। नमक के साथ इसे कच्ची खाते हैं तथा सलाद भी बनाते हैं। पके फल के बीजों की गिरी की मिठाई बनायी जाती है तथा ठंढाई में पड़ती है। (२) फूट ककड़ी की २ फसलें होती हैं—(१) बरसाती और (२) जेठुई। बरसाती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ककड़ी ज्वार-मक्का आदि के खेतों में बोयी जाती है। इसके फल लम्बगोल, ३० सें०मी० ६० सें० या १ सें०मी० से २ फुट तक लम्बे तथा व्यास में ७ सें०मी० से १५ सें०मी० या ३ से ६ इंच (या अधिक) और कच्ची अवस्था में गाढ़े हरे रंग के और पकने पर पीले पड़ जाते, तथा आप से आप फूट जाते हैं। इसीसे यह 'फूट' कहलाते हैं। इसका गूदा किंचित् फीका एवं खट्टापन लिये होता है। इसके कच्चे कोमल फल नमक के साथ खाये जाते हैं, तथा कच्चे प्रौढ़ फलों को तरकारी बनायी जाती है। फूट में शर्करा मिलाकर खाया जाता है।

उपयोगी अंग – फल एवं बीज।

मात्रा। बीज–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। फल–आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा – इसके बीज खरबूजे के बीज से अधिक चौड़े, अत्यंत सफेद, लघु, मसृण और हीकदार होते हैं। सफेद, भारी और पकी हुई ककड़ी से निकाले हुए ताजे बीज उत्तम होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण – बीजों को अच्छी तरह मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। बरसात के दिनों में नमी से बचाना चाहिए।

संगठन–बीजों में स्थिर तैल, स्टार्च एवं शर्करा आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि – २ वर्ष तक।

स्वभाव–ककड़ी के बीज दूसरे दर्जे में शीत एवं तर होते हैं। यह सर, मूत्रल, पित्तरक्तसंशमन, तृष्णाशामक, मनःप्रसादकर एवं बल्य होते हैं। प्रतिनिधि-खीरे के बीज।

विशेष–बाजारों में ककड़ी एवं खीरे–दोनों के मिश्रित बीज 'तुख्म खियारैन' के नाम से मिलते हैं।

ककोड़ा (कर्कोटक)

नाम। सं०–कर्कोटकी, कर्कोटक, पीतपुष्पा, महाजाली हिं०–खेखसा, खेकसा, ककोड़ा। बं०–बनकरेला कांकरोला। म०–करटोली। गु०–कंकोड़ा, कंटोला। मा०–कांटोला। ले०–मोमोर्डिका कोचीनचाइनेन्सिस् (**Momordica cochinchinensis** *Spreng*)।

वानस्पतिक कुल। कूष्माण्ड–कुल (कूकूरबिटासीः *Cucurbitacae*)।

प्राप्तिस्थान–बंगाल, दक्षिण भारत, कोचविहार राज्य एवं भारत में अन्यत्र सर्वत्र इसकी स्वयंजात लता पायी जाती है। बरसात में इसके फल सब्जीबाजार में बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय–खेकसा की फलपाकांत वर्षानुवर्षी बहुवर्षीय लताएँ होती हैं, जो वृक्षादि का सहारा पाकर आरोहण करती हैं। यह गर्मी में पुरानी जड़ से ही निकलकर बढ़ती है, और बरसात में फूलती-फलती है। पत्तियाँ बंदाल की तरह पंचखण्डीय या पंचकोणीय होती है। फूल पीले रंग का होता है और फल परवल की रूपरेखा का किन्तु अपेक्षाकृत छोटा होता है, जिस पर बंदाल के फल की तरह हरे कोमल काँटे होते हैं। खेखसे का कच्चा फल तो हरा होता है, किन्तु पकने पर पिलाई लिये लालरंग का हो जाता है। इसके भीतर बीज भरे होते हैं, जो पकने पर परवल की तरह श्यामवर्ण के होते हैं। इसके फलों की तरकारी बनायी जाती है। कहीं-कहीं लोग इन्हीं को 'परवल' के नाम से बरतते हैं। स्वाद में खेखसा (१) कड़वा तथा (२) मीठा करके दो प्रकार होता है। कड़वा तरकारी के काम नहीं आता। इसमें मूलकन्द (*Tuber*) पायाजाता है। औषधि में इन्हीं कन्दों तथा पत्र का व्यवहार होता है। इसका एक और भेद पाया जाता है, जिसमें फल न लग कर उनके स्थान में एक कोष होता है। इसे 'बन्ध्याकर्कोटकी' या 'बांझ-ककोड़ा' कहते हैं। इसकी जड़ में भी कन्द निकलता है। बांझ ककोड़े में केवल नरपुष्प पाये जाते हैं।

उपयोगी अंग–बीज, फल, मूल एवं पत्रादि।

मात्रा। स्वरस–१ तोला से २ तोला। मूलचूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–खेकसा के बीज रूपरेखा में लट्वाकार चपटे तथा काले रंगके होते हैं, जो ½ सें० मा० (½ इंच) तक मोटे तथा व्यास में $\frac{३५}{१६} \times \frac{२५}{१६}$ सें०मी० ($\frac{७}{८} \times \frac{५}{८}$ इंच) होते हैं। किनारा कुछ दन्तुर (*corrugated*) तथा तल रेखांकित से होते हैं। बीजचोल भंगुर होता है, जिसके अन्दर स्नेहमय मज्जा या गिरी होती है।

संग्रह एवं संरक्षण – पक्व फलों से बीजों को निकाल कर सुखा लें और मुखबंद शीशियों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। कन्द का संग्रह वर्षान्त में करके छायाशुष्क कर लें और मुखबंद डिब्बे में रखें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–छिलका रहित बीजों में कुछ-कुछ हरे रंग का तेल (४३.७%) तथा एक तिक्त ग्लुकोसाइड होता है। कर्कोटकी भी भस्म में मैंगनीज पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–बीज–२ वर्ष। मूल–१ वर्ष।

स्वभाव-गुण–लघु, स्निग्ध। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–बाह्यतः व्रणशोधन एवं केश्य तथा आभ्यन्तर प्रयोग से रोचन, दीपन–पाचन कटु पौष्टिक, पित्तसारक, अनुलोमन, (मूल–वामक), रक्तशोधक, अश्मरीभेदन प्रमेहघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, आदि होता है।

विशेष–चरकोक्त तिक्तस्कन्ध एवं सुश्रुतोक्त तिक्तवर्ग में 'कर्कोटकी' का भी उल्लेख है।

कचनार (काञ्चनार)

नाम। सं०–काञ्चनार, कोविदार, उद्दाल, युग्मपत्र, गण्डारि (गण्डमाला को नष्ट करने वाला)। हिं०–कचनार, कचनाल, लाल कचनार। जौनसार–गोरिआव (*Goriao*)। पं०–कचनार, कुलाड़। म०–कोरल, कांचन। गु०–चंपाकाटी। बं०–काञ्चन। को०–जुरजु, बुज, बुरंग। संथा०–झिंजिर। ते०–देवकाञ्चनमु। ता०–मंदारै। मल–शु(चु) वन्नमन्दारम् ले०–बॉहोनिआ वारिएगाटा (**Bauhinia variegata** *Linn.*)।

वानस्पति कुल। शिम्बी-कुल : अम्लिका-उपकुल (*Leguminosae* : *Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालय की तराई में इसके पेड़ प्रचुरता से मिलते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष के जंगलों में निचली पहाड़ियों पर इसके स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। सौन्दर्य के लिए सर्वत्र बगीचों में लगाये हुए भी इसके वृक्ष मिलते हैं। काण्डत्वक् या छाल पंसारियों के यहाँ तथा कालिकाएँ एवं पुष्प मौसम में तरकारी फरोशों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–लाल कचनार के मध्यम कद के वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ ६.२५ सें० मी० से १५ सें० मी० (२ इंच से ६ इञ्च) लम्बी, इतनी ही (या कभी अधिक) चौड़ी, द्विखण्डित, खण्ड लगभग चौथाई या तिहाई दूरी तक कटे और गोल अग्र वाले होते हैं। पत्राग्र के मध्य भाग में दबे होने के कारण ऐसा मालूम होता है, मानों दो पत्र आपस में जुड़े हुए हों। इसलिए इसे युग्मपत्र कहते हैं। पत्र-शिराएँ संख्या में ११–१५, पर्णवृन्त २.५ सें०मी० से ३.७५ से०मी० (१ इंच से १॥ इंच) लम्बे होते हैं। पुष्पदण्ड छोटे और प्रायः आपद्म या नीलारुण, और गिरी हुई पत्तियों के कोणों से निकलते हैं। पतझड़ हो जाने पर ही प्रायः वृक्ष पुष्पित होता है। पुष्प बड़े सुगन्धित और ४–५ के समशिख गुच्छों (*corymbs*) में निकलते हैं। बाह्यकोष का संयुक्त भाग शेष भाग के बराबर होता है। दलपत्र (*patals*) संख्या में ५, प्रायः ५ से० मी० (२ इंच) लम्बे, अभिलट्वाकार या आयताकार होते हैं, जिनमें चार प्रायः सफेद होते हैं और एक लाल होता है, जिसमें मजबूत मध्यशिरा होती है और आधार से लाल बैंगनी रंग की शिराएँ निकली रहती हैं। प्रगल्भ पुंकेशर ५ या कभी-कभी ३–४ होते हैं। गर्भाशय (*ovary*) सवृन्त, कुक्षिवृन्त (*style*) लम्बा और कुक्षि छोटी होती है। शिम्बी या फली (*Pod*) १५ सें०मी० से २५ से०मी० या ६–१० इञ्च लम्बी, $\frac{3}{4}$ सें०मी० से $\frac{1}{2}$ से०मी० ($\frac{3}{10}$ इंच से $\frac{6}{10}$ इंच) चौड़ी, चपटी, कड़ी, चिकनी, किंचित् वक्र (*slightly falcate*) तथा पकने पर स्फोटी होती है, जिसमें १०–१५ बीज निकलते हैं। वसन्त में पतझड़ है, जिसके बाद (मार्च-अप्रैल) में पुष्पागम होता है। फलागम वर्षा ऋतु में होता है। काञ्चनार की अविकसित पुष्पकलिका का शाक-अचार बनाया जाता है। इसके विकसित पुष्पों का गुलकन्द भी बनाते हैं।

उपयोगी अंग–त्वक् (छाल) एवं पुष्प; पत्र, कली, बीज एवं गोंद।

मात्रा–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–कांचनार की छाल धूसर वर्ण की, अन्तर्वस्तु सघन, दानेदार (*fracture granular*) लालिमा लिये भूरे रंग की होती है। अन्तस्तल सफेद होता है, और बाह्य तल पर छोटे-छोटे अंडाकार उभाड़ से (*elliptic warts*) होते हैं। कूटने पर छाल का चूर्ण लाल रंग का प्राप्त होता है तथा स्वाद में कुछ कसैली होती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–कांचनार की अनेक जातियाँ (*Species*) होती हैं, जो प्रायः बगीचों में लगायी हुई इतस्ततः मिलती हैं। इनमें भी ३ मुख्य भेद मालूम पड़ते हैं—(१) लालपुष्पवाला कचनार (जिसका वर्णन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभी किया गया है); (२) श्वेतपुष्पवाला कचनार (बॉहीनिआ आकूमिनाटा B. acuminata *Linn.*) तथा (३) पीला कांचनार (बा० पर्पूरेआ B. purpurea *Linn.*)। इसे कोविदार (सं०), कोइलार (बा०) तथा कोइनार (खर०) कहते हैं। इसके पुष्प नीलारुण वर्ण के होते हैं। इसके वृक्ष भी हिमालय से लेकर लंका तक सर्वत्र पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त साहुल (B. malabarica *Roxb.*) तथा कठमहुली (B. racemosa *Lamk.*) भी इसकी दो अन्य महत्त्व की जातियाँ हैं। इनमें साहुल की पत्तियाँ स्वाद में खट्टी होती हैं। औषधीय प्रयोग में लाल कचनार के ही प्रयोग का प्रचलन है; किन्तु अन्य जातियों की छाल की सूक्ष्म रचना एवं रासायनिक संघटन सम्बन्धी अन्तर का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतएव अभाव में एक के स्थान में दूसरे का प्रयोग कर सकते हैं, हालांकि लाल कचनार भी सर्वत्र सुलभ होने से यह प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता।

संग्रह एवं संरक्षण—कचनार सर्वत्र सुलभ होने से आवश्यकता पड़ने पर ताजा प्राप्त किया जा सकता है। यदि संग्रह करना हो तो छाल को छायाशुष्क कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—कचनार की छाल में टैनिन, शर्करा और एक भूरे रंग का गोंदीय पदार्थ पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—रूक्ष, लघु। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—गण्डमालानाशन। प्रधान कर्म—व्रणशोधन एवं रोपण, स्तम्भन, मूत्रसंग्रहणीय, रक्तस्तम्भन, मेदो रोग, कुष्ठ, प्रमेह, रक्तपित्त, गण्डमाला एवं लसीका-ग्रंथिशोथ-नाशक। पुष्प—सारक होते हैं। यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है। अहितकारक—गुरु, चिरपाकी एवं आनाहकारक। निवारण—गरम मसाला। प्रतिनिधि बाकला।

मुख्य योग—काञ्चनारगुग्गुल, काञ्चनादि क्वाथ, काञ्चनगुटिका, गण्डमालाकण्डनरस, गुलकन्दकाञ्चनार, मखूखहफ्तरोजा आदि।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) वमनोपग महाकषाय एवं सुश्रुतोक्त ऊर्ध्वभागहरगण तथा कषायवर्ग में 'कोविदार' (काञ्चनार) भी है।

कचूर (कर्चूर)

नाम। सं०—कर्चूर, द्राविड़, शटी। हिं०—कचूर। बम्बई—कचूर। म०—कचोर। गु०—काचूर, कचूरी। बं०—शटी, कोचूर, शोड़ो। अ०—ज़रंबाद, उख़्ख़ल काफूर (कर्पूर के समान गंधवाला कन्द), इर्क़ुल काफूर। फा०—ज़ुरंबाद, ज़रंबाद। अं०—ज़ेडोएरी *Zedoary*। ले०—कूर्कुमा जेडोआरिआ (Curcuma zedoaria *Roscoe.*)।

वानस्पतिक कुल। आर्द्रक-कुल (सीटामिनासी *Scitaminaceae*)।

प्राप्तिस्थान—कचूर का पौधा सारे भारतवर्ष में होता है। पूर्वीय हिमालय की तराई, चटगाँव में तथा कनाडा में यह स्वयंजात भी होता है। बम्बई के बजार में कचूर का आयात प्रायः लंका से तथा बंगाल में चटगाँव से होता है।

संक्षिप्त परिचय—कचूर का पौधा ऊपर से देखने में बिल्कुल हल्दी-जैसा होता है; परन्तु हल्दी की जड़ में और इसकी जड़ अथवा गाँठ में भेद होता है। इसके पौधे ४५ सें० मी० (१½ फुट) तक ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ, संख्या में ४–६, ३० सें० मी० से ६० सें० मी० (१ फुट से २ फुट) तक लम्बी, आयताकार, भालाकार, अग्र पर नुकीली होती हैं, जिनपर भूरापन लिये नीलारुण वर्ण की शिराएँ होती हैं। पुष्प पीले रंग के होते हैं, जो अवृन्तकाण्डज मंजरियों में निकलते हैं। पुष्पवाहक दण्ड पत्तियों के पहले निकलता है। फल (*capsule*) अंडाकार होता है, जिसमें छोटे बीज होते हैं।

उपयोगी अंग—गाँठदार जड़ अथवा कन्द (*tuber*) एवं पत्र।

मात्रा। कन्दचूर्ण—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा। इसका चूर्ण या फाण्ट बना कर प्रयुक्त किया जाता है। पत्रस्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कचूर की जड़ अथवा गाँठ सफेद होती है, और उसमें कपूर-जैसी तीव्र सुगन्धि, तथा तिक्त एवं तीक्ष्ण स्वादयुक्त होती है। बाजार में इसके गोल-गोल काट कर सुखाये हुए टुकड़े मिलते हैं, जो खाकस्तरी मटमैले (*greyish-buff*) रंग के होते हैं।

मिलावट एवं प्रतिनिधि द्रव्य—जो कचूर मधुर स्वादयुक्त एवं अल्पगंधि होता है, वह असली कचूर नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका एक बड़ा भेद भी पाया जाता है, जिसे 'नरकचूर' या काली हल्दी (हिं०, गु०) तथा बंगला में कालीहलद कहते हैं। इसका लेटिन नाम कूर्कुमा सेसिआ (**Curcuma caesia** *Roxb.*) है। नरकचूर के पौधे बंगाल में प्रचुरता से जंगली रूप में पाये जाते हैं, और वहाँ इसकी खेती भी की जाती है। भारतीय बाजारों में इसकी आमद मुख्यतः बंगाल से ही होती है। लम्बा कन्द 'नरकचूर', एवं गोल गाँठदार कन्द 'मादाकचूर' के नाम से पुकारा जाता है। किन्तु बाजार में दोनों ही मिश्रित रूप से मिलते हैं। ताजी जड़ प्रायः हल्के पीले रंग की होती है, किन्तु बाजारों में आने वाले कन्द पानी में उबाल कर सुखाये हुए होते हैं, जिससे इनके रंग में काफी अन्तर आ जाता है। बाजार में मिलने वाले नरकचूर बाहर से गाढ़े भूरेरंग का तथा अन्दर भूरापन लिये कालेरंग का होता है। कभी-कभी समूचे कन्द के स्थान में गोल-गोल काटे हुए कतरे (*slices*) मिलते हैं, जो काले रंग के न होकर अन्दर खाकस्तरी नारंगवर्ण (*greyish-orange*) होते हैं। इसमें कर्पूर की-सी गंध आती है। गुण-कर्म एवं सूक्ष्म रचना में नरकचूर बिल्कुल कचूर की भाँति होता है। अतएव उसका उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है।

संग्रह एवं संरक्षण—पौधा सूख जाने पर कचूर की जड़ों को जमीन से खोद कर, जल में पका कर सुखा लिया जाता है। इसको अनार्द्र एवं शीतल स्थान में अच्छी तरह ढक्कन बंद पात्रों में रखना चाहिए।

संगठन—उड़नशील तेल, रेजिन, करकुमिन आदि ३.७९%; रेजिन, शर्करा-०.९०%; गोंद एवं सेन्द्रिय अम्ल-१५.२२%, स्टार्च-१७.२०%; तंतु (*crude fibre*-१०.९२%; भस्म-६.०६%; एवं ऐल्ब्युमिनायड्स। इससे प्राप्त तेल पीताभ-श्वेत और चिपचिपा तथा कपूर की तरह गंधस्वादमय होता है। इसकी जड़ में जेडोएरिना (*Zedoarin*) नामक सत्व प्राप्त होता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—शोथहर, वेदनास्थापन, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, आर्त्तवजनन, बाजीकरण, उत्तेजक, श्वासकासहर।

मुख्य योग—कर्पूर तैल।

कटाई (कटेरी) छोटी
(कण्टकारी)

नाम। सं०—कंटकारी, कण्टकारी, निदिग्धिका, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा। हिं०—कटाई, भटकटाई, भटकटैया, कटेरी, कंडियारी। पं—कंडियारी। सिन्ध-कांडेरी। म०—भुईरिंगणी। गु०—वेठी रिंगणी, भोटीं गडो, भोंरिंगणी, भोंयरिंगणी। बं—कण्टिकारी। अ०—बादंजानबर्री, (दश्ती), शौकतुल् अक़रब। फा०—बादंगान बर्री, कटाईखुर्द। ले०—सोलानुम् सूरात्तेंसे **Solanum surattense** *Burm.f.* (पर्याय—*S. xanthocarpum Schr. & Wendl.*)।

वानस्पतिक कुल। कण्टकारी-कुल (सोलानासी *Solanaceae*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष में इसके स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त लंका, पाकिस्तान, दक्षिण-पूर्वी एशिया एवं आस्ट्रेलिया में भी यह पायी जाती है। अरब में भी छोटी कटाई होती है। सर्वत्र सुलभ होने से यह आवश्यकता पड़ने पर प्राप्त की जा सकती है। सुखाया पंचाङ्ग बाजारों में पंसारियों के यहाँ बिकता है।

संक्षिप्त परिचय—कण्टकारी या भटकटैया के छोटे-छोटे कंटीले क्षुप होते हैं, जो छत्ते की भाँति भूमि पर आच्छादित कर फैले होते हैं। यह ऊँची एवं शुष्क भूमि में उत्पन्न होती हैं। नदीतीर में यह बहुत सुख मानती है, और खूब बढ़ती है। शीतकाल में यह संकुचित रहती और गरमी के दिनों में फूल-फल से सुशोभित होती एवं बरसात का पानी पड़ते ही विलुप्त होकर नष्ट हो जाती है। इसकी शाखाओं, पत्र, पत्र, पत्रवृन्त एवं पुष्पवाहक दण्ड सभी पर तीक्ष्णाग्र प्रचुर कण्टक होते हैं। भटकटैया का प्रधान काण्ड बहुत छोटा तथा काष्ठीय (*woody*) होता है और जड़के पास से ही अनेक टेढ़ी-मेढ़ी शाखाएँ निकल कर चारों ओर (*diffuse*) भूमि पर छत्ते के समान फैलती हैं। इसकी जड़ प्रायः बहुवर्षायु (*perennial*) स्वभाव की होती है। पत्तियाँ ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इंच से ४ इंच) लम्बी, २.५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (१ इञ्च से २½ इंच) चौड़ी, रूपरेखा में देखने में बनगोभी की पत्तियों की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तरह तथा दोनों पृष्ठों पर सूक्ष्मरोमावृत होती है। मध्य-शिरा (*midrib*) एवं अन्य शिराओं पर पीले रंग के सीधे एवं नुकीले कण्टक होते हैं। पत्र-वृन्त (*petiole*) १½ सें० मी० से २½ सें० मी० (½ इंच से १ इंच) लम्बे एवं रोमावृत्त (*stelltely hairy*), तथा पत्तों की भाँति इसपर भी काँटे होते हैं। पुष्प-स्तबक पत्तियों के अन्तर्मध्यभागीय काण्ड से (*extra axillary cymes*) निकलते हैं। पुष्पवाहक दण्ड इतना लम्बा होता है, कि उस पर ५–६ चमकीले बैंगनी लिये नीलवर्ण के पुष्प धारण किये जाते हैं, जो एकान्तर क्रम से स्थित होते हैं। कभी-कभी केवल १–१ पुष्प धारण किये जाते हैं। पुष्पबाह्य दलपुञ्ज (*calyx*) भी सघन रोमावृत तथा काँटेदार होता है। फल या बेरी (*berry*) गोलाकार, व्यास में १½ से २ सेंटीमीटर, बड़ी रसभरी की आकृति का, चिकना तथा नीचे की ओर झुका हुआ होता है। फल का कुछ भाग बाह्य कोष से आवृत्त (*surrounded by the enlarged calyx*) रहता है। अपक्वावस्था में यह हरा या सफेद या चितले रंग का (*varicgated with green and white*) होता है। फल के गात्र पर सफेद धारियाँ पड़ी होती है। पकने पर यह पीला पड़ जाता है। बीज भंटे के बीज की भाँति तथा व्यास में १½ मि० मि० होते हैं।

उपयोगी अंग–पचाङ्ग।

मात्रा–(१) क्वाथ–५ से १० तो०।

(२) चूर्ण–१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य (*Foreign organic matter*) अधिकतम १०%। शुष्कपत्तियों से प्राप्त भस्म २०.७४%।

संग्रह एवं संरक्षण–फलागम के बाद पंचाङ्ग का ग्रहण कर सुखा कर शुखबन्द पात्रों मे अनार्द्र स्थान में संरक्षण करना चाहिए।

संगठन–स्थूलतः छोटी कटेरी का रासायनिक संघटन भी बड़ी कटेरी की भाँति होता है।

वीर्यकालावधि–६ महोने से १ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–प्रतिश्याम, कास, श्वास, पार्श्वशूल एवं स्वरभेद से उपयोगी। चरकोक्त (सू० अ० ४) कण्ठ्य, हिक्कानिग्रहरण, कासहर, शोथहर, शीतप्रशमन एवं अंगमर्दप्रशमन, महाकषायों के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) बृहत्यादि गण, वरुणादि गण एवं लघुपंचमूल में 'कण्टकारी' की भी गणना है।

मुख्य योग–लघुपंचमूल, कण्टकार्यवलेह, निदिग्धिकादि-क्वाथ, कण्टकारी घृत, व्याघ्रीतैल, व्याघ्रीहरीतकी, दशमूल।

विशेष–आयुर्वेदीय निघण्टुओं में 'लक्ष्मणा' के नाम से 'श्वेतपुष्पी कण्टकारी' का भी उल्लेख मिलता है, और गर्भसंस्थापक गुणों के लिए इसकी प्रशंसा की गयी है। किन्तु श्वेतफूल की भटकटैया दुर्लभ है, और उपलब्ध नहीं होती।

कटाई बड़ी या बड़ी कटेरी (बृहती)

नाम। सं०–बृहती, क्षुद्रभण्टाकी। हिं०–बड़ी कटेरी, बनभंटा। को०–अजंड, हजड। म० डोरली। गु०–उभी रिंगणी। बं०–व्याकुड (र)। फा०–कटाइ कलाँ। ले०–सोलानुम् ईंडिकुम् (**Solanum indicum** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। कण्टकारी-कुल (सोलानासी *Solanaceae*)।

प्राप्तिस्थान–इसके क्षुप सर्वत्र देश में पाये जाते हैं। इसका शुष्क पंचाङ्ग पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त परिचय–इसके क्षुपक या गुल्मक (*undershrub*) ०.३ मीटर से १.८ मीटर या १ फीट से ६ फीट ऊँचे होते हैं। शाखाएँ श्वेत रोमश एवं टेढ़े मृदु कण्टकों से युक्त होती हैं। पत्तियाँ ५ सें०मी० से १५ सें०मी० या ३ इञ्च से ५ इंच लम्बी, २.३ सें० मी० से ६.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इंच चौड़ी, लट्वाकार या आयताकार, लहरदार या खंडित तट वाली तथा नुकीले अग्रवाली होती हैं, जो अधः पृष्ठ पर रोमश होने के कारण मैले सफेद रंग की और ऊपरी-तल पर तारकाकार रोमों (*stellate-pubescent*) के कारण कुछ-लुछ खुरखुरी होती हैं, तथा अधस्तल पर मध्यशिरा पर अथवा अन्य शिराओं पर मृदु कंटकों से युक्त होती है। पर्णवृन्त १.२५ सें०मी० से १.५ सें०मी० या ½ इञ्च से १ इञ्च लम्बे होते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। पुष्प नीले (या कभी-कभी श्वेताभ) और व्यास में १८.७५ मि० मी० या ¾ इञ्च तथा कांटेदार होते हैं, जो पत्रकोणों के किंचित् ऊपर स्थित ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १॥ इञ्च से २ इञ्च लम्बी मञ्जरियों (*extra-axillary racemose cymes*) में निकलते हैं। फल (*berry*) व्यास में ६.५ मि० मी० से ८.७५ मि० मी० या ¼ इंच से ⅓ इंच, तथा आपाततः देखने में भंटा जैसा, कच्ची अवस्था में हरे एवं श्वेत-रेखांकित तथा पकने पर पीले पड़ जाते हैं। उनका स्थायी बाह्यकोश पहले जैसा छोटा होता है। उक्त फल स्वाद में तिक्त होते हैं। बनभण्टे में प्रायः सालभर फूल-फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—मूल, फल।

मात्रा। क्वाथार्थ (मूल)—५ ग्राम से ६ ग्राम या ५ माशा से ६ माशा। (मूल एवं फल) चूर्ण—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा तथा प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—बनभण्टे की कतिपय अन्य जातियाँ भी स्थान-स्थान में पायी जाती हैं, जो एक-दूसरे से बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं। अतएव जिन क्षेत्रों में जो जाति अधिक पायी जाती है, वहाँ बनभण्टा (बृहती) के नाम से उसी का संग्रह किया जाता है और उस क्षेत्र के बाजारों में भी वही उपलब्ध होती है :—(१) बृहती भेद (श्वेत-बृहती-कुटुमा)-सोलानु टर्वुम (**Solanum torvum** *Swartz.*)—इसके क्षुप भी साधारणतया आपाततः देखने में **S. indicum** *L.* की ही तरह होते हैं, किन्तु पत्तियों पर काँटे पहले की अपेक्षा कम (पृष्ठतल पर मध्यपर्शुका के आधार के पास केवल १–२ काँटे) तथा पुष्प हमेशा सफेद होते हैं और बाह्यकोश पर काँटे नहीं होते। फल भी अपेक्षाकृत बड़े (व्यास में १ सें० मी० से १ २५ सें० मी० या ⅜ इञ्च से ½ इञ्च तक) और पकने पर पीले होते हैं। (२) सोलानुम मेलांगेना उप० इन्सानुम् (**S. melongana** *L. var* **insanum** *Prain.*) बृहतीभेद—जंगली बैंगन, टोको, ढोको, गठेगनी, गुठैगन, बनभैटागो)—यह बैंगन का ही जंगली भेद है। इसके क्षुप अधिक कँटीले, पत्ती और काण्ड छोटे और अधिक श्वेत तूलरोमश तथा फल पीले, गोल और व्यास में लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च तक होते हैं। मिर्जापुर के जंगलों में प्रायः यही किस्म अधिक मिलता है। अतएव वाराणसी के दूकानदारों के यहाँ बनभण्टा नाम से इसी जाति के क्षुप मिलते हैं। देहरादून में भी सड़कों के किनारे तथा उजाड़ जगहों में पायी जाती है। साधारणतया इनका ग्रहण एक दूसरे के स्थान में किया जा सकता है।

संग्रह एवं संरक्षण—छायाशुष्क पंचाङ्ग को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—इसके मूल एवं फल में सोलेनीन एवं सोलेनिडीन (*Solanidine*) तथा मोमीय पदार्थ एवं वसाम्ल आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, वेदनास्थापन, उत्तेजक, केश्य, दीपन-पाचन, ग्राही, शोथहर, रक्तशोधक, हृदयोत्तेजक, कफघ्न, कासश्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न आदि। बीज गर्भाशयसंकोचक तथा वाजीकरण होते हैं।

मुख्य योग—लघुपंचमूल, बृहत्यादि क्वाथ।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) कण्ठ्य, हिक्कानिग्रहण, शोथहर एवं अंगमर्दप्रशमन महाकषाय तथा सुश्रुत के (सू० अ० ३८) बृहत्यादि और लघुपञ्चमूल गण के द्रव्यों में 'बृहती' की भी गणना है।

कड़वी तोरई—दे० 'तोरई'।

कतीरा देशी (पीतकार्पास निर्यास)

नाम। सं०—पीतकार्पास (अभिनव)। हिं०—पीली कपास, गलगल (मिर्जापुर)। सहारनपुर—गेजरा (*Gejra*), अरलू (*Arlu*)। कोल—हूपू। संथा०—होपो। उड़िया—काँटोपलास। अं०—यलो-काटन ट्री (*Yellow-Cotton Tree*), गोल्डन सिल्क-काटन ट्री (*Golden Silk-Cotton Tree*)। ले०—कॉक्लोस्पेर्मुम् रेलिजिओसुम् **Cochlospermum religiosum** (*Linn.*) *Alston.* (पर्याय—कॉक्लोस्पेर्मुम् गॉस्सीपिउम *Cochlospermum gossypium DC.*)। उपर्युक्त नाम इसके वृक्ष के हैं। गोंद-देशी कतीरा या कतीराए हिंदी- या अँगरेजी में 'हॉग-गम *Hog-Gum*' कहते हैं। वक्तव्य—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोंद कतीरा या गमट्रागाकान्थ (*Gum Tragacanth*) वास्तव में विदेशी द्रव्य है। यह आस्ट्रागालास की विभिन्न जातियों से प्राप्त किया जाता है, और फारस से भारतीय बाजारों में आता है। पाश्चात्य वैद्यक में भी इमल्शन आदि के निर्माण में इसका काफी मात्रा में प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष में भी दो वृक्ष ऐसे हैं, जिनसे प्राप्त गोंद बिल्कुल गोंद कतीरे-जैसा होता है, अतएव यवन आगन्तुकों ने इसे 'कतीरा हिन्दी' नाम से अभिहित किया और यह असली गोंद कतीरा का एक उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। पीली कपास के गोंद से बिल्कुल मिलता-जुलता 'गुलू' या 'कुल्ली' का लासा भी होता है, जो रामनामी या स्टेर्कूलिआ ऊरेंस *Sterculia urens Roxb.* (*Family. Sterculiaceae*) से प्राप्त किया जाता है। बम्बई के बाजार में गुजराती दूकानदार इसे 'कराइ गोंद *Karai Gond*' के नाम से बेचते हैं। 'कतीरा', 'कराया' आदि नाम उक्त दोनों ही वृक्षों के लिए प्रचलित हैं, और स्वरूपतः तथा प्रयोग की दृष्टि से एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं। फिर भी यह तो ध्यान में रहना ही चाहिए कि दोनों एक ही चीज नहीं है, अपितु दो पृथक्-पृथक् वृक्षों से प्राप्त गोंद हैं।

वानस्पतिक कुल—पीतकार्पास-कुल (बोक्सासी *Bixaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पीतकार्पास के वृक्ष प्रायः समस्त भारतवर्ष में (विशेषतः गढ़वाल, बुंदेलखण्ड, बिहार, उड़ीसा, मध्य भारत, बंगाल, दक्षिण भारत, मद्रास आदि) में पथरीली पहाड़ियों के जंगलों में स्वयंजात पाये जाते हैं। 'स्टेर्कूलिआ ऊरेन्स' भी इन सभी जगहों में पाया जाता है। इनका गोंद बाजारों में पंसारियों के यहाँ गुलू, कुल्ली या देशी कतीरा के नाम से बिकता है।

संक्षिप्त परिचय (१) पीतकार्पास या गलगल—इसका वृक्ष छोटा, सीधा तथा बहुत मुलायम काष्ठवाला होता है। काण्डत्वक् पर अनेक गहरी दरारें पड़ी होती हैं। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० (३ इंच से ८ इंच) व्यास की, करतलाकार ३–५ नुकीले खण्डों से युक्त होती हैं। पर्णवृन्त १५ सें० मी० से २२.५ सें० मी० (६ से ९ इञ्च) लम्बा एवं स्थूल होता है। पुष्प उभयलिंगी, व्यास में ६.५ से १२.५ सें० मी० (३ इञ्च से ५ इंच) तथा पीले रंग के होते हैं, जो पतझड़ के बाद नयी पत्तियों के निकलने के पूर्व ही शाखाग्र मञ्जरियों (*terminal panicles*) में निकलते हैं। पुष्पवाहक दण्ड तथा पुष्पवृन्त खाकस्तरी रोमावृत, पुटपत्र ५ तथा दलपत्र भी ५ और अभिलट्वाकार, जिन पर अनेक सूक्ष्म समानान्तर शिराएँ होती हैं। फल रूपरेखा में सेब के आकार का (*pyriform*) सामान्य स्फोटी होता है, जिसका स्फुटन ५ दरारों में (प्रत्येक ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ३ इंच लम्बा) होता है। फलों में लगभग ५ मि० मी० या ¼ इंच लम्बे वृक्काकार बीज होते हैं, जिनके ऊपर पीलेरंग की तथा रेशम की तरह मुलायम रुई होती है। पतझड़ दिसम्बर से अप्रैल तक तथा पुष्पागम मार्च से अप्रैल तक तथा फलागम जून-जुलाई में होता है। गर्मियों में पुष्पागम के बाद वृक्ष अत्यन्त आकर्षक मालूम होता है। काण्ड पर स्वयं अथवा चीरा लगाने पर गोंद निकलता है। (२) कुल्लु, कुल्ली या रामनामी (*Sterculia urens Roxb.*) के ऊँचे तथा पतझड़ करने वाले या पर्णपाती वृक्ष होते हैं, जिसकी छाल हरिताभ खाकस्तरी (श्वेत) होती है, तथा कागज की भाँति पतले-पतले पर्तों में छूटती है। पत्तियाँ करतलाकार, ५–खण्डित, व्यास में २२.५ सें० मी० से ३० सें० मी० (९ इंच से १२ इंच) होती हैं, जो शाखाओं पर समूहबद्ध निकलती हैं। पर्णवृन्त २२.५ सें० मी० से ३० सें० मी० (९ इंच से १२ इंच) लम्बे होते हैं। पुष्प एकलिंगी तथा छोटे और लाल भूरे रंग के होते हैं। इससे भी एक गोंद निकलता है, जो बाजारों में 'कतीरा' के नाम से बिकता है।

उपयोगी अङ्ग—गोंद (*Gum*)।

मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—(१) पीतकार्पास निर्यास के सफेद, पीताभ या हल्की गुलाबी आभा लिये, छोटे-बड़े गोल टुकड़े होते हैं, जो प्रायः स्तरित तथा ऐंठे हुए से (*striated and twisted*) और अर्ध-पारदर्शक होते हैं। जल में भिगोने पर फूल कर असली कतीरा की भाँति जेलीनुमा हो जाता है, किन्तु जल में विलेय नहीं होता। विदेशी कतीरा की अपेक्षा इसका चूर्ण आसानी से बन जाता है। गुलू तथा पीतकार्पास निर्यास नमी में खुला रहने से, इनका कुछ भाग एसेटिक एसिड में रूपान्तरित हो जाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२) गुलू या कुल्ली–कुल्ली के गोंद के सफेद या गुलाबी आभा लिये हल्के भूरे रंग के अथवा कृष्णाभ या मटमैले रंग के स्फीताकार टुकड़े (*strips*) या गोल-गोल अश्रुवत् छोटे-बड़े दाने या कृमि-आकार के टेढ़े-मेढ़े टुकड़े होते हैं। ताजी अवस्था में इनमें एसेटिक एसिड कीसी हल्की गंध भी आती है। बाजारों में आने वाले गोंद में सफेद गोंद सर्वोत्तम, गुलाबी आभावाला द्वितीय श्रेणी का तथा मटमैला और कृष्णाभ उससे भी हीन कोटि का समझा जाता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–'स्टेर्कूलिआ' की अन्य जातियों से भी इसी प्रकार का गोंद निकलता है, जिसका मिलावट संग्रहकर्ता प्रायः कुल्ली के गोंद में करते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–भारतवर्ष में उक्त दो वृक्षों से गोंद का संग्रह अधिक किया जाता है। उनमें भी कुल्ली का गोंद व्यावसायिक दृष्टि से विशेष महत्त्व का है। वृक्षों से गोंद स्वयं भी निकलता रहता है। किन्तु शीघ्रता से अधिक मात्रा में निकालने के लिए वृक्षों पर चीरा लगाया जाता है। उत्तर प्रदेश में कुल्ली का संग्रह विशेषतः अक्टूबर से जनवरी तथा अप्रैल से जून के महीनों में किया जाता है। उनमें भी गर्मी की ऋतु अधिक उपयुक्त होती है। कतीरे को अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में रखना चाहिए और नमी से बचाना चाहिए।

संगठन–पीतकार्पास, कतीरा में ५०% पेन्टोसन्स एवं ग्लैक्टन्स (*Pentosans and glactans*) होते हैं। जल-अपघटन (*hydrolysis*) होने पर एसेटिक एसिड (१४%), गोंडिक एसिड (*gondic acid* $C_{23}H_{26}O_{21}$) तथा *a-cochlospermic acid* आदि में रूपान्तरित होते हैं। कुल्ली के गोंद में म्युसिक एसिड (*mucid acid*) आदि तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि–दीर्घकाल तक।

स्वभाव–देशी कतीरा भी अनुष्ण शीत एवं स्निग्ध होता है। यह रक्तस्तम्भक, पिच्छिल, मृदुसारक, दाह एवं सन्तापहर, बृंहण तथा उरोमार्दवकर होता है। अहितकर–निम्नभाग के रोगों में अहितकर है। निवारण–अनीसूं। प्रतिनिधि–बबूल का गोंद।

विशेष–पाश्चात्य भैषज्यकल्पना में इमल्सन के निर्माण में देशी कतीरा, ट्रागाकान्थ का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। सारक के रूप में यह अगर का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। अगर की आधी मात्रा में भी इसका सेवन करने से वही कार्य होता है।

कत्था (खैर, खदिर)

नाम। सं०–खदिरसार, खादिर (खदिरनिर्यास)। हिं०–कत, कत्था, कथ, खैर। बं०–कत, कात। गु०–काथो। द०–कत्थ। अ०–कात, काद। फा०–कात। अं०–कैटेक्यू (*Catechu*), कच (*Cutch*)। पर्याय–काटेकू नीग्रम *Catechu Nigrum* (*Catech. Nig*)–ले०; ब्लैक कैटेक्यू *Black Catechu*–अं०। वृक्ष का नाम–आकासिआ काटेकू **Acacia catechu** *Willd.*

वानस्पतिक कुल। शिम्बीकुल : बब्बूल उपकुल (*Leguminosae : Mimosaceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष में, पंजाब, उत्तर पश्चिमी हिमालय प्रदेश, मध्य भारत, बिहार, कोंकण, दकन तथा बर्मा में खैर के वृक्ष जंगली रूप से एवं प्रचुरता से पाये जाते हैं।

संक्षिप्त परिचय–खैर के मध्यमकद के कण्टकितवृक्ष होते हैं। अनुपत्रों (*stipules*) का रूपान्तर मृदु कण्टकों (*spines*) में हो जाता है, जो दो-दो के जोड़ों (*pairs*) में अग्रपर मुड़े हुए तथा चमकदार भूरे रंग के या प्रायः कालिमा लिये भूरेरंग के होते हैं। काण्डत्वक् गाढ़े खाकस्तरी रंग की होती है। पत्तियाँ १० सें० मी० से १७.५ सें० मी० (४ इंच से ७ इंच) लम्बी, रेकिस (*rachis*) कण्टकित होती है। पत्रक–२० से ६० तक ३.३ सें० मी० (१½ इंच) लम्बे; प्रत्येक पत्रक ६०-१०० प्रपत्रकों में विभक्त, जो प्रायः ⅓ से० मी० (०.१५ इंच) लम्बे होते हैं। पुष्प–पीताभ या क्रीमरंग के, कोणोद्भूत गोलमञ्जरियों में निकलते हैं। फली (*Pod*)–५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० (२ इंच से ३½ इंच) लम्बी, चपटी, सीधी, चमकदार गाढ़े भूरेरंग की होती है, जिसमें ५-६ बीज होते हैं, जो गोलाकार, व्यास में ५ मि० मी० (०.२ इंच), चपटे तथा गाढ़े भूरे रंग के होते हैं। फलियों में ५ मि० मी० से ६.५ मि० मी० या ०.२ इंच से ०.३ इंच लम्बा डंठल लगा होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फलियाँ पकने पर काफी दिनों तक वृक्ष पर लगी होती हैं। पुष्पागम—ग्रीष्म के अन्त एवं वर्षा का प्रारम्भ। फलागम—जाड़ों में।

उपयोगी अंग—(१) खदिरसार या कत्था (२) काण्डत्वक् (छाल)।

मात्रा। खदिरसार—०.३७५ ग्राम से ०.७५ ग्राम या ३ रत्ती से ६ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कत्था, खैर के पेड़ के सारकाष्ठ (हीर *heart-wood*) से विशेष विधि द्वारा कल्पना की गयी शुष्क रसक्रिया है। कत्था गाढ़े भूरे रंग से लेकर काले रंग तक के अनियमित स्वरूप के टुकड़ों में अथवा घनाकार टुकड़ों (*cubes*) में प्राप्त होता है, जो अत्यन्त सुषिर (*porous*) होते हैं और बाह्यतः मटमैले रंग के अथवा चमकीले होते हैं। खैर के टुकड़े अत्यंत भंगुर होते हैं; तथा जरा-सा दबाव से भुरेभुरे चूर्ण के रूप में टूटने लगते हैं। इसमें प्रायः कोई गंध नहीं पायी जाती तथा स्वाद में पहले तिक्त किन्तु बाद में किंचित् मधुर तथा कसैला मालूम होता है।

रंग भेद से कत्था बाजार में कई प्रकार का प्राप्त होता है :—(१) यह ललाई लिये भूरा और भीतर से अत्यंत हलका, पीले (या बादामी) रंग का होता है, और सहज में टूट जाता है। स्वाद पहले तिक्त एवं कषाय गोंद-जैसा और पीछे मधुर प्रतीत होता है। इसे 'प (पा) पड़िया', भगूरी या 'पखरा' कत्था कहते हैं। औषधीय प्रयोग के लिए यही ग्राह्य है। (२) लाल—यह औषधीपयोग के लिए उपयुक्त नहीं होता और केवल पान में खाने के लिए व्यवहृत होता है; (३) काला—यह अत्यंत तिक्त होता है। औषधीय प्रयोग के लिए यह भी अनुपयुक्त है।

खैर के जलीय विलयन का सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षण करने पर उसमें बहुलता से सूच्याकार क्रिस्टल्स देखे जाते हैं। जल में खैर अच्छी तरह घुल जाता है। गरम जल में और भी सुविलेय होता है। लौह-लवणों (*Iron-salts*) एवं जिलेटिन के साथ कत्था असंयोज्य (*Incompatible*) होता है। जल में अविलेय (न घुलने वाला) अवशेष—अधिकतम २५%; ऐल्कोहॉल (९०%) में अविलेय अंश—अधिकतम ४०%; भस्म—अधिकतम ८%; १००° तापक्रम पर शुष्कीकरण से भार में कमी—अधिकतम १५%।

अन्य परीक्षण—(१) १०% शक्ति का जलीय विलयन १ मि० लि० (१ सी० सी० = १५ बूंद) में चूर्णोदक (चूने का पानी) कतिपय बिन्दु मिलावे से ३ मिनट के अन्दर विलयन का रंग भूरे रंग का हो जाता है, जिसमें बाद में लाल अधःक्षेप होने लगता है। (२) कत्था का १% शक्ति का जलीय विलयन ५ सी० सी० लें। इसमें फेरिक अमोनियम सल्फेट का ०.१% शक्ति का विलयन मिलाने से विलयन गाढ़े हरेरंग का हो जाता है। इस हरे विलयन में सोडियम हाइड्रॉक्साइड का विलयन मिलाने से यह पुनः बैंगनी (*purple*) रंग का हो जाता है। १०% (*w/v*) के स्वच्छ जलीय विलयन में ५% (*w/v*) का फेरिक क्लोराइड विलयन मिलाने से भी यही परिवर्तन लक्षित होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—खदिर की छाल, एवं खैर को मुखबंद पात्रों में शीतल स्थान में संग्रहीत करें।

संगठन—(१) कत्थे में ५० प्रतिशत तक कैटेकू-टैनिक एसिड (*Catechu-tannic acid*) होता है, जो इसका सक्रिय घटक होता है और उबालने से या मुँह की लाला से मिल कर यह कैटेकीन में परिणत हो जाता है। इसके अतिरिक्त कैटेकोल, क्वर्सिटिन (*Quercetin*) एवं कैटेक्यूरेड (*Catechu Red*) आदि तत्त्व।

वीर्यकालावधि—छाल—१ वर्ष। खैर—दीर्घ काल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—कुष्ठघ्न। प्रधान कर्म—रक्तशोधक, रक्तस्तम्भक, कासशामक, स्तम्भक आदि। अहितकर—कामावसादकर एवं अश्मरीकारक है। निवारण—अंबर एवं कस्तूरी। प्रतिनिधि—गेरु और माजू। चरकोक्त (सू० अ० ४) कुष्ठघ्न महाकषाय एवं (वि० अ० ८) कषायस्कन्ध के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) सालसारादिगण में खदिर का भी उल्लेख है।

मुख्य योग—खादिरारिष्ट, खदिरादि क्वाथ, खदिराष्टक एवं जरूरकुला आदि।

विशेष—पाश्चात्य वैद्यक में लताखदिर (**Uncaria gambir** *Roxb.* (*Family ; Rubiaceae*) से प्राप्त कैटेकू, जिसे 'श्वेतखदिर' कहते हैं, व्यवहृत होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसकी कँटीली लताएँ बोर्नियो, सुमात्रा एवं मलाया आदि में प्रचुरता से पायी जाती हैं।

कनेर (करवीर)

नाम। सं०–करवीर, हयमार (अश्वमारक, अश्वघ्न)। हिं०–कनेर, कनइल। बं०–करवी। म०–कण्हेर। गु०–कणेर, करेण। सिन्धी–जंगी गुलु। अ०–सम्मुल्–हिमार, सम्मुल्मार। फा०–खरज़हरा। अं०–(श्वेत तथा लाल कनेर) स्वीट–सेंटेड ओलिएण्डर (*Sweet-Scented Oleander*)। ले०–(१) श्वेत तथा रक्त करवीर-नेरिउम इंडिकुम **Nerium indicum** *Mill.* (पर्याय–*N.odorum Sol.*)। (२) पीत करवीर (पीला कनेर) थेवेटिआ नेरिफोलिआ **Thevetia nerifolia** *Juss.*। अरबी सम्मुल् हिमार और फारसी ख़रज़हरा का अर्थ 'दर्भविष' और अरबी 'सम्मुलमार' का अर्थ सर्पविष है। संस्कृत अश्वमारक, हयमार एवं अश्वघ्न के अर्थ 'घोड़ों के लिए घातक' हैं। कनेर एक ज़हरीला द्रव्य है, जिसमें पीला कनेर अपेक्षाकृत और भी ज़हरीला होता है। उक्त प्राणियों पर विषाक्त प्रभाव अधिक होने से यह नाम अन्वर्थक हैं।

वानस्पतिक कुल। करवीर-कुल (आपोसोनासी *Apocynaceae*)।

प्राप्तिस्थान–पश्चिमी हिमालय प्रदेश, उत्तर प्रदेश, सिन्ध एवं मध्य भारत तथा भारतवर्ष के अन्य प्रांत। पीला कनेर पश्चिमी द्वीपसमूह का आदिवासी पौधा है। भारतवर्ष में सफेद, लाल एवं पीला तीनों प्रकार के कनेर के वृक्ष जंगली रूप से भी पाये जाते हैं, तथा पुष्प के लिए बगीचों में तथा मन्दिरों के पास इसके लगाये हुए वृक्ष भी मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–(१) श्वेत तथा रक्त करवीर, कनेर के गुल्मजातीय मँझोले कद के सदाहरित वृक्ष होते हैं। **पत्तियाँ**–प्रत्येक स्थान पर प्रायः ३-३ के पुंज में निकलती हैं, जो १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च) लम्बी तथा १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) चौड़ी और रूपरेखा में रेखाकार-भालाकार अथवा आयताकार, लम्बाग्र (*acuminate*), चिकनी, ऊर्ध्व पृष्ठ पर गाढ़े हरे रंग की और चमकीली, अधः पृष्ठ पर खुरदरी, स्पर्श में चर्मिल (*cortaceous*) मालूम होती हैं। पत्रवृन्त (डंठल) छोटे-छोटे होते हैं। **पुष्प** व्यास में ३.७५ सें० मी० (१½ इंच) रंग में सफेद गुलाबी तथा लाल होते हैं, जिनमें एक मधुर सुगंधि पायी जाती है, जो शाखाओं तथा पर गुच्छों में निकलते हैं। फल ६-७ इञ्च लम्बे ⅜ से ⅝ इञ्च चौड़े तथा कड़े होते हैं। बीज रेखाकार तथा रूई के समान लोम (*coma*) युक्त, जो खाकस्तरी भूरे रंग का होता है। (२) पीत करवीर–के भी छोटे वृक्ष होते हैं, जिसमें पीले रंग के घंटिकाकार पुष्प लगते हैं। फल—गोलाकार-चतुष्कोणाकार, गूदेदार तथा हरे रंग का होता है, जो ३.७५ सें.मी. से ५ सें.मी. (१½ इंच से २ इञ्च) व्यास में होता है। प्रत्येक फल में एक कड़ी गुठली होती है। करवीर कुल की अन्य वनस्पतियों की भाँति कनेर की भी पत्तियों को तोड़ने से तथा अन्य अंगों पर भी क्षत करने से एक कड़वा दूध-सा (*latex*) निकलता है।

उपयोगी अंग–मूल या जड़ (अथवा) मूलत्वक्, जड़ की छाल) एवं पत्र।

मात्रा। मूलत्वक् चूर्ण–०.१२५ ग्राम से ०.५ ग्राम (१ ग्राम) या १ रत्ती से ४ रत्ती (१ माशा) तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–सफेद अथवा लाल कनेर की जड़ें प्रायः टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं, जिसकी छाल (*bark*) मोटी किन्तु मुलायम होती है, बाहर से छाल खाकस्तरी रंग की (*grey*) होती है। नयी जड़ों पर कार्क स्तर (*corky layer*) बहुत पतली होती है, जिसमें अन्दर का भाग (जो पीले रंग का होता है) दिखाई देता है। जड़ पर क्षत के करने से एक हल्के पीले रंग का आक्षीर या लैटेक्स (*pale yellow latex*) निकलता है, जो राल की भाँति तथा चिपचिपा होता है। छाल स्वाद में तिक्त एवं कटु तथा गंध में भी कटु होती है। पत्र (देखो संक्षिप्त परिचय)।

संग्रह एवं संरक्षण–जड़ों का संग्रह जाड़े के दिनों में करके सुखा कर अच्छी तरह डाँटबंद पात्रों में रख कर अनार्द्र एवं शीतल स्थान में रखना चाहिए। पत्तियों का प्रयोग ताजी अवस्था में ही करना चाहिए।

संगठन–सफेद तथा लाल कनेर की जड़ में (नेरिओडोरिन (*Neriodorin*), जो जल में अविलेय है, तथा करवीरीन (नेरिओडोरीन *Neriodorien*)–ये दो तिक्त अक्रिस्टलीय तत्त्व पाये जाते हैं। यह दोनों हृदय के लिए भयंकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विष हैं। इनके अतिरिक्त इसमें नेरिईन (*Nerlene*) नामक पदार्थ होता है। पीले कनेर के बीज और छाल में थेवेटिन (*Thevetin*) और खली में थेवेटीन (*Thevetine*) नामक विषैले सत्व (ग्लूकोसाइड) पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि-(जड़)-१ वर्ष।

स्वभाव। गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस-कटु, तिक्त। विपाक-कटु। वीर्य-उष्ण। प्रधान कर्म-वातकफ़नाशक, व्रणशोधन एवं रोपण, (अल्प मात्रा में) रक्तशोधक, कुष्ठनाशक, भेदन पर्यायज्वरनाशक एवं वाजीकर। चरकोक्त (सू० अ० ४) कुष्ठघ्न महाकषाय एवं तिक्त-स्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) लाक्षादि वर्ग एवं शिरोविरेचन द्रव्यों (सू० अ० ३९) में करवीर भी है।

मुख्य योग-करवीरयोग, करवीरादि तैल।

विशेष-कनेर एक विषैला द्रव्य है। अतएव आभ्यन्तरिक प्रयोग सतर्कतापूर्वक तथा निर्दिष्ट मात्रा से कम ही करना अच्छा है। अधिक मात्रा में प्रयुक्त करने से हृदय पर घातक प्रभाव होता है, और श्वासावरोध होकर मृत्यु तक हो जाती है। अहितकर-उरो-मस्तिष्क को। निवारण-तेल (रोग़न) और ताजा पनीर। प्रतिनिधि-मैनफल। करवीर रसशास्त्र में 'उपविष' वर्ग में ग्रहीत है।

कपास (कर्पास)

नाम। (१) क्षुप-(सं०) कर्पास, कर्पासी, तुण्डिकेरी। हिं०-कपास, मनवाँ। बं-कापास गाछ। म०-कापसी। फा०-दरख्ते पंबः। अ०-नबातुल क़ुत्न, शज्रतुल् क़ुत्न। अं०-कॉटन प्लान्ट (*Cotton Plant*)। ले०-गॉस्सीपियम् हेर्बासेउम् (**Gossypium herbacium** *Linn.*)। (२) बिनौला। सं-कार्पासबीज। हिं०-बिनौला, कुकटी, बेनउर। बं०-कपासेर बीज। मार०-काँकड़े। अ०-हब्बुल् क़ुत्न। फा०-पंबः दाना। अं-कॉटन सीड्स (*Cotton Seeds*)। ले०-गॉस्सीपियम सेमिना (*Gossypium Semina*)। (३) रूई या कपास। सं०-कार्पास, पिचु। हिं०-रूई, कपास। म०-कापूस। अ०-क़ुत्न, कुसुफ़, क़ुर्फ़ुस। फा०-पंबः, पश्म पंबः। अं०-कॉटन (*Cotton*), कॉटन वूल (*Cotton-wool*)। ले०-गॉस्सीपियम (*Gossypium*)। (४) कपास की ढेंढ़। सं०-कर्पास फल। हिं०-कपास के ढेंढ़ (ढोंड़), बोंड। द०-कपास के पिंडे। अं०-*Young or tender cotton fruit or capsules*। (५) कपास की जड़ की छाल। सं०-कर्पास मूलत्वक्। हिं०-कपास की जड़ की छाल। फा०-पोस्त बेख पंबः। अं०-कॉटनरूट बार्क *Cotton-Root Bark*। ले०-गॉस्सीपी रेडिसिस् कॉर्टेक्स *Gossypii Radicis Cortex*, गॉस्सीपी कार्टेक्स *Gossypii Cortex* (*Gossyp. Cort.*) (६) बिनौले का तेल। ले०-ओलेउम गॉस्सीपीसेमिनिस (*Oleum* (*Gossypii Seminis*)। अं०-कॉटन सीड आयल *Cotton Seed Oil*)।

वानस्पतिक कुल। कार्पास-कुल (मालवासी *Malvaceae*)।

प्राप्तिस्थान-भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों (बंगाल, गुजरात, बम्बई आदि) में कपास की प्रचुरता से खेती की जाती है। पाकिस्तान, मिस्र एवं संयुक्त राष्ट्र अमरीका आदि विदेशों में भी कपास की काफी परिमाण में खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य उष्ण कटिबन्धीय देशों में भी न्यूनाधिक मात्रा में कपास की खेती होती है।

संक्षिप्त परिचय-कपास के कोमल, बहुशाखी एकवर्षायु छोटे क्षुप (*sub-shrub*) होते हैं, जिसकी खेती प्रतिवर्ष होती है; किन्तु जब इसे बढ़ने दिया जाता है, तब वह बहुवर्षीय हो जाता है। इसका पौधा ०.९ मीटर से १.५ मीटर (३ फुट से ५॥ फुट) ऊँचा होता है, और यह जिस विशिष्ट नस्ल का होता है, उसी के अनुसार ४ मास से ८ मास में इसका बीज अंकुरित होता और परिपक्व होता है। प्रकांड सरल होता है, जिससे अनेक कोमल प्रशाखाएँ निकलती हैं। प्रशाखाओं के कोमल भाग, पत्र, पत्रवृंत एवं पुष्प आदि प्रायः रोमावृत (दूर दूर-(*sparsely hairy*) होते हैं। पत्र-देखने में एरण्डपत्र की तरह, किन्तु उससे छोटे तथा गाढ़े हरे रंग के और वयन (*texture*) में चर्मिल (*coriaceous*) होते हैं। यह ५-७ खण्डों (*lobes*) में विभक्त (खण्डों की गहराई पत्र फलक की चौड़ाई के आधे से भी अधिक) होते तथा खण्ड चौड़े-लट्वाकार अग्र पर सहसा नुकीले तथा अधिकांश आधार की ओर क्रमशः कम चौड़े होते हैं। पत्रवृंत लम्बा होता है। कोणपुष्पक या सहपत्र (*bracts*) रूपरेखा में चौड़े त्रिकोणाकार, आधार की ओर गोल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार तथा तट दन्तुर होते हैं। पुष्प–चम्रकीले पीले रंग के, पंजा के समोप बैंगनी चिह्नयुक्त (*Yellow with purple centre*); फल या ढेंड–(*Capsule*) लगभग ½ सें० मी० (⅓ इंच) लम्बा, अंडाकृति, नुकीला (*Beaked*) तीन या चार कोष्ठ युक्त होता है। बिनौला या बीज श्वेतरोमावृत्त (*with grey fuzzy*) तथा कपास या रूई से आवेष्ठित होता है। बीजों से एक प्रकार का तेल (बिनौले का तेल) भी निकलता है।

वक्तव्य–कपास की बहुत-सी जातियाँ होती हैं। किन्तु यह भेद विशेषतः भूमि एवं जलवायु के अन्तर के कारण हुआ प्रतीत होता है। देशी एवं विदेशी भेद से इनके २ मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। देशी कपास के भी कृषिजन्य (खेतों में होने वाली) तथा उद्यान कपास (जो बगीचों, घरों और देवालयों के पास होती है) भेद से २ प्रकार होते हैं। इसे 'नरमा' या 'देवकपास' कहते हैं। जिस कपास की खेती की जाती है, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। देवकपास या नरमा के लगभग १२ फुट से १५ फुट ऊँचे वृक्ष से पौधे होते हैं, जो कई वर्षों तक रहते हैं। इसके पुष्प रक्तवर्ण के होते हैं। इसका धागा लम्बा और मजबूत होता है। इसकी रूई बहुत अच्छी समझी जाती है। देवकपास की ही एक जाति "अरण्यकार्पासी या भारद्वाजी अथवा बनकपास" होती है, जिसका क्षुप फैलने वाला या वृक्षों के सहारे ऊपर चढ़ने वाला होता है। खानदेश और सिन्ध प्रान्त में बनकपास बहुत होता है। बनकपास के फूल लगभग ३.७५ सें० मी० या १॥ इंच लम्बे ताजी अवस्था में पीत वर्ण के, किंतु सूखने पर गुलाबी हो जाते हैं। इसकी कपास कुछ पिलाई लिये हुए होती है। इसका बीज कुछ विशेष लम्बा और काले रंग का होता है। विदेशी कपास की जातियों में विशेषतः २ जातियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं–(१) ब्राजीलीय कपास (*Brazil Cotton : Gossypium acuminatum*) तथा बर्बदो या अमेरिकन कपास (*American Cotton : Gossypium barbadense Linn.*)।

उपयोगी अंग–मूलत्वक्, बीज, तैल, पत्र, फूल एवं फल।

मात्रा। मूलत्वक् एवं डोड़ा ६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तोला। बीजचूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। पलस्वरस–१ तोला से २ तो०। पुष्पचूर्ण–१ ग्राम से १॥ ग्राम या १ माशा से १॥ माशा। तैल–१। से २॥ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। मूलत्वक्–औषध्यर्थ कपास के जड़ की सुखाई हुई छाल काम में लायी जाती है, जिसकी पतली-पतली पट्टियाँ या बल खाये हुए टुकड़े (*channelled or quilled strips*) होते हैं, जो तन्तुमय तथा चिमड़े या लचीले (*tough and fibrous*) होते हैं। जगह-जगह पतली सूत्राकार प्रशाखाएँ (*Rootlets*) लगी होती हैं। बाहर से यह दालचीनी के रंग की तथा अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्मरेखांकित (*striated*) या झुर्रीदार (*wrinkled*) होती है। अन्तस्तल रेशमी सफेद रंग का तथा अनुलम्ब दिशा में रेखांकित होता है। तोड़ने पर यह टुकड़े चिमड़े (*fracture : tough and fibrous*) होते हैं। यह निर्गन्ध एवं स्वाद में किंचित् कटु एवं कषाय होती है। छाल में काष्ठीय भाग तथा अन्य सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम ५% होते हैं। अम्ल में अघुलनशील भस्म अधिकतम २% प्राप्त होती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–कपास (*Gossypium*) की अन्य कर्षित प्रजातियों का मूलत्वक् भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

बिनौले का तेल–यह हल्के पीले या पीले रंग का गंधहीन द्रव होता है, जो स्वाद में अन्य मरजयात के तैल की भाँति (*bland, nutty taste*) तथा कम तापक्रम (०°–५°) पर जमजाता है। यह ऐल्कोहॉल में अंशतः विलेय (*slightly soluble*) होता है। क्लोरोफॉर्म, ईथर तथा लाइट पेट्रोलियम (*Light Petroleum*) में मिल जाता (*miscible*) है। क्वथनांक (*boiling point*)–५०° से ६०° तापक्रम। आपेक्षिक गुरुत्व (*Specific gravity*)–०.९१५–०.९२५। ४०° पर अपवर्तनांक (*Refractive Index*)–१.४६४५ से १.४६५५। एसिड वैल्यू (*Acid Value*)–अधिकतम ०.५। आयोडीन वैल्यू (*Iodine Value*)–१०३ से ११५। साबुनीकरण की शक्ति (*Saponification Value*)–१९०–१९८।

विनिश्चय (*Identification*)—(१) हाल्फेन टेस्ट (*Helphen test*) द्वारा गुलाबी रंग का परिवर्तन पाया जाता है। (२) थोड़ा-सा बिनौला का तेल लेकर उसमें बराबर मात्रा में नाइट्रिक एसिड (जिसका

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशिष्ट गुरुत्व *Sp. gr.* १.३७५ हो) मिलायें। दोनों के मिश्रण को खूब मिला कर थोड़ी देर तक रख छोड़ें' और इसी प्रकार रहने दें। २४ घंटे के अन्दर इस मिश्रण का रंग कॉफी के समान भूरा हो जाता है।

मिलावट-श्वेतशाल्मली **Ceiba pentandra** *L.* (*Syn. Eriodendron anfractuosum DC. Family*: *Bombacaceae* (शाल्मली-कुल) के बीजों से भी इसी प्रकार का एक तैल प्राप्त होता है, जिसको कॉपोक ऑयल (*Kapok Oil*) कहते हैं। हाल्फन प्रतिक्रिया (*Halphen Reaction.*) इसमें अधिक चटकीलो (*more pronounced*) होती है।

संग्रह एवं संरक्षण-उपयुक्त अंगों को ग्रहण कर अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन-मूलत्वक् में ८% तक रंगहीन या पीत आम्लिक राल या रेजिन (*Acid resin*) तथा डाइहाइड्रॉक्सी बेंजोइक एसिड (*Dihydroxy benzoic acid*), फिनोल वसाम्ल (*Fatty acids*), बीटेन (*Betaine*); फाइटॉस्टेरोल एवं शर्करा आदि तत्त्व पाये जाते हैं। तैल में लीनोलीक एसिड (३९.३५%), ओलिक एसिड (३३.१५%), पामिटिक एसिड (१९.१%), स्टियरिक एसिड (१.९%), अरेकिडिक एसिड (०.६%), तथा मिरिस्टिक एसिड (०.३%) आदि वसाम्लों (*Fatty acids*) के ग्लिसेराइड्स (*Glycerides*) पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त अल्प मात्रा में लेसिथिन आदि फास्फोलिपिन्स, फाइटॉस्टेरोल्स तथा रंजक तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि-मूलत्वक्-१ वर्ष। बीज-२ वर्ष। तैल-दीर्घ काल तक।

स्वभाव। गुण-लघु, स्निग्ध। रस-मधुर, कषाय। विपाक-मधुर। वीर्य-ईषद उष्ण। कर्म-डोड़ा एवं मूलत्वक्-गर्भाशयसंकोचक और आर्त्तवजनन। बीज-स्नेहन, संसव, नाड़ीबल्य, स्तन्यजनन, बल्य, वृष्य, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, विषघ्न। पुष्प-सौमनस्यजनन, उत्तेजक, यकृदुत्तेजक। रूई-उष्णताजनन, उपशोषण। पत्र-पिच्छिल, मूत्रजनन। यूनानी मतानुसार डोंड़ा (*capsule*) एवं मूलत्वक् उष्ण एवं रूक्ष, पुष्प पहले दर्जे में उष्ण एवं तर, रूई के पहले दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष तथा बिनौले की गिरी दूसरे दर्जे में उष्ण एवं तर है। अहितकर-वृक्कों के लिए। निवारण-खमीरा बनफशा या शर्बत बनफ़शा।

विशेष-कपास का डोड़ा और मूलत्वक् आर्तवजनन, अपरानिस्सारक, सुखप्रसवकारक एवं अधिक मात्रा में गर्भशातक होता है। एतदर्थ अकेले या अन्य उपयुक्त द्रव्यों के साथ डोड़ा या मूलत्वक् का क्वाथ प्रयुक्त करते हैं। बिनौले की गिरी की खीर पका कर देते हैं, अथवा अन्य औषध द्रव्यों के साथ हरीरा बना कर देते हैं। यह बाजीकर एवं पौष्टिक माजूनों में भी मिलाई जाती है। रूई का व्यवहार व्रण-चिकित्सा एवं शल्य-कर्म में किया जाता है।

कपूर (कर्पूर)

नाम। सं०-कर्पूर, घनसार, चन्द्र। हिं०, म०, गु०-कपूर। फा०-कापूर। अ०-काफ़ूर। ले०-काम्फोरा (*Camphora*)। अं०-कैम्फर (*Camphor*)।

प्राप्तिसाधन-कर्पूर एक उड़नशील तेल है, जो ठोस या घन अवस्था में रहता है। इसी प्रकार सत अजवायन या थाइमोल (*Thymol*) तथा सत पिपरमिंट या मेन्थोल (*Menthol*) भी घनावस्था में रहते हैं। व्यवहार में कपूर नैसर्गिक साधनों से (नैसर्गिक साधनों से प्राप्त कैम्फर या नेचुरल कैम्फर (*Natural Camphor*) भी प्राप्त किया जाता है; तथा आजकल रासायनिक संश्लेषण पद्धतिद्वारा कृत्रिमरूप से कृत्रिम कपूर (*Synthetic Camphor*) भी बनाया जाता है। नैसर्गिक रूप से निम्न वृक्षों या क्षुप वनस्पतियों से कपूर प्राप्त किया जाता है :—

(१) सिन्नामोमुम् काम्फोरा **Cinnamomum camphora** *Nees.* (कर्पूर-कुल या लाउरासी *Lauraceae*)।

(२) ड्राइओबालानॉप्स आरोमाटिकुस् *Dryobalanops aromaticus Gartn.* (गर्जन-कुल या डिप्टेरोकार्पासी *Dipterocarpaceae*)।

(३) ओसिमुम् किलिमान-ऑस्सारिकुम् **Ocimum Kilimau-oscharicum** या कपूरतुलसी (तुलसी-कुल या लाबिआटी *Labiatae*)। इसके अतिरिक्त कर्पूर-कुल के दालचीनी प्रजाति के अन्य वृक्षों में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी न्यूनाधिक मात्रा में कर्पूर पाया जाता है। कुकरौंधे की विभिन्न जातियों (*various species of Blumea*) में भी कर्पूर पाया जाता है। किन्तु व्यावसायिक दृष्टि से केवल ब्लूमेआ बाल्सामिफ़ेरा **Blumea balsamifera** (*Family : Compositae*) ही महत्त्व का है। पहले इससे भी कर्पूर व्यावसायिक रूप से प्राप्त किया जाता था, जो मटियाले रंग का होता था, और 'ब्लूमिया कैम्फर (*Blumea Camphor*) के नाम से मिलता था।

प्राप्तिस्थान—'सिन्नामोमुम् काम्फ़ोरा' के वृक्ष चीन, जापान, तथा फार्मोसा द्वीप में बहुतायत से पाये जाते हैं। भीमसेनी कपूर के वृक्ष (ड्राइओबालोनॉस आरोमाटिकुस) पूर्वी द्वीपसमूह के बोर्नियो, सुमात्रा आदि द्वीपों में प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। भारतवर्ष में आजकल कपूर-तुलसी की खेती की जाती है, और अपने देश में यही कपूर का प्रधान साधन है। सिन्नामोमुम् काम्फ़ोरा के वृक्षों को भी भारतवर्ष में देहरादून, नीलगिरी, सहारनपुर एवं कलकत्ता आदि स्थानों में लगाने का प्रयास किया गया है। 'ब्लूमेआ बाल्सामीफ़ेरा' के क्षुप भारतवर्ष में आसाम, बंगाल में स्वयंजात और बहुलता से पाये जाते हैं। किन्तु अब व्यावसायिक रूप से कर्पूर की प्राप्ति इससे नहीं की जाती। अब व्यवसाय में कपूर, कृत्रिम रूप से व्यावसायिक संश्लेषणपद्धति द्वारा भी काफी मात्रा में बनाया जाता है। भारतवर्ष में कपूर का आयात चीन और जापान से भी पर्याप्त परिमाण में होता है।

उपयोगी अंग—घनीभूत उड़नशील तैल (सार)।

मात्रा—०.१२५ ग्राम से ०.३७५ ग्राम या १ रत्ती से ३ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कपूर एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगंधित द्रव्य होता है, जो हवा में खुला रहने से उड़ता है और जलाने पर फौरन जलता है, तथा धुँएदार चमकीली लौ (*flame*) निकलती है। इसकी बेरंग, श्वेत, अर्द्ध-स्वच्छ, क्रिस्टली डली या आयताकार टिकिया अथवा स्थाली होती है। कभी-कभी यह चूर्णरूप में भी पाया जाता है, जिसे "कपूर का फूल", गुले काफूर या 'फ्लावर्स ऑफ कैम्फर' कहते हैं। चीन एवं जापान से जो कपूर आता है, उसे 'चीनिया कपूर' तथा सुमात्रा, बोर्नियो के कपूर को 'भीमसेनी' कपूर कहते हैं, जो अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट समझा जाता है, और मँहगा भी मिलता है। कैसूरी कपूर, फारमूसा द्वीप का कपूर (*Formosa Camphor*) होता है, जो अत्यंत सफेद, स्वच्छ, उज्ज्वल और परतदार होता है। रासायनिक संश्लेषणपद्धति द्वारा बनाया हुआ कपूर भी (*synthetic Camphor*) मिलता है। रासायनिक दृष्टि से उत्तम कर्पूर में कम से कम ९६% $C_{10}H_{16}O$ होता है। अतएव शक्ति प्रमापन (*Assay*) के लिए कर्पूरगत $C_{10}H_{16}O$ की मात्रा का प्रमापन किया जाता है। कपूर में एक विशिष्ट प्रकार की उग्रगंध पायी जाती है, तथा स्वाद में यह तीक्ष्ण एवं सुगंधित होता है; और बाद में मुख में शैत्य का अनुभव होता है। विलेयता—जल में तो कपूर बहुत कम घुलता है, किन्तु ऐल्कोहॉल (९५%) में काफी घुल जाता है। सालवेंट ईथर, क्लोरोफॉर्म तथा वानस्पतिक तेलों (*Vegetable Oils*) में यह अत्यंत घुलनशील है।

संग्रह एवं संरक्षण—कपूर को अच्छी तरह-मुखबन्द शीशियों में रख कर ठंडी एवं अँधेरी जगह में सुरक्षित करना चाहिए। कर्पूर के पात्र में कुछ दाने गोल मिर्च या लौंग के भी रख दिये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—यदि ठीक प्रकार से संरक्षण किया जाय, तो दीर्घकाल तक सक्रियता बनी रहती है।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु एवं मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—बाह्यतः कोथप्रशमन, वेदनास्थापन, चक्षुष्य तथा आभ्यन्तर प्रयोग से दीपन-पाचन, वातानुलोमन, जन्तुघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तभारवर्धक, कफनिस्सारक, श्वास-कासहर, स्वेदजनन, अल्पमात्रा में वाजीकरण किन्तु अधिक मात्रा में कामावसादक, आक्षेपहर। यूनानी मतानुसार तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष होता है। अहितकर—शीत-प्रकृति और कामशक्ति को अहितकर तथा अश्मरीकारक। निवारण—कस्तूरी, अंबर, जुदंबेदस्तर, गुलकंद, बनफ़शाका तेल। प्रतिनिधि—सफेद वंशलोचन तथा चन्दन।

विषाक्त-प्रभाव—कभी-कभी सहसा मात्रातियोग होने पर हृदयावरिक प्रदेश में पीड़ा, हृल्लास, वमन, शिरोभ्रम, दृष्टिमन्दता, प्रलाप, आक्षेप, मूत्रावरोध एवं शीतप्रस्वेद आदि उपद्रव लक्षित होते हैं। कभी श्यावोत्कर्ष, अंग-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घात एवं संन्यास आदि उत्पन्न होकर मृत्यु तक हो सकती है। चिरकाल तक निरन्तर सेवन करने से तन्द्रा, दौर्बल्य एवं रक्ताल्पता आदि उपद्रव हो सकते हैं। चिकित्सा—उग्र विषमयता में वामक द्रव्यों द्वारा अथवा आमाशयनलिका द्वारा आमाशय प्रक्षालन करना चाहिए। हृदयोत्तेजक औषधियों का इन्जेक्शन करें, तथा अन्य कस्तूरी, अंबर, जुदंबेदस्तर आदि उष्ण एवं उत्तेजक द्रव्यों का प्रयोग करें। आवश्यकतानुसार अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिए।

मुख्य योग—कर्पूररस (कर्पूर वटी), कर्पूरासव, अकंकपूर, अमृतबिन्दु, पंचगुण तैल।

विशेष—कर्पूर यों आसानी से चूर्ण नहीं होता। किन्तु इसके साथ थोड़ा-सा ऐल्कोहॉल (९५%), सालवेंट ईथर अथवा क्लोरोफॉर्म मिलाकर खरल में कूटने से आसानी से चूर्ण हो जाता है। कपूर के साथ बराबर मात्रा में क्लोरलहाइड्रेट मिलाकर घोंटने से यह द्रवीभूत हो जाता है। अथवा जब कपूर को मेंथल, थाइमल, फ़ेनोल, नेफ्थोल अथवा ब्युटलक्लोरल या सैलिसिलिक एसिड में से किसी के साथ सम्मिलित किया जाय तब भी दोनों द्रव्य मिल कर तरल हो जाते हैं।

कपूरकचरी

नाम। शटी, पलाशी। हिं०—कपूरकचरी। म०, गु०—कपूरकाचरी। बं०—कपूरकचरी। हेडीकिउम् स्पीकाटुम् (**Hedychium spicatum** *Ham. ex. Smith.*)।

वानस्पतिक कुल—आर्द्रक-कुल (*Scitaminaceae*)।

प्राप्तिस्थान-अनुष्ण हिमालयप्रदेश (विशेषतः कुमायूँ, नेपाल, भूटान आदि ५,००० फुट से ७००० फुट की ऊँचाई तक) तथा चीन। भारतवर्ष में इसका आयात चीन से सिंगापुर होकर होता है। 'देशीकपूरकचरी' में (ताजी होने से) सुगंधि अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। इसकी कन्दाकार जड़ों के गोल-गोल कतरानुमा टुकड़े बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—कपूरकचरी के सुन्दर क्षुप होते हैं। पत्तियाँ ३० सें० मी० या १ फुट तक लम्बी (या अधिक), रूपरेखा में आयताकार या आयताकार-भालाकार तथा चिकनी होती हैं। चौड़ाई में बहुत भिन्नता पायी जाती है। पुष्पव्यूह विदण्डिक (*spike*) होता है, जो कभी-कभी ३० सें० मी० या १२ इंच तक लम्बा होता है, जिसपर सघन सफेद पुष्प होते हैं। सहपत्र या कोण पुष्पक बड़े (१ से १॥ इंच × ॥। इंच) रूपरेखा में आयताकार, कुण्ठिताग्र तथा हरे रंग के होते हैं, जिनमें प्रत्येक के कोण में १-१ पुष्प होता है। केशरसूत्र हल्के लालरंग के होते हैं। फल (*capsule*) गोलाकार एवं चिकना होता है। मूल जमीन में अनुप्रस्थ दिशा में फैलता है और सुगंधित होता है। औषध्यर्थ इन्हीं का संग्रह किया जाता है।

उपयोगी अंग—कन्दाकार मूलस्तम्भ (*Root-stock*)।

मात्रा। चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजारों में मिलने वाली देशी कपूरकचरी के गोल-गोल कतरानुमा तिरछे (*sloping direction*) काटे हुए टुकड़े (*circular slices*) होते हैं, जो व्यास में १.२५ सें० मी० या ½ इंच तक होते हैं। वल्कल (*cortical portion*) का भाग एवं मध्यवस्तु (*central-portion*) स्पष्टतया पृथक्-पृथक् मालूम पड़ते हैं। वल्कल रक्तिमा लिये भूरेरंग का होता है, जिसपर अनेक चिह्न (*scars*) एवं मुद्रिकाकार रेखाएँ (*circular rings*) मालूम पड़ती हैं। अन्तर्वस्तु सफेद रंग का होता है। वल्कल में कहीं-कहीं सूत्राकार उपमूलों के अवशेष भी लगे होते हैं। कपूरकचरी में कर्पूर-जैसी उग्र सुगंधि होती है, तथा स्वाद में तिक्त, सुगंधित एवं तीक्ष्ण (*pungent*) होती है। चीनी कपूरकचरी के कतरे अपेक्षाकृत बड़े तथा अधिक सफेद होते हैं। त्वचा भी हल्के रंग की होती है और स्वाद में इनमें तीक्ष्णता भी भारतीय कपूरकचरी की अपेक्षा कम पायी जाती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—कभी-कभी कपूरकचरी की अन्य अमान्य प्रजातियों के मूल का संग्रह भी कपूरकचरी के ही नाम से किया जाता है :—(१) हेडीकिउम् कोरोनारिआ (**Hedychium coronaria** *Koen.*)—इसके पौधे १.२ मीटर से १.८ मीटर या ४ फुट से ६ फुट ऊँचे होते हैं। जमीन के भीतर दिगन्तसम फैला हुआ मूलस्तम्भ गांठदार अर्थात् अनेक गोल मांसल खण्डों की माला के सदृश होता है। पत्ती विनाल २२.५ सें० मी० से ३७.५ सें मी० या ९ इञ्च से १४ इञ्च लम्बी, पत्राग्र लंबा और पतला, पत्राधार संकुचित; पुष्प, श्वेत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और सुगंधित, मंजरी शूकी की तरह (*spikes*) १० सें० मी० से २० सें० मी० या ४ इञ्च से ८ इञ्च लम्बी और विदण्डिका होती है। फल आयताकार और चिकना, फलखण्ड भीतर की ओर पीताभ और बीजोपांग या एरिल (*aril*) सिन्दूरवर्ण का होता है। इसके मूल का भी संग्रह कपूरकचरी के नाम से किया जाता है, किन्तु यह असली कपूरकचरी नहीं है।

संग्रह एवं संरक्षण—कपूरकचरी को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। सूर्य-प्रकाश से इसे बचाना चाहिए।

संगठन—कपूरकचरी की जड़ में राल (रेजिन), सुगन्धित द्रव्य, एक स्थिर तैल, तथा स्टार्च, म्युसिलेज, ऐल्ब्यूमिन, सेलूलोज एवं शर्करा प्रभृति तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, दुर्गन्ध-नाशक, केश्य, वेदनास्थापन, रोचन, दीपन, शूलप्रशमन, ग्राही, उत्तेजक एवं रक्तशोधक, कास-श्वासहर, हिक्का-निग्रहण, ज्वरघ्न, त्वग्दोषहर। स्थानिक प्रयोग से शोथहर भी है।

मुख्य योग—शट्यादि चूर्ण, शट्यादि क्वाथ, हिमांशु तैल।

विशेष—सिर पर लगाने के लिए प्रयुक्त तैल योगों में सुगन्धि के लिए भी कपूरकचरी डाली जाती है। चरकोक्त (सू० अ० ४) हिक्कानिग्रहण एवं श्वासहर महाकषायों में ('शटो' नाम से) कपूरकचरी भी है।

कबर

नाम। हिं०—कबर, कब्र, बेर। पं० कबार, बेर। बम्ब०—कबर। अ०—कबर, कब्र। फा०—कबर। यू०—कॅपरिस (*Kapparis*)। अं०—दि एडिबल केपर या केपर प्लांट (*The Edible Caper or Caper Plant*)। ले०—काप्पारिस स्पीनोसा (**Capparis spinosa** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। वरुण-कुल (काप्पारिडासी *Capparidaceae*)।

प्राप्तिस्थान—यूरोप, अफ्रीका, एशिया (फ़ारस, बलूचिस्तान वजीरिस्तान), सिंध एवं झेलम के बीच के मैदान, पश्चिमी हिमालय की घाटियाँ, राजस्थान, कुमायूं नेपाल, सिंध, बम्बई प्रदेश, कोंकण, दक्कन आदि स्थानों में पथरीली भूमि पर कबर की झाड़ियाँ पायी जाती हैं। भारतवर्ष में इसका आयात (बम्बई होकर) मुख्यतः फ़ारस से होता है।

संक्षिप्त परिचय—कबर एक तरह का सफेद फूल का करीर है। इसकी भी करीर की तरह तीक्ष्ण कंटकाकीर्ण झाड़ियाँ होती हैं।

उपयोगी अङ्ग—मूल, फल, बीज एवं पुष्पकलिकाएँ।

मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कबर की जड़ की छाल के कई इञ्च लम्बे नालीदार टुकड़े होते हैं, जो काफी मोटे तथा अनुप्रस्थ दिशा में दरारयुक्त होते हैं। बाह्यतः छाल खाकस्तरी रंग की तथा अन्तस्तल पर सफेद होती हैं। स्वाद तीक्ष्ण (कटु) एवं तिक्त होता है।

संगठन—कबर की 'कलिकाओं' में एक ग्लूकोसाइड तथा केप्रिक्एसिड (*capric acid*) एवं रूटिन (*rutin*) और एक उड़नशील वामकतत्त्व, लहसुन की गंध का एक तत्त्व, तथा अल्पतः, सैपोनिन आदि घटक पाये जाते हैं। बीजों में (३४%-३६%) तक हल्के पीलेरंग का तैल तथा मूलत्वक् (जड़की छाल) में सेनेगीन के समान एक तिक्तसत्व, रूटिक एसिड (*Rutic acid*) मिलता है।

स्वभाव—यूनानी मतानुसार कबर दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष तथा अवरोधोद्घाटक, लेखन, श्वयथुविलयन, कफोत्सारि, कफछेदनीय, कृमिहर, वातानुलोमन एवं मूत्रल तथा आर्तवप्रवर्तक होता है। इसके फल दीपन, वातानुलोमन एवं सर होते हैं। करीर की भाँति कबर भी विशेषतः कफवातशामक होता है। पक्षाघात, आमवात, वातरक्त, गृध्रसी आदि रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। यकृप्लीहा के अवरोधोद्घाटन, उदरज कृमि को नष्ट करने और प्लीहाशोथ एवं कण्ठमाला आदि में फलों को सिरका में डाल कर तैयार होने पर खिलाते हैं तथा मूल एवं पत्र को पीस कर उस क्षेत्रपर लेप करते हैं। श्लेष्म-निस्सारक होने से श्वास-काम में भी उपयोगी है।

कबाबचीनी (कंकोल ?)

नाम। सं०—कंकोल (ल्ल)—(राजनिघण्टु), कङ्कोलक (मदनपाल निघण्टु)। हिं०—कबाबचीनी शीतलचीनी,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शीतलमिर्च। बम्बई—कबाबचीनी। म०—चणकबाब। बं०—काबाबचिनी। अ०—कबाबेसीनी, हब्बुल्उरूस। फा०—कबाबः, कबाबचीनी। द०—दुमकी मिर्चा, दुमदार मिर्च। अं०—क्युबेब्स (*Cubebs*), टेल्ड (दुमदार) पेपर (मिर्च)। ले०—कूबेबी फ्रुक्टुस (*Cubebae Fructus*)।

लता का नाम—पीपेर कूबेबा (**Piper cubeba** *L. f.*)।

वानस्पतिक कुल—पिप्पलीकुल पीपेरासी (*Piperaceae*)।

प्राप्तिस्थान—सुमात्रा, जावा, मलाया आदि टापू इसके आदि उत्पत्तिस्थान हैं। भारतवर्ष में भी कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत इसकी खेती की जाती है। बम्बई में सिंगापुर से कबाबचीनी आती है।

संक्षिप्त परिचय—कबाबचीनी की बहुवर्षायु आरोही लता होती है, जिसका काण्ड लचीला (नम्य), चिकना एवं पर्वों पर गांठदार-सा होता है। पत्तियाँ-अखण्डित, सवृन्त, आयताकार अथवा लट्वाकार-आयताकार, लम्बाग्र तथा आधार की ओर गोलाकार अथवा तिर्यक्-हृदयाकार (*obliquely cordate*) होती हैं। रचना में चर्मिल (*coriaceous*) किन्तु चिकनी तथा शिरा-विन्यास अत्यंत स्पष्ट होता है। स्त्री एवं नरपुष्प पृथक् पृथक् पौधों पर पाये जाते हैं, और मञ्जरियों में निकलते हैं। फल—मिर्च के समान गोलाकार अष्ठिफल (*globose drupe*) होता है, जिसके एक ओर डंठल-सी रचना होती हैं, जो वास्तव में फलभित्ति (*pericarp*) से ही बनी होती (*Thecaphore*) है। औषध्यर्थ फलों के पूर्ण प्रगल्भ होने पर पकने के पूर्व संग्रह किया जाता है।

उपयोगी अंग—(१) फल (कबाबचीनी) एवं फलों से प्राप्त (२) उत्पत् तैल (कबाबचीनी का तेल)।

मात्रा—(१) चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशे से ३ माशे तक। (२) तेल—५ बूंद से ३० बूंद तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—(१) कबाबचीनी के सुखाये हुऐ फल कालीमिर्च के बराबर तथा गोल और व्यास में लगभग ४ मि० मि० होते हैं। कभी-कभी आधार की ओर किंचित् धँसा हुआ (*depressed*) होता है। बाहर से यह फल गाढ़े भूरेरंग के होते हैं, जिस पर एक खाकस्तरी क्षोद (*greyish bloom*) सा मालूम होता है। फल भित्ति पर झुर्रियों का जाल-सा होता है, शीर्ष (*apex*) पर त्रिशीर्षीय कुक्षि या वर्तिकाग्र (*triradiate stigma*) एवं आधार पर लगभग ४ मि० मि० लम्बी डंठल-सी रचना होती है, जो वास्तव में फलभित्ति की ही बनी होती है। फल के अन्दर एक गुठली-सी होती है, जिसमें बीज होता है। औषधीय प्रयोग के लिए फलों का संग्रह पकने के पूर्व ही किया जाता है। अतएव बाजार में प्राप्त होने वाले फलों में प्रायः मुख्य भाग फलभित्ति का ही होता है। यदि उनमें पके फल भी मिले हों तो उनको पृथक् कर देना चाहिए। फलों को कुचलने से इसमें मसाले की तरह विशिष्ट मनोरम एवं तीक्ष्ण गंध आती है। यह मिर्च से मुलायम तथा खाने में कड़वे एवं चरपरे होते हैं। इनके खाने के पीछे जीभ बहुत ठंडी मालूम पड़ती है। कच्चे एवं सिकुड़े फल—अधिकतम १०%। काण्ड एवं पत्रवृन्तक (*rachis*)—अधिकतम ५%। अन्य विजातीय सेन्द्रिय द्रव्य—२%। भस्म—अधिकतम ८%। अम्ल में अविलेय भस्म—अधिकतम २%। उत्पत् तैल—कम-से-कम १५% (*V/W*)। कबाबचीनी के चूर्ण को गंधकाम्ल (८०% *V/V*) पर छिड़कने से प्रत्येक कण के चारों ओर एक बैंगनी गाढ़े लाल रंग का आवरण-सा प्रतीत होता है। कबाबचीनी का चूर्ण पीताभ-भूरे रंग से गाढ़े भूरे रंग का होता है। इसमें कम-से-कम १२% (*V/W*) उड़नशील तैल है। कबाबचीनी का तेल—यह उड़नशील तैल है, जो कबाबचीनी से आसवन (*steam distillation*) द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह रंगहीन, अथवा हल्का पीला अथवा नीलापन लिये होता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि पायी जाती है। स्वाद में कर्पूर की भाँति होता है। आपेक्षिक गुरुत्व—०.९१०—०.९३५।

ध्रुवणघूर्णन (*Optical rotation*)—२०° से ३५°।

अपवर्तनांक (*Refractive index*)—२०° पर १.४८०-१.५०२। विलेयता—जलविरहित ऐल्कोहल में सुविलेय तथा ऐल्कोहल (९०%) में १८ भाग में १ भाग विलेय।

संग्रह एवं संरक्षण—कबाबचीनी के फलों का संग्रह पूर्णतः प्रगल्भ हो जाने पर किन्तु पकने के पूर्व करना चाहिए। औषधीय दृष्टिकोण से पके एवं ज्यादे कच्चे दोनों प्रकार के फल निकृष्ट होते हैं। इनका संग्रह सुखाने के बाद अनार्द्र शीतल स्थान में तथा अच्छी तरह डाटबंद शीशियों या अन्य उपयुक्त पात्रों में करना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कबाबचीनी चूर्ण के संग्रह में उपर्युक्त सावधानी विशेष महत्व की है। क्योंकि, इस प्रकार न रखने से इसका सक्रिय अंश (उड़नशील तैल) उड़ जाता है।

संगठन—इसका प्रधान एवं सक्रिय घटक इसमें पाया जाने-वाला उड़नशील तेल होता है, जिसको कबाबचीनी का तेल (ओलेउम् कूबेबी *Oleum Cubebae*-ले०), ऑयल ऑफ क्युबेब्स (*Oil of Cubebs*) कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें रालीय पदार्थ (*Resins*), स्थिर तैल, स्टार्च, क्युबेबिक एसिड, कैल्सियम् ऑक्जलेट, फॉस्फेट एव मेलेट तथा मैगनीसियम् मैलेट भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—मूत्रल, मूत्र-मार्ग विशोधक, बाजीकर एवं आर्त्तवप्रवर्त्तक तथा ध्वज-भंगनाशक। अहितकर—वस्तिरोगों को। निवारक—सफेद चन्दन, अर्क गुलाब और मस्तगी। प्रतिनिधि—दालचीनी और छोटी इलायची।

मुख्य योग—लुबूब कबीर।

कमल

नाम। सं०—कमल, पद्म, (सूर्य विकाशी), अरविन्द। हिं०—कँवल, कमल, पुरइन। बं०—पद्म, कमल। म०, गु०—कमल। पं०—काँवल। ता०—तामरै। क०—पम्पोश। अं०—इजिप्शन या सेक्रेड लोटस (*Egyptian or Sacred Lotus*)। ले०—नेलुम्बो नूसीफ़ेरा **Nelumbo nucifera** *Goertn.* (पर्याय—*Nelumbium speciosum Wight.*)।

वानस्पतिक कुल। मखान्न-कुल (निम्फेआसी *Nymphoeaceae*)।

प्राप्तिस्थान—कमल भारतीय जलाशयों में उत्पन्न होता है, जिनमें बहुत दिनों से सफाई न करने के कारण कीचड़ अधिक होता है तथा जिनका पानी गर्मियों में भी नहीं सूखता, उनमें अधिक होता है। अमेरिका, कास्पियन सागर के तटस्थ प्रदेश, फारस, चीन तथा मिस्र देश में भी मिलता है।

परिचय—कमल की पेड़ी पानी में जड़ से पाँच या छः अंगुल से ऊपर नहीं आती। इसकी पत्तियाँ गोल-गोल, बड़ी थाली के आकार की तथा ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट व्यास की होती हैं, और बीच के पतले डंठल में जुड़ी रहती हैं। इन पत्तियों को 'पुरइन' कहते हैं। इनका अधः पृष्ठ जो पानी की तरफ होते हैं, बहुत नरम और हल्के रंग का वा ईषत् रक्त वर्ण का तथा सिरा कर्कश होता है, किन्तु ऊर्ध्व पृष्ठ अर्थात् पत्रोदर द्विदलवत् तथा गाढ़े हरे रंग का एवं मखमल की तरह कोमल और बहुत चिकना होता है। इस तरफ पानी की बूंदें नहीं ठहरतीं। कमल चैत-वैसाख से सावन-भादों तक फूलता है। बरसात के अन्त में बीज पकते हैं। कमल का फूल प्रातःकाल सूर्योदय से साथ खिलता है, सायंकाल सूर्यास्त के बाद बन्द हो जाता है। पुष्प सफेद या रक्त वर्ण, व्यास में साधारण-तया १० सें० मी० से २५ सें० मी० या ४ इंच से १० इंच, १.२१ मीटर से १.८२ मीटर या ४ फुट से ६ फुट लंबे पुष्पनाल पर जल से कुछ ऊपर धारण किये जाते हैं। बाह्यकोष या बाह्यदलपुञ्ज (*calyx*) में ४-५ गिर जाने वाले (*deciduous*) पुटपत्र (*sepals*) होते हैं। दलपुञ्ज (*corolla*) में दलपत्रों (*petals*) की संख्या भिन्न-भिन्न (सामान्यतः २०-३० तक) होती है। ये भी पतनशील होते हैं और कई पंक्तियों में विन्यस्त होते हैं। इनमें सबसे बाहर और सबसे भीतर की पंक्ति के दलपत्र मध्यवर्ती पंक्तियों के दलपत्रों की अपेक्षा छोटे होते हैं। दलपत्रों के बीच में केसर से घिरा हुआ छत्ता के आकार का पुष्पासन या कर्णिका (*receptacle or torus*) होती है, जिसमें ८ से ३० तक बीज निमज्जित रहते हैं। फल या तरकारी बेचने वालों के यहाँ कच्ची कर्णिका मिलती है, जिसमें से बीजों को निकाल कर लोग खाते हैं। कमल की जड़ मोटी और छिद्रयुक्त होती है और बिह (बिस) भसीड़, भिस्सा या मुरार कहलाती है। सूखे दिनों में पानी कम होने पर जड़ अधिक मोटी और बहुतायत से होती है। लोग इसकी तरकारी बनाकर खाते हैं।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग (पद्मिनी, कमलिनी), पुष्प एवं बीज (कमलगट्टा)। सुखाये हुए पुष्प एवं पक्व बीज (कँवलगट्टा) पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

मात्रा। (१) बीज चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२) केशर–०.६२ ग्राम से १ ग्राम या ५ रत्ती से १५ रत्ती।

(३) मूल (कन्द) स्वरस–१ तोला से २ तोला। चूर्ण–६ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–सुखाया हुआ कमलपुष्प भूरेरंग का होता है। बीज–गोल-गोल, लम्बोतरे होते हैं, और सुखाये हुए पके बीज काले हो जाते हैं। इनका छिलका (*testa*) कड़ा होता है। इसके भीतर एक सफेद रंग की महीन झिल्ली होती है। इसके अन्दर सफेद रंग की गिरी, स्वाद में किंचिन्मधुर होती है। बादाम की गिरी की भाँति यह भी दो फाँकों में विभक्त हो जाती है। कच्ची गिरी अत्यंत सुस्वादु होती है। मींगी के भीतर जीभ की तरह एक हरे रंग की पत्ती होती है। यह स्वाद में कड़वी होती है।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयोगी अंगों को वायु-धूलिरहित अनार्द्रशीतल स्थान में मुख बन्द पात्रों में रखें।

संगठन–कन्द (भौमिक काण्ड *rhizome*) एवं बीजों में राल (*resin*), ग्लूकोज, मेटार्बिन (*metarbin*), टैनिन वसा तथा न्युफरीन (*Nupharine*), नामक क्षारोद-सदृश एक क्षारोद।

वीर्यकालावधि। बीज–२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस–मधुर, कषाय, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–कफपित्तशामक, दाहप्रशमन, वर्ण्य, मेध्य, छर्दि एवं तृष्णानिग्रहण, स्तम्भन, हृद्य, शोणितास्थापन, प्रजास्थापन, मूत्र विरजनीय एवं मूत्र विरजनीय, त्वग्दोषहर, ज्वरघ्न, बल्य, विषघ्न।

मुख्य योग–अरविन्दासव, सफूफ मग्ज कमलगट्टा। कमलगट्टे का हलवा भी बनाया जाता है।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) मूत्रविरजनीय गण एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) उत्पलादि गण में कमल के विभिन्न भेदों का उल्लेख है।

कमीला या कबीला (कम्पिल्लक)

नाम। सं०–कम्पिल्ल, कम्पिल्लक गुण्डारोचना। हिं०–कबीला, कमीला, रोरी (मिर्जापुर), रैनी (देहरादून)। म०–कपिला। गु०–कपीलो। द०–कमलागुंडि। अ०–क़ंबील, क़िंबील। फा०–कंबीला। अं०–रॉट्लेरा (*Rottlera*), कमेला (*Kamela*)। ले०–कमाला (*Kamala*), ग्लांडुली रॉट्लेरी (*Glandulae Rottlerae*)। वृक्ष का नाम। सं०–कम्पिल्ल, कम्पिल्लक, रेची, रञ्जन, रक्तफल, लोहिताङ्ग। हिं०–कबीला, कमीला। अं०–दि मंकीफेस ट्री (*The Monkey-face tree*)। ले०–माल्लोटुस फ़िलीप्पेंसिस (**Mallotus philippensis** *Muell.–Arg.*)।

वानस्पतिक कुल। एरण्ड-कुल (एउफॉर्बिआसी (*Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान–एशिया तथा आस्ट्रेलिया के प्रायः सभी गरम प्रदेश। भारतवर्ष में यह हिमालय के किनारे कश्मीर से लेकर नेपाल तक होता है। उत्तर प्रदेश में गढ़वाल, कुमायूँ एवं नेपाल की तराई में इसके जंगल के जंगल पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बंगाल, पुरी, सिंहभूमि, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पंजाब (कांगड़ा), सिंध, बम्बई आदि में भी यह प्रचुरता से मिलता है। ब्रह्मा, सिंगापुर, अंडमान तथा लंका में भी कम्पिल्लक पाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय। कबीले के मध्यम कद (७.६ मीटर से ९.१ मीटर या २५ फुट से ३० फुट ऊँचे) के सदा-हरित वृक्ष होते हैं। किन्तु कोई-कोई वृक्ष १४.६ मीटर या ५० फुट तक ऊँचे भी पाये जाते हैं। कोमल शाखाएँ मुरचई रंग की (*rusty*) होती हैं। पत्तियाँ साधारण तथा एकान्तर क्रम से स्थित ७.५ सें० मी० से २२.५ सें० मी० या ३ इंच से ९ इंच तक लम्बी, रूपरेखा में लट्वाकार (*ovate*), लट्वाकार-आयताकार अथवा लट्वाकार-भालाकार, आकार-प्रकार में बहुत भिन्न, ऊर्ध्व तल चिकना किन्तु अधः पृष्ठ रक्ताभ तथा आधार पर तीन-शिराओं से युक्त, (*3-nerved*); पर्णवृन्त (*petiole*) फल की लम्बाई के आधे के बराबर तथा रक्ताभ-रोमश (*rusty-pubescent*) होता है। पुष्प मंजरियाँ प्रायः भूरे या लालरंग की, नरपुष्प एवं स्त्रीपुष्प पृथक्-पृथक् होते हैं। फल त्रिदल संपुटीफल (*tri-lobed capsule*), आकार में झरबेर के समान तथा गुच्छों में लगते हैं। कार्तिक से पूस तक फूल-फल आते हैं और उष्ण काल में पकते हैं। आरम्भ में ये हरे रंग के होते हैं; पर बाद को उन पर ललाई लिये चमकदार घनावृत रोम और सूक्ष्म लालरंग की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो देखने में लाल-लाल धूल-सी जमी हुई प्रतीत होती हैं। पक्व फल के गात्र पर जो यह रक्त वर्ण का क्षुद्र दानेदार पदार्थ संचित होता है, इसी लाल रज को 'कमीला' कहते हैं। बीज-गोल, चिकने और काले होते हैं।

उपयोगी अंग—पक्व फलों के ऊपर लगा हुआ लालरंग का रज।

मात्रा—१.५ ग्राम से ३ ग्राम या १॥ माशा से ३ माशा (बच्चों के लिए ६२५ मि० ग्रा० या ५ रत्ती)।

कृमिघ्न मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा) तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—शुद्ध कबीला लालिमा लिए भूरे रंग से लालरंग का सूक्ष्म दानेदार चूर्ण होता है, जो प्रायः निर्गन्ध तथा स्वादरहित होता है। उक्त कबीला चूर्ण में वास्तव में लालिमायुक्त भूरे रंग से पीत वर्ण की असंख्य सूक्ष्म रोमश ग्रंथियाँ (*glandular hairs*) होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थिरहित सूक्ष्म लोम (*non-glandular hairs*) भी होते हैं। कमीला शीतल जल में अविलेय, उबलते जल में अंशतः विलेय, किन्तु ऐल्कोहॉल तथा ईथर में पर्याप्त मात्रा में घुलनशील होता है। ऐल्कोहोलिक अथवा ईथेरियल विलयन को जल में डालने से तरबूज-जैसी गंध (*Melon-like odour*) निकलती है। जल से भींगी हुई उँगली से कबीले को उठाकर सफेद कागज पर जोर से लकीर खींचने या रगड़ने से यदि वह मसृण वर्तिरूप में परिणत हो जाय, अथवा उसपर उज्ज्वल पीले रंग का निशान हो जाय, तो शुद्ध एवं उत्कृष्ट अन्यथा मिश्रित या अशुद्ध कबीला समझना चाहिए। भस्म—अधिकतम ९%। अम्ल में अविलेय भस्म—(*Acid-insoluble Ash*) अधिकतम ६%। ईथर में विलेय अनुत्पत् (*Non-volatile*)। सत्व—कम-से-कम ६६%। (१००° तापक्रम पर तब तक गरम करें जब तक और अधिक देर तक गरम करने पर भार में कमी न हो)।

मिलावट एवं अपद्रव्य—कमीला में फलों के रज के अतिरिक्त फल के छिलके के सूक्ष्म कण भी मिले होते हैं। इसके अतिरिक्त लाल रंग की बलुई मिट्टी आदि अपद्रव्य भी मिले होते हैं। ऐसे कमीला को जल में घोलने से मिट्टी आदि नीचे बैठ जाता है, और इसमें भस्म की मात्रा भी अधिक होती है। कभी संग्रहकर्ता वृक्ष के अन्य भागों से प्राप्त रज को भी मिला देते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों को छलनी में आलोडित कर कबीला पृथक् प्राप्त किया जाता है। इसको अच्छी तरह डाटबन्द पात्र में रखना चाहिए।

संगठन—कमीला का अधिकांश भाग रालीय स्वरूप का एक रंजक तत्त्व (*Resinous colouring matter*) होता है। इसका प्रधान सत्व रॉटलेरिन (*Rottlerin*) होता है, जो ललाई लिये पीलेरंग के पतले पत्राकार क्रिस्टल्स के रूप में प्राप्त होता है। जल में यह बिल्कुल नहीं घुलता। ऐल्कोहॉल में भी अंशतः घुलता है; किन्तु क्षारीय द्रव्यों (*Alkalies*) के जलीय विलयन (*Aqueous solution*) में अच्छी तरह घुल जाता है, जिससे गाढ़े लालरंग का विलयन प्राप्त होता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

स्वभाव—गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—अधिक मात्रा में उदर-कृमिनाशक (*Anthelmintic*)। साधारण मात्राओं में रक्त एवं त्वचाविकार-नाशक।

मुख्य योग—कृमिघातिनी वटिका।

विशेष—कबीले के बीजों को लोग भ्रम से बिड़ंग मान लेते हैं। विडंग पृथक् एवं निश्चित द्रव्य है। यह एक दूसरे वृक्ष का मिर्च के सामान गोल-गोल फल होता है। चरकोक्त (सू० अ० २) विरेचन द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त श्यामादि गण तथा विरेचन द्रव्यों में 'कम्पिल्लक' भी है।

करजीरी (अरण्यजीरक)

नाम। सं०—अरण्यजीरक, वनजीरक। हिं०—कालीजीरी, करजीरी, बनजीरी। म०—कडूजिरें। द०, गु०, मा०, बम्ब०, कुमाऊँ—कालीजीरी। अ०—कमूनबर्री। फा०—ज़ीरए (सहराई), सियाहजीरा जंगली। अं०—पर्पल फ्लीबेन (*Purple Fleabane*), वर्नोनिया (*Vernonia*)। ले०—सेंट्राथेरम् आंथेल्मींटिकुम् (**Centratherum anthelminticum** (*Willd.*) *Kuntze*. (पर्याय—*Vernonia anthelminticum Willd.*)।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजिटी *Compositae*)।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में १.६६ किलो मीटर या ५,५०० फुट की ऊँचाई तक करजीरी के स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। गाँवों के आस-पास नम जगह में यह—अपने आप उगी हुई मिलती है। हिमालय प्रदेश, खसिया एवं लंका में भी इसके पौधे होते हैं। कहीं-कहीं इसकी खेती भी की जाती है।

संक्षिप्त परिचय—करजीरी के १.२ मीटर से १.८ मीटर या ४ फुट से ६ फुट ऊँचे एकवर्षायु पौधे होते हैं। काण्ड पर अनुलम्ब दिशा में रेखाएँ तथा कहीं-कहीं बैंगनी दाग भी होते हैं। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च चौड़ी, भालाकार (*lanceolate*) या भालाकार-लट्वाकार, लम्बेनोक वाली तथा आधार की ओर क्रमशः पतली होकर पत्रनाल में परिवर्तित, खुरदरी एवं तीक्ष्ण दन्तुर होती हैं। पुष्पस्तबक या मुण्डक (*heads*) १.२५ सें० मी० से १.८ सें० मी० या ½ इंच से ¾ इंच व्यास के तथा अनेक नीललोहित पुष्पों को धारण करते हैं। पुष्पाधःपत्रावलि के पत्रक या निचक्रपत्रक (*involucral bracts*) प्रायः रंगीन होते हैं। पुष्पागम प्रायः जाड़े के दिनों में होता है। फल (ऐकीन *achenes*) प्रायः ⅛ सें० मी० लम्बे होते हैं। बाजारों में यही फल करजीरी के नाम से मिलते हैं। रोमकण्टक (*pappus*) गुलाबी रंग का होता है।

उपयोगी अंग — ताजे एवं सुखाये हुए रोमयुक्त (*with the glandular hairs intact*) फल (बीज)।

मात्रा — (१) कृमिघ्न—६ ग्राम या ६ माशा (युवक को) तथा बच्चों को ०.६२ ग्राम से १.२५ ग्राम या ५ रत्ती से १० रत्ती।

(२) वातानुलोमन—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा (३ माशा तक)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा — करजीरी के बीज (फल) ⅛ सें० मी० या ⅛ इञ्च लम्बे रूपरेखा में बेलनाकार किन्तु आधार की ओर क्रमशः कम मोटे और गाढ़े भूरे रंग के होते हैं। इस पर अनुलम्ब दिशा (लम्बाई के रुख) में १० उन्नत काली रेखाएँ पायी जाती हैं। बाह्य पृष्ठ पर इतस्ततः श्वेताभ लोम भी पाये जाते हैं। शीर्ष पर सूक्ष्म एवं भूरे रंग के शल्कपत्र (*scales*) होते हैं। स्वाद में यह अत्यंत तिक्त एवं हृल्लासजनक (*nauseous*) होते हैं। इसकी गंध तीक्ष्ण होती है। अन्य सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं।

प्रमापीकरण — ऐल्कोहल, क्लोरोफॉर्म एवं पेट्रोलियम् द्वारा प्राप्त तिक्त सत्व का प्रमापन किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व बीजों को सुखा कर अनार्द्र स्थान में बन्द पात्रों में रखना चाहिए। चूर्ण का संरक्षण विशेषतः अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में करना चाहिए, ताकि आर्द्रता पात्र में न पहुँच सकें।

संगठन — (१) स्थिर तेल—१८%;

(२) उड़नशील तेल—०.०२%;

(३) पीले रंग का तिक्त सत्व—१%;

(४) टैनिन, रेजिन, फ्लोबाफीन आदि।

वीर्यकालावधि — २ वर्ष।

स्वभाव — गुण—लघु, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—कटु पौष्टिक, ज्वरघ्न, वातानुलोमन एवं कृमिघ्न आदि। बाह्यतः इसका लेप शोथविलयन होता है।

मुख्य योग — वातानुलोमन चूर्ण।

वक्तव्य—(१) 'करजीरी' का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में नहीं मिलता। इसका प्रथमोल्लेख धन्वन्तरि निघण्टु (शतपुष्पादि वर्ग २) तथा तदनु राजनिघण्टु (पिपाल्यादि वर्ग ६) में 'बृहत्पाली', 'वन्यजीरः', 'वनजीरः', 'अरण्यजीरः' आदि पर्यायों से किया गया है। इसके फल (*achenes*) जिनको व्यवहार में बीज कहते हैं, आपातत; देखने में 'जीरा' की तरह होते हैं, सम्भवतः इसी कारण इसके अभिधान में जीरा का प्रयोग किया गया है, और धन्वन्तरि निघण्टु में इसका उल्लेख भी 'जीरकविशेष' करके जीरक भेदों के प्रसंग में किया गया है। किन्तु ध्यान रहे कि अन्य जीरा भेद 'कटु-वर्ग (मसाला वर्ग)' के हैं, जब कि 'करजीरी' स्वाद में अत्यंत तिक्त होती है, और मसाले के रूप में इसके उपयोग की कोई संभावना नहीं है। तिक्त स्वाद के कारण ही इसको व्यवहार में करजीरी (< कड़वी-जीरी < कटुजीरी) कहने लगे। शास्त्रों में उल्लेख न होने पर भी लगता है घरेलू चिकित्सा में करजीरी पहले से लोकव्यवहृत रही है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेखक तथा उनके सहयोगियों द्वारा किये गये शोधकार्यों तथा रोगीपरीक्षण में करजीरी एक उत्तम कृमिघ्न औषधि सिद्ध हुई है। इसकी कृमिघ्न क्रिया सामूहिक रूप से केंचुआ (*round-worm*) अंकुशमुख-कृमि (*hook-worm*) तथा जिआर्डिया पर देखी गयी। एतदर्थ बीजों का चूर्ण या घनसत्त्व देना चाहिये। कृमिघ्न क्रिया के साथ-साथ यह औषधि उदरकृमि रोग के सभी लक्षणों एवं उपद्रवों का भी शमन करती है। मृदुसारक होने से आधुनिक कृमिघ्न औषधियों की भाँति अलग से रेचन औषधि देने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी।

(२) उदराध्मान (*tympanitis*) एवं वातगुल्म में करजीरी का उपयोग वातानुलोमन औषधि के रूप में श्रेयष्कर एवं सफल होता है। एतदर्थ सोंठ के साथ इसका चूर्ण बनाकर गर्म जल से मौखिक सेवन करना चाहिए। करजीरी का अष्टमांश सोंठ मिलाना चाहिए। इसमें थोड़ा कालानमक भी मिलाया जासकता है।

—लेखक

अरणी—दे०, 'अग्निमन्थ'।

करञ्ज (डिठोरी)

नाम। सं०—करञ्ज, नक्तमाल, गुच्छपुष्पक, घृतपूर, स्निग्ध-पत्र। हिं०—करंज, डि (दि) ठो (ह) री—(उत्तरप्रदेश), करुइनी, किरमाल। बं०—डहरकरञ्ज। संथाल—कुरंजी। अं०—इण्डियन बीच (*Indian Beech*)। ले०—पोंगेमिआ पीन्नाटा **Pongamia pinnata** (*L.*) *Pierre.* (पर्याय—*P.glabra Vent.*)।

वानस्पतिक कुल — शिम्बी-कुल : प्रजापति-उपकुल *Leguminosea* : *Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान — प्रायः समस्त भारतवर्ष, विशेषतः समुद्र-तटीय प्रान्त। मध्य एवं पूर्वीय हिमालय से लेकर लंका पर्यन्त पाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय — करञ्ज के बड़े-बड़े तथा बहुशाखी, छाया-वृक्ष १५.२ मीटर से १८·२ मीटर (५० फुट से ६० फुट) ऊँचे होते हैं। इसीलिए कहीं-कहीं सड़कों पर भी इसके लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। काण्डस्कन्ध अपेक्षाकृत छोटा और मोटाई का व्यास १.५ मीटर से २.४ मीटर (५ फुट से ८ फुट) तक होता है। छाल चिकनी तथा स्थान-स्थान पर विचित्र चिह्नांकित होती है। नदियों के किनारे अथवा जलाशयों के आस-पास इसके वृक्ष अधिक सुखकर मानते हैं। पत्र, सपत्रक; पत्रक रूपरेखा में पाकर के पत्तों की भाँति होते हैं, किन्तु तैलाक्तवत् चिकने और गाढ़े हरे रंग के, स्वाद में कड़वे होते हैं। चैत्र में पतझड़ होता है। कुछ दिनों के बाद नवीन पत्रागम होता है। पुष्प बैंगनी रंग के (प्रजापति उपकुल के विशिष्ट लक्षण के अनुसार) तथा गुच्छों में निकलते हैं, जो देखने में बहुत आकर्षक मालूम होते हैं। आगामी चैत्र में फलियाँ लगती हैं; जो ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) लम्बी, २.५ सें० मी० (१ इञ्च) चौड़ी तथा ⅝ सें० मी० से ¾ सें०मी० (¼ इञ्च से ⅓ इञ्च) तक मोटी और अग्रपर किंचित् वक्र होती हैं। प्रत्येक शिम्बी में प्रायः एक बीज होता है, जो चिपटा और रूपरेखा में बड़ी मटर की भाँति होता है। इसके ऊपर का छिलका पतला, चिकना, हल्के लाल रंग का तथा रेखांकित होता है। बीज की गिरी स्नेहपूर्ण और तीती होती है। बीज का तेल चिकित्सा में तथा जलाने के काम आता है।

उपयोगी अंग — पत्र, बीज, पुष्प, त्वक् एवं बीजों से प्राप्त तेल (*Pongamia Oil*)।

मात्रा। त्वक् एवं पत्रस्वरस—१ तोला से २ तोला।
पुष्पस्वरस—६ माशा से १ तोला।
बीजचूर्ण — १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धा परीक्षा। पत्र—पत्तियाँ सपत्रक, १५ सें० मी० से ४५ सें० मी० (६ इञ्च से १८ इञ्च) लम्बी; पत्रक अभिमुख क्रम से स्थित, २—३ जोड़े तथा एक अग्रपर आकार में अंडाकार, तीक्ष्णाग्र तथा चिकने एवं चमकदार कुछ-कुछ चर्मिल (*subcoriaceous*) ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इञ्च से ४ इञ्च) लम्बे एवं स्वाद में तिक्त होते हैं। बीज—चपटे, सेम के बीज के समान, बीजचोल (*testa*) पतला, चिकना एवं रेखांकित एवं हल्के लाल रंग का। बीजदल (*cotyledons*) स्नेह-पूर्ण एवं तिक्त होते हैं। त्वक् (छाल)—बाहर से खाकस्तरी रंग की, जो आसानी से पृथक् हो जाती है। बाहरी छाल उतरने पर अन्दर की छाल हरे रंग की तथा अनुप्रस्थ दिशा में सफेद रेखाओं से अंकित। वैसे छाल चिमड़ी होती है,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु तोड़ने पर खटसे टूटती है। इसमें एक विशिष्ट गंध पायी जाती है और स्वाद में तिक्त एवं कुछ-कुछ सुगन्धित तथा कड़वी होती है। तैल–करंज के बीजों में काफी मात्रा में एक स्थिर तेल (*fixed oil*) पाया जाता है। ताजे बीजों से प्राप्त तेल गाढ़ा, हल्के भूरे रंग का तथा स्वाद में तिक्त होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व १८० सेंटीग्रेड पर ०.९३५८ होता है। ताजे तेल को रखने पर धीरे-धीरे घी के समान घन भाग तलस्थित हो जाता है। करञ्ज तैल में गंधकाम्ल (*Sulphuric Acid*) मिलाने से यह पीले रंग का हो जाता है, जिसपर नारंग वर्ण की धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। इस मिश्रण को हिलाने पर यह नारंगवर्ण का हो जाता है, किन्तु इसको रखदेने पर यह पुनः पीले रंग का हो जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण–पत्तियों का प्रयोग ताजी अवस्था में करना चाहिए। शेष उपयोगी अंगों को अच्छी तरह बन्द पात्रों में अनार्द्र एवं शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–बीजों में २७% तक पीलेरंग का गाढ़ा तेल प्राप्त होता है, जिसे करञ्ज तैल (*Pongamia Oil*) कहते हैं। ८° सेंटीग्रेड पर यह घन हो जाता है। छाल में एक तिक्त क्षारोद (*bitter alkaloid*) पाया जाता है, जो ईथर, ऐल्कोहल एवं जल में विलेय होता है।

वीर्यकालावधि–छाल–१ वर्ष तक। तैल–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण। रस–तिक्त, कटु, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–वातकफनाशक, रक्त शोधक, व्रण शोधक एवं रोपण, शोथनाशक, कासहर।

मुख्य योग–करञ्जादि चूर्ण, करञ्जाद्यघृत, करञ्जादि तैल एवं हब्ब करञ्जवा आदि।

विशेष–चरकोक्त विरेचन द्रव्य (सू० अ० २), कण्डूघ्न, महाकषाय (सू० अ० ४), कटु एवं तिक्तस्कन्ध के द्रव्यों में (वि० अ० ८) तथा सुश्रुतोक्त, आरग्वधादि गण, वरुणादिगण, अर्कादिगण, श्यामादिगण, एवं शिरोविरेचन तथा श्लेष्मसंशमन वर्ग में करञ्ज भी है।

करफ्स (बड़ी अजमूद)

नाम। हिं०–अजमोद ?। अ०, भारतीय बाजार–करफ्स, करफस। बम्बई–बड़ी अजमूद। अ०–करफ्स, बञ्जल् करफ्स। गु०–बोडिअजमो। अं०–सेलरी (*Celery*), सेलरी फ्रूट (*Celery Fruit*), सेलरी सीड (*Celery Seed*)। ले०–(१) आपिउम्, आपी-फ्रुक्टुस (*Apii Fructus*)। पौधे का नाम–आपिउम् ग्राविओलेन्स (**Apium graveolens** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल—गर्जरादि-कुल (उम्बेलिफ़ेरी *Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान–उत्तर-पश्चिम हिमालयांचल (*foot of the N. W. Himalayas*), पंजाब या उत्तरप्रदेश की बाह्य हिमालय पर्वतश्रेणियाँ (*outlying hills of the Punjab and U.P.*)। विदेशों में फारस (ईरान), यूरोप एवं अमेरिका में इसकी प्रचुर मात्रा में खेती भी की जाती है। फारस में यह काफी परिमाण में स्वयंजात भी होती है। भारतीय बाजारों में इसका आयात मुख्यतः फारस से होता है।

संक्षिप्त परिचय–करफ्स अजमोदे की जाति का ही एक विदेशी भेद है, जिसके एकवर्षायु या द्विवर्षायु छोटे-छोटे ३० सें० मी० से १.५२४ मी०–१.८० मी० या १ फुट से ५-६ फुट तक ऊँचे एवं सीधे पौधे (*annual or biennial herb*) होते हैं। पत्तियाँ अजमोदा की पत्तियों से मिलती-जुलती हैं। पुष्प छोटे, सफेद रंग के तथा ५–१० वृन्तकछत्रक (*umbel rays 5-10*) लगते हैं, जिनके कपने पर छोटे-छोटे फउ प्राप्त होते हैं। औषधि में 'करफ्सबीज' या 'बड़ीअजमूद' के नाम से इन्हीं का व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग–(१) सुखाये हुए पक्व फल (तुख्म करफ़्स) तथा जड़ (बेख़ करफ्स)।

मात्रा। फल (बीज)–३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा। जड़–५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–करफ्स के युग्मवेश्म फल (क्रीमो-कार्प *cremocarps*), जो फारस से आते हैं, अजमोदे के फलों (बीजों) की अपेक्षा बहुत छोटे (लगभग आधे), रूपरेखा में गोलाकार तथा चपटे, देखने में अनीसून (*Anise*) की भाँति लगते हैं। इसमें ११–१२ तैल-नलिकाएँ या तैलिकाएँ (*vittae*) होती हैं, जिनमें दो प्रायः संधितल (*commissural surface*) में होती हैं। मुख में चाबने पर पहले अनीसून की भाँति बाद में कड़वा होता है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की सुगंध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पायी जाती है, जो अनीसून से मिलती-जुलती, किन्तु उसकी अपेक्षा मन्द होती है। जड़ काली होती है, और उसमें बारीक तन्तु लगे होते हैं।

विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य— अधिकतम १%।

अन्य बीज एवं फलों की मिलावट— अधिकतम ४%।

भस्म— अधिकतम १०%।

अम्ल में अघुलनशील भस्म— अधिकम २%।

उत्पत् तैल— कम-से-कम १½%V/W)।

संग्रह एवं संरक्षण—इसको अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में शुष्क एवं शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—फलों में पीताभवर्ण का एक उड़नशील तैल (१½%से ३% तक) पाया जाता है। करफ्स की विशिष्ट सुगंधि इसी के कारण होती है। इसके अतिरिक्त १७% तक एक स्थिर तैल (*fatty oil*) तथा अल्प मात्रा में पहाड़ी करफ्स में पाया जाने वाला ऐपिओल (*Apiol*) नामक एक प्रकार का कर्पूर भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—जड़ में ३ वर्ष तक तथा फलों (बीजों) में २ वर्ष तक वीर्य रहता है।

स्वभाव। उष्ण एवं रुक्ष। क्षुधाजनन, वातानुलोमन, अश्मरीनाशन, मूत्रल, आर्तवजन एवं वात-कफ नाशक। करफ्स को कास, कफज्वर, पार्श्वशूल, गृध्रसी, वातरक्त, पृष्ठशूल और प्रायः कफज रोगों में प्रयुक्त करते हैं। यकृदवरोधोद्घाटन, क्षुधाजनन और वातविलयन के लिए इसका उपयोग करते हैं। जलोदर में तथा मूत्र एवं आर्तव के अवरोधों को दूर करने और वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी के उत्सर्ग के लिए भी इसका उपयोग करते हैं। यह समस्त कफज एवं शीतजन्य व्याधियों में गुणकारी है।

अहितकर—सगर्भा स्त्री, उष्ण प्रकृति एवं मृगी के रोगियों के लिए। **निवारण**—अनीसून एवं मस्तगी।

करीर (करील)

नाम। सं०—करीर, क्रकर, अपत्र, मरुरुह। हिं०—करील; (ब्रज)—टेंट, टेंटो। पं०—करीं। सिंध—किरिड। कच्छ—डवरा। मा०—कैर, झांसडो। म०—नेबतो। गु०—केर, केरडां। ले०—काप्पारिस डेसीडुआ (**Capparis decidua**) (*Forsk.*) & *Edgew.* (पर्याय *C. aphylla Roth.*)।

वानस्पतिक कुल। वरुण-कुल (काप्पारिडासी *Capparidaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के उष्ण एवं शुष्क प्रदेशों में विशेषतः पंजाब, राजस्थान, कच्छ, गुजरात एवं गंगा के उत्तरी मैदान (*Upper Gangetic Plain*) एवं दकन; मध्यभारत तथा तिन्नेवली आदि में करीर की झाड़ियाँ प्रचुरता से पायी जाती हैं। बलूचिस्तान सिन्ध एवं उत्तर-पश्चिम पाकिस्तान में भी करीर पाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय—करीर के चिकने एवं हरित वर्ण के सघन शाख-प्रशाख युक्त कंटीले गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं। शाखाएँ कभी-कभी कोमल क्षोद-लिप्त (*waxy bloom*) होती हैं। इसमें प्रायः पत्र नहीं होते अथवा कभी कोमल नवीन शाखाओं पर छोटे-छोटे (½ इंच से भी छोटे तथा नुकीले अग्रयुक्त) पत्र पाये जाते हैं, जो बाद में गिर जाते हैं। फाल्गुन-चैत में गुलाबी (कभी-कभी पीले) रंग के फूल लगते हैं, जो २० मि० मी० या ¾ इंच चौड़े होते हैं और समशिख सचूड़ क्रम से शाखाओं के पार्श्व में निकलते हैं। गर्मियों में फल (*berry*) लगते हैं, जो गोलाकार, व्यास में १.२५ सें० मी० से १.८६५ सें० मी० या ½ इंच से ¾ इंच होते तथा पकने पर लाल या गुलाबी रंग के हो जाते हैं। पुष्प कलिकाओं एवं कच्चे फलों का शाक तथा अचार बनाया जाता है। फल एवं मूल का व्यवहार औषध्यर्थ किया जाता है। कच्चे फल कसैले तथा तिक्त किन्तु पक्वफल मधुर, एवं मूल तथा मूलत्वक् तीक्ष्ण एवं तिक्त होते हैं।

उपयोगी अंग—मूल (विशेषतः मूलत्वक्) एवं फल।

मात्रा—चूर्ण—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण—वसन्त ऋतु में मूल का संग्रह कर मुख बंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

संगठन—मूलत्वक् में एक तिक्त सत्व (*a neutral bitter principle*) पाया जाता है, जो सेनेगा में पाये जाने वाले सेनेगिन नामक तत्त्व की भाँति होता है। कलिका (एवं कच्चे फलों) में केप्रिक एसिड (*Capric acid*) एवं ग्लूकोसाइड (मधुमेय सत्व) पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, कटु (पक्व फल मधुर रस युक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कफवातशामक, रोचन, पाचन, कटु पौष्टिक, भेदन, अर्शोघ्न, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, शोथहर, श्वासहर, स्वेदजनन विषघ्न। कोमल शाखाओं एवं पत्तियों का स्वरस स्थानिक प्रयोग से व्रणशोधन, शोथपाचन, दंत-शूलहर एवं विस्फोटजनक (फफोले पैदा करने वाला) होता है। मूलत्वक् पर्यायज्वरहर होता है तथा आम-वात, संधिवात, श्वास, हृद्दौर्बल्य एवं चर्मरोगों में उपयोगी होता है।

करेरुआ (व्याघ्रनखी)

नाम। सं०—व्याघ्रनखी। हिं०—बघनई, करेरुआ, हिंसा, कालहिंस—(देहरादून)। ले०—काप्परिस होर्रिडा **Capparis horrida** *Linn. f.* (पर्याय—*C. zeylanica Linn.*)।

वानस्पतिक कुल—वरुण-कुल काप्परिडासी (*Capparidaceae*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष में करेरुआ की स्वयंजात आरोहीलता होती है। स्थानिक चिकित्सक इसके मूल का व्यवहार शोथघ्न क्रिया के लिए करते हैं। बाजारों में विक्रयार्थ प्रायः इसका संग्रह नहीं किया जाता।

संक्षिप्त परिचय—करेरुआ की दृढ़, स्थूलपाद और तीक्ष्ण काँटों से युक्त लम्बी आरोही लता होती है, जिसके नवीन भाग रक्ताभ मृदुरोमावरण से ढँके होते हैं। इसकी शाखाएँ अंकुशभूत काँटों के द्वारा आश्रय को पकड़ कर बढ़ती हैं। पत्तियाँ ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इंच से ४ इञ्च) तक लम्बी एवं ६.२५ सें० मी० या २॥ इंच तक चौड़ी, रूपरेखा में आयताकार या (प्रायः) लट्वाकार एवं अग्रपर लोमयुक्त (*mucronate*) होती हैं। पत्राधार के पार्श्व में दो-दो मजबूत काँटे होते हैं। पुष्प व्यास में ३७.५ सें० मी० से सें० मी० या १॥—२ इञ्च तथा सफेद या गुलाबी रंग के होते हैं। पुंकेशर अनेक और नीलारुण वर्ण के होते हैं। फल लम्बा-गोल व्यास में ३.७५ सें० मी० या १॥ इंच और पकने पर लालरंग के हो जाते हैं। पुष्पागम फरवरी-मार्च तथा फलागम अगस्त-सितम्बर में होता है। गाँवों में ऐसी परम्परा है कि ज्येष्ठ में इसके कच्चे फल को खाने से व्यक्ति वर्षभर सर्पदष्ट से सुरक्षित समझा जाता है। प्रतिक्षोभक (*counter-irritant*) एवं विस्फोटजनक होने के कारण इसके मूलकल्क का व्यवहार चिकित्सा में शोथघ्न के रूप में किया जाता है।

उपयोगी अंग—मूल (विशेषतः मूलत्वक्)।

मात्रा—(बाह्य प्रयोग के लिए)—आवश्यकतानुसार (३ तोला से २ तोला या अधिक)।

स्वभाव। करेरुआ की जड़ बाह्यतः (प्रलेप रूप से) स्थानिक प्रयोग से प्रतिक्षोभक (*counter-irritant*), दाहक एवं विस्फोटजनक (*vesicant*) होती है। अतएव इसका प्रयोग व्रणशोथ एवं अन्य आन्तरिक शोथों के विलयन के लिए किया जाता है। इसके अन्य उपयोग हिंसा-मूलवत् समझना चाहिए।

विशेष—कहीं-कहीं चिकित्सक करेरुआ के मूलकल्क का उपयोग प्लीहावृद्धि (प्लीहोदर) में बाह्य रूप से करते हैं। एतदर्थ करेरुआ की जड़ तथा ४—६ दाने काली मिर्च को जल के साथ कल्क बनाया जाता है। एक सकोरे में बिनौले भर कर उस पर उक्त कल्क का प्रलेप कर दिया जाता है। अब इसे प्लीहा क्षेत्र पर बाँधा कर कपड़े से बाँध दिया जाता है। इस प्रकार लगभग ३ घण्टे से ४ घण्टे तक बँधा रखते हैं। थोड़ी देर बाद रोगी को उस क्षेत्र में जलन मालूम होती है, जो उत्तरोत्तर बढ़ती तथा बाद में क्रमशः कम होने लगती है। जब जलन बन्द हो जाय सकोरे को छोड़ कर पृथक् कर दें। उक्त चिकित्सा में जिस दिन दवा बाँधनी हो उसके पूर्व रात्रि को भरपेट घी की पूड़ी खिलायी जाती है और दूसरे दिन प्रातःकाल दवा बाँधी जाती है। (लेखक)।

करेला (कारवेल्लक)

नाम। सं०—कारवेल्लक, कारवल्ली। हिं०—करेला, करैला। म०—कारलें। गु०—कारेलां। बं०—उच्छे। ते०—काकर। ता०—पाकै, पाकल्। मल०—पेरुं पावल्। ले०—मोमोर्डिका कारांटिआ (**Momordica charantia** *Linn.*)। लेटिन नाम करेला की लता का है।

वानस्पतिक कुल। कूष्माण्ड-कुल (कूकुरबिटासी (*Cucurbitaceae*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में करैले की खेती की जाती है। इसकी दो फसलें होती हैं, एक बरसाती, दूसरी वैशाखी, जो फाल्गुन में बोयी जाती है। फसल के समय करेले का फल शाक की दूकानों पर बिकता है। इसके अतिरिक्त करेला जंगली भी होता है, जो उद्यानज की अपेक्षा छोटा और अत्यंत तिक्त होता है। औषधीय प्रयोग के लिए यह प्रायः अधिक उपयुक्त होता है।

संक्षिप्त परिचय—करेला एक प्रसिद्ध फलशाक है। इसकी सुदीर्घ आरोही या भूमि पर फैलने वाली लताएँ होती हैं। करेला २ प्रकार का होता है—(१) बरसाती—जो वर्षा का पानी पड़ते ही बोया जाता है। इसकी सुदीर्घ लताएँ होती हैं, जो झाड़ पर चढ़ती हैं, और सालों फूलती-फलती रहती हैं। (२) वैशाखी—यह फाल्गुन में क्यारियों में बोया जाता है और जमीन पर फैलता है तथा ३-४ महीने तक रहता है। इसका फल कुछ पोला होता है, किन्तु बरसाती करेला अपेक्षाकृत पतला और ठोस होता है। आकृति भेद से भी यह दो प्रकार का होता है—(१) बड़ा करेला या करेला (कारवेल्लकी); तथा (२) छोटा करेला या करेली (कारवेल्ली)। बड़े का फल अपेक्षाकृत लम्बा, बीच में स्थूल एवं दोनों सिरों की ओर क्रमशः कम चौड़ा तथा करेली का फल छोटा एवं अंडाकार होता है। करेली की बेल भी करेले की भाँति सुदीर्घ नहीं होती। यह स्तम्भकारिणी एवं भूलुण्ठिता होती है। करेला प्रायः हरे रंग का होता है। किन्तु रंग रूप और आकृतिभेद से यह अनेक प्रकार का होता है। कहीं-कहीं सफेद करेला भी होता है। मालवा और राजस्थान में सफेद करेला हाथभर तक लम्बा मिलता है। इसका छिलका पतला होता है। जंगलों में करेले की स्वयंजात लताएँ पायी जाती हैं। इसे 'करेली' या 'बनकरैला' कहते हैं। इसके फल छोटे और बहुत तीते होते हैं। इसमें बीज अधिक होते हैं तथा छिलका उद्यानज करेली की भाँति मांसल नहीं होता। इसकी लता भी अपेक्षाकृत सुदीर्घतर एवं अधिक तीती तथा तीक्ष्ण होती है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग (विशेषतः पत्र एवं फल)।

मात्रा। स्वरस १ तोला से ३ तोला (वमनार्थ १० तोला तक)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—करेली की एक वर्षायु लता होती है, जिसका तना लम्बा (सुदीर्घ), अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त तथा कोणाकार होता है, जिसके पार्श्व खातोदर (*angled and grooved*) होते हैं। शाखाओं के कोमल भाग तूलरोमावृत्त (*villous*) होते तथा शाखाओं का रूपान्तर सूत्रों (*tendrils*) में होता है। पत्तियाँ करतलाकार, ५ नुकीले खण्डों से युक्त, पत्रतट लहरदार तथा दंताकारकटावयुक्त (*toothed*) होते हैं, अधःपृष्ठ पर पत्र मृदुरोमावृत (विशेषतः शिराओं पर) होते हैं। पुष्प एकलिंगी अर्थात् पुंपुष्प तथा स्त्री पुष्प पृथक्-पृथक् होते हैं, किन्तु एक ही लता पर दोनों प्रकार के पुष्प (*monoecious*) पाये जाते हैं। पुष्प नारंगपीत वर्ण के होते हैं। पुंपुष्प प्रायः एकल (*solitary*) होते हैं, जो ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इंच से ४ इंच) लम्बे वृन्त पर धारण किये जाते हैं, जिसके मध्य पर एक वृक्काकार या गोलाकार सहपत्र (*bract*) होता है। उक्त कोणपुष्पक स्त्रीपुष्पों के वृन्त के आधार के पास स्थित होता है। फल ५ सें० मी० से १५ सें० मी० (२ इंच से ६ इंच) लम्बा (या इससे भी छोटा-बड़ा) मध्य में अधिक चौड़ा, किन्तु दोनों सिरों की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़ा (*fusiform*) होकर नुकीला या चोंचदार (*pointed or beaked*) होता है। फल पर एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर जाती हुई अनेक उन्नत रेखाएँ (*ribbeb*) होती हैं, जिनके अन्तमर्ध्य के तल पर अनेक छोट-बड़े त्रिकोणाकार उभाड़ (*triangular tubercles*) होते हैं, जिससे आपाततः देखने में मगर के चमड़े के उभाड़ों की भाँति मालूम होता है। बीज $\frac{५}{६}$ सें० मी० से $\frac{५}{३}$ सें० मी० ($\frac{१}{२}$ इंच से $\frac{१}{२}$ इंच) लम्बे, एवं चपटे होते हैं, जिनके किनारे कटावदार (*corrugate*) होते हैं, और पके फलों में लाल गूदे (*red aril*) से आवृत होते हैं। बीज के दोनों तल विभिन्न प्रकार के चित्रित रेखांकित होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—साल के अधिकांश महीनों में इसकी हरी लताएँ उपलब्ध होती हैं।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त। विपाक—कटु वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—रोचन, दीपन—पाचन, पित्तसारक, भेदन, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, आर्तवजनन, चक्षुष्य, व्रणशोधन—रोपण, कुष्ठघ्न, मूत्रल। यूनानी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मतानुसार तीसरे दर्जे में उष्ण एवं रुक्ष है। अहितकर—रूक्षताकारक। निवारण—काली मिर्च, पीपल। करैले के अतियोग से उत्पन्न उपद्रव में चावल और घी भी खिलाते हैं।

विशेष—चरकोक्त (वि० अ० ८)) तिक्तस्कन्ध के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ४६) शाकवर्ग में कारवेल्लक भी है।

वक्तव्य—करेला का रस मधुमेहियों में शर्करा को कम करता है। अतः अनुपान के रूप में तथा पथ्य के रूप में करेला मधुमेह के रोगियों के लिए उत्तम है। मधुमेहहर रसयोगों में करेला के रस की भावना भी श्रेयष्कर है (लेखक)।

कलिहारी या कलि (रि) यारी (लाङ्गली)

नाम। सं०—लाङ्गली, विशल्या, अग्निशिखा। हिं०—कलिहारी, कलि (रि) यारी। बं०—विषलाङ्गुलिया, ईशलाङ्गल। म०—खड्यानाग, कललावी। गु०—दूधियो-बछनाग ? अं०—सुपर्बलिलि (*Superb Lily*)। ले०—ग्लोरिओसा सूपेर्बा (**Gloriosa superba** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। पलाण्डु-कुल (लिलिआसी *Liliaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, लंका तथा वर्मा के जंगलों में इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। इसके पुष्प अत्यन्त सुन्दर एवं रंग-विरंगे होने के कारण वाटिकाओं में लगाये हुए पौधे भी मिलते हैं। हिमालय में १२०४.१८ मीटर या ४००० फुट की ऊँचाई तक इसके पौधे मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—कलिहारी आरोहीलता स्वभाव की वनस्पति है, जिसका वायव्य भाग (*aerial part*) प्रायः एकवर्षायु (*annual*) होता है। नये पौधे ऋतु में निकलते तथा कुवार-कार्तिक तक स्वयं सूख जाते हैं। किन्तु इसका मूलस्तम्भ (*Root-stock*) बहुवार्षिक (*perennial*) होता है तथा भूमि के अन्दर फैलता रहता है। उक्त भौमिक भाग गूदेदार होता है तथा औषध्यर्थ प्रयुक्त किया जाता है। पत्तियाँ एकान्तर (*alternate*), अभिमुख (*opposite*) क्रम से अथवा किसी-किसी पर्व पर ३–४ एक साथ (*in whorls of 3-4*) निकलती हैं, जो प्रायः विनाल (*sessile*) अथवा कोई-कोई सवृन्त-सी (*subsessile*) होती हैं। रूपरेखा में आयताकार-भालाकार, लम्बाग्रयुक्त तथा अग्र का परिवर्तन सूत्र (*tendril*) में हो जाता है, जो स्प्रिंग की भाँति अन्दर को मुड़े हुए (*spirally twisted*) होते हैं। उक्त विशिष्ट परिवर्तन आरोहण में वनस्पति की सहायता करता है। दूर से देखने में पत्तियाँ मोटे तौर से बाँस की पत्तियों की भाँति मालूम होती हैं। पुष्प पत्रकोणोद्भूत, एकल (*solitary*) तथा ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (२ इंच से ३ इञ्च) लम्बे पुष्पवृन्तों पर धारण किये जाते हैं, तथा झुके हुए से (*nodding*) होते हैं। पुष्प में परिदलपुंज (*perianth*) ६ पत्रों का होता है, जो प्रारम्भ में पीले रंग के किन्तु बाद में गाढ़े लाल रंग के हो जाते हैं। अथवा नीचे का भाग पीले रंग का और ऊपरी भाग लाल रंग का या कभी-कभी अन्तर्मध्य में अन्य मिश्रित रंग भी पाये हैं। उक्त सवर्ण कोष के दलपत्रों के किनारे लहरदार (*undulate*) होते हैं। फूल आने पर कलिहारी की लता अत्यंत सुन्दर एवं आकर्षक मालूम होती है। पुंकेशर संख्या में ६, केशर सूत्र (*filaments*) सुनहले पीलेरंग के। फल (*capsule*) लम्बगोल ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इंच से २ इंच) लम्बा तथा शीर्ष कुण्ठित (*obtuse*) होता है। फलों में गोलाकार छोटे-छोटे बहुत-से बीज होते हैं।

उपयोगी अंग—कन्दाकार मूलस्तम्भ (*Tuber*)।

मात्रा—(१) कटु पौष्टिक या तिक्त बल्य मात्रा—१२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० या १ रत्ती से २ रत्ती।

(२) गर्भनिस्सारक—३७५ मि० ग्रा० से ७५० मि० ग्रा० या ३ रत्ती से ६ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कलिहारी का कन्द बेलनाकार (*cylindrical*) अथवा चपटा (*flattened*) और ७ इंच से ८ इंच लम्बा होता है। मोटाई का व्यास ½ इंच तक होता है। पूर्ण प्रगल्भ कन्द में दो टुकड़े होते हैं, जिनमें एक दूसरे की अपेक्षा काफी बड़ा होता है। ये दोनों टुकड़े समकोण पर जुड़े होने से हलाकार मालूम होते हैं। जहाँ पर दोनों टुकड़े जुटते हैं, उस संधिस्थल के ऊर्ध्व पृष्ठ पर एक गोलाकार चिह्न (*circular scar*) होता है। यहीं पर तना या काण्ड (*stem*) जुटा होता है, और यह चिह्न काण्ड के टूटने से बनता है। संधि के अधःपृष्ठ पर भी एक चिह्न होता है, जहाँ पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूत्राकार जड़ें जुटी होती हैं। कन्द के दोनों टुकड़े सिरों की ओर क्रमशः कम चौड़े तथा मटमैले सफेद रंग के और शेष भाग बाहर से हल्की लालिमा लिये भूरेरंग का होता है। अन्तर्वस्तु रसादार और सफेद होती है। कलिहारी की जड़ें एक हल्की कड़वी गंध युक्त और स्वाद में लुवाबी, और हल्की कटु-तिक्त होती है।

मिलावट—कोई-कोई केमुक या केऊ (कॉस्टुस स्पेसिओसुस **Costus speciosus** (*Koen.*) *Sm. Family ; Scitaminaceae* (आर्द्रक-कुल) के भौमिक काण्ड (कन्द) का ग्रहण लाङ्गली या कलिहारी के नाम से कर लेते हैं। किन्तु यह भ्रमपूर्ण है। कलिहारी एक निश्चित द्रव्य है। विषैली होने से कहीं-कहीं लोग इसे भूल से 'सफेद वचनाग' भी कह देते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में जब कलिहारी का पौधा सूख जाता है, तो २—३ वर्ष पुरानी लता के प्रगल्भ कन्दों का संग्रहकर, सुखाकर अच्छी तरह डाटबन्द पात्रों में रखें।

संगठन—(१) दो राल (*resins*); (२) एक टैनिन (*tanin*) या कषाय द्रव्य; (३) एक तिक्तसत्व (*bitter principle*) जिसे सुपर्बीन (*Superbine*) कहते हैं। यह अत्यंत विषैला होता है। (४) कलिहारीन या ग्लोरिओसीन (*Gloriosine*) नामक ऐल्केलॉइड तथा (५) स्टार्च।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—गर्भपातन। प्रधान कर्म—अल्पमात्रा में दीपन एवं कटु पौष्टिक एवं ज्वरघ्न तथा अधिक मात्राओं में गर्भनिस्सारक।

मुख्य योग—कासीसादि तैल, लांगली रसायन।

विशेष—लांगली एक विषैली औषधि है। इसीलिए इसकी गणना 'उपविषों' में की गयी है। अतएव इसके प्रयोग में मात्रादि का विशेष ध्यान रखना चाहिए। निर्दिष्ट विधान द्वारा शोधन कर इसका प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है।

कसेरू (कशेरु)

नाम। राजकसेरुक, कशेरु, कशेरुक, कसेरु, गुण्डकन्दः, सूकरेष्ट, कसेरुक। बं०—केशुर। म०—कचरा। बम्बई—कचेरा, कचरा। गु०—कसेलान। ता०—गुंडतुंगगड्डि। ते०—गुंडतिगागड्डि। कना०—सेकिन गड्डें। अं०—वाटर चेस्टनट (*Water chest-nut*)। ले०—स्कीपुर्स कीसुर (**Scirpus kysoor** *Roxb.*)। (२) छोटा कसेरु या चिचोड़। सं०—चिंचोटः, चिंचोटकः, चिचोढं। हिं०—छोटा कसेरू, चिचोड़ा। बं०—लघु केशुर। ले०—स्कीपुर्स् आर्टीकुलाटुस **Scirpus articulatus** (३) वृत्तगुण्ड-कन्द (गोलकंद वाला कसेरू)। सं०—कशेरु। हिं०—कशेरू। बं०—केशुर। पं०—कशेरु डिला। ते०—गुण्डतिगागड्डि।

वानस्पति कुल। मुस्तादि-कुल (सीपेरासी *Cyperaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के प्रायः सभी उष्ण प्रदेश एवं चीन। चिचोड़ पूर्वीय भारतवर्ष में अधिक होता है। वृत्तगुण्ड कोंकण में बहुलता से पाया जाता है, विशेषतः सलसत्ती (*Salsette*) में।

संक्षिप्त परिचय—कसेरू के पौधे मोथे के पौधों की भाँति होते हैं। यह तालों और झीलों मे अथवा उनके किनारे जहाँ पानी रुका होता है, अथवा आर्द्र भूमि में उपजता है। इसका कंद अंडाकार गोल गांठ की तरह होता है, और खाया जाता है। आयुर्वेदीय निघण्टुओं में रूपाकृति भेद से कसेरू ३ प्रकार का बतलाया गया है—(१) स्थूल (२) लघु एवं (३) वृत्त। इनमें बड़े कन्द वाले को स्थूल या राजकशेरू तथा लघु कन्द वाले को चिचोड़ कहते हैं। जिसका कन्द गोल-गोल तथा मोथे की आकृति का होता है, इसे वृत्तकन्द कसेरु कहते हैं। धन्वन्तरीय एवं राजनिघण्टु ने मोथा या मुस्ता के पर्यायों में 'कसेरु' और 'राजकसेरु' का पाठोल्लेख किया है। कोई-कोई कसेरू को गोंदपटेर का एक भेद बतलाते हैं। कसेरू के पौधे को कहीं-कहीं 'गोंदला' भी कहते हैं। संस्कृत में इसे गुण्ड, कहते हैं और इसका कंद—गुण्डकंद कसेरू कहलाता है। कसेरू फागुन में तैयार हो जाता है और आषाढ़ तक मिलता है।

वक्तव्य—गर्मियों में तथा बरसात में कसेरुकन्द तरकारी बाजारों में विक्रेताओं के यहाँ मिलता है।

उपयोगी अंग—गांठदार कन्द (*Tubers*)।

मात्रा—६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तो०।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्धाशुद्धा परीक्षा—उत्तम कसेरुकन्द जायफल के बराबर तथा गोल गांठ की तरह होता है। इसके ऊपर एक काला छिलका होता है, जिस पर काले रोंये या बाल होते हैं। इसके भीतर का गूदा सफेद, स्वाद में किंचित् मधुर एवं फीका तथा सुगन्धित होता है। इसको चाबने से कुछ-कुछ मोथे की सी गंध आती है। खाने में यह मीठा तथा ठंढा होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—गर्मियों में इसका कन्द सर्वत्र भारतीय बाजारों में बिकता है। ग्रीष्म के लिए एक उत्तम शीतल पेय होता है।

संगठन—कन्द में ६३% स्टार्च, ७% प्रोटीन, ७% गोंदीय तत्त्व, ६% काष्ठ भाग होता है। भस्म २½%।

स्वभाव। गुण—गुरु, रूक्ष। रस-मधुर, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—पित्तनाशक, दाह-प्रशमन, वमन एवं अतिसार-नाशक, रक्तस्तम्भन, हृद्य, बल्य आदि। अहितकर—किंचित् गुरु एवं चिरपाकी है। निवारण—शर्करा एवं शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—ताजा कँवलगट्टा (कमल बीज)।

मुख्य योग—कसेरुकादि सर्पि, कसेरुकादि लेप, कसेरुकादि पेय।

कसौंदी (कासमर्द)

नाम। सं०—कासमर्द। हिं०—कसौंदी, कसौंजी। बं०—कासन्दा। म०—कासविंदा। गु०—कासोंदरो। ते०—कासिन्द। ता०—पेयाविरै। मल०—पोन्नाविरम्। का०—दोड्डतगचे। अं०—निग्रोकॉफी (*Negro Coffee*)। ले०—कास्सिआ ऑक्सी-डेंटालिस (**Cassia occidentalis** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल—शिम्बी-कुल : पूतिकरंज—उपकुल (*Leguminosae* : *Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—कसौंदी का क्षुप संसार के सभी उष्ण प्रधान देशों में पाया जाता है। भारतवर्ष में हिमालय से लेकर पश्चिमी बंगाल, दक्षिण भारत, तथा लंका एवं ब्रह्मा तक समग्र स्थान में यत्र-तत्र होता है। खुली जगहों में जहां धूप अच्छी लगती हो, इसको अधिक अनुकूल होता है।

संक्षिप्त परिचय—कसौंदी का क्षुप शुरू बरसात में प्रथम पानी पड़ते ही उगता है, और विशेषकर खाली पड़ी जमीन में जहाँ कूड़ा-करकट पड़ा हो उत्पन्न होता है। वर्षा भर क्षुप बढ़ता रहता है, और बहुत बढ़ने पर आदमी के बराबर वा इससे अधिक ऊँचा और सीधा होता है। यह शाखा-बहुल होता है, जो दीर्घ, मसृण एवं चारों ओर फैली हुई तथा प्रायः जड़ के पास से अथवा उससे किंचित् ऊपर से निकली होती हैं। पत्तियाँ पक्षाकार संयुक्त और पत्रक ३ जोड़े से ५ जोड़े, ५ सें० मी० १० सें० मी० (२ इंच से ४ इंच) लम्बे तथा १.२५ सें० मी० से ३.१ सें० मी० (½ इंच से १। इंच) चौड़े, अण्डाकार-भालाकार और नोकदार होते हैं। पुष्प पीले, फलियाँ ७.५ सें० मी० या ३ इंच लम्बी और १.२५ सें० मी० या ½ इंच से कुछ कम चौड़ी, चिकनी और चिपटी होती हैं। यह वर्षांत वा जाड़े के दिनों में फूलता-फलता एवं हेमन्त में परिपक्व फलों के सहित शुष्कता को प्राप्त होता है। कसौंदी को सूंघने से एक खराब गंध आती है।

उपयोगी अंग—पत्र, मूल और बीज।

मात्रा। पत्र स्वरस—½ तोला से १ तोला।
बीजचूर्ण—१ माशा से २ माशा।
मूलक्वाथ—२ तोला से ४ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कासमर्द के बीज भूरे या खाकस्तरीय रंग के तथा चक्रिकाकृति (*rounded discs*) के होते हैं, जो व्यास में $\frac{1}{16}$ इञ्च से ⅛ इञ्च तथा $\frac{1}{16}$ इञ्च मोटाई के होते हैं।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट — कासमर्द का एक और भेद होता है जिसे काली कसौंजी (*Cassia sophera Linn.*) कहते हैं। इसके क्षुप हिमालय से लंका तक समस्त भारतवर्ष में स्वयंजात पाये जाते हैं। इसकी शाखाएँ कृष्णाभ बगनी आभा (*purplish tinge*) लिये होती हैं। मूलत्वक् काली होती है; जिससे जड़ जली हुई सी मालूम होती है, और इससे कस्तूरी जैसी गंध आती है। इसके क्षुप बहुवर्षायु तथा बड़े होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण — इसके पौधे सर्वत्र सुलभ हैं। पक्व फलियों से बीजों को पृथक् कर मुखबंद पात्रों में उपयुक्त स्थान में रखें।

संगठन — कासमर्म की पत्तियों में सनाय जैसा विरेचक तत्त्व केथार्टिन (*Cathartin*), कुछ रंजक तत्त्व एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लवण पाये जाते हैं। बीजों में टैनिक एसिड, बसाम्ल (*Fatty acids*) २.५%, लबाबीतत्त्व (म्युसिलेज ३६%), इमोडिन, क्राइसेरोबिन, अल्पमात्रा में सोडियम सल्फेट, फास्फेट, मैगनीसियम सल्फेट तथा एक विषाक्त तत्त्व (*Toxalbumin*) भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि – १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण। रस–तिक्त, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–वात-कफ-शामक, पित्तसारक, मृदुरेचन; कफघ्न, श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, दद्रुनाशक। प्राणिज एवं खनिज विषनाशक, अपस्मार, अपतन्त्रक एवं आक्षेप-हर तथा पाण्डु-कामलानाशक आदि। यूनानी मतानुसार यह उष्ण एवं रूक्ष होता है। अहितकर–उष्ण प्रकृति को। निवारण–कालीमिर्च एवं मधु। प्रतिनिधि–एक भेद दूसरे भेद का।

विशेष – कसौंदी के बीजों को भूनने से इसका रेचक गुण नष्ट होकर यह संग्राही हो जाते हैं। भृष्ट बीजों का अकेले या अन्य औषधियों के साथ व्यवहार 'कॉफ़ी' के रूप में किया जाता है। अफ्रीका के सेनेगल प्रान्त में आदिवासियों में यह प्रचलन अधिक है, इसी से इसे *'Negro Coffee Plant'* भी कहते हैं। रसशास्त्र में शोधनार्थ इसके प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) सुरसादिगण में 'कासमर्द' भी है।

कांदा (कोलकन्द)

नाम। सं०–कोलकन्द (राजनिघण्टु), बनपलाण्डु। हिं०–जंगलीप्याज, कांदा, तलकनरा, कनरी। बं०–जोंगली-पेयाज। म०–रानकांदा, कोलकांदा। गु०–जंगली कांदो, पाणकंदो। का०–पुटालु। अ०–उन्सुले हिंदी, इस्कीले हिंदी। फा०–पियाज सहराई। अं०–इंडियन स्क्विल (*Indian squill*)। ले०–ऊर्जीनेआ इंडिका (**Urginea indica** *Kunth.*)।

वानस्पतिक कुल। पलाण्डु-कुल (लीलिआसी *Liliaceaee*)।

प्राप्तिस्थान – पश्चिमी हिमालय प्रदेश में (२११३.६ मीटर या ७,००० फुट की ऊँचाई तक), गढ़वाल, कुमायूँ, सहारनपुर, शिवालिक, बिहार, बंगाल, मध्य भारत, छोटा नागपुर तथा दक्षिण भारत में कोंकण, कारोमंडल एवं पश्चिमी घाट की निचली पहाड़ियों पर प्रचुरता से पाया जाता है। जुलाहे लोग भी इसका संग्रह कपड़े पर माड़ी देने के लिए करते हैं। जाड़ों में जंगली लोग ताजा कंद समीपवर्ती बाजारों में बेचने के लिए लाते हैं। सुखाये हुए कन्द अथवा कंदों के सुखाये हुए कतरे कहीं-कहीं पंसारियों के यहाँ भी मिलते हैं। बम्बई में इसकी बिक्री की एक बड़ी मंडी है।

संक्षिप्त परिचय – कांदा के प्याज के सदृश कंदवाले छोटे एवं कोमल पौधे होते हैं, जो आपाततः देखने में सुदर्शन जैसे मालूम होते हैं। पत्तियाँ मूलीय (*radical*), १५ सें० मी० से ४५ सें० मी० या ६ इञ्च से १८ इञ्च लम्बी १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इञ्च से १ इञ्च चौड़ी, चिपटी, रेखाकार नुकीले अग्र वाली होती हैं। जून के महीने में वर्षा का प्रथम पानी पड़ते ही सदण्डिक पुष्पध्वज (*scape*) निकलता है, जिस पर हरिताभ श्वेत पुष्प निकलते हैं। पत्तियाँ पुष्पागम के साथ-साथ अथवा बाद में निकलती हैं। पुष्पध्वज ३० सें० मी० से ७५ सें० मी० या १ फुट से २½ फुट तक ऊँचा, पतला और दूर-दूर पुष्पों से युक्त होता है। पुष्प संख्या में प्रायः ४ से ८ और उनका वृन्त अन्ततः ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १½ इञ्च से २½ इञ्च तक लम्बा होता है। दलपत्र चक्राकार या घंटिकाकार क्रमबद्ध, हरिताभ–श्वेत होते हैं। फल (*capsules*) १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० (½ इंच से ¾ इंच) बड़े, अंडाकार किन्तु दोनों सिरों की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़े अथवा त्रिभुजाकार होते हैं, जिनमें लम्बगोल, चपटे तथा काले रंग के बीज होते हैं। फल अन्दर तीन कोष्ठीय-सा होता है, जिनमें प्रत्येक में ५ से १० तक बीज होते हैं। कोलकंद में प्याज जैसे किन्तु निर्गन्ध कन्द (*bulbs*) लगते हैं, जिनका व्यवहार औषधि में होता है। रंग भेद से लाल और सफेद यह दो प्रकार का आता है।

उपयोगी अंग – कन्द (*Bulbs*)।

मात्रा – १२.५ मि० ग्राम से १८७.५ मि० ग्राम या १ रत्ती से १½ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा – कांदा का कंद आपाततः देखने में प्याज की तरह, ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इञ्च तक लम्बा, रूपरेखा में गोल, अण्डाकार अथवा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लट्वाकार, व्यास में ३.७५-५ (१५) सें० मी० या १½ से २ (६ इंच तक) विभिन्न आकार-प्रकार की सफेदी लिये होता है, जिसकी गर्दन २.५ सें० मी० या १ इञ्च तक लम्बी होती है; किन्तु यह निर्गन्ध होता है। ताजा कन्द खाने से जीभ पर कण्डू मालूम होती है। स्वाद में यह तिक्त एवं कटु तथा उत्क्लेशजनक होता है। औषध्यर्थ एक वर्षायु नीबू जितना बड़ा कंद अधिक उत्तम समझा जाता है। जंगली प्याज के काट कर सुखाये हुए कतरे धनुष की तरह टेढ़े अथवा अनियमित स्वरूप के टेढ़े-मेढ़े, ½ इंच से २ इंच × ½ इंच से ¾ इंच × १/१६ इञ्च से ½ इञ्च तथा दोनों सिरों की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़े एवं अधिक पतले, अनुलम्ब दिशा में उन्नत रेखा युक्त, सफेदी लिए पीताभ भूरे रंग के होते हैं। कभी-कभी ४-४, ६-६ टुकड़े एक साथ जुटे हुए-से होते हैं। शुष्क टुकड़े आसानी से चूर्ण हो जाते है, किन्तु नम होने पर यह चिमड़े तथा लचीले हो जाते हैं। भस्म—अधिकतम ६% तक। अम्ल में अविलेय भस्म—अधिकतम १½%। ऐल्कोहल् (६०%) में घुलनशील सत्व—कमसे कम ३०%।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—कारोमंडल तट पर कोलकंद की एक दूसरी जाति (*Species*) भी पायी जाती है, जिसे **ऊर्जीनेआ कारोमंडेलिआना** (**U. coromandeliana** *Hook. f.*) कहते हैं। इसके कंद भी गुण-कर्म में उपर्युक्त कोलकन्द से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। **सिल्ला हिआसींथिना Scilla hyacinthina** (*Roth.*) *Macb.* (पर्याय—सील्ला इंडिका *Scilla indica Baker*) नामक वनस्पति के कन्द भी स्वरूपतः एवं गुणकर्म में उपर्युक्त कोलकंदवत् ही होते हैं। इसकी पत्तियाँ अपेक्षाकृत छोटी (७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इंच से ६ इञ्च) होती हैं, तथा इनपर काले धब्बे पाये जाते हैं। बीज गोल या अण्डाकार होते हैं। यह बुंदेलखंड ग्वालियर, बिहार, छोटा नागपुर, मध्य भारत, कोंकण, महाबलेश्वर, दक्षिण महाराष्ट्र प्रदेश एवं पश्चिमी भाग को छोड़ कर शेष सर्वत्र मद्रास प्रान्त में पाया जाता है। उपर्युक्त देशी वनपलाण्डु, विदेशीय वनपलाण्डु **ऊर्जीनेआ मारीटिमा Urginea maritima** *Linn.*) *Baker.* (पर्याय-सिल्ला मारीटिमा *Scilla maritima Linn.*) की उत्तम प्रतिनिधि औषधि है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों के प्रारम्भ में (अथवा वर्षान्त में) एकवर्षायु छोटे कन्दों का संग्रह करें। इसके ऊपर के शुष्क छिलकेदार पर्त को हटाकर गूदेदार पर्तों को पृथक् कर लम्बाई के रुख कतरेनुमा टुकड़े काट छाया शुष्क करें और फिर इन्हें अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें। चूर्ण को विशेष रूप से नमी या आर्द्रता से बचाना चाहिए। एतदर्थ इसको चूने के साथ रखना चाहिए।

संगठन—ताजे कोलकन्द में २ सक्रिय ग्लाइकोसाइड पाये जाते हैं—(१) सिलारेन-ए (*Scillaren-A* $C_{36}H_{52}O_{13}$) जो क्रिस्टलाइन स्वरूप का होता है; तथा (२) सिलारेन-बी (*Scillaren-B*) जो प्रायः अक्रिस्टलीय (*amorphous*) ही प्राप्त होता है। इनमें सिलारेन-ए तो जल में नहीं घुलता, किन्तु सिलारेन-बी जल एवं क्लोरोफॉर्म में घुलनशील होता है। सिलारेन (जो सिलारेन-ए एवं सिलारेन-बी का मिश्रण होता है) जल में भी प्रायः सुविलेय होता है और काफी समय तक स्थायी होता है। इसके अतिरिक्त कोलकंद में लबाब, कार्बोहाइड्रेट तथा कैल्सियम् ऑक्जलेट क्रिस्टल्स (५% तक) भी पाये जाते हैं।

स्वभाव। गुण—तीक्ष्ण, लघु। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—वातकफशामक, एवं चित्तवर्धक; हृदयोत्तेजक एवं शोथहर (विशेषतः हृद्विकार जन्य), कफनिःसारक, मूत्रल, आर्त्तवजनन, स्वेदजनन एवं कृमिघ्न आदि। स्थानिक प्रयोग से यह क्षोभक, रक्तिमाजनक एवं व्रणकारक भी होता है। जंगली प्याज, साधारण प्याज की अपेक्षा अधिक वीर्यवान् होता है। यह उसकी भाँति खाने के काम में नहीं लिया जाता; किन्तु उन समस्त रोगों में गुणदायक है, जिनमें साधारण प्याज उपादेय होता है। जंगली प्याज विशेषतः मूत्रजनन एवं कफ-निष्ठीवन कर्म में अधिक बलवान् है। जीर्णप्रतिश्याय, कास एवं जीर्ण फुफ्फुस रोगों तथा श्वास रोग में तथा मूत्रल होने से जलोदर एवं अन्य शोथों में इसका व्यवहार उपयोगी है। हृदय पर इसकी क्रिया डिजिटेलिस की भाँति होती है। निस्सरण—शरीर से इसका निस्सरण त्वचा, फुफ्फुस, वृक्क एवं आन्त्र से होता है। अहितकर—इनमें कैल्सियम ऑक्जलेट अधिक मात्रा में पाये जाने के कारण यह स्थानिक क्षोभक होता है। मुखद्वारा सेवन किये जाने पर भी मात्राति-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

योग से अथवा कभी-कभी औषधीय मात्राओं में भी इससे आमाशयान्त्र-प्रदाह की स्थिति उत्पन्न होकर वमन, विरेचन आदि उपद्रव लक्षित होते हैं। तीव्र कास एवं वृक्क रोग में इसका सेवन निषिद्ध है। उष्ण प्रकृति वालों को तथा वातनाड़ियों को भी यह अहितकर होता है। विवारण—मिश्री एवं सिकंजबीन।

विशेष—'कोलकंद' विलायती ओषधि सिल्ला का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। जिन-जिन रूपों में सिल्ला का व्यवहार होता है, इसका भी व्यवहार हो सकता है।

काकड़ासींगी (कर्कटशृङ्गी)

नाम। सं०—शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी। हिं०—काकड़ासींगी। पं०—ककड़सिंगी, काकड़ासिंगी। म०—काकड़शिंगी। गु०—काकड़ासिंगी। बं०—काकड़ाशृङ्गी। अं०—क्रैब्स क्लॉ (*Crab's Claw*)। ले०—पीस्टासिआ खींजुक **Pistacia khinjuk** *Stocks*. (पर्याय-पीस्टासिआ इण्टेगेरिमा *Pistacia integerrima Stew. ex. Brandis.*)। लेटिन नाम वृक्ष का है।

वानस्पतिक कुल। आम्रादि-कुल (आनाकार्डिआसी (*Anacardiaceae*))।

प्राप्तिस्थान—पेशावर की घाटी, सुलेमान पहाड़, बाह्य उत्तर पश्चिमी हिमालय (६,५०० फीट की ऊँचाई तक) तथा सिंध नदी से कुमायूँ तक के प्रदेश में 'काकड़' नामक वृक्ष होते हैं।

संक्षिप्त परिचय—इसके मध्यम कद के तथा पतझड़ करने वाले वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ एकान्तर क्रमसे स्थित होती हैं, जो अयुग्मपक्षाकार १५ सें० मी० से २२.५ सें० मी० (६ से ९ इंच) लम्बी, पत्रक ४-६ जोड़े, लगभग अभिमुख क्रम से (*sub-opposite*) स्थित तथा किंचित् सनाल, रूपरेखा में भालाकार, लम्बे नोक वाले एवं सरल धार और चिकने होते हैं। पुष्प छोटे-छोटे तथा दलपत्र रहित (*apetalous*) एवं एकलिंगी, मंजरियों में लगते हैं। नरपुष्प एवं स्त्रीपुष्प पृथक्-पृथक् वृक्षों पर पाये जाते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) व्यास में ½ सें०मी०, (¼ इंच) टेढ़ा-सा तथा चमकदार एवं बाह्य तल पर झुर्रीदार होता है। पुष्प नयी पत्तियों के साथ आते हैं। इसकी टहनियों पर लम्बे-लम्बे शृंगसदृश कृमिगृह या गॉल (*galls*) लगते हैं, जो हेमिप्टेरुस (*Hemipterus*) नामक कीड़ों के बनाये हुए होते हैं, और 'कर्कटशृंगी' के नाम से चिकित्सा में प्रयुक्त होते हैं।

उपयोगी अंग—वृक्षव्रणजन्य कृमिगृह या गॉल (*Galls*) : कर्कटशृंगी।

मात्रा—½ ग्राम से १ ग्राम (४ रत्ती से ८ रत्ती या ½ माशा से १ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में जो काकड़ासींगी मिलती है, वह कठिन, भीतर से पोली, हलकी, अनियताकार वाली, ३.७५ सें०मी० (१॥ इञ्च) लम्बी, २.५ सें०मी० (१ इञ्च) चौड़ी तथा चौथाई इञ्च मोटी, बकरी के सींग के समान, नोकदार, कालापन लिये लालरंग की तथा स्वाद में कसैलापन लिए कुछ कड़वी होती है। काकड़ासींगी को तोड़ने पर अन्दर के तल पर स्थान-स्थान पर धूल के कणपुञ्ज से लगे दीखते हैं, जो वास्तव में इसके कीड़ों के अपद्रव्य होते हैं। काकड़ासींगी के चूर्ण में उपर्युक्त स्वाद के अतिरिक्त तारपीन-सी हल्की गंध भी आती है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य अधिकतम २% तक होता है।

वक्तव्य — बाजारों में अन्य वृक्षों पर लगे कीटगृह (गॉल्स) भी कभी-कभी 'काकड़ासींगी' के नाम से बिकते दिखाई देते हैं। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। कभी बाजारों में हरड़ वृक्ष पर लगे गॉल्स काकड़ासींगी के नाम से बिकते देखे गये हैं। किन्तु यह रंगरूप एवं आकार-प्रकार में असली काकड़ासींगी से सर्वथा भिन्न होते हैं। इनकी मोटाई की परिधि प्रायः १ इञ्च से अधिक नहीं होती। (लेखक)।

संग्रह एवं संरक्षण—इसको अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—(१) उड़नशील तेल (*Essential oil*) १.३% तक। (२) टैनिन (*Tannin*) ६०% तक। (३) मस्तगी के समान का गोंद (*Gum mastic*) ५%। (४) एक रालीय द्रव्य तथा २ क्रिस्टलाइन एसिड्स। इनके अतिरिक्त ३-४ प्रतिशत तक एक क्रिस्टलाइन स्वरूप का हाइड्रोकार्बन भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रुक्ष। रस-कषाय, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—ग्राही, अतिसार-प्रवाहिकानाशक, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न आदि। चरकोक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(सू० अ० ४) हिक्कानिग्रहण एवं कासहर महाकषायों में तथा सुश्रुतोक्त काकोल्यादिगण में 'कर्कटशृंगी' की भी गणना है।

मुख्ययोग—बालचतुर्भद्रा, कर्कटादि चूर्ण, शृंग्यादि चूर्ण बृहत्तालीशादिचूर्ण (भै० र०)।

विशेष—तिन्तिड़ीक जाति (*Rhus*) के वृक्षों में भी कृमि-गृह बनते हैं, परन्तु वे कर्कटशृंगी से भिन्न होते हैं। कुछ लोगों ने भ्रम से कर्कट वृक्ष का नाम रुहुस सुक्केडानेआ (**Rhus succedanea** *Linn.*) लिख दिया है।

वक्तव्य—बृहत्तालीशादिचूर्ण (भैषज्यरत्नावली) में 'कर्कट-शृंगी' भी पड़ती है। लेखक तथा उनके शोधछात्रों द्वारा किये गये परीक्षण में यह योग उत्तम वातिक कासहर (*Antitussive*) पाया गया। एतदर्थ चूर्ण की १ से २ माशे की मात्रा मधु से ३-४ बार चाटने को देना चाहिए। वैद्य समाज को इसका लाभ उठाना चाहिए। (लेखक)।

काजू (काजूत)

नाम। सं०—काजूत, काजूतक, वृत्तारुष्कर (अभिनव)। हिं०, म०, गु०—काजू। मेवाड़—काजूकुली। मारवाड़—काजू-गुली। बं०—हिजली बादाम। फा०—बादामे फिरंगी। अं०(गिरी)—केश्यू नट (*Cashew-nut*)। (वृक्ष) आनाकार्डिउम् ऑक्सीडेंटाले (**Anacardium occidentale** *Linn*)।

वानस्पतिक कुल। आम्रादि-कुल (आनाकार्डिआसी : *Anacardiaceae*)।

प्राप्ति स्थान—काजू अमेरिका (के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों-मेक्सिको, पेरू, ब्रेजिल आदि) का आदिवासी वृक्ष है। भारतवर्ष में यह लगभग ४०० वर्ष पूर्व पुर्तगालियों द्वारा ब्रेजिल से लाया गया था। सम्प्रति दक्षिण भारत में पश्चिमी समुद्रतटवर्तीय प्रदेशों में उत्तरी एवं दक्षिणी कनाड़ा, बम्बई, गोवा, कोचिन, ट्रावन्कोर, मैसूर तथा मद्रास प्रान्त में विस्तृत परिमाण में लगाया जाता है। उक्त प्रदेशों के अतिरिक्त अब बंगाल (मिदनापूर) एवं उड़ीसा प्रान्त (पुरी, गंजम, बालसोर आदि) में भी लगाया जाने लगा है। काजू की गिरी सर्वत्र पंसारियों के यहाँ तथा मेवा फरोशों के यहाँ बिकती हैं।

संक्षिप्त परिचय—काजू, के १२.१८ मीटर (४० फुट) तक ऊँचे सदाहरित वृक्ष होते हैं; शाखाएँ आम की तरह चारों ओर फैली रहती हैं। पत्तियाँ १० सें० मी० से २० सें० मी० (४ से ८ इंच) लम्बी, ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (३ से ५ इञ्च) चौड़ी होती हैं। पुष्प पीतवर्ण का तथा लाल दागों से युक्त तथा सुगन्धित होता है। पुंकेशर ६ होते हैं, जिनमें एक सबसे बड़ा होता है। प्रायः ३ वर्ष के बाद ही इसका वृक्ष फल देने लगता है। किन्तु अच्छी तरह फल—प्रायः १० वर्ष से प्रारम्भ होकर अगले २० वर्षों तक जोर पर रहता है। पुष्पागम नवम्बर-दिसम्बर में, और मार्च-अप्रैल तक फल पक कर मई के महीनों में नीचे गिरने लगते हैं। इसी समय इनका संग्रह किया जाता है। भल्लातक की भाँति इसमें भी पुष्पदण्ड (*pednucle*) एवं दल्यक्ष या पुष्पधर (*thalamus*) फूल कर मांसल हो जाता है, जो पकने पर खायाजाता है। इससे एक प्रकार की शराब भी बनाते हैं। फल वास्तव में वृक्काकार (*kidney-shaped nut*) होता है, जो उक्त मांसल दल्यक्ष के साथ जुटा रहता है। उक्त मांसल भाग को "*Cashew apple*" कहते हैं, जो पकने पर पीला या लालरंग का हो जाता है। गिरीदार अष्ठिफल (*drupaceous nut*) हरिताभ खाकस्तरी रंग का होता है, जिसकी फलत्वचा (*pericarp*), कड़ी, चिकनी एवं चमकीली होती है, जिसमें भल्लातक की भाँति एक तीक्ष्ण विस्फोटजनक रस होता है। हवा में खुला रहने से कालेरंग का हो जाता है। इसे काजू का अलकतरा (*tar*) कहते हैं। इसको तोड़ने पर अन्दर सफेद रंग का वृक्काकार द्विदल गूदा निकलता है, जो लालिमा लिये भूरे रंग के छिलके (*testa*) से आवृत होता है। फलों को भूनकर गुठली तोड़ कर गिरी निकाल ली जाती है। उस पर का लाल छिलका भी उतार दिया जाता है। यही काजू बाजारों में मिलता है। काजू भी बादाम की भाँति चिकना मधुर एवं स्वादिष्ट होता है। इसीलिए इसके लिए 'काजूफल', 'काजूगुली' आदि शब्दों का व्यवहार होता है। काजू के वृक्षों से एक गोंद भी निकलता है।

उपयोगी अंग—गिरी (काजू) एवं इसका तैल।

मात्रा। गिरी—६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १२ माशा। तैल—३ माशा से ६ माशा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण—काजू की गिरी को मुखबंद पात्रों में उचित स्थान में रखें। तैल को अँधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन—काजू की गिरी का संगठन बहुत-कुछ मीठे बादाम की तरह होता है। इसमें प्रोभुजिन् या प्रोटीन तत्त्व (२१.२%), चर्बी या वसा का अंश (४६.९०९) तथा कार्बोजजातीय पदार्थ या कार्बोहाइड्रेट्स (२२.३%) तथा खनिज तत्त्व २.४% (कैल्सियम्, पोटासियम् एवं लौह आदि) मिलते हैं। गिरी से ४०% से ५०% तक (७३), तैल पाया जाता है, जिसमें ओलिईक एसिड स्थिर लिनोलीक, स्टियरिक एवं पामिटिक एसिड के ग्लिसराइड्स होते हैं। फल के छिलके (*pericarp*) में भल्लातक की भाँति कालेरंग का विस्फोटजनक तैल (वास्तव में रस) पाया जाता है। उक्त रस में मुख्यतः एनाकार्डिक एसिड (*Anacardic acid*) एवं कार्डोल (*Cardol*) नामक तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि। गिरी—२ वर्ष। तैल—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। कर्म—वातशामक, मस्तिष्क एवं नाड़ीबल्य, स्नेहन, अनुलोमन, वृष्य, बाजीकरण, बृंहण, मूत्रल, कुष्ठघ्न, केश्य, वेदनास्थापन, रक्तशोधक, हृद्य। छिलके का रस—विस्फोटजनक (*vesicant*) एवं प्रतिक्षोभक (*counter-irritant*)। यूनानी मतानुसार काजू गरम और तर है। अहितकर—गरम प्रकृति वालों के के रक्त में उष्णता करता तथा पित्तकारक है। निवारण—खट्टा अनार और सिकंजबीन।

विशेष—काजू एक उत्तम पौष्टिक मेवा है। भल्लातक आदि तीक्ष्ण औषधियों के दोषनिवारण के लिए इसे मिलाया जाता है।

कायफल (कट्फल)

नाम। सं०—कट्फल। हिं०, म०, गु०—कायफल, कैफर। कुमाँयू, गढ़वाल, नेपाल—काफल। बं०—कट्फल, कायछाल। अ०—अजूरी, ऊदुल्वर्क। फा०—दारशीश्आन। अं०—दि बॉक्स मर्टिल (*The Box-Myrtle*)। ले०—मीरिका नागी (**Myrica nagi** *Thunb.*)।

वानस्पतिक कुल। कट्फलादि-कुल (मीरिकासी *Myricaceae*)।

प्राप्तिसाधन—उत्तर पंजाब, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल, खासिया-पर्वत, सिलहट में तथा मलाया, चीन एवं जापान में भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

संक्षिप्त परिचय—कायफल के मध्यम ऊँचाई के सदाहरित वृक्ष होते हैं, जिसकी पत्तियाँ शाखाग्रों पर समूह-बद्ध होतीं तथा सुगन्धित होती हैं। पत्तियाँ लम्बाई में ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० (३ इंच से ८ इंच) लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१॥ से २ इंच) चौड़ी तथा रूपरेखा में भालाकार या कुछ-कुछ आयताकार या लट्वाकार, अधःपृष्ठ मुरचई रंग के (*rust-coloured*) होते हैं। पत्रतट पुरानी पत्तियों में सरल तथा नवीन पत्तियों में सूक्ष्मदन्तुर। पुष्प एकलिंगी (1-*sexual*) तथा छोटे-छोटे होते हैं। नर एवं स्त्री पुष्प पृथक्-पृथक् वृक्षों पर पाये जाते हैं। मंजरियाँ (*spikes*) प्रायः पत्रकोणोद्भूत (*axillary*) होती हैं, जिनमें नरपुष्प मंजरी अधोलम्बी (*drooping*) तथा स्त्रीपुष्प मंजरी और नवीन शाखाओं पर बादमी रोमावरण होता है। अष्ठिफल (*drupe*) १.२५ सें० मी० से १.७५ सें० मी० (½ से ¾ इंच) लम्बा, अम्बाकार, कुछ चिपटा, पृष्ठ पर दानेदार तथा पकने पर रक्ताभ या पीताभ बादामी होता है। पुष्पागमकाल—जाड़ों में। फलागम—ग्रीष्म ऋतु। फल ग्रीष्म ऋतु में पकते हैं। इसमें लालरंग का गूदा होता है। गुठली झुर्रीदार (*nut rugose*) होती है। गर्मियों में स्थानिक लोग पके फलों का शर्बत बनाकर सेवन करते हैं। इसका शर्बत खटमिट्ठा और बहुत रुचिकारक होता है।

उपयोगी अंग—काण्डत्वक् या छाल (*Stem bark*)।

मात्रा। छाल का चूर्ण १ ग्राम से २ ग्राम या १ से २ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कायफल की छाल काफी मोटी (½ इंच) होती है। यह बाहर से बादामी—धूसर अथवा कृष्णाभ तथा खुरदरी (*warty*) होती है। अन्दर से उक्त छाल मटमैले गाढ़े लालरंग की होती है। जल में भिगोने से गाढ़े लालरंग का विलयन बनता है। स्वाद में कायफल छाल अत्यंत कषैली होती है। हवा में सुखायी हुई छाल से प्राप्त भस्म—७.१७% जल में भिगोने से प्राप्त सत्व को बाष्पीभवन द्वारा सुखाने से लालिमा लिये भूरे रंग का भंगुर, चमकीला सत्व प्राप्त होता है, जिसमें

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६०% टैनिन, एक मधुरतत्त्व (*saccharine matter*) एवं साल्ट्स होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—छाल को छायाशुष्क करके अनार्द्र शीतल स्थान में मुखबन्दडिब्बों में रखना चाहिए।

संगठन—टैनिन, मधुरतत्त्व, लवण, रंजक तत्त्व।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—तीक्ष्ण रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—शिरोविरेचन, श्वास-कासनाशक, रक्तस्तम्भक। अहितकर—यकृत्प्लीहा को। निवारण—मस्तगी। प्रतिनिधि—असारून।

मुख्य योग—कट्फलादि चूर्ण, कट्फलादि क्वाथ, कट्फल नस्य।

विशेष—कट्फल नाम से प्रयोज्य अंग के फल होने का भ्रम नहीं होना चाहिए। इसकी छालका ही व्यवहार औषधि में होता है। चरकोक्त (सू० अ० ४) सन्धानीय, शुक्रशोधन एवं वेदनास्थापन तथा संज्ञास्थापन महाकषायों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) लोध्रादि एवं सुरसादिगण में कट्फल का भी उल्लेख है।

वक्तव्य—लगता है शिरोविरेचनार्थ कट्फल की छाल का प्राचीन व्यवहारप्रचलन उत्तर-पश्चिमी भारतीय सीमा-प्रान्तीय क्षेत्र में पूर्वतः वर्तमान था। शिरोविरेचनद्वारा 'शिरोरोगहर चूर्ण' योग के उपादानों में इसका उल्लेख अर्थशास्त्र (अधिकरण १४। अध्याय ४। स्वबलोपघातप्रतिकारनामक प्रकरण १७९/८) में भी मिलता है। परवर्तीकाल तथा आयुर्वेदीय निघण्टुओं में कट्फल की मान्यता श्वासकासहर के रूप में तथा कण्ठरोग आदि में अधिक दिखाई देती है। (लेखक)

कालमेघ (यवतिक्ता)

नाम। सं०—यवतिक्ता, कल्पनाथ (अभिनव)। हिं०—कल्पनाथ, कालमेघ। बं०—कालमेघ। म०—पाळे-किराईत। गु०—लीलुं करियातुं। अं०—एन्ड्रोग्रेफिस (*Andrographis*), किरयात (*Kiryat*), क्रियेत (*Creat*)। ले०—आंड्रोग्राफ़िस् पानीकुलाटा (**Andrographis paniculata** *Nees*)।

वानस्पतिक कुल। वासक-कुल (अकान्थासी *Acanthaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष एवं लंका में इसके लगाये हुए अथवा जंगली रूप से उत्पन्न पौधे मिलते हैं। विशेषतः बंगाल में इसके पौधे गाँव-गाँव में पाये जाते हैं। बंगाल-निवासियों में घरेलू चिकित्सा में इसके प्रयोग का आम रिवाज है। इसका बंगीय नाम 'कालमेघ' अन्य भाषाओं में भी ग्रहण कर लिया गया है।

परिचय—कालमेघ के ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ फुट से ३ फुट) ऊँचे बहुशाखीय एकवर्षायु छोटे-छोटे पौधे होते हैं। काण्ड, चौपहल (*quadrangular*) होता है। ऊर्ध्वभाग में तथा कोमल शाखाओं पर धाराएँ अधिक स्पष्ट होती हैं, जिससे काण्ड प्रायः सपक्ष (*winged*) मालूम पड़ता है। काण्ड प्रायः गाढ़े हरेरंग का तथा व्यास में २ मिलिमिटर से ६ मिलिमिटर होता है। पर्वों पर काण्ड शेष भाग की अपेक्षा स्थूल तथा पर्वान्तरिक भाग में अनुलम्ब खातयुक्त (*with longitudinal fissure*) होता है। पत्तियाँ—आकार में भालाकार, ७.५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० (३ इंच से ३॥ इंच) तक लम्बी तथा २.५ सें० मी० या १ इंच चौड़ी एवं मसृण होती हैं। तट अखण्ड (*entire*) होते हैं। ये पत्तियाँ काण्ड पर चतुर्पंक्तिक अभिमुखक्रम से स्थित (*decussate*) तथा पर्णवृन्त बहुत छोटे (०.६ मिलिमिटर) होते हैं। पुष्पव्यूह सवृन्तकाण्डज (*raceme*) होता है, जो पत्तियों के कोणों से निकलता है, अथवा शाखाओं पर स्थिर होता है। सम्पूर्ण पुष्पव्यूह की रूपरेखा पिरामिडाकार मंजरीसम (*pyramidal paniculate*) होता है। पुष्प आकार में छोटे तथा दलचक्र (*corolla*) रंग में पाटल-सम (*rose-coloured*) तथा वासककुल के विशिष्ट लक्षणानुसार द्वि-ओष्ठी (*bilabiate*) होता है। ऊर्ध्वोष्ठ (*upper-lip*) दो खण्डोंवाला होता तथा अधः ओष्ठ (*lower lip*) तीन खण्डों वाला होता है। उक्त आभ्यन्तर कोष (*corolla*) सूक्ष्मग्रंथिरोमश (*glandular pubescnt*) होता है। फल सामान्यस्फोटी प्रकार (*capsule*) का तथा द्वि-कोष्ठीय (*2-celled*) होता है जो रूपरेखा में लम्बोतरा (*linear-oblong*) एवं दोनों सिरों की ओर क्रमशः कम चौड़ा होता है। कालमेघ के फल बाह्यतः देखने में जौ की तरह लगते हैं प्रत्येक फल में किंचित् चौपहल (*subquadrate*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं पीताभ भूरेरंग के अनेक बीज होते हैं। सम्पूर्ण पौधा स्वाद में अत्यन्त तिक्त होता है।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग।

मात्रा–(१) चूर्ण–$\frac{५}{२}$ ग्राम से १$\frac{१}{२}$ ग्राम (५ रत्ती से १० रत्ती)।

(२) स्वरस–२ माशा से ४ माशा।

(३) क्वाथ–२ तोला से ४ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २%। ऐन्ड्रोग्रेफोलिड (*Andrographolid*) न्यूनतम–१%।

संग्रह एवं संरक्षण–फलागम के बाद पंचाङ्ग ग्रहणकर सुखा लें और अनार्द्र एवं शीतल स्थान में मुखबन्द डब्बों में संरक्षण करें।

संगठन–(१) दो क्रिस्टलाइन स्वरूप के तिक्तसत्व, जिनमें एक को कालमेघिन (*Kalmeghin* Q_{19} H_{31} O_5) कहते हैं, और दूसरे का रासायनिक संकेत C_{19} H_{28} O_5. है। (२) एक तिक्त लेक्टोन (*Lactone*। (३) एन्ड्रोग्रेफोलिड (*Andrographolid* : C_{20} H_{30} O_5) तथा एन्ड्रोग्रेफाइड (*Andrographide* C_{15} H_{27} O_4)। (४) टैनिन (५) अत्यल्प मात्रा में उत्पत् तैल।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–दीपन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, रक्तशोधक आदि।

मुख्य योग–कालमेघ नवायसचूर्ण।

विशेष–यकृद्रोगों में कालमेघ एक परमोत्तम औषधि है। इसका प्रयोग अनुपानरूप से भी किया जा सकता है। बाजारों में इसका टिंक्चर (**Tincture Kalmegh**) तथा प्रवाही घनसत्व या लिक्विड एक्स्ट्रॅक्ट (*Liquid Extract of Kalmegh*) भी मिलता है।

कालादाना (कृष्णबीज)

नाम। हिं०, बं–कालादाना। म०–कालादाणा। गु०–कालोकूंपो, कालादाणा। फा०–तुख्मे नील, तुख्मे कबकू। अ०–हब्बुन्नील, कुर्तुम हिंदी। अं०–फारबिटिस सीड्स (*Pharbitis Seeds*)। ले०–ईपोमेआ हेडेरासेआ (**Ipomoea hederacea** *Jack.*)।

वानस्पतिक कुल। त्रिवृत्–कुल (कॉन्वॉल्वुलासी *Convolvulaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में इसकी लता स्वयंजात पायी जाती है।

संक्षिप्त परिचय–कालादाना की एकवर्षायु (*annual*) आरोहिणी लता होती है, जो आश्रय को लपेट कर ऊपर चढ़ती जाती है। इसका तना या काण्ड प्रायः रोमश होता है। पत्तियाँ व्यास में ५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (२ से ५ इंच तक) तक, लट्वाकार, रूपरेखा में किंचित् हृदयाकार प्रायः ३ खण्डों से युक्त होती हैं। पुष्पवृन्त (*peduncles*) प्रायः पत्रवृन्त (*petioles*) से छोटा होता है, जो १-५ की संख्या में गुलाबी लिये नीले रंग के अथवा नारंगवर्ण के पुष्पों को धारण करते हैं, जिनका अधःभाग नलिकाकार (*tubular*) तथा ऊर्ध्व भाग फनेल के आकार का (*funnel-shaped*) होता है। गर्भाशय (*ovary*) तीन-कोष्ठीय (*3-celled*) तथा फल (सामान्य स्फोटी प्रकार का (*capsule*) भी तीन-कोष्ठीय होता है। प्रत्येक फल में ४-६ चिकने भूरापन लिये कालेरंग के बीज निकलते हैं। पुष्पागम-काल-सितम्बर से नवम्बर (वर्षान्त से जाड़े के प्रारम्भिक महीनों में)।

उपयोगी अंग–बीज (कृष्णबीज या कालादाना)।

मात्रा। बीजचूर्ण–१॥ ग्राम से ३ ग्राम या १॥ माशा से ३ माशा (६ माशा) तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–कालेदाने के बीज प्रायः तिकोनिया होते हैं, जो ५.५ मिलिमिटर लम्बे, ३.७ मि० मि० चौड़े होते हैं। एक तल किंचित् नतोदर होता है, जिसके बीचोबीच एक अनुलम्ब परिखा (*longitudinal groove*) होती है। बीजचोल (*testa*) मटमैले कालेरंग का, कड़ा तथा चिकना होता है। बीजों के भीतर सफेद मज्ज (गूदा या मज्जा) निकलता है। अनुलम्ब विच्छेद करने पर बीज २ चपटे दलों (*two plainted cotyledons*) का बना प्रतीत होता है, जिनमें अनेक रेजिन-कोषाएँ पायी जाती हैं। स्वाद में ये बीज पहले किंचित् मधुर किन्तु बाद में कड़वे एवं तीक्ष्ण होते हैं। १०० बीजों का तौल प्रायः ३ से ४ ग्राम होता है। अन्य विजातीय सेन्द्रिय द्रव्य–अधिकतम १%। ईथर-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विलेय सत्व (*Ether-soluble extractive*) } अधिकतम ०.५%।

ऐल्कोहल्विलेय सत्व—कम से कम १४%।

परीक्षण—ऐल्कोहल् (९०%) में कालादाना के चूर्ण को विलीन करके प्राप्त इसके रेजिन की ०.५ ग्राम (७½ ग्रेन या ३ रत्ती) मात्रा लेकर उसमें ५ सी० सी० (५ मिलिलिटर = ७५ बूँद) अमोनिया का मन्दबल विलयन (डायल्यूट सॉल्यूशन ऑव अमोनिया) मिलावें और इस मिश्रण को खूब अच्छी तरह हिला कर १५ मिनट तक रख दें। १५ मिनट में मिश्रण लाल रंग में परिणित नहीं होता किन्तु नीललोहितातीत किरणों में देखने से मिश्रण में एक हल्की नीली आभा (*light blue fluorescence*) दिखाई पड़ती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—कालादाना के बीजों के साथ अन्य अनेक बीज मिलावट के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इनमें विशेष महत्त्व का इसकी दूसरी प्रजाति है, जिसकी लताका नाम 'ईपोमेआ मूरीकाटा' है। यह फारस का आदिवासी पौधा है, और भारतवर्ष में भी कालादाना की लताओं के साथ-साथ पाया जाता है। हिन्दी में इसे 'कौड़ेना' कहते हैं। इसके पुष्पवृन्तक (*pedicels*) मोटे, गूदेदार, तथा पुष्प की ओर का सिरा अधिक स्थूल होता है, जिससे यह मुद्गराकार (*club-shaped*) प्रतीत होता है। इसका शाक भी बनाया जाता है। बम्बई बाजार में 'हब्बुल् नील' (काला दाना) नाम से इसी के बीज आते हैं। ईपोमेआ मूरीकाटा के बीज, कृष्णबीज की अपेक्षा बड़े (८½ मि० मि० लम्बे एवं ६ मि० मि० चौड़े) चिकने एवं भूरेरंग के होते हैं। इसके अतिरिक्त कृष्णबीज की भाँति इन बीजों के नतोदर तल पर अनुलम्ब परिखा नहीं पायी जाती। इसके अतिरिक्त कभी कभी शणबीज (*seeds of Crotolaria juncea L.*) एवं हरमलबीज (*Peganum harmala L.*) एवं तुलसीजाति के बीज भी मिला दिए जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—प्रायः जाड़े के अन्त में कालादाने के फल पकते हैं। उस समय पके फलों से बीजों का संग्रह कर, उनको अच्छी तरह सुखाकर कार्कबन्द शीशियों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संघटन—कालादान में ८% तक एक रेजिन पाया जाता है, जिसे कृष्णबीजीन या फार्बिटिसिन (*Pharbiticin*) कहते हैं। यही कालादाना का सक्रिय तत्त्व होता है इसके अतिरिक्त एक स्थिर तैल (*fixed oil*) १६% तथा सेपोनिन, म्यूसिलेज आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—३ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—तीव्ररेचन तथा वातकफनाशक। अहितकर—शिरः शूलकारक तथा व्याकुलता कारक। निवारण—फलों का सत तथा अम्ल पदार्थ।

मुख्य योग—कृष्णबीजादि चूर्ण।

विशेष—कृष्णबीज से कभी-कभी पेट में मरोड़ का उपद्रव हो जाता है। अतएव इसमें सोंठ मिलाना चाहिए। कालादाने के चूर्ण में शर्करा मिला कर भी प्रयुक्त किया जाता है।

काली मकोय—, दे० 'मकोय'।

काली मरिच—, दे० 'मरिच'।

लाली मुसली—, दे० 'मुसली'।

काश (कास)

नाम। काश, कास, इक्ष्वालिका हिं०—कास, कासा, कांसा, कांस। पं०—काही। अवध—खागड़। म०, बं०—कागड़। अं०—थैच-ग्रास (*Thatch-grass*), वाइल्ड सुगर-केन (*Wild Sugar-cane*)। ले०—साक्कारुम् स्पॉन्टानेउम् (**Saccharum spontaneum** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। तृण-कुल (ग्रामीनी *Gramineae*)।

प्राप्ति स्थान—समस्त भारतवर्ष के गरम प्रदेशों में तथा हिमालय प्रदेश में १५२३ मीटर से १८२८.८ मीटर (५,०००—६,००० फुट) की ऊँचाई तक कास के स्वयंजात तथा समूहबद्ध पौधे पाये जाते हैं। प्रायः नदी-नालों के किनारे तथा आर्द्र भूमि के आस-पास कास घास की तरह उगता है।

संक्षिप्त परिचय—कास बहुवर्षायु स्वरूप का तृणजातीय पौधा होता है, जो घास की भाँति उगता है। यह प्रायः नदी-नालों के कछारों में तथा आर्द्र एवं नीची जगहों पर पाया जाता है। जिस जगह कास उगता है, प्रायः जल्दी नष्ट नहीं होता। कास के पौधे साधारणतया १.५२ मीटर से २.१३ मीटर (५—७ फुट—कभी-कभी १४-१५ फुट तक) ऊँचे होते हैं। इनके काण्ड ठोस,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्तियाँ बहुत कम चौड़ी तथा उनका तट मुड़ाहुआ और, पुष्प-व्यूह (घुआ) ३० से ६० सें० मी० (१ से २ फुट) लम्बा होता है। इसकी एक बड़ी जाति भी होती है, जिसे काण्डेक्षु (सं०), किलिच (हिं०) तथा अवध में 'खागड़' कहते हैं। इसका काण्ड मोटा होता है, और इसका कलम बनाया जाता है। कास का काण्ड आपाततः देखने में ईख की भाँति (किन्तु तृणवत् पतला) और मुख में चूसने पर कुछ-कुछ मीठा होता है। इसकी जड़ तृणपंचमूल में ग्रहण की जाती है। कासा में वर्षान्त अथवा जाड़े के प्रारम्भ में पुष्पागम होता है।

उपयोगी अंग–मूल।

मात्रा। क्वाथ–१ से २ छटाँक।

संग्रह एवं संरक्षण–मूल को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–वातपित्तशामक, मूत्रविरेचनीय तथा अश्मरीभेदन, दाहप्रशमन, रक्तपित्तशामक, स्तन्यजनन, बल्य आदि।

मुख्य योग–तृणपंचमूल क्वाथ।

कासनी

नाम। (१) वन्य (स्वयंजात) हि०, पं०–कासनी। अ०–हिंद (दि-दु) बाऽऽ। फा०–कासनी, कसनाज। अं०–एण्डिह्व (*Endive*), चिकोरी (*Chicory*)। ले०–सीकोरिउम् इंटिबुस् (**Cichorium intybus** *Linn.*)। (२) उद्यानज (बागी) या लगाया हुआ। हिं०–कासनी। कश्मीर–सुज्रेहंद। अं०–दि गार्डन एण्डिह्व (*The Garden Endive*)। ले०–सीकोरिउम एण्डीविआ (**Cichorium endivia** *Linn.*)। बीज–हिं०, पं०, गु०–कासनी, कासनी के बीज। अ०–बज़्रुल् हिंदवाऽ। फा०–तुख्मे कासनी। वक्तव्य–अरबी हिंदुवाऽ इसके रूमी 'इन्टुबम्' संज्ञा के बहुवचन 'इन्टुबा' से व्युत्पन्न है।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजीटी *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान–कासनी उत्तर पश्चिम भारतवर्ष में १८२८.८ मीटर (६,००० फुट) की ऊँचाई पर तथा कुमायूँ, उत्तर प्रदेश, वजीरिस्तान, बलूचिस्तान, इरान, पश्चिमी एशिया एवं यूरोप में स्वयंजात होती है। पंजाब और कश्मीर में इसकी काफी परिमाण में खेती की जाती है। हैदराबाद, बम्बई, भडौंच आदि में भी इतस्ततः न्यूनाधिक मात्रा में बोयी जाती है। हिन्दुस्तान में अच्छी कासनी उत्तरी पंजाब एवं काश्मीर में होती है। इसकी जड़ एवं बीज तथा पुष्प यूनानी दवा बेचनेवालों तथा पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–सीकोरिडम ईंटिबुस के ३० सें० मी० से १२० सें० मी० या १ फुट से ४ फुटतक ऊँचे बहुवर्षायु स्वभाव के कोमल क्षुप होते हैं, जिनका काण्ड कोणाकार (*angled*) या खातोदर (*grooved*) होता है। इससे चिमड़ी, कड़ी शाखाएँ निकल कर चारों ओर को फैलती हैं। जड़ के पास एवं काण्ड के अधः भाग की पत्तियाँ अर्धानुत्तर-पक्षवत् (*pinnatifid*) खण्डित होती हैं, जिनके किनारे दंदानेदार (*toothed*) होते हैं। दाँतों की नोक नीचे को होती है। ऊपर की पत्तियाँ अपेक्षाकृत छोटी, सरल धारवाली तथा एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। मुण्डक (*heads*) पट्टाकार (*ligulate*) होते हैं, जो अग्रपर अकेले (*terminal and solitary*) या पत्रकोणोद्भूत गुच्छीभूत (*axillary and clustered*) होते हैं, जो विनाल होते या छोटे वृन्तों पर धारण किये जाते हैं। पुष्प चमकीले नीलेरंग के होते हैं। इसके सुखाये हुए पुष्प एवं बीज ठंढई में मिलाये जाते हैं।

उपयोगी अङ्ग–पंचाङ्ग, बीज, जड़, पुष्प।

मात्रा। पत्रस्वरस–१ तोला से २ तोला (हरी कासनी का फाड़ा हुआ रस ४ से ५ तो० तक)। मूलचूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। बीजचूर्ण ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–कासनी के बीज (जो वास्तव में चर्मफल *achenes*) होते हैं छोटे, खाकस्तरी सफेदरंग के, वजन में हल्के और स्वाद में तिक्त या फीके कुस्वाद होते हैं। कालाई लिये मोटे और भारी बीज उत्तम समझे जाते हैं। मूल या जड़, गोपुच्छाकार, गुदार, बाहर से हलकी भूरी, भीतर से सफेद, लम्बाई के रुख झुर्रीदार और स्वाद में कुछ फीकी तथा कुछ तिक्त एवं लुवाबी होती है। इसमें कभी उपमूल (*rootlets*) भी लगे होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयोगी अंगों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–कासनी के फूलों में एक स्फटिकीय ग्लुकोसाइड सिकोरिन (*Cichorin*) एवं लैक्टुसिन तथा इण्टिबिन (*Intybin*) नामक तिक्त सत्व पाये जाते हैं। बीजों में एक मृदु तैल होता है। जड़ में इन्युलिन (*Inulin* ३६% तक) एवं म्युसिलेज, तिक्तसत्व, पोटासियम् सल्फेट एवं नाइट्रेट आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। (जड़–उष्ण वीर्य)। कर्म–कफपित्तशामक, दाहप्रशमन, शोथहर, शामक, निद्राजनन, दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, तृष्णानिग्रहण, हृद्य, रक्तशोधक, मूत्रल, आर्त्तवजनन, ज्वरघ्न, (अल्प मात्रा में) कटुपौष्टिक, दाहप्रशमन। यूनानी मतानुसार हरीकासनी के पत्र प्रथम कक्षा में शीत एवं तर तथा सूखे पत्ते शीत एवं रूक्ष हैं। जंगली की अपेक्षा बोये हुए पौधों की पत्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक शीत एवं तर हैं। कासनी बीज दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष तथा कासनी की जड़ प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय में रूक्ष होती है।

मुख्य योग–अर्क कासनी।

विशेष–कासनी पत्रस्वरस को मौखिक सेवन के लिए प्रायः इसे फाड़ कर (मुरक्कब करके) पिलाया जाता है।

काहू

नाम। हिं०–जंगली काहू। अ०–ख़स्सबर्री। फा०–काहू सहराई, काहूबर्री। सिंध–बनकाहू। अं०–दि वाइल्ड लेटिस (*The Wild Lettuce*)। ले०–लाक्टूका स्कारिओला **Lactuca scariola** *Linn.* (पर्याय-लाक्टूका सेर्रिओला *L. serriola Linn.*)। बीज। अ०–ज़ज़ुल् ख़स्स। फा०–तुख़्मकाहू। हिं०–काहू के बीज।

वक्तव्य–अरबी में ख़स (या ख़स्स) शब्द का व्यवहार 'काहू' के अर्थ में होता है। परन्तु हिन्दी में इसका व्यवहार 'उशीर' या 'वीरणमूल' के अर्थ में किया जाता है। प्राचीन यूनानी काहू को 'थ्रीडास' कहते थे।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोज़ीटी *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान–जंगली काहू पश्चिम हिमालय में मुर्री से लेकर कुनावर तक जंगली होता है। काहू के बीज एवं तेल बाजारों में पंसारियों एवं हकीमों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–जंगली काहू के ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या (१ फुट से ३ फुट) ऊँचे चिकने, पत्र-बहुल, सीधे एवं एकवर्षायु या द्विवर्षायु पौधे होते हैं। पत्तियाँ २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १॥ इंच) लम्बी, अवृन्त, काण्डसंसक्त-सी, किनारे कुछ दन्तुर तथा रूपरेखा में अभिलट्वाकार–आयताकार होती हैं। पुष्प पीले रंग के तथा मुण्डकों में निकलते हैं। जंगली काहू के अतिरिक्त इसकी उद्यानज जाति (लाक्टूका साटीवा **Lactuca sativa** *Linn.*) सर्वत्र भारतवर्ष में बोयी जाती है। इसका शाकार्थ प्रचुरता से व्यवहार किया जाता है। बम्बई में इसे 'सालीटची भाजी' कहते हैं। कर्षित या उद्यानज काहू के भी अनेक भेदोपभेद होते हैं। इनके पत्ते एक दूसरे से लिपटे और बँधे हुए कलिका की भाँति एवं गोल होते हैं। बोयी प्रजातियों में किसी के पत्ते केवल हरे तथा किसी में पत्तियों के सिरे पर कुछ बैंगनी रंगत होती है। जंगली काहू के पत्र बागी से अधिक पतले और अधिक लम्बे होते हैं, चिकवे अपेक्षाकृत कम या नहीं होते तथा उसकी अपेक्षा अधिक हरे, कुछ अधिक कड़े और तिक्त होते हैं। चिकना काहू अर्थात् जंगली अंगरेजी काहू (**Lactuca virosa** *Linn.*), लाक्टूका स्कारिओला का ही एक निकटतम भेद है। बीजोद्भव काल में काहू के तने में एक आक्षीर या दूध (*latex*) पैदा हो जाता है, और पत्ते अत्यंत कड़वे होते हैं। इससे कहीं-कहीं अफीम भी बनायी जाती है, जिसे काहू की अफीम (या लाक्टूकारियम् *Lactucarium*) कहते हैं। यह बोये हुए तथा जंगली दोनों प्रकार के पौधों से बनायी जाती है। पंजाब, सिंध में खेती किये हुए काहू के दुधिया रस से काफी अफीम बनायी जाती है। इसे वहाँ 'खीखाओ' कहते हैं। औषधि में प्रायः जंगली काहू का ही प्रयोग श्रेष्ठ समझा जाता है।

उपयोगी अंग–बीज (तुख़्म काहू), बीजोत्थ तैल (रोग़न काहू) काहू की अफीम।

मात्रा। बीज–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।
तेल–(बाह्य प्रयोग के लिए) आवश्यकतानुसार।
पत्रस्वरस–१ तोला से २ तोला।
दुधिया रस–½ रत्ती से १ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। बीज–काहू के बीज सफ़ेद, चमकीले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोटे-छोटे एवं लम्बे होते हैं। इनका स्वाद फीका होता है। काहू का तेल–पीताभ श्वेत, स्वाद में किंचित् तिक्त होता है। काहू का आक्षीर–ताजी अवस्था में यह दूध सरीखा सफेद, रालदार रस होता है, जो हवा लगने पर गाढ़ा और कड़ा हो जाता है तथा इसकी रंगत भी बदल जाती है। इसकी रंगत बाहर से भूरी अथवा किंचित् ललाई लिये भूरी, किन्तु भीतर से सफेद या पिलाई लिये और टूटे हुए मोम के समान कुछ चमकीली होती है। गंध कुछ-कुछ अफीम की भाँति तथा स्वाद तिक्त होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–बीजों को अच्छी तरह मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। तैल एवं अफीम को अच्छी तरह मुखबंद शीशियों में तथा शीतल एवं अंधेरे स्थान में रखें।

संगठन–लाक्टूकारिउम् का मुख्य सक्रिय घटक लैक्टूसिन (*Lactucin*) नामक तिक्तसत्व होता है। इसके अतिरिक्त लैक्टूकोन (*Lactucone*) नामक राल-जातीय तत्त्व, लैक्टूसिक एसिड तथा अल्प मात्रा में ऑक्जैलिक एसिड एवं ३% से ६% भस्म प्राप्त होती है, जिसमें सोडियम्, पोटास एवं लौह के आक्साइड एवं कैल्सियम आदि पाये जाते हैं। पत्र में ऐल्बुमिनी पदार्थ (*albuminous matter*), कार्बोहाइड्रेट, शर्करा एवं निर्यास आदि तत्त्व तथा भस्म में प्रचुरता से नाइट्रेट्स पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–बीज–२ वर्ष। तैल एवं अफीम–दीर्घकाल तक।

स्वभाव–काहू शीत एवं तर है। पत्र (शाकार्थ व्यवहृत)–रक्तप्रसादन, तृष्णाशामक, स्वप्नजनन, स्वापजनन, मूत्रल, स्तन्यजनन, क्षुधाजनक तथा जलवायु परिवर्तन से शरीर में जो विकार होते हैं, उनका निवारण करता है। बीज–शीतजनन, शिरःशूलनाशक, अवसादक (मुसक्किन), स्वापजनन, स्वप्नजनन, बालों को शक्तिप्रद (केश्य)। काहू का तेल–निद्राजनक होता है। एतदर्थ इसको अकेले या कद्दू तथा पोस्ते के तेल में मिलाकर शिर पर लगाया जाता है। बालों को दृढ़ करने के लिए भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकारक—पत्र एवं बीज–अवाजीकर एवं विस्मृतिकारक। निवारण–पुदीना एवं करफ्स। तैल–शीत प्रकृति को तथा विस्मृति कारक एवं दृष्टिमांद्यकर। निवारण–बादाम का तेल। प्रतिनिधि–कद्दू का तेल या सफेद पोस्ते का तेल।

मुख्य योग–रोग्रन काहू।

किरमाला (चौहार)

नाम। सं०–चौहार, किरमाणीयवानी। हिं०–किरमानी अजवायन, किरमाला, छुहार जवाइन। म०–किरमणियोंवा। गु०–छुवारो, किरमाणी अजमो। पश्तु–तर्ख। अ०–शीह, अफ़सन्तीनुल् बहर। फा०–दिर्मनः। अं०–वर्मसीड् (*Wormseed*), सेंटोनिका (*Santonica*)। ले०–(१) विदेशी पौधा–आर्टेमीसिआ सीना **Artemisia cina** *Berg.*। (२) देशीपौधा–आर्टेमीसिआ मारिटिमा प्र०–रुबीकाउले (**Artemisia maritima** *Linn. forma* **rubricaule**)।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोज़ीटी : *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान–आर्टेमीसिआ सीना के क्षुप तुर्किस्तान एवं फारस तथा रूस आदि में प्रचुरता से होते हैं। आर्टे० मारीटिमा फारस, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, उत्तर-पश्चिम हिमालय प्रदेश में कश्मीर से कुमायूं तक २१२५ से ३३२९ मीटर (७,००० फुट–११,००० फुट) की ऊँचाई तक तथा पश्चिमी तिब्बत में–विशेषतः कश्मीर, बशहर, कुर्रम आदि में पाया जाता है। ध्यान रखने की बात है, कि आर्टे० मारीटिमा के सभी पौधों में सेन्टोनिन नहीं पाया जाता। छोटी अवस्था में सेन्टोनिन वाले पौधों का काण्ड कुछ रक्ताभ तथा जिनमें सेन्टोनिन नहीं पाया जाता ऐसे पौधों का काण्ड हरिताभ होता है। अतएव औषधीय दृष्टि से **A. maritima** *forma* **rubri caule** ही विशेष महत्त्व का है। फारस के 'किरमान' प्रदेश में यह औषधि प्रचुरता से होती है। किरमाला इसी का अपभ्रंश है। भारतवर्ष में फारस और अफगानिस्तान से विपुल प्रमाण में इसका आयात होता है। अधुना कश्मीर सरकार द्वारा इसके संग्रह और इससे सेन्टोनिन निकालने का प्रबंध किया गया है। सेन्टोनिन बाजारों में अंग्रेजी दवाखानों में मिलता है।

वक्तव्य–यद्यपि 'चौहार' का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में नहीं है, किन्तु उत्तर-पश्चिमी मध्ययुगीन निघण्टुकारों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने 'चौहार' का वर्णन यवानी के प्रसंग में उसके भेद के रूप में किया है। उसी के अनुबन्धस्वरूप हिन्दी, गुजराती तथा मराठी नामों में भी अजवायन का अनुबन्ध भी चला आ रहा है। किन्तु वानस्पतिक दृष्टि से 'किरमाला' का यवानी से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तथ्य यहाँ उल्लेखनीय है। उत्तर-पश्चिमी हिमालय की बालुकामय आन्तरिक घाटियों में किरमाला के पौधे प्रचुरता से पाये जाते हैं। कश्मीर में ग्रामीण क्षेत्रों में यह सर्वत्र सुपरिचित है। पश्चिमी कश्मीर (गुलमर्ग) में ग्रामीण इसे 'टेटवन (*Tethwan*)' नाम से जानते हैं। कुमायूं में इसे 'तीतपात' कहते हैं। उल्लेखनीय है कि पूर्वी कश्मीर (पहलगाँव के ग्रामीण क्षेत्र) में इसे अभी भी 'चौर' नाम से बोलते हैं, जो सीधे प्राचीन 'चौहार' से ही सम्बन्धित प्रतीत होता है। ग्रामीण लोग इसका प्रयोग पेट के दर्द में तथा पशुओं में 'पेट फूलने' आध्मान (*tympanitis*) में करते हैं। —लेखक

संक्षिप्त परिचय—आर्टेमीसिया मारीटिमा का क्षुप ०.९ मीटर से १.२ मीटर या ३ फुट से ४ फुट तक ऊँचा होता है, जिसमें अनेक पतली-पतली शाखा-प्रशाखाएँ निकली होती हैं। पत्तियाँ १.२५ सें० मी० से ५ सें० मी० या ½ इंच से २ इंच तक लम्बी, प्रायः श्वेताभ, द्विपक्षवत्-खण्डित (*2-pinnatisect*) होती हैं। खण्ड, पतले, रेखाकार होते हैं। ऊपर की पत्तियाँ अखण्डित और रेखाकार होती हैं। पुष्पमुण्डक छोटे (¼ सें० मी० तक लम्बे) अंडाकार, आयताकार या लम्बगोल तथा पत्रकोणों में गुच्छों में निकलते हैं। प्रत्येक मुण्डक में ३-८ नलिकाकार पुष्प होते हैं।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग, विशेषतः अविकसित पुष्पमुण्डक (*Santonica*) एवं सत्व (सेन्टोनिन *Santonin*)।

मात्रा। पंचाङ्ग चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। अविकसित पुष्पमुण्डक—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। सत्व—६२.५ मि० ग्रा० से १८७.५ मि० ग्राम या ½ रत्ती से १½ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—पत्तियाँ १.२ सें० मी० से ५ सें० मी० या ½ इंच या २ इञ्च तक लम्बी, द्वि-त्रिपादोत्तर पक्षवत् खण्डित (*2-pinnatisect*) होती हैं। खण्ड (*segments*) अनेक, छोटे-छोटे, रेखाकार खाकस्तरी या सफेद (*hoary*) या सूक्ष्म रोमावृत तथा नीलाभ हरेरंग के होते हैं। पुष्पमुण्डक छोटे-छोटे ¼ सें० मी० से ⅕ सें० मी० लम्बे), अंडाकार या आयताकार तथा अवृन्त या बहुत छोटे वृन्त युक्त होते हैं, जिनमें ३ से ८ नलिकाकार पीताभवर्ण के पुष्प होते हैं। सभी मुण्डकों के पुष्प प्रायः समरूपिक (*homogamous*) होते हैं। आभ्यन्तर कोष का अधः भाग नलिकाकार किन्तु ऊपर का भाग कुछ घंटिकाकार (*narrowly campanulate limb*) होता है। अधः पत्रावली के पत्र (*involucral bracts*) रेखाकार-आयताकार होते हैं। इसमें कर्पूर या कायपुटी के तेल से मिलती-जुलती उग्र, मीठी, सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में सुगंधित (कर्पूरसम) तथा तिक्त होता है। भस्म—अधिकतम १०%। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम २%। सेन्टोनिन की प्रतिशत मात्रा—कम-से-कम ०.७५%।

परीक्षण—७½ रत्ती या १५ ग्रेन (१ ग्राम) औषधि लेकर उसका सूक्ष्म चूर्ण बनावें। इसे १० सी० सी० (१० मि० लि०) ऐल्कोहल (९०%) में उबाल कर छान लें। इसमें थोड़ा पोटैसियम् हाइड्रॉक्साइड मिला कर गरम करें तो द्रव गाढ़े लाकरंग का हो जाता है।

सेन्टोनिन—यह रंगहीन अथवा सफेद क्रिस्टलाइन चूर्ण के रूप में होता है, जो प्रायः गंधहीन तथा स्वाद में तिक्त अनुरसयुक्त होता है। पुराना होने पर या धूप में खुला रहने पर पीताभवर्ण का हो जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—किरमाला को अच्छी तरह मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए। सेन्टोनिन को अम्बरी रंग की शीशियों में अच्छी तरह मुखबंद करके ठंढी एवं अँधेरी जगह में रखें। किरमाला का संग्रह पुष्पमुण्डकों की अविकसितावस्था में रहने पर ही करना चाहिए। इसी समय सेन्टोनिन की अधिकतम मात्रा पायी जाती है।

वीर्यकालावधि। पंचाङ्ग एवं अविकसित पुष्पमुण्डक—१ वर्ष। सत्व (सेन्टोनिन) — कईवर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—कृमिघ्न (विशेषतः आंत्रगत गंडूपदकृमि (केंचुआ नाशक) कर्म—कफवातशामक, वेदनास्थापन, शोथहर, व्रणरोपण, रोमसंजनन, आक्षेपशामक, दीपन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(विशेषतः गंडूपद एवं सूत्रकृमिनाशक)। अधिकमात्रा में रेचन, श्वासहर, कफनिःसारक, मूत्रल, शीतप्रशमन, ज्वरघ्न, लेखन, बाजीकर, आर्त्तवजनन आदि। शरीर से इसका निस्सरण मुख्यतः मूत्र से और अंशतः मल के साथ होता है। यूनानी मतानुसार किरमाला दूसरे या तीसरे दर्जे में गरम और रूक्ष होता है.। अहितकर–शिर, आमाशय, और वातनाड़ियों को तथा शिरः शूलजनक। किरमाला के विस्तृत क्षेत्रों में देर तक घूमने से या इसके गोदामों में अधिक समय तक खड़े रहने से कभी-कभी शिरः शूल होने लगता है। सेन्टोनिन एक विषैले स्वभाव की औषधि है। अतएव मात्रा में जरा भी गड़बड़ी (बच्चों में ½ रत्ती तथा युवकों में २ से ३ रत्ती) होने से भी दुष्परिणाम प्रकट होते और कभी भी कम्प, आक्षेप तथा संन्यास *(coma)* होकर मृत्यु तक हो जाती है। रोगी को वमन, अतिसार, शिरःशूल, शीत प्रस्वेद, हृदय एवं श्वसन का अवसाद आदि उपद्रव होते तथा हर चीज पीले रंग की, और बैंगनी रंग को वस्तुएँ काली दिखाई देने लगती हैं।

निवारण – विषाक्तता होने पर आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिए। आक्षेप की स्थिति में केन्द्रिक वामक द्रव्य यथा एपोमार्फीन आदि का प्रयोग कर सकते हैं। आक्षेप निवारण के लिए संशामक, एवं निपात *(collapse)* निवारण के लिए उत्तेजक अगद दें।

कुनरू, जंगली (बिम्बी)

नाम। सं०–बिम्बी, तुण्डी, तुण्डिकेरी। हि०–कुनरू, कुंदरु, कुंदुरु। पं०–तेलाकुचा। म०–तोंडलें। गु०–टिंडोरा, घोलां, घोली। पं०–कंदुरी। ले०–कॉक्सीनिआ कॉर्डीफोलिआ **Coccinia cordifolia** *(L.) Cogn.* (पर्याय–कॉक्सीनिआ इंडिका **Coccinia indica** *W. & Arn.;* सिफेलेण्ड्रा इंडिका *Cephalandra indica Naud.*)

वानस्पतिक कुल। कूष्माण्ड–कुल (कूकुरबिटासी *Cucurbitaceae*)।

प्राप्तिस्थान – प्रायः समस्त भारत में कुनरू की जंगली (कड़वी या तिक्त) तथा लगायी हुई (मीठी) दोनों प्रकार की लताएँ पायी जाती हैं। कुनरू की बेल प्रायः पान के बाड़ों में लगायी जाती है, और ताम्बूल बेचने वाले इसके फल तरकारी बाजारों में बेचने के लिए लाते हैं। जंगलीलता का पंचाङ्ग तिक्त होता है। औषध्यर्थ प्रायः इसी का व्यवहार किया जाता है।

संक्षिप्त परिचय–कुनरू की बहुवर्षायु स्वरूप की अनेक शाखा-प्रशाखायुक्त प्रसरणशील अथवा आरोहणशील लताएँ होती हैं। काण्ड कोमल, चिक्कण तथा नालीदार होता है। तंतु या प्रतान (*tendrils*) कोमल, सूक्ष्मधारीदार तथा निःशाख होते हैं। पत्तियाँ ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच तक लम्बी, चौड़ी, रूपरेखा में आधार की ओर हृदयाकार तथा ५–खण्डों वाली होती हैं। सिराजाल में आधार से अग्र की ओर ५ प्रमुख शिराएँ करतलाकार स्थित होती हैं। पर्णवृन्त १८.७५ मि० मी० से ३.१२५ सें० मी० (½ इंच से १¼ इंच) लम्बा होता है। नर एवं स्त्री पुष्प पृथक्-पृथक् पुष्पवाहक दण्ड पर निकलते हैं। फल अण्डाकार-बेलनाकार २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच तक लम्बे, कच्ची अवस्था में हरे तथा अनुलम्ब दिशा में श्वेतधारियों से युक्त तथा पकने पर लाल हो जाते हैं। कभी-कभी फलों का अग्र कुछ चोंचदार होता है। जंगली पौधों का पंचाङ्ग अत्यंत तिक्त होता है। लगाये हुए पौधों के कच्चे फलों की तरकारी बनायी जाती है। बीज गोलाकार, पीताभ भूरेरंग के तथा कुछ चपटे होते हैं। जंगली लताओं का व्यवहार औषध्यर्थ किया जाता है।

वक्तव्य–उत्तर-पश्चिमी भारत में 'बिम्बी' अतिप्राचीन काल से सुविज्ञात है। 'कूकूटविटासी' कुल का अन्य शाकवर्गीय (वल्लीफल) लताओं की भाँति इसकी लता (वन्य) तथा फल आदि सभी अंग तिक्त होते हैं। उसी प्रजाति को ही कर्षित करके मीठेफल वाली कर्षित लता को उत्पादित किया गया। जंगली लता के फल पकन पर गाढे लालरंग के तथा अत्यन्त आकर्षक एवं प्रियदर्शन हो जाते हैं। पके फलों की भी तिक्तता जाती रहती है और यह पक्वफल स्वाद में मधुर हो जाते हैं। वनवासी तथा ग्रामीण इन फलों को खाते हैं। भारतीय साहित्य एवं परम्परा में 'बिम्बी' का उल्लेख एवं परिचय वैदिक साहित्य से लेकर परवर्ती काल में सर्वत्र मिलता है। पके फलों के प्रियदर्शन रक्तवर्ण से संस्कृत के कवि एवं लेखक भी बहुत प्रभावित हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, और उदीयमान सूर्य की लालिमा की समता पक्व-बिम्बी फलों की रक्तिमा से की गयी है। तथा नायिका के अधरोष्ठ की लालिमा की अभिव्यक्ति के लिए बिम्बीफल की रक्तिमा का उपयोग उपमान् के रूप में किया गया है, जिससे नायिकासौन्दर्यवर्णना में 'बिम्बोष्ठी' आदि पदों का भूरिशःउल्लेख मिलता है। किन्तु बिम्बी की परवर्ती क्षेत्रीय संज्ञायें कुनरू, टिंडोरा, घोला, गोल्हा, तेलाकुचा आदि बिम्बी से व्युत्पन्न नहीं है। —लेखक

उपयोगी अङ्ग—पंचाङ्ग।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला।

चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कुनरू का फल गूदेदार तथा रूपरेखा में प्रायः बेलनाकार होता है। प्रगल्भ फल ५ सें० मी० या २ इंच तक लम्बा तथा व्यास में २.५ सें० मी० या १ इंच तक होता है। कच्चाफल हरा होता है और उसपर अनुलम्ब दिशा में लगभग दस सफेद धारियाँ होती हैं। जंगली फल तो अत्यंत तीते होते हैं, परन्तु लगायी हुई लताओं का कच्चाफल तरकारी बनाने के लिए प्रयुक्त होता है, और यह तीता नहीं होता। पकने पर यह लालरंग का हो जाता है। किन्तु फल अस्फोटी होते हैं। इनके अन्दर अनेक बीज भरे होते हैं। मूल—अच्छी मिट्टी में उगी लताओं का मूल कन्दाकार सीधा तथा काफी लम्बा होता है, जिसकी मोटाई अग्र की ओर उत्तरोत्तर कम होती जाती है। किन्तु पथरीली जमीन में यह टेढ़ा-मेढ़ा और ग्रन्थिल होता है। उक्त जड़ों की अधिकतम मुटाई व्यास में २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च तक होती है। बाह्यतः यह हल्के पीताभ भूरेरंग की होती है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटातल पीलेरंग का मालूम होता है, जिसमें मज्जक-किरणें (*medullary rays*) अत्यन्त स्पष्ट होती है। जड़ों पर क्षत करने से गाढ़ा रस निकलता है, जिसमें कुछ-कुछ खीरे की-सी गंध पायी जाती है। स्वाद में यह कुछ-कुछ खट्टापन लिये कसैला और तीता होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—वर्षा के अन्त में पंचाङ्ग का संग्रह कर छायाशुष्क कर लें और मुखबंद डिब्बों में संरक्षण करें। स्वरस के लिए तीते पौधे का व्यवहार करें।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—दीपन, कटु पौष्टिक, यकृदुत्तेजक (अल्पमात्रा में) तथा वमन, विरेचन (अधिक मात्रा में), रक्तशोधक, शोथहर, कफनिःसारक, मूत्रसंग्रहणीय, मधुमेहनाशक, स्वेदजनन ज्वरघ्न, आदि।

मुख्य योग—जुवारिश कुंदुर, माजूर कुंदुर।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ०) षोडशमूलिनी द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) ऊर्ध्वभागहर द्रव्यों में 'बिम्बी' का भी उल्लेख है।

कँवाच या कौंच (कपिकच्छु)

नाम। सं०—कपिकच्छु, आत्मगुप्ता, ऋष्यप्रोक्ता, मर्कटी, कण्डुरा, प्रावृषायणी। हिं०—कवाँच, कौंच। बं०—आलकुशी। मा०—किवाँच। म०—खाजकुहिली गु०—कौचा, कवच। अं०—काउ-इच (*Cowitch*), काउ-हेज (*Cowhage*)। ले०—मूकूना प्रूरिटा **Mucuna prurita** *Hook.* (पर्याय—*M. pruriens Baker.*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (*Leguminosae ; Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में हिमालय से लंका तक तथा बर्मा में मैदानी भागों में इसकी जंगली लताएँ होती हैं, और यह बोयी भी जाती है।

संक्षिप्त परिचय—कँवाच की एकवर्षायु चक्रारोही लताएँ होती हैं, जो वर्षा-ऋतु में उत्पन्न होती हैं, और शरद्-हेमन्त में पुष्प एवं फल लगते हैं। पत्ती संयुक्त, त्रिपत्रक, पत्रक ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० (३ से ८) इंच लम्बे, लट्वाकार या विषमकोण—समचतुर्भुजाकार (*rhomboid*), ऊपर चिकने तथा नीचे रोमश होते हैं। मंजरी सदण्डिक (*receme*) नीचे को लटकी हुई या झुकी हुई (*drooping*) १० सें० मी० से २० सें० मी० (२ इंच से ८ इंच) लम्बी तथा प्रत्येक में १०—३० बैंगनी रंग के पुष्प होते हैं। शिम्बी या फली (*pod*), ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (२ इंच से ३ इंच) लम्बी तथा १.५ सें० मी० से २ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच से $\frac{4}{5}$ इंच) तक चौड़ी, अग्र पर मुड़ी हुई जिससे रूपरेखा में अंगरेजी *S* की भाँति होती है। पृष्ठ पर लम्बी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धारियों से युक्त तथा हल्के भूरे रंग के सघन विषैले रोमों से ढकी (*longitudinally ribbed and covered with dense pale-brown bristles*) होती है। प्रत्येक फली में ४ से ६ बीज होते हैं। फलियों का शाक और अचार बनाते हैं। शरीर पर लगाने से उक्त रोम खुजली, दाह एवं शोथ उत्पन्न करते हैं।

उपयोगी अंग—बीज, मूल एवं रोम।

मात्रा। (१) बीजचूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। (२) रोम (कृमिघ्नकर्म के लिए)—०.५ ग्राम से ६ ग्राम या ४ रत्ती से ६ माशा। (३) मूल-क्वाथ—२½ तो० से ५ तो०।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कँवाच के बीज लोबिया के समान, किन्तु उससे बड़े, चिकने और कालाई लिये होते हैं। इनके भीतर से सफ़ेद गिरी (मग्ज) निकलती है। यही बीज कौंचबीज अथवा तुख्मकौंच के नाम से व्यवहृत होते हैं। फलियों पर पाये जाने वाले रोम (*cowhage*) पीताभभूरे रंग के ऊर्णवत् बाल (*felted mass of hairs*) होते हैं, जिनमें जगह-जगह फलत्वक् (*pericarp*) के सूक्ष्म टुकड़े भी मिले होते हैं। उक्त बाल १ मि० मी० से २½ मि० मी० लम्बे एवं तीक्ष्णाग्र होते हैं। आधार पर परिधि की मोटाई ६० माइक्रान किन्तु इसके बाद ग्रीवावत् कम चौड़े और आगे पुनः मोटे (१०० μ) होते हैं। इसके बाद अग्र की ओर क्रमशः नुकीले हो जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—कँवाच के पके बीजों को मुखबन्द पात्रों में रखें। रोमों का संग्रह शीशियों में करना चाहिए तथा उस पर "स्पर्श निषिद्ध *Carefully to be handled*" का निर्देश-पत्रक लगाना चाहिए।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरुस्निग्ध। रस—मधुर, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—(बीज, बल्य, बृंहण, शुक्रल एव बाजीकर होते हैं। रोम कृमिघ्न हैं। मूल योनि-संकोचक होता है।

मुख्य योग—वानरी गुटिका, माषबलादि पाचन।

विशेष—रोपित कपिकच्छु या कँवाच की फलियों का शाक भी खाया जाता है। चरकोक्त (सू० अ० ४) बल्य-महाकषाय में ('ऋषभी' नाम से), मधुरस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में ('ऋष्यप्रोक्ता' नाम से) तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) विदारिगन्धादिगण एवं वातसंशमनवर्ग (सू० अ० ३९) के द्रव्यों में ('कच्छुरा' नाम से) कपिकच्छु की भी गणना है।

केवड़ा (केतक)

नाम। सं०—केतक, सूचीपुष्प, क्रकचच्छद। हि०—केवड़ा। बं०—केया। म०—केवड़ा। गु०—केवड़ो। अ०—काज़ी, कादी, कदिर। फा०—कादी, गुलकेरी। अं०—अम्ब्रेला-ट्री *Umbrella Tree*। ले०—पांडानुस् टेक्टोरिअस् **Pandanus tectorius** *Soland ex Parkinson* (पर्याय—पांडानुस ओडोराटिस्सिमुस् (*P. odoratissimus Roxb.*)।

वानस्पतिक कुल। केतक्यादि-कुल (पांडानासी *Pandanaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिण भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्र-तटवर्ती प्रदेशों में तथा अंडमान द्वीपसमूह में यह प्रचुरता से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सुगंधित पुष्पों के लिए बगीचों में लगाया जाता है। इसकी झाड़ियाँ समस्त भारतवर्ष में पायी जाती हैं।

संक्षिप्त परिचय — केवड़े का गुल्म दूर से देखने में खजूर के वृक्ष की तरह मालूम होता है, जो ३ मीटर से ३.६ मीटर या १० फुट से १२ फुट ऊँचा होता है, और वायव्य मूल (*aerial roots*) निकल कर वृक्ष को सहारा देते हैं। पत्तियाँ काफी लम्बी (६० सें० मी० से १२० सें० मी० से १५० सें० मी० या २ फुट से ४-५ फुट) रूपरेखा में में तलवार की तरह (*ensiform*) तथा चमकीले हरेरंग की होती हैं, जिनके किनारे एवं मध्यनाड़ी पर आरे की भाँति सूक्ष्म कण्टक होते हैं। वृक्ष के मध्य से गोफा निकलता है, जो मकाई के भुट्टा की तरह, सफेद या मटमैला तथा परम सुगंधित होता है। पुष्पव्यूह स्थूलमञ्जरी या स्पैडिक्स (*spadix*) तह-बतह लिपटे हुए पत्तों (*spathes*) से आवृत्त रहता है। यह इसका पुंपुष्प भेद (*male inflorescence*) है। इसको प्रायः 'केवड़ा' कहते हैं। स्वर्णकेतकी (सोनकेतकी) का पेड़ सफेद या लाल मोटे गन्ने की तरह मालूम होता है। फूल केवड़े के फूल से छोटा, पिलाई लिये सफेद और अत्यंत सुगन्धित होता है। यह इसका 'स्त्रीपुष्प' भेद है। इसे प्रायः केतकी कहते हैं। फल संग्रथित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*compound*) रूपरेखा में अंडाकार, १५ सें० मी० से २५ सें० मी० या ६ इंच से १० इञ्च लम्बा, व्यास में ६ इंच से ८ इंच तक, नारंगवर्ण का किन्तु कठोर होता है। औषधीय प्रयोग के लिए केवड़े के फूल का अर्क एवं शर्बत बनाया जाता है, तथा तिलों को फूलों में बास कर तेल निकालते हैं जिसे 'रोग़न केवड़ा' कहते हैं। इसका उपयोग दैनिक व्यवहार के लिए तथा औषधीय प्रयोग के लिए भी करते हैं। केवड़े का इत्र भी निकाला जाता है। पुष्पागम–वर्षा ऋतु में। फलागम–शरद् ऋतु में।

उपयोगी अंग – पुष्प, मूल एवं बीज।

मात्रा–अर्क केवड़ा (केतकार्क)–४ तोला से ६ तोला। शर्बत केवड़ा (केतक पानक)–२ तोला से ४ तोला। मूलस्वरस–२ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण–मूल एवं बीज आदि को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें। पुष्पों से अर्क आदि बनाने का कार्य मौसम में ताजी अवस्था में किया जाता है।

संगठन–केवड़े के पुष्पों में सुगंधित उड़नशील तेल पाया जाता है। यह इसका सक्रिय तत्त्व होता है।

वीर्यकालावधि। जड़ एवं बीज–१ वर्ष तक। अर्क आदि–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–तिक्त, मधुर कटु। विपाक–कटु। वीर्य–अनुष्णशीत (शीत ?)। प्रधान कर्म–सौमनस्यजनन, आक्षेपहर, दीपन–पाचन, अनुलोमन, मस्तिष्क एवं ज्ञानेन्द्रियों को बलप्रद, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, कटु, पौष्टिक, हृद्य एवं हृत्स्पन्दन-नाशक, स्फोटयुक्त ज्वरों में विशेष उपयोगी। इसका मूल-मूत्र संग्रहणीय एवं प्रमेहनाशक एवं प्रजास्थापन। बीजों की क्रिया केशर की भाँति। अहितकर–प्रसेकोत्कारक। निवारण–अर्कबेदमुष्क। प्रतिनिधि–लालचन्दन।

मुख्य योग–अर्क केवड़ा एवं शर्बत केवड़ा (केतक पानक)।

केस (श) र (कुंकुम)

नाम। सं–कुङ्कुम, रुधिर, संकोच, काश्मीरज (काश्मीर)। हिं०, म० गु०–केसर। बं०–कुङ्कुम। अ०–ज़ाफ़रान। फा०–करकीमास। अं०–सैफ्रन (*Saffron*)। ले०–क्रोकुस् साटीवुस् (**Crocus sativus** *Linn.*)। लैटिननाम इसकी वनस्पति का है।

वानस्पतिक कुल। केसरादि-कुल (ईरीडासी *Iridaceae*)।

प्राप्तिस्थान–केसर, दक्षिण यूरोप का आदिवासी पौधा है। स्पेन, फ्रांस, इटली, यूनान, टर्की एवं फारस तथा चीन और हिन्दुस्तान में इसकी खेती की जाती है। भारतवर्ष में कश्मीर एवं जम्मू (पाम्पुर तथा किश्तवाड प्रान्त) में काफी परिमाण में इसकी खेती की जाती है।

वक्तव्य–यद्यपि 'कुङ्कुम' या 'केसर' का उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं मिलता, किन्तु पुराकालीन ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं वैदिक कालोत्तर साहित्यिक प्रमाणों से लक्षित होता है, कि भारतीयों को इसका ज्ञान अतिप्राचीनकाल से है। काश्मीर में प्रथमतः पाम्पुर में तदनु खिस्तवाड़ आदि में इसके उत्पादन का इतिहास अपेक्षाकृत बहुत बाद का है, जैसा कि इसके 'काश्मीरज' संज्ञा के संग्रहग्रंथ (अष्टाङ्गहृदय, उत्तर अ० ३७) एवं तत्परवर्ती ग्रन्थोल्लेख से भी प्रतीत होता है। कुंकुम भूमध्यसागरीय क्षेत्र का आदिवासी पौधा है और उस क्षेत्र में इसके पौधे वन्यरूप में भी पाये जाते हैं। भूमध्यसागरीय प्राचीनतम ईजियन सभ्यता के क्रीटनिवासी कुंकुम का उत्पादन करते थे तथा इसके पुष्पों का संग्रह व्यावसायिक स्तर पर कर्षित तथा वन्य दोनों ही प्रकार के पौधों से करते थे। उन क्षेत्रों में कुंकुम का प्रधान उपयोग 'वस्त्ररंजन व्यवसाय' में किया जाता था। तदनु गौणरूप से इसका उपयोग प्रसाधन (*Cosmetics*) में मलहर आदि के लिए तथा ईरान में खाद्यपदार्थों के संस्कार के लिए भी किया जाता था। केसर का दूसरा प्राचीन उत्पादक क्षेत्र एशियामाइनर था, जिसके किसेरिया एवं कोरिकोश क्षेत्र इसके लिए अति प्रसिद्ध थे और आज भी हैं। उल्लेखनीय है कि संस्कृत साहित्य में यद्यपि 'केसर' संज्ञा 'बकुल' वृक्ष के लिए ही व्यवहृत हुआ है, किन्तु समस्त उत्तर भारत में बोलचाल एवं बाजारों में यह कुंकुम के लिए ही व्यापक रूपेण व्यवहारप्रचलित है। कुंकुम के लिए केस(श)र का प्राचीनतम एवं मात्र उल्लेख संस्कृत परम्परा में पाणिनि के अष्टाध्यायी (४.४.५३–किसर (किशरादि) गण) में हुआ है। आयुर्वेद में संहिताओं से लेकर परवर्ती साहित्य एवं परम्परा में सर्वत्र इसके औषधीय प्रयोगों का उल्लेख एवं प्रचलन मिलता है। वस्त्ररंजन के लिए इसके व्यवहार की परम्परा भारत में भी प्राचीन काल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से पायी जाती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में संग्राह्य रंजक पुष्प किंशुक, कुसुम्भ के साथ तीसरे नम्बर पर 'कुंकुम' का भी उल्लेख है। (लेखक)

संक्षिप्त परिचय—सूरंजान की भाँति केशर के काण्ड-रहित छोटे पौधे होते हैं, जिसका भौमिक काण्ड घनकन्द (*corm*) तथा बहुवर्षायु होता है, और इसी से प्रतिवर्ष नये पौधे निकलते हैं। पत्तियाँ जड़ से निकलती (*radical*) हैं और रूपरेखा में पतली, लम्बी तथा खातोदर एवं किनारे पीछे को मुड़े होते हैं। पुष्प बैंगनी रंग के होते हैं, जो शरद् ऋतु में (*autumnal*) में प्रकट होते तथा एक-एक (*solitary*) या गुच्छों में (*clustered*) तथा छोटे वृन्तों पर धारण किये जाते (*sub-sessile*) हैं। ये पत्रकोष (*spathes*) द्वि-ओष्ठीसे तथा पुष्पध्वज (*scape*) को आवृत किये रहते हैं। पुंकेसर ३ तथा पीतवर्ण होते हैं; स्त्री केशर या योनि-सूत्र ३ भागों में विभक्त हो जाता है और प्रत्येक के ऊपर रक्ताभ सूत्राकार योनिछत्र होता है। यही व्यावसायिक केसर हैं। फल लम्ब गोल (*oblong capsule*) होता है, जो ३-कोष्ठों वाला होता है। प्रत्येक कोष में अनेक छोटे-छोटे गोल बीज भरे होते हैं।

उपयुक्त अंग—स्त्री केसर के सुखाये हुए सूत्राकार योनिछत्र या कुक्षिभाग (*Dried Stigmas*)।

मात्रा—६२.५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्राम (६२५ मि० ग्राम से २ ग्राम तक) ½ रत्ती से २ रत्ती (½ माशा से २ माशा तक)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कुक्षि (*stigma*) में तीन छत्राकर सूत्र होते हैं, जो २½ सें० मी० या १ इंच लम्बे तथा गाढ़ेलाल रंग से लेकर लालिमा लिये भूरेरंग के होते हैं। इनके किनारे दंतुर (*dentate*) या झालरदार (*fimbriate*) होते हैं। कुक्षिवृन्त (*styles*) लगभग १० मि० मी० या ⅜ इंच लम्बे, बेलनाकार तथा ठोस (*solid cylindrical*) तथा पीताभ भूरेरंग से नारंग पीतवर्ण के होते हैं। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की उग्र सुगंधि पायी जाती है, जो केसर को नम कर देने से या गरम करने से और भी उग्र हो जाती है। स्वाद में यह किंचित् तिक्त एवं सुगन्धित होती है। केसर में कुक्षिवृन्त (*styles*) अधिकतम १०% तक तथा अन्य विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक मिले होते हैं। १००° तापक्रम पर इसको शुष्क करने से अधिकतम १४% तक भार में कमी होती है। जल में घुलनशीलसत्व—कम से कम ५८%। एल्कोहल (९०%) में घुलनशीलसत्व कम से कम ६०%। पेट्रोलियम ईथर (*b. p.* ४०°–६०°) में घुलनशील सत्व अधिकतम १%। भस्म—अधिकतम ७½%।

विनिश्चय—केसर की कुक्षियों (*stigmas*) को सल्फ्यूरिक एसिड में डालने से फौरन नीले रंग की हो जाती हैं, जो बाद में नीलारुण (*purple*) तथा अन्ततः बैंगनी आभा लिये लाल रंग की हो जाती हैं। असलीकेसर के रंग का परीक्षण (*Colour Intensity*)—०.०२ ग्राम (1/60 ग्रेन) केसर को १०० मिलिलीटर (सी० सी०) जल में घोलने पर ०.१ प्रतिशत बल के पोटैसियम् डाइक्रोमेट (*Potassium Dichromate*) के जलीय विलयन की भाँति पीलेरंग का विलयन प्राप्त होता है। केसर की शुद्धता एवं शक्ति प्रमापन (*Assay*) उपर्युक्त रंगपरीक्षा द्वारा किया जाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—केसर एक मँहगा द्रव्य होने के कारण इसमें मिलावट की सम्भावना बहुत अधिक रहती है। कभी-कभी संग्रह के समय ही असली केसर पुष्प के ही अन्य अंग यथा कुक्षिवृन्त (*styles*), पुंकेशर (*stamens*) एवं पत्रदल के सूत्राकार टुकड़े (*strips of*) *corolla*) संग्रहीत कर मिला दिये जाते हैं। कभी निर्वीर्य या पुराने केसर (*exhausted saffron*) को ही पुनः रंग कर असली ताजे केशर की भाँति बेचने का प्रयास व्यापारी करते हैं। इसके अतिरिक्त केसर से मिलते-जुलते अन्य पुष्पों की मिलावट भी की जाती है, यथा कुसुम्भ या बर्र (**Carthamus tinctorius** *Linn.* (*Family* : *Compositae*) एवं जरेगुल (**Calendula officinalis** *L.* (*Family* : *Compositae*) के पुष्प ज्यों के त्यों अथवा कभी-कभी रंग लाने के लिए रंगकर मिलाये जाते हैं। कभी-कभी असली केसर के भार को बढ़ाने के लिए अनेक चीजों के मिलावट अथवा उपायों का अवलम्बन किया जाता है। इसके लिए केसर को जल से अथवा स्थिर तैल, ग्लिसरीन, सुक्रॉज, ग्लुकोज आदि सेन्द्रिय द्रव्य अथवा पोटैसियम् या अमोनियम् नाइट्रेट आदि अकार्बनिक लवणों (*Inorgnic Salts*) के विलयन से तर कर देते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नकली रंग का परीक्षण–(१) १० सी० सी० जल में ०.१ ग्राम केसर डाल कर १५ मिनट तक धीरे-धीरे हिलाते रहें, ताकि अच्छी तरह घुल जाय। जब घुल जाय तो इसे छान लें। अब इसमें १ ग्राम कोयले का विरजक चूर्ण (*Decolourising Charcoal*) मिला कर खूब हिला कर १० मिनट तक रख दें। अब इसे छान लें। इस प्रकार प्राप्त निस्यंद (*filtrate*) रंगहीन द्रव्य के रूप में प्राप्त होता है।

(२) १० मिलिग्राम (*mg.*) नकली केसर को ५ सी० सी० ऐल्कोहल् (९५%) या मेथिलऐल्कोहल् में घोलें। विलयन का रंग हरिताभ पीत वर्ण का हो जाता है। उतनी ही मात्रा असली केसर की ईथर या क्लोरोफार्म में घोलने से विलयन प्रायः रंगहीन ही रहता है। इसी प्रकार जाइलीन (*Xylene*), बेंजीन या कार्बन टेट्राक्लोराइड में घोलने पर भी विलयन रंगहीन ही रहता है। स्थिर तैल एवं ग्लिसरीन से भिगोये हुए केसर की परीक्षा–फिल्टर पेपर के २ टुकड़ों के बीच थोड़ा केसर रखकर दबावें। उक्त वस्तुओं का मिलावट होने पर सोख्ते पर तैलीय पारभासी दाग (*translucent spots*) पड़ते हैं, अन्यथा नहीं।

संग्रह एवं संरक्षण–केसर को अच्छी तरह डाटबंद शीशियों में रखना चाहिए तथा प्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन–इसमें केमरिन या क्रोकिन (*Crocin*) नामक एक रंगीन ग्लाइकोसाइड तथा पिक्रोक्रोकिन (*Picrocrocin*) नामक रंगहीन तिक्त ग्लाइकोसाइड, तथा १% उड़नशील तैल एवं ८% से १३% एक स्थिर तैल पाया जाता है। क्रोकिन लाल रंग का अक्रिस्टली चूर्ण (*amorphous red powder*) होता है, जो पानी तथा ऐल्कोहल में आसानी से घुल जाता है। कन्सन्ट्रेटेड सल्फ्यूरिक एसिड से घोलने से प्रथम गाढ़े नीले रंग का विलयन प्राप्त होता है, जो रखने पर बैंगनी तथा इसके बाद लाल और अन्ततः भूरे रंग का हो जाता है। नाइट्रिक एसिड में घोलने से हरे रंग का विलयन बनता है।

स्वभाव। गुण–स्निग्ध, लघु। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–त्रिदोषहर, सौमनस्यजनन, मूत्रल, आर्तव-प्रवर्तक, श्वयथु विलयन, लेखन, वाजीकरण, स्वेदजनन, नाड़ीबल्य। अन्य औषधियों के साथ योजित करने से उनके वीर्य को हृदय एवं मस्तिष्क तक शीघ्र पहुँचाता है। यूनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क है। अहितकर–वृक्क-दौर्बल्यकारक और क्षुधानाशक है। निवारण–अनीसूँ, शुक्तमधु और जरिश्क। प्रतिनिधि–कुष्ठ और तज।

मुख्य योग–केशरादि वटी, कुङ्कुमादि तैल।

विशेष–(१) केशर एवं नागकेसर पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। इनके विषय में भ्रम नहीं होना चाहिए। (२) चरकोक्त (सू० अ० ४) शोणितस्थापन महाकषाय (में 'रुधिर' नाम से) तथा सुश्रुतोक्त एलादि गण में ('कुङ्कुम' नाम से) केसर भी है।

कैथ (कपित्थ)

नाम। सं०–कपित्थ, दधित्थ। हिं०–कैथ, कैत, कवीत। बं०–कठबेल। म०–कंवठ। गु०–कोठुं। अं०–वुड-एपल् (*Wood Apple*)। ले०–फ़ेरोनिआ लीमोनिआ **Feronia limonia,** (*L.*) *Sw.* (पर्याय–*F. elephantum Correa.*, *Limonia acidissima* (*L.*) *Sw.*)।

वानस्पतिक कुल। जम्बीर-कुल (रूटासी *Rutaceae*)।

प्राप्तिस्थान–दक्षिण भारत में इसके जंगली वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। समस्त भारतवर्ष में इसके लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। पकने पर इसके फल का गूदा खटमिट्ठा होता है, जो खाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय–कैथ के औसत कद के ९.१४ मीटर से १२.१८ मीटर (३० फुट से ४० फुट ऊँचे) पतझड़ करने वाले वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ एकान्तर, संयुक्त (*pinnate*), पत्रक संख्या में ३–७ तक, लट्वाकार या अभिलट्वाकार तथा चिकने होते हैं, जिनको मसलने पर एक सुगन्धि (सौंफ से मिलती-जुलती) आती है। पुष्प छोटे तथा हल्के रक्त वर्ण के होते हैं, जो नम्य मंजरियों (*lax panicles*) में निकलते हैं। फल गोले या नारंगी की भाँति शीर्षों (*poles*) पर चपटे, व्यास में २.५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (१ इंच से २½ इंच) तथा बेल की भाँति कठोर वल्कलयुक्त होते हैं, जो अपक्वावस्था में खट्टे तथा कसैले और पकने पर मधुराम्ल होते हैं। वसन्त में पतझड़ होकर नयी पत्तियाँ निकलती हैं, तथा ग्रीष्म में पुष्पागम होता और वर्षान्त में फल पकते हैं। कैथ के प्रायः २ भेद मिलते हैं। एक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का फल अपेक्षाकृत छोटा तथा अधिक खट्टा और दूसरा बड़ा तथा मधुर गूदेदार होता है। औषध्यर्थ छोटा अधिक उपयुक्त है। कैथ के काण्ड एवं शाखाओं पर चीरा लगाने से एक गोंद निकलता है, जो बबूल के गोंद का उत्तम प्रतिनिधि होता है। प्रायः वर्षा के अन्त में गोंद अधिक निकलता है।

उपयोगी अंग—फल, त्वक् (छाल), पत्र एवं गोंद।

मात्रा। फलमज्जा (गूदा)—२३.२ ग्राम से ४६.४ ग्राम या २ तोला से ४ तोला।

फलस्वरस—११.६ ग्राम से २३.२ ग्राम या १ तोला से २ तोला।

पत्रकल्क—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कैथ का फल लम्बगोल या गोलाकार (*globose*) तथा बेल या छोटे गोल खरबूजे की भाँति होता है, जिसका बाहरी छिलका हल्के खाकस्तरी या मटमैले सफेद रंग का होता है, जो नाखून से खुरचने पर पतले भूसी की भाँति (*scurfy epidermis*) छूटता है। इसके अन्दर बेल की भाँति कड़ा खपड़ोहा (*rind*) होता है, जो मटमैले हरे रंग का तथा कणदार (*granular*) और भंगुर (*fragile*) होता है। कच्चे फल का गूदा कसैलापन लिये खट्टा और सफेद रंग का होता है, जो पकने पर खटमिट्ठा, स्वादिष्ट, सुगन्धित (तरबूज-जैसी हल्की सुगन्धियुक्त) तथा कुछ लाल हो जाता है। प्रत्येक फल में ५०० तक, रूपरेखा में बेल की भाँति किन्तु उसकी अपेक्षा काफी छोटे बीज होते हैं। गोंद—कैथ का निर्यास या गोंद पीले या भूरे रंग के अश्रुवत् दानों या छोटे-बड़े टुकड़ों में प्राप्त होता है। पानी में भिगोने पर बबूल की गोंद की भाँति फूलता है, किन्तु उसकी अपेक्षा अधिक चिपचिपा होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—उपयुक्त अंगों को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—फल के गूदा में काफी मात्रा में सिट्रिक एसिड तथा लवाब या पिच्छिल द्रव्य (म्युसिलेज *mucilage*) पाया जाता है। सूखे गूदे में १५% तक सिट्रिक एसिड पाया जाता है। इसकी भस्म में पोटैसियम्, केल्सियम् एवं लौह के लवण पाये जाते हैं। भस्म नमी में खुला रहने से पसीजता (*deliquescent*) है पत्तियों में (०.७३%) तक बेल की पत्तियों की भाँति उत्पत् तैल पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रुक्ष। रस—कषाय, अम्ल, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म। फल—स्तम्भन, रोचन, तृष्णाशामक, रक्तशोधक, लेखन तथा कच्चा फल अकण्ड्य किन्तु पका फल कण्ट्य होता है। पत्र—वेदनास्थापन, शोथहर, वातानुलोमन। यूनानी मतानुसार कच्चा कैथ तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष होता है। अहितकर—उरःकंठ को। निवारण—लवण, शर्करा, काली मिर्च।

मुख्य योग—कपित्थाष्टक चूर्ण।

कुकरौंधा (कुकुन्दर)

नाम। मं०—कुकुन्दर, ताम्रचूड़। हिं०—कुकरौंधा, ककरोंदा, कुकरछदी। बं०—कुकुरशोंका। म०—कुकुर वेंदा। द०—दीवारीमूली। गु०—कोकरोंदा। ले०—

(१) ब्लूमेआ लासेरा (**Blumea lacera** *D.C.*)।

(२) ब्लूमेआ बाल्सामिफ़ेरा (**Blumea balsamifera** *D.C.*)।

(३) ब्लूमेआ डेंसिफ्लोरा (**B. densiflora** *D.C.*)।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजिटी *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—ब्लूमेआ लासेरा' के क्षुप समस्त भारतवर्ष के मैदानी भागों में तथा ६०२.९ मीटर (२,००० फुट) की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। ब्लू० बाल्सामिफ़ेरा एवं डेंसिफ्लोरा हिमालय की तराई में ६०२.९ मीटर से १२०४.१८ मीटर (२ ००० फीट से ४,००० फीट) की ऊँचाई तक नेपाल, सिक्कम, आसाम, खसिया, चटगाँव आदि में प्रचुरता से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ब्लूमेआ की अन्य अनेक जातियाँ भी भारतवर्ष में पायी जाती हैं।

संक्षिप्त परिचय—कुकरौंधे के कुछ-कुछ क्षुपस्वभाव के कोमल काण्डीय पौधे होते हैं, जो नम एवं छायादार जगहों में, खण्डहरों, मैदानों एवं बगीचों में भी उगे मिलते हैं। पत्ते आपाततः देखने में कासनी जैसे, किन्तु उसकी अपेक्षा बड़े एवं मोटे और रोयेंदार होते हैं। यह प्रायः जड़ के पास निकल कर भूमि पर फैले होते हैं। पत्तियों को मसल कर सूँघने से हल्की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अरुचिकारक गंध लिये कर्पूर जैसी तीव्र सुगन्धि आती है। पहले कुकरौंधा की कतिपय जातियों की पत्तियों से कपूर प्राप्त भी किया जाता था, जिसे 'पत्रीकपूर' या 'नागीकपूर' कहते हैं। मुण्डक छोटे पीताभ या कभी-कभी जामुनी रंग के अथवा सफेद होते हैं। फूल खिलने के बाद रूई-से बारीक रेशे निकलते हैं। बीज छोटे एवं काले रंग के; तथा जड़ पतली, सफेद एवं स्वादरहित होती है। कुकरौंधे के पौधे चौमासे में उगते, जाड़ों में फूलते-फलते तथा गर्मियों तक सूख जाते हैं।

उपयोगी अङ्ग—पंचाङ्ग (विशेषतः मूल एवं पत्र)।

मात्रा। स्वरस—६ माशा से १ तोला। कल्क—१½ माशा से ६ माशा।

संगठन—कुकरौंधे की पत्तियों में काफी मात्रा में कर्पूर पाया जाता है। बाल्सामिफ़ेरा जाति में एक ग्लूकोसाइड भी पाया जाता है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफपित्तशामक, शिरोविरेचन, शोथहर, चक्षुष्य, रक्तस्तम्भन, कृमिघ्न, व्रणरोपण, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कफघ्न, ज्वरघ्न, विषघ्न, शोणितस्थापन, आदि। यूनानी मतानुसार कुकरौंधा दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। वह वातार्श एवं रक्तार्श (वादी एवं खूनी बवासीर दोनों प्रकार के अर्श को नष्ट करता है। एतर्थ पत्तों का रस अर्शांकुरों पर लगाते हैं, अथवा पत्रकल्क की टिकिया बना कर गरमागरम बाँधते हैं। मौखिक सेवन के लिए इसके पत्र स्वरस को पका कर गाढ़ा होने पर काली मिर्च का बारीक चूर्ण मिला कर गोलियाँ बनाते और वातार्श तथा रक्तार्श में खिलाते हैं। कुकरौंधा के पल और गेरू की गोलियाँ बनाकर भी अर्श में खिलायी जाती हैं। कुकरौंधे के स्वरस में सिद्ध गोघृत (कुकुन्दर घृत) भी अर्श के रोगियों के लिए एक उपयोगी कल्प है। इसे ३ माशा से ६ माशा की मात्रा में मुख द्वारा दिया जाता है।

कुचिला (कुपीलु)

नाम। सं०—कारस्कर, काकपीलु, विषतिन्दुक, काकतिन्दुक। विषमुष्टि (विषमुष्टिका)। हिं०—कुचला, कुचिला। बं०—कुचिला। म०—काजरा। गु०—झेरकोचला। बं०—कागफल। अ०—अज़ (ज़ा) राकी, फ़ल्समाही (मछली का सेहरा), ख़ानिकुल् कल्ब (कुत्ता का गला घोंटनेवाला), हब्बुल्गुराब (कागफल)। फा०—कुचला, फूलूसेमाही। अं०—नक्स वॉमिका (*Nux-vomica*), वॉमिट-नट (*Vomit-Nut*), डॉग प्वाइजन (*Dog Poison*) ले०—स्ट्रिक्नोस नक्सवॉमिका (**Strychnos nux-vomica** *Linn.*)।

वक्तव्य—यद्यपि कुचिला का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में नहीं मिलता, तथापि प्राचीन भारतीयों को यह विज्ञात था। रसशास्त्र एवं रसचिकित्सा में यह महत्त्वपूर्ण द्रव्य है, जहाँ इसका समावेश 'उपविष' वर्ग में किया गया है। रसग्रंथों एवं तत्प्रभावित आयुर्वेदीय निघण्टुओं में इसके लिए कारस्कर, विषतिन्दुक, विषमुष्टि (विषमुष्टिका) कुपीलु, कुचला आदि अनेक पर्याय दिये गये हैं। विषमुष्टि (क) का उल्लेख यद्यपि सुश्रुतसंहिता एवं अष्टांगहृदय में भी मिलता है, किन्तु सम्भवतः इससे 'कुचिला' अभिप्रेत नहीं है। सम्प्रति उत्तर भारत में यह 'कुचिला' और दक्षिण भारत में 'विषमुष्टि' नाम से व्यवहार प्रचलित है। मद्रास के कुडप्पा (*Cuddapah*) जिले में इसे '*मुष्टि Mushti*' नाम से जानते हैं। उल्लेखनीय है कि कुचिले की प्राचीन संस्कृत संज्ञा 'कारस्कर' पाणिनि कालीन उत्तर-पश्चिम भारत में व्यवहार प्रचलित थी (कारस्करो वृक्षः ॥१५६। पाणिनि ६. १. १५६)। और इसके महत्त्व को देखते हुए पाणिनि को उक्त पद की सिद्धि के लिये स्वतंत्ररूप से उक्त सूत्र की संरचना करनी पड़ी। (लेखक)।

वानस्पतिक कुल। कारस्करादि-कुल (लोगानिआसी : *Loganiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक इसके जंगली वृक्ष मिलते हैं, विशेषतया मद्रास, कोचिन, ट्रावनकोर, कोंकण, मलाबार, बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा में इसके वृक्ष विपुल पाये जाते हैं।

संक्षिप्त परिचय—कुचिले के साधारणतया मध्यम कद के किन्तु कभी-कभी बहुत ऊँचे तथा प्रायः सदाहरित वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ—अभिमुख (*opposite*), लट्वाकार (*ovate*) अथवा चौड़ी-अण्डाकार, तीक्ष्णाग्र अथवा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुण्ठिताग्र तथा चमकदार होती हैं। लम्बाई में ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इंच से ६ इंच तक लम्बी होती हैं। पत्तियों पर आधार की ओर वैसे ५ शिराएँ दिखाई पड़ती हैं, किन्तु सर्वत्र तीन शिराएँ अधिक स्पष्ट होती हैं। पर्णवृन्त (*petiole*) या डंठल ६ मि० मि० से १५ मि० मि०, पुष्प हरिताभ श्वेतवर्ण के होते हैं, जो अग्र अधोलम्बी मञ्जरियों में निकलते हैं। फल गोलाकार तथा गूदेदार होता है, जो पकने पर बाहर से नारंगी की भाँति मालूम पड़ता है। फलों में सफेद रंग का गूदा होता है, जिसमें ३ से ५ तक चपटे बीज इतस्ततः बिखरे रहते हैं। फलों के पकने पर वृक्ष अत्यन्त आकर्षक मालूम होता है।

उपयोगी अंग—बीज एवं काण्डत्वक् (छाल)।

मात्रा। बीज—६२.५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० या ½ रत्ती से २ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—(१) बीज—गोल, चपटा टिकियों की तरह, व्यास में २.५ सें० मी० या १ इञ्च (अधेला के बराबर) और चौथाई इञ्च मोटा, नाभियुक्त एवं अत्यन्त कड़ा होता है। पृष्ठतल पर यह किंचित् उन्नतोदर (*convex*) तथा ऊर्ध्वतल पर नतोदर (*concave*) होता है। परिधि पर किनारा गोला अथवा पतला तथा नुकीला-सा होता है। किनारे पर एक छोटा-सा उभार होता है, जहाँ से एक रेखा केन्द्रस्थनाभि की ओर जाती दिखाई देती है। बाहर से बीज की रंगत खाकस्तरी अथवा हरिताभ होती है, और छिलके पर रेशम की भाँति छोटे-छोटे और चमकदार घने रोंगटे होते हैं। भीतर की गिरी अर्ध—स्वच्छ, लचीली, गंधरहित और स्वाद में अत्यन्त तिक्त होती है। इसके दो दलों के भीतर एक छोटा-सा पर्दा निकलता है, जिसे 'जीभी' कहते हैं। छाल—बाजार में इसके छोटे-बड़े टुकड़े मिलते हैं, जो प्रायः १.८७५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ¾ इञ्च से १ इञ्च अथवा कभी-कभी इससे भी अधिक व्यास के होते हैं। बाहर से हल्के भूरे रंग की होती है, और इस पर इतस्ततः छोटे-छोटे गोलाकार उभाड़ होते हैं। अनुप्रस्थ विच्छेद (*transverse section*) करने से कटे हुए तल पर प्रचुरता से अति सूक्ष्म मज्ज-किरणें (*medullary rays*) दिखाई पड़ती हैं। नाइट्रिक एसिड के सम्पर्क से यह मटमैले नारंगी रंग का हो जाता है। बीजों में विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम १%। भस्म अधिकतम ३०%। स्ट्रिक्नीन—कम से कम १.२%।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट (*Substitutes and Adulterants*)—कुचले के बीजों में इसी कुल एवं प्रजाति के दो अन्य वृक्षों (१) स्ट्रिक्नोस नक्स-ब्लैंडा **Strychncs nux-blanda** *Hill* (२) स्ट्रिक्नोस पोटाटोरुम् **Strychnos potatorum** या निर्मली *Clearing Nut*) के बीजों का प्रयोग कभी-कभी मिलावट के लिए किया जाता है। इनमें प्रथम के बीज आकृति में बहुत कुछ कुचिले के बीजों से मिलते-जुलते हैं। निर्मली के बीज प्रायः अधिक मोटे और छोटे होते हैं। दोनों ही में तिताई नहीं पायी जाती। जंगलों में कुचिला काफी परिमाण में पाया जाता है। अतएव जानबूझकर मिलावट प्रायः कम ही होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पके हुए प्रगल्भ फलों से बीजों को निकाल कर जल से धोकर, धूप में सुखा लें, और इनको अनार्द्र, शीतल एवं धूल रहित स्थान में अच्छी तरह डाटबद पात्रों में रखें।

संगठन। (१) बीज—कुचले के बीजों में स्ट्रिक्नीन (*strychnine*) एवं ब्रूसीन (*Brucine*) नामक दो महत्त्व के ऐल्केलॉइड (क्षारोद) पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त वामिसीन (*Vomicine*), कोलुब्रिन (α *Colubrine* & β *Colubrine*), लोगानिन (*Loganin*) नामक ग्लाइकोसाइड (मधुमेय सत्व), ३% तक वसामय तत्त्व भी पाये जाते हैं। ऐल्कलायड्स की सकल मात्रा (*Total alkaloids*) २.६% से ५.३% तक होती है, जिसमें लगभग आधा स्ट्रिक्नीन होती है। छाल—में केवल 'ब्रूसीन' ही पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—दीर्घ काल तक।

स्वभाव। गुण—रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—दीपन, पाचन, नाड़ी बल्य, आमवात नाशक, वाजीकरण एवं शूल प्रशमन तथा स्वेदापनयन आदि। कुचिला तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कफज एवं वातज व्याधिनाशक, दीपन, नाड़ीबल्य, सारक, उत्तेजक, हृदयबलदायक, श्लेष्मनिस्सारक, वाजीकर, वस्ति-बलदायक, रक्तप्रसादन, एवं त्वग्रोगनाशक होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहितकर—अशोधित कुचला अधिक मात्रा में सेवन करने से आक्षेप एवं बुद्धिविपर्यय उत्पन्न कर देता है। इसके बाहरी प्रयोग से छाले (विस्फोट) पड़ जाते हैं। निवारण—शर्करा, लवाब और समस्त प्रकार के स्नेह।

मुख्य योग—अग्नितुण्डी, शूलहरण योग, लक्ष्मीविलास, हब्जे अज़ाराकी एवं माजूनकुचला आदि।

विशेष—आभ्यन्तर प्रयोग के लिए शुद्ध कुचिले का प्रयोग करना चाहिए। बीज के दोनों दलों के बीच की 'जीभी' निकाल देनी चाहिए। चूर्ण बनाने के लिए इसको आर्द्रावस्था में ही कूटने से आसानी से चूर्ण बन जाता है।

विषाक्त प्रभाव—अशोधित रूप में अथवा मात्रातियोग में कुचिले का सेवन करने से पेशियों में आक्षेप आने लगते हैं, और धनुस्तम्भ-जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। विषाक्तता होने पर औषधि सेवन के आधे घण्टे के अन्दर ही यह लक्षण प्रकट होते तथा अन्ततः श्वासावरोध होकर मृत्यु तक हो जाती है। चिकित्सा—प्रारम्भ में स्टमक पम्प द्वारा अथवा अन्य उपायों द्वारा आमाशय का प्रक्षालन करें और दूध में घी मिलाकर या अण्डे की सफेदी आदि द्रव्यों का सेवन करावें। अफीम आदि प्रतिविषों का भी उपयोग कर सकते हैं।

कुटकी (कटुका)

नाम। सं०—कटुका, कटुकी, तिक्ता, मत्स्यरोहिणी। हिं०—कुटकी। पं०—कौड़। बं०—कट्की। म०—कालीकुटकी, बालकडू। गु०—कडू। अ०, फा०—खरबके हिन्दी। ले०—प्रीक्रोर्हीजा कुर्रोआ (**Picrorrhiza kurrooa** *Royle.*)।

वानस्पतिक कुल। कटुका-कुल (स्क्रोफुलारिआसी *Scrophulariaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष में हिमालय में कश्मीर से सिक्किम तक २६२७ मीटर से ४५६९ मीटर या ९,००० फुट से १५,००० फुट की ऊँचाई तक। इसका सुखाया हुआ भौमिक काण्ड कुटकी के नाम से सर्वत्र पंसारियों के यहाँ बिकता है। भारतीय बाजारों में कुटकी का आयात मुख्यतः पंजाब आदि उत्तर-पश्चिम हिमालय प्रदेश तथा सिक्किम-हिमालय से होता है। अमृतसर कुटकी की एक प्रधान मंडी है।

संक्षिप्त परिचय—कुटकी के छोटे-छोटे तथा मृदुरोमावृत्त शाकजातीय पौधे होते हैं, जिनका भौमिक काण्ड कड़ा, बहुवर्षायु स्वभाव का तथा स्वाद में तिक्त होता है। पत्तियाँ ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इञ्च से ४ इञ्च तक लम्बी, आधार की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़ी होती हुई डंठल से मिल जाती है, जिससे पत्ते रूपरेखा में चमचे के आकार के अर्थात् पृथुपर्णवत् या स्पैथुलेट (*spathulate*) मालूम होते हैं। बनावट में यह चर्मिल (*coriaceous*), अग्रपर गोलाकार तथा किनारे सूक्ष्म दंतुर (*serrate*) होते हैं। पुष्पध्वज या पुष्पदण्ड या दंड (*scape*) पत्तियों के बीच से मूल से निकल कर ऊपर को बढ़ता है, जिसके अग्र पर ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इञ्च से ४ इञ्च लम्बी शूकीवत् मञ्जरी (*spike*) निकलती है। फल सामान्य स्फोटी प्रकार का (*capsule*) तथा १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च लम्बा होता है। औषजि में भौमिक काण्ड का व्यवहार होता है, जो कुटकी के नाम से बाजार में मिलता है।

उपयोगी अंग—सुखाया हुआ भौमिक काण्ड (*Dried Rhizome*)।

मात्रा—कटुपौष्टिक गुण के लिए—६२५ मि० ग्राम० से १.२५ ग्राम या ५ रत्ती से १० रत्ती। पर्यायज्वरहित गुण के लिए—२ ग्राम से ३ ग्राम या २ माशा से ३ माशा। विरेचनार्थ—४ ग्राम से ६ ग्राम या ४ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में कुटकी सुखाये हुए भौमिक काण्डों के छोटे-बड़े टुकड़ों के रूप में प्राप्त होती है। उक्त भौमिक काण्ड से लगी हुई सूत्राकार जड़ें पृथक् कर दी जाती हैं। बाह्य छिलका पतला, खाकस्तरी-भूरे (*greyish-brown*) रंग का होता है, जिस पर अनेक टूटी हुई जड़ों के चिह्न पाये जाते हैं। कभी-कभी इसमें वायव्य काण्ड (*aerial stem*) का भी कुछ भाग लगा होता है, जो गाढ़े भूरे रंग का तथा अनुलम्ब दिशा में झुर्रीदार होता है। वायव्य काण्ड की ओर का सिरा जड़ के ओर के सिरे की अपेक्षा मोटा होता है, तथा भूरे रंग के शल्कपत्रों (*scales*) से आवृत होता है। तोड़ने पर ये टुकड़े खट से टूट जाते (*fracture short*) हैं। जड़ अत्यन्त भंगुर तथा हल्की और अन्दर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से काली होती है। कुटकी में कोई विशेष गंध नहीं पायी जाती, किन्तु स्वाद में अत्यन्त तिक्त होती है। वायव्य काण्ड एवं विजातीय सेन्द्रिय द्रव्य की अधिकतम मात्रा २% होनी चाहिए।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–त्रायमाण (**Gentiana kurroo** *Royle*) की जड़ भी आपाततः देखने में बहुत कुछ कुटकी की ही भाँति होती है, अतएव दोनों के एक दूसरे में मिलावट की सम्भावना हो सकती है। चकराता तथा देवबन में वोल्फेनिया (**Wolfenia**) की कतिपय जातियों को लोग 'नकली कुटकी' कहते हैं। किन्तु इसका ग्रहण कुटकी नाम से कदापि नहीं होना चाहिए।

वक्तव्य–यूनानी निघण्टुकारों ने 'कुटकी' के लिए 'खरबके हिन्दी' संज्ञा देकर एक भ्रामक स्थिति पैदा कर दी है। खरबक (*Hellebore*) वास्तव में यूरोपीय वनस्पति है, जो अत्यंत विषैली होती है। यह न तो भारत में पैदा होती है, और न ही भारत में इसके आयात का ही साक्ष्य मिलता है। 'कुटकी' के साथ 'खर्बक' का अनुबन्ध पूर्णतः भ्रामक है। और यूनानी निघण्टुओं में एतद्विषयक संशोधन अपेक्षित है। खर्बक के विस्तृत विवरण के लिए देखो 'यूनानीद्रव्यगुणादर्श भाग २, पृष्ठ २१७–२२०। (लेखक)

संग्रह एवं संरक्षण–पुष्प–फल आने के बाद भौमिक-काण्ड को खोद कर उसमें लगे उपमूलों को काट कर पृथक् कर दें। शेष को मिट्टी आदि से साफ कर छायाशुष्क करें और मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन–इसमें २६.६ प्रतिशत तक पिक्रोर्हाइजिन (*Picrorhizin*) नामक तिक्त, क्रिस्टलाइन (मणिभीय स्वरूप का) ग्लाइकोसाइड पाया जाता है, जो इसका वीर्य होता है। यह जल, ऐल्कोहल (९०%), एसिटोन, एथिलएसिटट आदि में घुलनशील होता है। इसके अतिरिक्त केथार्टिक एसिड (*Cathertic acid*) भी होता है।

वीर्यकालावधि–१–२ वर्ष।

स्वभाव–गुण–रूक्ष, लघु। रस–तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–ज्वरघ्न, तिक्त बल्य (अल्प मात्रा में प्रयुक्त होने पर), भेदन, रक्तशोधक, कफनिस्सारक, यकृत्विकार नाशक।

मुख्य योग–तिक्तादि क्वाथ, तिक्ताद्यघृत, आरोग्य वर्धिनी।

विशेष–कुटकी विदेशी औषधि 'जन्शन रूट *Gentian Root*' का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। चरकोक्त (सू० अ० ४) लेखनीय महाकषाय में ('कटुरोहिणी' नाम से), भेदनीय महाकषाय में ('शकुलादनी' नाम से) तथा स्तन्यशोधन, महाकषाय में और तिक्तस्कन्ध (वि० अ० ८) में कहे गये द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त पिप्पल्यादि, पटोलादि एवं मुस्तादि गणों में कटुरोहिणी या कुटकी की भी गणना है।

कुटज (कुड़ा, कुरैया)

नाम। (१) सित (सफेद) या कड़वा कुटज–सं०–शक्र, कुटज। हिं०–कुड़ा, कोरैया, कुरया, सफेद कुड़ा। बं०–कुड़चिगाछ। गु०–कड़ो। पं०–कुरो। ले०–होलार्रहेना आंटीडोसेन्टेरिका (**Holarrhena antidysenterica** (*L.*) *Wall. ex G. Don.*; (२) असित या (काला) कुटज या मीठा कुड़ा। हिं–मीठा कुड़ा, खिरना (मिर्जापुर)। म०–पांढराकुड़ा। काठियावाड़–दुधलो। ले०–(१) राइटिआटिंकटोरिआ (**Wrightia tinctoria** *R. Br.*); (२) राइटिआ टोमेंटोसा (**W. tomentosa** *Roem, Schult.*)। इन्द्रयव–(१) हिं०–कड़ुआ इन्द्रजौ। गु०–कड़वा इन्द्रजब। म०–कडू इंदरजो। अ०–लिसानुल् असाफी-ल्ल् मुर्र। फा०–इन्द्रजवे तल्ख। (२) हिं०–मीठा इन्द्रजौ। म०–गोड़ा इन्द्रजब। अ०–लिसानुल् असाफीरहुलुब्ब। फा०–इन्द्रजवे शीरीं।

वानस्पतिक कुल। करवीर-कुल (आपोसीनासी *Apocynacsae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष।

संक्षिप्त परिचय–(१) कड़ुआ कुटज–इसके बड़े गुल्म या छोटे क्षीरीवृक्ष होते हैं। पत्तियाँ, न्यूनाधिक अवृन्त, लट्वाकार या अंडाकार आयताकार, लम्बाई में १५ सें० मी० से ३० सें० मी० या ६ इंच से १२ इंच तथा चौड़ाई में ३.७५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या डेढ़ से ५ इंच, दो कतारों में और आमने-सामने निकली होती हैं। फूल, सफेद तथा सुगन्धयुक्त और समस्थ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काण्डज गुच्छों में निकले हुए होते हैं। इसकी फलियाँ पतली, लम्बी और दो-दो एक साथ परन्तु एक दूसरे से पृथक् रहती हैं। (२) मीठा कुटज (राइटिआ टोमेंटोसा) के छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं; जिसकी शाखाएँ पतली और रोमश होती है। पत्तियाँ, अण्डाकार, अचानक नोकदार; रोमश, दो से चार इंच लम्बी (कभी-कभी अधिक) और दो कतारों में निकली होती हैं। पुष्प-हरित नारंग वर्ण या मलाई के रंग के और फलियाँ २-२ एक साथ १५ सें० मी० से ३० सें० मी० या ६ इञ्चसे १२ इञ्च लम्बी परस्पर जुड़ी हुई और पृष्ठ पर श्वेत बिन्दुओं से युक्त होती हैं। 'टोमेंटोसा' की अपेक्षा 'राइटिआ टिंक्टोरिआ' कम होता है। पत्तियाँ १० सें० मी० से २५ सें० मी० या ४ इंच से १० इंच बड़ी और कभी-कभी चिकनी होती हैं। फलियाँ २५ सें० मी० से ३० सें० मी० या १० इंच से १२ इंच लम्बी, टेढ़ी और अग्र पर परस्पर जुड़ी रहती हैं।

बीज (इन्द्र जौ)-कड़ुए कुटज के बीज रेखाकार-आयताकार, १.२५ सें० मी० या ०.५ इञ्च लम्बे और भूरे रोमगुच्छ से युक्त होते हैं। स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं। मीठे कुटज के बीज पतले, लम्बे और श्वेत-रोमगुच्छ से युक्त होते हैं।

काण्डत्वक् (छाल)-कुटज की छाल बाहर से श्वेताभ-कपिश, या भूरे रंग की तथा अन्दर से पीताभ भूरेरंग की या गहरे भूरे रंग की होती है। बाहरी तल पर लम्बाई के रुख में क्षुरियाँ पड़ी होती हैं, जिन पर इतस्ततः अनुप्रस्थ दिशा में अथवा लम्बाई की दिशा में दरारें होती हैं। तोड़ने पर छाल भंगुरता के साथ टूटती है। इसमें एक हल्की मधुर गंध होती है, तथा स्वाद में छाल अत्यन्त तिक्त होती है।

उपयोगी अंग-काण्डत्वक् (छाल *Conessi Bark*), बीज (इन्द्रयव, कुटजबीज)।

मात्रा। छाल का क्वाथ-२ तोला से ४ तोला।

बीजचूर्ण-२ ग्राम से ४ ग्राम या २ माशा से ४ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा-आयुर्वेदीय योगों में प्रायशः कुटजत्वक् एवं इन्द्रजौ से 'कड़वे कुटज' की ही 'छाल' तथा 'बीज' अभिप्रेत हैं। संग्रहकर्त्ता अविवेक के कारण पास में उपलब्ध 'मीठे कुटज' की छाल तथा बीजों का संग्रहकर लेते हैं। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। क्षारीय तत्त्व-न्यूनतम २ प्रतिशत। मद्य में घुलनशील तत्त्व-न्यूनतम ४ प्रतिशत। विजातीय सेन्द्रिय द्रव्य-अधिकतम ५ प्रतिशत। अम्ल में अघुलनशील भस्म-अधिकतम १ प्रतिशत।

संग्रह एवं संरक्षण-कुटजत्वक् (कुड़ा की छाल) का संग्रह प्रायः १० वर्ष से १२ वर्ष पुराने वृक्षों से तथा मध्य वर्षा में (जुलाई से सितम्बर तक) तथा जाड़े के अन्त में करना चाहिए। इस समय छाल में सक्रिय तत्त्वों की अधिकतम मात्रा पायी जाती है। कुटजत्वक् एवं बीजों का संग्रह करके अनार्द्र, शीतल स्थान में मुखबन्द किये हुए डिब्बों में रखना चाहिए।

संगठन-कुटजत्वक् में-कोनेसीन, कोनेसिमाइन, आइसोकोनेसिमाइन, कुरचीन, कुरचीसीन आदि ऐल्केलॉइड स्वरूप के अनेक सक्रिय तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि-१ वर्ष।

स्वभाव। गुण-लघु, रूक्ष। रस-तिक्त, कषाय। विपाक-कटु। वीर्य-शीत। प्रधान कर्म-अतिसार, प्रवाहिकानाशक तथा दीपन, स्तम्भन एवं ज्वरघ्न। चरकोक्त (सू० अ० २) वमन द्रव्यों में तथा (सू० अ० ४ में कहे) अर्शोघ्न, कण्डूघ्न; स्तन्यशोधन, एवं आस्थापनोपग महाकषाओं में कुटज भी है। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) आरग्वधादि, पिप्पल्यादि (इन्द्रयव), हरिद्रादि (कुटज बीज), बृहत्यादि (कुटज फल) एवं लाक्षादि गणों में एवं (सू० अ० ३९) ऊर्ध्व भागहर द्रव्यों में कुटज है।

मुख्य योग-कुटजारिष्ट, कुटजावलेह, वत्सकादिक्वाथ, माजूनरेगमाही एवं माजूनसालब।

विशेष-(१) माजूनरेगमाही एवं माजूनसालब नामक दोनों यूनानी योगों में 'मीठे कुटज' का ही व्यवहार होना चाहिए। (२) अमीबिक प्रवाहिका पर कुटजत्वक् (कुर्चीबार्क) की क्रिया एतदर्थ प्रसिद्ध विदेशी औषधि 'इमेटिन' की भाँति होती है। साथ ही इसमें हृदयावसादक दोष भी नहीं होता। (३) आयुर्वेदीय योगों में तथा 'कुर्चीबार्क' से कड़वा कुटज ही अभिप्रेत है।

कुलंजन

नाम। सं०-कुलञ्ज, कुलंजन। हिं०-कुलिंजन। अ०-खौलिंजान, खूलं (लि) जान, खूलिंजान अक़ारिबी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फा०—खुसखेदारु। द०—खुलंजान। म०—कुलंजन। गु०, सिंध—कुलिंजन। अं०—दि लेसर गेलंगल (*The Lesser Galangal*), ईस्टइंडियनरूट (*East Indian Root*)। ले०—आल्पीनिया ऑफ्फीसिनारुम् (**Alpinia officinarum** *Hance.*)।

वानस्पतिक कुल। आर्द्रक-कुल (जिंजिबरासी *Zingiberaceae*)।

प्राप्तिस्थान—चीन और चीन के पास हेनान द्वीप (*Island of Hainan*) का आदिवासी पौधा है। चीनीभाषा में जहाँ इसके क्षुप होते हैं, 'काओन-लिअंग-किअंग' कहते हैं। इसी से 'खौलिंजान' आदि इसके अरबी नाम व्युत्पन्न हैं। इन अरबी नामों से इसके अंगरेजी और संस्कृत आदि नाम व्युत्पन्न हैं।

वक्तव्य—आयुर्वेदीय साहित्य में कुलंजन का प्रथम प्राचीन उल्लेख आचार्य सोढल (ईसा के पश्चात् १२वीं—१३वीं शताब्दी) के गदनिग्रह में (कुलिञ्जनाद्यावलेह) तथा तदनु राजनिघण्टु (पिप्पल्यादि वर्ग ६) एवं तत्परवर्ती भावप्रकाशनिघण्टु में मिलता है। भारतवर्ष में इसका प्रवेश सम्भवतः आरम्भिक मध्यकालीन युग में मध्य एशियाई मार्ग से मुसलमान व्यापारियों एवं चिकित्सकों के माध्यम से हुआ प्रतीत होता है।

—(लेखक)

संक्षिप्त परिचय—इसके छोटे-छोटे क्षुप होते हैं, जो घास की भाँति जंगली रूप से उगते हैं, तथा इसकी चीन एवं उसके समीपवर्तीय द्वीप हेनान में जहाँ का यह आदिवासी पौधा है, इसकी खेती भी की जाती है। उक्त स्थानों में इसके पौधे ३,००० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

उपयोगी अंग—सुखाये हुए कन्दवत् भौमिककाण्ड (*Rhizome*)।

मात्रा—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कुलंजन पान की जड़ नहीं है, अपितु उक्त विदेशी पौधे का सुखाया हुआ कन्दवत् पाताली घड़ या भौमिक काण्ड है। बाजार में मिलने वाला कुलंजन इसी पातालीघड़ के टुकड़े होते हैं, जो २.५ सें० मी० से १० सें० मी० १ इंच से ४ इंच तक लम्बे और १ सें०मी० से २ सें० मी० मोटे और अनियमित रूप से शाख होते हैं। शाखाएँ आधार की ओर, दूसरे सिरे की अपेक्षा कम मोटी होती हैं। इनमें किसी-किसी टुकड़े पर उपमूल भी होते हैं। कुलंजन के टुकड़ों पर ३ मि०मी० से १० मिलिमीटर के अन्तर से सफेद मुद्रिकाकार रेखाएँ पायी जाती हैं। बाहर से गहरी ललाई लिये भूरे और अन्दर भूरापन लिये सफेद (फीका लाल) होता है। कुलंजन के टुकड़े को तोड़ने पर रेशेदार तथा चिमड़ा मालूम होता है। इसमें एक सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में अदरक की भाँति तीक्ष्ण एवं चरपरा तथा उष्ण और मसालेदार होता है। भारतवर्ष में इसका आयात चीन से होता है।

स्थानापन्न द्रव्य एवं मिलावट—स्वरूपतः एवं गुण में प्रायः बिल्कुल मिलती-जुलती कुलंजन की एक प्रजाति भारतवर्ष में भी होती है, जिसे आल्पीनिआ गालंगा (**Alpinia galanga** *Willd.*) कहते हैं। इसका वर्णन आगे स्वतंत्र द्रव्य के रूप में किया जायगा। आजकल बाजारों में जो कुलंजन मिलता है, उसमें प्रायः देशी एवं विदेशी दोनों ही प्रकार के कुलंजन मिले हुए होते हैं। कभी-कभी 'घोड़बच' के पाताली घड़ों का तथा खराब सोंठ का भी प्रयोग मिलावट के लिए करते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पत्तियाँ गिर जाने के बाद जड़ें खोद कर उनके टुकड़े काट कर सुखा कर संग्रह किया जाता है। चूँकि इसमें भी उत्पत् तैल होता है, अतएव इनको अच्छी तरह डाटबन्द साफ पात्रों में अनार्द्र एवं शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन। उड़नशील तेल ½ से १%; रंगहीन, गंधहीन एवं क्रिस्टलाइन स्वरूप का क्लीवतत्व (*Neutral, inodorous tasteless crystalline principle : Kaempferide*) जिसे कीम्फेराइड कहते हैं; गैलेंगिन (*Galangin*) एल्पिनिन (*Alpinin*); गैलेन्गोल (*Galangol*) जो सोंठ में पाये जाने वाले तीक्ष्ण तत्त्व की भाँति होता है; वसा एवं रेजिन आदि।

वीर्यकालावधि—१ से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष। रस—कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—वातकफनाशक, स्वर्य, कण्ठ्य, श्वासहर, प्रतिश्यायनाशक, दीपन—पाचन, बाजीकर आदि। अहितकर—मूत्रावरोधकारक है। निवारण—कतीरा, चंदन, वंशलोचन। प्रतिनिधि—दालचीनी।

मुख्य योग—जुवारिश जालीनूस।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष–कुलंजन की एक दूसरी जाति भारतवर्ष में भी पायी जाती है, जो स्वरूपतः एवं गुणकर्म आदि में चीनी कुलंजन से बिल्कुल मिलती-जुलती है। इसे आल्पीनिया गैलंगा (**Alpinia galanga** *Willd.*) कहते हैं। इसका प्रयोग चीनी कुलंजन के स्थान में किया जा सकता है। महत्त्वपूर्ण होने के कारण यहाँ इसका वर्णन भी स्वतंत्र शीर्षक में किया जा रहा है।

कुलंजन देशी

नाम। सं०–सुगंधा, उग्रगंधा, मलयवचा। हिं०–कुलंजन, महाभरी। अं०–ग्रेटर गैलंगल (*Greater Galangal*), जावा गैलंगल (*Java Galangal*)। ले०–आल्पीनिआ गालंगा (**Alpinia galanga** *Willd.*)।

वानस्पतिक कुल–आर्द्रककुल (जिंजिबरासी *Zingiberaceae*)।

प्राप्तिस्थान–'आल्पीनिआ गालंगा' जावा तथा सुमात्रा का आदिवासी पौधा है। भारतवर्ष में पूर्वी हिमालय प्रदेश विशेषतः बंगाल और दक्षिण भारत में मलाबार आदि में यह स्वयंजात भी होता है, तथा व्यावसायिक उद्देश्य से इसकी खेती भी की जाती है।

संक्षिप्त परिचय–मलयवचा का मूलस्तम्भ (*Rootstock*) भी बहुवर्षायु (*perennial*) एवं कंदाकार तथा सुगंधित (किन्तु चीनी कुलंजन की अपेक्षा कम सुगंधित) होता है। इसके क्षुप ९० सें० मीटर से १८० सें० मी० या १ गज से २ गज ऊँचे तथा बच के पौधों की भाँति काण्ड पत्रमय होता है। पत्तियाँ २० से० मी० से ५० सें० मी० या ८ इंच से २० इंच तक लम्बी, ३.७५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या १½ इंच से ५ इंच तक चौड़ी, आयताकार, भालाकार, तीक्ष्णाग्र, चिकनी, ऊर्ध्व तल पर हरे रंग की, अधःपृष्ठ फीके वर्ण का तथा पत्र-तट किंचित् मोटे और सफेदी मायल रंग के होते हैं। इसमें हरिताभ श्वेतवर्ण के पुष्प लगते हैं। फल पकने पर लाल रंग के, अंडाकार, १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इंच से १ इंच लम्बे और पकने पर बहुत आकर्षक होते हैं। अंगरेजी में इनको गैलंगा कार्डमम् (**Galanga Cardamom**) कहते हैं।

उपयुक्त अंग–पाताली धड़ या भौमिक काण्ड (*Rhizome*) जो 'कुलंजन' के नाम से बिकते हैं।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–'देशी कुलंजन' के टुकड़े 'चीनी कुलंजन' की अपेक्षा अधिक मोटे होते हैं तथा इनके रंग में भी अन्तर होता है। बाहर से यह नारंगवर्ण लिये भूरेरंग का होता है, और अन्तर्वस्तु पीताभ-श्वेतवर्ण का होता है। इसके अतिरिक्त गंध एवं स्वाद में भी यह मन्द होता है। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम २%। अम्ल में अघुलनशील भस्म—३%। ऐल्कोहल (९०%) विलेयांश—कम से कम ८%।

वक्तव्य–शेष बातें विदेशी कुलंजनवत् ही समझनी चाहिए।

कुलथी (कुलत्थ)

नाम। सं०–कुलत्थ, कुलत्थिका। हिं०–कुलथी, कुरथी, खुरथी। बं०–कुलत्थ। म०–कुलीथ। गु०–कलथी। अं०–हार्सग्राम (*Horse-gram*)। ले०–डालीकॉस बीफ्लोरस (**Dolichos biflorus** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि उपकुल (*Leguminosae : Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक ९१४.४ मीटर या ३,००० फुट की ऊँचाई तक कुलथी जंगली रूप से होती है, तथा सभी प्रान्तों में न्यूनाधिक मात्रा में इसकी खेती भी की जाती है। बाजारों में कुलथी के बीज बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय–कुलथी के एक वर्षायु पौधे होते हैं, जो पूर्णतः प्रसरी स्वरूप के होते हैं, अथवा नीचे का भाग तो खड़ा किन्तु शाखाग्र फैलनेवाले होते हैं। विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न समयों पर यह बोयी जाती है। बोने के ५-६ माह बाद प्रायः फसल तैयार हो जाती है। इसमें १.२५ सें०मी० से १.८६५ सें० मी० या ½ से ¾ इंच लम्बे, पीलेरंग के पुष्प आते हैं, जो पत्र कोणों में १ से ३ की संख्या में लगते हैं। फली लगभग ५ सें० मी० या २ इंच लम्बी, चपटी एवं रूपरेखा में टेढ़ी तथा बाह्य तल पर रोमावृत होती है। अग्र पर स्थायी कुक्षिवृन्त (*persistent style*) का अवशेष लगा होता है। प्रत्येक फली में ५-६, कुछ चपटे रूपरेखा में वृक्काकार, खाकस्तरी या रक्ताभ भूरेरंग के बीज निकलते हैं।

उपयोगी अंग–बीज।

मात्रा–२ ग्राम से ४ ग्राम या २ माशा से ४ माशा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण—कुलथी के बीजों को बन्द डिब्बों में अनार्द्र-शीतलस्थान में रखें।

संगठन—बीजों में प्रोटीन (२२$\frac{1}{2}$% एल्ब्युमिनॉइड्स), स्टार्च (५२%), तैल (२% तक), भस्म (३.२%), फास्फोरिक एसिड (१%), सौत्रिक धातु तथा प्रचुर मात्रा में युरिएज (*Urease*) पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कषाय, अम्ल। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—भेदन। कर्म—कफवातशामक। रक्तपित्त शोधक; स्वेदापनयन, शोथहर, विदाही, अनुलोमन, भेदन, कफघ्न, श्वासहर, गर्भाशयोत्तेजक, अश्मरीभेदन, मूत्रल, ज्वरघ्न, लेखन, शुक्रनाशन। यूनानी मतानुसार स्निग्धता लिये दूसरे दर्जे में गरम और रूक्ष है।

मुख्य योग—कूलत्थादि प्रलेप, कुलत्थयूष, कुलत्थाद्य घृत।

विशेष—कुलथी का क्वाथ रसशास्त्र में धातुओं के शोधन में बहुशः प्रयुक्त होता है।

कुष्ठ (कूट कड़ुआ)

नाम। सं०—कुष्ठ, गद, वाप्य, पाकल, कश्मीरज। हिं०—कुट, कड़वा कुट, कूट (कूठ)। अ०—क़ुस्ते हिंदी, क़ुस्तुल्-मुर्र। फा०—कुस्ते तल्ख़ (स्याह), कोश्त। बं०—कुड़। पं०—कुठ। गु०—कठ, उपलेट। ते०—कोस्तम्। अं०—कॉस्टस (*Costus*)। ले०—साउस्सूरेआ लाप्पा (**Saussurea lappa** *C. B. Clarke*)।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजीटी *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—कश्मीर तथा पंजाब में २४०८.३६ मीटर से ३६५६.६ मीटर या ८,००० फुट से १२,००० फुट की ऊँचाई पर। कुष्ठ कश्मीर का आदिवासी पौधा है, जो गुलमर्ग, सौनमर्ग, झेलम-घाटी एवं किश्तवार (कष्टवार) आदि स्थानों में पहाड़ी ढालुओं पर स्वयंजात पाया जाता है। औषधि की माँग अधिक होने के कारण कश्मीर सरकार इसकी खेती भी करती है। हिमालय प्रदेश के अन्य ऊँचे क्षेत्रों में भी कुष्ठ लगाने से आसानी से लग जाता है। सम्प्रति 'कूट' का उत्पादन, संग्रह एवं व्यापारविनिमय जम्मू-कश्मीर राज्य के एकाधिकार में किया जाता है।

संक्षिप्त परिचय—कुष्ठ का क्षुप बहुवर्षायु, ऊँचा, अत्यन्त सघन एवं दृढ़ होता है, और प्रतिवर्ष पुरानी जड़ से उगता है। काण्ड सीधा, जड़ से निकला हुआ तथा ०.९ मीटर से २.१५ मीटर या ३ फुट से ७ फुट तक ऊँचा होता है। जड़ के पास की पत्तियाँ बहुत बड़ी ०.६ मीटर से १.२ मीटर (२ फीट से ४ फीट तक लम्बी), रूपरेखा में त्रिकोणाकार या हृदयाकार होती हैं। काण्ड की पत्तियाँ अपेक्षाकृत काफी छोटी, सनाल अथवा विनाल (पत्र दंडरहित) होती हैं। निचले भाग की प्रायः दो समान खण्डों वाली होती हैं, जो तने के आमने-सामने के पार्श्वों से संसक्त होती हैं। पुष्प-मुण्डक (*flower heads*) विनाल (पुष्पवृन्त रहित), कड़े एवं गोलाकार तथा व्यास में २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १$\frac{1}{2}$ इञ्च तक होते हैं, जो २ से ५—५ पुष्पों के गुच्छकों के रूप में तने के अग्र पर अथवा पत्रकोणों में स्थित होते हैं। पुष्पाभ्यन्तर कोष $\frac{3}{4}$ इञ्च लम्बा नलिकाकार तथा गाढ़े नीलारुण अथवा काले वर्ण का होता है। फल—अस्फोटी स्वरूप का (*achene*) तथा ८.३ मि० मी० या $\frac{1}{3}$ इञ्च लम्बा होता है जो सिरे की ओर उत्तरोत्तर पतला होता जाता है और मुड़ा हुआ होता है।

उपयुक्त अंग—शुष्क मूल (सुखाई हुई जड़)।

मात्रा। मूल चूर्ण २५० मि० ग्राम से १.२५ ग्राम (२ ग्राम से ३ ग्राम तक) या २ रत्ती से १० रत्ती (२ माशा से ३ माशा तक)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—इसके टेढ़े-मेढ़े बलखाये हुए २.५ सें०मी० से १५ सें०मी० या १ इंच से ६ इञ्च लम्बे टुकड़े होते हैं, जो व्यास में १.२५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इञ्च से १$\frac{1}{2}$ इञ्च तक मोटे होते हैं। बाह्यतः इनका रंग मटमैला मुरचई लिये लाल अथवा कृष्णाभ भूरा होता है। अधिक मोटे टुकड़े अन्दर से खोखले होते हैं। बाह्य तल प्रायः खुरदरा होता है, जिस पर लम्बाई के रूख में उभरी रेखाएँ होती हैं, तथा इतस्ततः छोटे-छोटे उभार (*tubercles*) होते हैं। इसको तोड़ने पर खट से टूट जाता है, और टूटे हुए भाग पर गोंद-सी लगी होती है, और वह खाकी सफेद रंग का होता है। कुष्ठ की जड़ स्वाद में तिक्त एवं चरपरी होती है, और इसमें ईरसा (*Orris Root*) जैसी एक विशेष प्रकार की उग्र मीठी सुगन्धि होती है। इसका चूर्ण गाढ़े भूरेरंग का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवा मुरचई रंग का होता है। कुष्ठ में विजातीय अपद्रव्य अधिकतम २% तथा उत्पत् तैल कम से कम १.६% होता है।

मिलावट (*Adulteration*)—कश्मीर एवं पंजाब जहाँ से औषधि बाजारों को रवाना की जाती है, वहाँ तथा बाजार में आने पर कूट में अनेक अन्य वनस्पतियों की जड़ों का (जो रंग-रूप में कूट से मिलती-जुलती है तथा सुगन्धियुक्त होती हैं) उपयोग मिलावट के लिए किया जाता है। इनमें प्रधानतः निम्न वनस्पतियाँ उल्लेखनीय हैं—(१) साल्विआ लानाटा **Salvia lanata** *Royle.* (तुलसी-कुल *Family* : *Labiatae*); (२) दक्षिण भारत में केमुक (केउआँ) **Costus speciosus** (हरिद्रा-कुल) एवं इन्नूला रायलेआना **Inula royleana** *D. C.* (*Compositae*) की जड़ों का उपयोग कूट की जड़ों में मिलाने के लिए किया जाता है; (३) सेनेसियो जेक्वेमान्टिआनुस्। **Senecio jacquemontianus** *Benth.* (मुण्डी-कुल); (४) मीठा कूट।

वक्तव्य—'कूट' के चिकित्सोपयोगों का उल्लेख आयुर्वेद की प्राचीन संहिताओं से लेकर अद्यावधि सर्वत्र तो मिलता ही है, किन्तु उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्तीय क्षेत्र में इसके ज्ञान एवं व्यवहार का इतिहास इससे भी अति प्राचीनतर है। अथर्ववेद में भी 'कुष्ठ' का काव्यात्मक विवरण महत्त्वपूर्ण औषधि के रूप में मिलता है। 'कूट' भारत का एक प्रधान सुगन्धितद्रव्य था, जिसकी माँग पश्चिमी तथा पूर्वी देशों में बहुत की जाती थी। अति प्राचीनकाल से भारत से निर्यात होने वाले प्रमुख व्यावसायिक द्रव्यों में इसकी गणना थी। विदेशों में इसका मुख्य उपयोग गिरजाघरों, बौद्धमन्दिरों तथा मस्जिदों में सुगन्धित धूपन के लिये किया जाता था। दुर्गम एवं क्षेत्रपरक उद्भवक्षेत्र के कारण तथा व्यावसायिक गोपनीयता से इसके सम्बन्ध में भ्रान्तियों का होना स्वाभाविक ही है। यूनानी निघण्टुओं में 'मीठा' तथा 'कड़वा' भेद से कुष्ट का विभेदन भी इसी का नमूना है। जब कि 'कूट' केवल एक ही होता है, जो उक्त कड़वा-भेद है। (लेखक)।

संग्रह एवं संरक्षण—कूट की जड़ों को प्रायः अक्टूबर-नवम्बर के महीनों में संग्रह करते हैं। इसका संरक्षण अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में तथा उपयुक्त स्थान में करना चाहिए। संग्रह के लिए प्रायः ३–४ वर्ष पुराने पौधों का मूल अधिक उत्तम होता है। जब पौधों में बीज लग जायँ तब मूलों का संग्रह करना चाहिए। फल एवं बीज लगने के पूर्व ही पौधों को उखाड़ने से उस समय एक तो यह कच्चे रस से युक्त होने के कारण कम गुणकारी होता है, दूसरे सूखने पर इसके वजन में भी काफी कमी हो जाती है, जिसमें व्यावसायिक दृष्टि से भी यह अवांछनीय है। जब इसके पत्ते, बीज आदि झड़ जायँ (मार्गशीर्ष में) तो पौधों को उखाड़ने से पूर्ण गन्ध एवं गुणयुक्त मूल प्राप्त होते हैं; तथा सूखने पर इसमें कमी भी अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। इसके मूल को उखाड़ कर उसी समय कोई-कोई इसे मन्द आँच पर भूनते हैं या भुभुल में दबा देते हैं। जब आधा रस सूख जाय तो इसे निकाल कर ९.५ सें० मी० से १० सें० मी० या ६–३, ४–४ इंच के टुकड़े काट कर या तो टोकरों में डालकर झकोरते हैं या इन्हें लम्बी-लम्बी शिलाओंपर डाल कर मलते हैं। ऐसा करने से इनके रोयें, मिट्टी के कण और ऊपर वाली श्याम वर्ण की पतली बाह्य त्वचा दूर हो जाती है। तब इसे धूप में सूखने के लिए डाल देते हैं।

संगठन—उत्पत् तैल (*Volatile oil*) १.५ प्रतिशत से २.५ प्रतिशत, कुष्ठीन (सास्युरीन *Saussurine*) नामक क्षारोद—०.०५%; राल (*Resin*) ६%; इन्यूलिन (*Inulin*) १८%; तथा टैनिन, स्थिरतेल, पोटासियम् नाइट्रेट एवं शर्करा आदि।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य-उष्ण। प्रधान कर्म—कफ निस्सारक, श्वासहर, शुक्रशोधन, रसायन, जन्तुघ्न।

मुख्य योग—कुष्ठादि चूर्ण, कुष्ठादि क्वाथ, कुष्ठादि तैल, जदारिशजालीनूस।

विशेष—आयुर्वेद में कुष्ठ एक ही है, जो कड़वा होता है। इसके किसी अन्य भेद का उल्लेख आयुर्वेद में नहीं है। बाजारू 'मीठाकूट' भ्रामक है। यूनानी में इसके (१) मीठा वा सफेद तथा (२) कड़वा (स्याह वा हिंदी) भेद अवश्य मिलते हैं। किन्तु औषधिव्यवहार में 'कड़वाकूट' ही महत्त्व का है। औषधि के अतिरिक्त इसका प्रयोग मन्दिरों में धूपन के लिए भी किया जाता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। कुष्ठ का ज्ञान भारतीयों को अति प्राचीन काल से है। अथर्ववेद में भी इसका उल्लेख मिलता है। चरकोक्त (सू० अ० ४) लेखनीय, शुक्रशोधन, एवं आस्थापनोपग महावषायों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) एलादि गण में कुष्ठ भी है।

कूष्माण्ड (पेठा)

नाम। सं०–कूष्माण्ड। हिं०–पेठा, रकसवा कोंहड़ा पं०–पेठा। बं०–कुमड़ा। गु०–भुरुं कोहलुं। म०–कोहला। सिंध–पेठो साओ। मा०–कोहला, कोला, पेठा। अ०–महूदबः। फा०–बज्दुबः, कद्दूए रूमी। अं०–दि ऐश गोर्ड (*The Ash-Gourd*), वैक्स गोर्ड (*Wax-Gourd*), ह्वाइट-गोर्ड मेलन (*White Gourd-Melon*)। ले०–बेनीनकासा हीस्पिडा **Benincasa hispida** (*Thunb.*) *Cogn.* (पर्याय–बेनीनकासा सेरीफेरा *B. cerifera Savi.*)।

वानस्पतिक कुल। कूष्माण्ड-कुल (कूकुरबिटासी : *Cucurbitaceae*)।

प्राप्तिस्थान–पेठा मलेशिया (*Malaysia*) का आदिवासी पौधा है। सम्प्रति समस्त भारतवर्ष के मैदानी भागों में तथा पहाड़ों पर १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक इसकी खेती की जाती है, और यह जंगली रूप से भी मिलता है। प्रायः घरों के आस-पास लताएँ घरों तथा छप्परों पर फैली हुई मिलती हैं। फल तरकारी बाजारों तथा हलवाइयों के यहाँ जाड़ों तथा गर्मियों में बिकते हैं। इसका पाक बनाते हैं, जो गर्मियों में उत्तम जलपान होता है।

संक्षिप्त परिचय–पेठा की लम्बी-लम्बी प्रसरी या आरोही लताएँ होती हैं। काण्ड मोटा, कोणाकार तथा कर्कश-लोमावृत या रोईदार (*hispid*) होता है। मैदानों में यह फरवरी-मार्च तथा पहाड़ियों पर मार्च-मई तक बोई जाती हैं। पत्तियाँ व्यास में १० से १५ सें० मी० या ४ से ६ इंच तथा कर्कश सफेद रोईदार होती हैं। पर्णवृन्त लम्बा ६.५ सें० मी० से १० सें० मी० या (३ इंच से ४ इंच) होता है। स्त्री एवं नर पुष्प पृथक्-पृथक् निकलते हैं। फल तरबूज की भाँति किन्तु रूपरेखा में लम्ब गोल, ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० या १–१½ फुट लम्बा तथा बाह्य तल पर नीलाभ श्वेत क्षोदलिप्त (*blutshwbite waxy bloom*) होता है, जो स्पर्श करने पर अंगुलियों में लग जाता है। फल का गूदा सफेद रंग का होता है। फलों में उन्नत किनारों वाले अनेक चपटे बीज होते हैं। बीजों की गिरी स्नेहमय होती है और खायी जाती है।

उपयोगी अंग–फल का गूदा, स्वरस एवं बीज।

मात्रा। फल–१ तोला से २ तोला। फलस्वरस–१ तो० से २ तो०।

बीज–३ माशा से ६ माशा। तैल –½ तो० से १ तो०।

संग्रह एवं संरक्षण–पक्व फलों को छायादार तथा शीतल स्थानों में संग्रहीत करना चाहिए। इस प्रकार कई महीनों तक यह ज्यों का त्यों बना रहता है।

संगठन–फलों में श्वेतसार (स्टार्च), अल्प मात्रा में प्रोटीन एवं वसा, खनिज द्रव्य, कूकुरबिटीन (*Cucurbitine*) नामक ऐल्केलॉइड, विटामिन B_1 तथा शर्करा आदि तत्त्व पाये जाते हैं। बीजों में एक स्थिरतैल पाया जाता है, जो कृमिघ्न होता है।

वीर्यकालावधि–६ मास से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रभाव–मेध्य। कर्म–वातपित्तशामक, मस्तिष्कसंशामक एवं बल्य, मेध्य, तृष्णानिग्रहण, अनुलोमन, हृद्य, रक्तपित्तशामक, फुफ्फुसबल्य, मूत्रजनन, शुक्रल, बल्य, बृंहण, संतापहर। बीज–विशेषतः बीजों से प्राप्त तैल उदरकृमिनाशक (विशेषतः स्फीतकृमि *Tapeworm* नाशक) होता है। यूनानी मतानुसार कूष्माण्ड या पेठा दूसरे दर्जे में शीत एवं तर है। अहितकर–शीतप्रकृतिवालों के लिए। इसके अतियोग से वायु एवं कफ का प्रकोप होता है। निवारण–नमक, सौंफ, काली मिर्च आदि। प्रतिनिधि–अलाबू (लौकी)।

मुख्य योग–कूष्माण्डखण्ड। कूष्माण्ड गुड़कल्याणक, कूष्माण्ड घृत, कूष्माण्ड चूर्ण। पेठे की बनी मिठाई सौमनस्यजनन और बल्य है। इसका मुरब्बा मस्तिष्क और हृदय को बल देने और सौमनस्यजनन के लिए खिलाया जाता है। इसका हलवा अधिक बनाते हैं और कभी-कभी अचार और बड़ियाँ भी बनाते हैं। पित्त और रक्त का प्रकोप शमन करने, प्यास बुझाने और मूत्र का दाह मिटाने के लिए स्वरस का उपयोग करते हैं अथवा बीजों का मज्ज (गिरी) अकेले अथवा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपयुक्त द्रव्यों के साथ शीत पेय की भाँति पीस-छान कर पिलाते हैं। शुष्क कास, उरःक्षत एवं राजयक्ष्मा में भी इसके कल्प बहुत उपयोगी होते हैं।

कोकम (वृक्षाम्ल)

नाम। सं०—वृक्षाम्ल, रक्तपूरक। हिं०, म० गु०—कोकम। कों०—रतांबी। अं०—मंगोष्टीन आयल ट्री (*Mangosteen Oil Tree*), कोकम-बटर ट्री (*Kokam Butter Tree*)। ले०—गार्सीनिआ ईन्डिका (**Garcinia indica** *Choisy*)।

वानस्पतिक कुल। नागकेशर-कुल (*Guttiferae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिणभारत में कोंकण तथा उत्तरी एवं दक्षिणी कनाडा, कुर्ग एवं पश्चिमी घाट के जंगलों में कोकम के वृक्ष प्रचुरता से मिलते हैं। बीज निकाल कर सुखाये हुए फल 'कोकम' के नाम से तथा बीजोत्थ घी-जैसा तेल 'कोकमका घी या तेल' के नाम से बम्बई आदि बाजारों में बिकता है।

संक्षिप्त परिचय—कोकम के सदाहरित वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ नीचे को झुकी होती हैं। पत्तियाँ २½ इञ्च से ३½ इंच लम्बी × १ से १½ इंच चौड़ी चिकनी तथा रूपरेखा में लट्वाकार या आयताकार-भालाकार, ऊर्ध्व पृष्ठ पर गाढ़े हरे रंग की और अधःपृष्ठ पर फीके रंग की होती हैं। जाड़ों (दिसम्बर-जनवरी) में यह पुष्पित होता है, और एक ही वृक्ष पर स्त्री एवं पुंपुष्प पृथक्-पृथक् पाये जाते हैं। फल नारंगी के समान गोल किन्तु छोटे (व्यास में १ इञ्चसे १½ इंच) और गर्मियों में (अप्रैल-मई) पकने पर लालरंग के हो जाते हैं। प्रत्येक फल में ५–८ तक बड़े चपटे बीज होते हैं। बीजों को निकाल कर फल सुखा लिये जाते हैं, और ऐसे फल बाजारों में बहुत बिकते हैं। लोग इनका व्यवहार खटाई के लिए करते हैं। यह स्वाद में खट-मिट्ठा तथा बहुत रुचिकारक होता है। बीजों को कूट कर रेड़ी के तेल की भाँति जल में उबाल कर गाढ़ा तेल प्राप्त किया जाता है, जो ठंढा होने पर मोम की भाँति जम जाता है। इसे कोकम का घी या तेल (*Kokam Butter*) कहते हैं। इसके जमे हुए पिण्डाकार अथवा मोम की तरह बर्फीनुमा टुकड़े बाजारों में बिकते हैं। इसको लोग खाते हैं। फल, तैल एवं छाल का व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोगी अंग—फल, घी एवं मूलत्वक्।

मात्रा। फल का गूदा—३ माशा से १ तोला।
तैल— ४ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्धा परीक्षा—कोकम का फल नारंगी के समान गोलाकार तथा छोटे सेव के बराबर होता है। पकने पर यह लाल रंग का हो जाता है। गूदा गाढ़े रंग का तथा स्वाद में कुछ मिठास लिये खट्टा होता है। प्रत्येक फल में ५–८ तक बड़े चपटे बीज होते हैं; जो लगभग १.८७५ सें० मी० या ¾ इञ्च लम्बे, १० मि० मी० या ⅜ इञ्च तक चौड़े, रूपरेखा में कुछ वृक्काकार तथा बाह्य तल पर झुर्रीदार होते हैं। बीज-द्विदल, काफी मोटा होता है और स्वाद में मीठा तेल की भाँति होता है। कोकम का घी या तेल—बाजार में कोकम के जमे हुए तेल के अंडाकार स्वरूप के पिण्ड (*lumps*) या मोम की भाँति बर्फीनुमा टुकड़े (*cakes*) मिलते हैं, जो हल्के खाकस्तरीय या पीताभवर्ण के होते हैं। उक्त टुकड़े कुछ दानेदार तथा स्पर्श पर स्निग्ध (*greasy*) होते हैं। बाजारू तेल में फल एवं बीज के कण या छोटे-छोटे टुकड़े भी मिले होते हैं। अतः इसको पुनः पिघला कर छान लेना चाहिए। इस प्रकार शुद्ध तैल प्राप्त होता है। इसका सेपोनिफिकेशन वेल्यू—१८७–१९१.७ तथा आयोडीन वेल्यू—२५–२६ होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—शुष्क फलों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। तेल को चौड़े मूँह के बर्तनों में ठंढी तथा अँधेरी जगह में रखनी चाहिए।

संगठन—कोकम में मेलिक अम्ल (*Malic acid*), टारटेरिक एसिड तथा सिट्रिक एसिड आदि अम्ल पाये जाते हैं। बीजों में (बीजों की तौल का २३–२६% तथा गिरी का ४४%) हल्के पीले रंग का तैल प्राप्त होता है, जो जम कर घी की भाँति हो जाता है। यह एक महत्त्व का व्यावसायिक द्रव्य है। छाल में कषाय तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। फल—१ वर्ष। तैल—दीर्घ काल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—अम्ल (कच्चा फल), मधुराम्ल (पक्व फल)। विपाक—अम्ल। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—व्रणरोपण, रोचन, दीपन, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, यकृदुत्तेजक, वातानुलोमन, हृद्य, ज्वरघ्न, दाह-प्रशमन, रक्तपित्तशामक आदि। कोकम का तेल मलहर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनाने के लिए उत्तम आधार द्रव्य होता है। स्कर्वी रोग में फल उपयोगी होते हैं।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) हृद्य महाकषाय में वृक्षाम्ल का भी उल्लेख है।

खतमी

नाम। हिं०–खतमी। फा०–खत्मी, खित्मी। तु०–हत्मी। अ०–क़सीरुल् मुन्फ़ेअत। अं०–मार्श मैलो (*Marsh Mallow*)। ले०–आल्थेआ आफ़्फ़ीसिनालिस (**Althaea officinalis** *Linn.*)–फल (बीज)। हिं०–खतमी का बीज। फा०–तुख्मेखित्मी। अ०–हब्बुल खत्मी। (पुष्प) हिं०–खतमी का फूल। बम्ब०, द०–गुलखैरु। (मूल) हिं०, बाजार–रेशाखत्मी। फा०–रेशए खित्मी, बेखेखित्मी। अ०–अस्लुल् खित्मी।

वानस्पतिक कुल–कार्पास-कुल (माल्वासी *Malvaceae*)।

प्राप्तिस्थान–संसार का लगभग प्रत्येक भाग। भारतवर्ष के पश्चिम हिमालय, विशेषतः कश्मीर, पंजाब आदि में भी खत्मी बोयी जाती है। फारस में इसकी लम्बे परिमाण में उपज की जाती है। बाजारों में खत्मी फल (बीज) 'तुख्म खत्मी' तथा फूल 'गुलखैरू' के नाम से और जड़ 'रेशाखत्मी' के नाम से मिलती हैं। भारतवर्ष में इनका आयात मुख्यतः फारस से होता है।

संक्षिप्त परिचय–खत्मी के क्षुप बड़े, बहुवर्षायु, काण्ड ६० सें० मी० से ९० सें० मी० (२ फुट से ३ फुट) ऊँचा तथा रोमावृत; पत्तियाँ साधारण, अंडाकार या गोल सोपपत्र तथा दंतुरधारवाली, अनुपत्र रेखाकार, पुष्प गुलाबी रंग के तथा बड़े (व्यास में २.५ सें० मी० से ५ सें०मी० या १ इञ्च से २ इञ्च) और गंधरहित, पत्रकोणोद्भूत पुष्पवाहक दण्ड पर गुच्छीभूत, पुटपत्र एवं दलपत्र संख्या में ५–५ तथा पुंकेशर अनेक और परस्पर संसक्त होते हैं। कुक्षिवृन्त सूत्राकार होती है। स्त्री केशर अनेक, जिनमें प्रत्येक से एक बीज युक्त फल बनता है। गुलखैरू (**Althaea rosea**) खत्मी का ही एक भेद है, जो सौन्दर्य के लिए बगीचों एवं गृह-वाटिकाओं में लगाया जाता है।

उपयोगी अंग–फल (बीज) जड़ एवं पुष्प, काण्ड एवं इसके क्षुपों से प्राप्त गोंद का भी व्यवहार होता है।

मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–खत्मी के बीज (वास्तव में फल (*carpels*) काले और चपटे होते हैं। जड़ (रेशा खत्मी) बेलनाकार या किंचित् शंक्वाकार, तंतुमय उपमूलों से युक्त ७.५ सें०मी० से १५ सें०मी० (३ इञ्च से ६ इंच) लम्बी, भीतर से सफेद और भरी हुई तथा बाह्यतः भी सफेद होती है, और उस पर लंबाई के रुख गहरी लम्बी झुर्रियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी गंध मनोरम, हल्की तथा स्वाद किंचिन्मधुर होता है। इसको थोड़ा छील कर उपयोग करना चाहिए। जड़ में खूब लबाब होता है। औषधीय प्रयोग के लिए कम से कम २ वर्ष पुराने क्षुपों से इसका संग्रह करना चाहिए। पुष्प या फूल बड़ा, गोल और चौड़ा तथा गंधरहित होता है। मूल को जलाने से ४.५% भस्म प्राप्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयोगी अंगों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्रशीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–जड़ में लबाब, पिष्टमय पदार्थ, पेक्टिन, शर्करा, स्थिरतैल और (१% से २%) खत्मीन या एल्थीईन (*Althein*) नामक क्रिस्टलो स्वरूप का तत्त्व होता है। यह शतावरी में पाये जाने वाले एस्पेरेगिन (*Asparagin*) नामक तत्त्व की भाँति होता है।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु। रस–मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–ईषदुष्ण। कर्म–वातपित्तशामक, अनुलोमन, मार्दवकर एवं स्नेहन, श्लेष्महर एवं श्लेष्मनिःसारक, मूत्रल। बाह्यतः स्थानिक प्रयोग से शोथहर एवं वेदनास्थापन। यूनानी मतानुसार खत्मी अनुष्णाशीत प्रकृति की होती है। खतमी के बीज एवं पत्र शोथ, फुन्सी और दर्द की जगह लगाने से दोषविलोमकरण, श्वयथुविलयन, दोषपाचन एवं संशमन कर्म करते हैं। इसके बीजों एवं फूलों का क्वाथ कफ का पाचन एवं श्वसनमार्ग में मृदुता करता है। जड़ आँतों पर संशमन कर्म करती और उससे दोषों को फिसला कर उत्सर्गित करती है। इसका प्रधान कर्म श्वयथुविलयन और कासघ्न है। प्रत्येक, प्रतिश्याय एवं रूक्ष कास में प्रयुक्त काढ़ों में खत्मी बीज, पुष्प एवं जड़ आदि भी मिलाते हैं। मूत्रदाह, अन्त्रशोथ, प्रवाहिका एवं पित्तज अतिसार में खत्मी का बीज दोषों को फिसला कर निकालने वाला तथा संशमन के रूप में इसका काढ़ा करके या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लवाब निकाल कर पिलाते हैं। अहितकर–आमाशय को। निवारण–मधु एवं सौंफ। प्रतिनिधि–खुब्बाजी।

खस (उशीर)

नाम। सं०–उशीर, सेव्य, वीरण। हिं०–खस, गाँडर (सींक) की जड़। बं०–वेणारमूल, खश। पारु–कतरा। को०, संथाल–सिरोम। मिर्जापुर–वीरन। म०–वाला। गु०–वालो। ता०–वीरणं। फा०–बीखेवाला, रेशए-बाला। अं०–कुस-कुस (*Cus-Cus*), खुस-खुस (*Khus-Khus*)। ले०–वेटोवेरिआ ज़ीज़ानीओइडेस **Vetiveria zizanioides** (पर्याय–आन्ड्रोपोगन मूरीकाटुस *Andropogon muricatus Retz.*)।

वानस्पतिक कुल। तृण-कुल (ग्रामिनी *Gramineae*)।

उत्पत्तिस्थान–भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में विशेषतः कोरोमण्डल, मैसूर, बगाल एवं उत्तरी भारत में तालाबों, बहते हुए पानी के किनारे और नीची गीली जमीन में खस अधिक होता है।

संक्षिप्त परिचय–खस गाँडर या सींक नामक घास की प्रसिद्ध जड़ है, जिससे गरमी में पंखे, खसगृह, टट्टियाँ और हुक्कों के नैचे इत्यादि बनाते हैं। यह तृण भी कुश के समान बहु वर्षायु होता है; तथा गुच्छबद्ध एवं समूहबद्ध होकर उगता है। मूलस्तम्भ से अनेक सूत्राकार लम्बी-लम्बी जड़ें निकलती हैं। इन्हीं का व्यवहार 'खस' के नाम से किया जाता है। कल्म (*culms*) १.५ मीटर से १.८ मीटर (५ फुट से ६ फुट) तक ऊँचा एवं ठोस होता है। पत्तियाँ दो कतारों में, आधार पर परस्पराच्छादित ३० सें० मी० से ६० सें० मी० (१ फुट से २ फुट) लम्बी (मूलीयपत्र अधिक लम्बे), मध्य शिरा दबी हुई और किनारे-किनारे दूर-दूर पर तीक्ष्ण रोमश होती हैं। पुष्पागम वर्षा ऋतु में, फलागम उसके बाद।

उपयोगी अंग–मूल (खस)।

मात्रा–(१) चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या १ माशा से ६ माशा।
(२) अर्क–२ तोला से ४ तोला।
(३) हिम–२½ तोला से ५ तोला।
(४) फाण्ट–४ तोला से ८ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–खस की जड़ें पतली, मोटे सूत की भाँति, पूरी जड़ प्रायः ६० सें० मी० या २ फुट तक लम्बी, बाहर देखने में पीताभ भूरे रंग की होती हैं। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की स्थायी एवं मनमोहक सुगंधि होती है। मुँह में रख कर चाबने से तिक्त एवं सुगन्धित होता है। खस को सुगंधि कुछ-कुछ बोल की सुगंधि से मिलती-जुलती है।

संग्रह एवं संरक्षण–खस की जड़ों को जमीन से खोद कर, निकाल कर पानी से धोकर सुखा लें और अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों से संरक्षण करें।

संगठन–इसमें एक उड़नशील तेल तथा एक बोलगंधी, चरपरा, एवं गहरा रक्त-धूसर रालदार पदार्थ पाया जाता है। इसके अतिरिक्त रंजक द्रव्य, स्वतन्त्र अम्ल, चूने के लवण, लोहा, भस्म एवं काष्ठीय पदार्थ पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण–रूक्ष, लघु। रस–तिक्त, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–मूत्रल, हृद्य, दाहतृष्णाशामक, स्वेदापनयन, वमन-अतिसार नाशक। चरकोक्त (सू० अ० ४) वर्ण्य, स्तन्यजनन, छर्दिनिग्रहण एवं दाहप्रशमन महाकषायों में तथा (वि० अ०) तिक्तस्कन्ध के द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त सारिवादिगण तथा पित्तसंशमन वर्ग के द्रव्यों में 'उशीर' या 'वीरण' की भी गणना है।

मुख्य योग–उशीरासव, उशीरादि क्वाथ, उशीरादि चूर्ण, उशीराद्यतैल, षडंगपानीय।

विशेष–शर्बत कल्पना के अनुसार 'शर्बत खस' बना कर गर्मियों में तृष्णा-दाह शामक पेय के रूप में भी व्यवहृत कर सकते हैं। सन्निपात ज्वर में बहोशी की हालत में खस एवं धनिये की पोटली बना कर जल में भिगो कर मरीज को सुँघाने से उपकार होता है।

खाकसी (खूबकलाँ)

नाम। हिं०–खाकसी (–र), खूबकलाँ। अ०–खुब्बः। फा०–खूबकलाँ (ला), खाकची, शिबः, तुख्मे शहूह। सिन्ध–जंगली सरसों। अं०–हेज–मस्टर्ड (*Hedge-Mustard*)। ले०–सिसीम्ब्रियम् ईरिओ (**Sisymbrium irio** *Linn.*)। लेटिन नाम इसकी वनस्पति का है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक कुल । सर्षप-कुल (क्रुसीफ़ेरी *Cruciferae*) ।

प्राप्तिस्थान–उत्तरभारत, राजस्थान, पंजाब, पेशावर, बलूचिस्तान, फारस तथा यूरोप आदि देश । इसके पौधे वनों, बगीचों एवं पर्वतांचल में आप से आप उगे घास के रूप में भी मिलते हैं, और इसकी खेती भी की जाती है । भारतवर्ष में यह रबी की फसल में गेहूँ, मेथी आदि के साथ बोयी जाती है । औषधि में इसके बीजों का व्यवहार होता है, जो बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं । भारतवर्ष में खाकसी का आयात प्रधानतः फारस से होता है ।

संक्षिप्त परिचय–खाकसी क्षुप के काण्ड चिकने, शाखा-प्रशाखायुक्त एक या द्विवर्षायु तथा ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ फुट से ३ फुट) तक ऊँचे होते हैं । पत्तियाँ खण्डित, तथा खण्डों (*segments*) के किनारे आरावत् दन्तुर होते हैं । पुष्प पीले रंग के, फलियाँ ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) लम्बी, पतली तथा आपाततः देखने में सर्षप की भाँति, और बीच-बीच में दबी हुई होती हैं । फलियों में पोस्त के दानों की तरह छोटे-छोटे अनेक बीज निकलते हैं । इन्हीं बीजों का व्यवहार चिकित्सा में खूबकलाँ या खाकसी के नाम से होता है ।

उपयोगी अंग–बीज ।

मात्रा–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा (५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा) ।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–खाकसी के बीज ललाई लिये पीलेरंग के छोटे-छोटे ⅛ सें० मी० या लगभग ⅕० इञ्च लम्बे लम्बगोल दाने होते हैं, जो आकार में पोस्ते के दानों से भी छोटे होते हैं । इनका एक पृष्ठ उन्नत (*convex*) होता है, और दूसरे पृष्ठपर एक परिखा (*groove*) होती है । उसका अंत एक सूक्ष्म चोंच में (*ending in a notch*) होता है । जल में भिगोने पर बीजों पर लबाब (म्युसिलेज) का एक पारदर्शक आवरण-सा चढ़ जाता है । बीज-द्विदल (*cotyledons*) पीताभवर्ण के तथा स्नेहमय (*oily*) होते हैं । मुख में रखकर बीजों को चाबने से स्वाद में सरसों की भाँति उष्णता (मुँह में) का अनुभव होता है । कुछ देर रखे रहने से बीज कुवासित हो जाते (*become rancid*) हैं ।

संग्रह एवं संरक्षण–जब फल पक जाते हैं, पौधों को काट कर उन्हें पीट कर सरसों की भाँति बीज पृथक् कर लिये जाते हैं । इसे मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए ।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष से २ वर्ष ।

स्वभाव । गुण–स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल । रस–मधुर, तिक्त । विपाक–मधुर । वीर्य–ईषदुष्ण । प्रधानकर्म–कफ-निस्सारक, ज्वरघ्न, पुष्टिकर, बृंहण, दाहशामक तथा मसूरिका एवं विसूचिका में उपयोगी । यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण एवं तर है ।

मुख्य योग–यह पुष्टिकर पाकों या माजूनों में मिलायी जाती है । इसे बनफ्शादि क्वाथ (गोजिह्वादि क्वाथ) में ज्वरघ्न कर्म के लिए मिलाते हैं ।

खुब्बाजी

नाम । हिं०–कुझि, खुबाजी । सिंध–खबाजी । फा०–नाने कुलाग्र (कागरोटिका), पीजक । अ०–खुब्बाजी, खुबाजी । अं०–दिकॉमन मैलो (*The Common Mallow*) । ले०–माल्वा सिल्वेस्ट्रिस (**Malva sylvestris** *Linn.*) । लेटिन नाम इसके क्षुप का है, जिसे हिंदी में पापरा, चगेर या चंगेल भी कहते हैं ।

वानस्पतिक कुल । कार्पास-कुल (माल्वासी : *Malvaceae*) ।

प्राप्तिस्थान–पश्चिमी हिमालय प्रदेश में ६०२.९ मीटर से २४०८.३६ मीटर (२,००० फुट से ८,००० फुट) की ऊँचाई तक पंजाब, कश्मीर से कुमायूँ तक । इसके अतिरिक्त बम्बई, मैसूर एवं मद्रास आदि में इसकी खेती की जाती है । इसके फल बाजारों में पंसारियों के यहाँ 'खुब्बाजी' के नाम से मिलते हैं । औषध्यर्थ फलों का आयात पहले भारतवर्ष में प्रधानतः फारस से होता रहा है ।

संक्षिप्त परिचय–खुब्बाजी के ०.९१ मीटर से १.५२ मीटर (३ फुट से ५ फुट) तक ऊँचे, एकवर्षायु क्षुप होते हैं, जिनका काण्ड चिकना होता है । पत्र सवृन्त (वृन्त पत्ती की लम्बाई के बराबर) रूपरेखा में हृदयाकार या कुछ गोलाकार, खण्डित तथा खण्ड कुण्ठिताग्र होते हैं । पुष्प बड़े २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इंच से १½ इञ्च) व्यास के, हल्के गुलाबी रंग के होते हैं, जिन पर बैंगनी धारियाँ होती हैं, और पत्र कोणों में स्थित पुष्पवाहक दण्डों पर निकलते हैं । दलपत्र अग्रपर कटे हुए होते हैं । स्त्रीकेशर झुर्रीदार होते हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपयोगी अंग–फल (जिन्हे व्यवहार में बीज कहा जाता है)।

मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम (५ माशा से ७ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–खुब्बाजी का फल १०–१२ स्त्रीकेशरों (*carpels*) का बना होता है, जिनमें प्रत्येक में एक छोटा वृक्काकार बीज होता है। उक्त स्त्रीकेशर में प्रायः आधे तो प्रगल्भ होते हैं, शेष विभिन्न अप्रगल्भावस्थाओं में पाये जाते हैं। बाजारू नमूने में फलों के अतिरिक्त प्रायः पुष्पवाहक दण्ड एवं पत्र के टुकड़े तथा शुष्क पुष्प भी मिले होते हैं, जो गाढ़े नीलेरंग के होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–पक्व फलों को छायाशुष्क कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–खुब्बाजी में पुष्कल स्नेह या लबाब और अल्प प्रमाण में एक तिक्त सत्व होता है। ये दोनों ही जल में विलेय होते हैं। इतर भाग की अपेक्षया फूल में लुआब अधिक होता है।

वीर्यकालावधि– १ वर्ष।

स्वभाव। खुब्बाजी पहले दर्जे में शीत एवं स्निग्ध है। यह कास एवं अन्य फुफ्फुस रोगों में विशेष लाभकारी, दोषपाचन, सारक, दोषविलोमकर्ता, स्नेहन, पिच्छिल तथा मूत्रजनन है। सामान्यतया इसके गुण भी बहुत-कुछ खत्मी के समान होते हैं। तुख्म खुब्बाजी को पित्त-पाचन की भाँति उपयोग करते हैं। स्नेहन होने के कारण गले एवं फुफ्फुस को खराश, उष्णकास और स्वरभंग आदि को दूर करने के लिए भी इसका उपयोग करते हैं। यूनानी चिकित्सा में खुब्बाजी का व्यवहार बहुत होता है।

खुरसानी अजवायन–दे०, 'अजवायन'।

खूनखराबा (रक्तनिर्यास)

नाम। सं०–रक्तनिर्यास। हिं०–खूनखराबा, हीरादोखी। बम्ब०–हीरादखण। म०, गु०–हिरादखण। अ०–दम्मुल् अख्वैन, क़ातिरुद्दम, एदम। फा०–खूनसियावशाँ। अं०–ड्रैगन्सब्लड (*Dragon's Blood*)। ले०–(१) ड्राकेना सिन्नाबारी **Dracaena cinnabari** *Balf. f.*; (२) कालामुस ड्राको **Calamus draco** *Willd* (पर्याय–डेमोनोरॉप्स ड्राको *Daemonorops draco Blume.*)।

वानस्पतिककुल। 'ड्राकेना सिन्नाबारी' पलाण्डु-कुल (लिलिआसी *Liliaceae*) की तथा 'कालामुस ड्राको' ताड़-कुल (पामीः *Palmae*) की वनस्पति है।

प्राप्तिस्थान–उत्तम एवं वास्तविक खूनखराबा ड्राकेना सिन्नाबारी नामक पलाण्डु-कुल की वनस्पति से प्राप्त किया जाता है। इसका मुख्य उद्भव-स्थल सकोतरा द्वीप (*Socotra*) है। इसके अतिरिक्त जंजीबार, पूर्वी अफ्रीका एवं दक्षिणी अरब में भी थोड़ा-बहुत संग्रह किया जाता है। भारतीय बाजारों में यह सकोतरा से बम्बई होकर आता है। भारतवर्ष में इसका आयात बहुत दिनों से होता आ रहा है। पूर्वी द्वीपसमूह (जावा, बोर्नियो, सुमात्रा आदि) में कालामुस ड्राको नामक ताड़-जातीय पौधे से भी रक्तनिर्यास प्राप्त किया जाने लगा है, जो देखने में बिल्कुल असली खूनखराबा जैसा ही होता है। इसका आयात पूर्वी द्वीपसमूह से होता है, और भारतीय बाजारों में खूनखराबा के ही नाम से बिकता है।

संक्षिप्त परिचय–खूनखराबा उक्त ड्राकेनासिन्नाबारी नामक वनस्पति का रालीय निर्यास या रेजिन (*resin*) होता है, जो काण्ड पर चीरा लगाने से या स्वयं भी स्रवित होता है। निर्यास का अधिकतम स्राव प्रायः वर्षा-ऋतु के अन्त में होता है। उस समय संग्रहकर्ता तने पर चीरा लगा देते हैं, और निर्यास का संग्रह चमड़े की थैलियों में करते हैं। संग्रह करने के उपरान्त शुद्ध निर्यास के बड़े-बड़े अश्रुवत् दाने पृथक् कर लिए जाते हैं और यह उत्तम श्रेणी का नमूना होता है। छोटे-छोटे टुकड़े पृथक् बेचे जाते हैं, जो मध्यम कोटि के (*Powdery Dragon's Blood*) होते हैं। दोनों प्रकार से जो बचा अवशेष प्राप्त होता है उसको पका कर ढेलेनुमा टुकड़े बना लिये जाते हैं, यह निकृष्ट कोटि का होता है। जंजीबार में ड्राकेना की एक दूसरी जाति (**D. schizantha** *Baker*) से भी रक्तनिर्यास का संग्रह होता है, और यह जंजीबारी खूनखराबा के नाम से आता है। यह भी हीनकोटि का होता है। कालामुस ड्राको के आरोही स्वरूप के क्षुप होते हैं, जो सुमात्रा बोर्नियो एवं जावा आदि में प्रचुरता से तथा जंगली रूप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में पाये जाते हैं। निर्यास का स्राव फलों पर होता है। उत्तम निर्यास वही होता है, जो फलों से खुरच कर प्राप्त किया जाता है। उत्तम निर्यास पृथक् कर लेने के बाद भी फलों को पका कर ढेलेनुमा टुकड़ों में निकृष्ट कोटि की औषधि प्राप्त की जाती है। कालामुस ड्राको के अतिरिक्त अन्य ८-१० जातियों से भी निर्यास प्राप्त किया जाता है।

उपयोगी अंग—रालीय निर्यास (रेजिन *Resin*)।

मात्रा—१ ग्राम से १.५ ग्राम या १ माशा से १½ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—उत्तम रक्तनिर्यास या 'खूनखराबा' छोटे-बड़े अश्रुवत् दानों के रूप में होता है, जिनका बाह्य तल मटमैले लालरंग के चूर्ण से धूसरित होता है। इन टुकड़ों को तोड़ने पर टूटा हुआ तल चमकीले लालरंग का तथा पारभासी होता है। व्यवसायी लोग चूरे को भी अश्रुवत् दानों की तरह बनाकर उत्तम नमूने में मिला देते हैं। किन्तु इन नकली दानों को तोड़ने पर टूटा तल नैसर्गिक दानों की भाँति चमकीला नहीं होता। खूनखराबा के ढेलेनुमा या पिण्डाकार टुकड़े निकृष्टतम एवं अग्राह्य होते हैं। यह मटमैले लालरंग के होते हैं, तथा इनमें छाल, काष्ठ, एवं पत्ती आदि के टुकड़े भी मिले होते हैं।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—पूर्वी द्वीपसमूह से आनेवाला खूनखराबा प्रायः ढेलेनुमा या पिण्डाकार टुकड़ों के रूप में (*Lump Dragon's Blood*) में होता है। इसमें फलों के छोटे टुकड़े तथा शल्कपत्र भी मिले होते हैं, जो 'स्कोतरी' या असली खूनखराबा में नहीं होते। उत्तम गोंद के टुकड़े तोड़ने पर कुछ भुरभुरे, किन्तु टूटा तल कभी सकोतरी की ही भाँति चमकीला होता है। यथा—सम्भव सकोतरी गोंद ही औषधीय व्यवहार के लिए उत्कृष्ट होता है। अभाव में इसका भी प्रयोग कर सकते हैं। कुछ लोग भ्रम से युकेलिप्टस आदि से प्राप्त होने वाले (रंग में कुछ साम्यता होने से) निर्यास को भी खूनखराबा के नाम से ग्रहण कर लेते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—खूनखराबा को अच्छी तरह डाटबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संग्रहीत करना चाहिए।

संगठन—सकोतरी खूनखराबा में लोबानाम्ल (बेंजोइक एसिड *Benzoic acid*) एवं सिन्नामिक एसिड (*Cinnamic acid*) पाया जाता है। किन्तु पूर्वीय गोंद में प्राय इनका अभाव पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—स्तम्भन, व्रणरोपण, रक्तस्तम्भक। यूनानी मतानुसार दम्मुल्अखवैन तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है। बाहरी तौर पर सद्यः व्रणों पर छिड़कने से यह रक्तस्राव को रोकता तथा जख्मों को शीघ्र सुखाता है। आंतरिक उपयोग से अंत्रों पर प्रबल संग्राहक (स्तम्भन) कर्म करता है। अतिसारप्रवाहिका एवं रक्त-पित्त या रक्तस्रावी रोगों में अन्य औषधियों के साथ अथवा एकौषधि के रूप में इसका प्रयोग बहुत उपयोगी है। अहितकर—वृक्क के लिए। हानिनिवारक—कतीरा, बबूल का गोंद।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः एकौषधि के रूप में ही किया जाता है।

गंधाबिरोजा (श्रीवेष्टक)

नाम। सं०—श्रीवेष्टक, श्रीवास, सरलनिर्यास। हिं०—गंधाबिरोजा, बिहरोजा, बिरोजा। पं०—गंधबिरोज। नेपाल—धूप। पहाड़ी—लीसा। अ०—क़िन्नः। फा०—बारज़द, बरेज़द। अं०—दि ओलिओ-रेजिन ऑफ पाइन (*The Oleo-Resin of Pine*)। (वृक्षका नाम) सं०—सरल, सुरभिदारुक। हिं०—चीड़, चील, सरल, देवदार। बं०—सरल गाछ। पं०—चीड़। नेपाल—धुपसलसी। अल्मोड़ा, गढ़वाल—सला। म०, गु०—तेलिया देवदार। अं०—दि चिड़-पाइन *The Chir-Pine*,, लॉंग-लीव्ड पाइन (*Long-leaved Pine*)। ले०—पीनुस् लांगीफ़ोलिआ (**Pinus longifolia** *Roxb.*)

वानस्पतिक कुल। सरल-कुल (कोनिफेरी *Coniferae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय के ढलानों पर ४५७.२० मीटर से २१३३.६ मीटर (१,५०० फुट से लेकर ७,००० फुट) की ऊँचाई तक, अफगानिस्तान के पहाड़ी प्रदेशों में कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश (गढ़वाल, कुमाऊँ आदि) भूटान, आसाम और ब्रह्मा पर्यन्त इसके वृक्ष समूहबद्ध रूप में पाये जाते हैं। इनका स्राव बाजारों में गंधबिरोजा नाम से बिकता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय—चीड़ के वृक्ष प्रायः समूहबद्ध उगते हैं और सीधे काफी ऊँचाई (३०.४ मीटर से ३८.०७ मीटर या १०० फुट से १२५ फुट) तक बढ़ते चले जाते हैं, जिससे देखने में बहुत सुन्दर मालूम होते हैं। पत्तियाँ २२.५ सें० मी० से ३७.५ सें० मी० (९ इंच से १५ इंच) लम्बी, सूच्याकार तथा तीन-तीन एक साथ निकली होती हैं, जो आधार पर एक झिल्लीदार कोष से घिरी होती हैं। काण्डत्वक् बाहर से रक्ताभ धूसर तथा अन्दर गहरे लालरंग की होती हैं। सारकाष्ठभाग (हीर या अन्तःसार) बाहर की ओर पीताभ श्वेत तथा अन्दर रक्ताभ-धूसर होता है। वर्षा के प्रारम्भ में पत्तियाँ झड़ जाती हैं तथा वसन्त ऋतु में पुष्पागम और फलागम दूसरे वर्ष में। इसके काण्ड पर चीरा लगाने से (कभी स्वयं भी) एक गाढ़ा स्राव निकलता है, जिसमें तारपीन के तेल-जैसी खुशबू आती है। परिस्रवण द्वारा तारपीन का तेल निकाल लिया जाता है। शेष भाग गंधाबिरोजा होता है, जो पीपों में भर कर बाजारों में भेजा जाता है। इसका उपयोग मलहम, प्लास्टर आदि बनाने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त औषधि में चीड़ की लकड़ी (सरलकाष्ठ या बुरादा) तथा गंधाबिरोजे के तेल (तारपीन का तेल—सरल तैल का) भी व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग—निर्यास (ओलिओ-रेजिन), काष्ठ एवं तेल।

मात्रा। गंधाबिरोजा या निर्यास—$\frac{1}{2}$ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—गंधाबिरोजा मटमैले सफेद या पीलापन लिये सफेद रंग का चिपचिपा मुलायम घन होता है, जिसमें तारपीन से भी उग्र एवं मनोरम सुगंधि होती है। बाजारू नमूने में संग्रह के समय प्रयुक्त पत्तियों के टुकड़े भी मिले होते हैं। बाजार में बिरोजा 'गीला' और 'सूखा' दो प्रकार का मिलता है। यह दोनों प्रकार औषध में काम आते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—सरल निर्यास का संग्रह प्रायः फरवरी से जून तक किया जाता है। व्यावसायिक रूपसे संग्रह करने के लिए प्रायः पेड़ों में जमीन से ०.९१ मीटर (३ फुट) की ऊँचाई पर क्षत कर दिया जाता है। इसी से निर्यास स्रवित होकर कटोरे नुमा पात्र में जमा होता रहता है। कुछ समय के बाद क्षत को पुनः-पुनः नवीन करते रहते हैं। स्राव अपने आप भी निकलता (*natural exudation*) है। चीरा लगाकर स्राव इकट्ठा करने में कुछ वर्षों के बाद पेड़ नष्ट हो जाता है। आजकल निर्यास एकत्रित करने का कार्य वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा किया जाता है, जिसमें क्षत भी अधिक नहीं करना पड़ता और वृक्ष भी अल्पायु नहीं होने पाते। बिरोजे को अच्छी तरह मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—सरल-निर्यास से परिस्रवण द्वारा २०% तक तारपीन का तेल तथा ८०% बिरोजा प्राप्त होता है।

वीर्यकालावधि—अच्छी तरह संरक्षण करने पर दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध। रस—कटु, तिक्त, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—श्वयथुविलयन, जन्तुघ्न, पूतिहर, व्रणशोधन, रक्तरोधक, मूत्रजनन, मस्तिष्क तथा नाड़ी-उत्तेजक, कफनिस्सारक, श्लेष्मपूतिहर, त्वग्दोषहर, गर्भाशयशोथहर है। यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है। अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारण—रोग़न बनफ्सा और कपूर। विषाक्त प्रभाव—मात्रातियोग से वमन, अतिसार, अवसाद, नाड़ीमन्दता, मूत्रदाह, मूत्ररक्तता आदि कुप्रभाव तथा मस्तिष्कगत प्रभाव के कारण तन्द्रा, संज्ञानाश आदि लक्षण भी हो सकते हैं। विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) पुरीषविरजनीय महाकषाय एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) वृक्कादिगण में 'श्रीवेष्टक' (गंधाबिरोजा) भी है।

मुख्य योग—गंधाबिरोजा व्रण-शोधन तथा व्रण-रोपण प्रलेपों एवं मलहमों में पड़ता है।

विशेष—व्रणशोधन एवं श्वयथुविलयन के लिए प्रयुक्त मलहम, प्रलेप (प्लास्टर) आदि के निर्माण के लिए बिरोजा अत्यन्त उपयोगी आधार-द्रव्य है। इसका उपयोग पाश्चात्य वैद्यक में प्रयुक्त 'कोलोफनी *Colophony*' या 'रेजिन *Resin*' की भाँति किया जा सकता है।

आभ्यन्तर प्रयोग के लिए इसको शुद्ध करके व्यवहृत करना चाहिए। इसी को 'सतबिरोजा' कहते हैं। इसकी विधि यह है :—एक हाँडी या देगची में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पानी (अथवा दूध-पानी बराबर-बराबर) भरकर, उसके मुँह पर कपड़ा बाँध दें। उसपर बिरोजा रखें। पात्र के नीचे अग्नि जलायें। वाष्प की उष्णता से बिहरोजा पिघल कर नीचे द्रव में चला जायगा और तृष्णादि मल कपड़े पर रह जायेंगे। चाहें तो इसी प्रक्रिया को १-२ बार और दुहरावें। इसप्रकार प्राप्त 'शुद्धबिरोजा' को सुखाकर काम में लावें।

गंभार (गम्भारी)

नाम। सं०—काश्मरी, गम्भारी, श्रीपर्णी। हिं०—गँभार, खम्हारि, गम्हार, गम्हारो। को०, संथा०—कासमर। उड़ि०—कुमार। पं०—गंभारी। बं०—गाभार। म०—शिवण, गु०—शीवण, सवन। मल०—कुम्बिल (*Kumbil*), कुम्पिल (*Kumpil*)। ता०—कुम्पिल (*Knmpil*), पेरुङ्गुम्पिल (*Perungumpll*)। केरल—कुमिल (*Kumil*), कुमिर (*Kumir*)। ले०—मेलीना आर्बोरेआ (**Gmelina arborea** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। निर्गुण्डी-कुल (वर्बेनासी *Verbenaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषतः दक्षिण भारत, उत्तर-पश्चिम हिमालय प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि। इसका मूलत्वक् दशमूल का उपादान होने के कारण बाजारों में बिकता है।

संक्षिप्त परिचय—गम्भार के वृक्ष बड़े, १२.१८ मी० से १८.२८ मी० (४० फुट से ६० फुटतक) या मध्यम ऊँचाई के होते हैं, जिसकी टहनियाँ श्वेतताभ एवं रोमश और पत्तियाँ १० सें० मी० से २२.५ सें० मी० या ४ इंच से ९ इंच लम्बी, ६.२५ सें० मी० से २० सें० मी० या २½ इंच से ८ इंच तक चौड़ी, रूपरेखा में चौड़ी लट्वाकार, प्रायः हृद्वत् (*cordate*), लम्बाग्र, अधस्तल पर प्रायः क्षोदलिप्त, सवृन्त (वृन्त ५ सें० मी० से १५ सें० मी० (२ इंच से ६ इंच) लम्बे, प्रायः अभिमुख किन्तु एक संधि की दोनों पत्तियाँ कुछ छोटी-बड़ी होती हैं। पुष्प प्रायः नयी पत्तियों के साथ या कुछ पहिले ही निकलते हैं, जो व्यास में २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इंच से १½ इंच) तथा ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० या ३ इंच से ८ इंच लम्बी सगुच्छ अग्र्यमञ्जरियों (*terminal panicle with opposite decussate cymose branches*) में स्थित होते हैं। बाह्यकोश ½ सें० मी० या ¼ इञ्च लम्बा होता है। आभ्यन्तरकोश (*corolla*) २.५ स० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इंच से १½ इंच लम्बा, भूरापन लिये पीले रंग का, तिर्यक्—द्वि-ओष्ठीय तथा बाह्यतल पर सघन मृदुरोमावृत (*densely soft-tomentose*) होता है। ऊर्ध्वोष्ठ प्रायः दो खण्डों से युक्त तथा अधरोष्ठ तीन खण्डों वाला, पुंकेशर संख्या में ४, जिनमे २ छोटे तथा २ बड़े (*didynamous*); अण्डाशय (*ovary*) ४ कोष्ठोंवाला, प्रत्येक में १-१ बीजाण्ड या ओव्यूल (*ovule*), कुक्षिवृन्त (*style*) कोमल, द्विधा विभक्त (*unequally bifid*); फल अष्ठिल (*drupe*) ½ सें० मी० से ¾ सें० मी० या ¼ इञ्च से १ इञ्च लम्बा, रूपरेखा में अण्डाकार या आयताकार, पकने पर पीला तथा स्वाद में मधुरकषाय, फलभित्ति (*pericarp*) चर्मिल (*leathery*), चिकना, चमकदार एवं पके फलों में पीले रंग की अन्तर्भित्ति अश्मसदृश कठोर (*bony*) जिसके चारो ओर हल्का तीतापन तथा कसैलापन लिये मधुर गूदा लिप्त होता है। बीज १ से ३ तक, ½ सें० मी० से ¾ सें० मी० या ¼ इञ्च से ⅓ इंच लम्बे तथा रूपरेखा में अर्धचन्द्राकार (*lenticular*) होते हैं। वसन्त-ऋतु में पुष्प एवं ग्रीष्म में फल आते हैं।

उपयोगी अंग—मूलत्वक् (कहीं-कहीं पूरी जड़), फूल, फल।

मात्रा। फलस्वरस—१ तोला से २ तोला।

मूल, फलक्वाथ—२ तोला से ४ तोला।

पुष्पचूर्ण—३ ग्राम से १२ ग्राम (३ माशा से १२ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—गम्भारी की जड़ बाहर से हल्के भूरेरंग की होती है, किन्तु अन्दर का काष्ठीय भाग पीताभ वर्ण का होता है। यह अपेक्षाकृत हल्की एवं चिमड़ी, स्वाद में तिक्त एवं लबाबी होती है। इसको जलाने पर भस्म १४.११% तक प्राप्त होती है। जल में विलेय सत्व १९.५%। ऐल्कोहल् में विलेय सत्व ४.२५%। ईथर में विलेय सत्व ०.२१%। पेट्रोलियम एवं ईथर में विलेय सत्व १.८% होता है।

गम्भारी के ताजे जड़ की छाल अपेक्षाकृत मोटी ⅓ सें० मी० से ½ सें० मी० या ¼ इञ्च से ½ इञ्च तक; किन्तु जड़ की मोटाई के अनुसार छाल की मोटाई में भी न्यूनाधिक्य पाया जाता है, तथा केन्द्रस्थ काष्ठीय

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाग से आसानी से पृथक् हो जाती है। बाह्य त्वक् (*rind or outer-bark*) मटमैले खाकस्तरी-सफेद (*dull greyish white*) रंग की अथवा खाकस्तरी भूरे रंग की होती है। यह किंचित् कड़ी, भंगुर एवं कागजी पर्तवत् (*crustaceous*) होती है तथा इसमें कोई विशेष गन्ध या स्वाद नहीं पाया जाता। छाल का मध्यस्थ एवं अन्तर्भाग ही औषधीय प्रयोग के उपयुक्त होता है। ताजी छाल में यह अपेक्षाकृत मोटी, मुलायम, रसदार एवं रेशारहित होती है। स्वाद में यह प्रारम्भ में मिठास लिये लुआबी किन्तु अन्ततः तिक्त होती है। सूखने पर छाल में तिक्तता अपेक्षाकृत और भी कम हो जाती है तथा एक अत्यन्त धीमी हल्की सुगन्धि-सी भी कभी-कभी पायी जाती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—मेलीना आर्बोरेआ के कई भेद भी जगह-जगह पाये जाते हैं। इनका संग्रह गम्भारी के स्थान में किया जाता है। गम्भारी की एक दूसरी जाति मेलीना एशिआटिका **Gmelina asiatica** *Linn.* भी दक्षिणभारत, मद्रास, आन्ध्र, केरल आदि में इसके वृक्ष विशेष रूप से पाये जाते हैं। केरल प्रान्त में इसके मूल का भी व्यवहार 'मेलीना आर्बोरेआ' की भाँति ही किया जाता है। मलयालम में इसे 'कुमिज (*Kumiz*)' या नीलकुमिज तथा तामिल में नीलमुकिज कहते हैं। कहीं-कहीं प्रेम्ना फ्लावेसेन्स (**Premna flavescens**) नामक अन्य वृक्ष के लिए 'अरिया कासमर' या 'बूढ़ी कासमर' नामों का व्यवहार होता है। इसके पत्ते गम्भारी के पत्तों से कुछ मिलते-जुलते हैं, तथा इनमें एक मन्द प्रियगंध होती है। किन्तु इन दोनों में भ्रम नहीं होना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फल एवं मूलत्वक् को शुष्ककर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—जड़ में एक पीतवर्ण का गाढ़ा तेल (*yellow viscid oil*), राल, अल्प मात्रा में एक ऐल्केलॉइड तथा बेंजोइक एसिड एवं फल में ब्युटिरिक एसिड (*Butyric acid*), अल्पतः टारटेरिक एसिड, एक क्षारतत्त्व, रालीय तत्त्व, कषाय द्रव्य एवं शर्करा (*saccharine matter*) आदि पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—कुछ महीनों से १ वर्ष तक।

स्वभाव। **गुण**—गुरु। **रस**—तिक्त, कषाय, मधुर। **विपाक**—कटु। **वीर्य**—उष्ण (फल—शीतवीर्य होता है)। **प्रधान कर्म**—त्रिदोषशामक, फल—तृष्णाशामक, दीपन, अनुलोमक, हृद्य, रक्तपित्तशामक, सन्धानीय, बल्य, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, दाहप्रशमन। छाल—शोथहर, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, रसायन, विषघ्न। पत्तियाँ—शीतल, स्नेहन, मूत्रल।

मुख्य योग—बृहत् पंचमूल, दशमूल, श्रीपर्णी तैल, श्रीपर्ण्यादि क्वाथ।

विशेष—चरकोक्त (च० सू० अ० ४) विरेचनोपग (काश्मरी फलं), दाहप्रशमन (काश्मर्यफलं) तथा शोथहर महाकषायों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० १८) महत्पञ्चमूल एवं सारिवादि गण के द्रव्यों में काश्मरी (गम्भारी) भी है।

गनियारी—दे०, 'अग्निमन्थ'।

गन्धप्रसारिणी—दे०, 'प्रसारिणी'।

गजपीपल (गजपिप्पली)

नाम। सं०—गजपिप्पली। हिं०—गजपीपल, गजपीपर, हाथीपीपर, चबका फल। ले०—पीपेर चाबा **Piper chaba** *Hunter*। लेटिन नाम इसकी लताका है।

वानस्पतिकी कुल। पिप्पली-कुल (पीपेरासे : *Piperaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पीपेर चाबा' मलायाद्वीपपुञ्ज की लता है। भारतवर्ष में जंगलीरूप से तो नहीं पायी जाती, किन्तु बंगाल, कूचबिहार में कहीं-कहीं लगायी जाती है। इसकी फलियाँ पिप्पली की भाँति किन्तु उसकी अपेक्षा बड़ी और मोटी होती हैं। वास्तव में, गजपिप्पली के नाम से इन्हीं का व्यवहार होना चाहिए। भारतवर्ष में इनका आयात मलाया एवं सिंगापुर से होता था। अब भारतीय बाजारों में अन्य औषधियाँ गजपिप्पली के नाम से बेची जाती हैं।

संक्षिप्तपरिचय—पीपेर चाबा की मूलारोहिणी लताएँ होती हैं, जिनका काण्ड मोटा, अनेक नालियों एवं २० पशुंकाओं वाला, गुल्मकीय और चिकना होता है, और उससे मूल निकल कर आश्रय से चिपके रहते हैं। पत्तियाँ आयताकार या प्रासवत्—आयताकार (नीचे की लट्वाकार प्रासवत् भी), अग्र नोकदार और फलक-मूल प्रायः तिरछा होता है। फलियाँ (*aments*), २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बी और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यास में १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च तक होती हैं। यह मूल में सबसे अधिक मोटी और शीर्ष पर कुण्ठिताग्र होती हैं। उक्त फलियाँ ही औषधीय गजपिप्पली हैं।

मात्रा। ½ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—गजपिप्पली की फलियाँ २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच तक लम्बी, रूप-रेखा में बेलनाकार, व्यास में १.२५ सें० मी० या ½ इंच तक, मूल में सबसे अधिक मोटी तथा शीर्ष पर कुण्ठिताग्र होती हैं। मूल में एक पतला वृन्त या डंठल (*stalk*) लगा होता है, जो १.२५ सें० मी० या आधा इंच तक लम्बा होता है। फलियों की रचना वास्तव में असंख्य सूक्ष्म मांसल फलों (*minute baccate fruits or berries*) से होती है, जो बाजरे की बाली की भाँति सघन स्थित होते हैं। उक्त दाने (कण) लम्बगोल, ⅛ सें० मी० या ⅕० इंच तक लम्बे होते हैं, जिनके शीर्ष पर बिन्दुवत् कुक्षि अवशेष होता है। बाजार में जो फलियाँ मिलती हैं, वह खाकस्तरी-सफेद (*greyish-white*) होती हैं। इनको जल से धोने पर दाने लालिमा लिये भूरेरंग के मालूम पड़ते हैं। इनमें एक हल्की विशिष्ट प्रकार की सुगंधि होती है, तथा मुख में चाबने पर सुगन्धित एवं चरपरी मालूम होती हैं, और जिह्वा पर कुछ जलन-सी मालूम होती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—गजपिप्पली के नाम से वास्तव में उक्त बड़ी पिप्पली का ही व्यवहार होना चाहिए। किन्तु बाजारों में अन्य वनस्पतियों की फलियाँ या पुष्पव्यूह गजपिप्पली के नाम से बेचे जाते हैं :—

(१) **सींडाप्सुस ऑफ़िसिनालिस Scindapsus officinalis** *Schott.* (*Family* : *Araceae*)।

नाम। देहरादून—पोरियाबेल। संथाल—धरेझाक। हो०—जनपा। राँची—हाथीपीपर। इसकी वृक्षोपरिरोही या एपीफाइट (*Epiphytic*), मोटी, मांसल आरोही लताएँ वृक्षों तथा कभी-कभी चट्टानों पर फैली रहती हैं और असंख्य काण्डोद्भव मूलों द्वारा आश्रय से चिपकी रहती हैं। पत्तियाँ बहुत बड़ी १२.५ सें० मी० से २५ सें० मी० (५ इंच से १० इंच) लम्बी, ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इंच से ६ इंच चौड़ी, लट्वाकार या कुछ-कुछ अण्डाकार भी, सरलधार तथा पुच्छाकार लम्बे नोकवाली होती हैं। वृन्त (*petiole*) सपक्ष एवं कोषाकार होता है। मध्य शिरा के दोनों ओर के भाग आधार के पास छोटे-बड़े होते हैं। पुष्पव्यूह बाली के समान तथा स्थूलमंजरी या स्पैडिक्स (*spadix*) और हरे कोषाकार पत्र या पृथुपर्ण अर्थात् स्पेथ (*spathe*) द्वारा ढँका रहता है। सम्पूर्ण व्यूह पत्रावरण के गिर-जाने पर १५ सें० मी० से २२.५ सें० मी० (६ इंच से ९ इंच) लम्बे फल में बदल जाता है, जो आकार में पिप्पली की तरह किन्तु उसकी अपेक्षा बहुत बड़े और व्यास में भी बहुत मोटे होते हैं। इसके स्वतन्त्र दाने एक दूसरे से सटे हुए किन्तु अलग-अलग रहते हैं। उक्त फलियाँ ही भ्रमवश बाजारों में गजपिप्पली के नाम से बेची जाती हैं। (२) कहीं-कहीं बाजारों में ताड़ का शुष्क पुष्पव्यूह भी गजपिप्पली के नाम से बेचा जाता है।

वक्तव्य—वास्तव में आजकल उक्त शास्त्रीय गजपिप्पली उपलब्ध नहीं है। उक्त दोनों ही द्रव्य गजपिप्पली नाम से ग्राह्य नहीं है। सम्प्रति भारतीय बाजारों में बड़ीपिप्पली आनी भी बन्द हो गयी है। अतः गज-पिप्पली के स्थान में 'छोटीपिप्पली' को ही ग्रहण करना व्यवहारोपयोगी एवं युक्तिसम्मत है। (लेखक)

संग्रह एवं संरक्षण—गजपिप्पली को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—गजपिप्पली में प्रायः वही सब तत्त्व पाये जाते हैं, जो कालीमिर्च में होते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। **रस**—कटु। **विपाक**—कटु। **वीर्य**—उष्ण। **कर्म**—कफवातशामक, पित्तकारक, लालास्रावजनक, दीपन—पाचन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, वातानुलोमन (तथा गुल्म, आनाहहर), कफघ्न, श्वास-कासहर, कण्ठ्य, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, नाड़ीबल्य आदि।

गावज़बाँ (गोजिह्वा ?)

नाम। हिं०, भारतीय बाजार, फा०—गावज़बान। अ०—लिसानुस्सौर। सं०—गोजिह्वा ? (वृषजिह्वा)। ले०—काक्सीनिआ ग्लाउका (**Caccinia glauca** *Savi*)। लेटिन नाम इसकी वनस्पतिका है।

वानस्पतिक कुल। श्लेष्मांतक-कुल (बोराजिनासे : *Boraginaceae*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान–फारस तथा बिलोचिस्तान। भारतवर्ष में गाज़बान का आयात मुख्यतः फारस से होता है। इसके पत्र 'बर्ग गावजबान' तथा फूल पृथक् 'गुले गावज़-बान' के नाम से बिकते हैं।

उपयोगी अंग–पत्र (बर्गगाजबाँ) तथा फूल (गुले गावजबाँ), एवं पचाङ्ग तथा बीज।

मात्रा। पत्र–५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा। पुष्प–१ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–गाजबाँ के क्षुप कोमलकाण्डीय बहुवर्षायु होते हैं, जिसके प्रकन्द (मौमिक काण्ड) या राइज़ोम श्यामाभ कड़े (*black woody rhizomes*) तथा व्यास में २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इंच से २ इंच) तक होते हैं, जिसका ऊपरी सिरा मुण्डवत् कुण्ठित होता है। वहाँ से अनेक कोणाकार काण्ड निकले होते हैं। काण्ड पर सर्वत्र कड़े, सफेद बिन्दु (*calcareous tubercles armed wtih stiff white, calcareous bristles*) छिटके रहते हैं। पत्तियाँ काफी मोटी और मांसल तथा सवृन्त होती हैं। रूपरेखा में यह लट्वा-कार–लम्बाग्र तथा पत्र-तट सरल एवं लहरदार होता है। बड़ी से बड़ी पत्ती २० सें० मी० या ८ इंच तक लम्बी तथा ११.२५ सें० मी० या ४½ इंच तक चौड़ी होती है। परन्तु काण्डीय पत्र सामान्यतः अधः भाग में ११.२५ सें० मी० × ५ सें० मी० (४½ इंच × २ इंच) किन्तु उत्तरोत्तर छोटी होकर २.५ सें० मी० या १ इंच लम्बी होती हैं। पत्तियों के दोनों तलों पर काण्ड की ही भाँति सफेद कड़े बिन्दुवत् उत्सेध छिटके रहते हैं, जिससे स्पर्श में यह कर्कश होती हैं। जल में भिगोने पर इनमें लुआब निकलता है। रूपरेखा एवं स्पर्श की अनुरूपता के ही कारण इन्हें 'गावज़बान' कहते हैं। 'गुलिगाजबाँ' या गाज़बाँ के ताजे फूल गाढ़े नीले रंग के होते हैं। सूखने पर कुछ समय के बाद यह फीके या गुलाबीरंग के हो जाते हैं। पुष्प गुच्छों में लगते हैं और पुष्प मुण्डकों पर भी तीक्ष्णाग्र श्वेत लोम होते हैं। सहपत्र (*bracts*) भालाकार या रेखाकार भालाकार तथा तीक्ष्णाग्र होते हैं। पुष्पवाहकदण्ड पर भी काण्ड एवं पत्रवत् छोटे-छोटे सफेद बिन्दु पाये जाते हैं। पुष्प-बाह्यकोष (*calyx*) लगभग १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च लम्बा तथा ५-खण्डों वाला होता है। खण्ड (*segments*) रेखाकार-भालाकार तथा तीक्ष्णाग्र होते हैं। आभ्यन्तर कोष (*corolla*) फनेल के आकार का, १.७५ सें० मी० या १½ इंच लम्बा तथा १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च चौड़ा (कण्ठ के पास), द्वि-ओष्ठीय (*bilabiate*) जिनमें ऊपर के ओष्ठ में दो खण्ड तथा अपेक्षाकृत बड़े और अधरोष्ठ में तीन खण्ड होते हैं। पुंकेशर संख्या में ५। फल (*nuts*) ⅓ सें० मी० से ३/१२ सें० मी० या ⅓ से ५/१२ इञ्च लम्बे होते हैं।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–यहाँ पर भी इस कुल की अन्य वनस्पतियाँ पायी जाती हैं, जिनका प्रयोग कहीं-कहीं गावजबान के नाम से होता है :—(१) ओनोस्मा ब्राक्टेआटुम् **Onosma bracteatum** *Wall.* (*Family : Boraginaceae*) के पौधे हिमालय प्रदेश में कश्मीर से कुमायूँ तक ३०४६ मीटर से ३३५१ मीटर (१० हजार फुट से ११ हजार फुट) की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। इसके गुण-कर्म भी कुछ-कुछ गाजबाँ-जैसे होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–गाजबाँपत्र एवं पुष्पों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल, एवं अँधेरे स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–पत्तियों में काफी मात्रा में पिच्छिलद्रव्य पाया जाता है। भस्म में सिलिका, कैल्सियम, पोटास, सोडा, तथा मैगनीसियम् के लवण होते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–वातपित्तशामक, ज्वरघ्न, कफनिःसारक, श्लेष्महर, बल्य, रक्तशोधक, अनुलोमन आदि। यूनानीमतानुसार ताजा गावजबाँ पहले दर्जे में गरम और तर और शुष्क गाजबाँ खुश्की लिये गरम होता है। गावजबान सौमनस्यजनन, सारक, हृद्य, उत्तमांगों को बलप्रद और श्लेष्मनिःसारक होता है। गावजबान और गावजबान का फूल मालिन्खोलिया, उन्माद, सौदावी हृत्स्पंदन-जैसी व्याधियों में सौमनस्य जनन और हृदय को बल देने के लिए उपयोग किये जाते हैं। अकेला या उपयुक्त अन्य औषधियों के साथ साथ गावजबान क्वाथ शीतलप्रसेक, प्रतिश्याम, कास, श्वास, गले की खराश निवारणार्थ पिलाया जाता है।

मुख्ययोग–खमीरा गावजबान, अर्कगावजबान, गोजिह्वादि क्वाथ (बनफ्शादि क्वाथ)।

गिरिपर्पट–दे०, 'पर्पट'।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुंजा (घुँघची)

नाम। सं०–गुञ्जा, रक्तिका, काकणन्ती, काम्बोजी। हिं०–घुंगची, घूंची, घुमची, गूंच, करजनी, रत्ती, चिरमिटी; गुंची, चुं (चौं) टली। बं०–कुँचा। म०–गुंज। गु०–चणोठी। मा०–चिरमी, चिर्मिटी। सिंध–रत्यु। पं०–रत्ती, लालड़ी। ते०–गुरिगिंज। का०–गुलगंजि। मल०–कुंची। फा०–सूर्ख, चश्मखरोश। अं०–इंडियन या वाइल्ड लिकरिस (*Indian or Wild Liquorice*), जेक्विरिटी (*Jequirity*)। ले०–आब्रुस् प्रेकाटोरिउस् (**Abrus precatorius** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (*Leguminosae : Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष, लंका तथा श्याम आदि में इसकी स्वयंजात लतायें पायी जाती हैं।

संक्षिप्त परिचय–आरोहीलता, जिसके काण्ड काष्ठमय (*climber with woody stem*); पत्तियाँ युग्मपक्षाकार (*paripinnate*) प्रायः ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इञ्च से ३ इंच तक लम्बी, २० से ४० जोड़े पत्रकों से युक्त होती हैं। आपततः यह इमली के पत्तों-जैसी मालूम पड़ती हैं। पुष्प सफेद या हल्के लाल रंग के सघन सवृन्तकाण्डज गुच्छों में (*dense pedunculate racemes*) निकले होते हैं। पुष्पवाहक दण्डपर भी कभी-कभी पत्र पाये जाते हैं। वर्षा का प्रथम पानी पड़ते ही पुरानी जड़ से अभिनव लता उत्पन्न होती है। शरत् काल में फूलती और शरत् के अन्त में शिम्बी पकती है। फलियाँ (*pods*), २.५ सें० मी० से ४.२५ सें० मी० या १ इञ्च से १.७ इञ्च लम्बी, १० मि० मी० से १२.५ मि० मी० (०.४ से ½ इञ्च) चौड़ी, रूपरेखा में आयताकार (*oblong*) तथा चपटी एवं फूली हुई (*turgid*) होती हैं। प्रत्येक फली के भीतर २ से ६ तक अंडाकार और गोल-गोल (*ovoid or subglobose*) चिकने और चमकीले बीज, रंग में कभी-कभी दो-तिहाई हिस्से में लाल या सफेद और शेष भाग में काले होते हैं, और काले भाग में सफेद रंग का बड़ा एवं स्पष्ट नाभिचिह्न (*white hilum*) होता है। और कभी-कभी वे पूर्णतः काले या सफेद होते हैं।

उपयोगी अंग–मूल, बीज (घुँघची), एवं पत्र।

मात्रा–(१) बीजचूर्ण–६२.५ मि० ग्रा० से १८७.५ मि० ग्रा० या ½ रत्ती से १½ रत्ती।

(२) मूलचूर्ण–½ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से ८ रत्ती।

(३) पत्रक्वाथ–२½ तोला से ५ तोला (१० तोला तक)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा– (१) पत्तियाँ–युग्मपक्षाकार, ५ सें०मी० से ७,५ सें० मी० या २ इञ्च से ३ इंच लम्बी और ८ से ४० युग्म (*pair*) पत्रकों से युक्त होती हैं। पत्रक (*leaflets*), रेखाकार–अंडाकार (*linear oval*), दोनों सिरों पर कुण्ठित (*obtuse*), चिकने एवं किंचित् रोमश, तथा मुलायम एवं नीरस (*membranous*), १५/१६ सें० मी० से २५/६४ सें० मी० (३/८ इञ्च से ५/८ इञ्च) लम्बे, ५/२ सें० मी० से ½ सें० मी० (१/६ से ¼ इञ्च) चौड़े होते हैं, जो सूखने पर अपने-आप गिर जाते (*deciduous*) हैं। मुँह में चबाने पर मुरेठी के स्वाद एवं मधुरतायुक्त होते हैं। (२) मूल–गुञ्जा की जड़ लम्बी काष्ठमय, कड़ी, कई शाखाओंयुक्त तथा पतली होती है। किसी-किसी जड़ की मोटाई व्यास में ६.२५ मि० मी० या ¼ इञ्च तक होती है। मूलत्वक् (*cortical layer*) पतली, लालिमा लिये भूरेरंग की तथा काष्ठभाग (*wood*) पीताभ-श्वेत होता है। मुँह में रखकर चाबने से इसमें भी कुछ-कुछ मूलेठी का स्वाद आता है। जड़ गंध एवं स्वाद में कड़वी (*acrid*) एवं किंचित् मधुर होती है। संग्रह करने से कालान्तर में इसमें एक हल्की अरुचिकारक गंध पैदा हो जाती है। औषधीय प्रयोग के लिए अपेक्षाकृत पतली जड़ें जिनमें काष्ठीय भाग (*woody portian*) कम हों अधिक अच्छी समझी जाती हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–जड़ एवं बीज को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन–घुँघुची की पत्तियों तथा जड़ में मुलेठी में पाया जानेवाला या ग्लिसर्हाइजिन (*Glycyrrhizin*–पत्तियों में १०% तथा जड़ में १.२५%) नामक तत्त्व तथा बीजों में एब्रिन (*Abrin*) नामक विषाक्त-प्रोटीन (*Toxalbumin*) पाया जाता है। यह वियोजित होने पर ग्लोब्युलिन एवं ऐल्ब्युमिनोस में विच्छिन्न होता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। उक्त दोनों ही विषाक्त होते हैं। अतएव गुञ्जाबीज विषैले होते हैं। आयुर्वेद (रसशास्त्र) में इनकी गणना उपविषों में की भी गयी है। एब्रिन की क्रिया बहुत-कुछ एरण्डबीज में पाये जाने वाले विषाक्त तत्त्व 'रिसिन (*Ricin*)' की भाँति होती हैं। किन्तु उबालने पर एब्रिन की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। एब्रिन के अतिरिक्त बीजों में मेदोविश्लेषक किण्वतत्त्व, हिमेग्लुटिनिन (*Haemagluttinin*), यूरिएज (*Urease*), एब्रेलिन नामक ग्लूकोसाइड, स्थिर तैल (६%), तथा बीजों के आवरण में अबेरनिन (*Abarnin*) नामक रंजकतत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। जड़ में १ वर्षतक; किन्तु बीजों की सक्रियता कई वर्षों तक बनी रहती है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। (इसकी जड़ मधुर और स्निग्ध होती है)। कर्म—(पत्र एवं मूल) त्रिदोषहर (विशेषतः वातपित्तशामक), स्नेहन, कफनिस्सारक, मूत्रल, होते हैं। बीज—कफवातशामक, लेखन, कुष्ठघ्न नाड़ीबल्य, हृदयोत्तेजक, वाजीकरण, केश्य तथा अल्प मात्रा में कटुपौष्टिक। यूनानी मतानुसार घुँघचीबीज तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क होते हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृति वालों के लिए। निवारण—यवासशर्करा (तुरजबीन) एवं हरी धनिया। विषाक्तप्रभाव—कभी-कभी बीजचूर्ण का मुखद्वारा सेवन करने में अतियोग हो जाने से आमाशयान्त्रदाह होकर वमन-विरेचन, मूत्राघात एवं हृदयावसाद का भयंकर उपद्रव उठ खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में चौलाई स्वरस में चीनी मिलाकर पीने से उपद्रवों का शमन होता है। घुँघची बीजों का मुख्य विषाक्त घटक इसमें पाया जाने वाला 'ऐब्रिन' नामक तत्त्व है। किन्तु इसकी विषाक्तता विशेषतः गुञ्जाचूर्ण या कल्क को त्वचाधः मार्ग से प्रविष्ट करने पर होती है। उक्त क्रिया इसके स्थानिक प्रभाव के कारण तथा शोषणोपरान्त सार्वदैहिक प्रभाव से होती है। मुखद्वारा उचित मात्रा में सेवन किये जाने पर इसका पाचन हो जाता है, और कोई विषाक्तता नहीं लक्षित होती। इस क्रिया का दुरुपयोग कहीं-कहीं चमड़े के व्यवसायी लोग पशुओं को मारने के लिए करते हैं। एतदर्थ गुञ्जाचूर्ण की जल के साथ बत्ती बना कर सुखा लेते हैं, और इसे पशु की त्वचा के नीचे स्थापित कर देते हैं। इस प्रकार ३-४ रोज में पशु का प्राणान्त हो जाता है। कभी-कभी इसकी वर्तिका का उपयोग अवैध रूप से गर्भपात कराने के लिए भी किया जाता है।

मुख्य योग—गुञ्जाभद्ररस।

विशेष— 'गुञ्जा' का ग्रहण परवर्ती रसग्रंथों में 'उपविष' वर्ग में किया गया है। एतदर्थ बीजों का ग्रहण होता है। इनका प्रयोग शोधनोपरान्त किया जाता है। शोधनार्थ गुंजा के बीजों का गोदुग्ध या काञ्जी में एक प्रहर तक दोलायंत्र में स्वेदन करना चाहिए।

गुड़मार (मेषशृंगी)

नाम। सं०—मेषशृंगी ? हिं०—गुड़मार। बं०—मेड़ाशिंगी। ले०—जीम्नेमा सील्वेस्ट्रे (Gymnema sylvestre *Br.*)।

वानस्पतिक कुल। अर्क-कुल (आस्क्लेपिआडासे *Asclepiadaceae*)।

प्राप्तिस्थान—कोंकण, त्रावन (ण) कोर, गोवा, मध्यभारत तथा विन्ध्यप्रदेश के जंगल।

संक्षिप्त परिचय—गुड़मार की काष्ठीय परन्तु पतले-पतले काण्ड की तथा बहुशाखी चक्रारोही लताएँ होती हैं, जो ऊँचे वृक्षों का सहारा पाने पर काफी ऊँचाई तक चढ़ जाती हैं। शाखाएँ या टहनियाँ रोमश होने के कारण प्रायः पीताभ; पत्तियाँ २.६७ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इंच—कभी-कभी ७.५ सें० मी० या ३ इञ्च तक) लम्बी तथा १.२५ सें० मी० से २.६७ सें० मी० (½ इंच से १½ इंच) तक चौड़ी, रूपरेखा में लट्वाकार, अंडाकार या लट्वाकार भालाकार, अग्रपर नुकीली, आधार की ओर गोलाकार या हृद्वत् अथवा कभी-कभी मुण्डित (*cuneate*) होती हैं। पत्तियाँ दोनों पृष्ठों पर (विशेषतः अधः पृष्ठ पर) रोमश होती हैं। शिराओं पर रोम अधिक स्पष्ट होते हैं। पर्णवृन्त ६.२५ मि० मि० से १२.५ मि० मि० या ¼ इंच से ½ इंच तक लम्बे तथा रोमश होते हैं। पुष्प सूक्ष्म, पीले, समस्थमूर्धजक्रम में निकले हुए होते हैं। फलियाँ (*follicles*) प्रायः एकाकी (दो में से एक का प्रायः विकास नहीं होता) ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ३ इंच लम्बी, व्यास में ८ मि० मी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या ३/४ इंच और अग्र की ओर क्रमशः संकुचित होकर चोंच जैसी हो जाती हैं। शरद्-ऋतु में पुष्प और शीतकाल के अन्त में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—पत्र, मूल (एवं बीज)।

मात्रा। पत्रचूर्ण—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा। मूलक्वाथ—२½ तोला से ५ तोला। बीज चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—(१) पत्र—गुड़मार की पत्तियाँ १० सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ४ इञ्च से ५ इञ्च लम्बी, रूपरेखा में लट्वाकार-भालाकार (*ovate-lanceolate*) से अभिलट्वाकार (*obovate*), ऊर्ध्वपृष्ठ गहरे हरे-रंगका तथा चमकदार; अधःपृष्ठ फीके हरेरंगका, सूक्ष्म मृदु रोमावृत्त, शिराविन्यास (*venation*) जालमय (*reticulate*) जिनमें पत्र-तटों की ओर भी एक स्पष्ट नाड़ी होती हैं; स्वाद में किंचित् नमकीन एवं कड़वी (*acrid*)। पत्तियों को चाबने से भी जीभ की स्वाद-ग्रहणशक्ति (मधुर, तिक्त) नष्ट हो जाती है, इसी से इसे 'गुड़मार' या 'मधुनाशिनी कहते हैं। (२) जड़—गुड़मार की जड़ छोटी अंगुली के बराबर मोटी, कुछ-कुछ श्वेत सारिवा की जड़ से मिलती-जुलती है। इसका काष्ठीय भाग कड़ा (*tough wood*) होता है। ताजी जड़ों का छिलका (*bark*) लालिमा लिये भूरेरंग का तथा मुलायम होता है, जिस पर लम्बाई के रुख दरारें (*fissured longitudinally*) होती हैं; किन्तु सूखने पर इसके भार में अपेक्षाकृत काफी कमी हो जाती है, तथा छाल भी काष्ठीय भाग से आसानी से पृथक् होने योग्य हो जाती है। शुष्कावस्था में इसपर अनुप्रस्थ दिशा में दरारें हो जाती (*transversely fissured*) हैं। स्वाद में यह पत्तियों की भाँति किंचित नमकीन एवं कड़वी (*acrid*) होती है। (३) बीज—१.२५ सें०मी० या ½ इंच तक लम्बे, लम्बगोल-आयताकार किन्तु चौड़ाई में अपेक्षाकृत कम (*narrowly ovoid-oblong*) चपटे, रंग में भूरे तथा चिकने और पक्ष युक्त (*with thin broad marginal wing*) होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—फूल-फल आजाने पर पत्तियों का संग्रह कर छायाशुष्क करके अच्छी तरह डाटबंद शीशियों में रखें। जड़ों का संग्रह फल पकने के बाद करें और छायाशुष्क करके डाटबन्द पात्रों में शीतल स्थान में रखें।

संगठन—गुड़मार की पत्तियों में २ रेजिन, जिनमें एक ऐल्कोहल् में घुलनशील तथा दूसरा अविलेय होता है। अल्पमात्रा में एक तिक्त क्लीवतत्त्व (*bitter neutral principle*), ऐल्ब्युमिन तत्त्व एवं रंजक द्रव्य, कैल्सियम् आक्जेलेट, गिम्नेमिक एसिड (६%), क्वर्सिटॉल (*Quercitol*), शर्करापाचक किण्व, तथा भस्म में फेरिक ऑक्साइड एवं मैंगनीज आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—६ महीने से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—दीपन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, हृदयोत्तेजक, मूत्रल, कटु पौष्टिक। इसके बीज प्रतिश्याय, कास-श्वास नाशक, मूल विषघ्न होता है। पत्र में आर्त्तवप्रवर्त्तक एवं विषमज्वरनाशक गुण भी पाये जाते हैं।

मुख्य योग—मधुमेहान्तकचूर्ण (गुड़मार की पत्तियों का चूर्ण)।

विशेष—मधुमेह (*Diabetes Mellitus*) में गुड़मार की पत्तियों के प्रयोग की बहुत प्रसिद्धि है। पत्तियों का चूर्ण (१ माशा से २ माशा) प्रातः-सायं शहद या गोदुग्ध से देते हैं। इससे यकृत की क्रिया में सुधार होकर मधुजन संचय की शक्ति बढ़ जाती है, जिससे रक्तगत शर्करा की मात्रा भी कम हो जाती है। अग्न्याशय, अधिवृक्क एवं अवटुग्रंथियों के स्राव में भी यह सहायता करता है, जिससे अप्रत्यक्षतया यकृत में मधु या ग्लूकोज को मधुजन या ग्लाइकोजन के रूप में संचित करने की शक्ति बढ़ती है।

गुडूची (गिलोय)

नाम। सं०—वल्ली, गुडूची, अमृता। हिं०—गुर्च, गिलोय। फा०—गिलो। ले०—टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिआ (**Tinospora cordifolia** *Miers*)।

वानस्पतिक कुल। गुडूची-कुल (मेनिस्पेर्मासे *Menispermaceae*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष।

संक्षिप्त परिचय—(लता) बहुवर्षायु, आरोहिणी। तना—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हरिताभ, मांसल, काटने पर (अनुप्रस्थ व्यच्छेद) अन्तर्भाग चक्राकार। पत्र–एकान्तर, मसृण, हृदयाकार। पत्रनाड़ियाँ–संख्या में ७ से ९। पत्रव्यास–५ से १० सें० मी० या २ इञ्च से ४ इंच। पर्णवृन्त–२.५ से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बा। पुष्प–गुच्छकों में, छोटे, पीतवर्ण, पत्रकोणोद्भूत, नरपुष्प बाह्यकोषदल पीतवर्ण तथा स्त्रीपुष्प बाह्य कोषदल हरितवर्ण। फल–छोटे मटर के समान, अपक्वावस्था में हरित और पक्वावस्था में रक्त। बीज–श्वेत और मिर्च के दाने के समान छोटे।

उपयोगी अंग–काण्ड तथा पत्र।

मात्रा। चूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।
क्वाथ–३ तोला से ८ तोला।
स्वरस–१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–गुर्च के ताजे काण्ड की छाल (*bark*) हरे रंग की तथा गुदार होती है। इसका बाह्यस्तर (*epidermis*) हल्के भूरेरंग का होता है, तथा कागज की भाँति पतले पर्तों में छूटता है। इस पर स्थान-स्थान में इतस्ततः छोटे-छोटे गठीले-उत्सेध (*warty prominences*) भी पाये जाते हैं। लम्बे काण्ड पर कहीं-कहीं सूत्राकार आगन्तुक जड़ें भी पायी जाती हैं तथा छोटी-छोटी कोमल शाखाएँ होती हैं, जिनपर हृदयाकार छोटे पत्र लगे होते हैं। सूखने पर काण्ड बहुत सिकुड़ जाता है। त्वचा हल्के भूरे रंग की होती है, जिस पर अनुप्रस्थ दिशा में चिह्न (*transverse markings*) एवं श्वसनरन्ध्र के चिह्न (*lenticels*) भी पाये जाते हैं। सूखे हुए काण्ड के छोटे-बड़े कटे हुए टुकड़े बाजारों में मिलते हैं, जो रूपरेखा में बेलनाकार तथा मोटाई का व्यास ¼ इञ्च से १ इञ्च तक होता है, जिस पर से छाल काष्ठीय भाग से आसानी से पृथक् हुई रहती है। गुर्च स्वाद में अत्यन्त तिक्त होता है, तथा इसमें कोई विशेष गंध नहीं पायी जाती। इसके निस्रुतक्वाथ में आयोडीन का घोल डालने पर गहरा नीलवर्ण उत्पन्न होता है, जो कि स्टार्च की उपस्थिति का परिचायक है। इसके अतिरिक्त गुडूची में अन्य विजातीय सेन्द्रिय द्रव्य अधिकतम २ प्रतिशत तक होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–वर्षा से पूर्व ग्रीष्म-ऋतु में संग्रहकर, बाह्यत्वचा निकाल दें। फिर छोटे-छोटे टुकड़े कर छाया में सुखा लें और वायु एवं धूलरहित अनार्द्र और शीतल स्थान में बन्द डिब्बों में रखें। गुडूची का प्रयोग ताजा ही अच्छा रहता है।

संगठन–गिलोइन, गिलोइनिन, गिलोस्टेराल एवं अल्प मात्रा में दारुहरिद्रासत्वसम पदार्थ (बर्बेरीन *Berberine*), मोमयुक्त पदार्थ।

वीर्यकालावधि–३ मास।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–तिक्त, कषाय। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–त्रिदोषशामक, तिक्त-बल्य (कटु पौष्टिक), ज्वरघ्न, रक्तशोधक तथा कुष्ठ एवं वातरक्तशामक आदि।

मुख्य योग–गुडुच्यादि क्वाथ, अमृतारिष्ट, संशमनी वटी, अर्कहराभरा।

विशेष–(१) चरकोक्त (सू० अ० ४) तृष्णिघ्न, स्तन्य-शोधन, तृष्णानिग्रहण, दाहप्रशमन, वयःस्थापन गण एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) आरग्वधादि, पटोलादि, काकोल्यादि, गुडूच्यादि एवं वल्लीपंचमूल में 'गुडूची' भी है।

(२) वल्लीगुडूची (जिसका वर्णन ऊपर किया गया है) के अतिरिक्त निघंटुओं में गुडूची की एक दूसरी जाति का उल्लेख मिलता है, जिसे पद्मगुडूची या कन्दोद्भवा गुडूची (टीनोस्पोरा मालावारिका **T. malabarica** (*Lam.*) *Miers.*) कहते हैं। इसकी जड़ कन्दाकार होती है।

(३) गुडुचीसत्व–के निर्माण में प्रायः गुर्च के काण्डों से श्वेतसारीय भाग ही पृथक् किया जाता है। औषधीय गुणकर्म की दृष्टि से इसमें गुर्च के सक्रिय अंश नहीं के बराबर पाये जाते हैं। अतएव गुर्च का क्वाथ कर रसक्रिया की पद्धति से इसका घनसत्व प्राप्त करना चाहिए। (लेखक)।

गुलशकरी (गुड़शर्करा)

नाम। सं०–गुड़शर्करा; चतुष्फला। हिं०–गुलशकरी, गंगेरन। बिहार–सेतारेपड़ी, सेतापेटू, सेताजरका, सेतकट, सेताण्डीर, कुकुरबिचा, कुकुरांड (कुकुरों के अण्डकोश के सदृश)। ले०–ग्रूइआ हिर्सुटा **Grewia hirsuta** *Vahl.*

वानस्पतिक कुल। परूषक-कुल (टिलिआसि : *Tiliaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालय की तराई, बिहार, उड़ीसा एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिन्ध्य के जंगलों में तथा राजस्थान, गुजरात एवं दक्षिण भारत में इसके स्वयंजातक्षुप पाये जाते हैं।

संक्षिप्त परिचय–इसके गुल्म (क्षुप) ४५ सें० मी० से ९० सें० मी० या १½ फुट से ३ फुट तक ऊँचे होते हैं। शाखाएं प्रायः मूल के पास से निकली होती हैं तथा रोमश होती हैं। पत्तियों की रूपरेखा में नानारूपिता पायी जाती है, जो रेखाकार, लट्वाकार प्रासवत् अथवा आयताकार, प्रायः लम्बाग्र तथा अल्पवृन्त वाली एवं तीक्ष्ण दन्तुर होती हैं। फूल पीले और फल प्रायः चारखण्ड वाले होते हैं, और मृदु रोमों से ढँके होते हैं। औषधि में गुलशकरी के मूल का व्यवहार होता है। पकेफल–मधुर किंचित् स्वादिष्ट होते हैं। इनमें ५–६ बीज होते हैं। जाड़ों में पुष्प-फल लगते हैं।

वक्तव्य–ग्रामीण क्षेत्रों तथा वन्य क्षेत्रों में जहाँ यह होती है, स्थानिक लोग इसे खाते हैं। गोरखपुर (पूर्वी उ० प्र०) में इसे 'सीताचबैनी' कहते हैं। (लेखक)।

उपयोगी अंग–मूल (विशेषतः मूलत्वक्)।

मात्रा। क्वाथार्थ–६ माशा से १ तोला।

चूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण–जाड़ों के अन्त में मूल का संग्रह कर, जल से मिट्टी आदि साफ कर छायाशुष्क करके मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस–मधुर, कषाय। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–वातपित्त-शामक, नाड़ीबल्य, मेध्य, स्नेहन, अम्लतानाशन तथा अनुलोमन, हृद्य, रक्तपित्तशामक, कफनिःसारक, दाह-प्रशमन, ज्वरघ्न, मूत्रल, गर्भस्थापन, वृष्य, रसायन। स्थानिक प्रयोग से गुलशकरी की जड़ एवं पत्र रक्त-स्तम्भन, वेदनास्थापन तथा व्रणरोपण होवे हैं।

विशेष–इसकी बड़ी जाति ग्रूइआ पॉपूलीफ़ोलिआ **Crewia populifolia** *Vahl.*) को 'गाङ्गेरुकी' कहते हैं। इसके गुण-कर्म बहुत-कुछ धामिन या धन्वन (ग्रूइआ टीली-फ़ोलिआ (**Grewia tilaefolia** *Vahl.*) से मिलते-जुलते हैं।

गुलाब (तरुणी)

नाम। सं०–तरुणी, शतपत्री। हिं०, म०, गु०–गुलाब। बं०–गोलाप। अ०–बर्द, बर्दे अहमर। फा०–गुले सुर्ख। अं०–रोज (*Rose*)। ले०–रोज़ा आल्बा **Rosa alba** *Linn.*; (२) रोज़ा डामास्केना **Rosa damascena** *Mill.* (३) रोज़ा सेंटिफोलिआ **R. centifolia** *Linn.*।

वानस्पतिककुल। तरुणी-कुल (रोज़ासे : *Rosaceae*)।

प्राप्तिस्थान–गुलाब का मूल उत्पत्तिस्थान सीरिया है। किन्तु सम्प्रति यह समस्त भारतवर्ष के बग़ीचों में लगाया जाता है। अनेक क्षेत्रों में व्यावसायिक रूप से इसकी खेती की जाती है। उत्तर प्रदेश में गाजीपुर एवं जौनपुर गुलाबोत्पादक क्षेत्र हैं। सुखाये पुष्प एवं इसका अर्क तथा इत्र सर्वत्र बाजारों में पंसारियों एवं सौगन्धिकों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–गुलाब के कँटीले, झाड़ीदार गुल्म होते हैं। आजकल गुलाब की अनेक जातियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें बहुतों के पुष्प निर्गन्ध भी होते हैं। इनका उपयोग सौन्दर्य के लिए किया जाता है। भारतवर्ष में कर्षित जातियों में मुख्यतः उपर्युक्त जातियाँ होती हैं। इनके पुष्प सुगन्धित भी होते हैं और सौन्दर्य के लिए भी यह उपयुक्त हैं। अफगानिस्तान एवं उत्तरी पश्चिमी हिमालय के कश्मीर, गढ़वाल एवं कुमायूँ आदि प्रान्तों में जंगली गुलाब (कुब्जक) भी पाया जाता है, जिसके काँटेदार आरोही क्षुप होते हैं। काँटे मजबूत और टेढ़े होते हैं। पुष्पों में केवल ५ दलपत्र होते हैं, जो श्वेत, हल्केगुलाबी या पीताभ-श्वेत एवं सुगन्धित होते हैं। स्थानिक क्षेत्रों में इनसे भी इत्र आदि निकाला जाता है। लगायी हुई जातियों के पुष्प काफी बड़े तथा दलपत्रों (*petals*) की संख्या बहुत अधिक होती है। रंगभेद से लगाया हुआ गुलाब अनेक प्रकार का होता है। गुलाब में वसन्त में फूल आते हैं और उस समय इसके सुखाये हुए पुष्प थोक के थोक बिकते हैं। विकसित गुलाब पुष्पों के दलपत्रों की भैषज्यकल्पना में काफी खपत गुलकन्द बनाने में होती है। यूनानी वैद्यक में इसके केसर (गुलाब जीरा *Rose seeds*) एवं फल (समरुल्वर्द–समरेगुल) भी व्यवहृत होते हैं।

उपयोगी अङ्ग–कलिका, विकसित दलपत्र। कलियों में कषैलापन एवं ग्राही क्रिया अपेक्षाकृत अधिक होने से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्वाथादि में डालने के लिए इनका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होता है। 'गुलकन्द' ताजे विकसित पुष्पों से बनाया जाता है। 'अर्क' एवं 'इत्र' भी ताजे विकसित पुष्पों से बनता है। अर्क एवं गुलकन्द का उपयोग अनुपान के रूप में किया जाता है। अर्क का उपयोग भैषज्यकल्पना में पिष्टियों के निर्माण में किया जाता है।

मात्रा। पुष्प–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।
गुलकंद–१ तोला से २ तोला।
अर्क–आवश्यकतानुसार।

गुणागुण परीक्षा–'रोजा डामास्केना' के कंटीले क्षुप होते हैं, जिनमें प्रचुरता से छोटे-बड़े कड़े एवं तीक्ष्ण कण्टक पाये जाते हैं। पत्तियाँ ५–७, लट्वाकार पत्रकयुक्त होती हैं। इसके पुष्प सुगन्धित एवं हल्के लाल (या गुलाबी रंग के) होते हैं। फल अण्डाकार, रूपरेखा में जैतून की तरह और गुदार होता है, जो पकने पर लाल हो जाता है। इसे काटने पर अन्दर रोंआ और लम्बे-लम्बे सफेद दाने होते हैं। ताजे पुष्पों में एक मनोरम विशिष्ट सुगन्धि होती है, तथा स्वाद में यह तिक्त, चरपरा, कषाय एवं किंचिन्मधुर होते हैं। शुष्क पुष्पों में कटुत्व अपेक्षाकृत कम होता है। कलियाँ कुछ अधिक कसैली होती हैं। फलों का स्वाद मधुर एवं कसैला होता है।

संगठन–पुष्पों में उत्पत्तैल (रोग़न गुल, इत्रगुल) तथा टैनिक एसिड एवं गैलिक एसिड आदि कषाय तत्त्व पाये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–कालिका एवं पुष्पों का संग्रह प्रायः प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व किया जाता है। इन्हें छाया शुष्क कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

स्वभाव–गुलाब रस में तिक्त, कटु, कषाय एवं मधुर तथा मधुर विपाक एवं शीतवीर्य है। यह दुर्गन्धनाशक, वर्ण्य एवं व्रणरोपण, शोथहर, मनःप्रसादकर, उत्तमांगों को बलप्रद, अवरुद्धदोषोत्सर्गकर, दाहप्रशमन, ज्वरघ्न, हृद्य, शोणितास्थापन तथा पित्त की तीक्ष्णता को शान्त करने वाला होता है। इसके दलपत्र सारक होते हैं। अतएव कोमल स्वभाव वाले आदती कब्ज के रोगियों में गुलकन्द का व्यवहार बहुत उपयोगी होता है एतदर्थ इसे रात्रि में सोते समय गर्म दूध सेदिया जाता है। कषाय रस एवं ग्राही होने से कलिका एवं पुंकेशर का उपयोग अतिसार-प्रवाहिका एवं रक्तपित्त की अवस्थाओं में किया जाता है। गुलरोगन, अर्क गुलाब एवं सिरका में कपड़ा भिगो कर सन्निपातज्वर में सिरपर रखा जाता है। अर्क का उपयोग पिष्टियों के निर्माण के लिए; अनेक कल्पों को सुगन्धित करने के लिए, तथा अनुपान रूपमें किया जाता है।

मुख्य योग–गुलकन्द, गुलरोग़न, अर्कगुलाब।

गूगल (गुग्गलु)

नाम। सं०–गुग्गुलु, कौशिक, पूर, पलङ्कष, महिषाक्ष। हिं०–गुग्गुलु, गूगल। बं–गुग्गुल। सिंध–गुगरु। म०, गु०–गुगल। द०–गूगल। अ०–मुक़्ल, अफ्लात,(तू) न। फा०–बूए जहूदान। अं०–ब्डेलियम् (*Bdellium*)। ले०–ब्डेल्लिओन (*Bdellion*)। (वृक्ष का नाम)–कोम्मीफ़ोरा वाइटिई **Commiphora wightii** (*Arn.*) *Bhandari.* (पर्याय–*C. roxburghii* (*Stocks*) *Engl.*; *C. mukul* (*Hook ex Stocks*) *Engl*; *Balsamodendron mukul Hook ex Stocks.*)।

वानस्पतिक कुल–गुग्गुल्वादि-कुल (बर्सेरासे *Burseraceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष में सिंध, राजस्थान, गुजरात, बरार, खानदेश, आसाम, सिलहट, पूर्व बंगाल और मैसूर प्रान्त में गुग्गुल के स्वयंजात गुल्म पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह बलूचिस्तान एवं अरब, अफ्रीका आदि में होता है। गुग्गुल का गोंद (निर्यास) बाजारों में बिकता है।

संक्षिप्त परिचय–गुग्गुल के शाखाबहुल गुल्म (*stunted bush*) या छोटे वृक्ष होते हैं; शाखाग्र चुकीले, पत्र, सपत्रक, जिनमें ३–३ पत्रक होते हैं, जो चिकने, चमकदार, अभिलट्वाकार, अग्र की ओर का तट नीमकी पत्तियों की भाँति दंतुर होते हैं। पत्रक प्रायः विनाल (*sessile*) या बहुत छोटे वृन्त पर लगे होते हैं। पुष्पः प्रायः वृन्त-रहित तथा एकलिंगी, कई-कई पुष्पों के गुच्छकों (*fascicles*) में निकलते हैं। नरपुष्प में अप्रगल्भ डिम्बाशय (*abortive ovary*) तथा स्त्रीपुष्प में बन्ध्य या क्लीब केशर (*staminodes*) होते हैं। दलपत्र (*petals*) संख्या में ४–५, भूरापन लिये लालरंग के,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

पुंकेशर (*stamens*) संख्या में ८–१०, कुक्षि (*stigma*) प्रायः द्विखण्डीय होती है। फल (*drupe*) मांसल लट्वाकार तथा अग्रपर नुकीले, पकने पर यह लाल वर्ण के हो जाते हैं। गुठली द्वि-कोष्ठीय होती है। पुष्पागम प्रायः मार्च-अप्रैल के महीने होता है। जाड़ों में गुग्गुल के काण्ड से अपने आप तथा चीरा लगाने से काफी मात्रा में एक सुगन्धित निर्यास (*Gum-resin*) निकलता है। यही औषधि में काम आता है, जो बाजारों में 'गूगल' के नाम से बिकता है।

उपयोगी अंग–निर्यास।

मात्रा–०.५ ग्राम से १.५ ग्राम या ½ माशा से १½ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–बाजार में गूगल की दो जातियाँ मिलती हैं–(१) कणगूगल और (२) भैंसा (महिषाक्ष) गूगल। कणगूगल मारवाड़ में होता है, और उसके ललाई लिये हुए पीलेरंग के गोल दाने होते हैं। यह भैंसा गूगल से नरम होता है। भैंसा गूगल का रंग हरापन लिये पीला होता है। यह सिंध, कच्छ आदि में होता है। उत्तम गुग्गुल वह है जो चमकीला, चिपकनेवाला (चिमचोड), नरम, मधुरगंधी, कुछ पीला और तिक्त हो, पानी में शीघ्र घुलजाय तथा लकड़ी, रेत और मिट्टी से शुद्ध हो। अग्नि में डालने से गूगल जलता है, धूप में पिघलता है, तथा गरम जल में डालने पर दूध के समान घोल बनता है। इसमें अधिकतम ४.५% विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य होते हैं।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–पूर्वी बंगाल, आसाम तथा मध्य प्रदेश में गुगल की एक और जाति पायी जाती है, जिसे कोम्मीफोरा रॉक्सबुर्गी **Commiphora roxburghii** (*Arn.*) *Engl.* (पर्याय-बाल्समोडेन्ड्रोन रॉक्सबर्गी *Balsamodendron roxburghii Arn.*) कहते हैं। इसका निर्यास भी बहुत-कुछ गूगल के ही भाँति होता है, और इसका संग्रह गूगल के नाम से किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण–गूगल का संग्रह जाड़े के दिनों में किया जाता है। एक वृक्ष से लगभग ½ सेर से १ सेर तक गोंद प्राप्त होता है। इसको अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए और नमी से बचाना चाहिए।

संगठन–गूगल में एक उत्पत् तैल (१.४५%), रालदार गोंद (*Gum-resin*) तथा एक तिक्त सत्व पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–२० वर्ष तक।

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, पिच्छिल, सूक्ष्म, सर। रस–तिक्त, कटु, मधुर, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–त्रिदोषहर। कर्म-शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणशोधन, व्रणरोपन, जन्तुघ्न, नाडीबल्य, दीपन, छेदन, यकृदुत्तेजक, अर्शोघ्न, रक्तशोधक, रक्तकण एवं श्वेत-कणवर्धक, गण्डमालानाशक, कफनिस्सारक, मूत्रल, रसायन, बल्य (नया गूगल), लेखन (पुराना गूगल) कुष्ठघ्न, वर्ण्य, शीतप्रशमन आदि। यूनानी मतानुसार, गुग्गुल तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। अहितकर–यकृत और फुफ्फुस को। निवारण–कतीरा और केसर।

मुख्य योग–योगराज एवं महायोगराज गुग्गुलु, कैशोर गुग्गुलु, चन्द्रप्रभावटी, अतरीफल मुक्ल, मुमूसिका, माजून मुक्ल, माजून जोगराज गूगूल, हब्ब मुक्ल आदि। इसके अतिरिक्त गुग्गुल के और भी अनेक योग प्रचलित हैं।

विशेष–आभ्यन्तर प्रयोग करने के लिए शुद्ध गुग्गुल लेना चाहिए। एतदर्थ गोदुग्ध में गुग्गुल का स्वेदन किया जाता है। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) एलादिगण में 'गुग्गुल' भी है।

गूमा (द्रोणपुष्पी)

नाम। सं०–द्रोणपुष्पी, फलेपुष्पा, कुम्भी। हिं०–गूमा (माँ), गोम। बं०–घलघसे, दंडकलस। म०–तुम्बा, कुम्भा। गु०–कूबो। मा०–दड़वल। लै०–लेउकास सेफ़ालोटीस (**Leucas cephalotes** *Spreng*)।

वानस्पतिक कुल। तुलस्यादि-कुल (लाबिआटे *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान–गूमा के पौधे भारत में हिमालय प्रदेश में १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक, तथा मैदानी भागों में एवं हलकृष्ट क्षेत्रों में भी बरसात में भदई फसल के साथ प्रचुर मात्रा में स्वयं ही उत्पन्न होते हैं।

संक्षिप्त परिचय–द्रोणपुष्पी का क्षुप एकवर्षायु अधिक-से-अधिक ½ गजतक ऊँचा, सीधा, या छतदार, काण्ड चौकोर, दृढ़, खुरखुरा या रोंगटेदार, पत्तियाँ २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इंच लम्बी, रेखाकार, लम्बकुण्ठिताग्र पत्रतट या किनारे सरल या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोलदन्तुर; पुष्प बहुत बड़ा, शाखांत, गोल चक्राकार, तथा वृन्तपत्र लम्बे, रेखाकार, पुष्पगुच्छ के ऊपर प्रायः दो पत्तियाँ लगी होती हैं। पुष्पागम शरदऋतु में होता है। क्षुप गर्मियों में सूख जाता है। इसकी पत्ती को मसलने से एक तीक्ष्णगन्ध आती है।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग (*The Herb*), पत्र एवं पुष्प।

मात्रा। स्वरस–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण–फल आ जाने पर पंचाङ्ग का संग्रह कर, सुखा कर, मुखबंद पात्रों में अनार्द्र एवं शीतल स्थान में रखें।

संगठन–इसमें अल्प प्रमाण में एक उड़नशील तेल तथा एक ऐल्केलॉइड पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–३ महीने से ६ महीना।

स्वभाव। गुण–गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, लवण, मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–पित्तशोधन, कामला एवं ज्वरनाशक, दीपन, रक्तशोधक, आर्त्तवजनन, स्वेदजनन, वातशमन, संस्रन, वातशमन, कफघ्न, आदि। अहितकर–उष्ण प्रकृति को। निवारण–काली मिर्च, मधु एवं अदरक। प्रतिनिधि–भंगरा।

मुख्य योग–द्रोणपुष्पी का प्रयोग प्रायः एकौषधि अथवा अनुपान के रूप में होता है।

विशेष–चरकोक्त, (सू० अ० २७) एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ४६) शाकवर्ग में द्रोणपुष्पी ('कुतुम्बक' नाम से) भी है।

गूलर (उदुम्बर)

नाम। सं०–उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाङ्ग, हेमदुग्ध। हिं०–गुल्लर, गूलर, ऊमर। बं–यज्ञडुमुर। म०–उंमर। गु०–उंबरो, उमरडो। मल०, ता०–अत्ति (*Atti*)। फा०–अंजीरे आदम, अंजीरे अहमक़। अ०–जम्मैज, तीनुल् अह्मक़। अं०–दि गूलर फ़िग या कंट्री फ़िग (*The Gular Fig or Country Fig.*)। ले०–फ़ीकुस ग्लोमेराटा **Ficus glomerata** *Roxb.* (पर्याय–*F. racemosa Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। वट-कुल (मोरासी *Moracaceae*)।

प्राप्तिस्थान–प्रायः समस्त भारतवर्ष में १८२८.८ मीटर (६,००० फुट) की ऊँचाई तक गूलर के लगाये हुए तथा जंगली दोनों प्रकार के वृक्ष मिलते हैं। सदाबहार जंगलों एवं नदी-नालों के किनारे इसके वृक्ष अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। सर्वत्र सुलभ होने से इसके अन्य औषधप्रयुक्त अंगों का संग्रह प्रायः नहीं किया जाता।

संक्षिप्त परिचय–गूलर के मध्यमाकारी (कभी-कभी ऊँचे) तथा पतझड़ करनेवाले क्षीरी वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ पार्श्वों में न फैल कर प्रायः सीधी ऊपर की ओर बढ़ती हैं। काण्डस्कन्ध (*trunk*) अपेक्षाकृत लम्बा एवं मोटा, कुछ टेढ़ा होता है। छाल खाकस्तरी या लालिमा लिये भूरेरंग की या मुरचई रंगलिये हरिताभ अथवा हरिताभ-भूरेरंग की होती है। इसके वृक्ष पर क्षत करने से काफी दूध-जैसा स्राव निकलता है, जो थोड़ी देर रखने पर पीला हो जाता है। पत्तियाँ ६ सें० मी० से १६ सें०मी० (२½ इंच से ७ इंच) तकलम्बी ३.७५ सें०मी० से ६.१२५ सें० मी० (१½ इंच से २½ इंच) तक चौड़ी रूपरेखा में लट्वाकार, आयताकार, लट्वाकार-भालाकार या अण्डाकार-भालाकार तथा सरलधारवाली, सोपपत्र एवं एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। अग्र नुकीला या कभी सहसा कुण्ठिताग्र नोक-युक्त तथा आधार की ओर चौड़ाई उत्तरोत्तर कम होती है। पर्णवृन्त २½ सें०मी० से ५ सें०मी० (१ इंच से २ इंच) लम्बा तथा ऊर्ध्व तल पर हलखातयुक्त और उपपत्र ५½ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) लम्बे, लट्वाकार, भालाकार होते हैं। फल गोलाकारसे (*subglobose*), व्यास में २.५ से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १॥ इञ्च) तक तथा सूक्ष्म रोमावृत (*downy*) होते हैं, जो काण्डस्कन्ध तथा अन्य पत्रहीन शाखाओं पर गुच्छों (*short thick paniculate clusters*) में निकलते हैं। कच्चे पर यह हरे तथा पकने पर नारंगी के रंग के हो जाते हैं। फल सदा लगे रहते हैं। इसीलिए इसे 'सदाफल' भी कहते हैं।

उपयोगी अंग–काण्डत्वक् (छाल), फल एवं मूल (मूल-त्वक्) तथा क्षीर और पत्र।

मात्रा। कच्चे गूलर का चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा ६ माशा। छालक्वाथ—२½ तोला से ५ तोला। पत्रका शीरा–६ माशा से १ तोला। क्षीर (दूध)–१० बूंद से २० बूंद। जड़ का पानी—आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। फल (*Figs*)–इस कुल के अन्य वृक्षों की भाँति गूलर के फल भी कुम्भव्यूहोद्भव (*syconus*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता है, जिसमें कुम्भाभव्यूह का दल्यक्ष (*receptacle*) मोटा और मांसल हो जाता है। वास्तविक फल इसके अन्तःपृष्ठ पर छोटे-छोटे दानों की भाँति पाये जाते हैं, जिनको व्यवहार में बीज कहा जाता है। गूलर का उक्त फल रूपरेखा में अंजीर की भाँति या शंक्वाकार तथा व्यास में $\frac{1}{2}$ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच से $1\frac{1}{2}$ इञ्च) तक बड़ा होता है। नाभि या शीर्ष पर एक छिद्र होता है, जहाँ फल अन्दर की ओर कुछ धँसा होता है। एक ही कुम्भाभव्यूह में पुंपुष्प, स्त्रीपुष्प (*staminate and pistillate flowers*) तथा अप्रगल्भ स्त्रीपुष्प (*gall flowers*) तीनों ही प्रकार के पुष्प मिले-जुले पाये जाते हैं, अथवा कुछ फलों में केवल पुंपुष्प एवं अप्रगल्भ स्त्रीपुष्प मिले-जुले होते हैं तथा अन्य फलों में केवल स्त्रीपुष्प होते हैं। कभी-कभी फल बाह्यतल पर सूक्ष्म मृदुरोमावृत होते हैं। कच्चे पर यह हरेरंग तथा पकने पर मटमैले या नारंगी रंग के अथवा गाढ़े लालरंग के हो जाते हैं। पुंपुष्प प्रायः अवृन्त होते हैं तथा छिद्र के पास स्थित होते हैं। प्रत्येक पुंपुष्प में ३–४ खण्डों का सवर्णकोश तथा १–२ पुंकेशर होते हैं। अप्रगल्भ स्त्रीपुष्प सवृन्त होते हैं और पुंपुष्पों के साथ पाये जाते हैं। स्त्रीपुष्पों से छोटे-छोटे बीज की भाँति युतोत्फल (*achenes*) बनते हैं। शाक के रूप में अथवा औषध्यर्थ व्यवहृत करने के लिए कोमल अप्रगल्भ कच्चे फलों का व्यवहार करना चाहिए।

काण्डत्वक् (छाल)—पुराने वृक्षों के काण्डस्कंध तथा मोटी शाखाओं से प्राप्त गूलर की छाल हरिताभ मुरचई (*rusty-greenish*) रंग की होती है। किन्तु इसका बाहरी स्तर कागज की तरह पतले पर्तों में पृथक् हो जाता है, और तब छाल मुरचई-भूरे रंग की मालूम होती है, और यही इसका वास्तविक रंग है। छाल का बाह्य तल काफी चिकना और मुलायम होता है, और पीपल तथा बरगद की छाल की भाँति न तो यह फटा ही होता है, और न तो इसपर कड़े चप्पड़ ही पृथक् हुए होते हैं। वातरंध्रों के कोई स्पष्ट चिह्न भी नहीं पाये जाते। गूलर की छाल प्रायः ६.१५ मि० मी० से १८.६५ मि० मी० या $\frac{1}{4}$ इञ्च से $\frac{3}{4}$ इञ्च तक मोटी होती है। कभी-कभी छाल पर अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्म दरारें पायी जाती हैं तथा बाह्यस्तर के छोटे-छोटे कागजी पर्त छुटे हुए लगे होते हैं। उक्त पर्त अंगुलियों से रगड़ने से आसानी से पृथक् हो जाते हैं। कभी-कभी बहुत पुराने वृक्षों की छाल पर कड़े चप्पड़ भी छूटते हैं। ऐसी छाल का बाह्यतल चिकना न होकर कुछ ऊबड़-खाबड़-सा होता है। पूरी छाल की रचना एक तरह की तथा कुछ चर्मिल-सी (*homogeneous leathery texture*) होती है। ताजी छाल का अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर बाह्य त्वक् एक भूरी रेखा के रूप में दिखाई देती है और छाल का शेषभाग मांस के रंग का होता है। किन्तु छाल के सूख जाने पर यह रंग हल्का पड़ जाता है। छाल में कोई विशेष गंध नहीं पायी जाती, किन्तु स्वाद में यह कसैली होती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—सर्वत्र सुलभ होने एवं अत्यंत सस्ती होने से इसमें जानबूझकर मिलावट की कोई सम्भावना नहीं होती।

संगठन—इसमें टैनिन (*tannin*), मोम और काउचूक (*caoutchouc*) अर्थात् रबड़ और भस्म में सिलिका तथा फास्फोरिक एसिड आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। शुष्क कच्चे फल—६ मास। छाल—२ से ३ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, रूक्ष। रस—कषाय, मधुर। विपाक—कटु—कड़वा। वीर्य—शीत। कर्म—कफपित्तशामक। छाल एवं कच्चे फल—अग्निसादक, स्तम्भन, रक्तपित्त-शामक, गर्भाशयशोथहर, शुक्रस्तम्भव, मूत्रसंग्रहणीय, प्रमेह—नाशक, दाहप्रशमन। पक्व फल—श्लेष्मनिःसारक, मनः प्रसादकर, शीतल, रक्तसांग्राहिक किन्तु कृमिकारक होता है। स्थानिक प्रयोग से छाल एवं पत्रक्वाथ शोथ-हर, वेदना-स्थापन, वर्ण्य एवं व्रणरोपण। दूध—शीतल, स्तम्भक, रक्तसांग्राहिक, पौष्टिक एवं शोथहर होता है। यूनानी मतानुसार कच्चा गूलर दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष तथा पका गूलर दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में तर होता है। कच्चे गूलर को पका कर तरकारी की भाँति खाया जाता है। संग्राही एवं स्तम्भन होने के कारण यह रक्तातिसार, प्रवाहिका एवं ग्रहणी के दस्तों को तथा बवासीर के खून को भी बन्द करता है। कच्चे फल औषधिरूप में तथा पथ्यरूप में दिये जा सकते हैं। रक्तप्रदर एवं श्वेतप्रदर में छाल तथा पत्रक्वाथ की उत्तरवस्ति दी जाती है, अथवा उदुम्बरसार का पिचु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धारण किया जाता है। अन्य रक्तपित्तावस्थाओं में छाल तथा फल का व्यवहार कर सकते हैं। दाहप्रशमन एवं संशमन होने से जड़ का पानी राजयक्ष्मा एवं मधुमेह में पिलाते हैं। मधुमेहियों में पके फल पथ्यरूप से भी दिये जा सकते हैं। दाहरोग में पके फलों का शर्बत दे सकते हैं। मूत्रसंग्रहणीय होने से बहुमूत्र रोग में भी उपयोगी है। शोथ, वेदना, व्रण एवं वर्णविकारों में गूलर के शुंग का लेप किया जाता अथवा दूध लगाया जाता है और क्वाथ का उपयोग व्रण धोवे के लिए किया जाता है। चरकोक्त मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय (च०सू० अ० ४), कषायस्कन्ध (च० वि० अ० ८) तथा सुश्रुतोक्त न्यग्रोधादिगण की औषधियों में उदुम्बर (गूलर) का भी उल्लेख है।

योग–उदुम्बर-सार।

विशेष–गूलर की जड़ से पानी निकालने की विधि :— गूलर के युवा वृक्ष की जड़ में गड्ढा खोद कर, उसकी किसी एक जड़ को काट कर घड़े के अन्दर रख दें। जड़ से बूंद-बूंद पानी टपक कर घड़े में एकत्रित होता जायगा। इसी पानी को लेकर आध पाव से पाव भर तक प्रातः-सायं अथवा आवश्यकतानुसार पिलावें।

गोखरू छोटा (गोक्षुर)

नाम। सं०–गोक्षुर, त्रिकण्टक, चणद्रुम, बनशृंगाट, श्वदंष्ट्रा। हिं०–गोखरू, छोटा गोखरू, गुलखुर। बं०–गोखरी। म०–सराटे, कांटे गोखरू। गु०–मीठा गोखरू, न्हाना गोखरू, बेठा गोखरू। पं०–भखड़ा। अ०–हसक। फा०–खारखसक। अं०–स्माल कैल्ट्रोप्स (*smll Caltrops*), कैल्ट्रोप्स (*Caltrops*), कैल्ट्रेप्स (*Caltrap*)। ले०–ट्रीबुलुस् फ्रुक्टुस् (*Tribulus Fructus*)। (वनस्पति का नाम) ट्रीबुलुस् टेरेस्ट्रिस् (**Tribulus terrestris** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। धन्वयास-कुल (जीगोफिल्लासे *Zygophyllaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष, विशेषतः उत्तर एवं दक्षिण भारत में ऊसर या परती जमीन में इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। अन्य उष्ण कटिबन्धीय देशों में भी होता है।

संक्षिप्त परिचय–छोटे गोखरू के कण्टकारी (भटकटैया) की भाँति जमीन पर फैलने वाले एकवर्षायु या बहुवर्षायु अथवा वर्षानुवर्षी क्षुद्रपौधे होते हैं। प्रधान काण्ड एवं शाखाएँ मृदुरोमावृत (*pilose*) होती हैं। पत्तियाँ ५ सें० मी० से ६.५ सें० मी० (२ इञ्च से ३ इञ्च तक) लम्बी, सपत्रक तथा अभिमुखक्रम से (एक स्थान पर आमने-सामने दो-दो) स्थित होती हैं। प्रत्येक पत्ती ४ से ७ जोड़े पत्रकों (*leaflets*) वाली होती है। पुष्प पत्र कोणोद्भूत (*axillary*) अथवा पत्तियों के अभिमुख (*leaf-opposed*) हल्के पीलेरंग के होते हैं। पुष्पवाहक दण्ड (*peduncle*) १ सें० मी० से १.२ सें० मी० लंबा। शरद्-ऋतु में पुष्प तथा बाद में फल लगते हैं। दूर से इसका पौधा चने के पौधों-जैसा लगता है।

उपयोगी अंग–(१) पंचाङ्ग (२) फल (३) मूल।

मात्रा। (१) फलचूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। (२) क्वाथ–५ तोला से १० तोला। चूर्ण के लिए फल तथा क्वाथ से लिए पंचाङ्ग एवं मूल का प्रयोग किया जाता है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–गोखरू का फल गोलाकार, काँटेदार ईषत् पंचकोणीय होता है। वास्तव में उक्त फल ५ काष्ठीय (कड़े) कोष्ठों (*woody cocci*) के परस्पर मिलने से बनता है। अप्रगल्भ तथा हरे फल सूक्ष्म रोमावृत होते हैं। प्रत्येक कोण के ऊपरी एवं निचले सिरे पर दो-दो मृदु कण्टक होते हैं। इस प्रकार १० कण्टक ऊपर और १० नीचे (प्रत्येक कोष्ठ या कोकस् ४-४ कण्टकों से युक्त) होते हैं। प्रत्येक कोष्ठ में छोटे-छोटे बीज भरे होते हैं। फलों में विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य (*Foreign Organic Matter*) अधिकतम ८ प्रतिशत हो सकते हैं। गोखरूमूल–गोखरू की जड़ मुलायम, रेशेदार, बेलनाकार तथा ४ इंच से ५ इञ्च लम्बी, बाहर से हल्के भूरे (*light brown*) रंग की होती है। इसमें एक हल्की सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में किंचित् मधुर एवं कसैली होती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–छोटे गोखरू का एक और भेद होता है, जो पश्चिम भारत, विशेषतः पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, फारस, अरब एवं मिस्र में होता है। नाम–हिं०–गोखुरे कलाँ, बा(भा)खरा। सिंध–निंढोत्रिकुंड; लटक। पं०–हसक। अं०–विंग्डकैल्ट्रोप्स (*Winged Caltrops*)। ले०–ट्रीबुलुस् आलाटुस् (**Tribulus alatus**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Delile.)। इसके फल पिरामिडाकार, सपक्ष (*winged*) होते हैं तथा प्रत्येक कोष्ठ में २-२ बीज होते हैं तथा कण्टक परस्पर मिले हुए (*confluent*) होते हैं। इसका ग्रहण छोटे गोखरू के प्रतिनिधि के रूप में कर सकते हैं। कहीं-कहीं लोग छोटे गोखरू के स्थान में बड़े गोखरू का भी ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। **Acanthospermum hispidum** *DC.* नामक पौधे के फल छोटे गोखरू के पृथक् कोष्ठों (*individual cocci*) से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। अतएव जिन प्रान्तों में यह अधिक होता है, वहाँ इसके मिलावट का भी ध्यान रखना चाहिए।

वक्तव्य—राजस्थान के वैद्य दशमूल में गोखरू के स्थान पर 'बृहद्गोक्षुर (बड़ा गोखरू) का ग्रहण अधिक श्रेयष्कर समझते हैं। (लेखक)।

संगठन—फल में एक ऐल्कलायड या क्षारोद (०.००१%), स्थिर तेल (३% से ५), अत्यल्प मात्रा में एक उत्पत् तेज; राल और पर्याप्त मात्रा में नाइट्रेट्स पाये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—क्वाथार्थ पंचांग एवं मूलका यथासम्भव ताजी अवस्था में संग्रह करना चाहिए। सूखी अवस्था में प्रयुक्त करने के लिए फल पक जावे पर पूरी वनस्पति खोद कर, सुखा कर अनार्द्र शीतल स्थान में डिब्बों में संग्रहीत करें। फलों के लिए पके फल सुखा कर बन्द पात्रों में रखें।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य-शीत। प्रधान कर्म-मूत्रल, वृष्य, बाजीकर, श्वासकासहर। चरकोक्त (सू० अ० ४) कृमिघ्न, अनुवासनोपग, मूत्रविरेचनीय, शोथहर महाकषायों में तथा सुश्रुतोक्त विदारिगन्धादि, वीरतर्वादि, लघुपंचमूल, कण्टकपंचमूल तथा वाताश्मरीभेदन गणों में गोक्षुरक (गोखरू) भी है।

मुख्य योग—गोक्षुरादि चूर्ण, गोक्षुरादि क्वाथ, गोक्षुराद्यवलेह, गोक्षुरादि गुग्गुलु, दशमूलक्वाथ एवं दशमूलारिष्ट तथा अर्क मुरक्कब मुसफ्फीखून।

विशेष—गोखरू का प्रवाही घनसत्व (लिक्विड एक्स्ट्रॅक्ट ऑफ गोखरू (*Liquid Extract of Gokhru*) भी बाजारों में मिलता है। मात्रा—३० बूँद से ६० बूँद ½ ड्राम से १ ड्राम)। गोखरू पंचांग को जल में भिगो कर 'अर्कगोखरू' भी बनाया जा सकता है। इसको लिक्विड एक्स्ट्रॅक्ट की भाँति व्यवहृत कर सकते हैं। 'फलचूर्ण' को एकौषधि की भाँति भी व्यवहृत कर सकते हैं।

गोखरू बड़ा (बृहद् गोक्षुर)

नाम। सं०—तिक्तगोक्षुर, बृहद्गोक्षुर। हिं०—बड़ा गोखरू (गोखुर), विलायती गोखरू, हस्तिचिंघाड़। बं०—बड़ गोखरि। म०—मोठें गोखरू। गु०—ऊभा गोखरू, म्होटा-गोखरू, कड़वा गोखरू। द०—बड़ा गोकरू, हत्ती गोकरू। पं०—गोखरू कलाँ। अ०—हसके कबीर। फा०—खारेखसके कलाँ। ले०—पेडालिउम् मूरेक्स (**Pedalium murex** *L.*)।

वानस्पतिक कुल। तिल-कुल (पेडालिआसे *Pedaliaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिण भारतवर्ष, विशेषतः समुद्रतट, गुजरात, कोंकण तथा लंका। इसके अतिरिक्त उष्ण कटिबंधीय अफ्रीका के रेतीले प्रदेश।

संक्षिप्त परिचय—बड़े गोखरू के छोटे-छोटे पौधे होते हैं, जिसकी शाखाएँ कुछ जमीन पर फैलती है, और कुछ शाखाएँ ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति की भी होती हैं। शाखाएँ एवं पत्तियाँ काफी रसदार (*succulent*), नवीन शाखाएँ, पत्रवृन्त एवं पत्तियों के अधः पृष्ठ तथा कोमल फल ओस-जैसी सफेद रचना से आवृत (*froasted appearance*) होते हैं, जो वास्तव में सूक्ष्म ग्रंथियाँ (*glands*) होती हैं। पत्तियाँ अण्डाकार होती हैं, जिनके अग्र कुण्ठित एवं किनारे दंतुर (*dentate*) होते हैं। इसमें पीलेरंग के फूल आते हैं जो पत्र कोणोद्भूत पुष्पवृन्तों (*pedicels*) पर धारण किये जाते हैं। इसके ताजे पौधे में एक प्रकार की कस्तूरीवत् किन्तु अप्रियगन्ध होती है। इसकी ताजीहरी डालियों को बिना कुचले जल में हिलाने मात्र से जल अंडे की सफेदी की भाँति गाढ़ा एवं पिच्छिल हो जाता है। लवाब का स्वाद अस्पष्ट और विशेष प्रकार का, परन्तु अप्रिय नहीं होता है। इसमें न कोई रंग होता है और न कोई गंध।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वक्तव्य—बड़ा गोखरू (∠बृहद्गोक्षुर) का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। यूनानी निघण्टुकार बड़ा गोखरू को भी 'फरीदबूटी' मानते हैं। यह पौष्टिक माना जाता है। पश्चिम एवं दक्षिण भारत में बड़ा गोखरू अधिक प्रचलित एवं विज्ञात है। राजस्थान के वैद्य दशमूल में छोटे गोखरू के स्थान में बड़े गोखरू का ग्रहण अधिक श्रेयष्कर समझते हैं। किन्तु इस संदर्भ में यह तथ्य विचारणीय है कि यद्यपि दशमूलनामकगण की मान्यता अति प्राचीन काल से है, भारतीय परम्परा में बृहद्गोक्षुर का ज्ञान एवं शास्त्रीय मान्यता अपेक्षाकृत बहुत परवर्ती है। (लेखक)

उपयोगी अंग—(१) फल (२) पंचांग (पत्र)।

मात्रा—(१) फलचूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा ६ माशा।
(२) पत्रचूर्ण–१ तोला।
(३) क्वाथार्थ फल–२ तोला से ३ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में बड़ा गोखरू के नाम से इसके सूखेफल मिलते हैं। ताजाफल हरेरंग का, मांसल, अधोलम्बी (*pendulous*) तथा लगभग ½ इञ्च लम्बा और आधार की ओर के चौड़े भाग का व्यास ¼ इञ्च होता है। फल प्रायः चतुष्कोणाकार-से होते हैं, जिनके प्रत्येक कोण पर एक कण्टक होता है। सूखे फल हल्के होते हैं। प्रत्येक फल दो कोष्ठों में विभाजित होता है, तथा इसमें ४ बीज पाये जाते हैं। छोटे गोखरू की अपेक्षा बड़े गोखरू का फल काफी बड़ा होता है। भस्म–५.४३ प्रतिशत।

संग्रह एवं संरक्षण–पक्व फलों को सुखा कर बंद पात्रों में रखें।

संगठन–फल में एक हल्के हरेरंग की चर्बी, अल्प प्रमाण में राल, एक क्षारोद एवं निर्यास आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव–स्निग्ध, रूक्ष एवं शीतवीर्य। प्रधान कर्म–बलकारक, वस्ति शोधन, प्रमेहनाशक, शुक्रल।

गोरखमुण्डी–दे० 'मुण्डी'

घीकुआर (घृतकुमारी)

नाम। सं०–कुमारी, गृहकन्या, घृतकुमारिका। हिं०–घीकुवार, ग्वारपाठा, गोंड़पट्ठा, ढेकवार। कु०–पतकुंवार। पं०–कुवारगंदल। म०–कोरफड, कोरकांड। गु०–कुंवार। कच्छ–लेपरी। अ०–सब्बारत, अलसी, नबातुस्सिब्र। फा०–दरख्तेसिब्र। अं०–*Barbados Aloe, Common-Indian Aloe, Curacao Aloe*। ले०–आलोए बार्बाडेंसिस् **Aloe barbadensis** *Mill* (पर्याय–*A. vera Turn. ex. L.*)।

घृतकुमारी-रससार। हिं०, द०–एलुआ मुसब्बर। म०–एलिया, कालोबोल। गु०–एलियो। बं०–मोशब्बर गु०–एलीओ। अ०–सिब्र। फा०–सिब्र, शबयार। अं०–एलोज (*Aloes*)।

वक्तव्य–कुमारी का उल्लेख आयुर्वेदीय सहिताओं में तथा तत्पूर्ववर्ती या मध्ययुग पूर्व परवर्तीकालीन साहित्य में नहीं मिलता। आयुर्वेदीय साहित्य में सोढल निघण्टु (लक्ष्मणादि वर्ग ७) तथा परवर्ती निघण्टुओं में सर्वत्र उल्लिखित है। तथापि इसके 'रससार' का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र (अधिकरण १४, अध्याय १ के परबलघातप्रयोगनामक प्रकरण १७७ के पाठ ३० में 'दंशयोग' के घटक द्रव्यों में) में 'एलक' नाम से हुआ है। गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि पश्चिमी क्षेत्रों में बाजारों में एवं व्यवहार प्रचलन में आज भी यह संज्ञा (एलुआ, एलिया, एरीओ) जीवित है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि यूनानवासियों को इसका ज्ञान ईसवी सन् के ४०० वर्ष पूर्व से था जिसका साक्ष्य दीसकूरीदूस से मिलता है। आरब्य यूनानी निघण्टुओं में मुसब्बर के साथ-साथ इसका एक नाम 'आलूय फैकरा' भी लिखा है, जो अपने प्राचीन ग्रीक-अनुबंध को बतलाता है। भारतीय घृतकुमारी का पौधा उत्तर-पूर्वी अफरीकन क्षेत्र का अदिवासी है और वहीं से इसका प्रसार पश्चिमी भारतीय क्षेत्र में हुआ प्रतीत होता है। मुसब्बर का प्रचार मध्ययुग में अरब व्यापारियों के माध्यम से हुआ है। (लेखक)

वानस्पति कुल। पलाण्डु-कुल (लिलियासे *Liliaceae*)।

प्राप्ति स्थान–अफ्रीका, अरब एवं भारतवर्ष। भारतवर्ष में जो घृतकुमारी पायी जाती है, वह मुख्यतः एलो वेरा या इसी के विभिन्न भेदोपभेद (*Varieties*) हैं। यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वास्तव में उत्तरी अफ्रीका एवं स्पेन का आदिवासी पौधा है, जो अब पश्चिम की ओर पश्चिमी द्वीपसमूह (*West Indies*) एवं पूरब में भारतवर्ष एवं चीन तक फैल गया है। मैसूर तथा काठियावाड़ के जफराबाद (*Jaferabad*) नामक स्थान में व्यावसायिक रूप से 'मुसब्बर' बनाया जाता है। किन्तु विदेशों से भी काफी परिमाण में मुसब्बर आता है, जो उत्पत्तिस्थान के आधार पर विभिन्न व्यावसायिक नामों (यथा केप एलोज़, स्कोत्रीन एलोज़, जंजीबार एलोज़ एवं अदन एलोज़ आदि) से अभिहित किया जाता है। इनका आयात विशेषतः बम्बई में होता है। यहाँ पुनः उनकी पैकिंग की जाती है और यूरोपीय बाजारों तथा विभिन्न भारतीय बाजारों को भेजा जाता है। भारतीय बाजारों में जो मुसब्बर मिलता है, वह सम्भवतः 'अरबी मुसब्बर' या 'अदनएलोज' होता है।

संक्षिप्त परिचय—घृतकुमारी का गुल्म बहुवर्षायुस्वभाव का होता है, जो प्रायः ३० सें० मी० से ६० सें० मी० या १ से २ फुट ऊँचा होता है। पत्तियाँ विनाल होती हैं तथा काण्ड पर सघन रूप से स्थित होती हैं। यह प्रायः हाथ-डेढ़हाथ लम्बी, ३ से ४ अंगुल चौड़ी, रूपरेखा में कुछ गोपुच्छाकार या भालाकार, तीक्ष्णाग्र; बहुत मोटी और गूदेदार तथा बाहर से चमकीले हरे रंग की होती हैं। पत्रप्रांत कुछ मुड़े हुए तथा क्षुद्र कांटेयुक्त होते हैं। जब पत्ते पूरे बढ़ चुकते हैं, और क्षुप पुराना हो जाता है, तब पत्तों के बीच से एक डंडा या मूसला (पुष्पध्वज या पुष्पवाहक दण्ड *scape*) निकलता है, जिसपर पीले तथा लालरंग के पुष्प निकलते हैं। प्रायः जाड़े के अन्त में इसमें पुष्प एवं फल लगते हैं। औषधीय दृष्टि से घीकुआर के पत्ते विशेष महत्व के हैं, जिनको काटने पर पिलाइलिये लसीला कड़ुआ द्रव और सफेद गूदा निकलता है, जिसको 'लुआब घीकुआर' कहते हैं। इसीको विशेष प्रक्रियाओं द्वारा सुखाकर जमाने से व्यावसायिक एलुआ, मुसब्बर या सिब्र प्राप्त होता है।

भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में पाये जाने वाले घृतकुमारी के पौधों में थोड़ा-बहुत अन्तर लक्षित होता है, किन्तु वास्तव में यह एलो वेरा के ही विभिन्न भेद (*Varieties*) हैं। दकन एवं मध्यप्रदेश में पायी जाने वाली घृतकुमारी के पत्तों की जड़ प्रायः कुछ नीलारुण वर्ण की होती है, तथा काँटे भी अधिक तीक्ष्ण नहीं होते। इसे **Aloe vera** *var* **chinensis** *Baker* कहते हैं। मद्रास प्रान्त में प्रायः **A. vera** *var.* **littoralis** *Koeniger Baker* भेद पाया जाता है, जिसकी पत्तियाँ अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। काठियावाड़ में जो भेद पाया जाता है, उसे एलो एबिसीनिका **A. abyssinica** कहते हैं। जाफराबादी मुसब्बर प्रायः इसीसे बनाया जाता है।

घृतकुमारी की विदेशीय व्यावसायिक प्रजातियाँ—(१) स्कोत्रा एवं जन्जीबार से जो मुसब्बर (स्कोत्रीन एलोज *Scotrine Aloes*) आता है, वह प्रायः एलोज परेई **A. perryi** *Baker* नामक जाति की पत्तियों से बनाया जाता है। (२) केप एलोज (अफ्रीका के केप ऑफ गुडहोप प्रान्त से आने वाला मुसब्बर)—एलोज फेरोक्स **A. ferox** *Mill.* तथा इसकी मिश्रित जातियों (*Hybrids*) से प्राप्त होता है। (३) बारबेडोज एलोज (**Curacao** *or* **Barbados** *Aloes*)—भारतीय घृतकुमारी के ही एक निकटतम भेद से बनाया जाता है, जिसे **Aloe vera** *Tourn. ex Linn. var* **officinalis** (*Forst*) कहते हैं।

उपयोगी अंग—कुमारीसार (एलुआ या मुसब्बर) एवं पत्र।

मात्रा। पत्रगूदा—६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तोला। मुसब्बर—१२५ मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० या १ रत्ती से ४ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—मुसब्बर के गाढ़े भूरे से लेकर काले रंग के अनियमित स्वरूप के टुकड़े होते हैं, जिनका बाह्य तल मटमैला, अपारदर्शक तथा कुछ चमकीला होता है। इसमें एक विशिष्टप्रकार की गंध पायी जाती है, तथा स्वाद में तिक्त एवं अरुचिकारक एवं किंचित् उत्क्लेशकारी होता है। घृतकुमारी की जातिभेद एवं रसक्रिया में बाष्पीभवन की प्रक्रिया के भेद से मुसब्बर के रंग-रूप में भी किंचित् अन्तर हो जाता है। जो रस धूप में अथवा मन्द आँच पर धीरे-धीरे सुखाया जाता है, वह मुसब्बर अनाकार, अपारदर्शक एवं चिकना होता है। किन्तु जब तेज आँच पर शीघ्रतापूर्वक सुखा कर ठंढा किया जाता है, तो अर्धपारदर्शक एवं अधिक चिक्कण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा चमकदार (*glassy or vitreous*) होता है। स्कोत्रा का मुसब्बर पीताभ या कालिमा लिये भूरेरंग का होता है। जंजीबार का मुसब्बर कलेजी के रंग का (भूरे रंग का) होता है। केप मुसब्बर गाढ़े भूरे रंग का अथवा हरी आभा लिये भूरे रंग का होता है। बारबेडोज का मुसब्बर चाकलेटी भूरे रंग का होता है। अदनीसिन्न या मुसब्बर बड़े टुकड़े में काले रंग का होता है, किन्तु इसके कण प्रायः पारभासी तथा पीताभ-भूरे रंग के होते हैं, नाइट्रिक एसिड में डालने पर विलयन गाढ़े लाल रंग का हो जाता है। जफराबादी (काठियावाड़ी) मुसब्बर भी रंग-रूप में अदनीसिन्न की भाँति होता है, किन्तु नाइट्रिक एसिड के सम्पर्क से रंग में परिवर्तन नहीं होता। मुसब्बर में आर्द्रता का अंश अधिकतम १२% तक होता है। एल्कोहल् में अविलेय सत्व-अधिकतम १२%। जलविलेय सत्व-कम-से-कम ५०%। भस्म-अधिकतम ४%।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—बाजारू मुसब्बर में कभी-कभी काले कत्थे, बालू-रेत एवं लोहे के बुरादे आदि का मिलावट करते हैं। ऐल्कोहल् में घोलकर इनका विनिश्चय किया जा सकता। नील लोहितातीत किरणों (*Ultra-violet rays*) से परीक्षा करने पर मुसब्बर का रंग तो गाढ़े भूरेरंग का किन्तु कत्था कालेरंग का निदर्शन करता है। कुमारी की कतिपय अन्य जातियों (यथा *A. candelabrum Berger*, *A. succortrina Lam.*) से भी मुसब्बर प्राप्त किया जाता है, किन्तु यह हीनकोटि का होता है। भारतवर्ष में मैसूर में जो मुसब्बर बनाया जाता है, वह भी हीन कोटि का होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—मुसब्बर बनाने के लिए घीकुआर के पत्र को जड़ के समीप आड़े बल में काटने पर जो गाढ़ा रस निकलता है, उसे किसी उपयुक्त पात्र में संग्रह करके वाष्पीकरण की विधि से उबालकर घन रसक्रिया प्रस्तुत करके सुखा लेते हैं। प्रारम्भ में तो रस रंगरहित होता है, किन्तु वाष्पीकरण एवं क्वथन की क्रिया के उपरान्त काला हो जाता है। मुसब्बर को अच्छी तरह डाँटबन्द पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में सुरक्षित करना चाहिए।

संघटन—मुसब्बर का सक्रिय घटक 'एलोइन' होता है, जो ग्लुकोसाइड्स का मिश्रण होता है, तथा विभिन्न व्यावसायिक नमूनों में १०% से ३०% तक पाया जाता है। एलोइन में बार्बेलोइन (*Barbaloin*), आइसो बारबेलोइन (*Isobarbaloin*) एवं एलो-इमोडिन (*Aloe-emodin*) आदि घटक पाये जाते हैं। एलोइन के अतिरिक्त इसमें रेजिन तथा उत्पत् तैल (जिस पर इसका गंध निर्भर करता है) आदि सत्व होते हैं।

वीर्यकालावधि—अच्छी तरह संरक्षित करने से कई वर्षों तक इसकी सक्रियता बनी रहती है।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस—तिक्त, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—भेदन। एलुआ—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण और उष्ण है। प्रधानकर्म—अल्पमात्रा में दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, भेदन, यकृदुत्तेजक तथा बड़ी मात्रा में विरेचन एवं कृमिघ्न, रक्तशोधक, मूत्रल, आर्त्तवजनन एवं गर्भस्रावकर, ज्वरघ्न। कुमारी स्वरस तथा गूदा बल्य एवं बृंहण हैं। बाह्यप्रयोग से यह शोथहर, वेदनास्थापन एवं व्रणरोपण भी है। यूनानी मतानुसार घीकुआर तथा मुसब्बर दोनों दूसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क हैं। अहितकर—यकृत्, आमाशय एवं आन्त्र को। एलुआ आंत्र में संक्षोभ करता है, अतएव अर्श में यह अहितकर है। निवारण—कतीरा और गुलाबपुष्प। प्रतिनिधि—कब्जनिवारण के लिए घीकुआर का एलुआ तथा एलुआ का निशोथ।

मुख्य योग—कुमार्यासव, रजःप्रवर्त्तनी वटी, कुमारीवटी, कुमारीपाक, हब्ब शबयार, हब्ब अयारिज, हब्ब सिन्न, हब्बतंकार।

विशेष—इसके द्वारा रेचन में पेट में ऐंठन बहुत होती है, अतएव उद्वेष्ठहर (ऐंठन निवारक) द्रव्य भी मिलाना चाहिए। मुसब्बर की विशिष्ट क्रिया बृहदन्त्र पर होने के कारण, कटिप्रदेश में रक्ताधिक्य का उपद्रव होता है। अतएव आंत्रगत संक्षोभ की अवस्था में तथा गर्भवती एवं स्तन्यपान कराने वाली स्त्रियों में तथा अर्श के रोगियों में इसका व्यवहार यथासम्भव कम अथवा सतर्कता से करना चाहिए। आर्तवजनन के लिए मासिकधर्म के समय से एक सप्ताह पूर्व इसका सेवन प्रारम्भ करा देना चाहिए। इसका उत्सर्ग स्तन्य एवं मूत्र के साथ होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्दन लाल

नाम। सं०—रक्तचन्दन। हिं०—लालचन्दन। गु०—रतांजली लालचन्दन। बं०—रक्तचंदन। क०—रक्तचन्दुन। ता०—शेंन् शंदनम्। अ०—संदले अहमर। फा०—संदले सुर्ख। अं०—रेड सैण्डर्स (*Red Sanders*), रेड सैण्डल-वुड (*Red Sandal-Wood*)। ले०—प्टेरोकार्पुस् सांटालिनुस् (**Pterocarpus santalinus** *Linn. f.*)। लेटिन नाम इसके वृक्ष का है।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल (लेगूमिनोसी : *Leguminosae*)।

प्राप्तिस्थान—दकन के पश्चिमवर्ती जांगल प्रदेशों (विशेषतः दक्षिण कर्नाल एवं उत्तरी अर्काट आदि) तथा कड़प्पा एवं चिंगलीपुट की पहाड़ियों में ४५७.२० मीटर (१,५०० फुट) की ऊँचाई तक इसके जंगली वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। लालचन्दन की लकड़ी का आयात मलाबार से प्रथम बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े बाजारों में होता है। वहाँ से सभी भारतीय बाजारों में भेजा जाता है। लालचन्दन की लकड़ी के लम्बगोल टुकड़े तथा बुरादा सर्वत्र बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—लाल चन्दन के मध्यम कद के वृक्ष (३० फीट तक ऊँचे) होते हैं। कोमल शाखाएँ, सूक्ष्म खाकस्तरी मृदुरोमावृत; पत्तियाँ प्रायः ३—पत्रक (कभी-कभी ५ पत्रकों से युक्त) पत्रक ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच लम्बे तथा अग्र एवं आधार दोनों ओर तट गोलाकार तथा कुछ कटा-सा (*slighty emarginate*) तथा अधः पृष्ठ तल से चिपके रूक्ष खाकस्तरी रोमावृत होता है। पुष्प छोटे-छोटे होते हैं, जो छोटे पुष्पवृन्तों पर धारण किये जाते हैं और मञ्जरियों में निकलते हैं। बाह्यकोश ५ मि० मी० से ६.२५ मि० मी० या $\frac{1}{4}$ इञ्च से $\frac{1}{3}$ इञ्च तक लम्बा तथा दन्तुर धार वाला होता है। शिम्बी या फली ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इञ्च से ३ इञ्च लम्बी कोमलावस्था में रेशमी रोमावृत्त होती है। किन्तु प्रगल्भ फलियाँ कड़ी हो जाती हैं और आधार की ओर के एक कोने पर चोंच-सी निकली होती हैं। फलियों में गुञ्जासदृश लालबीज होते हैं। लालचन्दन में गर्मियों में पुष्प एवं पुष्पों के गिरने के बाद फलियाँ लगती हैं। इसका सारकाष्ठ (*Heart Wood*) औषध्यर्थ एवं पूजन आदि में व्यवहृत होता है।

उपयोगी अंग—हृत्काष्ठ या काण्डसार (*Heart-Wood*) बुरादा (*Saw-wood*)।

मात्रा—बुरादा ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—सफेद चन्दन की भाँति बाजार में लाल-चन्दन के भी छोटे-बड़े, लम्बगोल-बेलनाकार टुकड़े मिलते हैं, जो कुछ कालापन लिये लाल होते हैं। लकड़ी कड़ी एवं वजनदार होती है और पानी में डूब जाती है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटे तल पर कुछ भाग कालिमा लिये लाल तथा बीच-बीच में तनु भित्तिक-ऊति का भाग फीकेरंग का होता है, जिसमें केल्सियम ऑक्जलेट क्रिस्टल्स पाये जाते हैं। लालचन्दन के टुकड़ों को जलसे घिसने पर लाल रंग निकलता है। यह प्रायः निर्गन्ध तथा स्वाद में कषाय एवं तिक्त होते हैं। उत्ताप देने से इसमें से हलकी सुगंध आती है। लालचंदन की लकड़ी में सर्वत्र एक लालरंजकतत्त्व पाया जाता है। ऐल्कोहल (९५%) में विलेय सत्व—कम-से-कम २०% तक प्राप्त होता है। भस्म—अधिकतम २%।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—साधारण मूल्यों पर मिलने के कारण प्रायः इसमें मिलावट की सम्भावना कम होती है। किन्तु चूँकि लालचन्दन में कोई विशेष गंध नहीं होती, इसलिए तत्सम अन्य काष्ठ भी मिलाये जा सकते हैं। बंगाल में आडेनान्थेरा पावोनिआ **Adenanthera pavonia** *Willd.* (*Family*: *Leguminosae*) को भी रंजन, रक्तकम्बल, रक्तचन्दन आदि कहते हैं। किन्तु यह पृथक् द्रव्य है, और इसके काष्ठ का व्यवहार रक्तचन्दन के नाम से नहीं होना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—लकड़ी एवं बुरादे को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

संगठन—लालचन्दन की लकड़ी (सारकाष्ठ) में सैन्टेलिन (*Santalin* या सैन्टलिक एसिड *Santalic acid*) नामक रंजकतत्त्व पाया जाता है, जो ऐल्कोहल् में 'लालरंग' का विलयन, ईथर में 'पीला' तथा अमोनिया एवं दाहकक्षारों (*Caustic alkalies*) में 'बैंगनीरंग का हो जाता है। किन्तु जल में अविलेय होता है। हृत्काष्ठ में उक्त रंजक तत्त्व के अतिरिक्त टेरोकार्पिन (*Ptero-*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

carpin), होमोटेरोकार्पिन एवं सैन्टोल (*Santol*) नामक तीन अन्य रंगहीन क्रिस्टली तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि– ४ वर्ष।

स्वभाव। गुण–गुरु, रुक्ष। रस–तिक्त, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। कर्म–कफपित्तशामक; दाहशामक, स्तम्भन, शोथहर, त्वग्दोषहर, छर्दि एवं तृष्णानिग्रहण, रक्तशोधक, रक्तपित्तशामक, कुष्ठघ्न, दाहप्रशमन, ज्वरनाशक, विषघ्न आदि।

मुख्य योग–चन्दनादि लौह। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) पटोलादि, सारिवादि एवं प्रियङ्ग्वादि गण की औषधियों में 'कुचन्दन' नाम से रक्तचन्दन का भी उल्लेख है। कुचन्दन एवं रक्तचन्दनको डल्हण ने पर्याय माना है 'कुचन्दनं रक्तचन्दनम्' इति डल्हणः।

वक्तव्य–लालचन्दन आयुर्वेदीय साहित्य एवं परम्परा के चन्दनद्वय का एक घटक है। औषधीय प्रयोग के अतिरिक्त वस्त्ररंजन के लिए इसका व्यावहारिक उपयोग प्राचीन काल से होता रहा है। अतः यह भारत का एक प्राचीन व्यावसायिक द्रव्य भी रहा है। योगों में मात्र चन्दन का उल्लेख होने पर 'रक्तचन्दन' का ही ग्रहण किया जाता है। (लेखक)

चन्दन सफेद

नाम। सं०–श्वेतचन्दन, भद्रश्री, श्रीखण्ड, चन्दन, मलयज। हिं०–चंदन, सफेदचंदन। द०–संदल। बं०–श्वेतचन्दन, सादाचंदन। गु०–सुखड। म०–चंदन। अ०–संदले अब्यज। फा०–संदले सफेद। अं०–सैण्डल वुड (*Sandal wood*)। ले०–सांटालुम् आल्बुम् (**Santalum album** *Linn.*)। लेटिन नाम इसके वृक्ष का है।

वानस्पतिक कुल। चन्दन-कुल (सांटालासे : *Santalaceae*)।

प्राप्तिस्थान–दक्षिणभारत में मैसूर, कुर्ग, मलाबार आदि में सफेद चन्दन के जंगली वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। अन्यत्र भी बगीचों में सौन्दर्य के लिए इसके लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। किन्तु बाजारों में आने वाली सुगन्धित लकड़ी दक्षिण भारत से ही प्राप्त की जाती है। चन्दन का तेल भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध व्यावसायिक द्रव्य है। औषधि में सफेद चंदन का हृत्काष्ठ, बुरादा (*saw-wood*) एवं तेल का व्यवहार होता है, जो बाजारों में मिलते हैं। मैसूर में इसके कारखाने भी हैं। जम्मू कश्मीर में 'कूट' की भाँति सफेद चन्दन का उत्पादन, संग्रह एवं व्यापारविनिमय कर्नाटक (मैसूर) राज्य के एकाधिपत्य में ही होता है। अतः चन्दन की लकड़ी, बुरादा एवं चन्दन तैल आदि को राजकीय बिक्री केन्द्रों से ही प्राप्त करना चाहिए। (लेखक)

संक्षिप्त परिचय–सफेद चन्दन के छोटे कद के सदाहरित वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ पतली तथा नम्य, और पत्तियाँ ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० हैं। १.२५ सें० मी० से ३.१२५ सें० मी० (१½ इञ्च से २½ इंच × ½ इञ्च से १¼ इंच) तक चौड़ी, संवृन्त, रूपरेखा में में अंडाकार-भालाकार, अग्र की ओर कुछ नुकीली-सी, चिकनी तथा सरलधारवाली होती हैं। आधार की ओर भी चौड़ाई उत्तरोत्तर कम चौड़ी होती है। पर्णवृन्त पतले तथा १.८७ सें० मी० से ३.१२५ सें० मी० या ¾ इञ्च से १¼ इञ्च तक लम्बे होते हैं। पुष्प भूरापन लिये नीलारुण (*brownish purple*) तथा, गंधहीन होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत एवं शाखाग्र्य छोटी मञ्जरियों में निकलते हैं। फल गोलाकार व्यास में आध इञ्च तक तथा कालिमा लिये जामुनी रंग के होते हैं, जिनमें गुठली होती है। काण्ड का बाह्यकाष्ठ (*sapwood*) तो सफेद गंधहीन होता है, किन्तु हृत्काष्ठ (*Heartwood*–विशेषतः पुराने वृक्षों में) पीताभ भूरेरंग का तथा सुगन्धित होता है। औषधि में उक्त काष्ठ एवं इसके बुरादे तथा इससे प्राप्त तैल (चन्दन का तेल) का व्यवहार होता है।

उपयोगी अङ्ग–काष्ठसार का बुरादा एवं इससे प्राप्त सुगंधित तेल।

मात्रा। चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। तेल–५ बूँद से २० बूँद।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–सफेद चन्दन के सारकाष्ठ के छोटे-बड़े बेलनाकार टुकड़े बाजारों में मिलते हैं। यह हलके पीलेरंग के और परम हृद्य एवं चन्दन की विशिष्ट स्थायी सुगंधियुक्त होते हैं। कटे हुए तल पर पीताभ एवं लालिमा लिये हुए भूरेरंग के अनेक एककेन्द्रिक वृत्त (*concentric zones*) दिखाई पड़ते हैं, जो वास्तव में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृद्धिजन्य वार्षिक चक्र (*annual rings*) होते हैं। अंदर के भाग में वृत्त रेखाएँ अपेक्षाकृत अधिक चौड़ी होती हैं। त्वचा एवं रसदारु (सैपवुड *sap-wood*) में गंध नहीं पायी जाती है। चन्दन का बुरादा भी सारकाष्ठ के रंग का होता है। चन्दन का तेल (रोग़नसंदल)—सफेद चन्दन के सारकाष्ठ से आसवन द्वारा एक सुगंधित उत्पत् तैल प्राप्त किया जाता है, जिसको 'चंदन का तेल' कहते हैं। यह रंगहीन अथवा हल्के पीले रंग का गाढ़ाद्रव होता है, जिसमें चंदन की विशिष्ट स्थायी सुगंधि पायी जाती है, किन्तु स्वाद में तेज और चरपरा अतएव अरुचिकारक होता है। चन्दन का तेल ५ भाग सुरासार या ऐल्कोहल् (७०%) में विलेय होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—चंदन के तेल को अच्छी तरह मुखबंद शीशियों में अनार्द्र-शीतल तथा अँधेरी जगह में रखना चाहिए। चन्दन की लकड़ी एवं बुरादे को मुखबंद डिब्बों में रखें।

संगठन—काष्ठ में १½% से ६% तक एक सुगंधित उत्पत् तैल (चन्दनका तेल) तथा राल एवं टैनिक एसिड प्रभृति तत्त्व पाये जाते हैं। मूलकाष्ठ में अपेक्षाकृत तेल अधिक पाया जाता है। तेल में ९०% (*W/W*) सैन्टेलोल (*Santalol*) या चन्दनसार तथा २% (*W/W*) सैन्टेलिल एसिटेट (*Santalyl Acetate*) पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—कफपित्तशामक, सौमनस्यजनन, मेध्य, तृष्णानिग्रहण, आमाशय, अन्त्र एवं यकृत् के लिए बल्य, ग्राही, हृद्य, रक्तशोधक, रक्तपित्तशामक, कफनिःसारक, श्लेष्मपूतिहर, मूत्रजनन एवं मूत्रमार्गविशोधन, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, अंगमर्दप्रशमन एवं विषघ्न। स्थानिक (लेपके रूपमें) प्रयोग से दाहप्रशमन, दुर्गन्धहर, वर्ण्य, त्वग्दोषहर होता है। यूनानीमतानुसार सफेदचंदन तीसरे दर्जे में शीत और दूसरे में रूक्ष, तथा चन्दनका तेल दूसरे दर्जे में शीत और तर होता है। अहितकर—कामावसादकर। निवारण—मधु और मिश्री।

मुख्य योग—चन्दनादि चूर्ण, चन्दनासव, चन्दनाद्यर्क, चन्दनादि वटी। (यूनानीयोग)—खमीरासंदल सादा, खमीरासंदल तुर्श तिलावाला, जुवारिश संदलैन, माजून संदल, शर्बतसंदल आदि।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषघ्न, तृष्णानिग्रहण, दाहप्रशमन, एवं अङ्गमर्दप्रशमन महाकषायों में तथा (वि० अ० ८ में कहे) तिक्तस्कन्ध के द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) सालसारादि, पटोलादि, सारिवादि, प्रियङ्ग्वादि एवं गुडूच्यादिगण तथा पित्तसंशमनवर्ग में 'चन्दन' का उल्लेख है।

चकवड़ (चक्रमर्द)

नाम। सं०—चक्रमर्द, दद्रुघ्न, प्रपुन्नाड, एडगज। हिं०—चकवँड़, चकवड़, पँवाड़, पमाड़। द०—तरोटा। बं०—चाकुन्दा। म०—टाकला। गु०—कुवाडियो। अ०—कुल्ब। फा०—संगेसबूया। अं०—रिंगवर्म-प्लांट (*Ring-worm Plant*)। ले०—कास्सिआ टोरा (**Cassia tora** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : अम्लिका-उपकुल (*Leguminosae : Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—इसके पौधे भारतवर्ष के समस्त उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में बरसात में परित्यक्त भूमि पर समूहबद्ध होकर उगे हुए मिलते हैं। पँवाड़ के बीज बाजारों में पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—चकवड़ के ०.३ मीटर से १.५ मीटर या १ फुट से ५ फुट ऊँचे, एकवर्षायु तथा स्वावलम्बी क्षुप होते हैं। पत्तियाँ समपक्षवत् होती हैं, जिनमें ३ जोड़े पत्रक होते हैं। पत्रक २.५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १ इंच से २½ इञ्च लम्बे, अभिलट्वाकार, गोल तथा कुण्ठिताग्र या नताग्र, रात में एक दूसरे के साथ मिल जाते हैं। पुष्प मटमैले पीलेरंग के तथा व्यास में १.२५ सें० मी० (½ इञ्च) तक पत्रकोणों में एकाकी या दो-दो साथ निकलते हैं। शिम्बी १५ सें० मी० से ३० सें० मी० या ६ इञ्च से १२ इञ्च लम्बी, पतली, घेरे में गोलाई लिये हुई व्यास में ⅕ सें० मी० के लगभग तथा चतुष्कोणीय होती है। फलियों में खाकस्तरी रंग के अनेक लम्बगोल बीज होते हैं, जो रूपरेखा में ईख की गंडेरी की भाँति लगते हैं। दोनों सिरे तिरछे कटे-से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते हैं। चकवड़ का संपूर्ण क्षुप विशेषगंधयुक्त होता है। बड़े पत्र लबावदार तथा स्वाद में उत्क्लेशकारक होते हैं; किन्तु कोमल पत्तियों का शाक बनाते हैं। वर्षा में पुष्प एवं शरद में फलियाँ लगती हैं।

उपयोगी अंग–बीज, पत्र एवं पंचाङ्ग।

मात्रा। बीजचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। पत्रस्वरस–½ तोला से १ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण–बीजों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–बीज तथा पत्र दोनों में क्राइसोफैनिक एसिड (*Crysophanic Acid*) की तरह का एक ग्लुकोसाइड, पत्र में कैथार्डीन के समान एक सत्व, एक रंजकद्रव्य और खनिज द्रव्य होते हैं।

वीर्यकालावधि। बीज–१ वर्ष से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। पत्र मधुर एवं शीतवीर्य होते हैं। कर्म–कफवातशामक, अनुलोमन, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, कफनिःसारक, कुष्ठघ्न, विषघ्न, ओजोवर्धक और मेदोहर। लेप के रूप में स्थानिक प्रयोग से लेखन, तथा दद्रुघ्न होता है। पत्र–हृद्य, रक्तप्रसादन एवं सनाय की भाँति रेचक होते हैं। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) ऊर्ध्व-भागहर द्रव्यों में चकवड़ ('प्रपुन्नाड' नाम से) भी है।

मुख्य योग–दद्रुघ्नी वटी।

चनसुर (चन्द्रशूर)

नाम। सं०–चन्द्रशूर। हिं०–चंसुर, चमसुर, हालिम, हालों। पुञ्छ–हालिम। पं०–हालिया, हालों। राजस्थान–हालो। मा०–असालियो। गु०–अशेलियो। सिंध–आहियों। म०–अहालींव। बं०–हालिम। अ०–हब्बुर्-शाद, बज्रुल् जिरजिर। फा०–तुख्म इस्पन्दान। अं०–कॉमन क्रेस (*Common Cress*), वॉटर या गार्डेन क्रेस (*Water or Garden Cress*)। ले०–लेपीडियम् साटीवुम् **Lepidium sativum** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। सर्षप-कुल (क्रूसीफेरे : *Cruciferae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में (विशेषतः बम्बई प्रान्त में) चन्द्रशूर की खेती की जाती है। बीजों का आयात फारस से भी होता है। चन्द्रशूर के बीज समस्त भारतवर्ष में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

वक्तव्य–हरे पौधों के शाखाग्र (पत्रबहुल) जाड़ों में सोआ की भाँति कभी-कभी तरकारी बाजारों में बिकने आते हैं। (लेखक)

संक्षिप्त परिचय–चन्द्रशूर के छोटे-छोटे, कोमल काण्डीय किन्तु स्वावलम्बी (*erect*), एकवर्षायु क्षुप होते हैं। जड़ के पास की पत्तियाँ (*rodical leaves*) लम्बे वृन्तयुक्त तथा द्विपक्षवत्-खण्डित-सी होती हैं। काण्डीय पत्र प्रायः विनाल (*sessile*) तथा पक्षवत् खण्डित या भालाकार होते हैं। पुष्प छोटे तथा सफेद रंग के लम्बी मञ्जरियों में निकलते हैं। पुटपत्र (*sepals*) एवं दल-पत्र (*petals*) संख्या में ४-४, पुंकेशर ६ होते हैं, जिनमें २ अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। फल (*capsules*) ०.५ सें० मी० (1/50 इञ्च) लम्बे, रूपरेखा में लट्वाकार एवं चपटे तथा अग्र पर भीतर की ओर दबे हुए होते हैं। इनके किनारे या धार सपक्ष होते हैं। फलों में प्रत्येक कोष्ठ में १–१ बीज होता है। हरीपत्तियों का शाक खायाजाता है, तथा बीजों का व्यवहार औषधि में होता है। उक्त बीज छोटे-छोटे और लालरंग के होते हैं। इनको पानी में भिगोने से लुआब पैदा होता है।

उपयोगी अंग–बीज।

मात्रा–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण–चनसुर के बीजों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–बीजों में एक उत्पत् सुगंधित तथा स्थिरतैल पाया जाता है। पंचाङ्ग में आयोडीन, लोह, फॉस्फेट्स, पोटास एवं अन्य लवण, एक तिक्तसत्व एवं पर्याप्त गंधक आदि होते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–वातकफशामक, दीपन, वातानुलोमन, शूलप्रशमन, ग्राही, उदरकृमिनाशन, कफनिःसारक, मूत्रार्तवप्रजनन, बल्य एवं वृष्य। इसका लेप वेदनास्थापन एवं त्वग्दोषहर होता है। यूनानी मतानुसार हालों तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। अहितकर–मूत्रपिंडों को। निवारण–शर्करा, खीरा–ककड़ी के बीज।

मुख्य योग–चतुर्बीज चूर्ण।

विशेष–चन्द्रशूर 'चातुर्बीज' का उपादान है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चव्य

नाम। सं०—चव्य, चविका। हिं०—चाब, चब। बं०—चई। गु०—चवक। ले०— पीपेर चाबा (**Piper chaba** *Hunter*)। लेटिन नाम इसकी लता का है।

वानस्पतिक कुल। पिप्पली-कुल (पीपेरासे *Piperaceae*)।

प्राप्तिस्थान—'पीपेर चाबा' वास्तव में मलाया द्वीपसमूह की आदिवासी लता है। चव्य इसी के काण्ड के सुखाये हुए छोटे-बड़े टुकड़े होते हैं। फलियों (*aments : the long pepper*) का व्यवहार गजपिप्पली के नाम से होता है। भारतवर्ष में चव्य की लता जंगलीरूप से कहीं भी नहीं पायी जाती। बंगाल एवं कूचबिहार में कहीं-कहीं अब इसकी खेती की जाती है।

वक्तव्य—जिसप्रकार अब बाजारों में शास्त्रीय 'गजपिप्पली' लुप्तप्राय है, वही स्थिति चव्य (चवा) की भी है। परिणामतः विभिन्न भारतीय बाजारों में 'चवा' के नाम से विभिन्न लताजातीय वनस्पतियों के काण्ड के सुखाये टुकड़े बिकते हैं। 'पञ्चकोल' का उपादानद्रव्य होने से प्रायः इसकी आवश्यकता पड़ती रहती है। विगत वर्षों में देखा गया है, कि बाजारों में सर्वाधिक प्रचलित चव्य जिसका वितरण केन्द्र बम्बई है, 'मरिच के सुखाये काण्ड' होते हैं। वास्तव में चव्य की वर्तमान अभाव की स्थिति को देखते हुए 'मरिच' या 'पिप्पली' के काण्ड को ग्रहण करना अधिक समीचीन एवं युक्तियुक्त प्रतीत होता है। (मार्केट ड्रग्स आफ इण्डिया—प्रोफे० आर० एस० सिंह)।

उपयोगी अंग— काण्ड।

मात्रा। ½ ग्राम से १½ ग्राम या ४ रत्ती से १½ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण—चव्य के टुकड़ों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, पित्तवर्धक, तृप्तिघ्न, दीपन-पाचन, शूलप्रशमन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, कफघ्न आदि।

मुख्य योग—पंचकोल फाण्ट, प्राणदा गुटिका, कांकायन। मोदक, चव्यादि घृत।

चाकसू (चक्षुष्या)

नाम। सं०—चक्षुष्या, अरण्यकुलत्थिका। हिं०—चकसू, चाकसू, चाक्षुस्। म०—चिनोल। गु०—चिमेड, चमेड। सिं०—चवर। पं०—चक्सू। अ०—जश्मीज़ज। फा०—चश्मीज़ज, चश्मक। ले०—कास्सिआ आब्सुस् (**Cassia absus** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : अम्लिका-उपकुल (*Legumisnosae : Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पश्चिमी हिमालय से लेकर दक्षिण में लंका तक सर्वत्र इसके जंगली पौधे पाये जाते हैं। चाकसू बीज पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—चाकसू के एकवर्षायु, ३० सें० मी० से ६० सें० मी० या १ फुट से २ फुट ऊँचे छोटे क्षुप होते हैं। पत्तियाँ सपत्रक, पत्रक संख्या में चार, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बे, रूपरेखा में आयताकार तथा अग्रपर प्रायः कुण्ठिताग्र होते हैं। आधार के पास मध्यशिरा के दोनों पार्श्व के भाग प्रायः असमान होते हैं। पत्रनाल बड़ा और पत्रदण्ड पर प्रत्येक पत्रक के बीच एक रेखाकार ग्रंथि होती है। पुष्प रक्ताभ—पीत तथा फली २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १½ इञ्च लम्बी और टेढ़ी होती है, जिनमें संख्या में ५ बीज निकलते हैं।

उपयोगी अंग— बीज।

मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—'चाकसू बीज' चपटे एवं अनियमित स्वरूप से अण्डाकार या आयताकार तथा चमकीले काले रंग के होते हैं। जिस सिरेपर नाभि (*hilum*) होती है, वह सिरा अपेक्षाकृत अधिक नुकीला होता है। बीजों की लम्बाई तथा चौड़ाई प्रायः समान (५ मि० मी० से ४.१६ मि० मी० या ⅕ इञ्च तथा ⅙ इञ्च) होती है। बीजत्वक् या बीजचोल (*testa*) कुछ कड़ा एवं मोटा होता है। बीजत्वक् हटाने पर अन्दर पीताभवर्ण की मज्जा या मज्ज निकलता है। स्वाद में यह तिक्त होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—प्रगल्भ एवं पुष्ट बीजों को लेकर मुख बंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–बीज में १.७% भस्म एवं अंशतः मैंगनीज होता है।
वीर्यकालावधि। १ वर्ष से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण–रूक्ष। रस–कषाय, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रभाव–चक्षुष्य। प्रधानकर्म–बाह्यप्रयोग से यह लेखन, चक्षुष्य एवं शोथविलयन; आभ्यन्तर प्रयोग से ग्राही, रक्तस्तम्भक मूत्रल एवं मेदोनाशक है।

चाङ्गेरी (तिनपतिया)

नाम। सं०–चाङ्गेरी, अम्लपत्रिका। हिं०–तिनपतिया, अम्लोनी, तिपत्ती, चूकातिपाती। बं०–आमरुल शाक। म०–आंबटी (अंबुटी), भुईसर्पटी। पं०–खटकल, सुर्चि। ते०–पुलिचित, पुल्लचेंचलि। ता०–पुलियारै, अडाशनि। मल०–पुलिवारल्। अं०–इण्डियन सारेल (*Indian Sorrel*)। ले०–ऑक्सेलिस् कॉर्नीकुलाटा (**Oxalis corniculata** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। चाङ्गेर्यादि-कुल (जेरानिआसे *Geraniaceae*)।

प्राप्तिस्थान–एशिया, यूरोप (का अदिवासी पौधा है) लंका। भारतवर्ष में चांगेरी सर्वत्र पायी जाती है। यह बहुधा नीची और आर्द्र भूमि में विशेषकर छोटे एवं छिछले नालों या स्रोतों आदि के किनारे जहाँ सदा नमी बनी रहती है, अपने आप उगी मिलती है।

संक्षिप्त परिचय–चांगेरा की प्रसरीलता स्वभाव का छोटा पौधा होता है, जिसका काण्ड भूमि पर फैलता है, पत्रवाहक शाखाग्र भाग ऊपर को उठा होता (*decumbent*) है। पत्र सपत्रक, तीन-तीन पत्रकों वाला (*trifoliolate*); पत्रक, अभिहृदयाकार (*obcordate*) और लोमयुक्त होते हैं। पुष्प छोटे एवं पीले रंग के, प्रत्येक पुष्पवाहक दंड पर २ से ५ की संख्या में लगे होते हैं। फल (*capsule*) रेखाकार, आयताकार, या लंबोतरा (*linear oblong*) तथा घनरोमावृत्त (*densely pubescent*) होता है। प्रत्येक फल में कई-कई बीज होते हैं। बीजों पर अनुप्रस्थ दिशा में उन्नत रेखाएँ होती (*transversely ribbed*) हैं। पौधे का प्रत्येक भाग खट्टा होता है। शरद्ऋतु में पुष्प और फल आते हैं।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग।
मात्रा। स्वरस–६ माशा से १ तो०।

संगठन–इसमें एसिड पोटासियम् ऑक्जलेट होता है।
वीर्यकालावधि। २ महीना से ३ महीना।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–अम्ल, मधुर। विपाक–अम्ल। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–दीपन-पाचन, रोचक यकृदुत्तेजक, वेदनास्थापन, विषघ्न, गुदभ्रंशनाशक।

मुख्य योग–चाङ्गेरी-घृत।

विशेष–(१) भावप्रकाशकार ने 'चांगेरी' एवं 'चुक्र' दोनों को पर्याय माना है। किन्तु वस्तुतः यह दोनों शाकवर्गीय भिन्न-भिन्न खट्टे द्रव्य हैं। (२) चांगेरी की एक बड़ी जाति भी होती है, जिसे 'बड़ी चांगेरी' कह सकते हैं। इसका वानस्पतिक नाम ऑक्सेलिस एसिटोसेल्ला (**Oxalis acetosella** *Linn.*) है।

चित्रक (चिता)

नाम। सं०–चित्रक, दहन, अग्नि। हिं०–चीता, चित्ता, चित्रक, चित्रा। बं०–चिता। गु०–चित्रो। म०–चित्रक। पं०–चित्रा। अ०–शीतरज, मिस्वाकुर्राई। फा०–शीतरः। अं०–सीलोन या ह्वाइट-लेडवर्ट। ले०–(१) सफेदचित्रक–प्लुम्बागो जेइलानिका **Plumbago zeylanica** *Linn.*; (२) लालचित्रक-प्लुम्बागो इंडिका **Plumbago indica** *Linn.* (पर्याय–*P. rosea Linn.*); (३) नीलाचित्रक–प्लुम्बागो कापेन्सिस् **Plumbago capensis** *Thunb.*।

वानस्पतिक कुल। चित्रक-कुल (प्लुम्बाजिनासे *Plumbaginaceae*)।

प्राप्तिस्थान–'श्वेतचित्रक' के गुल्मक समस्त भारतवर्ष में विशेषतः बंगाल, उत्तरप्रदेश एवं दक्षिणभारत में स्वयंजात रूप से पाये जाते हैं। 'लालचित्रक' इसी की निकटतम दूसरी जाति है, जिसको इसका उद्यावज भेद माना जा सकता है। सिक्कम एवं खासिया में इसके जंगली पौधे पाये जाते हैं। औषधीय दृष्टि से यह शास्त्रों में उत्तम माना गया है, किन्तु अपेक्षाकृत बहुत कम उपलब्ध होता है। नीलाचित्रक वास्तव में विदेशी जाति है, जो केप ऑफ गुडहोप (*Cape of Good-Hope*) का आदिवासी पौधा है। बागों में कहीं-कहीं लगाया हुआ मिल जाता है। अतएव व्यावहारिक दृष्टि से सफेद चित्रक ही महत्त्व का है। अतएव यहाँ विवेच्य विषय सफेद चित्रक ही समझना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय–'सफेद चित्रक' के छोटे, बहुवर्षायु गुल्म (*undershrub*) होते हैं। शाखाएँ रेखायुक्त (*striate*); पत्तियाँ एकान्तर ३.६५ सें० मी० से १० सें० मी० या १½ इञ्च से ४ इञ्च तक लम्बी, ⅛ सें० मी० से ५ सें० मी० या ⅛ इञ्च से २ इंच चौड़ी, पतली, लट्वाकार, नोकीली, आधार की ओर यकायक कम चौड़ी (*abruptly narrowed*) होती हैं। पणवृन्त (*petiole*) ६.२५ मि० मी० से १२.५ सें० मी० या ¼ इंच से ५ इञ्च लम्बा, आधार की ओर चौड़ा एवं काण्डासक्त (*amplexicaul*) होता है। पुष्प सफेदरंग के तथा शाखाग्रों पर ४ इञ्च से १२ इञ्च लम्बी सशाख विदण्डिक मञ्जरियों (*spikes*) में निकलते हैं। मञ्जरियाँ स्पर्श में लसदार होती हैं। बाह्यकोष (*calyx*) १ सें० मी० से ⅛ सें० मी० लम्बा, नालिकाकार ५ खण्डों वाला (*5-toothed*) तथा स्थायी होता है। आभ्यन्तर कोष (*corolla*) ५–खण्डों वाला प्रत्येक खण्ड अग्रपर नुकीला होता है। पुंकेशर (*stamens*) ५। फल सामान्यस्फोटी (*copsule*) होता है, जो लम्बगोल आयताकार तथा अग्रपर चोंच-जैसा नुकीला होता है। जाड़े के आरम्भ में फूल आते हैं। चीते की जड़ अंगुलिवत् मोटी और शतावर की तरह गुच्छों में अनेक होती है।

उपयोगी अंग–मूल अथवा मूलत्वक् (जड़ की छाल)। छाल नयी लेनी चाहिए, क्योंकि-पुरानी हीनवीर्य हो जाती है। यूनानीवैद्यक में मात्र 'शीतरज' से इसके मूल की छाल अभिप्रेत होती है।

मात्रा। (१) मूल–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। (२) मूलत्वक्–२५० मि० ग्राम से १ ग्राम या २ रत्ती से ८ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–चित्रक की जड़ ⅝ सें० मी० ⅝ सें० मी० या चौथाई से एक इञ्च तक व्यास में मोटी होती है। मूलत्वक् (जड़ की छाल) शुष्कावस्था में बाहर से लालिमा लिये गाढ़े भूरेरंग की होती है, तथा कहीं-कहीं सिकुड़ी-सी (*shrivelled*) होती है। इतस्ततः छोटे-गाँठदार उभाड़ (*warty projections*) होते हैं। छाल का अन्तस्तल भूरेरंग का तथा रेखांकित (*striated*) होता है। तोड़ने पर यह खट से टूट जाती है (*fracture short*); स्वाद में जड़ कड़ुई एवं तीक्ष्ण तथा जीभ को चुभनेवाली होती है। मूल का काष्ठीय भाग (*woody portion*) हल्का गुलाबीलिये सफेद रंग का होता है। 'लालचित्रक' की जड़ भी सफेद चित्रक से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, किन्तु उसकी अपेक्षा कम मोटी होती है।

संग्रह एवं संरक्षण–चित्रक-मूल का मुख्य सक्रिय तत्त्व इसमें (विशेषतः मूलत्वक् में) पाया जाने वाला प्लम्बेजिन नामक तत्त्व होता है। साधारणतया यह ०.९% से १% तक पाया जाता है। किन्तु उत्पत्तिस्थान, भूमि, आयु एवं ऋतुभेद से इसकी मात्रा में न्यूनाधिक्य भी पाया जाता है। पुष्प एवं पुराने पौधों में तथा सूखी जमीन में उत्पन्न पौधों में प्लम्बेजिन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। ताजे पौधों की जड़ों में भी चिरकाल तक संग्रहीत जड़ों की अपेक्षा प्लम्बेजिन अपेक्षाकृत कुछ अधिक होता है। चिरकाल तक संग्रहीत करने पर इसकी मात्रा में कुछ कमी हो जाती है। चित्रक-मूल को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन–जड़ में प्लम्बेजिन (*Plumbagin*) नामक एक तीक्ष्ण, दाहजनक, क्रिस्टली तत्त्व (०.९% से १% तक) होता है, जो उबलते जल में अंशतः विलेय, सुरासार एवं इथर में सुविलेय होता है। चित्रक-मूल का यह मुख्य सक्रिय घटक है, जो प्रधानतः मूलत्वक् में पाया जाता है। क्षुप के शेष अंगों में प्लम्बेजिन प्रायः नहीं पाया जाता। रासायनिक दृष्टि से प्लम्बेजिन वेफ्थाक्विनोन *2–methyl–5–hydroxy* 1 : 4–*naphtthaquinone* होता है।

वीर्यकालवधि–५ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–लेखन, विस्फोटजनक, दीपन–पाचन। चरकोक्त (सू० अ० ४) लेखनीय, भेदनीय, दीपनीय, अर्शोघ्न, तृप्तिघ्न, शूलप्रशमन, महा कषाय एवं कटुस्कन्ध के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) आरग्वधादि, वरुणादि, मुष्ककादि, पिप्पल्यादि मुस्तादि एवं आमलक्यादि गण में चित्रक भी है। अहितकर–फुफ्फुस रोगों में। निवारण–बबूल का गोंद और मस्तगी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुख्य योग–चित्रकादि गुटिका, चित्रकादि चूर्ण, चित्रक-हरीतकी, चित्रकघृत, माजून फलासफा।

विशेष–प्लम्बेजिन विषाक्त स्वरूपका तत्त्व होता है। अल्प मात्राओं में तो यह केन्द्रीय तन्त्रिकातंत्र पर उत्तेजक प्रभाव करता है, किन्तु मात्राधिक्य होने पर अंगघात उत्पन्न करता है, जिससे मृत्यु भी हो सकती है। साधारण मात्राओं में प्लम्बेजिन समस्त शरीर के अनैच्छिक पेशीसूत्रों पर भी उत्तेजक प्रभाव करता है, किन्तु मात्रातियोग से इनमें भी क्रियाघात उत्पन्न करता है। प्लम्बेजिन के मुख्य कर्म इस प्रकार हैं :–(१) बाह्यतः स्थानिक प्रयोग से क्षोभक एवं जीवणुनाशक होता है, (२) अंत्र, गर्भाशय एवं हृदय के पेशीसूत्रों की आकुञ्चन-गति को बढ़ाता है; (३) पित्त, मूत्र एवं स्वेद के उत्सर्ग को बढ़ाता है; (४) तंत्रिकातन्त्र पर भी उत्तेजक-प्रभाव करता है।

चिरचिटा (अपामार्ग)

नाम। सं०–अपामार्ग, शिखरी, किणिही, खरमञ्जरी। हिं०–चिरचिटा (रा), चिचड़ा, लटजीरा, ओंगा, अंझाझार। बं०–अपाङ्। म०–अ (आ)घाड़ा। गु०–अघेड़ो। पं०–पुठकंडा। कु०–साबी। अं०–प्रिकली चैफ-फ्लावर (*Prickly Chaff-Flower*)। ले०–आकीरांथीस आस्पेरा (**Achyranthes aspera** *L.*)।

वानस्पतिक कुल–अपामार्ग-कुल (अमरान्थासे *Amaranthaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समग्र भारतवर्ष तथा एशिया के उष्ण कटिबन्धीय देश।

संक्षिप्त परिचय–वर्षा का प्रथम पानी पड़ते ही अपामार्ग के पौधे अंकुरित होते हैं। वर्षा में बढ़ते तथा शीतकाल में पुष्प एवं फल से शोभित होते और ग्रीष्म ऋतु के सूर्यताप द्वारा फल के परिपाक होने के साथ ही सूख जाते हैं। साधारणतया इसके क्षुप ४५ सें० मी० से ९० सें० मी० या १½ फुट से ३ फुट तक ऊँचे या कभी-कभी अच्छी भूमि में और भी ऊँचे होते हैं। श्वेत एवं रक्त भेद से इसके मुख्य २ भेद किये जाते हैं, किन्तु वानस्पतिक दृष्टि से दोनों ही प्रकार का अपामार्ग एक ही पौधा होता है। अपामार्ग के क्षुप स्वावलम्बी अथवा उसकी शाखाएँ कुछ-कुछ आरोहणशील होती हैं। पत्तियाँ अण्डाकार (*elliptic*), अभिलट्वाकार अथवा किंचित् वृत्ताकार, लम्बाग्र (कभी-कभी कुण्ठिताग्र) सामान्यतः ३.७५ सें० मी० या १½ इंच लम्बी तथा १.२५ से ३.६५ सें० मी० (या ½ इंच से १½ इंच) तक चौड़ी (लम्बाई-चौड़ाई में नानारूपता पायी जाती है) होती हैं, और अभिमुख क्रम से स्थित होती हैं। पुष्प हरिताभ श्वेत होते हैं, जो अधोमुख तथा अवृन्तकाण्डज लम्बी मंजरियों में स्थित होते हैं।

उपयोगी अङ्ग–पंचाङ्ग तथा क्षार।

मात्रा। (१) स्वरस — १ तोला से २ तोला।
(२) क्वाथ — २½ तोला से ५ तोला।
(३) बीजचूर्ण— १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।
(४) क्षुप—½ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से ८ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–अपामार्ग का काण्ड (*stem*) सीधा खड़ा (*erect*), चिपटा, चौकोना, धारीदार (*striated*) तथा रोमिल (*pubescent*) होता है। रक्तअपामार्ग की शाखाएँ रक्तवर्ण की होती हैं। पार्श्विक शाखाएँ प्रत्येक पर्व पर अभिमुख (आमने-सामने २-२ *opposite*) तथा परिविस्तृत (*spreading*); पत्तियाँ २.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या सामान्यतः १ इंच से ५ इंच लम्बी, १.२५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या ½ इंच से २½ इंच चौड़ी (किन्तु लम्बाई-चौड़ाई में बहुत अन्तर देखा जाता है), अभिमुख क्रम से स्थित (*opposite*), अभिलट्वाकार (*obovate*) अथवा कुछ-कुछ गोलाकार होती हैं, जिनके अग्र कभी छोटे और नुकीले (*acute*) कभी लम्बे (*acuminate*) तथा किन्हीं-किन्हीं में कुण्ठित (*obtuse*), सफेद रोमों से आवृत होती हैं। आधार की ओर पत्तियों की चौड़ाई क्रमशः कम होती जाती (*attenuated*) है। पर्णवृन्त या डंठल छोटे होते हैं। पुष्प छोटे-छोटे, हरिताभ या लाल वा बैंगनी लिये हुए तथा शाखाओं पर सवृन्त काण्डज कर्कश मञ्जरियों (*terminal spikes*) में निकलते हैं। मञ्जरियाँ ५० सें० मी० या २० इंच तक लम्बी होती है और नीचे को झुकी (*lax*) होती हैं। वृन्तपत्र या सहपत्र (*bracts*) कड़े एवं नुकीले तथा स्पर्श में मृदुकण्टकवत् (*rigid and*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

prickly) होते हैं। फल चावल की भाँति लम्बोतरे तथा क्लोम या शल्कपत्र-जैसी रचना से आवृत (*utricle*) होते हैं। बीज—$\frac{1}{2}$ सें० मी० से $\frac{1}{16}$ सें० मी० या $\frac{1}{64}$ इंच से $\frac{1}{8}$ इंच लम्बे, लम्बोतरे (*oblong*) भूरेरंग के होते हैं, जिसके एक पार्श्व में एक स्पष्ट परिखा (*groove*) होती है। अपामार्ग-बीज रूपरेखा में तण्डुल-वत् (चावल की भाँति), किन्तु स्वाद में तिक्त होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—शरद् के अन्त में पंचाङ्ग का संग्रह कर छाया में सुखा कर बन्दपात्रों में रखें। बीजों का तथा मूल का संग्रह जब पौधा सूखने लगे तब करना चाहिए। अपामार्गक्षार को अच्छी तरह डाटबन्द शीशियों में रखना चाहिए और आर्द्रता से बचाना चाहिए, अन्यथा यह पसीजने लगता है।

संगठन—पंचाङ्ग एवं बीजों में अधिक मात्रा में क्षारीय भस्म होता है, जिसमें अधिक मात्रा में पोटाश वर्तमान होता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष। क्षार—कई वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त, विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कार्य—मूत्रल, अश्मरीनाशक, श्वास-कासहर, पित्तसारक, स्वेदजनन, कटुपौष्टिक, विषघ्न, अम्लतानाशक, रक्तवर्धक, शोथहर, लेखन, शिरोविरेचन। (बीज) दुर्जर एवं विष्टम्भी। चरकोक्त (सू० अ० २) शिरोविरेचन द्रव्यों में तथा (सू० अ० ४) क्रिमिघ्न, शिरोविरेचनयोग एवं वमनोपग महाकषायों के द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) अर्कादिगण में 'अपामार्ग' भी है।

मुख्य योग—अपामार्गक्षार तैल, अपामार्ग क्षार।

विशेष—अपामार्ग का उपयोग रसशास्त्र में बंगजारण में किया जाता है। श्वास-कास में अन्य औषधियों के साथ अपामार्ग-क्षार का प्रयोग बहुत उपयोगी है।

चिरायता (किराततिक्त)

नाम। सं०—किराततिक्त, अनार्यतिक्त, भूनिम्ब। हिं०—चिराय (इ) ता, चिरैता। बं०—चिरेता। म०—किराईत। गु०—करियातुं। अ०—क़सबुज़—ज़रीरा। फा०—नैनिहा-बंदी। अं०—चिराटा (*Chirata*), चिरायता (*Chirayata*)। ले०—स्वेर्टिआ चिरेटा **Swertia chirata** *Buch. Ham.*।

वानस्पतिक कुल। किराततिक्तादिकुल (जेन्टिआनासे *Gentianaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय की पर्वतश्रेणियों में कश्मीर से भूटान तक १२०८ मीटर से ३०४६ मीटर (४,००० फुट से १०,००० फुट की ऊँचाई तक) तथा खसिया की पहाड़ियों पर १२०४ मीटर से १५२५ मीटर (४,००० फुट से ५,००० फुट की ऊँचाई) तक चिरायते के स्वयं-जात पौधे पाये जाते हैं। नेपाल के मोरंग प्रदेश में यह प्रचुरता से पाया जाता है। उक्त जाति की अपेक्षा चिरायते की अन्य जातियाँ (जिनका औषध्य व्यवहार नहीं होता) अधिक होती हैं।

संक्षिप्त परिचय—चिरायते के ६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ फुट से ३ फुट खड़े (*erect*) एकवर्षायु; छोटे क्षुप होते हैं। काण्ड स्थूल (*robust*), सशाख, अधिकांश भाग में गोलाकार (*terete*) तथा अग्रकी ओर कुछ-कुछ चतुष्कोणाकार होता है। पत्तियाँ चौड़ी भालाकार १० सें० मी० या ४ इंच तक लम्बी तथा ३.७५ सें० मी० या $1\frac{1}{2}$ इंच तक चौड़ी, अग्रपर नुकीली तथा अभिमुखक्रम से स्थित होती हैं। पुष्प हरिताभ-पीतवर्ण के तथा बैंगनीरंग से चित्रित या आभायुक्त (*tinged with purple*), पुष्पबाह्य एवं आभ्यन्तरकोष ४-४ खण्डों वाला (*4-lobed*) तथा आभ्यन्तर कोष के प्रत्येक खंड पर २-२ ग्रंथियाँ होती हैं। फल (*capsule*) लम्बगोल तथा छोटे-छोटे ($\frac{1}{2}$ सें० मी०) होते हैं, जिसमें अनेक छोटे बहुकोणीय एवं चिकने बीज भरे होते हैं। इसमें पुष्प एवं फलागम शरदृतु में होता है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग एवं पुष्प।

मात्रा। चूर्ण—२ ग्राम से ६ ग्राम या २ माशा से ६ माशा। क्वाथ—२ तोला से ५ तो०।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—चिरायते में प्रधान अंश काण्ड (*stem*) का ही होता है, जो ९० सें० मी० या तीन फुट तक लम्बा होता है। यही भूरेरंग का तथा प्रकाश में देखने से नीली आभालिये भूरेरंग का होता है। इसमें अनेक शाखाएँ होती हैं। काण्ड का अधिकांश भाग गोलाकार तथा केवल अग्रों पर चतुष्कोणाकार-सा होता है। अनुप्रस्थ विच्छेद से मज्जक (*pith*) का स्पष्ट कोमल तथा आसानी से पृथक् हो जाता है। शाखाएँ अभिमुख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु ऊपर नीचे की विपरीत दिशा में स्थित (*opposite and decussate*) होती हैं। पत्तियाँ अभिमुख (*opposite*), लट्वाकार या चौड़ी भालाकार, चिकनी, पत्रतट सरल तथा शिराएँ ३-७ (*3-7 lateral veins*)। तने के अधोभाग की पत्तियाँ अपेक्षाकृत बड़ी तथा ऊपर की उत्तरोत्तर छोटी होती हैं। पुष्प छोटे-छोटे तथा अनेक एवं मञ्जरियों में निकालते हैं। फल छोटे लम्बगोल (*fruit : superior bicarpellary unilocular*), जिसमें अनेक छोटे-छोटे, रेखांकित (*reticulated*) बीज होते हैं। जड़ छोटी पतली एवं टेढ़ी-मेढ़ी होती है। चिरायते में कोई विशिष्ट गंध नहीं होती किन्तु स्वाद में अत्यंत तिक्त होता है। तिक्तसत्व (*Bitter principle*)–कम से कम १.३%; ऐल्कोहल (६०%) में घुलनशील सत्व–कम से कम १०%; अम्ल में अघुलनशील भस्म–अधिकतम १%; विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य–अधिकतम ५%; टैनिन के अभाव का परीक्षण–इसके जलीय या अल्कोहोलिक सत्व में फेरिक क्लोराइड साल्यूशन मिलाने से इसका रंग नीली स्याही की भाँति नहीं होता।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–चिरायते की अनेक जातियाँ (*Species*) पायी जाती हैं, जो उपयुक्त प्रजाति की अपेक्षा अधिक मात्रा में पायी जाती हैं। आपाततः देखने में यह बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं, और जहाँ तीता चिरायता होता है, वहीं यह जातियाँ भी पायी जाती हैं। अतएव दोनों के मिलावट की सम्भावना स्वाभाविक है। इनमें निम्न जातियाँ विशेष उल्लेख की हैं :—(१) स्वेर्टिआ आंगुस्टिफ़ोलिआ (**Swertia angustifolia** *Buch.–Ham.*)–इसको 'मीठा चिरायता' भी कहते हैं, क्योंकि यह तीता नहीं होता। दूसरे इसका काण्ड चौपहल (*rectangular winged*) होता है, तथा मज्जक का भाग असली चिरायते की अपेक्षा बहुत कम होता है। (२) स्वेर्टिआ अलाटा (**S. alata** *Royle*)–में मज्जक तो असली चिरायते की भाँति होता है, किन्तु यह तीता बिल्कुल नहीं होता। इनके अतिरिक्त कभी-कभी इसमें मंजिष्ठा की जड़ें तथा कालमेघ का काण्ड एवं पत्तियाँ भी मिली होती हैं, इनको विशिष्ट लक्षणों द्वारा पहचाना जा सकता है। चिरायता वास्तव में हिमालय में पाया जाता है। अतः सारे देश में इसकी आपूर्ति न होने पर इसके स्थान में अन्य तिक्त एकवर्षायु छोटे क्षुपों का प्रचारित होना भी सम्भावित है। 'भूनिम्ब' संज्ञा जिसका शब्दार्थ 'नीम के समान तिक्त छोटा पौधा है,' मध्यप्रदेश तथा दक्षिण-पश्चिम भारत में मैदानी एवं पठारी भाग में होने वाली सर्वथा भिन्न वनस्पति **Andrographis paniculata** *Nees.* के लिए भी व्यवहृत है। बंगाल, बिहार में यह सुपरिचित एवं घरेलू चिकित्सा में व्यवहृत 'कालमेघ' या 'कल्पनाथ' नाम से प्रसिद्ध है, जिसका वर्णन इसी शीर्षक में स्वतंत्ररूप से किया गया है। इसकी अमिल संज्ञा नील *Nila* (=भूमि) वेम्पु *vempu* (=नीम) भी इसी आधार पर ग्रहीत हुई प्रतीत होती है। दक्षिण-पश्चिम भारतीय बाजारों में विक्रेता 'चिरायते' के नाम पर इसी की आपूर्ति करते हैं। फलतः अनेक फार्मेसियों में चिरायता के स्थान में इसी का व्यवहार देखा जाता है। तिक्तता में समान होने पर भी दोनों वनस्पतियाँ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है। (मार्केट ड्रग्स ऑफ इण्डिया—प्रोफे० आर० एस० सिंह)।

संग्रह एवं संरक्षण–शरद् ऋतु में पुष्प एवं फलागम होने पर पंचांग लेकर छायाशुष्क कर अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में सुरक्षित करें।

संगठन–इसमें चिरेटिन (*Chiratin ;* $C_{52}H_{96}O_{30}$) एवं ओफेलिक एसिड (*Ophelic acid* $C_{26}H_{40}O_{20}$) नामक दो तिक्तसत्व पाये जाते हैं। इनमें चिरेटिन इसका प्रधान सक्रिय घटक है। चिरेटिन अक्रिस्टली (*Amorphous*), एवं अत्यंत तिक्त ग्लूकोसाइड होता है। ओफ़ेलिक एसिड पीताभ-भूरेरंग के सिरप की भाँति तथा पसीजने वाला होता है, जो जल एवं ऐल्कोहल में घुलनशील है। इनके अतिरिक्त एक क्लीब तत्त्व (*Neutral principle ;* $C_6H_8O_3$) एवं ओलीक, पामिटिक एवं स्टियरिक एसिड्स तथा फाइटास्टेरोल नामक तत्त्व भी न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–कटु पौष्टिक, विषमज्वरनाशक, रक्तशोधक एवं कृमिनाशक। यूनानीमतानुसार यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर—कटिके लिए। निवारण—अनीसूं।

मुख्य योग—सुदर्शनचूर्ण, किरातादिक्वाथ, जुवारिश जालीनूस।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) स्तन्यशोधन एवं तृष्णानिग्रहण महाकषाय एवं (वि० अ० ८ में कहे गये) तिक्तस्कन्ध के द्रव्यों में तथा 'सुश्रुतोक्त' (सू० अ० ३८) आरग्वधादिगण में 'किराततिक्त' भी है।

चिरौंजी (प्रियाल)

नाम। सं०—प्रियालबीज, चारबीज। हिं०—चिरौंजी, चिरौंजी देहरादून—कठभिलावा। बं०—चिरोंगी। म०, गु०—चारोली। पं०—चिरौंजी, चिरोली। (वृक्ष) सं०—प्रियाल, चार। हिं०—पियाल, पियार। अं०—दि कुड्डपा आमंड (*The Cuddapah Almond*)। ले०—बूकनानिआ लांज़ान **Buchanania lanzan** *Spr.* (पर्याय—*B. latifolia Roxb.*)।

वानस्पतिककुल। आम्र-कुल (आनाकार्डिआसे *Anacardiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पियाल के वृक्ष समस्त भारतवर्ष के उष्ण एवं शुष्क प्रदेशों में ३,००० फुट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। हिमालय, मध्य तथा दक्षिणभारत, उड़ीसा, छोटा नागपुर और वर्मा के निचले पहाड़ों पर अधिक मिलता है।

संक्षिप्त परिचय—पियाल के मध्यकद के प्रायः सदाहरित वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ एकान्तर (*alternate*), साधारण (*simple*), १५ सें० मी० से २५ सें० मी० या ६ इंच से १० इञ्च लम्बी तथा ५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० या २ इञ्च से ३½ इञ्च चौड़ी, आयताकार या अण्डाकार, पत्रतट अखण्डित (*entire*), अग्र एवं आधार दोनों ओर कुण्ठित (*obtuse*), बनावट में चर्मिल *coriaceous*), कड़ी तथा अधःपृष्ठ पर मृदुरोमश; पुष्प उभयलिंगी, अवृन्त, हरिताभ-श्वेत वर्ण तथा छोटे-छोटे (½ सें० मी० से ¼ सें० मी०) अग्रों पर तथा पत्रकोणोद्भूत शिखराकार मञ्जरियों (*terminal and axillary pyramidal panicles*) में निकलते हैं।

उपयोगी अंग—(१) गिरी (चिरौंजी); (२) फल एवं (३) त्वक्।

मात्रा—(१) चिरौंजी (फल-मज्जा) ६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तो०। (२) त्वक् क्वाथ-५ तो० से १० तो०।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—पियार का फल गोलाकार तथा चपटा अष्ठिफल (*drupe*) होता है, जो व्यास में लगभग ½ इञ्च तक होता है, तथा पकने पर काले जामुन के वर्ण का (*deep purple colour*) होता है। ऊपर गूदे का एक पतला स्तर होता है, जो स्वाद में खटमिट्ठा होता है। संग्रहकर्ता इसे खाते हैं। इसके अन्दर की गुठली तोड़ने पर दो ढक्कनदार टुकड़ों में पृथक् हो जाती है, जिसके अन्दर की गिरी (*kernel*) लालिमालिये भूरे रंग की होती है। यह लम्बाई में चौथाई इञ्च से कुछ अधिक, किन्तु चौड़ाई में कुछ कम होती है। जरा दबाव देने पर द्विदल (*cotyledons*) पृथक् हो जाते हैं। इनमें काफी तैलांश पाया जाता है, तथा गिरीकी-सी मनोरम गंध आती है।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों से गिरी को पृथक् कर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—चिरौंजी में ५१.८% स्थिरतैल (चिरौंजी का तेल), २१.६% प्रोभुजिन् (प्रोटीन), १२.१% स्टार्च तथा ५% शर्करा पायी जाती है। इसकी छाल में लगभग १३.४% टैनिन पायी जाती है।

वीर्यकालावधि। छाल—१ वर्ष। गिरी—२ वर्षतक।

स्वभाव। गुण—स्निग्ध, गुरु, सर। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—वातपित्तशामक, वर्ण्य, केशरंजन, कुष्ठघ्न, बल्य एवं बृंहण, विष्टम्भी, रक्त-प्रसादन, हृद्य, वृष्य, वाजीकर, मूत्रल एवं मूत्रमार्ग स्नेहन, कफनिस्सारक आदि। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम तथा पहले में तर है। अहितकर—गुरु एवं चिरपाकी है। निवारण—सिकंजबीन एवं मधु। प्रतिनिधि—पिस्ता एवं तिल।

विशेष—चिरौंजी मेवे की तरह खायी जाती है। इसकी मिठाई भी बनती है। यह उत्तम पौष्टिक एवं बृंहण तथा मार्दवकर द्रव्य है। वर्ण्य कर्म के लिए इसका उबटन भी करते हैं। चरकोक्त (सू० अ० ४) श्रमहर एवं उदर्दप्रशमन महाकषाय तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) न्यग्रोधादिगण में 'प्रियाल' भी है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चूका (चुक्र)

नाम। (१) वनस्पति (सं०) चुक्र, चुक्रिका। हिं०—चूका, चूकाका साग। बं०—चुका पालङ्। म०—चुका, चाकवत। गु०—चुको, खाटीभाजी। पं०—चूक। अ०—हम्माज़, हुम्माज़, बक़्लए हामिज़ा। फा०—साक़ तुर्शक। अं०—कन्ट्री सारेल (*Country Sorrel*), ब्लैडर डॉक (*Bladder Dock*)। ले०—रूमेक्स वेसीकारिउम **Rumex vesicarium** *Linn*। (२) (बीज) सं०—चुक्रबीज। हिं०—चूके के बीज। अं०—ज़ज़ुल् हम्माज़। फा०—तुख़्म तुर्श:।

वानस्पतिक कुल। चुक्र-कुल (पॉलीगोनासे *Polygonaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में प्राय: चूका के लगाये हुए अथवा कहीं-कहीं स्वयंजात भी पौधे मिलते हैं। यह एक प्रसिद्ध खट्टा साग है।

संक्षिप्त परिचय—चुक्र के १५ सें० मी० ३० सें० मी० या ६ इञ्च से १२ इंच ऊँचे वर्षायु क्षुप होते हैं, जो पाण्डु-हरित, किंचित् मांसल और मूल के पास से ही द्विविभक्त होते हैं। पत्तियाँ लम्बे वृन्तवाली, रूपरेखा में अण्डाकार-लट्वाकार, लट्वाकार या आयताकार, २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इंच से ३ इंच लम्बी और उनका फलकमूल कुन्तवत्, स्कानवत् या हृद्वत् होता है। पुष्पमंजरी २.५ सें० मी० से ३.२५ सें० मी० या १ इंच से १½ इञ्च लम्बी, अग्र्य या अग्र्याभिमुख होती है। पुष्पों में भीतर के पौष्पिक पत्र बड़े, झिल्ली की तरह पतले, सफेद या गुलाबी, दोनों सिरों पर द्वि-खण्ड, वृत्ताकार और मध्यपर्शुक पर बिना गाँठ के होते हैं। इसके फल 'गुलहम्माज़' के नाम से बिकते हैं, जो रक्ताभ-भूरेरंग के, लगभग २.५ मि० मी० या १/१० इंच लम्बे होते हैं। चुक्रबीज (तुख़्महुम्माज़ या तुख़्मतुर्श) गाढ़े भूरेरंग के तथा रूपरेखा में त्रिकोणाकार और चिकने-चमकीले होते हैं।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग, बीज (एवं मूल)।

मात्रा। स्वरस—६ माशा से २ तोला।

बीज—१ ग्राम से ५ ग्राम या २ माशा से ५ माशा।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—रूमेक्स की अन्य कई जातियाँ भी भारतवर्ष में पायी जाती हैं, जिनकी पत्तियाँ स्वाद में खट्टी होती हैं। चकरौता, देववन एवं देहरादून आदि में इसकी रुमेक्स हास्टाटुस (**R. hastatus** *D-Don*) जाति पायी जाती है, जिसकी पत्तियाँ त्रिकोणाकार तथा स्वाद में खट्टी होती हैं।

संगठन—जड़ में रुमिसिन (*Rumicin*) एवं लैपाथिन (*Lapathin*) नामक दो सत्व, जो क्राइसोफ़ैनिक एसिड के समान होते हैं, पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐल्ब्युमिनायड, कार्बोहाइड्रेट तथा क्षारतत्त्व भी होते हैं।

स्वभाव—चूका, लघु, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन, किंचित् पित्तकर और वातगुल्म को दूर करने वाला है। यूनानी मतानुसार चूका एवं इसके बीज पहले दर्जे में शीत एवं दूसरे में खुश्क होते हैं। यह रूक्ष, ग्राही, दाहप्रशमन वेदनास्थापन एवं उष्णयकृद्बलदायक है। पित्तातिसार, पैत्तिकवमन, पित्तप्रकोप, तृष्णा एवं कामला में चूका हितकर है। चूका के बीज (तुख़्म हुम्माज़) ग्राही, पिच्छिल, एवं दाहप्रशमन हैं। पित्तोद्वेग, उष्ण हृत्स्पंद, कामला, आमाशयशोथ, मूत्रमार्गदाह, आन्त्रव्रण एवं पित्तातिसार में चूका के बीज उपयोगी होते हैं।

विशेष—चुक्र एवं चांगेरी दोनों के ही पौधे स्वाद में खट्टे होते हैं, जिससे ग्रन्थकारों ने कहीं-कहीं भ्रम से इन्हें पर्यायरूप से लिख दिया है। किन्तु दोनों भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं। (लेखक)

चोबचीनी (चोपचीनी)

नाम। सं०—द्वीपान्तरवचा। हिं०—चोबचीनी, चोपचीनी। म०, गु०—चोपचीनी। बं०—चोपचिनी। अ०—खुशबुस्सीनी, अस्लुस्सीनी। फा०—बेखचीनी। चोबचीनी। अं०—चाइना रूट (*China Root*) ले०—स्मीलाक्स चीना (**Smilax china** *L.*)।

वानस्पतिक कुल। चोबचीनी-कुल (स्मीलासे *Smilaceae*)।

प्राप्तिस्थान—चीन, जापान। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्यत: चीन से होता है।

उपयोगी अंग—कंदाकार भौतिक काण्ड या राइजोम (*The tuberous Rhizome*)।

मात्रा। कंद चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—औषधीय चोबचीनी इसकी लता की तन्तुमय जड़ों में लगा हुआ कन्द है, जो स्वरूप और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकार में लंबोतरे आलू (*elongated kidney potato irregular cylindrical tubers*) जैसा, कुछ-कुछ चपटा, ग्रंथियुक्त भूरे रंग की छाल से आवृत, कभी मसृण एवं चमकीला और कभी खुरदरा होता है। इसके भीतर का गूदा गुलाबी लिये सफेद, कड़ा, स्टार्चबहुल (पिष्टमय), फीका, पिच्छिल या लुआबी और प्रायः गंधरहित होता है। इसके साधारणतः छाल उतारे और कटे हुए भारी, गुलाबी लिये सफेद काष्ठ के टुकड़े की तरह बेडौल टुकड़े बाजार में मिलते हैं।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—यूनानी निघण्टुकारों के मत से चोबचीनी का एक उत्कृष्ट भेद 'चोबचीनी खताई' है, जो नेपाल के पहाड़ों से आती है। भारतवर्ष में उक्त चोबचीनी की कतिपय निकटतम जातियाँ पायी जाती हैं :—(१) बड़ी चोबचीनी **Smilax glabra** *Roxb.*, (२) हिंदी चोबचीनी **S. lanceaefolia** *Roxb.*; (३) जंगली (देशी उशबा या रामदतुहनिया **S. macrophylla** *Roxb.*)। इनके मूल चोबचीनी एवं उशबा के प्रतिनिधि रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—चोबचीनी को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में शीतल एवं अनार्द्रस्थान में रखना चाहिए।

संगठन—जड़ में वसा, शर्करा, एक ग्लूकोसाइड, रंजकद्रव्य निर्यास (गोंदीय तत्त्व) एवं श्वेतसार (स्टार्च) आदि घटक पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

स्वभाव—गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—शोथहर, वेदनास्थापन, नाड़ी-बल्य, वातनाशक, रक्तशोधक, वृष्य, मूत्रल एवं स्वेद-जनन, ज्वरघ्न, दीपन, अनुलोमन। अहितकर—उष्ण प्रकृति वालों के लिए। निवारण—ऋतु, काल और रोग के विचार से जो उपादेय हो। प्रतिनिधि-देशी चोबचीनी (**Smilax glabra**)

मुख्ययोग—माजून चोबचीनी।

छड़ीला (शैलेय)

नाम। सं०—शैलेय, शिलापुष्प। हिं०—छरीला, छड़ीला, छारछरीला, छैलछबीला, भूरिछरीला, पत्थरका फूल, बुढ़ना। म०—दगडफूल। गु०—छड़ीलो। कु०—झोलो। अ०—उश्नः, हजाजुस्सज्र, शैबतुलअज्ज। फा०—उश्नः, दुववालक (—ला), गुलेसंग। अं०—स्टोन फ्लावर (*Stone Flower*), लाइचेन (*Lichen*)। ले०—(१) पार्मेलिआ पेर्फोराटा (**Parmelia perforata**); (२) पार्मेलिया पेर्लाटा (**P. perlata** *Esch.*); (३) पार्मेलिआ कम्टस्काडालिस (**P. kamtschadalis** *Esch.*)।

वानस्पतिक कुल। शैलेयादि-कुल (लीचेनेज *Lichenes*)

प्राप्तिस्थान—हिमालय, पंजाब, फारस, यूरोप एवं अफ्रीका आदि में बलूत एवं सनोवर आदि के वृक्षों पर अथवा लकड़ी के पुराने कुन्दों, दीवालों एवं चट्टान आदि पर पैदा होता है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग।

मात्रा। ०.५ ग्राम से १.५ ग्राम (५ ग्राम तक) या ½ माशा से १½ माशा (५ माशा) तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—यह काई की तरह महीन झिल्ली के समान एक पौधा है, जिसमें केसर या फूल नहीं लगते। यह हरी पेड़ीसी संचित होकर जब सूख कर उतरती है, तब इसके ऊपर का पृष्ठ काला और नीचे का सफेद होता है। स्वाद किसी कदर फीका और तिक्तकषाय होता है। सफेद, नया और तीव्र सुगंधयुक्त छड़ीला उत्तम होता है। छड़ीला वास्तव में खुमी के समान परांगभक्षी पौधा है, जो भिन्न प्रकार की काईयों पर जमकर उन्हीं से मिल कर अपनी वृद्धि करता है।

संग्रह एवं संरक्षण—छड़ीले को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में रखकर अनार्द्र-शीतल स्थान में सुरक्षित करना चाहिए।

संगठन—इसमें एक पीला क्रिस्टलीय पदार्थ, निर्यास, सुगर एक्सट्रैक्टिव्ह, लाइचेनीन और क्राइसोफैनिक एसिड प्रभृति द्रव्य होते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—हृद्य। कर्म—कफ-पित्तशामक, शोथहर, व्रणरोपण, वेदनास्थापन, कण्डूघ्न, दीपन, ग्राही, हृद्य, कफनिस्सारक, मूत्रल, अश्मरीघ्न, दाह-प्रशमन, ज्वरघ्न, त्वग्रोगनाशक। यूनानीमतानुसार छड़ीला पहले दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर—आँतों के लिए। निवारण—अनीसूं।

छतिवन—दे०, 'सप्तपर्ण'।

छोटा गोखरू—दे०, 'गोखरू'।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोटी इलायची—दे० 'इलायची'।

छोटी दुद्धी—दे०, 'दुद्धी'।

जटामांसी (बालछड़)

नाम—सं०—जटामांसी, भूतजटा, तपस्विनी, सुलोमशा। हिं०—बालछड़, जटामासी, छड़। द०, बं०, म० गु०, ते०—जटामांसी। (पहाड़िया)—भूतकेस। अ०—सुंबुले हिन्दी, सुंबुलुत्तीबे हिन्दी। फा०—नारदे हिन्दी, नारदीने हिन्दी। अं०—जटामांसी (*Jatamansi*), नार्ड (*Nard*), इण्डियन स्पाइकनार्ड (*Indian Spike-nard*), नार्डस्-रूट (*Nardus Root*)। ले०—नार्डोस्टाकिस (*Nardostachys* (*Nardostach.*)। (वनस्पति) नार्डोस्टाकिस जटामांसी **Nardostachys jatamansi** *DC.*।

वानस्पतिक कुल। तगर-कुल (वालेरिआनासे *Valeri anaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय के एल्पाइन प्रदेशों (*Alpine Himalayas*) में ३३३७.७ मीटर से ५१६६.५ मीटर या ११,००० फुट से १७,००० फुट की ऊँचाई तक तथा कुमायूँ से सिक्किम (५१६६.५ मीटर या १७,००० फुट की ऊँचाई) एवं भूटानतक जटामांसी के स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। इसकी सुखाई हुई लोमावृत जड़ एवं भौमिक काण्ड बाजारों में जटामांसी या बालछड़ के नामसे बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—जटामांसी के छोटे-छोटे बहुवर्षायु या वर्षानुवर्षी शाकीय पौधे (*perennial herb*) होते हैं, जिनका काण्ड १० सें० मी० से ६० सें० मी० या ४ इंच से २४ इंच तक ऊँचा होता है, जो अधःभाग में प्रायः चिकना किन्तु ऊपर कुछ रोमश होता है। जड़ के पास की पत्तियाँ (*radical leaves*) १५ सें० मी० से १७½ सें० मी० या ६ इंच से ७ इंच तक लम्बी, प्रायः २½ सें० मी० या १ इञ्च तक चौड़ी होती है, जिनपर नसें या शिराएँ लम्बाई की रुख में (*longitudinally nerved*) होती हैं, और आधार की ओर चौड़ाई में उत्तरोत्तर कम होती हुई वृन्तसे मिल जाती हैं। काण्ड पर १—२ जोड़े पत्तियाँ होती हैं, जो २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च तक लम्बी, रूपरेखा में आयताकार या कुछ-लट्वाकार (*suboyate*) एवं विनाल (*sessile*) होती हैं। पुष्प-मुण्डक संख्या में १, ३, या ५ होते हैं। आभ्यन्तर कोश-नलिका ⅝ सें० मी० या ¼ इंच तक लम्बी और अन्तर रोमश होती है। फल ⅝ सें० मी० या ¼ इञ्च तक लम्बा होता है, जिसपर खड़े सफेद रोयें होते हैं और स्थायी बाह्य कोषचोटिका होती है। औषधि में मूलस्तम्भ (*Root-stock*) का व्यवहार होता है।

उपयोगी अङ्ग—मूलस्तम्भ (जड़युक्त पाताली धड़ या भौमिक काण्ड)।

मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम (५ ग्राम तक) या १ माशा से ३ माशा (५ माशा तक)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—जटामांसी का भौमिक काण्ड गाढ़े खाकस्तरी (*dark grey*) रंग का होता है, जो छोटी अंगुली के बराबर मोटा होता है। यह जटा की भाँति लालिमा लिये भूरेरंग के सघन रेशों से ढका होता है। यह वास्तव में शल्कपत्रों की नसें (*skeletons of the leaves*) होती हैं। काण्ड पर कहीं-कहीं पुष्पवाहक दण्ड के अवशेष (*remains of flower-stalks*) भी पाये जाते हैं। आड़े काटने पर अन्दर का काष्ठीय भाग लालिमा लिये भूरेरंग का तथा रूपरेखा में कुछ कोणाकार (*angular*) होता है, जिससे पशुओं के पुच्छगत कशेरुक के अनुप्रस्थ विच्छेद की भाँति मालूम पड़ता है। उक्त केन्द्रस्थ काष्ठीय भाग ४ मज्जक किरणों (*medullary bands*) द्वारा त्वचीय भाग (*cortical portion*) से जुटा प्रतीत होता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं। जटामांसी स्वाद में तिक्त तथा इसमें एक उग्र सुगंधि होती है। जटामांसी का चूर्ण पीताभ भूरे रंग का होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—जटामांसी में वलेरिअन की विभिन्न जातियों के मूलस्तम्भ तथा सिम्बोपोगोन स्केनान्थुस (**Cymbopogon schoenanthus** (*Linn.*) *Spreng.* (*Syn. Andropogon schoenanthus Linn.* (*Family* : *Gramineae*) की जड़ों का मिलावट किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—जटामांसी को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन—जटामांसी में (०.३% से ०.४%) एक उड़नशील तैल, जो इसका प्रधान सक्रियघटक होता है, तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रिस्टलाइन स्वरूप का एक जलविलेय अम्ल एवं कुछ रालीय सत्व पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–६ मास से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध। रस–तिक्त, कषाय, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रभाव–भूतघ्न, (मानसदोषहर)। कर्म–कफपित्तशामक. संज्ञा-स्थापन, मेध्य, बल्य, वेदनास्थापन, दीपन-पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, हृद्य, हृदयोत्तेजक, रक्तस्तम्भन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, मूत्रल, शोथहर आदि। यूनानी मतानुसार यह पहले दर्जे में उष्ण तथा दूसरे दर्जे में रूक्ष है। अहितकर–वृक्क के लिए। निवारण–गुलरोग़न। प्रतिनिधि–इजखिर मक्की।

मुख्य योग–मांस्यादि क्वाथ, रक्षोघ्नघृत, सर्वौषधि-स्नान। यूनानीयोग–जिमादसुंबुलुत्तीब, रोग़न नारदीन।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) संज्ञास्थापन महाकषाय में जटामांसी का भी उल्लेख ('जटिला' नाम से) है।

जदवार (निर्विषा)

नाम। सं–निर्विषा, निर्विषी, विषहा, अपविषा, अविषा, विषवैरिणी। हिं०–निर्विषी। नेपाल–निलोविख। अ०–जद्वार। फा०–जद्वार, माहफ़र्री। ले०–डेल्फीनिउम डेनुडाटुम (**Delphinium denudatum** *Wall.*)।

वानस्पतिक कुल। वत्सनाभकुल (रानुन्कुलासे : *Ranunculaceae*)।

प्राप्तिस्थान–पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में खोतान (खता), लद्दाख, नेपाल, भूटान, तिब्बत आदि प्रदेशों में २४०८.३६ मी० से ३६५७.६ मी० या ८,०००–१२,००० फुट की ऊँचाई पर इसके स्वयंजात पौधे होते हैं। अमृतसर एवं दिल्ली में इसकी मंडियाँ हैं, यहाँ पर इसे पहाड़ी लोग लाते हैं।

संक्षिप्त परिचय–जद्वार के ६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ फुट से ३ फुट ऊँचे बहुशाखीय किन्तु कोमलकाण्डीय पौधे होते हैं। शाखाएँ चिकनी अथवा हल्की रोमश होती हैं। मूल के पास की पत्तियाँ (*radical leaves*) लम्बे वृन्तों से युक्त, रूपरेखा में वास्तव में गोलाकार (५ से १५ सें० मी० या २ इञ्च से ६ इञ्च चौड़ी) किन्तु बहुशः खण्डित होने के कारण आपाततः देखने में धनिए की पत्तियों की भाँति मालूम होती हैं। यह पत्राधार तक खण्डित होती हैं। पत्रखण्ड (*segments*) संख्या में ५–६ होते हैं, जो पुनः पक्षाकार खण्डित (*pinnately lobed*) होते हैं। खण्डों के तट दन्तुर (*toothed*); काण्डीय पत्र अपेक्षाकृत छोटे वृन्तयुक्त तथा कम खण्डित, उदमें भी ऊपर के पत्र प्रायः विनाल, खण्ड भी संख्या में कम (प्रायः ३) तथा कम गहरे होते हैं। तट भी दन्तुर नहीं होता। पुष्प संख्या में कम, नीलेरंग के तथा २.५ सें.मी. से ३.७५ सें.मी. या १ इञ्च से १½ इञ्च लम्बे होते हैं। पुच्छ (*spur*) रूपरेखा में बेलनाकार (*cylindric*) तथा सीधा होता है। पुटपत्र (*sepals*) गहरे नीले से खाकस्तरीरंग के तथा फैले (*spreading*) होते हैं। दलपत्र (*petals*) नीले-रंग के होते हैं, जिनमें पार्श्वस्थ (*laterly*) प्रायः द्वि-ओष्ठीय एवं रोमश होते हैं। इसमें अतीस की तरह फल लगते हैं, जिनमें १–७ बीज होते हैं। पुष्पागम अप्रैल से जून तक होता है।

उपयोगी अंग–कंदाकार मूल।

मात्रा–½ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से ८ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–बाजार में जद्वार के कालाई लिये भूरे रंग के मूल (कंद) मिलते हैं, जो २.५ से ३.७५ सें० मी० या १ इंच से १½ इञ्च लम्बे, तथा रूपरेखा में अंडाकार या शंक्वाकार तथा व्यास में लगभग ½ इञ्च होते हैं। बाह्यतल कभी-कभी कुछ झुर्रीदार भी होता है, जिस पर कभी उपमूलों के अवशेष भी पाये जाते हैं। उत्तम कंदों को तोड़ने पर यह सतमुलेठी की तरह टूट जाते हैं। इसमें एक बहुत हल्की सुगन्धि भी पायी जाती है, तथा स्वाद में पहले मधुर और बाद में तिक्त मालूम होता है; किन्तु इसको छीलकर चबाने से बछनाग-जैसी जीभ पर सुन्नता और सनसनाहट नहीं मालूम होती। जद्वार की जड़ों का अनुप्रस्थ-विच्छेद (*T. S.*) कर परीक्षण करने पर सबसे बाहर की ओर गाढ़े भूरे रंग का बाह्य वल्कल या बाह्य त्वक् (*epidermis*) का भाग होता है। उसके अन्दर तनुभित्तिक ऊति (*parencyma*) होती है, जिसकी कोशाओं में स्टार्च के कण होते हैं। इसके अन्दर वाहिनीपूल या बंडल (*vascular bundles*–५ से १० तक) होते हैं, जो सीधे वृत्ताकार रेखा पर न स्थित होकर ऊपर-नीचे होते हैं, जिससे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एधा-रेखा (*cambial zone*) टेढ़ी-मेढ़ी तथा लहरदार सी मालूम होती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—उत्पत्ति-क्षेत्र एवं रंग-रूप तथा उत्तमता की दृष्टि से अनेक प्रकार के जद्वार का उल्लेख है। इनमें जद्वार खताई सर्वोत्तम मानी जाती है। यह खता (खोतान) की पर्वतमाला में प्रचुरता से होती है, और बाहर से श्यामवर्ण, भीतर से बनफशई रंग की तथा रूपरेखा में गोपुच्छाकार होती है। इसके बाद 'जद्वार अकरबी' मानी जाती है, जो नेपाल तथा तिब्बत आदि में होती है। इसके कन्द भीतर और बाहर से पिलाई लिये श्यामवर्ण तथा रूपरेखा में वृश्चिक (अक़रब) के पुच्छाकार होते हैं। जद्वार तथा बछनाग का अन्तर—जद्वार की जड़ भी आपाततः देखने में बछनाग के समान होती है, किन्तु जद्वार के कन्द बछनाग की अपेक्षा छोटे तथा कम मोटे होते हैं। बछनाग को छील कर जिह्वा पर रखने से दाह, सुन्नता और सनसनाहट प्रतीत होती है। इसके बाद उद्वार को घिस कर चटाने से बछनाग के उक्त दोष दूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जद्वार कड़ुई या मधुर और रंग में भीतर-बाहर से न्यूनाधिक भूरी, गुण में निर्विष एवं विषघ्न होती है। बछनाग अन्दर से सफेद होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—जद्वार को बुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखना चाहिए। जद्वार में कीड़े जल्दी लगते हैं, अतएव इसको तैल में अथवा पारद के साथ रखना चाहिए।

संगठन—जद्वार के कंदों में डेल्फिनीन (*Delphinine*), तथा स्टेफिसेग्रीन (*Staphisagrine*) नामक दो ऐल्कलायड्स (क्षारोद) पाये जाते हैं, जो ऐल्कोहल् में घुलनशील होते हैं। इसके अतिरिक्त डेल्फोक्यूरानीन (*Delphocurarine*) नामक ऐल्केलॉइड भी पृथक् किया गया है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस-तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषशामक; शोथहर, लेखन, विषघ्न, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य एवं वातहर, दीपन, आमपाचन, पित्तसारक एवं अनुलोमन, कफघ्न, रक्त-शोधक, आर्त्तवजनन, मूत्रल, एवं अश्मरीनाशन, ज्वरघ्न, वाजीकरण, कटुपौष्टिक। यूनानी मतानुसार 'जद्वार' तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क तथा विषनाशक, सौमनस्यजनन, उत्तमांगों को बल देने वाली, नाड़ीबल्य, प्रमाथि, विलयन, तारल्यजनन, दोषपाचन, वाजीकर, प्रवर्त्तक, अश्मरी नाशन, वेदनास्थापन, लेखन तथा कफज एवं सौदावी ज्वरों को नष्ट करने वाली होती है। अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारण—धारोष्ण दूध और यवमण्ड।

मुख्य योग—जद्वार की गोलियाँ बनाकर प्रतिश्याय आदि कफ रोगों में तथा अन्य मस्तिष्क रोगों में और वाजीकरण के लिए प्रयुक्त होती हैं। कतिपय माजूनों में भी इसे डालते हैं। खमीरा जदवारी, खमीरा गावजबाँ जदवारी तथा हब्बजदवार इसके मुख्य योग हैं।

विशेष—अतिविषा (अतीस) की भाँति 'निर्विषा या जद्वार' भी विषैला नहीं होता। यह एक उपयोगी औषधि है। चिकित्सकों को इसका व्यवहार करना चाहिए।

जमालगोटा (जयपाल)

नाम। सं०—जयपाल, जेपाल, नेपाल आदि। हिं०—जमालगोटा। म०—जमालगोटा। बं०—जयपाल। गु०—नेपालो। आसाम—कोनीवीह (कोनी अर्थात् बीज के भीतर का गर्भ या अंकुर, वीह (<विष) अर्थात् विषैला होता है)। पं०—जपो (ब्बो) लोटा। अ०—तुख्म हब्बुस्सलातीन, दंदुस्सीनी। फा०—दंदचीनी, तुख्म बेदअंजीर खताई, दंद। ले०—क्रोटोनिस सेमेन (**Crotonis Semen**)। अं०—क्रोटन सीड्स (*Croton Seeds*)। वृक्षका नाम (क्रोटॉन टीग्लियम् (**Croton tiglium** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। एरण्डादि-कुल (एउफॉर्बिआसे *Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—जयपाल चीन का आदिवासी पौधा है। चीन एवं भारतीय द्वीपसमूह में यह प्रचुरता से पाया जाता है। अधुना समस्त भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है। आसाम के जंगलों में इसके स्वयंजात वृक्ष भी काफी परिमाण में पाये जाते हैं। जमालगोटे के बीज बाजारों में मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—जमालगोटे के छोटे ४.५७ से ६.९ मीटर (१५ फुट से २०) ऊँचे सदाहरित वृक्ष होते हैं। पत्ति य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिकनी, पतली ५ सें.मी. से१०सें.मी.या २ इंच से ४ इंच लम्बी लट्वाकार, लम्बाग्र, दन्तुर और ३से५ शिराओं से युक्त होती हैं। पुष्प एकलिंगी तथा छोटे होते हैं, जो शाखाग्रय मञ्जरियों में निकलते हैं। नरपुष्प श्वेताभ वर्ण के तथा १५ से २० केशरसूत्रों (*filaments*) वाले होते हैं। फल प्रायः २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बा, अण्डाकार और त्रिकोणयुक्त तथा त्रिकोष्ठीय (*3–coccous*) होता है। बीज बादामी रंग के होते हैं।

उपयोगी अंग–(१) बीज एवं (२) बीजों से प्राप्त तेल।

मात्रा। (१) बीजचूर्ण–३० मि० ग्राम से १२५ मि० ग्राम या $\frac{1}{2}$ रत्तीसे १ रत्ती। (२) तेल–$\frac{1}{2}$ बूँद से १ बूँद (मक्खन के साथ)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–(१) जमालगोटा, एरण्डबीज की भाँति लगभग $\frac{5}{2}$ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा और १ सें० मी० या $\frac{3}{4}$ इञ्च चौड़ा, अंडाकार, किसी कदर गोल शकल का तथा कृष्णाभ भूरेरंग का होता है। इसका बाहरी छिलका भंगुर होता है, और आसानी से तोड़ कर पृथक् किया जा सकता है। इसके अन्दर पिलाई लिये सफेद रंग का तैलीय गूदा (*oily albumen*) भरा होता है, जो एक सफेद रंग की पतली झिल्ली (*endopleura*) से आवृत रहता है। मग्ज या गूदे के दो दल होते हैं, जिनके बीच में एक वृन्त (*radicle*) से लगे दो पत्राकार जीभी (*foliaceous cotyledons*) होती है। (२) गूदे में लगभग ५०% से ६०% तक जमालगोटे का तेल प्राप्त होता है, जो भूरापन लिये पीलेरंग से रक्ताभ भूरेरंग का गाढ़ा तेल होता है, जिसमें अरुचिकारक गंध होती है। स्वाद में कटु एवं जलन (*burning*) का अनुभव होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–इसी जाति का एक दूसरा पौधा जिसे व्याघ्रैरण्ड (बघरेंड़) या जाट्रोफा कुर्कास (**Jatropha curcas** *Linn.*) कहते हैं, इसके बीज भी कहीं-कहीं जमालगोटे के नाम से व्यवहृत होते हैं। यह दक्षिण भारत में कोरोमण्डल तट, ट्रावन्कोर एवं कनाडा में प्रचुरता से होता है। देहरादून के जंगलों में इसके बीजों का संग्रह 'जयपाल' या 'जमालगोटे' के नाम से किया जाता है। इसमें भी रेचक गुण पाया जाता है। इसका फल लम्बगोल होता है, जिस पर ६ फाँकदार धारियाँ होती (*6-striated*) हैं। पकने पर यह पीताभ किन्तु सूखने पर धीरे-धीरे काला पड़ जाता है। फल में ३ कोष्ठ होते है, जिसमें प्रत्येक में १-१ बीज होता है, जो $\frac{1}{5}$ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच) तक लम्बा, १.२५ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इंच से कुछ कम चौड़ा तथा पृष्ठतल पर कुछ उन्नतोदर-सा और अधःपृष्ठ (*ventral surface*) के बीचों-बीच एक रेखा होती है। बीज के एक सिरे पर एक सफेद चिह्न (*white scar*) होता है। आपाततः जमालगोटे के बीज रेड़ी के बीज से मिलते-जुलते हैं। किन्तु रेड़ी का छिलका बहुत चमकीला, चिकना एवं छोटे-छोटे दागदार (*mottled*) होता है; तथा बीजों के एक सिरे पर हुंडीनुमा छोटी-सी गाँठ (*caruncle*) होती है।

संग्रह एवं संरक्षण–जमालगोटे के बीजों तथा तैल को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल तथा बंद स्थान में सावधानी से रखना चाहिए।

संगठन–जमालगोटे के तेल में (१) क्रोटन रेजिन होता है जो स्थानिक प्रभाव से विस्फोटजनक (*vesicant*) होता है। यह इसका मुख्य सक्रिय उपादान मालूम होता है। इसके अतिरिक्त स्टियरिक, पामिटिक, ओलिईक, लॉरिक, लिनोलिक, एवं टिग्लिक एसिड के ग्लिसराइड्स पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–तीव्ररेचन। कर्म–स्फोटजनन, तीव्ररेचन, शोथहर, ज्वरघ्न, लेखन, विषघ्न। यूनानीमतानुसार जमालगोटा चौथे दर्जे में उष्ण और रूक्ष है। सौदा और बलगमी रोगों में इसका प्रयोग विरेचन के रूप में किया जाता है। स्फोटजनक होने के कारण यह तिलाओं में डाला जाता है।

विषाक्त लक्षण–जयपाल एक तीव्र एवं उग्र स्वरूप की रेचक औषधि है। अतएव मात्रा पर विशेष ध्यान देना चाहिए, अन्यथा मात्रातियोग से आमाशयान्त्र प्रदाह होकर पेट में मरोड़, दर्द एवं रक्तमिश्रित पतले दस्त आने लगते हैं। निवारण–ऐसी स्थिति में गोदुग्ध, घृत, नीबू का शर्बत एवं दही की लस्सी आदि देना चाहिए।

मुख्य योग– इच्छाभेदी, जलोदरारि, नारायणरस, ज्वरमुरारि आदि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष—योगों में डालने के लिए शोधित जमालगोटे का व्यवहार किया जाता है। एतदर्थ जमालगोटे के बीजों के छिलके तथा गर्भाङ्कुर निकाल कर गोदुग्ध में एक प्रहर तक स्वेदन करें। अब इसे निकाल कर गर्म जल से धोलें और नीबू के रस की भावना देकर धूप में सुखा लें।

सावधानी—जमालगोटे की जीभी निकालते समय हाथों पर काफी स्नेह लगा लें अथवा अधिक अच्छा तो यह है कि हाथों पर कपड़ा लपेट लें, अन्यथा लगने से यह तीव्र क्षोभक एवं विस्फोटक जनक उपद्रव करता है।

वक्तव्य—'जमालगोटा' या 'जयपाल' का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में नहीं मिलता। किन्तु मध्ययुगीन आयुर्वेदीय निघण्टुओं तथा रसग्रन्थों में सर्वत्र यह प्रसिद्ध है। जमालगोटा की प्रसिद्धि तीव्ररेचक औषध के रूप में है, और आज एतदर्थ जयपालघटित कोई न कोई योग सभी चिकित्सक व्यवहार करते हैं। इसीलिए निघंटुओं में इसके लिए एक पर्याय 'रेचकः। रेचकम्' भी दिया गया है। आधुनिक प्रचलित रसग्रन्थ 'रसतरङ्गिणी' में जयपाल का अधिकृत समावेश उपविषवर्ग में (तरंग।२४) किया गया है। बुखारा के प्रसिद्ध यूनानी हकीम इब्नसीना (ईसा के पश्चात् १० वीं शताब्दी) ने इसका उल्लेख 'दंदसीनी = दंदचीनी (फा०) नाम से किया है। इससे लक्षित होता है कि चीन से ईरान में इसका प्रसार मध्यएशिया से होकर हुआ होगा। 'दंद' नाम से ईरानवासियों को इस औषधि का ज्ञान अति प्राचीन काल से है। इसी का संस्कृतरूप 'दन्ती' प्रतीत होती है। उल्लेख की बारंबारिता चरक संहिता में अपेक्षाकृत अधिक मिलती है, जो प्राचीन उत्तरपश्चिम सीमाप्रान्तीय क्षेत्र से भारत में इसके प्रसार का संकेत करती है। दंती एवं जयपाल के पारस्परिक स्थिति, सापेक्ष एवं वानस्पतिक विनिश्चय को लेकर शास्त्रों एवं आयुर्वेद की व्यवहारपरम्परा में काफी भ्रान्ति एवं अस्पष्टता की स्थिति देखी जाती है। किन्तु शार्ङ्गधर संहिता के विद्वान् टीकाकार आढमल्ल एवं मध्ययुगीन निघण्टुकारों एवं रसग्रन्थों ने स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया है। यथा 'जयपालो दन्तीबीजं (कै० दे०) तथा 'दन्ती = जयपालमूलं (शार्ङ्गधर मध्यम खण्ड ७/५२ पर गूढार्थदीपिका टीका)'। उल्लेखनीय है कि क्रोटॉन टीग्लिअम् के मूल एवं पत्तियों में भी रेचक गुण पाया जाता है। सम्भव है, आयुर्वेदीय संहिताओं की दन्ती—द्रवन्ती से इसी कुल की कोई अन्य जाति-प्रजाति समझी जाती रही हो जिसका विभेद इब्नसीना ने 'दद हिन्दी' संज्ञा से इंगित किया है। उल्लेखनीय है कि सम्प्रति सर्वाधिक प्रचलित संज्ञा 'जमालगोटा' उर्दू भाषा का शब्द है। आसाम के आदिवासियों में प्रचलित संज्ञा 'कोनी = बीज के भीतर का गर्भ या अंकुर + बीह (<विष)' से लक्षित होता है, कि अतिप्राचीन उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्तीय जनजातियों को भी यह औषधि ज्ञात थी। 'श', 'ष', 'स' का रूपान्तर 'ह' में प्राचीन ईरानी भाषा में प्रचलित था। (लेखक)

जयन्ती (जैंत)

नाम। सं०—जयन्ती, जया। हिं०—जैंत। बं०—जयन्ती। ले०—सेस्बानिआ ईजीप्टिआका **Sesbania aegyptiaca** *Poir* (पर्याय—*S. sesban* (*Linn.*) *Merr.*) ?

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल (लेगूमिनोसे: (*Leguminosae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में हिमालय से लेकर दक्षिण में लंका तक। कहीं-कहीं बगीचों एवं गृह-उद्यानों में झाड़ के रूप में भी यह लगायी जाती है।

संक्षिप्त परिचय—इसके बड़े गुल्म या ४.५ मीटर अथवा १५ फुट तक ऊँचे, अल्पायु, छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं जो बागों में लगाये जाते हैं तथा स्वयंजात भी पाये जाते हैं। पुष्प के रंग-भेद से इसकी कई जातियाँ या भेद होते हैं। उक्त जाति के पुष्प पीतवर्ण के होते हैं। पत्तियाँ आपाततः देखने में इमली की पत्तियों की भाँति, समपक्षवत् होती हैं, जिनमें १२-२० जोड़े पत्रक होते हैं। फलियाँ लम्बी, पतली, रम्भाकार परन्तु बीच-बीच में पतली होती हैं। वर्षा में फूल तथा जाड़ों फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—पत्र, मूल, त्वक्, पुष्प एवं बीज।

मात्रा। चूर्ण—२ ग्राम से ६ ग्राम या २ माशा से ६ माशा।
स्वरस—१ तोला से २ तोला।
क्वाथार्थ मूल—१ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—पत्तियाँ समपक्षवत्, १०.५ सें० मी० से १५ सें०मी० या ३ इंचसे ६ इंच लम्बी होती हैं; जिनमें

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

९–२० जोड़े पत्रक होते हैं, रेखाकार-आयताकार (*linear-oblong*) होते हैं। पत्तियों को मसलने पर एक विशिष्ट प्रकार की गंध मालूम पड़ती है, तथा स्वाद में यह कुछ तिक्त होती हैं। शिम्बी १५ सें० मी० से २२.५ सें०मी० या ६ इंच से ९ इंच लम्बी, पतली रम्भाकार परन्तु बीच-बीच में पतली होती है। बीज आयताकार-लम्बगोल (*oblong*), कुछ-कुछ वृक्कानुकारि और चिकने होते हैं, जिनमें विशिष्ट प्रकार की गंध तथा स्वाद फीका होता है। यह आसानी से चूर्ण नहीं होते।

संग्रह एवं संरक्षण–जाड़ों में मूल एवं बीजों का संग्रहकर अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखें।

संगठन–बीजों में ३.६७ प्रतिशत स्थिरतैल एवं गंधतत्त्व ५.०९% भस्म तथा ऐल्ब्युमिनाइड एवं कार्बोहाट्रेड आदि तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–विषघ्न, ज्वरघ्न। कर्म–कफपित्त-शामक, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न, रक्तशोधक, गलगण्ड-नाशक, कफघ्न मूत्रसंग्रहणीय, आर्त्तवजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, प्लीहाकाठिन्यहर। इसके पत्तों का कल्क बना कर स्थानिक प्रयोग करने से शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणपाचन एवं कुष्ठघ्न कर्म करता है।

मुख्य योग–जयावटी ?।

विशेष–जयन्ती पत्रस्वरस रसशास्त्र में द्रव्यों के शोधन में बहुशः प्रयुक्त होता है।

वक्तव्य–'जयन्ती' संज्ञा का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में प्रायः नहीं के बराबर है। रसशास्त्रीय परम्परा में इसके पत्रस्वरस का उपयोग शोधनार्थ प्रायशः होता है। अतएव इसका स्पष्ट उल्लेख मध्ययुगीन निघण्टुओं, रसग्रन्थों तथा संस्कृतकोषों में अवश्य मिलता है। किन्तु उक्त संज्ञा नानार्थरूपी है। अर्थात् इस संज्ञा का प्रयोग अनेक वनस्पतियों के लिए हुआ है। अतः भिन्न-भिन्न संदर्भों में उक्तसंज्ञा से वास्तव में कौन सी वनस्पति अभिप्रेत है, इस पर विचार एवं अन्वेषण अपेक्षित है। रसशास्त्रीय परम्परा एवं इसमें व्यवहृत वनौषधियों की स्वतंत्र पारस्परिक सत्ता एवं स्वरूप है, जिसपर लगता है विशेषज्ञों का ध्यानाकर्षण भी नहीं हुआ है। मेरी दृष्टियों में रसशास्त्रीय प्रसंग में जयन्ती। जया से 'सेस्वानिआ' प्रजातियों के ग्रहण की युक्ति-युक्तता नहीं प्रतीत होती। 'रसशास्त्रीय वनस्पतियों के विनिश्चय की दिशा में' एतच्छीर्षक ग्रंथ में मैंने इसपर विचार किया है। (लेखक)

जलकुम्भी (कुम्भिका)

नाम। सं०–कुम्भिका, वारिपर्णी, वारिमूली। हिं०–जल कुम्भी। बं०–टोकापाना। अं०–वाटर-सोल्जर (*Water-soldier*)। ले०–पिस्टिआ स्ट्राटिओटेज **Pistia stratiotes** *Linn.*।

वानस्पतिककुल। सूरण-कुल (आरासे : *Araceae*)।

प्राप्तिस्थान–यह एक जलीय पौधा है, जो समस्त भारत-वर्ष में बंधे जलाशयों तथा गड्ढों में मिलता है। क्रमशः यह सारे जलाशय में छाजाता है।

संक्षिप्त परिचय–जलकुम्भी के क्षुप जलाशयों के ऊपर तैरते हुए पाये जाते हैं। पत्तियाँ २.५ सें०मी० से ७.५ सें०मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च लम्बी, कुछ वृत्ताकार अथवा अभि-लट्वाकार या अभि-हृद्वत् होती हैं, जो चक्राकार गुच्छ में होती हैं। पत्रतट लहरदार होते हैं, और शिराएँ पंख-वत् फैली होती हैं। पुष्पव्यूह पत्रावृत स्थूलमंजरी या स्पैडिक्स (*spadix*) तथा कोणोद्भूत और एकाकी होता है। पृथु पत्रावरण या स्पेथ (*spathe*) पीला या सफेद होता है।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग (तथा पंचाङ्ग-भस्म)।

मात्रा। स्वरस–१ तोला से २ तोला।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–त्रिदोषशामक, अनुलोमन, मृदुरेचन, रक्तस्तंभक, कफनिःसारक, मूत्रल, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, बल्य, शोथहर। स्थानिक प्रयोग से यह कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, रक्तस्तम्भक, दाहप्रशमन एवं इसकी भस्म दद्रु, कण्डू, एवं गण्डमालानाशक होती है।

मुख्ययोग–कुम्भीतैल।

विशेष – कुम्भीतैल चिरकालज कर्णस्राव (*chronic otorrhoea*) में बहुत उपयोगी है।

जवास (यवास)

नाम। सं०–यास, यवास, दुःस्पर्श। हिं०–जवास, जवासा, हिंगुआ। बं०–जवाशा। म०–जवासा। गु०–जवासो।

Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अ०—हाज। फा०—खारेशुतुर, खारेबुज। अं०—अरेबियन या पर्सियन मेन्ना-प्लांट (*Arabian or Persian Manna-Plant*)। ले०—आल्हागी सेउडाल्हागी **Alhagi pseudalhagi** (*Bieb*) *Desv.* (पर्याय—**A.** *camelorum Fich.*; *A. maurorum Baker non Desv.*)। उक्त नाम जवास के क्षुप के हैं। (यवासशर्करा) सं०—यासशर्करा, यवासशर्करा। हिं०—तरंजबीन। अ०—तरंजबीन, अस्लुल्हाज। अं०—मेन्नाऑवदि डेजर्ट (*Manna of the Desert*). पर्सिअन मेन्ना (*Persian Manna*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल (लेगूमिनोसे *Leguminosae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष में दक्षिण महाराष्ट्र प्रदेश, गुजरात, सिंध, पंजाब, उत्तरप्रदेश एवं राजस्थान आदि में जवासा के स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तरी-पश्चिमी सीमांतप्रदेश, बिलोचिस्तान, फारस, खुरासान, सीरिया, मेसोपोटामिया, अरब एवं मिस्र में भी यह प्रचुरता से होता है। क्षुप का संग्रह भारतवर्ष में होता है, तथा तुरञ्जबीन का आयात यहाँ फारस से होता है।

संक्षिप्त परिचय—जवासाके छोटे-छोटे (३० सें०मी० से ९० सें० मी० या १ फीट से ३ फीट ऊँचे), पीताभ-हरित वर्ण के शाखाबहुल एवं कँटीले क्षुप होते हैं। काँटे कड़े, नुकीले एवं (कभी-कभी) ३.७५ सें० मी० या १½ इञ्चतक लम्बे होते हैं। शाखा-प्रशाखाएँ पतली, रूपरेखा में रम्भाकार (*terete*) तथा बाह्यतल पर रेखांकित एवं प्रायः चिकनी होती हैं। पत्तियाँ साधारण (*simple*), चर्मिल (*coriaceous*), ६.२५ मि० मी०—९.३७५ मि०मी० × ३.१२५ मि० मी०—४.६ मि० मी० (¼ इञ्च से ⅛ इंच × ⅛ इञ्च से १⅛ इंच), रूपरेखा में अभिलट्वाकार—आयताकार कुण्ठिताग्र किन्तु अन्ततः नुकीले अग्र में संकुचित, जिससे तीक्ष्णाग्र (*apiculate*) होती हैं। पृष्ठ या तल प्रायः चिकने तथा फलक-आधार पर कुछ त्रिकोणाकार-सा जिससे स्फानाकार (*cuneate*) होता है। पर्णवृन्त बहुत छोटे होते हैं। ग्रीष्म के प्रखर ताप में जब अन्य वनस्पतियाँ सूखजाती हैं, तो जवास भी मदार की भाँति हराभरा रहता है। माघ-फाल्गुन में पुष्प आते हैं, जो लालरंग के होते हैं। फलियाँ १.८७५ सें०मी० से ३.१२५ सें० मी० (¾ इञ्च से १¼ इञ्च) लम्बी रूपरेखा में कुछ-कुछ हँसिये के आकार की होती है, और गर्मियों में पकती है। बीज कृष्णाभ-भूरेरंग के तथा चिकने होते हैं। जवास के पौधे प्रायः नदियों के कछारों में तथा रेतीली एवं बलुई भूमि में पाये जाते हैं। हरे पौधों को काट कर टट्टियाँ बनायी जाती हैं, तथा यह ऊँटों के लिए उत्तम चारा का काम देता है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग, यवासशर्करा (तुरञ्जबीन)।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला।

क्वाथ—२½ तोलासे ५ तोला।

यासशर्करा—१ ग्राम से ३ ग्राम या माशा १ से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—तुरञ्जबीन, जवासा के पौधे का प्रगाढीभूत द्रव होता है, जो निर्यास की भाँति स्रवित होकर पत्र और शाखाओं पर जमजाता है। इसके छोटे-छोटे सफेद दाने होते हैं, अथवा कई-कई दाने परस्पर चिपके हुए होते हैं। संग्रह की लापरवाही से इसमें प्रायः पौधे की पत्तियाँ, काँटे एवं टूटी फलियों के टुकड़े भी मिले होते हैं। इसमें प्रायः कोई गंध नहीं पायी जाती, किन्तु स्वाद में पहले मधुर किन्तु बाद में कुछ कड़वी मालूम होती है। ताजी, सफेद, शुद्ध और मिश्रण रहित तथा जिसमें पत्ते न हों और काँटे कम हों, यह तरंजबीन श्रेष्ठ और कूड़ा-कर्कटादि से शुद्ध करके काम में लाना चाहिए।

स्थानापन्नद्रव्य एवं मिलावट—तरंजबीन में चीनी तथा मिश्री के दानों का मिलावट कियाजाता है। असली तरंजबीन में मधुरता के साथ कुछ कुस्वाद और वसागंध भी होती है, और गरम पानी में भिगोने से उसमें कुछ चिकनाई भी मालूम पड़ती है।

संग्रह एवं संरक्षण—शुष्क पंचाङ्ग को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। यासशर्करा या तुरंजबीन को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में रखें तथा नमी से बचाना चाहिए।

संगठन—तुरजबीन (*Alhagi Manna*) में एक क्रिस्टली सत्त्व होता है, जो किसी अम्ल में उबालने पर द्राक्ष-शर्करा (ग्लूकोज) में परिवर्तित हो जाता है। इसमें इक्षुशर्करा (*Cane Sugar*) भी होती है।

वीर्यकालावधि। पंचाङ्ग—१ वर्ष। तुरंजबीन—कईवर्ष तक।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, तिक्त, कषाय। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–वातपित्त-शामक, शोथहर, वेदनास्थापन, रक्तरोधक, छर्दि-तृष्णा निग्रहण, पित्तसारक, कफनिस्सारक, मूत्रजनन, दाहज्वरशामक, बल्य, बृंहण, त्वग्दोषहर आदि। यूनानीमतानुसार 'यवास' शीत एवं रूक्ष तथा 'तुरंजबीन' उष्णता लिए अनुष्णशीत। तुरंजबीन सारक, पित्तविरेचक, कफशामक, वृष्य एवं बृंहण है। यह बच्चों एवं मृदुप्रकृति वालों के लिए उत्तम सारक औषधि है। यह पित्त को सरलता से निकालती है। इसे विरेचक औषधियों की शक्ति बढ़ाने के लिए उनमें मिलाते हैं।

मुख्य योग–दवाउत्तरंजबीन।

विशेष–चरकोक्त तृष्णानिग्रहण गण की औषधियों में यवासक (जवासा) का भी उल्लेख है।

जामुन (जम्बू)

नाम। सं०–जंबु (बू), राजजम्बू। बं०–कालजाम। पं०–जामलु। म०–जांभूल। गु०–जांबु, जांबू। ता०–शंबु, नावल। मल०–भावल। ते०–नेरेडु। अं०–जैम्बोल (*Jambol*)। ले०–सीज़ीजिउम कूमिनी **Syrzygium cumini** (*L.*) *Skeels* (पर्याय–*Eugénia jambolana Lam.*)।

वानस्पतिककुल। लवंग-कुल (मीर्टासे *Myrtaceae*)।

प्राप्तिस्थान–जामुन के वृक्ष भारतवर्ष में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

संक्षिप्त परिचय–जामुन के ऊँचे-ऊँचे सदाहरित वृक्ष होते हैं, जो लगाये हुए तथा जंगली रूप से पाये जाते हैं। पत्तियाँ ७.५ से १५ सें० मी० या ३ इञ्च से ६ इंच लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १½ इञ्च से २½ इञ्च तक चौड़ी, लट्वाकार-आयताकार (*ovate-oblong*), आयताकार-भालाकार, लम्बाग्र (*acuminiate*), बनावट में चर्मिल (*coriaceous*), चिमड़ी, चिकनी तथा ऊर्ध्वतल पर चमकदार होती हैं। पर्णवृन्त ½ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ¼ इञ्च से १ इञ्चतक लम्बे तथा खातोदर (*channelled*) होते हैं। कोमल पत्तियों को मसलकर सूंघने से एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि आती है। बसन्त-ऋतु में छोटे-छोटे हरिताभवर्ण के पुष्प आते हैं, जो छोटे-छोटे पुष्पवृन्तों पर धारण किये जाते हैं तथा तीन शाखाओं में विभक्त मंजरियों (*trichotomous panicles*) में निकलते हैं। फल प्रायः ग्रीष्मान्त अथवा वर्षा के प्रारम्भ में लगते हैं, जो १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इञ्च से १ इञ्च लम्बे तथा लम्बगोल और कच्ची अवस्था में हरे, अर्धपक्वावस्था में गुलाबीरंग के और पूर्णतः पकने पर कालेरंग के हो जाते हैं, जिनमें मीठा रसदार गूदा होता है। इनको खाया जाता है।

उपयोगी अंग। (१) पत्र, (२) वृक्षकी छाल, (३) काष्ठ, (४) फल का गूदा, (५) गुठली का मग्ज (गिरी)। जामुन के पके फलों के रस से एक सिरका (*vinegar*) भी बनाया जाता है, तथा रस से आसवन (*distillation*) द्वारा एक आसव (*spirituous liquor*) भी बनाया जाता है जिसे 'जाम्बव' कहते हैं।

मात्रा–(१) स्वरस–१ तो० से २ तो०।
(२) गुठली का मग्ज–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।
(३) जामुन का रुब्ब–२ तो० से ३ तो०।
(४) त्वक्क्वाथ–१ तो० से २ तो०।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–जंगली वृक्षों का फल या बेरी (*berry*) प्रायः जैतून के छोटे फल के बराबर तथा नीललोहित रंग (*purple*) का और स्वाद में कसैला होता है। फल में अधिक भाग गुठली ही होती है, जो हरेरंग की तथा स्वाद में कसैली होती है। गुठली पर कागज की तरह पतली झिल्ली चढ़ी होती है। प्रत्येक फल में एक गुठली पायी जाती है। जामुन की छाल बाहर से खाकस्तरी (*grey*) रंग की होती है, तथा इस पर अनेक दरारें (*fissures*) पड़ी होती हैं। अन्दर का भाग लालरेशेदार होता है। छाल के बाहरीतल पर जगह-जगह छाल का अंश पृथक् हो जाने से खात से (*depressions*) पाये जाते हैं। छाल में शाहबलूत की छाल-जैसी गंध होती है, तथा स्वाद में यह अत्यन्त कसैली होती है।

संग्रह एवं संरक्षण–जामुन की गुठली एवं त्वक् (छाल) को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–बीज में जम्बूलिन (*Jambulin*) नामक ग्लूको-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साइड (*Glucoside*), अल्पमात्रा में एक पांडुपीत उड़नशील तेल, गैलिक एसिड (*Gallic acid*), क्लोरोफिल, वसा, राल एवं ऐल्ब्युमिन आदि तत्त्व पाये जाते हैं। जामुन की गुठली की मधुमेहनिवारक (*Antidiabetic*) क्रिया उक्त ग्लूकोसाइड के ही कारण होती है। छाल में लगभग १२% तक टैनिन (*Tannin*) पाया जाता है, तथा बिजयसार के गोंद की भाँति एक गोंद (*Kino-like gum*) भी निकलता है।

वीर्यकालावधि–बीज एवं त्वक् ६ मास से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–कषाय, मधुर, अम्ल। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रधानकर्म–कफ–पित्त शामक किन्तु वायुवर्धक। मौखिकसेवन से फल (साधारणमात्रा में) दीपन-पाचन, यकृदुत्तेजक, स्तम्भन और (अधिक मात्रा में) विष्टम्भजनक। कोमलपत्र छर्दिनिग्रहण, रक्तपित्तशामक। गुठली का चूर्ण मधुमेह एवं उदकमेहनाशक, रक्तप्रदर एवं रक्तातिसारशामक। छाल–स्तम्भन होती है। यूनानीमतानुसार जामुन दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है। अहितकर-आनाहकारक और दीर्घपाकी है। निवारण–कालीमिर्च और नमक।

मुख्ययोग–जम्ब्वाद्य तेल, पंचपल्लव योग, न्यग्रोधादि चूर्ण, जम्बुफलासव।

विशेष–प्रमेह के रोगियों के लिए जामुन एक उत्तम खाद्य है। इसके पत्रस्वरस का उपयोग अनुपान रूप से किया जा सकता है।

चरकोक्त (सू० अ० ४) छर्दिनिग्रहण (जामुन के कोमलपत्र), पुरीषविरजनीय एवं मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) न्यग्रोधादि गण और पंचपल्लव में जामुन भी है।

जायफल (जातीफल)

नाम। (१) जायफल (सं०) जातीफल। हिं०, बं०, म०, गु०–जायफल। पं०–जयफल। अ०–जौज़बब्वा, जौज़बुवा, जौज़ुत्तीब। फा०–जौज़बूया। अं०–नटमेग (*Nutmeg*)। ले०–मिरीस्टिका *Myristica* (*Myrsit.*). नक्स मॉस्केटा *Nux Moschata*, सेमेन मिरीस्टिका *Semen Myristicae*। (२) जावित्री (सं०) जातिपत्री। हिं०–जावित्री। बं०–जैत्री। म०–जायपत्री। गु०–जावंत्री। अ०–बस्बास–(सः)। फा०–बज़्बाज़। अं०–मेस (*Mace*)। (३) जायफल का तेल। सं०–जातीतैल। हिं०–जायफल का तेल। अं०–नटमेग ऑयल (*Nutmeg Oil*), मायरिस्टिका ऑयल (*Myristica oil*)। ले०–ओलेउम् मिरीस्टिका *Oleum Myristica* (*Ol. Myrist.*)। (वृक्ष का नाम) मिरीस्टिका फ्राग्रांस (**Myristica fragrans** *Houtt*)।

वानस्पतिक कुल–जातीफल-कुल (मिरीस्टिकासे *Myristicaceae*)।

प्राप्तिस्थान–उक्त असली जायफल मलक्का द्वीपपुञ्ज का आदिवासी पौधा है। पिनाङ्ग, सुमात्रा, मलाया, सिंगापुर, लंका, पूर्वी भारतीय-द्वीपपुञ्ज तथा जंजीबार में प्रचुरता से इसकी खेती की जाती है। बीजों की सुखाई हुई गिरी (*Kernel*) 'जायफल' के नाम से तथा बीजों पर की बाह्यवृद्धि या एरिल (*arillus*) 'जावित्री' के नाम से बाजारों में बिकते हैं। भारतवर्ष में इनका आयात उपर्युक्त देशों से होता है। भारतवर्ष में नीलगिरि की पहाड़ियों पर भी जायफल के वृक्षों को लगाने का प्रयास किया गया है, और कुछ सफलता भी मिली है।

संक्षिप्त परिचय–जायफल के ऊँचे वृक्ष होते हैं, जिनका काण्ड चिकना और शाखाएँ नीचे को झुकी होती हैं। पत्तियाँ ५ सें०मी० से १० सें०मी० या २ इंच से ४ इञ्च लम्बी, सवृन्त, रूपरेखा में जामुन की पत्तियों की भाँति तथा सुगंधित और ऊर्ध्वपृष्ठ पर गहरेरंग की और अधःपृष्ठ पर पीताभधूसर वर्ण की होती हैं। पुष्प छोटे (½ सें०मी० या ¼ इञ्च लम्बे) तथा पीतवर्ण के होते हैं, जो रूपरेखा में लम्बगोल या अमरूद की रूपरेखा के होते हैं, और पत्रकोणों के ऊपर से नम्य मंजरियों (*lax slender supra-axillary racemes*) में निकलते हैं। फल ३.१२५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१¼ इञ्च से २ इञ्च) लम्बे, छोटे अमरूद या नासपाती की भाँति, पकने पर रक्ताभ या पीताभवर्ण के होते हैं और नीचे को लटके रहते हैं। इनका स्फुटन २ खण्डों में होता (*splitting into x-valves*) है। फल फटने पर बीज बाहर निकल आता है; जिसपर लालरंग का जालीदार बीज-बाह्यवृद्धि अर्थात् बीजोपांग या एरिल (*arillus*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चढ़ी होती है। जावित्री को पृथक् करने के बाद गुठलीनुमा बीज प्राप्त होता है, जिसके कड़े आवरण (*hard shell or bony testa*) को तोड़ कर अन्दर की गुठली प्राप्त की जाती है। इसे सुखाकर संग्रहीत कर लिया जाता है। यही 'जायफल' होता है।

उपयोगी अंग। बीज-मज्जा या गिरी (जायफल), बीजबाह्य-वृद्धि या *arillus* (जावित्री) तथा जायफलका तेल।

मात्रा। जायफल एवं जावित्री ½ ग्राम से १½ ग्राम या ४ रत्ती से १½ माशा। तेल—१ बूंद से ३ बूंद।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—(१) जायफल—जायफल रूपरेखा में प्रायः लम्बगोल (आधार की ओर शीर्ष की अपेक्षा अधिक चौड़ा), २ सें० मी० से ३ से० मी० लम्बा, १½ से० मी० से २ से० मी० चौड़ा तथा हल्के भूरेरंग का होता है, जिसके बाह्यतल पर सूक्ष्म परिखाओं का जाल-सा (*network of shallow reticulate groove*) फैला होता है। जगह-जगह गाढ़े भूरेरंग के बिन्दु तथा रेखाएँ भी दिखाई देती हैं। आधार या चौड़े सिरेपर आदिमूल का अग्र (*tip of the radicle*) स्थित होता है, जो एक छोटे गोलाकार (व्यास में लगभग ½ सें० मी०) उत्सेध के रूप में होता है। यहाँ से एक परिखा दूसरे सिरे पर स्थित कैलाजा (*chalaza*) तक जाती है, जो एक छोटे खात (*slight circular depression*) के रूप में होता है। परिभ्रूण (*perisperm*) या गिरी का आवरण अपेक्षाकृत गाढ़े भूरेरंग का होता है, जो अन्दर को फीके भूरे भ्रूणपोष (*endosperm*) में सूक्ष्म परदानुमा जाल के रूप में फैला होता है, जिससे गिरी को तोड़ने पर अन्दर की रचना चित्रित-सी (*characteristic ruminate appearance*) मालूम पड़ती है। भ्रूण (*embryo*) भ्रूण-पोष में होता है, जो मूलरन्ध्र या अण्डरन्ध्र (*micropyle*) के पास स्थित होता है। कटे हुए तल पर नाखून से दबाने पर तेल निकालता है। जायफल में एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि पायी जाती है, तथा स्वाद में यह तिक्त एवं सुगन्धित होता है। जायफल के जलाने पर भस्म अधिकतम ३%, तथा अम्ल में अघुलनशील भस्म (*Acid-Insoluble Ash*) अधिकतम ०.५% प्राप्त होती है। उत्तम जायफल में उड़नशील तेल कम-से-कम ५% (*V/W*) तथा जायफल-चूर्ण में कम-से-कम ४% उड़नशील तेल (*V/W*) अर्थात् जायफल का तेल प्राप्त होता है। जायफल जितना ही बड़ा हो उतना ही उत्तम होता है।

(२) जावित्री—असली जावित्री मिरीस्टिकाफ्रांस नामक उपर्युक्त वृक्ष के बीजों की बाह्यवृद्धि या बाह्य-प्रसरी अर्थात् बीजोपांग (*arillus or arillode*) होती है। ताजी अवस्था में यह चमकीले गाढ़े लालरंग की होती है। पृथक् करने के बाद यह ३-४ दिन तक धूप में सुखायी जाती है, जिससे सुनहले पीलेरंग की तथा भंगुर हो जाती है। इसमें भी (४% से १७% तक) उड़नशील तैल पाया जाता है, जो जायफल के तेल की ही भाँति होता है। सूक्ष्मदर्शक से परीक्षण करने पर जावित्री में बहिर्भिति (*thick-walled epidermis*) के अतिरिक्त अधिकांश भाग पेरेन्काइमा (*parenchyma*) का होता है, जिसमें वाहिनीपूल (*fibro-vascular bundles*) तथा तैल-कोशाएँ (*large oil cells*) पायी जाती हैं। पेरेन्काइमा कोशाओं में मुख्यतः एमाइलो-डेक्स्ट्रिन (*amylodextrin*) पाया जाता है। आयोडीन सॉल्यूशन के सम्पर्क से यह लालवर्ण के हो जाते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—कोंकड़, कनाडा, एवं मालाबार के सदाहरित जंगलों में (१,००० फुट तक) देशी या जंगली जायफल (*Bombay Nutmegs*) के वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। इसको मिरीस्टिका मालाबारिका (*Myristica malabarica Lam.*) कहते हैं। बम्बई बाजार में इसके फलों की गिरी 'रामफल' या 'देशीजायफल' अथवा 'बम्बइयाजायफल' के नाम से तथा इससे प्राप्त जावित्री-रामपत्री या देशीजावित्री के नाम से बिकती है। देशी या जंगली जायफल असली की अपेक्षा अधिक लम्बा (३.१२५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १¼ इञ्च से २ इञ्च) तथा कमचौड़ा होता है, और इसमें असली जायफल की सुगन्धि नहीं पायी जाती। कभी-कभी इसमें सुधासंस्कारित जायफल (*Limed Nut-megs*) भी मिले होते हैं। कीड़े आदि न लगें, इस दृष्टिकोण से असली जायफल को ही मिल्क ऑव लाइम (*Milk of Lime*) में भिगो कर सूखा लेते हैं। यही सुधासंस्कारित जायफल होता है। ऐसा जायफल प्रायः सफेदी मायल होता है। कभी-कभी सड़े-गले जायफल को लेकर उनका चूर्ण बना लेते हैं और गीली

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिट्टी में इसे मिला कर साँचों में डाल कर नकली जायफल (*Fictitious Nutmegs*) भी बनाये जाते हैं। नकली जायफल देखने में स्वरूपतः असली से बहुत मिलता-जुलता है, जिससे आपाततः इसको पहचानना मुश्किल हो जाता है। किन्तु इसमें उड़नशील तैल (जायफल का तेल) असली की अपेक्षा बहुत कम पाया जाता है, तथा जलाने पर भस्म की मात्रा असली की अपेक्षा अधिक प्राप्त होती है। न्यू गायना (*New Guinea*) में भी एक जंगली जायफल पाया जाता है, जिसे मिरीस्टिका आर्जेन्टेआ (**Myristica argentea** *Warb.*) कहते हैं। इसकी बीजगिरी भी जायफल-जैसी होती है और मकासरजायफल (*Macassar, Papua. Longor Wild Nutmegs*) के नाम से व्यवसाय में चलती है। यह भी असली जायफल की अपेक्षा अधिक लम्बा, कम चौड़ा, अल्पसुगन्धियुक्त तथा स्वाद में अत्यन्त कड़वा होता है।

जावित्रीचूर्ण में रामपत्री (देशी या जंगली जावित्री) अथवा हल्दी से रंगे अन्य सस्ते द्रव्यों के चूर्ण मिला दिये जाते हैं।

जायफल का तेल—यह जायफल से आसवन (*Steam distillation*) द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो रंगहीन अथवा हल्के पीलेरंग का द्रव होता है। इसमें जायफल-जैसी ही विशिष्ट गन्ध एवं स्वाद पाया जाता है। २०° तापक्रम पर आपेक्षिक गुरुत्व (*Specific Gravity*) ०.८६२-०.९२२। आप्टिकल रोटेशन (*Optical Rotation*) + *10° to* + *45°*। अपवर्तनांक (*Refractive Index at* २०°): *2.472—1.488*।

विलेयता—२०° तापक्रम पर तीन भाग आयतन के बराबर ऐल्कोहल् (९०%) में घुलता है। इस विलयन को चौड़ी तश्तरी में रख कर वाटर-बाथ पर सुखाने से अधिकतम अवशेष (*Residue*) ३% तक प्राप्त होता है।

संगठन—जायफल में (५% से १५%) एक सुगंधित उड़नशील तैल पाया जाता है, जो इसका मुख्य सक्रियघटक होता है। इसमें मुख्यतः यूजिनोल (*Eugenol*) होता है। उत्पत् तैल के अतिरिक्त इसमें २५% से ४०%) एक स्थिरतैल भी पाया जाता है, जो जमने पर पीताभ वर्ण की घनचर्बी की भाँति हो जाता है। इसमें मुख्यतः मायरिस्टिक एसिड (*Myristic acid* ६१%) तथा अल्पतः पामिटिक, ओलिईक, लिनोलीक एवं लॉरिक एसिड आदि वसाम्ल (*Fatty acids*) पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। जायफल—२ वर्ष। तेल—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक। वेदनास्थापन, उद्वेष्टहर, वातशामक, (अतिमात्रा में मादक तथा मस्तिष्क पर इसकी क्रिया कर्पूरसम), मुखदुर्गन्धनाशक, रोचन, दीपन पाचन, यकृदुत्तेजक, वातानुलोमन, ग्राही, हृदयोत्तेजक, कटुपौष्टिक, वृष्य, कफनिःसारक, कफघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, आर्त्तवजनन, बाजीकर, अतिसार-प्रवाहिका, ग्रहणी, ज्वरातिसारनाशक। यूनानीमतानुसार जायफल एवं जावित्री दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष हैं।

मुख्य योग—जातीफलादि-चूर्ण जातीफलादि वटी, जातीपत्रादि क्वाथ। हृदयदौर्बल्य, नपुंसकता एवं शीघ्रपतन आदि में प्रयुक्त उष्ण मुफर्रेह एवं माजूनों में जायफल पड़ता है। जावित्री भी बाजीकर माजूनों एवं तिलाओं में पड़ती है। जायफलका तेल बाह्यप्रयोग के लिए बाजीकर तिलाओं एवं कैरूती में पड़ता है। मौखिक सेवन द्वारा यह उत्तम रुचिकारक, वातानुलोमन एवं आंत्रोद्वेष्टहर होता है। अतएव पेय रेचनयोगों में मरोड़ के निवारण के लिए तथा योगों को रुचिकारक बनाने के लिए भी मिलाया जाता।

जीरा (सफेद)

नाम। सं०—जीरक, अजाजी, जरण, (शुक्लाजाजी, शुक्लजीरक)। हिं०—जीरा, सफेदजीरा। बं०—जीरे, सफेत् जीरे। पं०—जीरा सुफेद, चिट्टाजीरा। सिंध—जीरो अच्छो। म०—जिरें। गु०—जीरुं। मा०—जीरो। का०—जीरिगे। ते०—जीलकरी। ता०—चीरकम्। मल०—जीरकम्। अ०—कम्मून अब्यज, कम्मून नब्ती। फा०—जीरए सफेद। अं०—क्युमिन सीड (*Cumin Seed*)। ले०—कूमीनुम सीमीनुम (**Cuminum cyminum** *Linn.*)। लेटिननाम वनस्पति का है।

वानस्पतिक कुल। शत पुष्पादि-कुल (उम्बेल्लीफ़ेरे *Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान—बंगाल, आसाम को छोड़ कर जीरे की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रायः सभी प्रान्तों में खेती की जाती है, विशेषतः उत्तर प्रदेश गुजरात एवं पंजाब में यह प्रचुर मात्रा में बोया जाता है। विदेशों में भूमध्यसागरीय प्रान्तों में तथा चीन में भी जीरा काफी परिमाण में उत्पन्न किया जाता है। भारतवर्ष में जीरे का आयात एशिया-माइनर तथा फारस से भी होता है।

संक्षिप्त परिचय—जीरे के एक वर्षायु, कोमल तथा छोटे-छोटे (३० सें० मी० या १ फुट तक ऊँचे) पौधे होते हैं, जिनमें अनेक शाखा-प्रशाखाएँ निकली होती हैं। शाखाएँ प्रायः कोणाकार (*angular*) या रेखांकित (*striated*) होती हैं। पत्तियाँ नीलीआभा लिये हरे रंगकी, द्विधा-त्रिधा विभक्त होती हैं, जिससे अन्तिम खण्ड सूत्राकार (*filiform*) होते हैं। आधार की ओर यह काण्डसंसक्त होती हैं। पुष्प सफेद या हल्के गुलाबीरंग के होते हैं, जो संयुक्त छत्रकों (*compound umbels*) में निकलते हैं। शीतकाल के अन्त में फूल एवं फल लगते हैं। फल हल्के भूरे या खाकस्तरी रंग के ½ सें० मी० या ⅕ इंच लम्बे, रम्भाकार किन्तु दोनों सिरों पर क्रमशः पतले तथा पार्श्व में किंचित् चपटे होते हैं। फलों पर उन्नत रेखाएँ होती हैं, जिन पर कभी-कभी सूक्ष्म लोम होते हैं। वास्तव में फल होवे पर भी बोलचाल में इन्हें बीज कह देते हैं। इनका व्यवहार मसाले में तथा औषध्यर्थ भी होता है।

उपयोगी अंग—पक्वफल (बीज)।

मात्रा। ३ ग्राम से ६ ग्राम ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—पक्व जीरे का फल अर्थात् युग्मवेश्म या क्रीमोकार्प (*cremocarp*) भूरेरंग का, लम्बगोल स्वरूप का प्रायः ½ सें० मी० या ⅕ इंच तक लम्बा तथा मध्य में ⅛ सें० मी० या ⅓ इञ्च तक चौड़ा होता है। यह भी दो एक-स्फोटी बीज-खण्डों (*mericarps*) के मिलने से बनता है, जो पक्वफल में प्रायः परस्पर जुटे से रहते हैं। प्रत्येक फलखण्ड में ५-५ मुख्य उन्नत रेखाएँ (*primary ridges*) तथा ४-४ गौण रेखाएँ (*secondary ridges*) तथा ६-६ तेल-नलिकाएँ या तैलिकाएँ (*vittae*) होती हैं। कुक्षिवृन्त (*style*) का कुछ अवशेष भी फलों में लगे होते हैं। जीरे में एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि पायीजाती है। मुँह में रख कर चाबने पर एक विशिष्ट प्रकार का स्वाद मालूम होता है, जो कुछ-कुछ सोआ से मिलता-जुलता है। उत्तम जीरे में उत्पत्तैल की मात्रा कम-से-कम २½% होनी चाहिए। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% होते हैं तथा जलाने पर भस्म अधिकतम ८% तक प्राप्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—जब फल पक जायें और वनस्पति सूखने लगे, तो फलों का संग्रह कर अच्छी तरह सुखाकर ढक्कनबन्द पात्रों में अनार्द्र एवं शीतल स्थान में रखें।

संगठन—(१) उड़नशील तेल २½% से ४% तक। जीरे की सुगंधि एवं स्वाद इसी पर निर्भर करती है। इसमें ५६% तक क्युमैल्डिहाइड (*Cumaldehyde or Cuminic Aldehyde*) होता है। इसके अतिरिक्त (२) १०% तक एक जमने वाला तेल (*Fatty oil*) तथा (३) ६.७ प्रतिशत पेन्टोसन (*Pentosan*) भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। **गुण**—लघु, रूक्ष। **रस**—कटु। **विपाक**—कटु। **वीर्य**-उष्ण। **प्रधान कर्म**—छेदन, दीपन-पाचन, वातानुलोमन, शूलप्रशमन, मूत्रल, रक्तशोधक, गर्भाशयोत्तेजक एवं बल्य आदि। **अहितकर**—फुफ्फुसों के लिए अहितकर एवं कर्षण है। **निवारण**—कतीरा और शीत एवं तरद्रव्य।

मुख्य योग—जीरकारिष्ट, जीरकादि मोदक, जीरकाद्य चूर्ण, जीरकाद्य तैल, हिंग्वष्टक चूर्ण। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक योगों में भी जीरा पड़ता है। यूनानीयोग—जुवारिशकमूनी, जुवारिश कमूनी कबीर, जुवारिश कमूनी मुसहिल, माजून कमूनी।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० २) शिरोविरेचन द्रव्यों में तथा (सू० अ० ४ में कहे) शूलप्रशमन महाकषाय में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) पिप्पल्यादिगण में जीरक भी है।

जीरास्याह, स्याहजीरा (कृष्णजीरक)

नाम। सं—कृष्णजीरक, जरणा, कारवी, काश्मीरजीरक। हिं०—स्याहजीरा, विलायतीजीरा। बं०—शाजीरा, विलायतीजीरा। म०—शहाजिरें। गु०—शाहजीरूं। अ०—कुरूया, करोया, कमूनेरूमी, कमूनेअरमनी। फा०—करोया, कुरूया, जीरए रूमी, जीरए अरमनी, शाहजीरा। सुरयानी-करावी। ले०—कारुई फ्रुक्टुस *Carui Fructus*। अं०—कैरावे फ्रूट (*Caraway Fruit*), कैरावे सीड

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*Caraway Seed*)। (वनस्पतिकानाम) कारुम कार्वी (**Carum carvi** *Linn.*)।

वक्तव्य—काश्मीर में इसकी एक अन्यतम प्रजाति कारुम बल्बोकास्टानुम् (**C. bulbocastanum** *koch.*) के स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। इसके फलों का संग्रह तथा व्यवहार 'स्याहजीरा' की तरह होता है। कश्मीरी-जीरा (स्याहजीरा) नाम से यह भारतीय बाजारों में भी आता है। (लेखक)

वानस्पतिक कुल। शतपुष्पादि-कुल (उम्बेल्लीफेरे *Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान—'कारुम कार्वी' यूरेशिया एवं पश्चिम एशिया का आदिवासी पौधा है। उत्तर एवं मध्ययूरोपीय देशों में यह जंगली भी होता है, तथा इसकी खेती भी की जाती है। विशेषतः हालैंड, लेवांट एवं इंगलैंड में केरावे काफी मात्रा में बोया जाता है। ईरान के किरमान प्रान्त में भी कुल्या कर्षित (बागी) एवं जंगली दोनों रूपों में काफी परिमाण में होता है। भारतवर्ष में उत्तरी हिमालय प्रदेश में यह स्वयंजात पाया जाता है। बालतिस्तान (*Baltistan*), कश्मीर, चम्बा, कुमायूँ एवं गढ़वाल में १२०८ मीटर से ३६५७ मीटर या ४,००० फुट से १२,००० फुट की ऊँचाई पर इसकी खेती भी की जाती है। सीमाप्रान्त एवं अफगानिस्तान में भी यह पाया जाता है। भारतीय बाजारों में कृष्ण-जीरक इंगलैंड, लेवांट ईरान एवं कश्मीर तथा गढ़वाल आदि से आता है।

संक्षिप्त परिचय—कृष्णजीरक के कोमल, ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट ऊँचे खड़े द्विवर्षायु पौधे (*erect biennial herb*) होते हैं। पत्तियाँ सोये की तरह सूत्रवत् खण्डित होती हैं। पुष्प सफेद रंग के तथा ८ से १० पुष्पों के छत्रकों (*umbels of about 8 or 10 rays*) में निकलते हैं। फल (कृष्णजीरक *Caraway seeds*) कृष्णाभ, श्वेत जीरक से छोटे, पतले, किंचित् वक्र (*curved*), रेखाकार-आयताकार और सुगंधित होते हैं। रेखाएँ अत्यंत स्पष्ट (*ribs prominent*) होती हैं।

उपयोगी अंग—बीज (वास्तव में फल) तथा बीजों से प्राप्त तैल (कालाजीरे का तेल (*Caraway Oil*)।

मात्रा। बीज १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। तेल—१ बूंद से ३ बूंद।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—कृष्णजीरक का युग्मवेश्म या क्रीमोकार्प (*cremocarp*) २—एकस्फोटी बीज-खण्डों (*mericarps*) के मिलने से बनता है। उक्त मेरिकार्प ३ मि० मी० से ७ मि० मी० ($\frac{1}{8}$ इञ्च से $\frac{7}{32}$ इञ्च) लम्बे तथा २ मि० मी० ($\frac{3}{32}$ इञ्च) चौड़े, धनुष के समान किंचित् वक्र तथा दोनों सिरों की ओर क्रमशः कम चौड़े (*tapering to each end*) बाहर से चिकने तथा भूरेरंग के होते हैं, जिस पर लम्बाई के रुख फीकेरंग की ५ उन्नत रेखाएँ (*primary ridges*) होती हैं। इन रेखाओं के अन्तरमध्य का भाग खातोदर होता है, जिसमें ६ तैल नलिकाएँ या तैलिकाएँ (*vittae*) होती हैं। इनमें ४ पृष्ठ तल में तथा २ सैन्धिक तल (*commissural surface*) में होती हैं। स्याह जीरे में एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि पायी जाती है तथा स्वाद मे भी सुगन्धित होता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% होते हैं। भस्म अधिकतम ९% तथा अम्ल में अघुलनशीलभस्म अधिकतम १.५% प्राप्त होती है। कृष्णजीरक का चूर्ण हल्के भूरेरंग का होता है। उत्तम स्याहजीरे के बीज में कम-से-कम १$\frac{1}{2}$% (*V/W*) तथा चूर्ण में २.५% (*V/W*) उड़नशील तैल (*Caraway Oil*) पाया जाता है। उत्तम बीजों से जल में अघुलनशील तत्व २०% से २६% तक प्राप्त होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—महँगा होने के कारण कृष्ण-जीरक में मिलावट की सम्भावना अधिक रहती है। एतदर्थ स्वरूपतः इससे मिलते-जुलते अन्य बीज, यथा गाजर तथा सोआ आदि के बीज रंग कर मिला दिये जाते हैं, अथवा सस्ते दाम वाले कालाजीरे के नाम से स्वतन्त्र रूप से बेचे जाते हैं। कभी-कभी तेल खींचे हुए बीज (जिनसे तेल निकाल लिया गया है) भी मिलाये जाते हैं। ऐसे बीज रंग में कुछ गाढ़े होते तथा बाहर से सिकुड़े हुए (*shrivelled appearance*) होते हैं। इनमें सुगन्धि भी कम पायी जाती है। इनसे जल में घुलनशील सत्व (*Aqueous Extractive*) भी अपेक्षाकृत कम (१५% से कम) प्राप्त होता है। कभी ऐसे बीज भी मिलाये जाते हैं, जिनमें उड़नशील तेल पहले से ही कम होता है। कारुम बल्बोकास्टानुम् विदेशी स्याहजीरे का उत्तम प्रतिनिधि है।

स्याहजीरे का तेल—यह सुखाये हुए पक्व बीजों को कुचल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर जल के साथ आसवन (*distillation*) करने से प्राप्त होता है, जो रंगहीन या हल्के पीलेरंग का द्रव होता है, जिसमें कृष्णजीरक का विशिष्ट स्वाद एवं गंध पाया जाता है। यह ९०% बल के ऐल्कोहल् में समान आयतन में तथा ८०% बल के ऐल्कोहल् में ७ गुने आयतन में घुलनशील होता है। शुद्ध तेल में ५३% से ६३% (*W/V*) तक कार्वोन (*Carvon* : $C_{10} H_{14} O$) पाया जाता है। अतएव इसकी शुद्धता के लिए कार्वोन की प्रतिशतक मात्रा का प्रमापन (*Assay*) किया जाता है। २०° तापक्रम पर विशिष्ट गुरुत्व ०.९०५। हवा में खुला रहने से तेल धीरे-धीरे गाढ़ा हो जाता है, जिससे इसका विशिष्ट गुरुत्व बढ़ जाता है। *Optical ratatian* : + *70° to* + *80°*। अपवर्तनांक (*Refractive Index at* २०°) : १.४८५–१.४९२।

संग्रह एवं संरक्षण–जब फल पकजाते हैं, इसकी छत्रक-युक्त शाखाएँ काटली जाती हैं, और इन्हें पीटकर फल (बीज) पृथक् प्राप्त करलिये जाते हैं। कालाजीरा को अच्छी तरह मुखबन्द डिब्बों या शीशियों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। जिन पात्रों में चूर्ण रखा जाय उनको विशेषरूप से मुखबन्द होना चाहिए, अन्यथा उड़नशीलतेल उड़जाने के कारण औषधि धीरे-धीरे निर्वीर्य हो जाती है। तेल को अच्छी तरह मुख-बन्द शीशियों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें तथा प्रकाश से बचाना चाहिए।

वीर्यकालावधि–३ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–वातकफशामक, रोचन, दीपन-पाचन, ग्राही, उत्तम वातानुलोमन, हृद्य, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक, स्तन्यजनन, ज्वरघ्न आदि। यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर–फुफ्फुस के लिए। निवारण–मधु। प्रतिनिधि–अनीसूं. जीरा।

मुख्य योग–हिंग्वष्टक चूर्ण।

वक्तव्य–'कृष्णजीरक' का उल्लेख आयुर्वेदीयसंहिता के पूर्वकालिक ग्रन्थों में तो नहीं मिलता, किन्तु चरक आदि संहिताओं से लेकर परवर्तीकाल में अद्यावधि ग्रंथ एवं परम्परा में सर्वत्र प्रसिद्ध है। उल्लेखनीय है कि चरक आदि में 'कारवी' नाम से ही उल्लिखित है। सम्भवतः यह उस काल का व्यावसायिक नाम रहा होगा। उल्लेखों की बारंबारिता चरकसंहिता में अपेक्षाकृत अधिक मिलती है। उक्त कारवी संज्ञा की अनुरूपता अ०, फा० एवं सुरयानी 'करोया', 'कुरूया' तथा 'करावी' से दिखायी पड़ती है। ग्रीक, लेटिन एवं अंग्रेजी संज्ञाएँ भी इसी से अनुबद्ध प्रतीत होती हैं। सम्प्रति भारतीय बाजारों में सर्वत्र पंसारियों के यहाँ 'स्याहजीरा' नाम से मिलता है (स्याह (फा०) = काला (< कृष्ण + जीरा)।

किन्तु ज्ञातव्य है कि कलकत्ता बाजार में 'काला-जीरा' से 'मँगरैल' अभिप्रेत होता है। (*Market Drugs of India—Prof. R. S. Singh*)।

लगता है, मध्यकाल में 'कृष्णजीरक' का भारत में आयात खुरासान आदि ईरानी क्षेत्रों या मण्डियों से होता था। इस सम्बन्ध में शार्ङ्गधर के टीकाकार आढ़मल्ल (= आढ़०) का टिप्पण उल्लेखनीय है :— 'कृष्णजीरकमिति पाश्चात्यं 'खुरासानीति' लोके' आढ़० (शा०, म० खं०, अ० ६।६६—अरोचकाधिकार/लवंगादिचूर्ण)।

जीवन्ती

नाम। सं०–जीवन्ती. शाकश्रेष्ठा। हिं०–जीवन्ती, डोडी-शाक। म०–डानदोडकी, शिरदोडी। गु०–दोडी, डोडी, खरणेर, मीठी खरखोडी, राडारूडी। ले०–लेप्टाडेनिआ रेटिकुलाटा (**Leptadenia reticulata** *W. & A.*)।

वानस्पतिक कुल। अर्क-कुल (आस्क्लेपिआडासे : *Asclepiadaceae*)।

प्राप्तिस्थान–जीवन्ती की लताएँ पंजाब, दकन के पश्चिमी प्रान्त में विशेष, एवं सहारनपुर, देहरादून तथा शिवालिक पर्वतश्रेणी की तराई में तथा अन्यत्र भी कहीं-कहीं मिलती हैं।

संक्षिप्त परिचय–जीवन्ती की चक्रारोही लताएँ होती हैं, जिनके पुराने काण्ड कार्कयुक्त (*corky*) एवं कोमल भाग श्वेताभ मृदुरोमश (*hoary*) होते हैं। पत्तियाँ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पतली किन्तु चर्मिल (*thinly cortaceous*), ३.७५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १½ इंच से ३ इंच लम्बी, ¹⁵⁄₈ सें० मी० से ¹⁵⁄₄ सें० मी० (½ इञ्च से १½ इञ्च चौड़ी), लट्वाकार-आयताकार या अण्डाकार-नुकीली, सरलधार और अधःपृष्ठ पर नीलाभ-श्वेत रज से ढकी हुई होती हैं : आधार गोल अथवा कुछ हृदयाकार या कभी नुकीला होता है। पर्णवृन्त ⁵⁄₈ सें० मी० से ¹⁰⁄₃ सें० मी० या ¹⁄₄ इञ्च से १⅓ इञ्च तक लम्बा होता है। पुष्प पिलाई लिये हरेरंग के अथवा मटमैले सफेदरंग के होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत छत्रकाकार गुच्छकों (*axillary umbelliform cymes*) में निकलते हैं। पुष्पवाहक दण्ड (*peduncles*) ⁵⁄₈ सें० मी० से ¹⁄₂ सें० मी० या ¹⁄₅ इञ्च से ¹⁄₄ इञ्च लम्बे तथा पुष्पवृन्त छोटे-बड़े होते हैं, जो कभी-कभी पुष्पवाहक दण्ड के बराबर लम्बे भी होते हैं। फलियाँ (*follicles*) प्रायः एकाकी (क्योंकि साथ की दूसरी अप्रगल्भ या वृद्धि को प्राप्त नहीं करती) ५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० या २ इञ्च से ३½ इञ्च तक लम्बी १.१२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० या ½ इञ्च से ¾ इञ्च तक मोटी, सीधी, चिकनी, प्रायः कठोर (*sub-woody*), होती हैं, जिनका अग्रभाग मोटा, किन्तु चोंचदार होता है। कच्ची फलियों का मधुर स्वादिष्ट शाक होता है। फलियों को तोड़ने पर सफेद दूध निकलता है। बीज लगभग ⁵⁄₈ सें० मी० या ½ इञ्च लम्बे, चपटे तथा पक्षयुक्त (*winged*) होते हैं, जिनके वृन्तक या हाइलम (*hilum*) पर अर्क की भाँति रूई (*coma*) लगी होती है। ग्रीष्मान्त में पुष्प आते तथा जाड़ों में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—मूल।

मात्रा। चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। क्वाथार्थ—१२ ग्राम या १ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—जीवन्ती के नाम से वास्तव में उपर्युक्त औषधि का ही ग्रहण होना चाहिए। किन्तु बंगाल, बिहार एवं उत्तर-प्रदेशीय बाजारों में 'जीवन्ती' नामसे एक भिन्न औषधि बिकती है, जिसे डेन्ड्रोबिडम मैक्रेई **Dendrobium macraei** *Lindl.* (*Family : Orchidaceae*) कहते हैं। यह एक आर्किड जातीय क्षुद्र वनस्पति है, जो सिक्किम, खसिया एवं पूर्वी बंगाल तथा दक्षिणभारत में कोंकड़ और नीलगिरी आदि में प्रचुरता से पायी जाती है। इसका सुखाया हुआ पंचाङ्ग बाजारों में जीवन्ती के नाम से बिकता है, जो पीतवर्ण का तथा देखने में पुआल-जैसा मालूम होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—जीवन्तीमूल को निकालकर जल से धोकर मिट्टी आदि साफ कर लें, और छाया में सुखाकर मुखबन्द पात्रों में रखकर अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव—त्रिदोषहर, रसायन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, बल्य, मूत्रल, हृद्य, रक्तपित्तशामक, कफनिःसारक, स्नेहन, अनुलोमन, ग्राही आदि।

मुख्ययोग—जीवन्त्याद्य घृत।

विशेष—जीवन्ती, 'जीवनीयगण' की ओषधि है। चरकोक्त (सू० अ० ४) स्नेहोपग, श्वासहर एवं वयःस्थापन महाकषायों में भी 'जीवन्ती' का उल्लेख है।

वक्तव्य—जीवन्ती का उल्लेख चरकसंहिता में भूरिशः तथा अन्य संहिताओं की अपेक्षा अत्यधिक पाया जाता है, जिससे लक्षित होता है कि प्राचीन उत्तर-पश्चिमी भारत में यह सुविज्ञात थी। अथर्ववेद में भी यद्यपि जीवन्ती नामक 'औषधि' का (अथर्ववेद ८.७, ६) उल्लेख मिलता है, लेकिन वहाँ सम्भवतः कोई भिन्न ओषधि अभिप्रेत है (*On the Identity and critical Appraisal of Rare Ancient Indian Plants—Prof. R. S. Singh*)। गुजरात, महाराष्ट्र आदि पश्चिमभारतीय क्षेत्र में आज भी उक्त जीवन्ती लता 'डोडी' नाम से सुविज्ञात है, जहाँ इसकी कच्ची फलियों का व्यवहारोपयोग सर्वसाधारण में शाकार्थ किया जाता है। शारङ्गधर के विद्वान टीकाकार 'आढमल्ल' से भी जीवन्ती के सुविज्ञात एवं व्यवहार प्रचलित होने की सूचना मिलती है, यथा 'जीवन्ती शाकविशेषः। 'जीवन्ती दोडीशाकः,' 'जीवन्ती डोडीका, सा द्विविधा मधुराऽमधुरा च' आदि। उल्लेखनीय है कि, दोडीशाक इसी नाम से पाणिनिकालीन उत्तरपश्चिमी सीमा प्रान्तीय क्षेत्र में विज्ञात थी। पाणिनि ने भी 'दोडी' का समावेश हरीतक्यादि गणपाठ (पाणिनि ४३. १६७) में किया है, जो सम्भवतः इसका प्राचीनतम लेखबद्ध साक्ष्य है। नलचम्पूकाव्य (ईसवीय १०वीं शताब्दी) में महाराष्ट्र की शाकवाटिकाओं में 'जीवन्ती'

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के आरोपित किये जाने का उल्लेख है। जीवन्ती संज्ञा व्यवहार प्रचलित न होने से यह उक्त दोडी (डोडी) नामधेय जीवन्ती अथर्ववेदोक्त जीवन्ती से भिन्न प्रतीत होती है। अथर्ववेदोक्त जीवन्ती की कल्पना को लेकर ही बन्दाजातीय जीवन्ती का व्यवहारप्रचलन चल पड़ा, ऐसा ज्ञात होता है। किन्तु चरकोक्त जीवन्ती का विनिश्चय अब निश्चितरूपेण इसी लताजातीय जीवन्ती से किया गया है। इसमें उत्तम रसायन एवं जरानाशक गुणधर्म पाये जाते हैं। आधुनिक शोधकार्यों से इसके उत्तम स्तन्यजनन होने का भी ज्ञान मिलता है। '*Alarsen*' कम्पनी ने इससे '*Leptaden*' नामक योग बनाया है, जो पशुओं में दूध बढ़ाने के लिए बहुत चलता है। जीवन्ती च्यवनप्राश में भी पड़ती है। किन्तु प्रायः आयुर्वेदिक औषधनिर्माता एवं फार्मेसियाँ इसे नहीं डालतीं।

(धन्वन्तरिविशेषांक-रसायन-अंक)

प्रोफे० आर० एस० सिंह एण्ड एल० बी० सिंह

जूफा

नाम। (भारतीय बाजार) जूफा। अ०—जूफ ए याबिस। फा०—जूफाए खुश्का। अं०—हिस्सोप (*Hissop*)। ले०—हिस्सॉपुस आफिसिनालिस (**Hyssopus officinalis** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटे : *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान—फारस, श्याम देश, पश्चिम हिमालय प्रदेश में (विशेषतः कश्मीर, पंजाब) २४०८ मीटर से ३३३८ मीटर या ८,००० फुट से ११,००० फुट की ऊँचाई तक कहीं-कहीं इसके क्षुप मिलते हैं। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्यतः फारस से होता है। जूफा का शुष्क पंचाङ्ग पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त परिचय—जूफा के चिकने काण्डयुक्त छोटे-छोटे क्षुप होते हैं। काण्ड का अधःभाग प्रायः कड़ा होता है, जहाँ से शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं, जो खड़ी या स्वावलम्बी (*erect*) होती हैं। पत्तियाँ साधारण (*simple*), अनुपपत्र (*exstipulate*), ½ इंच या ¾ सें० मी० लम्बी, बिनाल, रूपरेखा में भालाकार तथा प्रायः सरल-धारवाली अभिमुखक्रम से स्थित होती हैं। पुष्प नीलापन लिये बैंगनीरंग के (*bluish-purple*) होते हैं, जो पत्रकोणों में स्थित अथवा शाखाग्र्य अवृन्त काण्डज मंजरियों (*spikes*) में निकलते हैं। बाह्यकोश ५ दाँतदार कटावों से युक्त (*5-toothed*) एवं द्वि-ओष्ठीय होता है। आभ्यन्तरकोश भी द्वि-ओष्ठीय होता है, तथा बीचका खण्ड (*middle lobe*) अपेक्षाकृत चौड़ा होता है। पुंकेशर संख्या में ४, किन्तु छोटे-बड़े होते हैं। चतुर्वेश्म फल (*nutlets*) सकरे (*narrow*), चिकने एवं त्रिकोणीय होते हैं।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग।

मात्रा। ३ ग्राम से ९ ग्राम या ३ माशा से ९ माशा।

संगठन—जूफा में राल, वसा, शर्करा और लबाब आदि पदार्थ होते हैं। ताजे पौधों में ½% से ¾% तक एक सुगन्धित तैल (*Oil of Hyssop*) पाया जाता है, जो हरिताभ या पांडुपीतवर्ण का तथा गंध एवं स्वाद में क्षुप के समान होता है।

वीर्यकालावधि—६ मास से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, पित्त-सारक, लेखन, शोथहर, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, श्लेष्महर। यूनानीमतानुसार जूफा दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष है, तथा प्रमाथी, कफोत्सारि, श्वयथुविलयन, लेखन, वातानुलोमन, उदरकृमिनाशन तथा प्रधानतया श्वास-कासघ्न होता है। प्रतिश्याय, कास-श्वास एवं फुफ्फुस रोगों में विशेषरूप से लाभ-कारी है। न्यूमोनिया, प्रतिश्याय, कृच्छ्रश्वास, कफ-कास आदि में इसका काढ़ा तथा शर्बत प्रयुक्त किया जाता है। प्रमाथी होने से यह जलोदर एवं यकृदवरोध आदि में प्रयुक्त कराया जाता है। सूजन उतारने के लिए इसको लेपों में भी डालते हैं।

मुख्य योग—शर्बत जूफा।

जौ (यव)

नाम। सं०—यव। हिं०—जौ। गु०, म०, बं०, पं०,—जव। अ०—शईर। फा०—जौ। अं०—बार्ली (*Barley*)। ले०—हॉर्डेडम वुल्गारे **Hordeum vulgare** *L.* (पर्याय—*H. sativum Jessen.*; *H. distichum L.*)।

वानस्पतिककुल। गोधूम-कुल (ग्रामीने *Gramineae*)।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चैती फसल के साथ इसकी प्रचुरता से खेती की जाती है। मध्यश्रेणी एवं गरीबों का प्रसिद्ध खाद्यान्न है।

संक्षिप्त परिचय–जौ एक प्रसिद्ध अन्न है। इसके दानों को जल में भिगोकर कूटकर भूसी (*paleae*) पृथक् कर दीजाती है। इसप्रकार प्राप्त दानों का आटा बना कर रोटी बनायी जाती हैं। जौ के पौधों से जवाखार का निर्माण किया जाता है, जो औषध्यर्थ व्यवहृत होता है।

उपयोगी अंग। यव के निस्तुषीकृतदाने तथा यवक्षार एवं गेहूँ की भाँति निकाला गया तेल (रोगन जौ)।

मात्रा। यवक्षार–२५० मि० ग्राम से १ ग्राम या २ रत्ती से ८ रत्ती।

संग्रह एवं संरक्षण–जौ के पुष्ट दानों को लेकर निस्तुष करके मुखबंद डिब्बों में रखें। 'यवक्षार' को अच्छी तरह डाटबंदशीशियों में रखें, और आर्द्रता से बचाना चाहिए। पथ्य एवं औषधीय व्यवहार के लिए १ वर्ष पुराना जौ का व्यवहार करना अधिक श्रेयस्कर है।

संगठन–इसमें स्थिरतैल, श्वेतसार, प्रोटीड कम्पाउण्ड (ग्लूटेन), काष्ठोज या सैलूलोज (*cellulose*), सिलिसिक अम्ल, फास्फोरिक अम्ल, लौह और चूना युक्त भस्म मिलता है। स्थिरतैल में पामिटिक एसिड, लौरिक एसिड आदि तत्त्व पाये जाते हैं। में यवक्षार मुख्यतः पोटासियम् क्लोराइड (५०.८%) तथा इसके अतिरिक्त पोटासियम् सल्फेट (२०.२%) एवं पोटासियम् बाईकार्बोनेट पायाजाता है।

वीर्यकालावधि। यवक्षार–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–मधुर, किंचित् कषाय। विपाक–कटु। वीर्य-शीत। कर्म–बल्य, पथ्य, रक्तशोधक, प्रमेहघ्न, लेखन, संग्राही, चिरपाकी तथा आनाहकारक, वर्ण्य आदि। (यवक्षार) लघु, स्निग्ध, कटु, कफवातशामक, कफनिस्सारक, दीपन-पाचन, विरेचन, मूत्रल, अश्मरीनाशक, पाण्डु-कामलाहर। यूनानीमतानुसार यव शीत एवं रूक्ष तथा यवक्षार (जवाखार) तीसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष है। (सत्तू) शीत, रूक्ष, उदरसंग्राहक, अतिसारघ्न, संतापहर एवं तृषानाशक होता है। (यवमण्ड) शीतजनन, मूत्रल, रक्तपित्त संशमन एवं रोगियों के लिए उत्तम लघु पत्याहार है। वाटयमण्ड (भृष्ट यवकृत मंड) संग्राही होता है। यह प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में, विशेषतः उत्तरभारत में अतिसार, उरःक्षत, राजयक्ष्मा, आदि के रोगियों के लिए उत्तम पथ्य है।

मुख्य योग एवं कल्प–सत्तू, यवमण्ड (आशे जौ), वाट्यमंड (भृष्टयवकृत मण्ड), कशकुश्शईर, कीरूती आदि।

विशेष–पाश्चात्य वैद्यक में प्रयुक्त पोटाशियम् कार्बोनेट नामक द्रव्य कभी-कभी 'विलायती जवाखार' के नाम से अथवा सस्ते दामवाला जवाखार करके बेचा जाता है। उक्त पद्धति में यह जौ के पौधों को जला कर प्राप्त नहीं किया जाता, अपितु पोटासियम् सल्फेट एवं कैल्सियम् कार्बोनेट की परस्परक्रिया द्वारा प्राप्तकिया जाता है। 'यवक्षार' के स्थान में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

झाऊ (झावुक)

नाम। हिं०–झाऊ, फरास। दक्षिण–झाऊ, झाव। सं०–झावुक। पं०–फरवाँ, ओकां, लाई। सिं०–लई। मा०–लवो। गु०–प्रांस। बं०–झाऊ। बिहार–झउवा। अ०–तर्फा। फा०–गज़। अं०–टैमेरिक्स (*Tamarisk*)। ले०–टामारिक्स ट्रूपिई **Tamarix troupii** *Hole.* (पर्याय–**T. gallica** *auct. non L.*)। उपर्युक्त नाम इसके वृक्ष के हैं। फल (हिं०) बड़ीमाई। अ०–समरतुत्तर्फा। फा०–माईकलाँ। शर्करा (अ०)–कज़ब्जबीन। फा०–गज़ज़बीन। अं०–टैमेरिक्स मेन्ना (*Tamarix Manna*)।

वानस्पतिककुल। झावुक-कुल (टामारिकासे *Tamaricaceae*)।

प्राप्तिस्थान–यूरोप, अफरीका, एशिया, विशेषतः अरब, फारस, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान तथा पंजाब, सिंध, उत्तरभारत में गंगा-जमुना नदियों के किनारों पर, समुद्रतटवर्ती प्रदेश, उत्तरगुजराज एवं आबू की पहाड़ियों पर बड़ीमाईं के वृक्ष पाये जाते हैं। भारतवर्ष में झावुक-शर्करा प्रायः नहीं उत्पन्न होती। माईं (*galls*) का भी संग्रह अपेक्षाकृत कम ही होता है। भारतवर्ष में (बम्बई में) बड़ीमाईं एवं गजज़बीन का आयात मुख्यतः अरब एवं फारस से होता है। यहाँ बड़ीमाईं के स्थानापन्न रूप से 'भारतीयमाईं' या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'छोटी माई' का भी व्यवहार किया जाता है। यह सब पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—यह गुल्माकार, बेढंगा, आदमी के कद का या उससे भी कम ऊँचा जंगली वृक्ष है। पत्तियाँ देखने में सरों के पत्र के समान तथा प्रायः हरेरंग की होती हैं। फूल व्यास में $\frac{5}{16}$ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इञ्च छोटे, वृन्तयुक्त तथा गुलाबीरंग लिये सफेदरंग के होते हैं और लम्बी, पतली एवं सशाख मंजरियों पर सघन अवृन्तकाण्डजक्रम से निकलते हैं। पुटपत्र स्थायी, रूप-रेखा में त्रिकोणाकार, तथा कुण्ठिताग्र होते हैं। पुंकेशर संख्या में ५, कुक्षिवृन्त ३, फल $\frac{5}{8}$ सें० मी० या $\frac{1}{4}$ इञ्च लम्बे, आधार की ओर गोलाकार तथा शीर्ष की ओर नुकीले होते हैं। इसकी शाखाओं में एक प्रकार के कीड़े के छिद्र करने और इन छिद्रों में अपने अण्डे रखने से उन स्थानों में एक प्रकार की गाँठें उत्पन्न हो जाती हैं, जिनको इसका 'फल' समझा जाता है। इनको 'बड़ी माई' कहते हैं। इसके वृक्ष से यवासशर्करा (तुरंजबीन) की भाँति एक प्रकार की शर्करा भी प्राप्त होती है, जिसे गजङ्गबीन (झावुक-शर्करा) कहते हैं। गजङ्गबीन का संग्रह प्रायः फारस में किया जाता है।

उपयोगी अङ्ग। माई एवं शर्करा (तथा मूल, पत्र, पंचाङ्ग)।

मात्रा। माईचूर्ण—२ ग्राम से ५ ग्राम या २ माशा से ५ माशा। शर्करा (गजंगबीन)—६ ग्राम से २४-३६ ग्राम (१ से २-३ तोला) तक।

स्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बड़ी माई (*Tamarix Galls*), कुछ-कुछ गोल और बहुत ग्रन्थिल, विभिन्न आकार की मटर से लेकर रीठे के बराबरतक, तथा त्रिकोणाकार-सी होती है। यह माजूफल से छोटी तथा छोटीमाई से बड़ी होती है। इसके भीतर का भाग प्रायः खोखला होता है, और रंग बाहर से कुछ-कुछ हरा या पिलाई लियेभूरा होता है। इसको तोड़ने पर अन्दर कभी-कभी इसका निर्मापक कीट भी पाया जाता है। स्वाद में यह कसैली होती है। झावुक शर्करा (गजङ्गबीन)—यह छोटे-छोटे दानों के रूप में प्राप्त होती है, तथा ताजी अवस्था में सफेदरंग की होती है। गर्मी से उक्त दाने प्रायः पिघलकर गाढ़े अर्धघन के रूप में हो जाते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—छोटीमाई 'बड़ी माई' का उत्तम प्रतिनिधिद्रव्य है। यह झावुक की निम्न भारतीय प्रजातियों से प्राप्त की जाती है—(१) टामारिक्स डाइ-ओइका (**Tamarix dioica** *Roxb.*) तथा (२) टामारिक्स आर्टिकुलाटा **T. articulata** *Vahl.* (पर्याय—*T. aphylla Karst.*)। इसके छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं, जो समुद्रोतटवर्ती प्रदेशों, पंजाब, सिंध, राजपूताना, बंगाल, आसाम, बम्बई, गुजरात, कच्छ, गंगा-जमुना एवं सिंधु नदी के तटवर्तीय प्रदेशों में तथा बगीचों में लगाये हुए भी मिलते हैं। छोटीमाई प्रायः मटर के बराबर (बड़ी माई की अपेक्षा छोटी), ग्रंथिल, गोलाकार तथा पीताभ-भूरे रंग की होती है। किन्तु यह बड़ी माई की तरह त्रिकोणाकार नहीं होती। फारस में झावुक के अतिरिक्त अनेक वृक्षों से भी मधुरस्रावों का संग्रह 'गजङ्गबीन' के नाम से किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—गजंगबीन को चौड़े मुँह की शीशियों में अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए। माई को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—बड़ी एवं छोटी माई में ४०% से ४२% तक टैनिन पाया जाता है। गजङ्गबीन में इक्षुशर्करा, इन्वर्ट सूगर (लिवूलोज, ग्लुकोज) आदि, द्राक्षाशर्करा एवं जल आदि उपादान होते हैं।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—कफपित्तशामक, स्तम्भन, रक्त-शोधक एवं रक्तस्तम्भक, शोथहर, स्रावशोषण। यूनानी मतानुसार बड़ी एवं छोटी माई पहले दर्जे में शीत एवं रूक्ष, तथा झावुकशर्करा (गजङ्गबीन) पहले दर्जे में उष्ण एवं समस्निग्ध रूक्ष होती है। माई संग्राही, दोष-विलोमकर्ता, रक्तस्तम्भन, उपशोषण, लेखन, प्रमाथी, छेदन, दीपन और यकृत्प्लीह बलदायक होती है। शीत-संग्राही होने के कारण गलशुण्डिका और दंतशूल में यह मंजन एवं कवलग्रह की भाँति प्रयुक्त होती है। संग्राही और दोषविलोमकर्ता होने के कारण कंठशूल एवं कंठशोथ में इसके गण्डूष कराये जाते हैं। पित्तज अतिसार और चिरज अतिसार में भी इसे खिलाते हैं। रक्तस्तम्भन होने के कारण नकसीर, रक्तष्ठीवन और रक्तप्रदर आदि में इसको क्रमशः प्रधमन, भक्षण, पान एवं बत्ति की भाँति उपयोग करते हैं। क्षतज रक्तस्राव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में इसका अवचूर्णन करते हैं। श्वेतप्रदर में यह वर्त्ति और चूर्णौषधि की भाँति प्रयुक्त की जाती है और इसी कारण शीघ्रपतन और शुक्रतारल्य में भी इसका उपयोग करते हैं। लेखन, प्रमाथी एवं छेदन होने के कारण प्लीहाशोथ में भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—आमाशय को। निवारण—शहद। गजंगबीन लेखन, रेचन मस्तिष्कसंशोधन, प्रतिश्यायहर, उरोमादर्वकर, स्वरशोधक, श्वास-कासहर एवं स्निग्ध प्रकृति के लिए उपकारी है।

ताड़ (ताल)

नाम। सं०—ताल, ताड। हिं०—ताड़, ताल। म०, गु०—ताड। फा०—दरख्ते ताडी। बं०—तालगाछ। अं०—पामीरा पाम (*Palmyra Palm*)। ले०—बोरास्सुस फ्लाबेल्लिफर **Borassus flabellifer** *Linn.* (पर्याय—*B. flabelliformis Roxb.*)। (तालरस) हिं०—नीरा, ताड़ी। फा०—ताड़ी। अं०—पामिरा टाडी (*Palmyra Toddy*)।

वानस्पतिक कुल। ताड़-कुल (पामासे : *Palmaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में (प्रायः सूखी जगहों में) तथा समुद्रतटवर्ती क्षेत्रों में ताड़ के लगाये हुए तथा स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। ताजे रस से बनाया हुआ गुड़, चीनी एवं मिश्री बाजारों में बिकती है।

संक्षिप्त परिचय—ताड़ के शाखा रहित ऊँचे-ऊँचे १२½ मीटर से १८½ मीटर से २९ मीटर या (४० फुट से ६० फुट से १०० फुट तक) वृक्ष होते हैं, जिसका काण्डस्कंध काला, बेलनाकार तथा मोटाई का घेरा १०५ सें० मी० से २१० सें० मी० या ३½ फीट से ७ फीट तक होता है। सिरे पर छत्राकार फैली हुई, ९० सें० मी० से १५० सें० मी० या ३ फुट से ५ फुट चौड़ी पत्तियाँ समूहवद्ध होकर (संख्या में ४०—४०) निकली रहती हैं। पत्तियों के डंठल गोलाकार तथा चपटे (*subterete*) काफी मोटे, मजबूत एवं ६० सें० मी० से १२० सें० मी० या २ फीट से ४ फीट तक लम्बे और रेशाबहुल होते हैं। पत्रदंडों के दोनों ओर किनारों पर छोटे-छोटे तीक्ष्ण दंत (*spinescent serratures*) होते हैं। पत्र पंखे के समान करतलाकार खण्डित, कड़े-चर्मिल (*rigidly coriaceous*) तथा खण्ड भालाकार या रेखाकार होते हैं। पुष्पागम जाड़ों में होता है। नर एवं नारी पुष्प पृथक्-पृथक् वृक्षों पर पाये जाते हैं, जो पत्रावृत अवृन्त-काण्डज स्थूल मंजरियों (*spadix*) में निकलते हैं। नारीपुष्प नरपुष्पों की अपेक्षा बड़े होते हैं। वसन्त से वर्षांतक फल लगते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) छोटा एवं अग्रगल्म होने पर तो त्रिकोणाकार-सा (*trigonous*) किन्तु बढ़कर गोलाकार तथा व्यास में १५ सें० मी० से २० सें० मी० (६ इंच से ८ इञ्च) तक, कड़ा एवं कृष्णाभ तथा पकने पर पीला हो जाता है। इसके शीर्ष पर स्थायी परिदलपुञ्ज या सवर्णकोश (*perianth*) की चोटी-सी होती है। पके फल का गूदा रेशाबहुल, ललाई लिये पीला और मधुर होता है तथा खाया जाता है। प्रत्येक फल में १ से ३ अभिहृदयाकार (*obcordate*) बीज होते हैं। कच्चे फलों में बीजों के चारों ओर मुलायम गूदा-सा होता है, जो मीठा, स्वादिष्ठ रसीला एवं फालूदा के समान जमा (*gelatinous*) होता है। गर्मियों में यह बाजारों में बिकता है। स्त्री एवं नर दोनों प्रकार के वृक्षों से क्षत करने पर एक मीठारस (*saccharine juice*) निकलता है, जिसे 'नीरा' कहते हैं। उक्त रस जाड़े के दिनों में अपेक्षाकृत अधिक निकलता है, तथा दिन की अपेक्षा रात्रि में इसका स्राव अधिक होता है। यदि संरक्षण में सावधानी न की जाय तो ६ घंटे से ८ घण्टे के बाद नीरा में किण्वीकरण होकर स्वाद में खट्टापन आ जाता है, और यह मादक हो जाती है। इसे 'ताड़ी' कहते हैं। नीरा से ईख के रस की भाँति पकाकर गुड़, चीनी तथा मिश्री बनायी जाती है, जो व्यवहारोपयोग की दृष्टि से ईख के गुड़ एवं चीनी आदि की ही भाँति होते हैं, किन्तु गुण में उसकी अपेक्षा उत्कृष्टतर होते हैं।

उपयोगी अंग। फल (कच्चे फलखण्ड *Pyrenes*), रस (नीरा तथा इसकी बनी चीनी एवं मिश्री आदि), पुष्पक्षार (पुष्पदण्ड-क्षार) एवं मूल आदि।

मात्रा। कच्चे फलखण्ड—३ दाने से ७ दाने।

रस—१ छटाँक से २ छटाँक।

गुड़, चीनी और मिश्री—आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—ताड़ का ताजारस (*Sweet Toddy or Nira*) स्वच्छ, पारदर्शक एवं मीठा होता है, जिसमें

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक मन्द मनोरम गंध होती है। किन्तु संरक्षण की सावधानी न करने पर इसमें खमीर उठने लगता है, तथा स्वाद में अम्लता या खट्टापन आने लगता है। ६ घंटे से ८ घंटे में अपने आप खमीर उठने से ३% ऐल्कोहल एवं ०.१% अम्ल (*acids*) की उत्पत्ति होती है। आगे रखा रहने से ऐल्कोहल् की मात्रा ५% तक आकर रुक जाती है या घटने लगती है, किन्तु अम्लता फिर भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार विकृत नीरा को 'ताड़ी' कहते हैं। ताड़ी हल्के पीलेरंग का झागदार द्रव होती है, जिसमें एक विशिष्टप्रकार की गंध होती है, तथा स्वाद में खट्टी एवं तीक्ष्ण (*pungent*) होती है। इसका प्रयोग लोग नशे या मादकता के लिए करते हैं। गुड़—ताड़-गुड़ गाढ़ेरंग के ढेलों के रूप में होता है, जिसमें अपना विशिष्ट मीठास्वाद होता है। चीनी—इसकी साफ की हुई चीनी देशी चीनी की भाँति तथा स्वाद में कुछ खारापन लिये मीठी होती है। मिश्री (*Sugar Candy*)—तालमिश्री के नाम से बिकती है। इसके स्वच्छ रवेदार टुकड़े मिलते हैं। स्वाद में गुड़ के चीनी की मिश्री की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—ताड़-कुल के अन्य वृक्षों से भी नीरा, ताड़ी एवं गुड़, चीनी तथा मिश्री आदि बनायी जाती हैं, जो गुण-कर्म में बहुत-कुछ ताड़ की भाँति होते हैं। इनमें खजूर (**Phoenix sylvestris**) विशेष महत्त्व का है। उक्त दोनों ही वृक्ष नीरा-व्यवसाय की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। खजूर का रस इसके काण्डस्कन्ध पर क्षत करके प्राप्त किया जाता है। नारियल के पेड़ों से भी नीरा प्राप्त किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—नीरा का प्रयोग वृक्ष से पात्र उतारने के बाद तुरन्त करना चाहिए। १ गैलन रस में ½ औंस के अनुपात से चूना मिला देने से इसमें खमीर नहीं उठने पाता और इसका स्वाद एवं स्वरूप ज्यों-का-त्यों बना रहता है। अन्य उपयोगी अंगों को मुखबंद पात्रों में उचित स्थान में रखें।

संगठन—ताड़ की नीरा में मुख्यतः शर्करा (१२.६% तक) एवं कार्बोहाइड्रेट (१३½%) तथा अंशतः प्रोटीन, वसा (*Fat*), खनिजतत्त्व तथा विटामिन '*C*' पाया जाता है। पक्वफलमज्जा में अपेक्षाकृत 'विटामिन '*C*' सी अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन वसा, खनिज तत्त्व एवं केरोटीन भी पाया जाता है। कोमल कच्चे फलों में अपेक्षाकृत कार्बोहाइड्रेट कम पाया जाता है।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य-शीत। कर्म—वातपित्तशामक। (रस)—दाहप्रशमन, शोथहर, रक्तस्तम्भन, व्रणरोपण, कफ-निस्सारक, ज्वरघ्न, बल्य, बृंहण, मूत्रल, रक्तशोधक, त्वग्दोषहर; मस्तिष्कबल्य आदि। (फलमज्जा) हृद्य; स्नेहन, मृदु-रेचन, (अधिक मात्रा में विष्टम्भी), हृद्य, वृष्य। (कच्ची बीजमज्जा)—तृष्णाशामक, बलवर्धक, सोमनस्य-जनन, संतापहर। (क्षार) भेदन, लेखन, गुल्म एवं प्लीहोदरनाशक। यूनानीमतानुसार ताड़ पहले दर्जे में उष्ण और तीसरे में रुक्ष तथा पाचन है।

विशेष—मधुमेहियों के लिए ताड़ एवं खजूर के रस से बनी चीनी, मिश्री आदि पथ्य मधुर द्रव्य हैं। श्वास-कास में प्रयुक्त अवलेह कल्पों में ताड़ तथा खजूर की चीनी या मिश्री डालना अधिक गुणकर है। चरकोक्त 'मधुरस्कन्ध' एवं 'कषायस्कन्ध' तथा सुश्रुतोक्त साल-सारादिगण तथा मधुरस्कन्ध के द्रव्यों में 'ताल' (ताड़) भी है।

ताम्बूल—दे०, 'पान'।

तालमखाना (कोकिलाक्ष)

नाम। सं०—कोकिलाक्ष, इक्षुरक। हिं०—तालमखारा (—ना)। बं०—कुलेखाड़ा। म०—कोलमुन्दा, तालिम-खाना। गु०—एखरी, तालमखानू। संथा०—गोखुला-जनम। ले०—आस्टरकान्था **Astercantha (Aster-can.)**, हीग्रोफिला **Hygrophylla**। (वनस्पति का नाम) आस्टरकांथा लॉंगीफोलिआ **Astercantha longifolia** *Nees.* (पर्याय—हीग्रोफिला स्पीनोसा *Hygrophila spinosa T. Anders.*)।

वानस्पतिककुल। वासक-कुल (आकान्थासे *Acanth-aceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष एवं लंका में नम जगहों में इसके क्षुप स्वयंजात मिलते हैं। जलाशयों के पास तथा विशेषतः धान के क्षेत्रों में यह अधिक मिलता है। बीज (तालमखाना) पंसारियों के यहाँ मिलता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय–तालमखाना या कोकिलाक्ष के कँटीले, द्विवर्षायु तथा ६० सें० मी० से १२० सें० मी० या २ फुट से ४ फुट ऊँचे छोटे-छोटे क्षुप होते हैं, जिनका काण्ड ईख के सदृश पर्वयुक्त और शाखारहित, प्रायः चतुष्कोणाकार-सा (*sub-quadrangular*), पतला तथा ऊर्ध्वगामी या खड़ा (*erect*) होता है। पर्वों पर यह अपेक्षाकृत अधिक मोटा होता है, और सर्वत्र रोयें (विशेषतः पर्वों के नीचे भाग में) पाये जाते हैं। पत्तियाँ विनाल (*sessile*), आयताकार-भालाकार (*oblong lanceolate*) या अभिप्रासवत् (*oblanceolate*) तथा आधार की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़ी होती हैं। प्रत्येक काण्ड-पर्व पर पहिये के आरा की भाँति ६–६ पत्तियाँ होती हैं, जिनमें बहिस्थ २ पत्तियाँ अपेक्षाकृत बड़ी १७.५ सें० मी० या (७ इञ्च तक लम्बी तथा १.२५ सें० मी० से ३/८ सें० मी० या ½ इंच से १½ इंच तक चौड़ी) और अन्दर की ओर स्थित शेष ४ पत्तियाँ छोटी ३.७५ सें० मी० या १½ इञ्च लम्बी होती हैं। प्रत्येक पत्ती के कोण में २.५ सें०मी० से ४.५ सें०मी० (१ इञ्च से १¾ इञ्च) तक लम्बा पीलेरंग का तीक्ष्ण कंटक (*sharp yellow spine*) होता है। प्रत्येक पर्व के चतुर्दिक बैंगनी लिये नीलेरंग के ८ पुष्प निकलते हैं, जो ४ युग्मों में स्थित होते हैं। कोणपुष्पक या निपत्र (*bracts*) एवं वृन्तपत्रक या निपत्रिकाएँ (*bracteoles*) पत्तियों की तरह तथा २.५ सें० मी० या १ इञ्च या कुछ छोटे लम्बे होते हैं। आभ्यन्तर कोष वासक-कुल की अन्य वनस्पतियों की भाँति द्विओष्ठी होता है। ऊर्ध्वोष्ठ दो-खण्डों वाला तथा अधरोष्ठ त्रि-खण्डीय होता है। फल (*capsule*) ½ सें० मी० (¼ इञ्च) तक लम्बा रेखाकार-लम्बगोल (*linear-oblong*) तथा अग्र की ओर नुकीला होता है। इसमें ४ से ८ छोटे-छोटे बीज होते हैं। उक्त बीज बाजारों में तालमखाने के नाम से मिलते हैं।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग, बीज (तालमखाना), मूल, एवं क्षार (पंचाङ्ग का)।

मात्रा। पंचाङ्ग स्वरस—१ तोला से २ तोला।
क्वाथ —२½ तोला से ५ तोला।
बीजचूर्ण —१½ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा।
क्षार —२५० मि० ग्राम से ५०० मि० या २ रत्ती से ४ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–पंचाङ्ग में सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं। बीज–तालमखाना के बीज छोटे-छोटे, चपटे विषमाकृति, किसी प्रकार तिल के समान किन्तु उससे छोटे और खाकी रंग के होते हैं। स्वाद फीका और लवाबी होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयुक्त अंगों को शुष्ककर अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में रखें।

संगठन–बीजों में २३% तक एक पीताभ वर्ण स्थिर तैल एवं डायस्टेज (*Diastase*), लाइपेज (*Lipase*) एवं प्रोटिएस (*Protease*) आदि किण्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। बीज–२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–स्निग्ध, पिच्छिल। रस–मधुर, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–पंचाङ्ग, मूल एवं पत्र मूत्रल हैं। बीज–बल्य एवं बृंहण, नाड़ीबल्य, यकृदुत्तेजक है।

मुख्ययोग–पौष्टिकचूर्ण।

विशेष–'तालमखाना' एवं 'मखाना' भिन्न द्रव्य हैं। मखान कमल की भाँति जलीय पौधे के बीज होते हैं। पंचमेवे में इसका लावा पड़ता है। चरकोक्त (सू० अ० ५) 'शुक्रशोधन' महाकषाय के द्रव्यों में तालमखाना ('इक्षुरक' नाम से) भी है।

तालीसपत्र

नाम। सं० तालीस; तालीसपत्र, पत्राढ्य, धात्रीपत्र। हिं०, भारतीय बाजार–तालीसपतर, तालीसपत्ता। बं०, हिं०, पहाड़ी–बिर्मी। हिं०–बर्मि। जौनसार–थुनेर। अं०–यू(*Yew*)। ले०–टॉक्सुस बाक्काटा (**Taxus baccata** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। सरल-कुल (कोनोफ़ेरे (*Coniferae*)।

प्राप्तिस्थान–समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में अफगानिस्तान से भूटान तक १८२८ मी० से ३३३८ मीटर (६,००० फुट से ११,००० फुट) की ऊँचाई तक तथा खासिया की पहाड़ियों पर १५२३ मीटर (५,००० फुट तक) इसके जंगली वृक्ष होते हैं। सुखाई हुई पत्तियाँ (तालीसपत्र) पंसारियों के यहाँ मिलती हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्तपरिचय–'थुनेर' के मध्यम ऊँचाई के सदाहरित वृक्ष (कभी-कभी ऊँचे वृक्ष भी) होते हैं। पत्तियाँ दो कतारों में निकली हुई (*distichous*) होती हैं, जो २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १½ इञ्च लम्बी, ⅛ सें० मी० या ⅕० इंच के लगभग चौड़ी, रेखाकार (*linear*), चिपटी-नोकीली (*cuspidate-acuminate*) तथा ऊर्ध्व पृष्ठ पर गहरे हरेरंग की और अधःपृष्ठ पर हलके पीले या मुरचईरङ्ग की होती हैं। शिरा एक और पत्रनाल (*petiole*) छोटा होता है। पत्तियों से विशेषतः सूखने पर एक प्रकार की गंध आती है। पुष्प एकलिंगी होते हैं, तथा नरपुष्प एवं नारीपुष्प पृथक्-पृथक् वृक्षोंपर पाये जाते हैं। फल लम्बगोल बेरी (*ovoid berry*) ⅜ सें० मी० से १ सें० मी० या ⅕० इंच से ⅜ इंच लम्बा होता है। बीज हरिताभवर्ण का तथा पक्षरहित (*wingless*) होता है, जो लालरंग के मांसलकोष से (शीर्षपर छोड़ कर शेषभाग पर) घिरा हुआ होता है। पहाड़ी लोग इसकी छाल से प्रायः एक प्रकार का चाय सदृश पानक बनाकर पीते हैं, और फल खाते हैं। उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र एवं बम्बई–गुजरात आदि में चिकित्सक इसकी पत्तियों का व्यवहार 'तालीसपत्र' के नाम से करते हैं।

वक्तव्य–यह वास्तविक ब्राह्मी (*Hydrocotyle asiatica Linn.*) एवं यूनानी निघण्टूक्त 'जर्नब' से भिन्न द्रव्य है।

उपयोगी अंग–पत्र।

मात्रा–½ ग्राम से ३ ग्राम या ४ रत्ती से ३ माशा तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–बाजार में मिलने वाले तालीसपत्र में बारीक शाखाएँ भी मिली होती हैं, तथा पत्र वेदपत्र के समान १ इंच से २ इंच लम्बे, शल्याकृति, शिरारहित और पिलाईलिये हरेरंग के होते हैं। इसकी किसी-किसी टहनी पर पुंपुष्प भी लगे पाये जाते हैं। पत्रों में एक सुगंधि पायी जाती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–बंगाल में तालीसपत्र के नाम से आबीएस वेब्बिआना (**Abies webbiana** *Lindl.*) नामक सरल-कुल की अन्यतम प्रजाति के पत्ते बिकते हैं। हिमालयप्रदेश में (विशेषतः सिक्किम, भूटान में ९,००० फुट से १३,००० फुट की ऊँचाई पर) इसके वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–पत्तियों को सुखाकर अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंदडिब्बों में रखें। पत्तियों का संग्रह जाड़े के दिनों में करना चाहिए, क्योंकि इस समय इनमें क्षारोदों की मात्रा अधिकतम पायी जाती है।

संगठन–पत्तियों (छोटी टहनियों एवं बीजों में भी) में टैक्सीन (*Taxine*) नामक विषाक्त प्रभावयुक्त एक ऐल्कलायड तथा टैक्सिनीन एवं अत्यल्प मात्रा में एफेड्रीन और एक उड़नशीलतैल, आदि तत्त्व पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कषायाम्ल एवं मायिकाम्ल भी उपस्थित होते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण। रस–तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–कफवातशामक, वेदनास्थापन, रोचन, दीपन, वातानुलोमन, ज्वरघ्न, श्वास-कासहर-मूत्रल एवं बलवर्धक आदि। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में रूक्ष एवं उष्ण है। अहितकर–उष्ण प्रकृति को। निवारण–सूखी धनियाँ। प्रतिनिधि–दालचीनी, कबाबचीनी और इलायची। विषाक्त प्रभाव–तालीसपत्र का सहसा मात्रातियोग होने पर कभी-कभी विषाक्तलक्षण भी प्रकट होते जाते हैं। ऐसी स्थिति में वमन एवं मूर्च्छा होती है। कभी आक्षेप होते तथा तारिका विस्फारित हो जाती है। श्वसन मन्द हो जाता है। मृत्यु श्वासावरोध से होती है।

मुख्य योग–तालीसादिचूर्ण, तालीसादि वटी।

विशेष–सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) शिरोविरेचनद्रव्यों में 'तालीसपत्र' भी है।

तितलौकी (इक्ष्वाकु)

नाम। सं०–इक्ष्वाकु, कटुतुम्बी, तिक्तालाबू। हिं०–तितलौकी, तुंबी, तुंबड़ी, कड़वी लौकी। बं०–तितलाऊ। गु०– कड़वी तुंबड़ी। अ०–क़र्उल्मुर्र। फा०–कदूए तल्ख। अं०–दि बिटर या बाट्ल-गोर्ड (*The Bitter or Bottle-Gourd*)। ले०–लाजेनारिआ वुल्गारिस (**Lagenaria vulgaris** *Sering.*)।

वानस्पतिककुल। कूष्माण्ड-कुल (कूकुरबिटासे : *Cucubitaceae*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में इसकी जंगली लताएँ पायी जाती हैं। इसका एक मीठा भेद (*variety*) भी होता है, जिसकी सर्वत्र काफी परिमाण में खेती की जाती है। इसका फल मीठा (अर्थात् तीता नहीं होता) होता है, जिसकी तरकारी खायी जाती है। इसके फल 'कद्दू' या 'लौकी' नाम से तरकारीबाजारों में बिकते हैं। यहाँ कड़वी तुम्बी का ही विचार किया जायगा, जो एक उत्तम वामक एवं भेदन द्रव्य समझा जाता है।

संक्षिप्त परिचय—इसकी सुदीर्घ आरोही या प्रसरी लता होती है, जिसका काण्ड मोटा एवं पंचकोणीय होता है। इसकी पत्तियाँ व्यास में १५ सें० मी० (६ इञ्च), लट्याकार, गोलाकार या हृदयाकार, पंचखडीय तथा लम्बे वृन्त से युक्त एवं दोनों पृष्ठों पर सूक्ष्मरोमश होती हैं। पुष्प एकलिंगी तथा सफेद होते हैं। नरपुष्प बड़े डंठलों पर किन्तु नारीपुष्प छोटे डंठलों पर धारण किये जाते हैं। फल ४५ सें० मी० या १½ फुट तक लम्बे तथा रूपरेखा में नानारूप के—यथा—बोतल के आकार के, कमण्डलु के आकार के अथवा तम्बूरा के आकार के होते हैं। कड़वी तुम्बी के पत्र फलादि सभी अंग अत्यन्त तिक्त होते हैं।

उपयोगी अंग। फलमज्जा, बीज एवं पत्र।

मात्रा। फल एवं पत्रस्वरस—६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ½ तोला से १ तोला। बीजचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—फल का छिलका तो बहुत कड़ा होता है, किन्तु अन्दर सफेद रंग का मुलायम गूदा होता है, जो स्वाद में अत्यंत तिक्त होता है। इसके सेवन से तीव्र वामक एवं भेदन कर्म होता है। बीज, अंडाकार, चपटे तथा खाकस्तरी रंग के होते हैं। पार्श्वों में किनारा कुछ फूला-सा किन्तु शीर्ष पर दन्तुर होता है। बीजों के अन्दर सफेद, स्नेहपूर्ण मज्जा या गिरी होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—पकी कटुतुम्बी के गूदे को निकाल कर टुकड़े-टुकड़े कर लें और छायाशुष्क करके मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें और उस पर 'विष' का प्रपत्रक लगावें। बीजों को भी इसी प्रकार संरक्षित करना चाहिए।

संगठन—फलों में ऐल्ब्युमिनायड; कार्बोहाइड्रेड भस्म, सेपोनिन तथा बीजों में एक स्थिर तैल भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। गूदा—३ वर्ष से ४ वर्ष। बीज—२ वर्ष से ३ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य-शीत। कर्म—कफपित्तसंशोषक एवं शामक, रक्तशोधक, शोथहर, कफनिःसारक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, विषघ्न, शिरोविरेचन, वामक एवं भेदन आदि। यूनानीमतानुसार यह तीसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष है। और आभ्यन्तरिक प्रयोग से तथा रस का नस्य लेने से शिरोविरेचन, छर्दिजनक कामला-नाशक एवं द्रवनिस्सारक है। वामक होने से हरी तितलौकी का रस निचोड़ कर या सूखी तितलौकी को जल से पीस-छान कर जीर्ण कफज कास और दमा के रोगी को पिलाते हैं। उक्त रस को अथवा फूलों के रस को कामला और कफज मस्तिष्करोगों में नासिका में टपकाते हैं। इससे नासिका से द्रवोत्सर्ग होकर नेत्र और चेहरे की पीलिया तथा मस्तिष्क के कफज रोग—जैसे प्रसेकजन्य शिरः शूल और अर्धावभेदक आदि दूर होते हैं। अहितकर—प्रायः आतों के लिए। निवारण—स्नेह द्रव्य।

विशेष—चरकोक्त एकोनविंशतिफलिनी द्रव्यों (सू० अ० १) तथा वमन द्रव्यों (सू० अ० २) और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) ऊर्ध्वभागहरगण के द्रव्यों में 'इक्ष्वाकु' भी है।

तिन्तिडीक (सुमाक)

नाम। सं०—तिन्तिड़ीक। हिं०—समाकदाना, निनास, निनावा—(जौनसार); तुंगला, तत्रक्र। पं०—खट्टेमसर, डाँसरा, तुंग, तुंगला। मा०—डांसरिया। का०—समाक। अ०—समाक़, सुमाक़। फा०—समाक। ले०—रूहुस पार्वीफ्लोरा (**Rhus parviflora** *Roxb.*)।

वानस्पतिक कुल। भल्लातक-कुल (आनाकार्डिआसे : *Anacardiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तरी-पश्चिमी हिमालय प्रदेश में सतलज से नेपाल तक ६०२ मीटर से २१५ मीटर या २,००० फुट से ५,००० फुट की ऊँचाई पर तथा मध्य प्रदेश में पंचमढ़ी की पहाड़ियों पर और गोदावरी जिले में रम्पा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की पहाड़ियों पर इसके जंगली वृक्ष प्रचुरता से मिलते हैं। उत्तरी हिमालय में जौनसार तथा नेपाल से कुमायूँ तक इसके वृक्ष खूब मिलते हैं। इसका सुखाया हुआ मसूर के दाना-जैसा फल पंसारियों के यहाँ 'समाक दाना' नाम से बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—तिन्तिड़ीक के गुल्म होते हैं। कोमल शाखाएँ मुरचई रंग के सघन रोम से आवृत होती हैं। छाल खाकस्तरी रंग की तथा चिकनी होती है। पत्तियाँ सपत्रक, तीन-पत्रकों वाली तथा पर्णवृन्त २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बे होते हैं। पत्रक २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० × ½ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से ३ इञ्च × ½ इञ्च से २ इञ्च लम्बे, रूपरेखा में अभिलट्वाकार तथा गोलदन्तुरधारवाले होते हैं। अग्रपर स्थित तीसरा पत्रक शेष दो की अपेक्षा बड़ा होता है। पुष्प छोटे-छोटे होते हैं, तथा शाखाग्रच मंजरियों में निकलते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) अंडाकार, व्यास में ०.२ इञ्च, चिकना तथा भूरेरंग का होता है। उक्त फल खाये जाते हैं, तथा समाकदाना नाम से इनका औषधियों में भी व्यवहार होता है। पुष्पागम—मई—जून में तथा फलागम जुलाई—अगस्त में होता है।

उपयोगी अंग—फल।

मात्रा। ३ ग्राम से ६ ग्राम (३ माशा से ६ माशा)।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—फारस से आने वाला समाक वास्तव में तिन्तिड़ीक की एक अन्यतम विदेशी जाति रूहुस कोरिआरिआ (**Rhus coriaria** *Linn.*) का फल होता है। यह स्पेन, इटली, सिसली, काकेशिया, फारस एवं अफगानिस्तान में प्रचुरता से पैदा होता तथा लगाया जाता है। भारतवर्ष में इसका व्यवहार प्रचुरता से किया जाता है। यूनानीवैद्यक में फलत्वचा का व्यवहार 'गिर्दसुमाक' या 'पोस्तसुमाक' के नाम से होता है। उक्त फल भी मसूर दाने जैसे लाल एवं चिपटे अष्ठिल फल, स्वाद में खट्टे एवं कसैले होते हैं। उक्त दोनों जातियाँ एक दूसरे की उत्तम प्रतिनिधि हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—तिन्तिड़ीक (समाकदाना) को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए, और पात्र में नमी न पहुँचे इसका ध्यान रखना चाहिए।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव—पका सुमाकदाना वातहर तथा कच्चा फल पित्त एवं कफकारक होता है। सुमाकदाना पीत, रुक्ष, ग्राही, दीपन, दाह-तृष्णा शामक, रक्तस्तम्भक, एवं बहुमूत्र-रोधक होता है। पोस्तसुमाक का उपयोग पैत्तिक अतिसार, हृल्लास, वमन एवं दाह तथा तृष्णायुक्त ज्वर में किया जाता है।

तिल (तिल्ली)

नाम। सं०—तिल। हि०—तिल, तिल्ली। बं०, म०—तिल। गु०—तल। फा०—कुंजद। अ०—सिम्सिम्, सम्सम्। अं०—जिंजेली (*Gingelly*), सिसेम (*Sesame*)। ले०—सेसामुम ईंडिकुम **Sesamum indicum** *Linn.* (*Syn. Sesamum orientale Linn.*)। (तेल) सं०—तिल तैल। हिं०—तिल (तिल्ली) का तेल, मीठातेल। म०—गोड़ातेल। गु०—मीठुतेल। फा०—रोग़नकुंजद। अ०—शीरज, दुह्नुल्हल, दुह्नुस्सिम्सिम्। ले०—ओलेउम् सेसामी *Oleum Sesami* (*Ol. Sesam.*)। अं०—जिंजेली आयल (*Gingelly Oil*), सिसेम ऑयल (*Sesame Oil*), तिल आयल (*Teel Oil*)।

वानस्पतिक कुल। तिल-कुल (पेडालिआसे *Pedaliaceae*)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में तिल की प्रचुरमात्रा में खेती की जाती है। तिल (बीज) एवं तेल भारतवर्ष के प्रसिद्ध व्यावसायिक द्रव्य हैं।

संक्षिप्त परिचय—इसके ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट ऊँचे तथा एकवर्षायु कोमल क्षुप होते हैं। इसका पौधा रोमावृत होता है, तथा इसमें हल्की दुर्गन्ध-सी पायी जाती है। इसके पौधे पर जगह-जगह स्रावी ग्रंथियाँ पायी जाती हैं। पत्तियाँ निचले भाग में अभिमुख क्रम से स्थित, खण्डित (*lobed or pennatisect*) एवं काण्ड के मध्यभाग में लट्वाकार तथा किनारे दन्तुर (*toothed*) होते हैं। और ऊपरी भाग की पत्तियाँ प्रायः सरल (*simple*), रूपरेखा में भालाकार, आयताकार, अथवा अग्रों पर प्रायः रेखाकार होतीं तथा एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। पुष्प २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इंच १½ इंच तक लम्बे, बैंगनी श्वेताभवर्ण के, रोमश एवं बैंगनी या पीले बिन्दुओं से युक्त होते हैं, तथा तिरछे-ऊर्ध्वमुख या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधोमुख (*sub-erect or drooping*) होते हैं। पुटपत्र (*sepals*) ½ सें० मी० से ¼ से० मी० या ⅒ इंच से ⅛ इंच लम्बे, रोमश एवं पतले भालाकार होते हैं। पत्रकोणों में एक-एक पुष्प निकलते हैं, और सम्पूर्ण व्यूह आपाततः डिजिटेलिस के पुष्पव्यूह की भाँति मालूम होता है। फली या कैप्स्यूल (*capsule*) लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च लम्बी, लम्बगोल चतुष्कोणाकार तथा अग्रपर कुण्ठित-सा (*bluntly 4-gonous*) होता है। स्फुटन (*dehiscence*) इन्हीं कोणों पर ऊपर से नीचे को (आधार को छोड़ कर) होता है, जिसमें से तीसी के समान रूपरेखा में चपटे किन्तु उसकी अपेक्षा अत्यंत क्षुद्र अनेक बीज निकलते हैं, जो रंगभेद से ३ प्रकार के होते हैं—(१) कृष्ण (काला), (२) लाल (*brown*) (३) एवं श्वेत (सफेद तिल्ली)। औषध्यर्थ प्रायः कालेतिलों से प्राप्त तैल अधिक उत्तम समझा जाता है।

उपयोगी अंग—बीज (तिल) एवं बीजों से प्राप्त तैल (तिल तेल) या रोग़न कुञ्जद।

मात्रा। बीजचूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। तैल—आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—तिलतेल एक मीठातेल, पीताभवर्ण के धुँधले द्रव के रूप में प्राप्त होता है, जिसमें एक बहुत हल्की रुचिकर गंध होती है। *0°* तापक्रम पर भी यह जमता नहीं। विलेयता—ऐल्कोहल् (९०%) में केवल अंशतः विलेय होता है। ईथर, क्लोराफॉर्म तथा पेट्रोलियम् (*Light Petroleum*) में भी कुछ मिलजाता है। आपेक्षिक गुरुत्व (*Specific Gravity at 20°*) ०.९१६ से ०.९१९। अपवर्तनांक (*Refractive Index at 40°*)—१.४६५० से १.४६६५। ऐसिड वैल्यू (*Acid Value*)—अधिकतम ४। आयोडीन वैल्यू (*Iodine Value*)—१०३ से ११२। सैपोनिफिकेशन वैल्यू (*Saponification Value*)—१८८ से १९३। परीक्षण १० मिलिलिटर (१० सी० सी०) हाइड्रोक्लोरिक एसिड में ०.१ ग्राम (१½ ग्रेन) सुक्रोज घोलें। एक परखनलिका में १ मि० लि० (सी० सी०) तिलतैल लें और उसमें उक्त हाइड्रोक्लोरिक एसिडवाला विलयन मिला कर आधा मिनट तक खूब हिलायें। अब परखनलिका को रख दें। एसिड वाला स्तर पृथक् हो जाता है, जो चमकीले लालरंग (*bright red*) का होता है और बाद में गाढ़े लाल (*dark red*) रंग का हो जाता है। अन्य स्थिर तैलों में उक्त परिवर्तन नहीं पाया जाता।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—बाजारू तिलतैल में प्रायः मूँगफली, बिनौला एवं सरसों के तेल का मिलावट किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—तिलबीजों एवं तैल को अच्छी तरह बन्द पात्रों में शीतल स्थान में रखना चाहिए और प्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन। (बीज) बीजों में ४७–५०% तक स्थिरतैल (*Fatty oil*: तिलतेल), लगभग २०% प्रोटीन, तथा अल्प मात्रा में कोलीन (*Choltne*), सेक्रोज (*Saccharose*) एवं लेसिथीन आदि तत्त्व पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त बीजों में सिसेमिआ (*Sesamia*), सिसेमोलिन (*Sesamolin*) एवं लाइपेज (*Lipase*) तथा निकोटिनिक एसिड आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं। (तेल) तिल-तेल में प्रधानतः ओलिक एवं लिनोलीक एसिड के तथा अल्पतः स्टियरिक, पामिटिक एवं अरेकिडिक एसिड (*Arachidic acid*) के ग्लिसराइड्स पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त १% तक सिसेमिन (*Sesamin*: $C_{20}H_{18}O_6$) एवं सिसेमोलिन (*Sesamolin*: $C_{20}H_{18}O_7$) आदि तत्त्व भी पाये हैं, जिनका जल-अपघटन (*Hydrolysis*) होने से फिनोल एवं सिसेमोल (*Sesamol*) आदि तत्त्व प्राप्त होते हैं।

वीर्यकालावधि। बीज—२ वर्ष। तेल—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर, अनुरस कषाय, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—केश्य। कर्म—वातशामक (योगवाही होने से अन्य द्रव्यों के संयोग से त्रिदोषशामक), स्नेहन, सन्धानीय, व्रणशोधन एवं रोपण, केश्य, मेध्य, शूलप्रशमन, रक्तस्तम्भक, श्वासनलिकामार्दवकर, वाजीकरण, आर्त्तवजनन, बल्य, वृष्य, मूत्रसंग्रहणीय आदि। यूनानीमतानुसार तिल दूसरे दर्जे में उष्ण एवं तर है। अहितकर—चिरपाकी है। निवारण—भृष्ट करना, शुद्ध मधु और चीनी। तिलतैल भी दूसरे दर्जे में उष्ण एवं तर होता है। अहितकर—दीर्घपाकी तथा आमाशय को शिथिल करता है। निवारण—प्याज एवं नीबू का रस।

मुख्य योग—तिलादि गुड़िका, तिलाष्टक।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष–आयुर्वेदीय तैलकल्पों में प्रधानतः तिलतैल ही पड़ता है। अर्श के रोगियों में तिलघटित खाद्य (तिल-कुट आदि) बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इससे दस्त साफ हो जाता है, जिससे बिवन्धजन्य दैनिक कष्ट का निवारण हो जाता है।

तुलसी

नाम। सं०–तुलसी, सुरसा। हिं०–तुलसी। पं०, गु०, बं०–तुलसी। म०–तुलस। अं०–होली बेसिल (*Holy Basil*)। ले०–ऑसीमुम सांक्टुम् (**Ocimum sanctum** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटे : *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान–तुलसी के पौधे समस्त भारतवर्ष में बगीचों में, मन्दिरों के पास एवं घरों में लगाये जाते हैं। यह सर्वत्र सुलभ एवं प्रसिद्ध है। कहीं-कहीं यह जंगली रूप से भी पायी जाती है।

संक्षिप्त परिचय–तुलसी के कोमलकाण्डीय छोटे पौधे होते हैं। जड़ के पास का काण्ड कुछ काष्ठीय होता है। पत्तियाँ अत्यंत सुगन्धित होती हैं। इसके मुख्य २ भेद होते हैं—(१) श्वेत एवं (२) कृष्ण। काली तुलसी की डालियाँ कृष्णाभ होती हैं। पुष्पमञ्जरी (*raceme*) शाखाग्रों पर निकलती है, जो १२.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ५ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी तथा ऊपर को खड़ी रहती (*erect*) है। घरेलू चिकित्सा-व्यवहार की दृष्टि से तुलसी एक महत्त्व की वनस्पति है। तुलसी के बारे में ऐसा भी विश्वास है, कि जहाँ तुलसी के क्षुप होते हैं, मच्छर भाग जाते हैं। जाड़े के दिनों में फूल-फल आते हैं।

उपयोगी अङ्ग–पत्र, बीज एवं पंचाङ्ग।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला।

बीजचूर्ण—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

क्वाथ—२ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–तुलसी के बीज लगभग $\frac{1}{16}$ इंच लम्बे, रूपरेखा में आयताकार (*oblong*), एक पार्श्व में किंचित् उन्नतोदर तथा दूसरे में चपटे, तथा काले रंग के होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयोगी अंग को सुखा कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। सर्वत्र एवं सर्वदा सुलभ होने से पत्तों का व्यवहार ताजी अवस्था में किया जा सकता है।

संगठन–पत्तियों में पीताभहरित वर्ण का उत्पत् तैल पाया जाता है, जो शुष्क होने पर क्रिस्टलीय हो जाता है। इसे तुलसी-कपूर (*Basil Camphor*) कहते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रुक्ष। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। बीज–स्निग्ध, पिच्छिल एवं शीत है। कर्म–कफवातशामक, जन्तुघ्न, दुर्गन्धनाशक, दीपन-पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, कफघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्त-शोधक, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, शोथहर। बीज–मूत्रल एवं बल्य हैं। प्रतिश्याय, वातश्लैष्मिक ज्वर एवं विषम ज्वर में तुलसीपत्र स्वरस अथवा क्वाथ एक उत्तम औषधि है। चिकित्सा में तुलसीपत्र स्वरस का व्यवहार अनुपान रूप से बहुशः किया जाता है।

विशेष–तुलसी की कतिपय अन्य जातियाँ (*Species*) भी विशेष महत्त्व की हैं—(१) ऑसीमुम बासीलिकुम (**Ocimum basilicum** *Linn.*)–यह प्रायः जोते-बोये जमीन में सर्वत्र स्वयंजात होती है। इसके बीज लवाबी होते हैं, जो पानी में भिगोने पर फूलकर चिपचिपे हो जाते हैं। (२) ऑसीमुम ग्राटीस्सिमुम (**O. gratissimum** *Linn.*) इसको रामतुलसी कहते हैं। इसके गुल्म भी प्रायः गाँवों के आस-पास परती जमीन में पाये जाते हैं। यह पूतिहर, व्रणरोपण वेदनास्थापन और कुछ-कुछ मूत्रजननधर्मवाला होता है। (३) ऑसीमुम कानुम (**O. canum** *Sims*)–इसके पतले क्षुप होते हैं, जो खेतों के आस-पास पाये जाते हैं। इसके बीज भी लुवाबी होते हैं, और पानी में भिगोने पर चिपचिपे हो जाते हैं।

तुवरक

नाम। सं०–तुवरक, कटुकपित्थ, कुष्ठवैरी। हिं०–चाल-मुगरा ? म०–कडुकवीठ, कडुकवठी। का०–गरुड फल। ता०–मखत्तायि, निरडिमुट्टु। ते०–अडविवादामु। मल०–कोडि, मखेट्टि, नोखेट्टि। ले०–हीड्नोकार्पस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काउरिफोलिया **Hydnocarpus laurifolia** (*Dennst.*) *Slemmer* (पर्याय–H· **wightiana** *Blume*)।

वानस्पतिक कुल। प्राचीनामलक-कुल (फ्लाकूर्टिआसे *Flacourtiaceae*)।

प्राप्तिस्थान–दक्षिण भारत में पश्चिमीघाट के पर्वतों पर तथा दक्षिण कोंकण और ट्रावनकोर में तथा लंका में इसके वृक्ष प्रचुरता से जंगली रूप से पाये जाते हैं।

संक्षिप्त परिचय–तुवरक के सुन्दर वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ, सीताफल (शरीफा) जैसी, मसृण एवं चमकदार तथा १२.५ सें० मी० से २५ सें० मी० या ५ इंच से १० इंच तक लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १½ इंच से ३ इंच तक चौड़ी, लट्वाकार, आयताकार भालाकार तथा लम्बे नोकवाली होती हैं। पुष्प सफेद गुच्छों में आते हैं तथा फल प्रायः गोल और छोटे सेव या कैथ के बराबर होते हैं, जिस पर सूक्ष्म कोमल रोम होते हैं। फल में छोटे बादाम जैसे पुष्कल (प्रत्येक फल में १० से २०) बीज होते हैं। बीजों का तथा इनसे प्राप्त होने वाले तेल (तुवरक) तैल–चालमुगरा तेल ?) का व्यवहार औषधि में किया जाता है।

उपयोगी अङ्ग–बीज एवं बीजों से प्राप्त तेल।

मात्रा–(१) बीजचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

(२) तैल–(१) वमन-विरेचन के लिए १ तो०।

(२) कुष्ठ एवं अनेक अन्य रोगों में कल्प चिकित्सा के लिए ५–१० बूँद से प्रारम्भ कर उत्तरोत्तर मात्रा बढ़ाते हुए ३० बूँद से ६० तक। तेल को मक्खन, घी, या मलाई के साथ मिला कर देते हैं।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। (१) बीज–तुवरक के फलों में १०से २० तक बीज निकलते हैं, जो प्रायः १½ सें० मी० या ¾ इंच लम्बे तथा कोणाकार होते हैं। कोण प्रायः कुण्ठित (*obtusely angular*) होते हैं। ताजी अवस्था में बीजों पर कुछ फल का गूदा भी चिपका होता है। इस लगे गूदे को साफ कर देने पर बीजचोल या छिलका (*testa*) खाकीरंग का होता है, जिसपर अनेक सूक्ष्म खातोदर रेखाएँ (*longitudinal grooves*) दिखाई पड़ती हैं। बीजों के अन्दर प्रचुरमात्रा में स्नेहपूर्ण गूदेदार बीजगर्भ (*oily albumen*) भरा होता है; जो दो हृदयाकार तथा चपटे गूदेदार द्विदलों (*heart-shaped cotyledons*) के रूप में होता है। उक्त गूदेदार बीजगर्भ ताजे बीजों में तो सफेदरंग का होता है; किन्तु शुष्कबीजों में यह गाढ़े भूरेरंग का हो जाता है। बीजों में एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध भी पायी जाती है। स्थूलतः बीज एवं गन्ध दोनों ही चालमुगरे के बीजों से मिलते-जुलते हैं।

(२) तेल। सं०–तुवरक तेल। हिं०–चालमुगरा तेल ? कवा का तेल (*Kava-ka-tel*)। ले०–ओलेउम हिड्नोकार्पी *Oleum Hydnocarpi* (*Ol. Hydnocarp.*)। अं०–हिड्नोकार्पस ऑयल। तुवरकतेल (हिडनोकार्पस ऑयल) एक जमने वाला स्थिरतेल (*Fatty oil*) है, जो तुवरक के पके बीजों से प्राप्त किया जाता है। बाजार में मिलने वाला हिडनोकार्पस ऑयल बीजों से कोल्हू में शीत प्रपीड़न (*cold expression*) द्वारा प्राप्त किया जाता है। साधारण तापक्रम पर यह हल्के पीलेरंग का अथवा भूरापन लिये पीले रंग का गाढ़ा तेल होता है। किन्तु २५° या इससे कम तापक्रम पर जमकर घी के समान सफेद तथा घनरूप में हो जाता है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की गंध होती है, तथा स्वाद में किञ्चित् कड़वा होता है। विलेयता–ठंढे ऐल्कोहॉल् में तो यह अंशतः घुलता (*partly soluble*) है, किन्तु गरम ऐल्कोहॉल् में पूर्णतः घुल जाता है। ईथर, क्लोरोफॉर्म तथा कार्बन-डाइ-सल्फाइड में भी मिल जाता (*miscible*) है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–सिक्किम, खसिया पर्वतमाला एवं पूर्व बंगाल में चटगाँव तक जंगलों में इस कुल के अन्य दो वृक्ष पाये जाते हैं, जो स्वरूपतः तथा गुणतः तुवरकतैल से कुछ मिलते-जुलते हैं। व्यवसाय में इनका व्यवहार 'चालमुगरा' के तेल के नाम से किया जाता है। (१) हीड्नोकार्पुस कुर्ज़िई **Hydnocarpus kurzii** (*King*) *Warb.* (पर्याय–टाराक्टोजेनोस कुर्ज़िई **Taraktogenos kurzii** *King*)। (२) जीनोकार्डिआ ओडोराटा (**Gynocardia odorata** *R. Br.*)। इनमें टाराक्टोजेनोस कुर्ज़िई के तैल का संगठन तो बहुत-कुछ तुवरकतैल का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है, किन्तु जीनोकार्डिया के तेल में चालमूग्रिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एसिड एवं हिड्नोकार्पिक एसिड नहीं पाये जाते। अतएव गुणकर्म की दृष्टि से यह तुवरक या चालमुगरा तेल का स्थानापन्न नहीं हो सकता। यह भी बीजों से कोल्हू में पेर कर प्राप्त किया जाता है। जाड़े के दिनों में तो यह जम जाता है और घी की भाँति मालूम होता है, किन्तु गर्मी में पिघल कर भूरापन लिये पीले रंग के द्रव के रूप में होता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की गंध पायी जाती है तथा स्वाद में कड़वा (*acrid*) होता है। १ मि० लि० (सी० सी०) चालमूगरे का तेल एक परखनली में लें और जसमें ½ मि० लि० या सी० सी० सल्फ्यूरिक एसिड मिलावें तो विलयन का रंग लालिमा लिये भूरे रंग का हो जाता है, जो बाद में जैतूनी हरे रंग (*olive-green*) में परिणत हो जाता है। जीनोकार्डिया के फल एवं बीज भी आपाततः देखने में तुवरक के फल एवं बीजों की भाँति होते हैं; किन्तु तुवरक के बीजों में मूलांकुर (*radicle*) अग्र पर होता है तथा सफेद होता है, जब कि जीनोकार्डिया के बीजों में यह पार्श्वस्थ (*lateral*) होता है। 'जीनोकार्डिया' के तेल की गंध कुछ-कुछ तीसी के तेल से मिलती-जुलती है। कभी-कभी 'तुवरक तेल' में हीड्नोकार्पुस की अन्य जातियों से प्राप्त बीजों का तेल भी मिला दियाजाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में तुवरक के पके फलों को एकत्रित कर भीतर के बीज निकाल कर सुखा लें। इससे बीघ दुर्वासित नहीं होते। स्थानिक संग्रह कर्ता प्रायः उत्तम बीजों के साथ दुर्वासित बीज भी संग्रह कर लेते हैं। अतएव इस बात को ध्यान में रखें। इस चूर्ण को कोल्हू में पेर कर अथवा जल के साथ पका कर तैल निकाल लें। इस तैल को घड़े में बन्द कर १५ दिन तक कंडों के चूर्ण के ढेर में ढँक दें। फिर उसे निकाल, कपड़े से छान स्वच्छ शीशियों में भर कर उनका ढक्कन ठीक तरह से बन्दकर ठंढी जगह में रखें और प्रकाश से बचावें। आजकल बाजार में काफी स्वच्छ एवं विशोधित तैल प्राप्त होता है। कुष्ठ के रोगियों में आभ्यन्तरिक सेवन के लिए यदि तैल को तिगुने खदिर क्वाथ के साथ सिद्ध कर लिया जाय तो यह और भी गुणकारी हो जाता है।

संगठन—तुवरक के बीजों से ४४% तक स्थिर तैल (तुवरक का तेल) प्राप्त होता, जिसमें प्रधानतः हिड्नोकार्पिक एसिड (४८.७%) तथा चालमूगरिक एसिड (२७%) तथा अल्प मात्रा में ओलिईक एसिड एवं पामिटिक एसिड भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध। रस—तिक्त, कटु, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—स्थानिक प्रयोग से कण्डूघ्न, जन्तुघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, कुष्ठघ्न। मौखिकसेवन से रक्तप्रसादन, कुष्ठघ्न, वामक, रेचक, कृमिघ्न, प्रमेहघ्न, वातरक्तशामक आदि। यूनानी मतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृति वालों के लिए। निवारण—दूध, घी और शर्करा।

विशेष—तुवरक तैल एक उत्तम कुष्ठनाशक औषधि है। अधुना विशिष्ट प्रकार से इसका संस्कारित तैल इंजेक्शन द्वारा भी प्रयुक्त होता है और बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

तूतमलंगा

नाम। हि०—बालंगा, बालंगू, तूतमलंगा, तोकमलंगा। बम्ब०—बालंगू, द०—बालंका। पं०—घरेइकस्माल्, तुख्म मलंगा। बाजार—तुक्मेबालुंग। अ०—बालंकू, बज़्रुल् बालंकू। फा०—बालंगू, तुख्मे बालंगू। ले०—काल्ले-मांटिआ रॉइलेआना (**Lalle-mantia royleana** *Benth.*)।

वानस्पतिक कुल। तुलसी—कुल (लाबिआटे : *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान—फारस, बलूचिस्तान तथा भारतवर्ष में पंजाब के मैदानों में (३,००० फुट की ऊँचाई तक)। पंजाब में कहीं-कहीं यह बोया भी जाता है। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्यतः (बम्बई होकर) फारस से होता है।

संक्षिप्त परिचय—तूतमलंगा के छोटे-छोटे तथा शाकजातीय एकवर्षायु पौधे (*annual herbs*) होते हैं; जिनका काण्ड किंचित् कोणाकार (*angled*) होता है। पत्तियाँ १.२५ सें०मी० से २.५ सें० मी० या ½ इंच से १ इञ्च तक लम्बी, रूपरेखा में लट्वाकार या आयताकार तथा कुण्ठिताग्र होती हैं, जिनका तट गोलदन्तुर होता है। यह आमने-सामने दो-दो (अर्थात् अभिमुखक्रम से स्थित)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती हैं। पुष्प ५/८ सें० मी० या ३/८ इञ्च लम्बे तथा हल्की गुलाबी आभा लिये हुए तथा मंजरी पर जगह-जगह चक्राकार गुच्छकों (*circular clusters*) में निकलते हैं। कोणपुष्पक आयताकार अथवा भालाकार तथा नुकीले अग्रवाले और शीघ्रपतनशील होते हैं। बाह्यकोश १/८ इञ्च लम्बा, खड़ा, द्वि-ओष्ठीय होता है। ऊर्ध्वोष्ठ में तीन कुण्ठिताग्र खण्ड होते हैं, जिनमें पार्श्वस्थ दोनों खण्ड मध्यस्थ खण्ड के नीचे होते हैं। आभ्यन्तर कोश भी प्रायः द्वि-ओष्ठीय होता है। पुंकेशर संख्या में ४ होते हैं, जिनमें दो अपेक्षाकृत छोटे तथा शेष दो लम्बे होते हैं।

उपयोगी अंग—बीज।

मात्रा—५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजार में मिलने वाले बीज काले, ५/१६ सें० मी० या १/८ इञ्च लम्बे, रूपरेखा में लंबोतरे, मसृण और तिकोने होते हैं। जल में भिगोने पर ये फूल कर शीघ्र एक प्रकार के चिपचिपा, पारदर्शक, स्वादरहित भूरे लबाब से ढंक जाते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—उत्तरभारत में तुलसी जातीय साल्विआ सांटोलीनीफोलिआ **Salvia santolinaefolia** *Boiss.* (**S. aegyptica** *L. var pamila Hook. f.*) नामक पौधे के बीजों को तुख्म बालंगा के प्रतिनिधि के रूप में व्यवहृत किया जाता है। कहीं-कहीं ड्रेकोसेफ़ालुम् राइलेआनुम् **Dracocephalum royleanum** *Benth.* (*Family*: *Labiatae*) के बीजों को भी तुख्म-सालंगा कहते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—बालंगा बीजों को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव—पहले दर्जे में गरम और तर। यह सौमनस्यजन, हृदयबलदायक तथा शीतसंग्राही एवं पुष्टिकर होता है। सौमनस्यजनन एवं हृद्य होने से हृदय की धड़कन एवं हृदयदौर्बल्य में तथा संग्राही एवं पिच्छिल होने से रक्तातिसार, मरोड़ और प्रवाहिका में देते हैं। मूत्र रोगों में मूत्रजनन एवं शामक पेय की भाँति इसका उपयोग होता है। पके फोड़ों पर स्थानिक प्रयोग से फोड़ा अपने आप फूट जाता है। एतदर्थ बीजों को जल में भिगो कर लगाया जाता है।

तेजपत्र (तमालपत्र)

नाम। सं०—पत्र, तमालपत्र। हिं०—तेजपत्ता, तेजपात, (जौनसार)—गुरन्द्रा। अ० साजजे हिन्दी। अं०—इंडियन सिन्नेमन (*Indian Cinnamon*)। ले०—सिन्नामोमुम तमाला (**Cinnamomum tamala** *Nees.*)। लेटिन एवं अंग्रेजी नाम इसके वृक्ष के हैं।

वानस्पतिक-कुल। कर्पूर-कुल (लाउरासे *Lauraceae*)।

प्राप्तिस्थान—सिन्धु नदी से लेकर भूटान तक उष्ण एवं समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में ९१४½ मीटर से २१३३½ मीटर या ३,००० फुट से ७,००० फुट की ऊँचाई तक (चकरोता, गढ़वाल, कुमायूं आदि) तथा सिलहट एवं खसिया की पहाड़ियों पर (३,००० फुट से ४,००० फुट की ऊँचाई तक) तमालपत्र के जंगली वृक्ष पाये जाये हैं। इसके सुखाये हुए पत्ते बाजारों में तेजपात के नाम से बिकते हैं। सर्वत्र मरम मसाले में इनकी काफी मात्रा में खपत होती है। भारतीय बाजारों में इसका आयात उत्तरी पूर्वी हिमालय, आसाम तथा बम्बई से होता है।

संक्षिप्त परिचय—इसके वृक्ष छोटे या मध्यम ऊँचाई के होते हैं। छाल—पतली, शिकनदार (*wrinkled*) तथा तथा गाढ़े भूरेरंग की या कृष्णाभ होती है। काट १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च मोटा, गुलाबी या ललाई लिये भूरे और बाहर की ओर श्वेत-रेखांकित होते है। पत्तियाँ एकान्तर एवं अभिमुख दोनों ही क्रम से स्थित होती हैं, और १० सें० मो० से १५ सें० मी० या ४ इञ्च से ६ इञ्च तक लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १½ इञ्च से २½ इञ्च तक चौड़ी, रूपरेखा में लट्वाकार-आयताकार, अग्र पर नुकीली या लम्बे अग्र वाली (*acute or acuminate*) तथा आधार से अग्र तक ३ शिराओं युक्त होती हैं। नवीन पत्तियाँ कुछ-कुछ गुलाबी (*pink*) रंग की होती हैं। पुष्प सफेद रंग के और प्रायः एक लिंगी होते हैं जो ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी मंजरियों में निकलते हैं। मंजरियाँ प्रायः मृदुरोमावृत (*pubescent*) होती हैं। परिदलपुंज या सवर्णकोश (*perianth*) ६—खण्डयुक्त होता है, जो मृदु रोमाग्र तथा लम्बाई की दिशा में उन्नत रेखाओं से युक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*longitudinally ribbed*) होते हैं। पुंकेसर १२, जिनमें प्रगल्भकेशर केवल ९ तथा शेष ३ वलीव केशर (*staminode*) होते हैं। यह ६-६ के २ चक्रों में स्थित होते हैं। अष्ठिल फल (*drupe*) १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च लम्बा रूपरेखा में लम्बगोल या अंडाकार, मांसल (*succulent*), पकने पर काला होता है। सवर्ण कोषखण्डों के आधारभाग स्थायी होते हैं, तथा फल के साथ लगे होते हैं। नयी पत्तियाँ अप्रैल-मई में आती हैं। पुष्पागम-फरवरी से मार्च। फलागम-जून-अक्टूबर। फल काफी दिनों तक वृक्ष पर लगे रहते हैं।

उपयोगी अंग-पत्र (तेजपात) तथा टहनियों की छाल (तज या देशीबालचीनी)।

मात्रा। क्वाथमें-३ ग्राम से ४ ग्राम या ३ माशे से ४ माशे तक।

चूर्ण एवं माजूनके रूपमें-१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशातक।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा-तेजपात की लम्बाई-चौड़ाई में काफी अन्तर पाया जाता है। सामान्यतः १५ सें० मी० या ६ इञ्च तक लम्बी तथा ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) तक चौड़ी, आयताकार (*oblong*), कुण्ठिताग्र (*obtuse-pointed*) या कुछ नोकदार, सरलधारवाली तथा आधार से अग्रतक ३ स्पष्ट शिराओंयुक्त (कभी-कभी २ शिराएँ और होती हैं, जो किनारों के पास) होती हैं। इनके बीच सूक्ष्म जालमय शिराविन्यास (*reticulate venation*) होता है। पत्तियों का रंग जैतूनीहरा (*olive-green*) होता है, तथा ऊर्ध्व पृष्ठ चिकना (*polished*) होता है। तेजपात में लौंग एवं दालचीनी की सम्मिलित सुगंधि की भाँति मनोरम गंध पायी जाती है।

संग्रह एवं संरक्षण-तमालवृक्ष जब १० वर्ष का हो जाता है, तो पत्र-संग्रह के योग्य हो जाता है। यह दीर्घायु वृक्ष होता है, और ९० वर्ष से १०० वर्ष तक जीवित रहता है। प्रगल्भ एवं परिपुष्ट वृक्षों से प्रतिवर्ष तथा पुराने एवं दुर्बल वृक्षों से एक वर्ष का अन्तर देकर पत्रों कः संग्रह किया जाता है। पत्रों का संग्रह प्रायः अक्टूबर-सितम्बर से मार्च तक किया जाता है। पत्र-बहुल छोटी-छोटी शाखाएँ काट ली जाती हैं, और उनको छायाशुष्क करके पत्र चुनलिये जाते हैं। तेजपत्र को अच्छी तरह मुखबन्द डिब्बों में रखना चाहिए।

संगठन-पत्तियों में एक उत्पत् तैल पाया जाता है, जिसमें प्रधानतः युजिनोल (*Eugenol* ७८%) पाया जाता है। इसके अतिरिक्त उक्त तैल में टर्पीन (*Terpene*) तथा सिन्नेमिक ऐल्डिहाइड (*Cinnamic Aldehyde*) भी पाया जाता है।

स्वभाव। गुण-लघु, तीक्ष्ण। रस-कटु, मधुर। विपाक-कटु। वीर्य-उष्ण। कर्म-लेखन, दीपन-पाचन, वातानुलोमन, मस्तिष्कबलदायक, मूत्रार्तवजनन, आमाशयबलप्रद, सौमनस्यजनन, सौनन्धिक। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष है। अहितकर-वस्ति एवं फुफ्फुस को। निवारण-मस्तगी और बिहोका शर्बत। प्रतिनिधि-बालछड़ एवं तज।

मुख्ययोग-दवाउल्मिस्कहार। तेजपत्र, 'त्रिजात' एवं 'चातुर्जात' का उपादानद्रव्य है। त्रिजात एवं चातुर्जात अनेक आयुर्वेदीय योगों में पड़ते हैं।

तोदरी

नाम। हिं०, भारतीय बाजार-तोदरी। अ०-वज्रुल् खुम्खुम्। फा०-तोदरी। अं०-पेपरग्रास (*Pepper-grass*), पेपरवर्ट (*Pepper-wort*)। ले०-लेपीडियम् ईबेरिस (**Lepidium iberis** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। सर्षप-कुल (क्रूसीफ़ेरे : *Cruciferae*)।

प्राप्तिस्थान-दक्षिणयुरोप से साइबेरिया तक तथा फारस में प्रचुरता से इसके स्वगंजात क्षुप पाये जाते हैं। भारतवर्ष (बम्बई) में बीजों का आयात मुख्यतः फारस से होता है। 'तोदरीबीज' पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

उपयोगी अंग-बीज।

मात्रा-६ ग्राम से १२ ग्राम (६ माशा से १ तोला)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा-यह एक कँटीले क्षुद्रवनस्पति की छोटी-छोटी फलियों के प्रसिद्ध बीज हैं, जो रंग के विचार से तीन प्रकार के होते हैं—(१) लाल (सुर्ख), (२) पीला (ज़र्द) एवं (३) सफेद। सफेदतोदरी लालभेद की अपेक्षया रंग में केवल कुछ हल्कीलाल होती है। इसका भूराभेद कभी-कभी कालीतोदरी (तोदरी स्याह) के नामसे बाजारों में मिलती है। रूपरेखा में सभी प्रकार के तोदरीबीज मिलते-जुलते हैं, जो मसूरा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार किन्तु उसकी अपेक्षा बहुत छोटे और चपटे होते हैं। सफेदतोदरी अपेक्षाकृत बड़ी और अधिक चपटी होती है। जल में भिगोने पर बीज लवाब के आवरण से आवृत हो जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–तोदरीबीजों को मुखबंदपात्रों में अनाद्रशीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–बीजों में लवाब तथा तोदरिन या लेपिडिन (*Lepidin*) नामक अक्रिस्टलीय (*Amorphous*) तिक्त सत्व पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस-मधुर, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। कर्म–वातपित्तशामक, कफघ्न, कफनिःसारक, वृष्य, बाजीकर, स्तन्यजनन, मूत्रल, बृंहण, बल्य आदि। इसका लेप रक्तिमाजनक (*rubefacient*) होता है। यूनानीमतानुसार तोदरी दूसरे दर्जे में उष्ण और पहले में तर है। अहितकर–दाह और घबराहट उत्पन्न करती है। निवारण–क्वाथ करना और पानीसे तर करना।

मुख्ययोग–बाजीकर, वृष्य, बृंहण, स्तन्यजनन एवं श्लेष्मनिःसारक होने से कास और कृच्छ्रश्वास में यह अवलेह की भाँति उपयोग की जाती है। उरः फुफ्फुस को यह सान्द्रदोषों से शुद्ध करती है। शोथघ्न होने से इसका लेप सूजन उतारता है।

तरोई कड़वी (कोषातकी)

नाम। सं०–कोषातकी, कृतवेधन, मृदङ्गफल, जालिनी। हिं०–कटतुरइआ, कड़वी तुरई। बं०–तेंतो घुंदुल। गु०–कडवां तुरीआं। म०–कडु तुरई, कडुदोडकें, रानदोडकें (तुरई)। काठियावाड़–कडवी घीसोडी। अं०–बिटर लुफ्फा (*Bitter Luffa*)। ले०–लूफ़ा आकूटांगुला प्र० आमारा **Luffa acutangula** (*L.*) *Roxb. var* **amara** (*Roxb.*) *C.B. Cl.*।

वानस्पतिक-कुल। कूष्माण्ड-कुल (कुकुरबिटासे *Cucurbitaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में कड़वी तुरई की लताएँ जंगलीरूप से पायी जाती हैं। इसकी मीठी जाति (लूफ़ा आकूटांगुला **Luffa acutangula** *Roxb.*) बोयी जाती है, और उसके फलों का व्यवहार तरकारी बनाने के लिए किया जाता है।

संक्षिप्तपरिचय–कड़वी तुरई या जंगली तुरई की लता भी उद्यानज या कर्षित (*Cultivated*) भेद की लता की ही भाँति होती है। किन्तु इसकी पत्तियाँ अपेक्षाकृत छोटी, पहले श्वेताभ एवं मृदुरोमश किन्तु प्रगल्भ पत्तियाँ कर्कश होती हैं। पुष्प भी मीठी तुरई की अपेक्षा छोटे होते हैं। फल भी अपेक्षाकृत छोटे (२ से ४ इंच लम्बे), अभिअण्डाकार (*obovoid*), दोनों सिरों पर कुछ शंक्वाकार (*obtusely conical*), २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १½ इञ्च मोटे, शीर्ष से आधारतक जानेवाली दस उन्नत रेखाओं से युक्त होते हैं। स्फुटन में शीर्षपर एक ढक्कनदार भाग अलग हो जाता है। अन्दर श्वेत-सुषिर गूदा होता है, जिसमें खीरे की-सी हल्की गंध आती है। स्वाद में फल तिक्त होता है। अन्दर खाकस्तरी रंग के बीज निकलते हैं, जिनपर जगह-जगह छोटे-छोटे काले दाग-से होते हैं। लता का सम्पूर्ण भाग तिक्त होता। अपेक्षाकृत पत्तियाँ अधिक तीती होती हैं।

उपयोगी अंग–पत्र, फल एवं पुष्प।

मात्रा। वमनार्थ–१.२५ ग्राम से १.८७५ ग्राम या १० रत्ती से १५ रत्ती। अन्यकर्मों के लिए—३७५ मि० ग्राम से ६२५ मि० ग्रा० या ३ रत्ती से ५ रत्ती। स्वरस–३ माशा से ६ माशा।

संगठन–इसके बीजरहित सूखेफल में इन्द्रायन में पाये जाने वाले कोलोसिंथीननामक सत्व के समान एक सत्व और एक कोषातकीन (लुफ्फीन *Luffein*) नामक सत्व होता है। बीज में गहरेभूरे या ललाईलिये भूरेरंग का स्थिरतेल होता है।

वीर्यकालावधि–३ वर्ष।

स्वभाव–गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–उभयतोभागहर। प्रधानकर्म–वामक, रेचक, (अल्प मात्रा में) कफनिस्सारक, रक्तशोधक, शोथहर, कफपित्तसंशोधन, कुष्ठनाशक।

मुख्य योग–चरक संहिता के कल्पस्थान अध्याय ६ में इसके अनेक कल्पों का उल्लेख है।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० १) एकोनविंशति फलिनी ओषधियों में, तथा (सू० अ० २ में कहे) वमनद्रव्यों में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

('कृतवेधन' नामसे) और सुश्रुतोक्त ऊर्ध्वभागहर एवं उभतोभागहर द्रव्यों में 'कोशातकी' भी है।

त्रायमाण (गाफिस देशी)

नाम। सं०—त्रायमाणा, त्रायन्ती, गिरिसानुजा। हिं० (सोलन—जिलाशिमला)—कडू। (कश्मीर) नीलकण्ठ, तीता, त्रामाण। अं०—इण्डियन जेन्शन (*Indian Gentian*)। ले०—जेंटिआना कुर्रु (**Gentiana kurroo** *Royle.*)। यूनानीनिघण्टुओं में 'गाफिस' के लिए ही त्रायमाण नाम का उल्लेख मिलता है। किन्तु गाफिस वास्तव में इसीकी विदेशीयजाति है, जो इससे पृथक् वनस्पति है, और फारस में होती है। इसका वैज्ञानिक नाम जेंटिआना डाहूरिका **Gentiana dahurica** *Fisch.* (पर्याय—जेंटिआना ओलीविएरी *Gentiana olivieri Griseb*) है। त्रायमाण को 'देशी गाफिस' कहसकते हैं। किन्तु इसे ही गागिस या गाफिस को ही त्रायमाण कहना उचित नहीं है।

वानस्पतिक-कुल। किराततिक्तादि-कुल : जेंटिआनासे *Gentianaceae*)।

प्राप्तिस्थान—कश्मीर तथा उत्तर-पश्चिम हिमालय प्रदेश में १५२३ मी० से ३३६७ मी० (५,००० फुट से ११,००० फुट) की ऊँचाई पर इसके क्षुप पाये जाते हैं। शिमला जिले के सोलननामक स्थान में यह 'खनोग नामक पहाड़ी' की चोटी पर होती है। वैष्णवी देवी (जम्मू के पास) के पहाड़ की चोटियों पर भी यह पैदा होती है। बाजारों में त्रायमाण के नाम से प्रायः अनेक भिन्न औषधियाँ मिलती हैं। अतएव उपर्युक्त वास्तविक त्रायमाण को उद्भवक्षेत्र के ही व्यापारियों से प्राप्त करना चाहिए।

संक्षिप्तपरिचय—त्रायमाण के कोमल काण्डीय छोटे-छोटे क्षुप होते हैं, जो पहाड़ की चट्टानों के बीच-बीच गढ़ों में निकलते हैं। काण्ड १० सें० मी० से २५ सें० मी० या ४ इंच से १० इञ्च ऊँचा और शाखारहित होता है। इसका मूलस्तम्भ (*Rootstock*) भौमिककाण्ड (या राइजोम एवं जड़) ४ से ६ अंगुल गहरी पत्थरों के बीच में होता है। ऊपर १-४ लम्बे पत्ते (*radical leaves*) होते हैं, जो ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० × $\frac{५}{८}$ सें० मी० से $\frac{५}{४}$ सें० मी० (१ इंच—५ इञ्च × $\frac{१}{४}$ से $\frac{१}{२}$ इंच) होते तथा चट्टान पर बिछे होते हैं। काण्ड की पत्तियाँ छोटी (२.५ सें० मी० या १ इंच तक लंबी) और कम चौड़ी तथा रेखाकार (*linear*) होती हैं। पुष्प नीलेरंग के किन्तुश्वेत बिंदुओं से चित्रित; ४.३७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१$\frac{३}{४}$ इञ्च से २ इञ्च) लम्बे एवं व्यास में १$\frac{५}{८}$ सें० मी० या $\frac{३}{४}$ इञ्च होते हैं, जो अकेले (*solitary*) या २-३ साथ-साथ निकलते हैं। आभ्यन्तरकोष (*corolla*) बाह्यकोष (*calyx*) की अपेक्षा दुगुना बड़ा होता है। बाह्यकोष ५ रेखाकार खण्डयुक्त, किन्तु आभ्यन्तरकोष के खण्ड लट्वाकार एवं नुकीले अग्रवाले होते हैं। पुष्पागम सितम्बर में होता है तथा फल (*capsule*) आयताकार (*oblong*) $\frac{५}{८}$ सें० मी० या $\frac{३}{४}$ इंचतक लम्बा एवं $\frac{१}{२}$ सें० मी० या $\frac{१}{८}$ इञ्च चौड़ा होता है। बीजों की लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी होती है।

उपयोगी अंग—शुष्क मूलस्तम्भ (जड़ एवं राइज़ोम) तथा पंचाङ्ग।

मात्रा। चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।
स्वरस—१ तोला २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—त्रायमाण (जेंटिआना कुर्रु) का मूलस्तम्भ बहुवर्षायु स्वरूपका होता है, और जमीन के अन्दर फैलता है। जड़ मटमैले सफेद रंग की होती है, जिसका शीर्ष (अग्र) ग्रंथिल (*knotty*)सा होता है, जहाँ से बेलनाकार (*cylindrical*) कुछ-कुछ चतुष्कोणाकार (*bluntly quadrangular*) ७,५ सें०मी० से १५ सें० मी० या ३ इञ्च से ६ इञ्च लम्बे, खड़े अनेक भौमिक काण्ड या राइजोम (*erect rhizomes*) निकले होते हैं। औषधि में राइजोम का ही भाग अधिक होता है। राइजोम के प्रत्येक पार्श्व पर एक कतार में टूटे हुए सूत्राकार उपमूलों (*rootlets*) के चिह्न होते हैं। मूल एवं राइजोम कुछ टेढ़े-मेढ़े (*twisted*) तथा बाह्य तल पर अनुलम्बन दिशा में झुर्रीदार (*longitudinally wrinkled*) होते हैं। केवल राइजोम अग्रकी ओर अनुप्रस्थ दिशा में मुद्रिकाकार, झुर्रीदार (*anunlate and transversely wrinkled*) होते हैं। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर एधा-रेखा (*cambium line*) स्पष्ट मालूम होती है, जिसके बाहर की ओर पीताभ भूरेरंग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का त्वक् (*bark*) का भाग तथा अन्दर या केन्द्र की ओर काष्ठीय भाग होता है, जो बनावट में विरल या सरंध्र (*porous*) होता है। तथा तन्तु कुछ अरवत् (*radiate*) स्थित होते हैं। राइजोम का काष्ठीय भाग कुछ चतुष्कोणाकार होता है। राइजोय तथा मूल दोनों ही स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं। त्रायमाण (देशी जेन्शन) भी स्वाद एवं गंध में विदेशी त्रायमाण से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं, और जल-विलेय सत्व (*Aqueous Extract*) कम-से-कम २०% तथा भस्म अधिकतम २% प्राप्त होती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—त्रायमाण (जेंटिआना कुर्रु) में कुटकी (पीक्रोहीज़ा कुर्रोआ **Picrorhiza kurroa** *Linn.* (*Family* : *Scrophulariaceae*) तथा जेंटिआना की अन्य जातियों यथा जेंटिआना डेकुम्बेन्स (**Gentinaa decumhens** *Linn. f.*) तथा जेंटिआना टेनेल्ला (**G. tenelle** *Fries*) आदि की जड़ों का मिलावट किया जाता है। आपाततः देखने में तथा स्वाद में उक्त जड़ें त्रायमाण की जड़ों से कुछ-कुछ मिलती हैं, और इनका उद्भवक्षेत्र भी प्रायः वही है।

वक्तव्य—भारतीय बाजारों में अन्य अनेक जड़ें भी 'त्रायमाण' के नाम से बेची जाती हैं, किन्तु त्रायमाण के नाम से इनका ग्रहण नहीं होना चाहिए। (१) फा०—जरीर। बम्ब० बाजार—गुलजलील। ले०—डेल्फीनिउम् ज़लील **Delphinium zalil** *Ait.* (*Family* : *Ranunculaceae*)। (२) ममीरा (**Coptis teeta**), एवं (३) ममीरी (**Thalictrum foliolosum**) आदि वत्सनाभ-कुलीय वनस्पतियों की जड़ें भी कभी-कभी त्रायमाण के नाम से बेची जाती हैं, किन्तु इनको त्रायमाण मानना भ्रमपूर्ण है। (४) बंगीय त्रायमाणा—**Ficus heterophylla** *Linn.* (भुइडुमुर) के शुष्क फलों (बलाडुमुर) को बंगीयवैद्य त्रायमाणा के नाम से ग्रहण करते हैं। कोई-कोई बनफशा (बनपुष्पा) को त्रायमाणा मानते हैं। किन्तु त्रायमाणा के नाम से इन द्रव्यों का ग्रहण करना नितान्त भ्रमपूर्ण ही है।

संग्रह एवं संरक्षण—त्रायमाण की जड़ों का संग्रह सितम्बर के महीने में पुष्पागम होने के बाद करना चाहिए, और इन्हें मिट्टी आदि से साफ कर छायाशुष्क करके मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—त्रायमाण की जड़ों में एक तिक्तसत्व तथा २०% तक पीलेरंग का रेज़िन पाया जाता है। अन्य नकली प्रजातियों में रेजिन का अभाव होता है, या यह कम मात्रा में पायी जाती है।

वीर्यकालावधि—३ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, पित्तसंशोधन, दीपन, आम-पाचन, पित्तसारक, कटुपौष्टिक, अनुलोमन, रेचन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, शोथहर, मूत्र—स्वेदजनन, ज्वरघ्न, आर्त्तवजनन, स्तन्यशोधन, कुष्ठघ्न। बाह्यप्रयोग से व्रणशोधन, रोपण, एवं केश्य होता है। वक्तव्य—त्रायमाण, विलायतीजेन्शन (जेंटिआना लूटेआ **Gentiana lutea** *Linn.*) की उत्तम प्रतिनिधि औषधि है।

विशेष—चरकोक्त (वि० अ० ८) तिक्तस्कन्ध एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) लाक्षादिगण में 'त्रायमाणा' भी है।

दन्ती

नाम। सं०—दन्ती, प्रत्यक्श्रेणी, उदुम्बरपर्णी, निकुम्भा। हिं०—दंती। म०—दांती। मुंगेर—ताँबा। ले०—बालिओस्पेर्मुम मोंटानुम **Baliospermum montanum** (*Willd.*) *Mull. Arg.* (पर्याय—*B. axillare Bl.*)।

वानस्पतिक कुल। एरण्ड-कुल (एउफ़ार्बिआसे : *Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय की बाहरी पर्वतश्रेणियों में कश्मीर से भूटान तक (९१४.४ मीटर या ३,००० फुट की ऊँचाई तक) तथा आसाम, खसिया की पहाड़ियों, बंगाल, बिहार, मध्यभारत, दक्षिण भारत में ट्रावन्कोर तक दंती के जंगली क्षुप पाये जाते हैं।

संक्षिप्त परिचय—दंती के गुल्म (*undershrub*) ०.९ से १.८ मीटर या ३ फुट से ६ फुट तक ऊँचे, तथा अनेक मूलोद्भूत शाकीय शाखाओं से युक्त और काष्ठीय मूलस्तम्भ वाले होते हैं। पत्तियाँ सवृन्त (वृन्त ५ सें० मी० से १५ सें० मी० या २ इञ्च ६ इञ्च लम्बे) तथा एकान्तरक्रम से स्थित और नीचे से ऊपर तक इनके कद और आकार में प्रायः बड़ी भिन्नता होती है। ऊपर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की ओर की पत्तियाँ प्रायः छोटी, मालाकार या पक्षाकार शिराजाल युक्त और नीचे की ओर की लट्वाकार, बहुत बड़ी और प्रायः करतलाकार ३-५ विच्छेदों वाली होती हैं। इनकी कुछ पत्तियाँ उदुम्बरपत्रसदृश होती हैं। पुष्प एकलिंगी, छोटे तथा हरिताभवर्ण के होते हैं। पुं०–पुष्प एवं स्त्रीपुष्प प्रायः एक ही पौधे पर (*monoecious*) पाये जाते है। पुंकेसरवृन्त ¼ सें० मी० से ½ सें० मी० (१/१० इञ्च से ३/१० इञ्च) लम्बे तथा मंजरियों पर गुच्छबद्ध (*interrnpted racemes*) होते हैं। पुं०–पुष्प एवं स्त्री-पुष्प प्रायः दोनों में ही आभ्यन्तरकोष का अभाव होता तथा स्त्रीपुष्पों में कुक्षिवृन्त (*style*) काफी मोटी, द्वि-विभक्त तथा मटमैले लालरंग की होती है। फल (*capusule*) ½ सें० मी० से ¾ सें० मी० (३/१० इञ्च से ¼ इञ्च) तक लम्बा, किंचित् रोमश तथा तीन-खण्डों वाला (*3-lobed*) होता है, जिनमें ३ बीज निकलते हैं। उक्त बीज भूरी बाह्यवृद्धि से युक्त होते हैं, और आपाततः देखने में एरण्डबीजवत् मालूम होते हैं। दन्ती में प्रायः वर्षभर फूल-फल मिलते हैं। 'मूल' एवं 'दंतीबीज' का उपयोग चिकित्सा में होता है, जो भेदन एवं रेचन होते हैं।

उपयोगी अंग–मूल, बीज एवं पत्र।

मात्रा। 'मूलचूर्ण' १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

(बीज) १२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० ½ रत्ती से १ रत्ती।

संग्रह एवं संरक्षण–दन्तीमूल एवं बीजों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में पृथक् विषैली औषधियों के साथ रखें और उस पर एक लेबिल भी लगा देना चाहिए;

संगठन–दंतीमूल में राल (रजिन) तथा स्टार्च होता है। बीजों में एक स्थिरतैल प्राप्त होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व (*S. G. at 13°*)–०.९३८ से ०.९४३। सेपोनिफिकेशन वैल्यू–२०७ से २१५।

वीर्यकालावधि। मूल–१ वर्ष। बीज एवं तैल–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफपित्तहर, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक विरेचन, कृमिघ्न, शोथहर, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, विकाशी, विषघ्न, कुष्ठघ्न, अश्मरीनाशन। मूल एवं बीज का लेप शोथहर एवं वेदनास्थापन होता है। इसके प्रयोग से पेट में मरोड़ तथा हृल्लास आदि लक्षण होते हैं। मात्रातियोग होने पर क्षोभक तथा मादक लक्षण होते हैं। मरोड़ एवं हृल्लास आदि के निवारण के लिए इसे सौंफ आदि सुगंधित द्रव्यों के साथ क्वाथ बना कर देना चाहिए। मात्रातियोगजन्य उपद्रवों के प्रगट होने पर मधुर-स्निग्ध पदार्थ, शर्बत, दूध आदि का सेवन करें।

उपयोग–दन्तीबीज एवं बीजोत्थतैल, जयपाल (जमालगोटा) तथा जयपालतैल की भाँति तीव्ररेचन होते हैं। दंतीमूल शोथघ्न, भेदन एवं ज्वरघ्न होता है। दंतीमूल से यकृत् की क्रिया सुधरकर दूषितपित्त मलद्वारा निकल जाता है। विबन्धयुक्त ज्वर में भी यह लाभप्रद होता है। जलोदर, हृदयोदर, यकृदुदर और वृक्कोदर आदि उदररोगों में तथा कामला में 'दंतीमूल' का प्रयोग विरेचनार्थ एवं दोषनिर्हरण के लिए कियाजाता है। शरीर-उपचयापचय क्रिया (*metabolic processes*) की विकृति से उत्पन्न दोषों के संचय से नानाप्रकार के त्वचारोग उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्थाओं में दंतीमूल का क्वाथ देने से दोषों का निर्हरण होता, क्रिया में सुधारहोकर विकृतियों का शमन होता है। यकृन्मन्दताजन्य अग्निमांद्य तथा अर्श एवं कृमिरोग में भी इसका व्यवहार किया जाता है। अश्मरीरोग, रक्तविकार एवं सर्वांगशोफ में भी दन्ती का प्रयोग उपयोगी है। शोथ, वेदना, अर्श आदि में दन्तीमूल का स्थानिक प्रयोग लेप के रूप में किया जाता है। वातव्याधि एवं आमवातादि में तेल के मिश्रण का व्यवहार अभ्यंग के लिए करते हैं।

मुख्य योग–दन्त्यरिष्ट, दन्त्यादिचूर्ण, दन्तीहरीतकी। चरक कल्पस्थान अ० १२ में दन्ती के अनेक कल्पों का उल्लेख है।

विशेष–चरकसंहिता में दन्ती, द्रवन्ती एवं नागदन्ती इन तीनों का एकत्र उल्लेख मिलता है। 'दन्ती' और 'द्रवन्ती' का चरक और सुश्रुत में प्रायः साथ ही उल्लेख पाया जाता है। उक्त तीनों औषधियाँ गुण-कर्म की दृष्टि से प्रायः बहुत-कुछ समानता रखती हैं। दन्ती का वर्णन किया गया है। (नागदन्ती) नाम। सं०–हस्तिदन्ती, नागदन्ती। म०–घणसर। मुंगेर–पोतेर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुतेर। राँची–पुतरी। खर०–भैसवान। को०–कुटीर। ले०–क्रोटॉन आबलांगीफोलिउस **Croton oblongifolius** *Roxb.* (*Family* : *Euphorbiaceae*)। नागदन्ती के छोटे वृक्ष होते हैं, जो हिमालय की तराई में अवध से लेकर पूरब में बिहार, बंगाल, सिलहट आदि तथा मध्यभारत एवं दक्षिणभारत में प्रचुरता से पाये जाते हैं। नागदन्ती के मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं, जिसकी पत्तियाँ शाखाओं पर समूहबद्ध पायी जाती हैं। यह सवृन्त, ५ इंच से १० इंच लम्बी, रूपरेखा में आयताकार–भालाकार तथा दन्तुरधारवाली होती हैं। पुष्प छोटे, हरित-पीत एवं एकलिंग, ५ इञ्च से १२ इंच लम्बी मंजरियों में लगते हैं। फल $\frac{1}{10}$ इञ्च लम्बे तथा गोलाई लिये तीन खण्डों वाले मालूम होते हैं। बीज चिकने और भूरे होते हैं। औषधि में इसके 'बीज' एवं 'मूलत्वक्' का व्यवहार होता है। 'द्रवन्ती' के विषय में अभी तक कोई निश्चित मत स्थापित नहीं हो सका है।

दरियाई नारियल–दे०; 'नारियल'

दारुहल्दी

नाम–(१) काष्ठ। सं०–दारुहरिद्रा, कटङ्कटेरी, पचम्पचा, दार्वी। हिं०–दारुहलदी। जौनसार–काशमोइ। गढ़०–किगोरा। बं०–दारुहरिद्रा। नेपाल–चित्रा, कष्प्रल। म०–दारुहलद। गु०–दारुहलदर। अ०–दारहल्द। फा०–दारचोबा। ले०–बेर्बेरिस आरिस्टाटा (**Berberis aristata** *DC.*)। (२) फल। हिं०–जरिष्क। फा०–ज़रिष्क; ज़िरिष्क। अ०–अम्बरबारीस। अं०–बरबरी फ्रूट या बेरीज़ (*Barberry Fruit or Berries*)। (३) रसक्रिया। हिं०–रसवत, रसौत। सं०–रसाञ्जन। म०; बं०–रसाञ्जन। गु०–रसवंती। नेपाल–रसवंती। 'बेर्बेरिस आरिस्टाटा' नाम इसके गुल्म का है।

वानस्पतिक कुल। दारुहरिद्रा-कुल (बेर्बेरिडासे *Berberidaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालयप्रदेश में १८२९ मीटर से ३१४६ मीटर या ६,०००–१०,००० फुट की ऊँचाई तक (विशेषतः नेपाल में) दारुहरिद्रा की स्वयंजात झाड़ियाँ पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त यह बिहार, पारसनाथ की पहाड़ी एवं नीलगिरी में भी पायी जाती है। इसकी अन्य कई जातियाँ भी हैं, जिनका प्रयोग दारुहरिद्रा की ही भाँति होता है। इनमें तीन जातियाँ मुख्य हैं—(१) बेर्बेरिस आशिआटिका (**Berberis asiatica** *Roxb.*)। (२) बर्बेरिस लीकोडम् (**B. lycium** *Royle*) तथा (३) बर्बेरिस चित्रिआ (**B. chitria** *Lindl.*)। ये जातियाँ भी हिमालय प्रदेश में पायी जाती हैं। बाजारों में सर्वत्र इसका काष्ठ एवं मूल (जो पीलेरंग का होता है) दारुहल्दी के नामसे तथा 'रसक्रिया' रसवत के नाम से और फल ज़रिष्क या झरिष्क के नाम से मिलते हैं।

संक्षिप्तपरिचय–दारुहरिद्रा के १.५ मीटर से ४.५–५.४ मीटर (५ फुट से १५–१८ फुट) ऊँचे कँटीले क्षुप या गुल्म होते हैं, जिनके काण्डस्कन्ध व्यास में २० सें० मी० या ८ इंच तक मोटे होते हैं। शाखा-प्रशाखाएँ संख्या में अधिक तथा श्वेताभ या पीताभ खाकस्तरीरंग की, पत्तियाँ ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ३ इंच लम्बी, मोटी, मजबूत तथा चौड़ी–अभिलट्वाकार, अधस्तल पर खाकस्तरी, दृढ़-स्पष्ट शिराविन्यासयुक्त तथा दूर-दूर पर तीक्ष्ण काँटों से युक्त होती हैं। पत्रतट सरल (अखण्डित) या दूर-दूर दन्तुर होता है। पुष्प व्यास में $\frac{1}{2}$ सें० मी० या $\frac{1}{4}$ इंच हल्के पीले रंग के होते हैं, जो सघन समशिख-सी मंजरियों में निकलते हैं। फल या बेरी (*berries*) १ सें० मी० से $\frac{3}{4}$ सें० मी० या $\frac{3}{8}$ इंच से $\frac{1}{2}$ इंच तक लम्बे, अण्डाकार, नीले या कृष्णाभवर्ण के और रजावृत होते हैं। पुष्पागम वसन्त में तथा फलागम गर्मियों में होता है। फल (ज़रिष्क) मृदुसारक होते हैं।

उपयोगी अंग। मूल, काण्डकाष्ठ, फल, रसवत।

मात्रा। फल (ज़रिष्क)—६ ग्राम से १२ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।

रसवत —$\frac{1}{2}$ ग्राम से १ ग्राम या $\frac{1}{2}$ सें १ माशा (ज्वरघ्न २ माशा)।

दारुहल्दी —३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। (काण्ड) बाजार में दारुहल्दी के छोटे-बड़े खण्ड बिकते हैं। छाल कार्कयुक्त (*corky*) एवं हल्के भूरे-रंग की होती है। छाल के नीचे अश्मकोषाओं (*stony-*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

cells) का स्तर पाया जाता है। केन्द्रस्थ भाग सघन कोषाओं का होता है, जिसमें स्टार्च के कण पाये जाते हैं। दारुहल्दी की लकड़ी, हल्दी के समान पीले-रंग की, स्वाद में तिक्त एवं मंद गंधयुक्त होती है। इसमें पीलेरंग का जल में घुलनशील एक रञ्जक-तत्त्व पाया जाता है। (मूल) दारुहल्दी की जड़ छोटे-बड़े पीताभ भूरेरंग के बेलनाकार एवं ग्रंथिल टुकड़ों के रूप में होती है। मूलत्वक् अन्दर से गाढ़े भूरेरंग की, किन्तु बाहर हल्के भूरेरंग की, स्वाद में अत्यन्त तिक्त और मुलायम होती है, जो तोड़ने पर भुरभुरी टूटती है। काष्ठीयभाग जम्बीरवत् पीलेरंग का होता है। काष्ठ में प्रायः मज्जक (*pith*) का अभाव होता है, किन्तु जब पाया जाता है, तो यह चमकीले पीलेरंग का होता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम–२% होते हैं और काण्ड का भाग अधिकतम ५%। अम्ल में अविलेय भस्म–अधिकतम २%। ऐल्कलायड्स की सकलमात्रा–कम से कम १%। जरिष्क प्रायः परस्पर चिपके होने के कारण छोटे-बड़े कृष्णाभ पिण्डों के रूप में आता है। अधिकांश फलों में बीज नहीं होता। बीज लम्बगोल या आयताकार और $\frac{3}{8}$ सें० मी० या $\frac{3}{20}$ इंच तक लम्बे होते हैं। जरिष्क स्वाद में खटमिट्ठा होता है। (रसवत) यह दारुहरिद्रा मूल एवं काण्ड के अधःभाग के काष्ठ से रसक्रिया द्वारा बनाया घनसत्व होता है, जो कृष्णाभ पीतवर्ण के अनियमित स्वरूप के पिण्डाकार टुकड़ों के रूप में मिलता है। स्वाद में रसवत कसैलापन लिये तिक्त होता है। जल में यह तुरन्त घुल जाता है, जिससे पीलेरंग का विलयन प्राप्त होता है। इस विलयन में और अधिक जल मिलाने से चमकीले पीलेरंग का हो जाता है। अरबी में इसे 'हुजुज़' कहते हैं। अरबी रसवत 'हुजुज़-मक्की' के नाम से मिलता है। बाजारू रसवत में प्रायः अपद्रव्य भी मिले होते हैं। अतएव प्रयोग के पूर्व इसका शोधन कर लेना चाहिए।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दारुहरिद्रा एवं जरिष्क का प्रधान प्राप्ति साधन बेर्बेरिस आरिस्टाटा जाति है। किन्तु साथही साथ इसकी अन्य जातियाँ (*Species*) भी पायी जाती हैं, जो स्वरूपतः उक्त प्रजाति से बहुत मिलती-जुलती हैं और प्रायः उन्हीं नामों से अभिहित भी की जाती हैं। अतएव संग्रह में इनके मिलावट की संभावना भी रहती है। इनमें कतिपय का रासायनिक संघटन भी न्यूनाधिक रूप से बेर्बेरिस आरिस्टाटा की ही भाँति है :—(१) बेर्बेरिस चित्रिआ (**B. chitria** *Lindl.*)–यह भी काशमोई (जौनसार) तथा किंगोरा (गढ़वाल) नामों से प्रसिद्ध है, और ६,०००–९,००० फुट की ऊँचाई के प्रदेशों में पायी जाती है। शाखाएँ प्रायः गहरे लालरंग की होती हैं, तथा फल लाल और रजहीन, पत्तियाँ चर्मवत्, शिराजाल अस्पष्ट, दोनों पृष्ठोंपर कुछ-कुछ चमकदार और पुष्पमञ्जरी सशाख होती है। इसमें पुष्प एवं फल, 'आरिस्टाटा जाति' की अपेक्षा कुछ पहले ही होता है। इससे भी 'दारुहरिद्रा' एवं 'जरिष्क' प्राप्त कियाजाता है। (२) बेर्बेरिस आशिआटिका (**B. asiatica** *Roxb. ex. DC.*)–इसको भी देहरादून एवं गढ़वाल आदि में 'किंगोरा' कहते हैं। पहली की अपेक्षा यह जाति प्रायः कम ऊँचाई के क्षेत्रों में (९१४ मीटर से १५२३ मीटर या ३,००० फुट से ५,००० फुट कभी-कभी १८,०० फीट २,००० फीट पर भी) पायी जाती है। इसका काष्ठभाग भी दारुहरिद्रा की भाँति पीतवर्ण का होता है। पत्तियाँ चिकनी, अखण्ड या कण्टकीदन्तुर धारवाली और २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (१ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बी होती हैं। इसके ऊपर निःशाख अथवा पाँच तक शाखाओं से युक्त काँटे और पीले पुष्प होते हैं, जिनके बाह्य एवं आभ्यन्तर कोश दोनों में ३–३ दलों के दो-दो चक्र होते हैं। फल (*berries*), अण्डाकार, १ सें० मी० से $\frac{5}{8}$ सें० मी० ($\frac{3}{8}$ इञ्च से $\frac{1}{4}$ इञ्च) तक व्यासके तथा काले या बैंगनी नीलेरंग के, और खटमिट्ठे होते हैं। इसके फलों एवं काष्ठ का भी संग्रह 'जरिष्क' एवं 'दारुहरिद्रा' के नाम से किया जाता है। (३) बेर्बेरिस लोकिउम (**B. lycium** *Royle.*)–यह भी जौनसार में 'चतरोई' एवं 'काशमल' नामों से प्रसिद्ध है। इसके क्षुप अपेक्षाकृत छोटे और समूहबद्ध ३,००० फुट से ७,००० फुट की ऊँचाई के क्षेत्रों में पाये जाते हैं। चकरौता तथा मसूरी के नीचे इसके क्षुप प्रचुरता से मिलते हैं। इसका उपयोग भी उपर्युक्त दोनों जातियों की ही भाँति होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण—'दारुहल्दी' का संग्रह वर्षा के बाद में कर, उसको मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। 'रसवत' एवं 'झरिष्क' को चौड़े मुँह की शीशियों में अच्छी तरह डाटबंद करके अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। नमी से बचाना चाहिए।

संगठन—दारुहरिद्रा में बर्बेरीन (*Berberine* $C_{20}H_{19}NO_6$), ऑक्सी-अकेन्थीन एवं बर्बेमीन तथा अन्य अनेक ऐल्कलाइड्स पाये जाते हैं, किन्तु इनमें बर्बेरीन ही विशेष महत्त्व का है। बर्बेरीन के पीलेरंग के सूच्याकार छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं, जो ठंढे जल में भी सुविलेय होते हैं। इसका जलीय विलयन स्वाद में तिक्त तथा लिटमस की प्रतिक्रिया में उदासीन (*Neutral*) होता है। जरिष्क में चिञ्चाम्ल या टार्टरिक एसिड (*Tartaric acid*) एवं सेवाम्ल या मेलिकएसिड पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। जरिष्क—१ वर्ष।

रसवत एवं दारुहरिद्रा—कईवर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रुक्ष। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। फल (झरिष्क)—मधुर—अम्ल रस-युक्त एवं शीतवीर्य होता है। रसवत—तिक्तरसप्रधान एवं शीतवीर्य होता है। कर्म—कफपित्तहर, (फल) पित्तशामक, स्थानिक प्रयोग से दारुहरिद्रा एवं रसवत शोथहर, वेदना-स्थापन, व्रणरोपण तथा चक्षुष्य होते हैं। मौखिक-सेवन से दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, ग्राही (अधिक मात्रा में मृदुरेचन), रक्तशोधक; (रसाञ्जन) रक्तस्तम्भक, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, विषमज्वर-प्रतिबन्धक, कफघ्न, गर्भाशय के शोथ एवं स्राव को रोकने वाला है। यूनानीमतानुसार दारुहल्दी पहले दर्जे में शीत एवं रूक्ष तथा रसवत (उसारए दारहलद) एवं जरिष्क दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष (खुश्क) होते हैं। अहितकर (दारुहल्दी)—उष्ण प्रकृति के लिए; रसवत—प्लीहारोग में; जरिष्क—कफप्रकृतिवालों के लिए। (निवारण) दारुहलदी—बिजौरा या नारंगी का अर्क; (रसवत)—अनीसून; (जरिष्क)—शर्करा और लौंग। दारुहलदी एवं रसाञ्जन दोनों व्रणशोधन एवं व्रणरोपण होते हैं। वेदनायुक्त शोथों पर इनका लेप के रूप में प्रयोग किया जाता है। नेत्राभिष्यंद में रसवत को गुलाबजल में घोल-छान कर उक्त द्रव को आँखों में डालने से उपकार होता है। नेत्रशोथ में पलकों पर भी रसाञ्जन का लेप किया जाता है। लेपार्थ, रसौत, फिटकरी, और अफीम को नीबू के रस में पीस कर व्यवहृत किया जाता है। श्वेदप्रदर और गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न अत्यार्तव में दारुहलदी का क्वाथ या रसौत मुख द्वारा तथा उत्तरवस्ति के रूप में व्यवहृत करने से लाभ होता है। थोड़ीमात्रा में दारुहलदी कटुपौष्टिक, दीपन और सौम्य ग्राही है। बड़ीमात्रा में जोरदार स्वेदल, ज्वरहर और मृदुरेचक है। बड़ी मात्रा में यह पर्यायज्वर प्रतिबंधक होती है, तथा इसकी क्रिया कुनैन की भाँति होती है। फिरंग, उपदंश, गंडमाला, अपची, नाड़ीव्रण, भगन्दर, व्रण और विसर्प में भी दारुहलदी से लाभ होता है। एतदर्थ इसको ल्यानिक तथा मौखिक दोनों प्रकार से व्यवहृत करते हैं। रक्तार्श, रक्तप्रदर आदि में रसवत को अकेले अथवा नागकेशर या खूनखराबा आदि अन्य रक्तस्तम्भक द्रव्यों के साथ देने से लाभ होता है। जरिष्क पित्तसंशमन एवं रक्तोद्वेगसंशमन है। यह उष्ण यकृदामाशय के संताप को शमन करता है। पित्तज रोगों में विशेषकर पित्तजज्वरों को शमन करने तथा वमन एवं उत्क्लेशनिवारण के लिए इसे अर्क में पीस-छान पिलाते हैं। पित्तज प्रकृति के लोगों के लिए तथा पैत्तिक रोगी में इसको आहार में मिला कर भी खिलाते हैं।

वक्तव्य—बर्बेरीन सल्फेट का उष्णकटिबन्धज व्रण (*Tropical Ulcer and Delhi Sore*) में अधस्त्वक् एवं अन्तस्त्वक् इंजेक्शन करने से बहुत लाभ होता है। इसके एम्पूल्स सम्प्रति बाजारों में मिलते हैं।

मुख्यप्रयोग—दार्व्यादि क्वाथ, दार्व्यादि लेह, दार्व्यादि तैल। जरिष्कके योग—सफ़ूफ़जरिष्क, जुवारिशजरिष्क, क्रुर्सजरिष्क।

विशेष—(१) रसाञ्जन निर्माणविधि—दारुहलदी के छोटे-छोटे टुकड़े करके १६ गुने जल में उबालें। जब चतुर्थांश शेष रहे, उतार कर छान लें। इसमें पुनः बराबर मात्रा में गाय या बकरी का दूध मिला कर पुनः मन्दाग्नि पर पाक करें। जब गाढ़ा हो जाय उतार लें। यही रसाञ्जन या रसवत है।

(२) रसाञ्जन शोधन—बाजारू रसवत में प्रायः अपद्रव्य भी काफी मिला होता है। अतएव इसको शुद्ध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करके ही व्यवहृत करना चाहिए। एतदर्थ इसे चौगुने पानी में घोल कर १–२ घंटा रख छोड़ें। अब ऊपर का पानी निथार, कपड़े से छानकर मंदाग्नि पर रसकिया जैसा गाढ़ा कर लें।

(३) चरकोक्त (सू० अ० ४) लेखनीय, अर्शोघ्न तथा कण्डूघ्न गण एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) हरिद्रादि, मुस्तादि एवं लाक्षादिगण के द्रव्यों में 'दारुहरिद्रा' भी है।

दालचीनी (त्वक्) एवं तज

नाम। (१) छाल (सं०)–त्वक्, गुड़त्वक्। हिं०–दालचीनी। म०–दालचीनी। बं०–दारुचिनि। अ०–दारसीनी, क़िर्फ़ा। फा०–दारचीनी। अं०–सिन्नेमन् (*Cinnamon*), सिन्नेमन् बार्क (*Cinnamon Bark*)। ले०–सीन्नामोमुम् *Cinnamomum* (*Cinnam.*), सीन्नामोमी कॉर्टेक्स (*Cinnamomi Cortex*)।

(२) तेल (हिं०) दालचीनीका तेल। फा०–रोग़न दारचीनी। अं०–ऑयल ऑव सिन्नेमन् (*Oil of Cinnamon*)। ले०–ओलेउम् सिन्नामोमी *Oleum Cinnamomi* (*Ol. Cinnam.*)।

(३) वृक्ष–सीन्नामोमुम् ज़ेइलानिकुम् (**Cinnamomum zeylanicum** *Nees.*)।

वानस्पतिक-कुल। कर्पूर-कुल (लाउरासे (*Lauraceae*)।

प्राप्तिस्थान–मूलतः यह लंका का वृक्ष है। लंका, दक्षिण भारत, सिकेलीज द्वीप (*Seychelles*), जावा, जमैका आदि में जंगलीरूपसे भी पायाजाता है। उक्त स्थानों में इसकी खेती कीजाती है। उत्तम छाल लगाये हुए वृक्षों की होती है। इनमें भी लंका की दालचीनी' सर्वोत्तम होती है। बाजारों में यह सिंहली दालचीनी (*Ceylon Cinnamon*) के नाम से मिलती है। अधुना फ्रेंचगायना, ब्रेंजिल एवं पश्चिमी द्वीपसमूह में भी इसकी खेती होने लगी है।

संक्षिप्त परिचय–दालचीनी के मध्यम कद के सदाहरित वृक्ष होते हैं, जिसकी टहनियाँ चपटी एवं चिकनी होती हैं। पत्तियाँ अभिमुख या लगभग अभिमुख (कभी-कभी एकान्तर), कड़ी एवं चर्मिल, ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० या ३ इञ्च से ८ इञ्च लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १½ इंच से ३ इंचतक चौड़ी, लट्वाकार या लट्वाकार-भालाकार, अग्र कुछ नुकीला, आधार की ओर गोलाकार अथवा उत्तरोत्तर कम चौड़ी, ऊर्ध्वपृष्ठ पर चिकनी और चमकदार तथा अधःपृष्ठ पर फीकेरंग की तथा सुगंधित होती हैं। पर्णवृन्त १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) तक लम्बे होते हैं। पुष्प धूसरवर्ण के होते हैं, जो नम्य मंजरियों (*lax panicles*) में निकलते हैं। फल १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) तक लम्बे, रूपरेखा में लम्बगोल या अंडाकार-आयताकार, गहरे बैंगनीरंग के तथा परिदलपुञ्ज (सवर्णकोष) से अंशतः आवृत होते हैं। लगाये हुए १ वर्ष से २ वर्ष पुराने पौधों को जड़ के पास से काटदिया जाता है, जहाँ से अनेक सीधी नयी नयी शाखाएँ निकलती हैं। इन्हीं शाखाओं की सुखाई हुई अन्तर्छाल औषधि में (*dried inner bark of the shoots of coppiced trees*) प्रयुक्त होती है। उक्त छाल से आसवनद्वारा एक उड़नशील तेल भी प्राप्त किया जाता है, जिसे 'दालचीनी का तेल' कहते हैं।

उपयोगी अंग–त्वक् (दालचीनी) एवं तैल (दालचीनी का तेल)।

मात्रा। त्वक्चूर्ण–½ ग्राम से २ ग्राम या ४ रत्ती से २ माशा।

तैल–१ बूंद से ३ बूंद।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। (१) छाल (दालचीनी) – स्वाभाविक रूप में दालचीनी की छाल ०.९ मीटर से १.८ मीटर या ३ फुट से ६ फुट तक लम्बी, व्यास में १ सें० मी० (⅜ इंच) तथा एक दूसरे पर लिपटी हुई (*single or double, closely packed compound quills*) होती है। बाह्यतः यह मटमैले पीताभ-भूरेरंग की (*dull yellowish-brown*) होती है, जिसपर अनुलम्ब दिशा में अनेक फीकेरंग की सूक्ष्म लहरदार रेखाएँ होती हैं। जगह-जगह छोटे-छोटे चिह्न (*scars*) एवं छिद्र भी पाये जाते हैं। कहीं-कहीं बाह्यछाल का अंश भी लगा हुआ (*patches of cork*) मिलजाता है। अन्तस्तल गाढ़ेरंग का तथा अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्म रेखांकित (*longitudinal striations*) होता है। बाजारों में इनके तोड़े हुए छोटे-बड़े टुकड़े मिलते हैं, जो ½ मिलिमिटर (१/२० इंच) तक मोटे होते हैं। यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टुकड़े अत्यन्त भंगुर (*brittle*) होते है, और तोड़ने पर खट से चप्पड़ की भाँति टूटते हैं (*fracture splintery*)। दालचीनी में एक विशिष्ट प्रकार की मनोरम सुगंधि पायी जाती है, तथा मुख में चाबने पर स्वाद में मीठी, तीक्ष्ण एवं सुगंधित होती है, तथा मुँह में कुछ उष्णता का अनुभव होता हैं। उत्तम दालचीनी में उड़नशील तेल (दालचीनी का तेल) कम से कम १% (*V/W*) तक पाया जाता है। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम–२%। भस्म–अधिकतम ७%; अम्ल में अघुलनशीलभस्म अधिकतम–२%।

स्थानापन्नद्रव्य एवं मिलावट–व्यावसायिक लम्बे टुकड़ों की तैयारी में उनके टूटे हुए छोटे टुकड़ों (*quillings*) को पृथक् संग्रहीत कर बेचाजाता है। यह भी प्रायः नं० १ के टुकड़ों की ही भाँति होते हैं, किन्तु इनमें उड़नशीलतेल की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। बिनाछिली हुई छाल के टुकड़ों अर्थात् छिप्पी या चैली (*Cinnamon chips*) में कार्क का भाग अपेक्षाकृत अधिक होता है, तथा उत्तम एवं छिली हुई दालचीनी की अपेक्षा इसमें ऐल्कोहॉल (९०%) विलेयसत्व भी कम प्राप्त होता है। इसके कागजी छिलके (*feathertings*) चैलीदार टुकड़ों की अपेक्षा उत्तम होते हैं। सिंहली दालचीनी के जंगली पौधों की छाल (*Jungle Cinnamon*) गाढ़ेरंग की तथा खुरदरी और कम सुगंधित होती है। व्यावसायिक सैगन दालचीनी (*Saigon Cinnamon*) सिन्नामोमुम् लूरिरियाइ (**Cinnamomum loureirii** *Nees*) नामक जाति से प्राप्त की जाती है। इसकी छाल सिंहलीदालचीनी की अपेक्षा मोटी, रंग में खाकस्तरी या खाकस्तरी भूरेरंग की तथा बाह्यतलपर ग्रन्थिल–सी (*warty and ridged*) तथा स्वाद में मीठी होती है। जावा दालचीनी (*Java Cinnamon*) सीन्नामोमुम बर्मान्नी (**C. burmanni** *Blume*) की छाल होती है। यह सिंहली दालचीनी की अपेक्षा कम सुगन्धित होती है, तथा ऐल्कोहलविलेय सत्व भी अपेक्षाकृत कम प्राप्त होता है। इसके मज्जकिरणों (*medullary rays*) में कैल्सियम् ऑक्जलेट के पट्टाकार क्रिस्टल्स (*tabular crystals*) पाये जाते हैं। कभी-कभी इसमें तज (**Cassia Bark**) के टुकड़े भी मिला दिये जाते हैं।

(२) तेल (दालचीनी का तेल)–दालचीनी का तेल सिंहली दालचीनी के छाल से आसवन द्वारा प्राप्त किया जाता है। ताजी अवस्था में यह हल्के पीलेरंग का द्रव होता है, जो रखने पर कालान्तर से लालिमा लिये भूरे रंग का (*reddish brown*) हो जाता है। गंध एवं स्वाद में तेल भी छाल की ही भाँति होता है। इसमें कम से कम ५०% तथा अधिक से अधिक ६५% (*W/W*) सिन्नेमिक ऐल्डिहाइड (*Cinnamic Aldehyde* $H_9 C_8 O$.) होता है। विलेलता–१५.५° तापक्रम पर ३ भाग ऐल्कोहल् (७०%) में घुलनशील होता है। विलयन किंचित् धुंधला होता है। २०° तापक्रम पर १ मिलिलिटर तेल का भार ०.९९४ ग्राम से १.०३४ ग्राम होता है। (*Optical Rotation*)–०° से–२°। (*Refractive Index at* २०°) १.५६५ से १.५८२। तेल की शुद्धता एवं शक्तिप्रमापीकरण के लिए तैलगत 'सिन्नेमिक ऐल्डिहाइड्स' का प्रमापन किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण–'दालचीनी' को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। 'दालचीनीके तेल' को अच्छी तरह मुखबन्द शीशियों में शीतलस्थान में रखना चाहिए और प्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन–दालचीनी में ½ से १% उत्पत् तैल (दालचीनी का तेल), टैनिन, पिच्छिलद्रव्य (मुसिलेज), शर्करा, स्टार्च आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं। दालचीनी के तेल में ६०% से ७५% तक सिन्नैमैल्डिहाइड (*Cinnamaldehyde*) तथा (१०%) यूजिनोल (*Eugenol*) भी होता है।

वीर्यकालावधि। त्वक्–१ वर्ष। तेल–दीर्घकालतक।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–उत्तेजक, वेदनास्थापन, नाड़ीसंस्थानउत्तेजक, दीपन-पाचन, वातानुलोमन, ग्राही; यकृदुत्तेजक, जन्तुघ्न, हृदयोत्तेजक, श्लेष्महर, यक्ष्मानाशक, मूत्रजनन, गर्भाशयसंकोचक, वाजीकरण। यूनानीमतानुसार तीसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष है। अहितकर–वस्ति को। निवारण–कतीरा और असारून। प्रतिनिधि–तज।

मुख्ययोग–सितोपलादि चूर्ण।

विशेष–यह 'त्रिजात' एवं 'चतुर्जात' का उपादान है। सुश्रुतोक्त एलादिगण में भी 'त्वक्' का उल्लेख है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुग्धफेनी

नाम। (१) पौधा। सं०—दुग्धफेनी, कर्णफूल (राजनिघण्टु)। हिं०—जंगलीकासनी, दुधल, कानफूल, बरन। पं०—दूदल, (—ली), दुधली, दूधवत्थल। फा०—कासनी दश्ती, कासनी सहराई। हिंदबाबर्री, बक़ले यहूदिया। अं०—डंडेलिअन (*Dandelion*)। ले०—टाराक्साकुम ऑफ़्फ़ीसिनाले (**Taraxacum officinale** *Weber.*)। मूल या जड़० (सं०)—दुग्धफेनीमूल। हिं०—जंगलीकासनी या दुधल की जड़। अ०—अस्लुल् हिंदुबा एलबर्री। फा०—तरख्शकून, बीख कासनी (ए) दश्ती।

वानस्पतिक कुल। मुण्डी-कुल (कम्पोज़ीटे *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त हिमालयप्रदेश, पश्चिमी तिब्बत, मिश्मीपर्वत एवं नीलगिरी पर इसके स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। यूरोप में यह प्रचुरता से मिलती है।

संक्षिप्त परिचय—दुग्धफेनी के बहुवर्षायु छोटे-छोटे पौधे (*perennial herb*) कासनी या बनगोभी से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। पत्तियाँ विनाल तथा जड़ के पास से निकली होती हैं। आकार में यह कुछ-कुछ आयताकार परन्तु परिवर्तनशील तथा ५ सें० मी० से २० सें० मी० या २ से ८ इञ्च लम्बी एवं अनियमित रूप से खण्डित होती हैं। खण्ड रेखाकार (*linear*) या त्रिभुजाकार, तीक्ष्णाग्र-दन्तुर तथा दन्ताग्र अधोमुख होते हैं। उक्त खण्ड कभी-कभी भालाकार एवं सरलधार भी हो सकते हैं। पुष्प-व्यूह मुण्डक की भाँति होता है, जिसमें जिह्वाकार (*ligulate*) पीतवर्ण के पुष्प होते हैं। उक्त पुष्पव्यूहमुण्डक, मूल से निकलनेवाले पोले एव पत्ररहित एकाकी दण्डों पर धारण कियेजाते हैं, तथा व्यास में $\frac{1}{2}$ से २ इञ्च होते हैं। पुष्पव्यूह के नीचे बाह्य-आभ्यन्तर रूप से दो पंक्तियों में स्थित अधःपत्रावलि (*involucre*) होती हैं। इसमें चर्मफल या युतोत्फल (*achenes*) लगते हैं, जो चपटे तथा मूल (आधार) की ओर पतले तथा ऊपरीसिरे की ओर भी क्रमशः सकरे होकर चोंच-जैसी रचना में अन्त होते हैं। इनपर रोमकण्टक (*pappus*) होता है। वनस्पति के सर्वांग से एक प्रकार का गंधरहित कड़वादूध सदृश चिकना पदार्थ निकलता है। औषधि में इसकी जड़ का व्यवहार होता।

उपयोगी अंग— शुष्क या ताजामूल।

मात्रा। चूर्ण—$\frac{1}{2}$ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा तक। क्वाथकी जड़—२ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—दुग्धफेनी की जड़ रम्भाकार (*cylindrical*) या कुछ-कुछ चपटी तथा नीचे की ओर मूली की भाँति उत्तरोत्तर पतली, बाह्यतः रंग में पीताभ भूरेरंग से लेकर (ऊदीरंग) भूरापन लिये कालेरंग की होती है। जड़ पर अनुलम्ब दिशा में अनेक झुर्रियाँ तथा इतस्ततः टूटे हुए उपमूलों के चिह्न (*scars*) होते हैं। सूखीजड़ तोड़ने पर खट से टूटती है तथा टूटातल वत्सनाभ के टूटेतल की भाँति मालूम होता (*fracture short & horny*) है। किन्तु नम होने पर लचीली होजाती है। अनुप्रस्थकाट या विच्छेद करने पर बार्क का अन्तःभाग हल्के भूरेरंग का होता है तथा इसमें आक्षीर-वाहिनियों (*latex-vessels*) के अनेक एककेन्द्रिक चक्र (*concentric rings*) होते हैं। कोष्ठीय भाग (*wood*) पीतवर्ण का तथा मोटाई में १ मि०मी० से ४ मि०मी० होता है। उक्त जड़ प्रायः गन्धहीन (अथवा एक हल्की गंधयुक्त) तथा स्वाद में अत्यन्त तिक्त होती है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं; तथा अम्ल में अघुलनशीलभस्म अधिकतम ४% तक प्राप्त होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—कभी-कभी व्यवसायी लोग इसीकुल की अन्य वनस्पतियों की जड़ दुधल के नाम से बेचते हैं। एतदर्थ आमतौर से वन्यकासनी (**Cichorium intybus** *Linn.*) की जड़ का उपयोग अधिक किया जाता है। किन्तु वन्यकासनी की जड़ अथवा राइजोम का अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर आक्षीर-वाहिनियाँ अरवत् क्रम से (*radially*) स्थित होती हैं, जबकि दुग्धफेनी में एककेन्द्रिक वृत्तों में क्रमबद्ध होती हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—दुग्धफेनी की जड़ को छायाशुष्क करके मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—दुग्धफेनी की जड़ में टैरेक्सेसिन (*Taraxacin* : $C_{40}H_{40}O_5$) नामक स्फटिकीय स्वरूपका तिक्तसत्व, रेजिन, उत्पत् तैल, सेपोनिन, फाइटास्टेरोल, टेरेक्सेस्टेरोल (*Taraxasterol*) तथा इन्युलिन (*Inulin*) एवं अल्पमात्रा में शर्करा आदि घटक पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, रेचन और कृमिघ्न, रक्तशोधक, शोथहर, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कटुपौष्टिक आदि। स्वरस व्रणशोधन होता है। यूनानीमतानुसार प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। यह संग्राही, दीपन, आर्तवजनन, स्तन्यजनन तथा यकृत् एवं प्लीहा के अवरोधों का उद्घाटन करनेवाली तथा कामलानाशक है।

मुख्ययोग—(१) दुग्धफेनी स्वरस—दुग्धफेनी की ताजी जड़ को कूचकर रस निकाल लें। इसमें चतुर्थांश ऐल्कोहल् (९०%) मिलाकर ७ दिन तक रख दें। इसके बाद छानकर रख लें। सुरासार पड़ने से यह बिगड़ता नहीं। मात्रा—३ माशा से ६ माशा (१ फ्लुइड ड्राम से २ फ्लुइड ड्राम)। (२) दुग्धफेनी-घनसत्व—२ रत्ती से १ माशा। (३) दुग्धफेनी का प्रवाहीघनसत्व (लिक्विड एक्स्ट्रक्ट)—१½ माशा से ६ माशा (½ ड्राम से २ ड्राम)।

विशेष—यकृद् विकार में दुग्धफेनी का प्रयोग बहुत उपयोगी होता है। एतदर्थ इसको स्वतन्त्ररूप से या गिरिपर्पट आदि अन्य औषधियों को साथ मिलाकर दे सकते हैं।

दुद्धी, छोटी (लघुदुग्धिका)

नाम। सं०—लघुदुग्धिका, नागार्जुनी, विक्षीरिणी। हिं०—छोटी दुधी (दुद्धी), दुधिया घास, निगाचूनी। संथा—नन्हांपूसी—तोआर। बं०—रक्तकेरु, दुधिया। पं०—दोधक, हजारदाना; हजारदानी। म०—लहान नायटी। गु०—नानी दुधेली। फा०—शीरेगियाह, शीरक। ले०—(१) रक्त—एउफ़ॉर्बिआ थीमीफ़ोलिआ **Euphorbia thymifolia** *Linn.*, (२) श्वेत—एउफ़ॉर्बिआ मीक्रोफ़िल्ला **E. microphylla** *Heyne.*।

वानस्पतिक-कुल। एरण्ड-कुल (एउफ़ॉर्बिआसे। *Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के मैदानी भागों में तथा निचली पहाड़ियों पर, लाल तथा सफेद दोनों प्रकार की छोटी दुद्धी के स्वयंजात पौधे पायेजाते हैं।

संक्षिप्त परिचय—एउफ़ॉर्बिआ थीमीफ़ोलिआ—इसके एक वर्षायु, बहुत छोटे-छोटे पौधे होते हैं और चारों ओर प्रसरी हुई अनेक शाखाओं से युक्त होते हैं, जिनको तोड़ने से दूध निकलता है। शाखाएँ पतली-पतली सुतरी की तरह तथा लालरंग की होती हैं। पत्तियाँ सूक्ष्म, अभिमुख, द्विपंक्ति, तिर्यक् आयताकार या गोल, तथा ललाईलिये हरी और गोलदंतुर होती हैं। एकाभव्यूह गुच्छीकृत तथा हरित या गुलाबी होते हैं। इसमें बारह महीने फल होते हैं। फल (*capsule*) १½ मिलिमिटर लम्बे तथा बीज १¾ मि० मि० और आयताकार होते हैं, जिनपर अनुप्रस्थ दिशा में ५—५ सूक्ष्म हलखातवत् रेखाएँ होती हैं। (२) एउफ़ॉर्बिआ मीक्रोफ़िल्ला—इसकी शाखाएं श्वेताभ-हरित, पत्तियाँ पहली की पत्तियों की अपेक्षा कुछ छोटी और कभी-कभी केवल अग्रपर दन्तुर (पहली में गोलदन्तुर) होती हैं। इसमें एकाभव्यूह चिकने तथा पहली में प्रायः मृदुरोमश होते हैं। दोनों का प्रयोग छोटीदुद्धी के नाम से होता है, और यह 'दुद्धी खुर्द' के नाम से प्रसिद्ध है। सुखाई हुई छोटीदुद्धी से कालीचाय जैसी हल्की गंध आती है, तथा स्वाद में कुछ कसैली होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—सर्वत्र सुलभ होने से इसका प्रयोग ताजा ही किया जाता है। संग्रहार्थ पंचाङ्ग को छायाशुष्ककर मुखबंद पात्रों में अवार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—छोटीदुद्धी में क्वर्सेटिन से मिलता-जुलता एक क्रिस्टली क्षारोदसत्व होता है। बड़ी दुद्धी में मायाफलाम्ल या गैलिक एसिड (*Gallic acid*), क्वर्सेटिन (*Quercetin*) तथा कुछ उत्पत् तैल एवं क्षारोद प्रभृति तत्त्व होते हैं।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफपित्तहर वातवर्धक, अनुलोमन, उत्तेजक, रक्तशोधक, कफघ्न, श्वासहर, मूत्रल, अश्मरीनाशन, आर्त्तवजनन, कुष्ठघ्न, विषघ्न आदि। यूनानीमतानुसार छोटीदुद्धी दूसरे दर्जे में उष्ण और रूक्ष, मतांतर से दूसरे दर्जे में शीत और रूक्ष है। यह आंत्र पर संग्राही कर्म करती है। अतएव छोटीदुद्धी को जल में पीस-छान कर अतिसार-प्रवाहिका में देते हैं। शुक्रप्रमेह, योनि से नाना प्रकार के स्राव, शुक्रतारल्य और शीघ्रपतन आदि में इसका चूर्ण व्यवहृत होता है। इसमें चाँदी और वंग की बनायी हुई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भस्म सूजाक, शुक्रमेह एवं शुक्रतारल्य आदि रोगों में व्यवहृत होती है। जीर्णश्वास एवं कास में भी यह उपयोगी है।

विशेष—दुद्धी या दुग्धिका का 'बड़ाभेद' भी होता है, जिसे बड़ीदुद्धी (या दूधी कलाँ) कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम एउफ़ॉर्बिआ हिर्टा (**Euphorbia hirta** *Linn.* (पर्याय—*E. pilulifera Auct. non Linn.*) है। इसके प्रतिवर्ष उत्पन्न होने वाले ६० सें० मी० या २ फुट तक ऊँचे रोमश क्षुप होते हैं, जिसके पत्र अभिमुख, मध्यशिरा के दोनों ओर के खण्ड असमान, रूपरेखा में अण्डाकार-आयताकार अथवा आयताकार-प्रासवत् १.८७५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या $\frac{3}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ इंच तक लम्बे एवं दन्तुरधारयुक्त और अग्रपर तीक्ष्ण या संकुचित होते हैं। एकाभव्यूह सूक्ष्म और गुच्छीभूत होता है। इसका एक दूसरा भेद भी होता है, जिसमें पत्रतट सरल तथा पौधा रोमरहित और हरा होता है। इसको एउफ़ॉर्बिआ हीपेरीसीफ़ोलिआ (**E. hypericifolia** *Linn.*) कहते हैं।

दूब (दूर्वा)

नाम। सं०—दूर्वा, शतपर्वा, गोलोमी। हिं०—दूब। बं०—दुर्वाघास। पं०—खबल, दुबड़ा। म०—हरियाली, दूर्वा। गु०—ध्रो, धरो, दरो। सिंध—छब (ब्ब) र। अ०—उश्ब। फा०—मर्ग़। अं०—क्रीपिंग डाग्स-टूथ ग्रास *Creeping Dog's-Tooth Grass*। ले०—सीनोडॉन डाक्टीलॉन (**Cynodon dactylon** *Pers.*)।

वानस्पतिककुल। तृण-कुल (ग्रामीने *Gramineae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में मैदानों एवं परती जमीन में दूब अपने आप उगी हुई मिलती है।

संक्षिप्त परिचय—दूर्वा के बहुवर्षायु स्वभाव के पतले किन्तु कड़े काण्डयुक्त प्रसरी पौधे होते हैं, जो जमीन पर छत्ते की तरह चारों ओर फैलते हैं। काण्ड भूमिपर आगे-आगे प्रसरण करता जाता है, और प्रत्येक पर्व पर मूल निकलकर भूमि के साथ बद्ध होते हैं, और वायव्य काण्ड निकल कर नया पौधा बनता जाता है। पत्तियाँ २.५ सें० मी० से १० सें० मी० या (१ इंच से ४ इंच) तक लम्बी, $1\frac{1}{2}$ मि० मि० से ३ मि० मि० ($\frac{1}{8}$ इंच तक) चौड़ी, रेखाकार (*linear*) अथवा भालाकार (*lanceolate*) तथा नुकीले अग्रवाली और चिकनी तथा मुलायम होती हैं। पुष्प छोटे, हरिताभ या नीलारुण होते हैं। फल छोटे दानों के रूप में ($\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बे) लगते हैं। सालभर दूब फूलती-फलती रहती है। दूब पशुओं के लिए उत्तम खाद्य है। अतएव कहीं-कहीं यह लगायी भी जाती है। निघण्टुओं में (१) श्वेत, (२) नील एवं (३) गंडदूर्वा भेद से दूब के ३ भेदों का उल्लेख है। 'श्वेतदूर्वा' वास्तव में कोई भिन्न वनस्पति नहीं मालूम होती। हरीदूब ही जब सफेद हो जाती है, तो इसे 'श्वेतदूर्वा' कहते हैं।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग।

मात्रा। ६ ग्राम से १२ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—दूब प्रायः सर्वत्र १२ महीने उपलब्ध होती है। अतएव ताजी अवस्था में ही इसका व्यवहार करना चाहिए।

संगठन—दूब में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं रेशे पाये जाते हैं। जलाने पर ११.७५% भस्म प्राप्त होती है, जिसमें पोटासियम्, मैगनीसियम् एवं सोडियम् के लवण पाये जाते हैं।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—मधुर, कषाय, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधानकर्म—कफपित्तशामक, स्तम्भन, व्रणरोपण, दाहप्रशमन, वर्ण्य, छर्दिनिग्रहण, तृष्णानिग्रहण, रक्तस्तम्भक, रक्तशोधक, प्रजास्थापन, मूत्रल, कुष्ठघ्न, जीवनीय, विषघ्न आदि। यूनानी-मतानुसार दूर्वा प्रकृति में सरदी की तरफ मायल और समशीतोष्ण के समीप है।

मुख्य योग—दूर्वादिक्वाथ, दूर्वाद्यघृत, दूर्वाद्यतैल।

विशेष—रक्तपित्त में दूर्वास्वरस का प्रयोग अनुपान के रूप में करसकते हैं। चरकोक्त (सू० अ० ४) वर्ण्य महाकषाय में ('सितालता' नामसे) तथा प्रजास्थापन महाकषाय में ('शतवीर्या-सहस्रवीर्या' नाम से) दूर्वा का भी उल्लेख है।

देवदार (देवदारु)

नाम। सं०—देवदारु, भद्रदारु, सुरभूरुह। हिं०—देवदार। म०, गु०—देवदार। शिमलापर्वत—कैल, कैलो। जौनसार—केलोन (*Kelon*)। अ०, फा०—सनूबरे हिंदी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अं०–सेडार (*Cedar*) । ले०–सेड्रस लीबानी **Cedrus libani** *Rich. var.* **deodara**. *Hook. f.* (पर्याय–*C. deodnra* (*Roxb.*) *Loud.* ।

वानस्पतिक कुल । सरल-कुल (पीनासे *Pinaceae*) ।

प्राप्तिस्थान । उत्तर-पश्चिमहिमालय प्रदेश में १२०४ मीटर से ३०४६ मीटर (४,००० फुट से १०,००० फुट) की ऊँचाई पर (भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट ऊँचाइयों पर) इसके बन पाये जाते हैं। देवदारु के वृक्ष सम्भवतः सबसे अधिक ऊँचे, चिरायु और सुन्दर होते हैं, तथा समूहबद्ध उगते हैं। देवदारु की लकड़ी (हृत्काष्ठ *Heart-wood*) एवं बुरादा (*Saw-wood*) बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्तपरिचय । देवदारु के बहुत ऊँचे-ऊँचे (७६½ मीटर या २५० फुटतक) सुन्दर वृक्ष होते हैं, जिनकी शाखाएँ चारों ओर फैली होती हैं, किन्तु शाखाग्र कोमल और नीचे को झुके होते (*tips slender and nodding*) हैं। प्रकाण्ड-स्कन्ध सीधा और काफीमोटा (लगभग११ मीटर या ३६ फुट परिधितक) होता है। काण्डत्वक् खाकस्तरीरंग से लालिमा लिये भूरेरंग की होती है, और इसपर अनुलम्ब दिशा में तथा तिरछे अनेक दरारें पड़ी होती हैं। ऊपर की ओर शाखाएँ क्रमशः छोटी होती जाती हैं, जिससे नये वृक्षों में इसकी चोटी (*crown*) शंक्वाकार (*pyramidal*) मालूम होती है, किन्तु पुराने वृक्षों में यह स्तूपाकार (*spherical*) होती है। पत्तियाँ २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इंच से १½ इंच) लम्बी, सूच्याकार एवं त्रिकोणाकार (*acicular and triquetrous*), चिकनी, चमकदार हरेरंग की होती हैं, जो प्रायः लम्बी टहनियों पर एकाकी और पेचदारक्रम से किन्तु छोटी टहनियों पर सघनगुच्छों (*dense fascicles*) में निकलती हैं। देखने में उक्त पत्रगुच्छक चँवर की भाँति मालूम होते हैं। नरपुष्प शाखाग्रों पर ⅝ सें० मी० से १ सें० मी० (⅓ इञ्च से ⅜ इञ्च) लम्बे, एकाकी (*solitary*) नम्य एवं लम्बगोल, अवृन्त-काण्डज मञ्जरियों (*catkin*) में निकले होते हैं। शंकुफल (*cone*) १० सें० मी० से १२.५ सें० मी० (४ इञ्च से ५ इंच) लम्बे, ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० या ३ इंच से ४ इंच मोटे होते हैं, जो शाखाग्रों पर एकाकी स्थित होते हैं। शल्कपत्र (*scales*) पंखे के आकार के (*fan-shaped*) होते हैं, जो शंकुफलों पर अनुप्रस्थ दिशा में ठसाठस स्थित होते हैं। बीज ⅝ सें० मी० से ⅞ सें० मी० (१/१६ इञ्च से ½ इंच) तक लम्बे, त्रिकोणाकार या अर्धचन्द्राकार और पंखयुक्त या सपक्ष होते हैं। उक्त पंख त्रिकोणाकार और ¾ सें० मी० से ⅞ सें० मी० (⅜ इञ्च से ७/१६ इञ्च) लम्बे होते हैं। बीजपत्र (*cotyledons*) लगभग १० होते हैं। पुष्पागमकाल–सितम्बर-अक्टूबर। फलागम–अप्रैल से प्रारम्भ होता है, और फल अगले अक्टूबर-नवम्बर तक पकते हैं।

उपयोगी अंग–हृत्काष्ठ (काष्ठसार) एवं बुरादा तथा काष्ठ तैल (*tar*)।

मात्रा । चूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। तैल–२० बूंद से ४० बूंद।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–बाजार में देवदारु, चन्दन के टुकड़ों की भाँति मिलता है। यह टुकड़े पीताभ-बादामीरंग के साधारण गुरु एवं कड़े होते हैं। अनुप्रस्थ छेद करने पर उस पर किंचित् गाढ़ेरंग की सूक्ष्म रेखाएँ सी होती हैं। इसके बारीक छिलके पारभासी (*translucent*) होते हैं। इसमें तारपीन-जैसी सुगन्धि पायी जाती है। देवदार का 'बुरादा' चन्दन के बुरादे-जैसा होता है और उसमें लकड़ी की भाँति सुगंधि पायी जाती है। लकड़ी के विच्छेदक आसवन (*destructive distillation*) द्वारा एक गाढ़ेरंग का तैल प्राप्त किया जाता है, जिसे देवदार–टार (*tar*) कहते हैं। १ सेर लकड़ी से प्रायः २½ छटाँक तक तेल प्राप्त होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–काष्ठ एवं बुरादे को उपयुक्त स्थान में, बन्दडिब्बों में रखें। तेल को अच्छी तरह बन्द शीशियों में शीतलस्थान में रखना चाहिए तथा प्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन–काष्ठ में ओलियो-रेजिन तथा एक गहरे रंग का तेल प्राप्त होता है।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव । गुण–लघु, स्निग्ध। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–वात-कफ शामक, (स्थानिक प्रयोग से) शोथहर, वेदनास्थापन, क्रिमिघ्न, व्रणशोधन एवं रोपण, दीपन-पाचन, अनुलोमन (एवं आंत्रोद्वेष्टहर), कफनिःसारक एवं श्वासमार्गशोधक,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूत्रजनन, प्रमेहघ्न, गर्भाशय एवं स्तन्य शोधन, लेखन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, आदि।

मुख्य योग–देवदार्वादि क्वाथ, देवदार्वादि चूर्ण, रास्नादि-क्वाथ, रोग़न ज़र्द आदि।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) स्तन्यशोधन एवं अनुवासनोपग महाकषाय में तथा कटुस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में ('किलिम' नाम से) और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) वातसंशमन वर्ग के द्रव्यों में ('भद्रदारु' नाम से) देवदारु का भी उल्लेख है।

देवदाली–दे०, 'बंदाल'।

धतूरा (धत्तूर)

नाम। सं०–धत्तूर, कनक, धूर्त, उन्मत्तक। हिं०–धतूर। धतूरा। बं–धूतूरा। म०–धोत्रा। मा०–धत्तूरो। गु०–धत्तूरो, धतूरो। अ०–जौजुल् मासेल। फा०–तातूर। अं०–डॅटूरा (तू) *Datura*। ले०–डाटूरा इन्नॉक्सिआ **Datura innoxia** *Mill.* (**D. metel** *Auct. non L.*)।

वानस्पतिक-कुल। कण्टकारी-कुल (सोलानासे। *Solanaceae*)।

प्राप्तिस्थान–'डाटूरा मेटल' के समस्त भारतवर्ष में स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। मन्दिरों के पास इसके लगाये हुए पौधे मिलते हैं। पुष्प एवं फल शिवजी को चढ़ाया जाता है। 'डाटूरा इन्नॉक्सिआ' वास्तव में विदेशी पौधा है, परन्तु अब समस्त भारतवर्ष में फैल गया है। स्वरूप में यह 'मेटल' से बिल्कुल मिलता-जुलता है। धतूरा का बीज बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त परिचय। धतूरा मेटल–इसके एक वर्षायु ६० सें० मी० से १५० सें०मी० या २ फुट से ५ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं, जिसके काण्ड चिकने होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार-भालाकार, लम्बाग्र या अग्र पर सहसा नुकीली, तथा आधार पर मध्यनाड़ी के दोनों पार्श्व असम होते हैं। पत्रतट लहरदार-दन्तुर या किंचित् मुड़े हुए होते हैं। पत्तियाँ दोनों पृष्ठों पर चिकनी होती हैं, तथा काण्ड के अधः भाग में अकेली किन्तु ऊर्ध्वभाग में आमने-सामने (अभिमुखक्रम से) स्थित होती हैं, जिनमें एक दूसरे की अपेक्षा कुछ छोटी होती हैं। बड़ी पत्ती १७.५ सें०मी० से २० सें० मी० या ७ इञ्च से ८ इञ्च तक लम्बी होती हैं। पुष्प ऊपर को खड़े (*erect*) तथा १५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० या ६ इञ्च से ७ इञ्च लम्बे होते हैं। बाह्यकोष (*calyx*) बैंगनीरंग का, नलिकाकार-कोणाकार, ५ सें० मी० या २ इञ्च लम्बा ऊर्ध्वभाग में ५ खण्डों से युक्त। आभ्यन्तर कोष सफेद तथा तुरही के आकार का तथा लगाये हुए पौधों में दोहरा-तेहरा होता है। पुंकेशर संख्या में ५-६। फल (*capsule*) लम्बगोल, व्यास में ८.३ सें० मी० या ३½ इञ्च तक, नीचे को लटके हुए या झुके हुए होते हैं। उसपर छोटे-छोटे काँटे होते हैं। पक्व फलों का स्फुटन अनियमित रूप से होता है।

उपयोगी अङ्ग–मूल, पत्र, पुष्प एवं बीज।

मात्रा। शोधितबीजचूर्ण–६२.५ मि० ग्रा० से १२५ मि० ग्रा० या ½ रत्ती से १ रत्ती। पत्रचूर्ण–६२.५ मि०ग्रा० से १८९.५ मि० ग्रा० या ½ रत्ती से १½ रत्ती (खाने के लिए)। ½ ग्राम से २ ग्राम या ४ रत्ती से १५ रत्ती (धूम्रपानार्थ)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–धतूरे के बीज सुमाक के दाने की तरह कर्णाकृति, चपटे, खुरदरे, पिलाईलिए भूरेरंग के ½ इञ्च से ¼ इञ्च (४ मि० मि० से ५ मि० मि०) लम्बे, ½ इञ्च से ⅓ इञ्च (३ मि० मि० से ४ मि० मि०) चौड़े तथा १/२५ इञ्च (१ मि० मि०) मोटे तथा स्वाद में यह तिक्त एवं चाबने पर या कूचनेपर एक हल्की अप्रिय गन्धयुक्त होते हैं। 'हायोसायमीन' की मात्रा कमसे कम ०.२%। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २%। भस्म-अधिकतम ६%।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–राजधत्तूर (डाटूरा स्ट्रामोनिउम **Datura stramonium** *Linn.*) के क्षुप समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में (कश्मीर से सिक्कम तक) २७२६ मीटर या ९,००० फुट की ऊँचाई तक तथा बिलूचिस्तान एवं दक्षिण भारत में कहीं-कहीं पाये जाते हैं। वास्तव में 'कृष्णधत्तूर' इसी को कहना चाहिए। यह अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक वीर्यवान् होता है। इसके बीज चपटे, वृक्काकार, ½ इञ्च लम्बे, १/१६ इंच चौड़े तथा १/२५ इञ्च मोटे होते हैं। नाभि (*hilum*) नतोदर धारपर स्थित होती है। रंग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में यह नीलारुण वर्ण के अथवा कालेरंग के होते हैं। स्वाद में यह तिक्त एवं स्नेहमय तथा मसलने पर एक अरुचिकारक गंध होती है। हायोसायमीन—कम-से-कम ०.२%। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य-अधिकतम २%। भस्म—अधिकतम ५%।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों के बीजों एवं प्रगल्भ पत्तों को छायाशुष्क करके मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन—धतूरे के पत्र एवं बीज में अजवायन खुरासानी में पायेजाने वाले 'हायोसायमीन' और 'हायोसीन' नामक ऐल्केलॉइड्स (०.२५% से ०.५५%) पाये जाते हैं, जो इसके प्रधान सक्रियतत्त्व हैं। बीजों में कुछ राळीय तत्त्व एवं (१५% से ३०%) तक स्थिरतैल भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्षतक।

स्वभाव। गुण—गुरु, रूक्ष। रस—कटु, तिक्त, कषाय, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफ-नाशक, वात-पित्त कारक, स्थानिकप्रयोग से अवसादक, वेदनास्थापन एवं शोथहर, आभ्यन्तरसेवन से दीपन, शूलहर, ज्वरघ्न (विशेषतः पर्याय ज्वरहर), श्वासनलिकोद्वेष्ठहर, श्वासहर तथा मात्रातियोग से मादक प्रभाव करता है। यूनानीमतानुसार धतूरा चौथे दर्जे में शीत एवं रूक्ष होता है। विषाक्त प्रभाव—धतूरे के बीज विषैली मात्रा में खिलाने से रोगी की ज्ञानेन्द्रियाँ अस्थिर और बुद्धि लुप्त हो जाती है, जिह्वा और कण्ठ शुष्क हो जाते हैं। नेत्र रक्त हो जाते हैं और पुतलियाँ फैल जाती हैं। दृष्टि कम हो जाती है। आवाज भर्रा जाती है और रोगी प्रलाप करने लगता है। कभी-कभी उठ कर भागने का प्रयास करता है। परन्तु मद्यपान से मदमस्त की भाँति इधर-उधर पैर रखता है। कभी-कभी काल्पनिक वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं, और वह उनको पकड़ने का यत्न करता है। कभी सन्निपात के रोगियों की भाँति अपने कपड़े को चुनने लगता है और बिछौना, दीवाल आदि से काल्पनिक वस्तुओं को पकड़ने लगता है। साधारण अवस्थाओं में १-२ दिन बाद स्थिति सुधरकर रोगी स्वस्थ हो जाता है। किन्तु कभी श्वासावरोध होकर या हृद्गति रुककर प्राणान्त तक हो जाता है। चिकित्सा—प्रारम्भ में (मदनफल का क्वाथ आदि) वामक द्रव्यों द्वारा वमन करा लें, और पीछे गाय का दूध तथा मक्खन आदि पिलावें। साथ में विशिष्ट अगद (*Antidote*) का भी व्यवहार करसकते हैं।

मुख्य योग—ज्वराङ्कुश एवं मृत्युञ्जयरस में धत्तूरबीज पड़ता है।

विशेष—धतूरा विदेशी औषधि बेलाडोना का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है।

वक्तव्य—'धतूरा' का संकेत आयुर्वेदीय संहिताओं में मिलता तो है, किन्तु इसका विशेष महत्त्व एवं मान्यता रसग्रन्थों में दिखाई देती है। 'चरक' में कनक नाम (अस्पष्टरूपेण) से तथा 'सुश्रुत' में उन्मत्त एवं 'अष्टाङ्गहृदय' में धत्तूर नाम से निर्दिष्ट है। प्रायः सभी रसग्रन्थों में धत्तूर का समावेश उपविषवर्ग में किया गया है। रसचिकित्सा में धत्तूरबीज अनेक मौखिक सेवनार्थ योगों में पड़ता है। एतदर्थ शोधनोपरान्त इसके व्यवहार का निर्देश है। 'सोलानासी' कुल की अनेक वनस्पतियों का संकेन्द्रण उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्तीय क्षेत्र में पाया जाता है। सम्भव है धतूरे के प्रयोग का प्रसार भी उसी दिशा से हुआ हो। मध्ययुगीन निघण्टुओं, रसग्रन्थों एवं संस्कृत कोषों में जो विभिन्न पर्याय दिये गये हैं, उनकी आधारशिला का अनुबन्ध भी उसी क्षेत्र के प्राचीन भौगोलिक नामों से लक्षित होता है। (लेखक)

धनिया (धान्यक)

नाम। लं०—धान्यक, कुस्तुम्बुरु, वितुन्नक। हिं०—धनिया (आ)। द०—धनियाँ। बं०—धने। म०—धणे, कोथिब्या। गु०—धाणा, कोथमीर। क०—कोत्तुंबरि। फा०—कश्नीज़। अ०—कुज्ब (बु) रः। अं०—कोरिएण्डर (*Coriander*)। ले०—(१) फल—कोरिआंड्रम *Coriandrum* (२) वनस्पति कोरिआंड्रम सातीवुम (**Coriandrum sativum** *Linn.*)।

विशेष—हरीधनिया (धनिया सब्ज़) को फारसी और अरबी में क्रमशः 'कश्नीज़ रतब (पत्र को 'बर्ग कश्नीज़') तथा कुज्बुरः और सूखीधनिया अर्थात् बीज (धनिया खुश्क) को 'कश्नीजखुश्क' तथा 'कुज्बुरः याबिस (बज़्रुल् कुज्बुरः या समरुल् कुज्बुरः)' कहते हैं। जब इसके फलों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को काटकर बाहरी छिलका निकाल दिया जाता है, तब उसको 'मरज कश्नीज़' या 'बिरंज कश्नीज़' कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। छत्रक-कुल (उम्बेल्लीफेरी *Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान—धनिया भूमध्यसागरीय प्रान्तों का आदिवासी पौधा है। भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में काफी परिमाण में इसकी खेती की जाती है। दक्षिणभारत के कपासवाली कालीमिट्टी के क्षेत्रों में धनिया खूब उपजती है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न समयों में बीज बोये जाते हैं। मैसूर तथा मद्रास में इसकी दो फसलें भी तैयार की जाती हैं—(१) मई से अगस्ततक, (२) अक्टूबर से जनवरी तक। किसी-किसी प्रान्त में धनिये की फसल बरसाती पानी के आधारपर ही बोयी जाती है (*rain-fed crop*), और कहीं सिचाई करके बोई जाती है (*irrigated crop*)। शहरों के आसपास तरकारी बोनेवाले थोड़े परिमाण में बारहों महीने बोते हैं। तरकारी बेचनेवालों के यहाँ हरी धनिया तथा पक्वफल (जिनको बीज कहते हैं) बाजारों में पंसारियों के यहाँ बिकते हैं। भारतवर्ष के अतिरिक्त, रूस, मध्ययूरोप, एशियामाइनर तथा मोरक्को आदि में भी प्रचुरता से धनिया बोयी जाती है। विदेशी धनिया भारतीय धनिया की अपेक्षा छोटी, किन्तु ठोस और अधिक तैलयुक्त होती है। बाजारों में यह अपेक्षाकृत अच्छी समझी जाती है।

संक्षिप्त परिचय—धनिया के एकवर्षायु कोमलकाण्डीय शाकजातीय पौधे प्रायः १ फुट से ३ फुट ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ खण्डित होती हैं, जिनमें नीचे की पत्तियों के खण्ड चौड़े, किनारे दन्तुर (*crenate*), किन्तु ऊपर की पत्तियों के खण्ड रेखाकार (*linear*) होते हैं। पुष्प श्वेत या हल्के गुलाबीरंग के होते हैं, जो शाखाग्रों पर संयुक्त उच्छत्रकों। (*compound terminal umbels*) में निकलते हैं। फल गोलाकार, व्यास में २ मिलिमिटर ($\frac{2}{25}$ इञ्च) से ३½ मिलिमिटर और पकने पर पीताभ भूरेरंग के होते हैं, जिनपर ८-१० उन्नत रेखाएँ होती हैं। इन फलों को अंगुली के बीच दाबने से यह दो एक-फल खण्डों या वेश्मों (*mericarps*) में पृथक् होते हैं, जिनमें प्रत्येक में एक बीज होता है। धनिये की फसल प्रायः ३ महीने से ३½ महीने में तैयार हो जाती है। पकने पर पौधों को जड़ से उखाड़ लिया जाता है, और इनको सुखाकर, पीटकर फल पृथक् कर लिये जाते हैं। पुनः इन फलों को सुखाकर बोरों में भरकर बाजारों में भेजदिया जाता है। हरे पौधे के पंचाङ्ग से एक विशिष्ट सुगन्धि आती है। अतएव इसका उपयोग चटनी-तरकारी आदि में डालने के लिए किया जाता है। सूखे फलों का उपयोग गरममसाले में तथा औषध्यर्थ किया जाता है।

उपयोगी अंग। पक्वफल (जिनको 'बीज' कहते हैं) तथा पत्र।

मात्रा। फलचूर्ण—३ माशा से ६ माशा।
पत्रस्वरस—१ तोला से २ तोला।
हिम—२ तोला से ४ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—भारतीय धनिया, विदेशी की अपेक्षा आकार में बड़ा (लगभग ⅛ इंच तक) रूपरेखा में अण्डाकार होती है। इसमें रेशे अधिक और उत्पत् तैल अपेक्षाकृत कम होता है। फल के शीर्ष पर फल-धारक (*stylopodium*) एवं बाह्यकोष का कुछ अवशेष (*calicinal teeth*) तथा डंठल का कुछ भाग लगा होता है। प्रत्येक फल खण्ड में संधिस्थल पर दो-दो तैल नलिकाएँ (*vittae*) होती हैं। दोनों फल-खण्ड बाह्यफलत्वचा (*pericarp*) द्वारा परस्पर जुटे रहते हैं, जिनके अन्तमर्ध्य अर्धचन्द्राकार खातोदर अवकाश होता है। छोटी धनिया रूपरेखा में अधिक गोलाकार (*subglobular*), अपेक्षाकृत छोटी (व्यास में २ मि० मी० से ४ मि० मि०) तथा भूरापन लिये पीलेरंग की होती है। धनिये में एक विशिष्टप्रकार की सुगन्धि, तथा इसमें रुचिकारक मसालेदार स्वाद होता है। उत्तम धनिया के फल में कम-से-कम ०.३% (*V/W*) तथा चूर्ण में ०.२% (*V/W*) उत्पत् तैल होता है। विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य अधिकतम २%। भस्म अधिकतम ७% प्राप्त होती है। अम्ल में अघुलनशीलभस्म अधिकतम १½%। औषधीय प्रयोग के लिए छोटी धनिया का ही ग्रहण होना चाहिए।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—बाजारू धनिये में मिट्टी, कंकड़ तथा मेथी के बीज एवं दालजातीय बीज भी मिले होते हैं। इसके अतिरिक्त फलों के डंठल या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पतले काण्ड के टुकड़े भी मिले होते हैं। इनको पृथक् करलेना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—धनिया को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। विशेषतया चूर्ण को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में भरकर शीतलस्थान में रखना चाहिए, अन्यथा इसका उड़नशीलतैल उड़ जाने से औषधि निर्वीर्य हो जाती है।

संगठन—धनिये में ०.३% से १% तक एक उत्पत् तैल तथा लगभग १३% तक स्थिर तैल एवं प्रोटीन आदि तत्त्व होते हैं। उत्पत् तैल में मुख्यतः कोरिएन्ड्रोल (*Coriandrol* $C_{10}H_{18}O$) पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्षतक।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—कषाय, तिक्त, मधुर, कटु। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषहर, बाह्यप्रयोग से लेप शोथहर, वेदनास्थापन, आभ्यन्तर सेवन से तृष्णा-निग्रहण, रोचन, दीपन-पाचन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, रक्त-पित्तशामक, हृद्य, कफघ्न, मूत्रविरजनीय, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, मस्तिष्कबल्य आदि। यूनानी-मतानुसार धनियाफल दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है। अहितकर-शुक्रनाशन। निवारण—भृष्ट करने से इसका परिहार हो जाता है।

मुख्य योग—धान्यकादिहिम, धान्यपञ्चक, धान्यचतुष्क, अतरीफल कश्नीज़ो।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) तृष्णानिग्रहण तथा शीत प्रशमन महाकषाय एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) गुडूच्यादिगण में धान्यक या धनिया ('कुस्तुम्बरु' नाम से) भी है।

धनिया नेपाली (तुम्बुरु)

नाम। सं०—तुम्बरु। हिं०—नेपाली धनिया, तुम्बुल, तुमरू, तेजफल। बं०—तंबुल, नेपाली धने। पं०—कबाबा, तुम्बरू, तीमरू। म०—नेपाली धनिया। जौनसार—तेमरू। अ०—फ़ाग़िरः (*Open-mouthed*)। फा०—कबाबेहे खंदाँ, फ़ाखिरः। पश्तो—डम्बरे। अं०—टूथ-एक ट्री (*Tooth-ache Tree*)। ले०—ज़ांथोक्सीलुम आलाटुम **Zanthoxylum alatum** *Roxb.* (अंग्रेजी एवं लेटिन नाम इसके वृक्ष के हैं)। वृक्ष को हिन्दी में 'तेजबल' कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। जम्बीर-कुल (रूटासेः *Rutaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयप्रदेश में पंजाब से भूटानतक १५२३ मीटर से २१३१ मीटर (५,००० फुट से ७,००० फुट) की ऊँचाई तक, तथा खसिया की पहाड़ियों पर भी (६०२ मी० से १९१४ मी० या २,००० फुट से ३,००० फुट तक) पाया जाता है। भारतीय बाजारों में इसका आयात उक्त हिमालय प्रदेशीय केन्द्रों से, विशेषतः नेपाल से तथा विदेशों (सूडान, जेरबाद आदि) से होता है। नेपालीधनिया बाजारों में सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलती है।

संक्षिप्त परिचय—तेजबल के छोटे वृक्ष या बड़े गुल्म होते हैं, जिनकी शाखाओं, पर्णवृन्तों एवं पत्रकों (की मध्य-शिरा) पर काँटे होते हैं। पत्तियाँ एकान्तरक्रम से स्थित (*alternate*), सपत्रक एवं असमपक्षवत् (*imparipinnate*) होती हैं, तथा पत्रवृन्त एवं पत्रक-धारक दण्ड सपक्ष (*winged*) होता है। पत्रक २ से ६ जोड़े, विषम-संख्यक, अभिमुखक्रम से स्थित, वृन्तकहीन (*sessile*), २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बे, तथा ½ सें० मी० से २ सें० मी० या ¼ इंच से ¾ इंच चौड़े, नोकदार तथा दन्तमय धारवाले होते हैं। पुष्प पीले, अत्यन्त छोटे तथा प्रायः एकलिंगी होते हैं, जो पार्श्ववर्ती मञ्जरियों में निकलते हैं। पुष्पों में बाह्यकोष ही रंगीन होता है, तथा आभ्यन्तरकोष का अभाव होता है। पुंकेशर संख्या में ६ से ८ होते हैं। फल सुगन्धित और देखने में धनिया की तरह होते हैं। फलत्वक् दानेदार (*tubercled*) होता है। फल प्रायः अन्दर से खोखले होते हैं। किन्हीं-किन्हीं फलों में नील-कृष्ण वर्ण के बीज होते हैं। पुष्पागमकाल—अप्रैल से जून तक। फलागम-अगस्त से अक्टूबर तक। इसकी दातून दाँतों के लिए बहुत अच्छी समझी जाती है।

उपयोगी अङ्ग—फल, त्वक् (छाल)।

मात्रा। फलचूर्ण—५०० मि० ग्रा० से ½ ग्राम या ४ रत्ती से १० रत्ती।

त्वक्चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—तुम्बरु का फल देखने में धनिया के समान, रूपरेखा में अण्डाकार या अर्ध-गोलाकार (*spherical*), कबाबचीनी से बड़ा (अधिकतम ¼ इंच)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा आधे तक फटा हुआ (फागिरः, दहनशिग्राफ्ता), बाहर से देखने में मुश्की (रक्ताभ-भूरा) रंग का होता है। बाह्यतल दानेदार (*covered with rominent tubercles*) होता है। उक्त दाने तैलीयराल से पूर्ण होते हैं। अन्दर कागज की तरह पतला सफेद कला या झिल्ली होती है, जो बीज के गिरजाने पर सिकुड़ जाती है। फलों के अन्दर छोटा-सा गोल, काला चमकदार बीज होता है, जो स्वाद में कुछ-कुछ काली-मिर्च-जैसा होता है। अधिकांश फलों में एक पतला डंठल (वृन्त) भी लगा होता है। फटे हुए सूखे फलों को जल में भिगोने पर फूल कर पूर्ववत् हो जाते हैं। नेपाली धनिया में एक मनोरम सुगन्धि होती है, तथा स्वाद में सुगन्धित (पहले कुछ-कुछ धनिये जैसा) एवं कुछ तीक्ष्ण होती है। हिमालय से आनेवाला ताजाफल कुछ हरे रंग का होता है। इसकी चटनी पीसकर खाने के साथ खाते हैं। यह स्वाद में अम्लता लिये तीक्ष्ण और कुछ सुगन्धित-सा होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—तुम्बुरु की अन्य अनेक जातियाँ भी पायी जाती हैं, जिनका प्रयोग नेपाली धनिये के स्थानापन्न के रूप में होता है :—(१) तिरफल-ज़ांथोक्सीलुम रहेटसा **Zanthoxylum rhetsa** *D.C.* पर्याय—*Z. budrunga Wall.*)—इसके वृक्ष दक्षिणभारत (विशेषतः दकन, कोंकण, मलाबार, मैसूर, अनामलाइ, ट्रावन्कोर आदि) तथा उड़ीसा, सिलहट, खसिया एवं चटगाँव आदि में प्रचुरता से पाये जाते हैं। उड़ीसा, खसिया आदि में प्रायः (*Z. budrunga Wall.*) जाति पायीजाती है। **Z. rhetsa** *DC.* दक्षिण भारत में पायीजाती है। दक्षिण भारत में तिरफल का प्रयोग तुम्बुरु (या नेपाली धनिया) के स्थान में होता है। दोनों के फल देखने में तुम्बरु-जैसे किन्तु कुछ बड़े (मटर के बराबर) होते हैं। स्वाद में प्रथम नीबू के छिलके की भाँति बाद में तुम्बरु-जैसे तीक्ष्ण होते हैं। किन्तु फलों पर तुम्बुरु की भाँति दाने (*tubercles*) नहीं या कम पाये जाते हैं, और अन्दर की सफेद झिल्ली भी प्रायः नहीं होती। फलों का बाह्यतल झुर्रीदार (*wrinkled*) होता है। इनके अतिरिक्त ज़ांथोक्सीलुम की निम्न जातियों के फल भी स्थानिक लोग तीमूर (तुम्बुरु) के नाम से व्यवहृत करते हैं :—(१) ज़ांथोक्सीलुम अकांथोपोडिउम (**Z. acanthopodium** *DC.*)। (२) ज़ांथोक्सीलुम ऑक्सीफिल्लुम (**Z. oxyphyllum** *Edgew.*)। (३) ज़ांथो० ओवालीफोलिउम (**Z. ovalifolium** *Wight* तथा (४) **Z. hamiltonianum** *Wall.*। ज़ांथो० अकांथोपोडिउम तथा ज़ांथो० ऑक्सीफिल्लुम के वृक्ष हिमालयप्रदेश में सिक्किम से भूटान तक (२१३३ मीटर से २४०८ मीटर या ७-८ हजार फुट की ऊँचाई तक) तथा खसिया की पहाड़ियों पर १२०४ मीटर से १८२८ मीटर या ४ हजार फुट से ६ हजार फुट तक) पाये जाते हैं। ज़ांथो० हामिल्टोनिआनुम आसाम की पहाड़ियों पर तथा ज़ांथो० ओवालीफोलिउम आसाम में तथा दक्षिणभारत में कनाड़ा, कुर्ग, नीलगिरि एवं मद्रास में पाया जाता है। ज़ांथो० आक्सीफिल्लुम एवं ज़ांथो० हामिल्टोनिआनुम के फल तुम्बुरु की ही भाँति किन्तु प्रायः अवृन्त (*sessile*) तथा स्वाद में तिरफल की भाँति होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—तुम्बुरु या नेपाली धनिया को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन—फल में एक उत्पत् तैल, राल, तथा बर्बेरीन की भाँति एक तिक्त क्रिस्टलीयतत्त्व पाये जाते हैं। फल-त्वचा में एक उत्पत् तैल, राल एक पीला अम्लसत्व एवं ज़ैन्थोक्सिलिन (*Zanthoxylin*) नामक क्रिस्लीय ठोस तत्त्व होता है। काण्डत्वक् (*Bark*) में भी फल में पाये जाने वाले तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा में मिलते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवात शामक, पित्तवर्धक; कोथप्रशमन, जीवाणुनाशक, उत्तेजक, वात-हर, नाड़ीबल्य, दन्तशोधन, दीपन-पाचन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, कफघ्न, मूत्रजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कटु पौष्टिक आदि। इसका उत्सर्ग त्वचा से होता है। यूनानी मतानुसार नेपाली धनिया दूसरे दर्जे में रूक्ष एवं उष्ण होती है। इसका सूँघना और खाना मस्तिष्क एवं हृदय बलदायक है। यह शीतल आमाशय एवं यकृत् को शक्ति देती, पाचन शक्ति को बढ़ाती, तथा वायु का उत्सर्ग और मलावरोध उत्पन्न करती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। मुखपाक में इसके स्वरस या काढ़े से कुल्ली करने से उपकार होता है।

मुख्ययोग—तुम्बर्वादि चूर्ण।

विशेष—चरकोक्त शिरोविरेचन (सू० अ० २) एवं तिक्त स्कन्ध (चि० अ० ८) के द्रव्यों में 'तुम्बरु' (नेपाली धनिया) का पाठ भी है।

धमासा (धन्वयास)

नाम। सं०—धन्वयास, दुरालभा। हिं०—धमासा। पं०—धमांह, धम्या। गु०—धमासो। म०—धमासा। कच्छ—ध्रामाऊ। बं०—दुरालभा। ले०—फ़ागोनिआ क्रेटिका **Fagonia cretica** *Linn.* (पर्याय—*F. arabica L.*)।

वानस्पतिक-कुल। गोक्षुर-कुल (ज़ोगोफ़िल्लासे : *Zygophyllaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष में धमासा दकन, खानदेश, कच्छ, पश्चिमीराजस्थान, पंजाब एवं पश्चिम में अफगानिस्तान, फारस, अरब एवं मिस्र आदि में होता है। इसका 'शुष्कपंचाङ्ग' पंसारी भी रखते हैं।

संक्षिप्त परिचय—धमासा के पीताभ-हरितवर्ण के शाखाबहुल एवं छोटे-छोटे (३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट ऊँचे), कँटीले क्षुप में शाखा और पत्र फीके हरेरंग के होते हैं। पत्तियाँ तीन पत्रकों वाली अभिमुखक्रम से स्थित होती हैं। पत्रक २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) तक लम्बे, सरलधारवाले तथा रूपरेखा में रेखाकार-अंडाकार (*linear—elliptic*), आपाततः देखने में सनायपत्रकों-जैसे लगते हैं। प्रत्येक पत्ती के मूल में २-२ काँटें होते हैं, जो वास्तव में काँटों में रूपान्तरित अनुपत्र (*stipules*) होते हैं। पुष्पागम शरद्-ऋतु (कुवार-कार्तिक) में होता है। पुष्प छोटे-छोटे तथा गुलाबीरंग के, पुटपत्र (*sepals*) रूपरेखा में आयताकार-भालाकार दलपत्रों की आधी लम्बाई के बराबर होते हैं। फल (*capsule*) पाँच पक्ष अथवा धाराओं से युक्त, अग्रपर तीक्ष्णाग्र लम्बा काँटा होता है।

उपयोगी अङ्ग—पंचाङ्ग (तथा पत्र, टहनी)।

मात्रा—६ ग्राम से १२ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—धमासे को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय, मधुर, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—कफपित्तशामक, दाहप्रशमन, व्रणरोपण, मस्तिष्कबल्य, स्तम्भन, रक्तप्रसादन एव रक्तस्तम्भक, कफनिःसारक, मूत्रल, ज्वरघ्न, त्वग्दोषहर, कटुपौष्टिक आदि। चरकोक्त (सू० अ० ४) अर्शोघ्न एवं तृष्णानिग्रहण महाकषाय में 'धन्वयास' भी पड़ता है।

मुख्य योग—दुरालभादि क्वाथ। धन्वयास (धमासा) का उल्लेख चरकोक्त तृष्णानिग्रहण एवं अर्शोघ्न गण की औषधियों में भी है। विशेष—धमासे के समग्र क्षुप को कूटने से रस प्राप्त नहीं होता। इसलिए उसका 'हिम' तथा 'फाण्ट' बनाना पड़ता है। धमासा, पित्तपापड़ा और मुनक्का इन सबका हिम या फाण्ट बनाना अच्छा है।

वक्तव्य—'भावप्रकाश-निघण्टु' में धन्वयास, यवासा (जवासा) के लिए लिखा है। परन्तु प्राचीनों ने इसे दुरालभा (धमासा) के पर्यायों में लिखा है, और यही ठीक है—यथा धन्वयासः (च० सू० अ० ४; ध०; नि० रा० नि०)। 'धमासा' एवं 'जवासा' दोनों पृथक्-पृथक् औषधियाँ हैं। इनके वानस्पतिक-कुल भी भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि आपाततः दोनों के क्षुप देखने में साधारण एकरूपता रखते हैं, किन्तु फलयुक्त होने पर वानस्पतिक-कुल के विशिष्ट लक्षणों के आधार पर पहचानना अत्यन्त सरल है। जवासे में शिम्बी या फलियाँ (*legumes*) लगती हैं। धमासे में फल (*capsules*) होते हैं। धमासे में दो पत्तियाँ, (उनमें मूल के पास स्थित) ४ काँटे और एक फूल चक्राकार में होते हैं। (लेखक)

धाय, धवई (धातकी)

नाम। सं०—धातकी, धातुपुष्पी, वह्निज्वाला, ताम्रपुष्पी। हिं०—धवई के फूल, धाय के फूल, धवला। बं०—धाई-फुल। म०—धायटी, धावस। गु०—धावड़ी। का०—थाइ। फा०—गुलेधावा। अं०—डाउनी ग्रिजलेआ (*Downy Grislea*)। ले०—वूडफोर्डिआ फ्रूटिकोसा **Woodfordia fruticosa** *Kurz.* (पर्याय—वूडफोर्डिआ फ्लोरिबुंडा *Woodfordia floribunda Salisb.*)। लेटिन नाम इसके क्षुप का है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक-कुल। धातक्यादि-कुल (लीथ्रासे *Lythraceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के पहाड़ी प्रदेशों में १५२३ मीटर या ५,००० फुट की ऊँचाई तक इसके क्षुप स्वयंजात होते हैं। सुखाये हुए पुष्प पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—इसके क्षुप बड़े तथा शाखाएँ लम्बी फैली हुई होती हैं। नवीन शाखाओं और पत्तियों पर काले-काले बिन्दु (*black glands*) होते हैं। पत्तियाँ अभिमुख या लगभग अभिमुख (*sub-opposite*), दो कतारों में (*distichous*), कभी-कभी ३-१ के चक्र (*whorls of 3*) में स्थित होती हैं। रूपरेखा में यह भालाकार, या लट्वाकार-भालाकार, अग्र प्रायः नुकीला और लम्बा, आधारपर गोल या हृदयाकार, ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच लम्बी तथा $\frac{1}{2}$ सें० मी० से $\frac{3}{2}$ सें० मी० ($\frac{1}{4}$ इंच से $1\frac{1}{2}$ इंच) चौड़ी और सरलधार, रंग में फीकी (*pale*) तथा अधःपृष्ठ प्रायः खाकस्तरी मृदुरोमावृत (*grey pubescent*) होता है। पुष्प चमकीले लालरंग के होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत ५-१५ पुष्पवाहक दण्डों पर गुच्छों में निकलते हैं। बाह्यकोष (*calyx*) १ सें० मी० से $\frac{3}{2}$ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच से $\frac{3}{4}$ इंच) लम्बा, नलिकाकार, कुछ टेढ़ा और गाढ़े लालरंग का आभ्यन्तरकोष ६ दलपत्रों का श्वेत बाह्यपुट के अन्दर छिपे होते हैं। पुंकेशर (*stamens*) संख्या में १२। पुंकेसरों एवं कुक्षिवृन्त (*styles*) की लम्बाई में नानारूपिता पायी जाती है। फल (*capsule*) अण्डाकार तथा स्थायी बाह्य कोष नलिका (*persistent calyx-tube*) के अन्दर छिपा रहता है। फलों में अनेक छोटे-छोटे बीज पाये जाते हैं। फूलों से लालरंग प्राप्त होता है, जिसका उपयोग सिल्क रंगने के लिए किया जाता है। पुष्पों का व्यवहार चिकित्सा में किया जाता है। जाड़ों में पुष्प तथा वर्षा में फल आते हैं।

उपयोगी अंग—पुष्प (फूल)।

मात्रा। चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या माशा १ से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। बाह्यकोष-नलिका स्थायी होती है, तथा सूखने पर भी इसका रंग ज्यों-का-त्यों बना रहता है। बाजार में मिलनेवाले सूखे धाय के फूल में उक्त स्थायी बाह्यकोष नलिका में फल भी होता है, जो द्विकोष्ठीय (*2-Celled*) तथा द्विकपाटीय (*2-valved*) होता है। फलों के अन्दर हल्के भूरेरंग के अतिसूक्ष्म लम्बगोल अनेक बीज होते हैं। यदि बाह्यकोष को जल में भिगो दियाजाय तो यह १२ दंताकार खण्डों से युक्त मालूम होता है। मामूली नमूनों में प्रायः पुष्पों के गुच्छे ही होते हैं, जिनसे डंठल पृथक् नहीं किया गया होता है, तथा कभी-कभी सूखी पत्तियाँ भी मिली होती हैं। स्वाद में यह अत्यन्त कसैले होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पुष्पों को यथास्थान मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए और नमी से बचाना चाहिए।

संगठन—पुष्पों में लगभग २०% टैनिक एसिड होता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रधानकर्म—कफपित्तशामक, दाह-प्रशमन, रक्तस्तम्भन, मूत्रविरजनीय, ज्वरघ्न, शीत-ग्राही। अतिसार-प्रवाहिकानाशक। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है। अहितकर—कृमि-जनक है। निवारण-अनारका रस।

वक्तव्य—चिकित्सा-व्यवहार में धाय के फूल का अधिकांशतः उपयोग आसवारिष्ट में खमीर उठाने के लिए किया जाता है।

मुख्ययोग—धातक्यादि क्वाथ, धातक्यादि चूर्ण, धातक्यादि तैल।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय एवं मूत्रविरजनीय महाकषाय तथा सुश्रुतोक्त (सू०अ० ३८) प्रियङ्ग्वादि और अम्बष्ठादिगण के द्रव्यों में 'धातकी' भी है।

नरसल (नल)

नाम। सं०—नल, पोटगल, शून्यमध्य, धमन। हिं०—नरसल, नरकट, नरकुट, (कुमायूँ)—कर्का। को०—जंकई। बं०—नल। म०—नल। अं०—नॉडिंग रीड *Nodding Reed* (अग्र नीचे को झुका होने से)। ले०—फ्रागमीटेस कार्का (**Phragmites karka** *Trin.*)।

वानस्पतिक-कुल। तृण-कुल (ग्रामीने : *Gramineae*)।

प्राप्तिस्थान—यह आनूप प्रदेशों (जलप्राय प्रदेश-नदी-नालों के किनारे तथा दलदल भूमि) में स्वयं उगता है।

संक्षिप्त परिचय—नरकट के बहुवर्षायु स्वरूप के पौधे होते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, जिनके काण्ड या नाल अथवा कल्म (*culms*) ३ से ३.६ मीटर (१० से १२ फुट) ऊंचे, अन्दर से खोखले, रूपरेखा में गोलाकार तथा बाहर से चिकने, अधिकांशतः पत्राधार से आवृत होते हैं। काण्ड के पर्व हरिताभ-पीत या पीतवर्ण के तथा छोटे होते हैं। नरकट का एक-दो पौधा लगा देने पर भी यह लम्बे भूमिशायीकाण्ड द्वारा शीघ्र अपनी संख्या वृद्धि करते हैं। कोई-कोई काण्ड सशाख भी होते हैं। पत्तियाँ कड़ी, सीधी खड़ी, ३० सें० मी० से ६० सें० मी० (१ फुट से २ फुट) लम्बी तथा २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) चौड़ी अग्रकी ओर क्रमशः कमचौड़ी होकर नुकीली हो जाती हैं। जाड़ों में पुष्पागम होता है। पुष्पव्यूह या घूआ १५ सें० मी० से ६२.५ सें०मी० (६ इञ्च से २५ इञ्च) तक लम्बा होता है। पुष्पव्यूह की छोटी दण्डिकाएँ या अनुशूकी (*spikelets*) धूसर या भूरे रंग की होती हैं। काण्ड का कलम बनाया जाता है, तथा बांसुरी भी बनाते हैं। मूल का औषध्यर्थ व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग। मूल।

मात्रा। क्वाथ–५ तोला से १० तोला।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–नल (नरकट) की बड़ी जाति भी होती है। 'धन्वन्तरि' एवं 'राजनिघण्टुकार' ने इसका वर्णन 'महानल' तथा 'देवनल' के नाम से किया है। इसके वानस्पतिक नाम यह हैं—(१) आरुंडो डोनाक्स **Arundo donax** *Linn.* (*Family* : *Gramineae*), (२) फ्राग्मीटेस माक्सीमा (**Phragmites maxima** *Blatter & Mc Cann.* (*Family* : *Gramineae*)। उक्त वनस्पतियाँ समस्त भारतवर्ष में (तथा हिमालय की तराई में ९१४.४ मीटर से १५२३ मीटर या ३,००० फुट से ५,००० फुट की ऊँचाई तक) पायी जाती हैं। इनका मूल भी अभावे नलमूल के स्थान में ग्राह्य हो सकता है।

संग्रह एवं संरक्षण–जाड़ों में नलमूल का संग्रह कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षण करें।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, कषाय, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–त्रिदोषहर विशेषतः वातपित्तशामक, दाहप्रशमन, मूत्रल, रक्तपित्तशामक एवं रक्तशोधक, स्तन्य-जनन, वृष। लेपके रूप में स्थानिक प्रयोग से दाहप्रशमन एवं व्रणरोपण।

मुख्य योग–तृणपंचमूलक्वाथ, पंचतृणक्षीर।

नागकेसर (नागकेशर)

नाम। सं०–नागकेशर, नागपुष्प। हिं०–नागकेसर, नागेसर। बं०–नागेश्वर। म०, गु०–नागकेसर। फा०–नारेमुष्क। अ०–मिस्कुरुम्मान। अं०–आयर्नवुड ट्री (*Iron-Wood Tree*), कोबराज सैफ्रन (*Cobra's Saffron*)। ले०–मेसुआ फ़ेरेआ (**Mesua ferrea** *Linn.*)। लेटिन नाम वृक्ष का है।

वानस्पतिक-कुल। नागकेशर-कुल (गुट्टीफेरे *Guttiferae*)।

प्राप्तस्थान–पूर्वी हिमालय, पूर्वी बंगाल, आसाम, दक्षिणी कोंकण तथा पश्चिमी घाट के जंगलों में १५२३ मीटर या ५,००० फुट की ऊँचाई तक, तथा अंडमान द्वीपसमूह में इसके 'जंगली वृक्ष' पाये जाते हैं। यह बगीचों में भी लगाया जाता है। शुष्क पुंकेशर (नागकेसर) पंसारियों के यहाँ बिकता है।

संक्षिप्त परिचय–नागकेशर के मध्यमकद के सदाहरित, सुन्दर वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ सीधी, गोल तथा कोमल और छाल धूसर वर्ण की होती हैं। पत्तियाँ ५ सें० मी० से १५ सें० मी० या २ इञ्च से ६ इञ्च तक लम्बी २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) तक चौड़ी, आयताकार-भालाकार तथा अग्र की ओर नुकीली, ऊर्ध्वपृष्ठ चमकीला, अधःपृष्ठ श्वेताभ तथा क्षोदलिप्त, शिराएँ सघन एवं अस्पष्ट होती हैं। शाखाग्रोंपर पत्रकोणों से पुष्प निकलते हैं, जो सफेद, सुगन्धित तथा व्यास में ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० (३ इञ्च से ४ इञ्च) होते हैं। पुष्पबाह्यदल स्थायी और कठोर होता है, तथा फलावस्था में भी बना रहता है। पुंकेशर पीतवर्णगुच्छों में होते हैं। फल, २.५ सें० मी० से ३.१२५ सें० मी० (१ इञ्च से १¼ इञ्च) लम्बा, रूपरेखा में लम्बगोल होता है, जिसके भीतर मेंहदी के बीजों की भाँति १ से ४ कठोर धूसर वर्ण के बीज निकलते हैं। पुष्पागम वसन्त में तथा फलागम शरद्-ऋतु में होता है। केशरों को नागकेशर तथा पुष्प को नागपुष्प कहते हैं।

उपयोगी अंग–पुष्प (विशेषतः पुंकेसर)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्रा। ०.५ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—यह पुन्नागजातीय 'नागचम्पावृक्ष' के फूल के केसर हैं, जो औषध के काम में आते हैं। फूल पिलाई लिये सफेद और सुगन्धित होता है। पुष्प व्यास में लगभग ७.५ सें० मी० या ३ इञ्च तक होते हैं, जिनके पुटपत्र अथवा बाह्यदल या सेपल (*sepals*) गोलाकार, मोटे परन्तु किनारों पर पतले होते हैं। दलपत्र (*petals*) संख्या में ४, सफेद रंग के, अभिलट्वाकार तथा फैले हुए (*spreading*) होते हैं। परागकोश या परागाशय अथवा ऐन्थर (*anther*) अपेक्षाकृत बड़ा, लम्बगोल तथा सुनहले रंग का होता है। फल शंखाकार—लम्बगोल, आकार में चेस्टनट के बराबर, तथा अग्र की ओर नुकीला होता है। फल का आधार स्थायी पुटपत्रों या बाह्यदल द्वारा आवृत होता है। कच्चे फलों के आधार पर एक रालीय चिपचिपा निर्यास (*tenacious resin*) भी निकलता है, जो पहले मुलायम, किन्तु हवा में खुला रहने पर कड़ा हो जाता है। इसमें एक मनोरम सुगंधि भी पायी जाती है और हल्के पीले रंग का, फूल के गंध का और 'चैन टर्पेन्टाइन' के समान होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। (१) लालनागकेशर।

नाम। सं०—सुरपुन्नाग, नमेरु, सुरपर्णिका। म०—सुरंगी (वृक्ष), लालनागकेशर। गु०—रातुं नागकेर। हिं०—लालनागकेशर। ले०—ओक्रोकार्पुस लांगीफोलिउस (**Ochrocarpus longifolius** *Benth. & Hook. f.*)। लालनागकेशर का वृक्ष दक्षिण कोंकण से मलाबार तक तथा कोयम्बटूर में समुद्रतट के प्रदेशमें स्वयंजात होता है, और बोया भी जाता है। इसकी सुखायी हुई कलिकाएँ, जो हल्की लालिमा लिये भूरेरंग की तथा छोटे लौंग के बराबर होती हैं, बाजारों में 'लाल नागकेशर' के नाम से बिकती हैं। इसके गुण-कर्म भी असली नागकेशर की ही भाँति होते हैं, किन्तु उसकी अपेक्षा हीनकोटि का है। अभाव में इसका प्रयोग नागकेशर के स्थान में किया जा सकता है। (२) काला नागकेशर—तज या चीनीदालचीनी या तमालपत्र (तेजपात) तथा दक्षिणभारत में पायी जानेवाली निकटतम जातियों के सुखाये हुए कच्चे या अप्रगल्भ फल (*immature fruit*) दक्षिण में 'कालानागकेसर' के नाम से बिकते हैं। इनका आयात चीन से तथा दक्षिण भारत के जंगलों से होता है। यूरोप में मसाले में काफी मात्रा में इसकी खपत होती है। मद्रास में पंसारी लोग काले नागकेशर को, नागकेसर के फल अथवा पीला नागकेशर या असली नागकेसर (**Mesua ferrea**) तथा लाल नागकेशर (**Ochrocarpus longifolius**) के नाम से बेचते हैं। नागकेशर के स्थान में इसका प्रयोग नहीं होना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—नागकेशर को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—कच्चे फलों में एक तैलीय राल (*Oleo-resin*) निकलता है, जिससे एक प्रकार का 'उत्पत् तैल' प्राप्त होता है। बीजों में एक 'स्थिरतैल' होता है और फलावरण में कषायद्रव्य तथा केशर में दो 'तिक्तद्रव्य' पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—कफपित्तशामक, दुर्गन्धनाशक, स्वेदापनयन, दीपन-पाचन, ग्राही, अर्शोघ्न, कृमिघ्न, रक्तस्तम्भक, बल्य, वाजीकरण मूत्रजनन, मेध्य। यूनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृति के लिए। निवारण—शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—नागरमोथा।

मुख्य योग—हलवा सुपारीपाक।

विशेष—नागकेशर 'चातुर्जात' का उपादान है। सुश्रुतोक्त एलादिगण, प्रियङ्ग्वादिगण एवं अञ्जनादिगण में नागपुष्प (नागकेशर) का भी उल्लेख है।

नागरमोथा (नागरमुस्ता)

नाम। सं०—नागरमुस्ता। हिं०—नागरमोथा। बं०—नागरमुता। म०—नागरमोथा। गु०—नागरमोथा। अ०—ओस (अ)द कूफी। फा०—मुष्केजर्मी, मुष्कजेरेजर्मी। ले०—सीपेरुस स्कारिओसुस (**Cyperus scariosus** *R. Br.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुस्तादि-कुल (सीपेरासे *Cyperaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पूर्वी एवं दक्षिण भारत, बंगाल, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान आदि के जलाशयों में पाया जाता है। इसका सुखाया हुआ 'कन्दयुक्त भौमिककाण्ड' बाजारों में बिकता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय—नागरमोथा के मोटे अन्तर्भूमिशायी काण्ड होते हैं। वायव्य काण्ड पतला, कोमल तथा त्रिपार्श्विक (*triquetrous*) होता है, जो प्रायः ३७.५ सें० मी० से ९० सें० मी० (१½ से ३ फीट) तक ऊँचा होता है, और अग्रपर व्यास में केवल १ मिलिमीटर से १½ मिलिमीटर होता है। पत्तियाँ मूलीय पत्रगुच्छ के रूप में होती हैं, जो प्रायः काण्ड से छोटी (कभी बड़ी) और कभी नहीं होती। पुष्प छोटे हरिताभ, जो समस्थ मूर्धजक्रम में स्थित पुष्पवाहक शाखाओं पर निकलते हैं, जो अवृन्त काण्डज व्यूहों अर्थात् अनुशूकी (स्पाइकलेट *spikelets*) का संयुक्तव्यूह होते हैं। इसके कन्दयुक्त भौमिककाण्ड बाजार में नागरमोथा के नाम से बिकते हैं।

उपयोगी अंग—(भौमिककाण्डयुक्त) कन्दाकार जड़।

मात्रा। चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। क्वाथ २½ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—नागरमोथा के कन्द लम्बे, कुछ दबे हुए, टेढ़े और कालापनलिये हुए ५ सें० मी० या २ इंच तक लम्बे और व्यास में १.२५ सें० मी० या ½ इंच तक, कभी-कभी साशाख (*branched*), बाह्यतल प्रायः शल्कपत्रों के अवशेष से आवृत होता है, और इस पर अनेक वलयाकार या मुद्रिकाकार रेखाएँ (*annular rings*) होती हैं। शल्कपत्रों को साफ करने पर कन्द गाढ़े भूरेरंग का होता है। अधस्तल से कभी-कभी सूत्राकार जड़ें निकली होती हैं, और निचले सिरेपर भौमिककाण्ड लगा होता है। कन्द का अन्तर्वस्तु कड़ा और रक्ताभवर्ण का होता है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर त्वचीय या बहिर्भाग (*cortical portion*) कुछ गाढ़ेरंग का होता है। नागरमोथे में एक विशिष्ट प्रकार की उग्र सुगन्धि (वचाकी-सी तथा कुछ-कुछ तारपीन-सी) पायी जाती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—मोथा की कई जातियाँ पायी जाती हैं, जो गुण-कर्म में बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं। इन सबमें नागरमोथा सर्वश्रेष्ठ होता है। किन्तु उसके अभाव में अन्य मुस्ता का भी प्रयोग कर सकते हैं:—(१) सीपेरस रोटुंडुस (**Cyperus rotundus** *Linn.*)। नाम। सं०—मुस्तक, मुस्ता। हिं०—मोथा, मुथा। बं०—मुता। म०, गु०—मोथ। हो०—रोटेसिला। मोथा में मूलीय पत्रगुच्छ होता है, जो एक कठोर कन्दसदृश भौमिककाण्ड (*rounded rhizome*) से निकलता है। नीचे सूत्राकार अन्तर्भूमिशायी काण्ड भी प्रायः होते हैं, जिससे काले कन्द (*bulbous root*) निकलते हैं। पत्तियों के बीच से तीन पहल का वायव्य-काण्ड (*aerial stem*) निकलता है। अग्रपर समस्थ मूर्धजक्रम में पुष्पवाहक शाखा छोटे-छोटे अवृन्तकाण्डज व्यूहों का संयुक्तव्यूह होती है। पुष्पव्यूह का आधार भाग तीन पत्र-सदृश कोणपुष्पकों या निपत्रों (*bracts*) से घिरा होता है। मोथा सर्वत्र भारतवर्ष में लगभग १८२९ मीटर या ६,००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। खेतों में अथवा रास्तों के किनारे या परती जमीन में जल के पास उगा मिलता है। इसकी कन्दाकृतिजड़ बाहर से काली और भीतर से सफेद, गोल, कठिन और सुगंधित होती है। स्वाद में किंचित् तिक्त होती है। औषधि में इन्हीं का व्यवहार होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—नागरमोथे को अच्छी तरह मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन—नागरमोथे की जड़ में अल्पमात्रा (०,०७५ से ०.०८०%) में एक सुगंधित उत्पत्तैल तथा वसा, शर्करा, निर्यास, कार्बोहाइड्रेट एवं ऐल्ब्युमिन, एवं क्षार आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण-लघु, रूक्ष। रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—कफपित्तशामक, दीपन-पाचन, ग्राही, तृष्णानिग्रहण, कृमिघ्न, रक्त-प्रसादन, कफघ्न, मूत्रार्तवजनन, स्तन्यजनन, स्तन्य-शोधन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, बल्य, मेध्य आदि।

मुख्ययोग—मुस्तकादि क्वाथ, मुस्तकाद्यरिष्ट, षडंगपानीय, जुवारिशजालीनूस आदि।

विशेष—चरकोक्त लेखनीय, तृप्तिघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन एवं तृष्णानिग्रहण गणों (महाकषायों) में तथा सुश्रुतोक्त वचादि एवं मुस्तादिगण की औषधियों में मुस्ता (नागरमोथा) का भी उल्लेख है।

नारङ्गी (नारंग)

नाम। सं०—नागरङ्ग, नारंग। हिं०—नारंगी। म०—संत्रें, नारिंग। गु०—नारंगी। अ०—नारंज। फा०—नारंग।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अं०–ऑरेन्ज (*Orange*)। ले०–सिट्रस आऊरान्टिअम् **Citrus aurantium** *Linn.* (कड़वी नारंगी)। (२) सिट्रस साइनेन्सिस **Citrus sinensis** *Linn.* (मीठीनारंगी या मुसम्मी)।

वानस्पतिक-कुल। जम्बीर-कुल (रूटासे *Rutaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में नारंगी के लगाये हुए पेड़ मिलते हैं। मद्रास में गन्टूर जिले में काफी परिमाण में इसके बगीचे लगाये गये हैं। सिट्रस सोनेन्सिस (मीठी नारंगी) के भी समस्त भारतवर्ष (विशेषतः बम्बई, मद्रास, हैदराबाद, कुर्ग, मध्य प्रदेश, बिहार-उड़ीसा एवं पंजाब आदि) में बगीचे लगाये जाते हैं। फसल के समय में पक्वफल बाजारों में बिकते हैं। पूना की मुसम्मी अधिक अच्छी होती है।

संक्षिप्त परिचय–नारंगी के अनेक शाखा-प्रशाखा युक्त मध्यमकद के कँटीले वृक्ष होते हैं। कोमल शाखाएँ हरिताभ श्वेतवर्ण की होती हैं। पत्तियाँ वास्तव में सपत्रक होती हैं, किन्तु एक ही पत्रक पाया जाता है, जिससे साधारण पत्रवत् मालूम होती हैं। यह ५ सें० मी० या २ इंच तक लम्बी तथा अनुपत्र एवं एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। पर्णवृन्त सपक्ष (*winged*) होता है, जिससे फलक जुटा-सा (*jointed*) मालूम होता है। पत्तियों के पृष्ठपर सूक्ष्म तैलबिन्दु पाये जाते हैं, जिससे पत्तियों को मसलकर सूँघने से एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि मालूम होती है। पत्रतट सूक्ष्मदन्तुर होता है। पुष्प सफेद तथा मीठी सुगंधियुक्त होते हैं। फल गोलाकार किन्तु दोनों सिरों पर चपटे होते हैं। कच्ची अवस्था में यह हरे तथा पकने पर पीलेरंग के हो जाते हैं। फल का छिलका पतला होता है, तथा गूदे से आसानी से पृथक् हो जाता है। गूदा मीठा होता है।

उपयोगी अंग–फल एवं पुष्प तथा फलत्वचा।

मात्रा। फलस्वरस–२ तोला से ५ तोला।

फलत्वचा–आवश्यकतानुसार।

संग्रह एवं संरक्षण–नारंगी के छिलके को छायाशुष्ककर अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–मधुर, अम्ल। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–वातपित्तशामक, सौमनस्यजन, नरोचन, दीपन, छर्दिनिग्रहण, हृद्य, शोणितस्थापन एवं बल्य आदि। फलत्वचा लेखन एवं वर्ण्य तथा पुष्प आक्षेपहर होते हैं।

मुख्य योग–शर्बत नारंग।

नारियल (नारिकेल)

नाम। सं०–नारिकेल, नालिकेर। हिं०–नारियल, नरियल। बं०–नारकेल्। पं०–नरेल, खोपा। म०–नारल (फल), माड (वृक्ष)। गु०–नारिअल, नारियल। अ०–नारजील, जैजो हिंदी। फा०–नारगील। अं०–(१) (फल) कोकोनट-फ्रूट (*Cocoanut fruit*)। (२) (वृक्ष) कोकोनट-ट्री (*Cocoanut-Tree*)। ले०–कोकोस नूसिफेरा (**Cocos nucifera** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। ताड़-कुल (पामासे *Palmaceaa*)।

प्राप्तिस्थान–दक्षिण भारत, मलाबार तट, करोमंडल तट, पूर्वी बगाल, लंका, ब्रह्मा तथा पूर्वी-द्वीपसमूह। इसके कच्चे एवं पके फल तथा पक्वफलों की गिरी (खोपरा) बाजारों में बिकते हैं। गरी का तेल भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध व्यावसायिक द्रव्य है।

संक्षिप्त परिचय–नारियल के ऊँचे-ऊँचे (२४.३६ मीटर या ८० फुटतक या इससे भी अधिक) तथा निःशाख देखने में ताड़-जैसे वृक्ष होते हैं, जिसका काण्डस्कन्ध (*trunk*) व्यास में ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० (१ फुट से १½ फुट) होता है। इसपर वलयाकार किन्तु अस्पष्ट चिह्न (*ringlike leaf-scars*) होते हैं। मूलके पास काण्ड अपेक्षाकृत अधिक स्थूल एवं फूला-सा होता है। काण्डपर पत्तियों का गुच्छक (कूर्चशीर्षक) होता है। पत्तियाँ १.८ मीटर से ५.४ मीटर (६ फुट से १८ फुट) लम्बी तथा त्रिपादोत्तर-पक्षवत् (*pinnatisect*) होती हैं। पत्रक ६० सें० मी० से ९० सें० मी० (२ फुट से ३ फुट) लम्बे, कम चौड़े तथा अग्र की ओर चौड़ाई क्रमशः कम होती जाती है। पुष्पव्यूह पत्रावृत अवृन्त-काण्डज स्थूल मञ्जरी या स्पैडिक्स (*spadix*) होता है, जो पत्रकोणों से निकलता है, तथा पत्रकोश (*spathe*) द्वारा आवृत रहता है। पुष्प एकलिंगी होते हैं, किन्तु एक ही वृक्ष पर नर एवं स्त्री दोनों प्रकार के पुष्प पायेजाते हैं। सशाखमञ्जरियों पर स्त्री पुष्प गोलाकार, प्रायः २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बे, संख्या में अपेक्षाकृत कम और नीचे के भाग

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में स्थित होते हैं। नरपुष्प छोटे, सुगन्धित और संख्या में अधिक होते हैं, जो मञ्जरियों के अग्रभाग की ओर स्थित होते हैं। फल प्रायः अण्डाकार (*ovoid*), त्रिपार्श्विक (*three-angled*) तथा १५ सें०मी० से ३० सें०मी० (६ इञ्च से १२ इंच) तक लम्बा होता है, जिनमें प्रत्येक में एक बीज होता है। नारियल में वर्षभर फूल-फल लगते हैं। कच्चे फलों में एक द्रव भरा रहता है, जिसे 'डाभ या नारिकेलोदक (*cocoanut-water*)' कहते हैं। मध्यावस्था में जल अपेक्षाकृत कम और गिरि मृदुदुग्धवत् होती है। किन्तु पक्वावस्था में गिरी (*kernel*) कठोर, स्वादरहित और प्रायः निर्जल हो जाती है। फलों का बाह्य छिलका रेशाबहुल (*fibrous*) होता है, जिसके अन्दर कड़ा खपड़ोहा (*shell*) होता है। इसको तोड़ने पर अन्दर गिरी (*kernel*) निकलती है। खोपड़े (*shell*) के एक सिरे पर ३ छिद्र होते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से नारियल एक महत्त्व का वृक्ष है। इसके सभी अंगों की प्रचुर मात्रा में व्यावसायिक खपत होती है।

उपयोगी अंग—फल की गिरी (खोपड़ा), गिरी का तेल (*Coconut Oil*), फल, पुष्प, रोमराजि या जटा (*tomentum*), मूल एवं क्षार (नारिकेलक्षार), ताजा रस या नीरा (*Sweet-Toddy*)।

मात्रा। क्षार—½ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से ८ रत्ती।
गिरी—२ तोला से ३ तोला।
तेल—१० बूँद से २० बूँद।
डाभ—आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। गरीका तेल—यह नारियल की पक्व गिरी से संपीडन द्वारा रंगहीन अथवा हल्के पीले रंग के पारदर्शक द्रव के रूप में प्राप्त किया जाता है। २०° तापक्रम पर यह जम जाता है, और १५° तापक्रम पर तो कड़ा होकर मोम की भाँति हो जाता है। तेल में भी गिरी-जैसी गंध होती है, तथा स्वाद में मधुर एवं रुचिकर होता है। हवा में देर तक खुला रहने से गरी का तेल विकृत हो जाता है। विलेयता—६०° तापक्रम पर दुगुने आयतन के बराबर ऐल्कोहल् (९५%) में घुल जाता है (कम तापक्रम पर अपेक्षाकृत कम घुलता है)। ईथर, क्लोरोफार्म एवं कार्बन-बाईसल्फाइड में भी फौरन घुल जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व (२५° तापक्रम पर)—०.९१८२; (३०° तापक्रम पर)—०.९१५०, (३५° तापक्रम पर)—०.९१३५। अपवर्तनांक तालिका: (२५° पर)—१.४५३० से १.४५६०। आयोडीन वैल्यू (*Iodine Value*)—८.० से ९.६। सैपोनिफिकेशन वैल्यू (*Saponification Value*)—·५० से २६३।

मिलावट—गरी के तेल में मूँगफली के तेल एवं खनिज तैलों का मिलावट किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—तैल को अच्छी तरह कार्कबन्द सफेद शीशियों में भर कर अँधेरी जगह में रखना चाहिए। 'क्षार' को अच्छी तरह कार्कबन्द शीशियों में रखें और आर्द्रता या नमी से बचाना चाहिए। अन्य उपयोगी अंगों को मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—ताजे खोपरे में मांसवर्धकतत्त्व (*nitrogenous substances*), वसा, द्राक्षशर्करा, इक्षुशर्करा प्रभृति तत्त्व होते हैं। गरी से ६०% से ७०% तैल प्राप्त होता है, जिसमें लॉरिक (४४% से ५१.३%), मायारिस्टिक एसिड (१३% से १८%), केप्रिलिक एसिड, पामिटिक एसिड, स्टियरिक एसिड के ग्लिसराइड्स पाये जाते हैं। डाभ (*Cocoanut-milk*) में प्रोटीन, इक्षुशर्करा, क्लोराइड्स एवं विटामिन '*A*' और '*B*' पाये जाते हैं। क्षार में काफी मात्रा में पोटास पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। तैल-दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रभाव—केश्य। कर्म—वातपित्तशामक। इसका जल—अग्निदीपन, हिक्कानिग्रहण, रक्तपित्तशामक, मूत्रजनन, वस्तिविशोधन, ज्वरनाशक, तृष्णादाहशामक। (क्षार) भेदन, शूलप्रशमन, अम्लपित्तनाशक। कोमलफल—बृंहण, बल्य, रक्तपित्तशामक; और पक्वफल—वाजीकरण, आर्तवजनन। गिरीका तेल—केश्य, कुष्ठघ्न, व्रणरोपण। ताजा तेल चर्बी के स्थान में प्रयुक्त होता है, और उससे श्रेष्ठ होता है। यूनानीमतानुसार नारियल दूसरे दर्जे में गरम और तर है। अहितकर—अभिष्यन्दि एवं चिरपाकी। निवारण—शर्करा और मिश्री। प्रतिनिधि—अखरोट, पिस्ता, चिलगोजा इत्यादि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुख्ययोग—नारिकेलखण्ड, नारिकेललवण, नारिकेलामृत, माजून फिलसफा।

नारियल दरियाई

नाम। हिं०—दरियाई नारियल। द०—दरिया का वारियल। म०—दर्याचा नारल। गु०—दर्यानुं नालीएर (नारिअल)। बम्ब०, कों० मा०—जहरी नारल। अ०—नारजीले बहरी। फा०—नारजीले दरियाई। अं०—सी-कोकोनट (*Sea-Cocoanut*)। ले०—लोडोइसेआ सेइचेल्लारुम् **Lodoicea seychellarum** *Labill.* (पर्याय—*L. maldivica Pers.*)।

वानस्पतिक-कुल। ताड़-कुल (पामे *Palmae*)।

प्राप्तिस्थान—'दरियाई नारियल' सिचेलिज-द्वीपसमूह (*Seychelles*) का आदिवासी वृक्ष है। समुद्र-धाराओं द्वारा इसका प्रसार अन्य देशों में भी हो गया है। अफरीका एवं अमेरिका के समुद्रतटवर्ती देशों में भी यह होता है। अधुना दक्षिणभारत के समुद्रतटवर्ती प्रान्तों में भी यह कहीं-कहीं लगाया जाता है। सर्वत्र पंसारियों के यहाँ इसके मग्ज के कटेहुए बेडौल टुकड़े मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—दरियाई नारियल का वृक्ष भी ताड़ या नारियल के वृक्ष की भाँति होता है। इसका काण्ड काफी ऊँचाईतक (३०.४६ मीटर १०० फुट तक) बढ़ता है, और लौह-स्तम्भ की भाँति मालूम होता है। स्त्रीजाति के वृक्ष अपेक्षाकृत कम ऊँचे होते हैं। ताड़ कुल के अन्य वृक्षों की अपेक्षा यह अधिक दीर्घायु होता है, और फूल-फल भी बहुत विलम्ब से आने प्रारम्भ होते हैं। २० वर्ष से २५ वर्ष का हो जाने पर वृक्ष अत्यन्त सुन्दर मालूम होता है। प्रायः ३० वर्ष पुराना होने पर प्रथम पुष्प आने प्रारम्भ होते हैं। नरवृक्ष की पत्रावृत अवृन्तकाण्डज नम्य स्थूलमञ्जरियाँ प्रायः ९० सें० मी० से १२० सें० मी० या ३ फुट से ४ फुट तक लम्बी एवं व्यास में ७.५ सें०मी० से १० सें०मी० या ३ इञ्च से ४ इंच होती हैं। नारी मंजरियों का पुष्पवाहकदण्ड काफी टेढ़ा-मेढ़ा होता है, जिसपर साधारणतः ४ से ५ या अधिक से अधिक ११ तक फल लगते हैं, जो बहुत बड़े-बड़े (२०—२५ सेरतक वजन के) रूपरेखा में नारियल के फलों की भाँति होते हैं। फूललगने से लेकर फलपकने तक प्रायः ११ वर्ष तक का समय लग जाता है। किन्तु साधारणतः ३ वर्ष से ४ वर्ष में फल प्रगल्भ हो जाते हैं, और इस समय पर यह मुलायम होता तथा अन्दर जेली की भाँति अर्धघन गूदा (गिरी) भरा होता है। फलों के बाहर नारियल की भाँति रोमराजि या रेशेदार जटा (*thick fibrous coat*) होती है, जिसके अन्दर ३—३ खोपड़े (*nuts*) निकलते हैं। गिरी काफी कड़ी होती है।

उपयोगी अंग—मग्ज या गिरी (फलमज्जा)।

मात्रा—०.५ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से ८ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—दरियाई नारियल की गिरि १.८७५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (¾ इञ्च से १ इञ्च) तक मोटी, बहुत कड़ी और सफेद होती है, जिससे आपाततः देखने में गरी की भाँति लगती है। बाजार में इसके कटे हुए छोटे-बड़े बेडौल टुकड़े मिलते हैं, जिनमें कोई गन्ध या स्वाद नहीं होता। जल में काफी देर तक भिगोने से यह मुलायम हो जाते हैं, और छिलकेदार टुकड़े निकल सकते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—इसे मुखबन्दपात्रों में उपयुक्त स्थान में रखना चाहिए।

वीर्यकालावधि—दीर्घ कालतक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कटु, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—वातशामक, तृष्णानिग्रहण, हृदयोत्तेजक, प्राकृतदेहाग्नि संरक्षक, विषघ्न, वामक आदि।

मुख्ययोग—जवाहरमोहरा।

विशेष—दरियाई नारियल बहुत कड़ा होता है। अतएव इसका 'बुरादा' प्रयुक्त करना चाहिए।

नाशपाती (टंक)

नाम। सं०—टंक, अमृतफल। हिं०—नाशपाती, नशपाती, नासपाती। पं०—नाक, नासपाती। अफ०—अमरूप, अमरूद, नाक। फा०—अमरूद। अ०—कुम्मन्ना। अं०—पिअर (*Pear*)। ले०—पीरुस कॉम्यूनिस (**pyrus communis** *Linn.*)। यह अमरूद से भिन्न है। जिस फल को भारतवर्ष में 'अमरूद' कहते हैं, उसका कोई अरबी, फारसी नाम नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक-कुल । तरुणी-कुल (रोजासे *Rosaceae*) ।

प्राप्तिस्थान–पूर्वी और मध्ययूरोप तथा पश्चिमी एशिया । उत्तरपश्चिम हिमालय में यह बड़े पैमाने पर लगायी जाती है । फसल में शहरों में इसका फल मेवाफरोशों के यहाँ बिकता है ।

संक्षिप्तपरिचय–यह एक प्रसिद्ध मीठा फल है, जो विभिन्न आकार-प्रकार का होता है । सामान्यतया नाशपाती खाने में कड़ी होती है, परन्तु कश्मीर आदि पहाड़ी प्रदेशों की नाशपाती अत्यन्त कोमल एवं रसीली होती है । रूपरेखा में यह कुछ सुराहीनुमा होती है । इसको विशेषतया 'नाक (नाख)' कहते हैं । यह नाशपाती की कलम करके सुधारी हुई जाति होती है ।

स्वभाव । गुण–गुरु, स्निग्ध । रस–मधुर, कषाय । विपाक–मधुर । वीर्य-शीत । प्रधान कर्म–त्रिदोषशामक, रोचन हृद्य एवं रक्तपित्तशामक, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, बल्य ।

मुख्य योग–अर्कशीर, मुरब्बा नाशपाती ।

निम्बूक–दे०, 'नीबू' ।

निर्गुण्डी (मेउड़ी)

नाम । सं०–निर्गुण्डी । हिं०–सम्हालू, सँभालू, म्योड़ी, मेउ (उँ) ड़ो । बं०–निर्शिंदा, निसिन्दा । म०–निर्गुण्डी । गु०–नगोड । संथा०–सिन्दवार । खर०–सिनुआर । उड़ि०–वेगुनिया या निगुण्डी । हा०–विगना, सुर्रासग । फा०–पंजंगुश्त । अ०–अस्लक़, फ़ंजंजिकिश्त, जूखम्सतिल औराक़, जूखम्सते असाबेअ । अं०–फाइव्ह-लीव्ड चेस्ट-ट्री (*Five-leaved Chest-tree*) । ले०–वीटेक्स निगुण्डो (**Vitex negundo** *Linn.*) ।

वानस्पतिक-कुल । निर्गुण्डी-कुल (वर्बेनासे : *Verbenaceae*) ।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में इसके स्वयंजात एवं लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं । गाँवों के आसपास प्रायः सर्वत्र बगीचों एवं खेतों के मेड़ों पर झाड़ी (*hedge*) के लिए इसके पौधे लगाये जाते हैं ।

संक्षिप्तपरिचय–इसके पौधे प्रायः दो रूपों (*forms* में) मिलते हैं, जिनमें प्रथम प्रकार अधिक सामान्य है । इसके पत्रझड़ करने वाले बड़े-बड़े गुल्म (१.८ मीटर से ३.६ मीटर या ६ फुट से १२ फुट ऊँचे) अथवा कभी-कभी वृक्षवत् होते हैं, जिनके ऊपर श्वेताभ रोमावरण होता है । इससे अनेक पतली-पतली शाखाएँ निकल कर चारों ओर फैली रहती हैं । पत्तियाँ सपत्रक, जिनमें पत्रक संख्या ३–५ (*3–5 foliolate*) होती है । पत्रक प्रासवत्, २.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या १ इंच से ५ इंच लम्बे ५/६ सें० मी० से ३/२ सें० मी० (१/३ इंच से १ १/३ इंच) चौड़े, लम्बाग्र, प्रायः सरल, किन्तु कभी-कभी गोलदन्तुर (*crenate*) होते हैं । जिन पत्तियों में पत्रक संख्या ५ होती हैं, उनमें सबसे नीचेवाले जोड़े के पत्रक सबसे छोटे, विनाल (*sessile*) या बहुत छोटे वृन्तयुक्त (*subsessile*) बीच का जोड़ा प्रायः सनाल या सवृन्तक (*petioluled*) और पाँचवाँ पत्रक (*odd leaflet*) सबसे बड़ा तथा सवृन्तक, सरल अथवा अग्र की ओर विरलदन्तुर (*distantly crenate*) होता है । पुष्प छोटे-छोटे नीलाभ या बैंगनी आभालिये श्वेतवर्ण के होते हैं । पुष्पगुच्छ (*panicles*) ३० सें० मी० या १२ इंच तक लम्बा होता है । बाह्यकोष १/२ सें० मी० से ३/४ सें० मी० लम्बा तथा सिरेपर पाँच खण्डोंवाला तथा आभ्यन्तरकोष १/२ सें० मी० से ५/६ सें० मी० (१/५ इंच से १/२ इंच) लम्बा पंचखण्डीय एवं द्वि-ओष्ठीय होता है । अधरोष्ठ का मध्यमखण्ड सबसे बड़ा होता है । पुंकेशर संख्या में ४ तथा विषम-युग्म (*didynamous*) होते हैं । फल गोलाकार (*globose*), मांसल अष्ठिफल (*succulent drupes*) ३/४ सें० मी० से ५/४ सें० मी० (३/२० इञ्च से १/२ इञ्च) व्यास के तथा पकने पर काले हो जाते हैं । फलों पर प्रायः बाह्य कोष की चोटी-सी (*accrescent calyx*) लगी होती है । वर्षा के प्रारम्भ में पुष्पागम तथा शरद में फल आते हैं । (२) दूसरा भेद उपर्युक्त की अपेक्षा कुछ छोटा होता है, जिसकी पत्तियाँ अधिक दन्तमय और मंजरी, पुष्प एवं फल आदि सभी कुछ छोटे होते हैं । इसमें फूल भी देर से आते हैं । दूसरे प्रकार का सम्हालू देहरादून में बहुत होता है ।

उपयोगी अंग–पत्र, मूल एवं बीज ।

मात्रा । पत्रस्वरस–१ तोला से २ तोला ।

मूलचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा ।

बीजचूर्ण–१/२ ग्राम से १ १/२ ग्राम (४ रत्ती से १ १/२ माशा) ।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–निर्गुण्डी की पत्तियों में एक हल्की गंध पायी जाती है, तथा स्वाद में किंचित् तिक्त एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हृल्लासजनक होती हैं। फल में भी एक हल्की सुगंधि पायी जाती है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—इसकी एक जाति वीटेक्स ट्रीफोलिआ (**Vitex trifolia** *Linn.*) होती है, जिसकी पत्तियों में १ पत्रक से ३ पत्रक होते हैं, और प्रायः सभी पत्रक अवृन्त, रूपरेखा में अभिलट्वाकार या अभिलट्वाकार-आयताकार होते हैं। इसके पुष्प श्वेत या हल्की बैंगनी आभा लिये सफेद होते हैं।

यूनानी चिकित्सक "पंजंगुश्त" नाम से निर्गुण्डी भेद वीटेक्स आग्नुस-कास्टुस (**Vitex-agnus-castus** *L.*) का भी व्यवहार करते हैं। इसके क्षुप या वृक्ष होते हैं, जो बलूचिस्तान, अफगानिस्तान आदि में बहुतायत से पाये जाते हैं। इसके बीज बम्बई बाजार में ईरान से आते हैं, और 'रेणुका' नाम से बिकते हैं। परन्तु आयुर्वेदीय शास्त्रों में वर्णित रेणुका से यह भिन्नद्रव्य मालूम होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—यह प्रायः सर्वत्र सुलभ है। उपयोगी अंगों का उपयुक्त काल में संग्रहकर मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—पत्र में एक रंगहीन उड़नशील तेल, और एक राल, बीजों में एक चरपरा राल, एक कषाय सेन्द्रिय अम्ल, क्षारोद, सेवाम्ल तथा अल्पमात्रा में एक रंजक द्रव्य पाया जाता है। ईरानी बीज में केस्टीन (*Castine*) नामक एक तिक्तवीर्य, एक बनफ़शाई तिक्तपदार्थ, एक वसामयतैल प्रभृति तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। **रस**—तिक्त, कटु, कषाय। **विपाक**—कटु। **वीर्य**—उष्ण। **कर्म**—वातकफशामक, वेदनास्थापन, शोथहर, व्रणशोधन-रोपण, केश्य, जन्तुघ्न, दीपन, आमपाचन, यकृदुत्तेजक, कफघ्न, कासहर, मूत्रार्तवजनन, ज्वरघ्न (विशेषतः विषमज्वरप्रतिबन्धक), बल्य, रसायन, कण्डूघ्न एवं कुष्ठघ्न आदि। यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है। **अहितकर**—शिरःशूलकारक एवं वृक्क के लिए अहितकर। **निवारण**—बबूल का गोंद और कतीरा।

मुख्य योग—निर्गुण्डीकल्प, निर्गुण्डीतैल, सफूफ फंजंकिश्त।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) विषघ्न महाकषाय में (सिन्धुवार नाम से) तथा क्रिमिघ्न महाकषाय में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) सुरसरादिगण में 'निर्गुण्डी' भी है।

निर्मली

नाम। सं०—कतक, पयःप्रसादिनी। हिं०, पं० बं०—निर्मली। अं०—क्लियरिंग-नट (*Clearing-Nut*)। ले०—स्ट्रीक्नॉस पोटाटोरुम (**Strychnos potatorum** *Linn. f.*)।

वानस्पतिक-कुल। कारस्कर-कुल (लोगानिआसे : *Loganiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—निर्मली के वृक्ष दक्षिण भारत (कोंकण, उत्तरी कन्नड, कर्नाटक से ट्रावंकोर, दकन), मध्यभारत एवं बंगाल में जंगलीरूपसे पाये जाते हैं। निर्मली बीज सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—निर्मली के मध्यमकद के (कभी-कभी १२.१८ मीटर या ४० फुट तक ऊँचे) वृक्ष होते हैं, जिनकी छाल कृष्णाभ तथा विदीर्ण होती है। पत्तियाँ ५ सें० मी० (२ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बी, २.५ सें० मी० से ४.३७५ सें० मी० अवृन्त या बहुत छोटे वृन्तयुक्त, रूपरेखा में (१ इञ्च से १½ इञ्च) तक चौड़ी, लट्वाकार या अण्डाकार, अग्रपर सहसा नुकीली या कुछ लम्बे नोकवाली, रचना में कुछ चर्मिल तथा चिकनी और चमकीली होती हैं। इनमें ३ से ५ तक शिराएँ होती हैं। फलक-मूल गोलाकार या नुकीला होता है। पुष्प छोटे तथा पीताभवर्ण के होते हैं, जो पत्रकोणों में समूहबद्ध (जब पुष्पवाहकदण्ड का अभाव होता है) या छोटी १.२५ सें० मी० (½ इंच लम्बी) मंजरियों में निकलते हैं। पुष्पवृन्त बहुत छोटे होते हैं। बाह्य कोष लगभग ⅛ सें० मी० या ⅛ इंच लम्बा तथा ५ खण्डों वाला और आभ्यन्तर कोष ⅛ सें० मी० से ⅛ सें० मी० (⅛ इंच से ⅛ इंच) लम्बा तथा यह भी ५ खण्डोंवाला होता है। फल या बेरी (*berry*) रूपरेखा में कुचिले की तरह किन्तु अपेक्षाकृत छोटा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(व्यास में १.६ सें० मी० या $\frac{3}{8}$ इंच) तथा पकने पर काला हो जाता है। प्रत्येक फल में १ से २, कुचिले के सदृश किन्तु छोटे, उन्नतोदर एवं सूक्ष्म एवं मटमैले मृदुरोमावृत्त बीज निकलते हैं। औषधि में इन्हीं बीजों का व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग–बीज।

मात्रा। १ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।
वमनार्थ–६ ग्राम या ६ माशा।
स्थानिक प्रयोग के लिए–आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–निर्मलीकेबीज बटन की तरह गोल-गोल किन्तु दोनों पार्श्वों में उन्नतोदर, व्यास में १.६ सें० मी० (या $\frac{3}{8}$ इञ्च) तक तथा १.२५ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इञ्चतक मोटे होते हैं। परिधि में चारों ओर एक उन्नत धार-सी होती है। इसी पर एक स्थल में धार टूटी-सी प्रतीत होती है, जहाँ आदिमूल (मूलभ्रूण) या मूलांकुर (*radicle*) होता है, जहाँसे हल्की रेखा-सी केन्द्रस्थ नाभि (*umbilicus*) तक जाती है। बीजका छिलका पीताभ खाकस्तरी रंग का होता है, और सूक्ष्म रेशमी लोमावृत होता है। कुचिले के बीज की तरह इसमें भी द्वि-दल होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–निर्मलीबीजों को अच्छी तरह मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन। निर्मलीबीजों में कुचिले के बीजों की भाँति ब्रूसीन (*Brucine*) नामक ऐल्केलॉइड पाया जाता है, किन्तु स्ट्रिक्नीन नहीं होता।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, विशद। रस–मधुर, कषाय, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रभाव–चक्षुष्य। कर्म–कफवातशामक, जलशोधक, लेखन, रोचन, दीपन, स्तम्भन, छेदन, (अधिक मात्रा में) वामक, मूत्रजनन। जल-शोधन के लिए निर्मली एक उत्तम द्रव्य है। एतदर्थ जलपूर्ण पात्र में इसको घिस दिया जाता है। इस प्रकार गंदगी नीचे बैठ जाता है। नेत्ररोगों में इसका अञ्जन भी बहुत उपयोगी होता है। बीजों का उपयोग वमन कराने के लिए भी किया जाता है।

निशोथ (त्रिवृत्)

नाम। सं०–त्रिवृत् (त्रिवृता), त्रिभण्डी, त्रिपुटा, रेचनी। हिं०–निशोत (थ), निसो (त)थ, पितोहरी, नाकपतर, वनएटका–(संथा०)। बं०–तेउडी, तेउरी। पं०–तिखी। सिंध०–ट्रीज। म०–निशोत्तर। गु०–नसोत्तर। अ०–तुर्बुद। द०–तिकड़ा। अं०–टर्पेथ। ले०–ओपेर्कूलिना टुर्पेथुम **Operculina turpethum** (*L.*) *Silva Manso* (पर्याय-*Ipomoea turpethum R. Br.*)।

वक्तव्य–अरबी 'तुर्बुद' एवं अंग्रेजी 'टर्पेथ' आदि संज्ञाएँ सम्भवतः संस्कृत त्रिवृता (त्रिवृत्, त्रिपुट) आदि के ही अपभ्रंश हैं। इसकी लता का तना एवं शाखाएँ तिकोनी होने से उक्त संस्कृत नाम रखे हैं।

वानस्पतिक-कुल। त्रिवृत्-कुल (कॉन्वॉल्वुलासे *Convolvulaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में ९१४$\frac{1}{2}$ मीटर या ३,००० फुट की ऊँचाई तक इसकी बेल होती हैं। कहीं-कहीं बगीचों में लगायी हुई भी मिलती है। मूल के फटे छोटे-बड़े टुकड़े निशोथ नाम से पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय–निशोथ की बहुवर्षायु बड़ी-बड़ी आरोही लताएँ होती हैं, जिनका काण्ड प्रायः काष्ठीय नहीं होता, तथा इसपर ३-४ धाराएँ या पंख सदृश उभार होते हैं और काण्ड को तोड़ने पर दूध-जैसा स्राव निकलता है। पुराना होनेपर काण्ड भूरेरंग के होते हैं। नवीनकाण्ड का पृष्ठ सपंख होने से त्रिधार होता है। नीचे की पत्तियाँ चौड़ाई लिये हुई लट्वाकार-हृद्वत् और १५ सें० मी० या ६ इंच तक लम्बी, ११.२५ सें० मी० या ४$\frac{1}{2}$ इंच तक चौड़ी, लम्बाग्र तथा तीक्ष्णाग्र और ऊपरी पत्तियाँ प्रायः आयताकार, कुण्ठित रोमश अग्रवाली होती हैं। पर्णवृन्त १.८७५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच से ३ इञ्च) तक लम्बे होते हैं। पुष्प सफेद, ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ३ इच लम्बे तथा प्रायः एक साथ ३–५ होते हैं, जो २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच २ इञ्च लम्बे पुष्पवाहक दण्ड (*peduncle*) पर निकलते हैं। पुष्पवृन्त (*pedicel*) $\frac{3}{4}$ सें० मी० से $\frac{5}{2}$ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इंच से १ इंच) तक लम्बे होते हैं। निपत्र २.५ सें० मी० या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१ इञ्च तक लम्बे प्रायः गुलाबी रंग के और कलिकायुष्क होते हैं। बाह्यकोश के अन्दर के ३ पुटपत्र छोटे तथा कोमल और बाहरी पुटपत्र बड़े होते हैं, जो फलावस्था में भी बढ़कर फल के साथ लगे होते हैं। आभ्यन्तर नाल चिकना और सपक्ष, मुखपर घण्टिकाकार होता है। फल (*capsule*) गोलाकार व्यास में ½ इञ्च से ¾ इञ्चतक स्थायी, मांसल एवं भंगुर पुट-पत्रों से आवृत्त होते हैं। फलत्वक् का बाहरी भाग जब फट जाता है, तो भीतरी पारदर्शक पर्दा रहजाता है, जिसके अन्दर दो गह्वर और १–४ भूरे तथा चिकने बीज होते हैं। वर्षा-ऋतु में पुष्पागम होता है तथा जाड़ों में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग–मूलत्वक्।

मात्रा। १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–बाजार में मिलनेवाले निशोथ में मूल एवं काण्ड दोनों के ही बेलनाकार टुकड़े मिले होते हैं। यह टुकड़े व्यास में १.२५ सें० मी० से ५ सें० मी० (½ इञ्च से २ इञ्च) तक मोटे होते हैं। मूलत्वक् काफी मोटी होती है, और केन्द्रस्थ काष्ठीयभाग रस्सी की भाँति स्पष्ट मालूम होता है। यह आसानी से पृथक् हो जाता है। जिन टुकड़ों से यह निकाल दिया गया रहता है, वह नालीदार होते हैं। किन्हीं टुकड़ों के कुछ अंश से मूलत्वक् को तो पृथक् कियागया होता है, और शेष भाग ज्यों का त्यों होता है। ऐसे टुकड़ों में केन्द्रस्थ रस्सीनुमा काष्ठीयभाग स्पष्ट निकला हुआ दिखाई देता है, किन्तु औषधीय दृष्टि से केवल मूलत्वक् ही उपयोगी होती है। उत्तम निशोथ वह है कि जिसके दोनों छोर पर गोंद लगा हो। तोड़ने पर छाल तो खट से टूटती है, किन्तु अन्दर का काष्ठीय भाग रेशेदार टूटता है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटा तल हल्के भूरेरंग का मालूम होता है। पैरेन्काइमा (*parenchyma*) में इतस्ततः रेजिनकण पाये जाते हैं। कभी-कभी इस पर कुछ गाढ़े रंग के अनेक एककेन्द्रिक वृत्त से दिखाई पड़ते हैं। यह मूल की वार्षिक वृद्धि के द्योतक होते हैं। मूल में कोई विशेष गंध नहीं होती, किन्तु मुँह में देर तक रखने से उत्क्लेशकारी स्वाद का अनुभव होता है। त्रिवृत्-मूल की रेचक क्रिया इसमें पाये जाने वाले रेजिन (रालीयतत्त्व) के कारण होती है। अतएव इसकी हीनता एवं उत्तमता इसीकी प्रतिशतमात्रा की उपस्थिति पर निर्भर है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% होना चाहिए। राल की प्रतिशतमात्रा ५% होनी चाहिए, जिसका कुछ अंश ईथर में विलेय होता है।

विशेष–रेजिन के आधारपर इसका शक्तिप्रमापन भी कियाजाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–बाजारू नमूने में प्रायः काण्ड का भी भाग मिला होता है। मूल में भी औषधीय अंग केवल इसकी मोटीछाल होती है। अतएव अन्दर के काष्ठीय भाग को पृथक् करदेना चाहिए। रंगभेद से निशोथ 'सफेद' एवं 'काली' होती है, जिसमें कालीनिशोथ के प्रयोग से मूर्च्छा, भ्रम एवं दाह आदि उपद्रव होते हैं। इस धारणा को लेकर इसके वानस्पतिक प्राप्तिसाधन (*Botanical source*) के बारे में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। निशोथ का प्राप्तिसाधन पूर्ववर्णित 'ओपेर्क्यूलिना टुर्पेथुम' नामक लता है, जिसके सफेद या कृष्ण ऐसे कोई प्रकार नहीं होते। आजकल सर्वत्र भारतीय बाजारों में सफेदनिशोथ से जो औषधि मिलती है, वह एक सर्वथा भिन्न लता (**Marsdenia tenacissima** *W. & A.* (*Family. Asclepiadaceae*) की जड़ एवं काण्ड होती है, जो स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं, तथा इनमें रेचनगुण बिल्कुल नहीं होता।

संग्रह एवं संरक्षण–जाड़ों में मूल का संग्रहकर, इसके टुकड़े काट लें, और एक पार्श्व से चीरा देकर अन्दर का काष्ठीय भाग पृथक् कर देना चाहिए। इसे छायाशुष्क कर मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–त्रिवृत् मूल में ५% से १०% तक एक राल (*Resin*) पाया जाता है। यह इसका सक्रिय अंश होता है। इसका कुछ अंश ईथर में घुलनशील होता है। जो अंश ईथर में अविलेय होता है, उसे टर्पेथिन (*Turpethin*) कहते हैं। इसका संगठन बहुत कुछ जलापा में पायेजाने वाले 'जैलेपीन' नामक रेचकतत्व की भाँति होता है।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त' मधुर, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–पित्त-कफशामक, भेदन, सुखविरेचन, शोथहर, लेखन, ज्व-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रघ्न। निशोथ की क्रिया बहुत कुछ विदेशीय औषधि 'जलापा' की भाँति होती है। इससे पीलेरंग के पतले दस्त आते हैं। पैत्तिक एवं कफज व्याधियों में यह एक उत्तम सुखविरेचन औषधि है। इसको अकेला प्रयुक्त कर सकते हैं, अथवा मरोड़ आदि के निवारण के लिए सोंठ, सौंफ, या अन्य सुगन्धितद्रव्य तथा सेंधा नमक या मिश्री अथवा बराबर मात्रा में क्रीम ऑव टारटार (*Cream of Tartar*) मिलाकर व्यवहृत कर सकते हैं। इसके उत्क्लेशकारक दोष के निवारण के लिए मूलत्वक् को बादाम के तेल में स्नेहाक्त कर सकते हैं। निशोथ को हर्रे के चूर्ण के साथ भी व्यवहृत कर सकते हैं।

मुख्य योग-त्रिवृतादिचूर्ण, त्रिवृतादिघृत, त्रिवृतादिगुटिका, अविपत्तिकरचूर्ण।

विशेष-चरकोक्त (सू०अ० ४) भेदनीय महाकषाय एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) श्यामादिगण एवं अधोभागहर गण में 'त्रिवृता' (निशोथ) भी है।

नीबू (निम्बूक-कागजी नीबू)

नाम। सं०-निम्बूक। हिं०-नीबू, कागजी नीबू। बं०-कागजी लेबु, पातिनेबूं। म०-लिंबू, कागदी लिंबु। द०-लीमू, लीमूं। अ०-लीमू। फा०-लीमू, लीमूए काग़जी। अं०-लाइम (*Lime*)। ले०-सिट्रस आरेन्शिफोलिआ (सीट्रस आउरांटोफोलिआ) **Citrus aurantifolia** (*Christm.*) *Swingle.* (पर्याय-सीट्रस मेडिका प्र० एसिडा *C. medica L. var. acida Watt.*)।

वानस्पतिक-कुल। जम्बीर-कुल (रुटासे *Rutaceae*)।

प्राप्तिस्थान-नीबू भारतवर्ष का आदिवासी पौधा है। हिमालय की बाहरी पर्वतश्रेणियों की उष्णघाटियों में (गढ़वाल से सिक्कम, गारो की पहाड़ियाँ एवं चटगाँव तक) इसके जंगलीवृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। मध्यभारत, मध्यप्रदेश एवं सतपुड़ा के जंगलों में भी यह स्वयंजात होता है। समस्तभारत में काफी परिमाण में नीबू के वृक्ष लगाये जाते हैं। बाजारों में बारहों महीने नीबू तरकारी बेचनेवालों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त परिचय-नीबू के छोटे झाड़ीनुमा कँटीले वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ छोटी तथा पर्णवृन्त छोटे एवं सपक्ष (*winged*) होते हैं। पत्तियों को मसलने से नीबू जैसी सुगन्धि आती है। पुष्प भी सुगन्धित होते हैं। फल गोल तथा चिकने होते हैं। छिलका (*rind*) कागज की तरह पतला, कच्चे फल में हरा, पकने पर पीलेरंग का हो जाता है, जो गूदे के साथ चिपका रहता है। गूदा, पीताभ-हरेरंग का, स्वाद में अत्यन्त खट्टा तथा सुगन्धित होता है। इसकी एक जाति का फल कुछ लम्बा होता है। नीबू के रस से सिकंजबीन तथा फलों का अचार बनाया जाता है। आहार के साथ नीबू का दैनिक व्यवहार अचार के स्थान में किया जाता है। औषध्यर्थ एवं आहार में 'कागजी नीबू' ही अधिक प्रशस्त माना जाता है।

उपयोगी अंग। फलका रस (आबे लीमू), बीज (तुख्मे लीमूं) तथा फल का छिलका (पोस्ते लीमूं)।

मात्रा। फलरस-½ तोला से १ तोला।
छिलका एवं बीज-०.५ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।

संगठन-फल रस में सिट्रिक एसिड (७% से १०%), फास्फोरिक एसिड, मेलिक एसिड (सेवाम्ल) एवं शर्करा आदि तत्त्व पाये जाते हैं। फलत्वक् (छिलके) में एक उत्पत् तैल, एक तिक्त स्फटिकीय ग्लूकोसाइड हेस्पेरिडिन (विशेषतः छिलके के सफेद भाग में) पाया जाता है।

स्वभाव। गुण-लघु। रस-अम्ल। विपाक-मधुर। वीर्य-अनुष्ण। कर्म-अम्ल होने पर भी पित्तशामक, तृष्णानिग्रहण, रोचन, दीपन-पाचन, अनुलोमन तथा पित्तसारक, रक्तशोधक एवं रक्तपित्तशामक, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, पाण्डु-कामलानाशक। यूनानीमतानुसार नीबू का रस दूसरे दर्जे में शीत तथा पहले दर्जे में शुष्क (मतांतर से दूसरे दर्जे में शीत और पहले दर्जे में तर) है। बीज और फल के ऊपर का छिलका दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर-शीत प्रकृति वालों और वातनाड़ियों को। निवारण-चीनी। प्रतिनिधि-नारंज।

मुख्य योग-सिकंजबीन लीमू। रसशास्त्र एवं भैषज्यकल्पना में नीबू का रस शोधन के लिए तथा भावना आदि देने के लिए प्रयुक्त होता है।

विशेष-नीबू में विटामिन 'C' (सी) काफी मात्रा में पाया

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाता है। अतएव इसमें स्कर्वी-निवारक गुण (*Anti-scorbutic properties*) पायेजाते हैं। दूसरी विशेषता इसमें यह है, कि अम्ल होने पर भी यह पित्त-शामक है।

'जम्बीरी नीबू' भी कागज़ीनीबू की ही जाति की वनस्पति है। जम्बीरी का फल काग़जी की अपेक्षा बड़ा होता है। दोनों का वस्तुसंगठन भी एक-सा है, किन्तु काग़जी नीबू में अपेक्षाकृत सिट्रिक एसिड अधिक पाया जाता है।

नीम (निम्ब)

नाम। सं०—निम्ब। हिं०—नीम, नीव। बं०—निम। म०—कडूनिंब। गु०—लींबड़ों, लीमड़ों। पं०—निंब। सिं०—निमु। फा०—आज़ाददरख़्ते हिन्दी। अं०—नीम या मारगोसा-ट्री (*Neem or Margosa Tree*), इंडियन लिलैक (*Indian Lilac*)। ले०—आज़ादीराक्टा इंण्डिका **Azadirachta indica** *A. Juss.* (पर्याय—मेलिआ आज़ादीराक्टा *Melia azadirachta Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। निम्ब-कुल (मेलिआसे *Meliaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दकन के शुष्क जांगलप्रदेशों में नीम के वन पायेजाते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष में नीम के 'लगायेहुए' एवं 'जंगली' दोनों प्रकार के वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं, किन्तु पंजाब में यह अपेक्षाकृत कम होता है। हवा की शुद्धता एवं छाया के लिए इसके वृक्ष घरों एवं गांवों के आसपास तथा सड़कों के किनारे लगाये जाते हैं।

संक्षिप्तपरिचय—यह भारतवर्ष का प्रसिद्ध वृक्ष है, जिसके प्रायः सब अंग-प्रत्यंग तिक्त होते हैं। नीम के प्रायः सदाहरित ऊँचे-ऊँचे सुन्दर वृक्ष होते हैं, जिनकी पत्तियाँ शाखाग्रों पर समूहबद्ध होती हैं, तथा शाखाग्र कोमल होते हैं। पत्तियाँ २२.५ सें० मी० से ३७.५ सें० मी० या ९ इंच से १५ इंच लम्बी, चिकनी एवं सपत्रक तथा असमपक्षवत् (*imparipinnate*) होती हैं। पत्रक संख्या में ९ से १५ होते हैं, जिनमें एक अग्रपर अकेले तथा शेष पत्रक-दण्ड पर प्रायः आमने-सामने दो-दो (*sub-opposite*) स्थित होते हैं। उक्त पत्रक ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इंच से ४ इंच) लम्बे १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इंच से १ इंच) चौड़े रूपरेखा में भालाकार या लट्वाकार-भालाकार, अग्र लम्बा तथा नुकीला, ऊर्ध्वपृष्ठ पर चमकीले, गाढ़ेहरे रंग के होते हैं, और बहुत छोटे वृन्तकों पर धारण किये जाते (*subsessile or minutely petioluled*) हैं। पत्रकों के किनारे आरे की भाँति गम्भीर दन्दुर (*deeply serrate*) होते हैं। कभी-कभी पत्रक-तट टेढ़ा होने से पत्रक रूपरेखा में हसिये के आकार के (*falcate*) मालूम होते हैं। पत्रकों की मध्यनाड़ी के दोनों तरफ के भाग प्रायः असमान (*unequal sided*) होते हैं। कभी-कभी अग्र का पत्रक न होने से पत्र समपक्षवत् (*paripinnate*) मालूम होते हैं। पुष्प छोटे-छोटे (⅛ इंच) तथा सफेदरंग के एवं सुगंधित होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत सशाखमञ्जरियों में निकलते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) लम्बगोल (*ovoid-oblong*), १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० (½ इंच से ¾ इंच) लम्बे, चिकने तथा कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर हरापन लिये पीलेरंग के हो जाते हैं। फलों को निबकौली (निमौली) कहते हैं। इसमें एक कड़ी एवं अपेक्षाकृत बड़ी गुठली होती है, जिसके ऊपर गूदे का एक पतला पर्त होता है। बीज (गिरी) हरिताभ-श्वेत रंग का एवं स्वाद में तिक्त होता है। आपाततः यह देखने में 'पिस्तेकी भाँति' लगता है। इससे एक तीता स्थिरतैल प्राप्तकिया जाता है, जिसे नीमका तैल (निमकौली का तेल) कहते हैं। नीम के वृक्ष से कभी-कभी एक गोंद भी निकलता है, जो लम्बे-लम्बे टेढ़े-मेढ़े टुकड़ों (*longish vermiform pieces*) के रूप में प्राप्त होते हैं। यह स्वाद में अन्य अंगों की भाँति तीते नहीं होते, तथा ठण्डेजल में भी अच्छीतरह घुलजाते हैं। किसी-किसी वर्ष नीम के वृक्षों से एक नीर या स्राव (*saccharine juice*) अपनेआप या चीरा लगाने पर काफीमात्रा में स्रवित होता है। पतझड़ में पत्तियाँ गिरजाने पर जल्दी ही ताम्रलोहित पल्लव निकलते हैं। पुष्पागम भी वसन्त में होता है, और फलागम ग्रीष्म-ऋतु के अन्त में या वर्षा के प्रारम्भ में होता है।

उपयोगी अंग। काण्ड एवं मूलत्वक् (छाल), पत्र, पुष्प, बीज एवं बीजों से प्राप्त तेल (*Margosa Oil*) तथा गोंद और नीर।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्रा। त्वक् चूर्ण–१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा। इसके हरे पत्ते और छाल जब रक्तप्रसादन के लिए इनका शीरा निकाला जाय या क्वाथ बनाया जाय तो ६ माशे से १ तोला तक व्यवहृत कर सकते हैं। तैल–४ बूंद से १० बूंद।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। (१) छाल–निम्बत्वक् खातोदर या नालीदार (*channelled*) तथा चिमड़े और रेशेदार टुकड़ों के रूप में प्राप्त होती है, जो १ सें० मी० (⅜ इंच) तक मोटे होते हैं। नये-पुराने वृक्षों के अनुसार छाल की मोटाई में भी न्यूनाधिक्य पायाजाता है। बाह्यतः यह खुरदरी तथा मुरचई-खाकस्तरी (*rusty-grey*) रंगकी होती है, तथा इसमें अनेक दरारें (*fissures*) पड़ी होती हैं। अन्तस्तल पीताभवर्ण का होता है। स्वाद में नीम की छाल किंचित् कसैलापन लिये अत्यंततीती होती है, तथा इसमें लशुनजैसी उत्क्लेशकारक गंध होती है। (२) नीमकातेल–यह पकी निमौली की गिरी (बीज) को कोल्हू में पेरकर प्राप्त कियाजाता है, और फिर इसे छानकर रखलेते हैं। नीमका तेल हल्के या गाढ़े पीलेद्रव के रूप में, उग्र गंधयुक्त, स्वाद में कड़ुवा एवं तीता होता है। २५° तापक्रम पर आपेक्षिक गुरुत्व ०.९०० से ०.९२० होता है। अपवर्तनांक (*Refractive Index 25°* पर) –१.४४० से १.४८०। एसिड वैल्यू (*Acid Value*)–२२। आयोडीन वैल्यू (*Iodine Value*) ६५ से ७०। सेपोनिफिकेशन वैल्यू (*Saponification Value*)–१९६ से २००।

संग्रह एवं संरक्षण–'नीमके तेल' को अच्छीतरह डाटबंद पात्रों में तथा शीतलस्थान में रखना चाहिए। अन्य उपयुक्त अंगों को भी अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखें। पुराने वृक्षों से नीम की ताड़ी अपने आप निकलती है। यह रस ४ से ७ सप्ताह तक वृक्ष के कई भागों से एकसमान निकलता है। किसी-किसी नीम वृक्ष से ३ से ४ वर्ष के अन्तर से यह रस अत्यधिक परिमाण में निकल जाने से वृक्ष सूखजाता है। कभी-कभी कृत्रिम उपायों से भी उक्त रस निकाला जाता है। एतदर्थ किसी जलाशय के पास वाले अच्छे, तरुण नीम वृक्ष की जड़ में छेद करके उसके नीचे एक मजबूत मिट्टी या पत्थर या चीनी मिट्टी का पात्र रख कर ऊपर से ढंक दिया जाता है। इस प्रकार २४ घंटे के अन्दर २ से ६ बोतल तक रस इकट्ठा हो जाता है। किन्तु स्वयं निकला रस अधिक उत्तम होता है। 'ताजे नीरा' का स्वाद मधुरतायुक्त–तिक्त होता है। संरक्षण के लिए इसमें शहद मिला कर बोतलों में भरकर अच्छीतरह डाटबन्दकर अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें। प्रति बोतल में ५ तोला शहद इस कार्य के लिए पर्याप्त होता है। इस प्रकार रखने पर महीने में २ बार तक छानते रहना चाहिए। संरक्षण के लिए सरसों का शुद्धतेल मिला कर भी रखा जासकता है। रस के विकृत होने पर इसमें अम्लता आजाती है। उक्त अम्लता कभी-कभी नीरा के बिना विकृतहुए स्वाभाविकरूप से भी आ जाती है। किन्तु बाद में यह स्वयमेव मधुरतायुक्त तिक्तरस में परिणत हो जाती है।

संगठन–छाल में निम्बीन या मार्गोसीन (*Margosine*) नामक तिक्त रालमयसत्व, ½% निम्बिडिन (*Nimbidin*), ०.०३ प्रतिशत निम्बिन (*Nimbin* : $C_{28}H_{40}O_8$), निम्बिनिन (*Nimbinin* : $C_{2}H_{30}O_9$) तथा निम्बोस्टेरोल एवं एक उड़नशीलतेल और ६% टैनिन पाया जाता है। उक्त उड़नशीलतेल इसके पुष्पों में भी पाया जाता है। पत्तियों में तिक्तसत्व अपेक्षाकृत कम होता है, किन्तु छाल की अपेक्षा यह जल में अधिक घुलनशील होता है। मद (*Toddy or Sap*) में तिक्तद्रव्य, इक्षुशर्करा, द्राक्षशर्करा, रंजकद्रव्य, निर्यास, प्रोटीड्स एवं भस्म जिसमें पोटासियम्, लोह, एलूमिनियम् और कैल्सियम तथा कज्जलद्विओषिद (CO_2) होते हैं, होता है। बीजों में ४% तक स्थिरतैल (नीमका तेल *Margosa Oil*) होता है। तैल में २% तिक्तसत्व, ओलीक एसिड (४९% से ६१.९%), लिनोलीक एसिड (२% से १५%), पामिटिक एसिड (१२% से १५%), स्टियरिक एसिड (१४% से २१%) आदि, तथा (०.०३%) निम्बोस्टेरोल आदि पाये जाते हैं।

स्वभाव। गुण–लघु। रस–तिक्त, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। कर्म–कफपित्तशामक, रोचन, ग्राही, कृमिघ्न यकृदुत्तेजक, कटुपौष्टिक, रक्तशोधक, दाहप्रशमन, ज्वरघ्न (विशेषतः नियतकालिकज्वरनाशन)। पत्र एवं छाल–स्थानिकप्रयोग से व्रणपाचन, व्रणशोधन, पूतिहर, दाह-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रशमन। तैल—व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, वेदनास्थापन, उदर-कृमिनाशक एवं त्वग्रोगहर। फल—भेदन एवं बीज गर्भाशयोत्तेजक हैं। कोमल पत्तियाँ एवं पुष्प—चक्षुष्य। यूनानीमतानुसार नीम के पंचाङ्ग की प्रकृति पहले दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर—रूक्ष प्रकृतिवालों के लिए। अधिकमात्रा में बीज एवं बीजोत्थतैल का सेवन करने से कभी-कभी हृल्लास, वमन एवं रेचन आदि उपद्रव लक्षित होते हैं। निवारण—मधु, काली-मिर्च, स्नेहद्रव्य।

मुख्य योग। निम्बादिक्वाथ, निम्बादिचूर्ण, निम्बारिष्ट, निम्ब-हरिद्राखण्ड, हब्बेबवासीर आदि। चरकोक्त कण्डूघ्न महाकषाय (च० सू० अ० ४) एवं वमनद्रव्यों (च० सू० अ० २) में तथा तिक्तस्कन्ध की औषधियों में (च० वि० अ० ८) और सुश्रुतोक्त आरग्वधादि, गुडूच्यादि एवं लाक्षादिगण (सु० सू० अ० ३८) की औषधियों में 'निम्ब' का भी परिगणन है। नीमका उपयोग आजकल दंतमंजन (*Neem Tooth-Paste*) बनाने में भी कियाजाता है।

नील (नीलिनी)

नाम। सं०—नीलिनी, नीली, रञ्जनी। हिं०—नील, लील। संथा०—सिलीविचो। बं०—नील। म०—नील, गुली। गु०—गली। फा०—नीलः। अ०—नीलजः। अं०—इण्डिगो (नील *Indigo*); (नीलका पौधा *Indigo-Plant*)। ले०—(ईण्डिगोफ़ेरा टींक्टोरिआ **Indigofera tinctoria** *Linn.*)। लेटिननाम इसकी वनस्पति का है।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (लेगूमिनोसे : पैपीलिओनासे (*Leguminoseae* : *Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पहले भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों—विशेषतः बंगाल, बिहार, अवध, सिंध, बम्बई एवं मद्रास आदि में काफी परिमाण में नील की खेती की जाती थी, जिससे व्यावसायिकरूप में इससे नीलरंग प्राप्त कियाजाता था। किन्तु अब विदेशों से कृत्रिम (संश्लिष्ट) नील रंग का आयात होने से यहाँ नील की खेती बन्द हो गयी है। फिर भी थोड़ी-बहुत मात्रामें स्थान-स्थान में इसे बोते हैं। समस्त भारतवर्ष में न्यूनाधिक मात्रा में इसके स्वयंजात पौधे भी पाये जाते हैं।

परिचय—नीलके सीधेखड़े (*erect*) तथा ६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ से ३ फुट (कभी-कभी ६ फुट तक) ऊँचे एकवर्षायु क्षुप होते हैं, जिनपर इतस्ततः रोम पायेजाते हैं, जो पृष्ठ से सटे होते हैं। शाखाएँ रूपरेखामें बेलनाकार और कड़ी होती हैं। पत्तियाँ सकृत्पक्षवत् सपत्रक (*pinnated*) होती हैं, जिनमें ५-९ जोड़े पत्रक (*leaflets*) होते हैं। पत्रक रूपरेखा में अंडाकार या अंडाकार-लट्वाकार (*oblong-ovate*) होते हैं, जो आधारकी ओर अधिक चौड़े तथा स्फानाकार (*cuneate*) तथा अग्रकी ओर क्रमशः कमचौड़े होते हैं। पुष्प हरिताभ-गुलाबीरंग के (*greenish rose-coloured*) होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत मंजरियों में निकलते हैं। फलियाँ प्रायः २.५ सें० मी० या १ इञ्च लम्बी तथा बेलनाकार होती हैं, जो स्थान-स्थान पर कुछ अधिक मोटी या फूली-सी अर्थात् मनकाकार (*torulose*) होती हैं। उक्त फलियाँ प्रायः कुछ-कुछ धनुषाकार टेढ़ी होती हैं, जिनका उन्नत पृष्ठ बाहरकी ओर (*deflexed*) होता, तथा ऊपर (अग्रपर) टेढ़ी (*curved upwards*) होती हैं। प्रत्येक फली में १०-१२ बेलनाकार छोटे बीज होते हैं, जो दोनों सिरों पर कटे-से या छिन्नाभ (*truncated at both ends*) होते हैं। पुष्पागम वर्षा में तथा फलागम शरद्ऋतु में होता है।

उपयोगी अंग। पंचाङ्ग विशेषतः बीज (तुख्मे नील), पत्र (वस्मा, वर्क़ुन्नील) एवं मूल आदि।

मात्रा। क्वाथ—२½ तोला से ५ तोला।
मूलघनसत्व—१२५ मि० ग्राम से २५० मि० ग्रा० या १ से २ रत्ती (बड़ी मात्रा में रेचक)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—असली नील के पौधे से ४.५ प्रतिशत भस्म प्राप्त होती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—न्यूनाधिक वानस्पतिक रचना भेद से नील की कई जातियाँ पायी जाती हैं। इनमें सर्वाधिक एवं सामान्यतः ग्राह्यजाति का वर्णन ऊपर किया गया है। (१) ईण्डिगोफ़ेरा आर्रेक्टा (**I. arreccta** *Hochst.*)—यह जाति प्रायः बिहार में वन्य एवं कर्षित दोनों अवस्थाओं में पायीजाती है। इसका गहरे हरे रंग का तथा ९० सें० मी० से १८० सें० मी० या ३ फुट से ६ फुट ऊँचा पत्रमय क्षुप होता है, जिसके काण्ड कोणदार या पहलदार और नालीदार पत्तियाँ १० सें०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मी० से १२.५ सें०मी० या ४ से ५ इञ्च लम्बी, जिनमें पत्रक ७ जोड़े एवं एक अग्रपत्रक युक्त होती हैं। पुष्प छोटे तथा गुलाबीरंग के होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत ३.७५ से ६.२५ सें०मी० या १½ इञ्च से २½ इञ्च लम्बी मञ्जरियों में निकलते हैं। फलियाँ सीधी होती हैं और केवल मञ्जरी के आधारभाग में लगती हैं। (३) ईण्डिगोफ़ेरा सुमात्राना (I. sumatrana *Gaertn.*) —यह 'ईण्डिगोफेरा टींक्टोरिआ' जातिका ही भेद होता है। इसके गुल्म अधिक पुष्ट होते हैं। पत्रक ९ से २५, लम्बाई में चौड़ाई से अधिक तथा रूपरेखा में अभिलट्वाकार या पतले-अण्डाकार होते हैं। मञ्जरियाँ ७.५ सें०मी० से १५ सें०मी० या ३ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी तथा फली ३.१२५ सें०मी० या १¼ इञ्च लम्बी, अधिक मोटी और ८ से १० बीजोंवाली होती है। (४) ईण्डिगो० आर्टीकुलाटा (I. articulata *Gouan. Syn. I. argentea Linn.*)—इसके क्षुप बिहार, सिंध एवं दकन आदि में पाये जाते हैं। पत्रकदण्ड ३.७५ सें० मी० से ७.५ सें०मी० या २½ इञ्च से ३ इञ्च लम्बे और पत्रक ४ जोड़े, रूपरेखा में अभिलट्वाकार तथा मञ्जरी २.५ से ५ सें० मी० या १ से २ इञ्च (फलवती होवे पर ७.५ सें० मी० या ३ इञ्च) लम्बी होती है। फली पुष्ट परन्तु छोटी, टेढ़ी और घनरोमश होती है। (५) मुईनील (Indigofera enneapylla *Linn.*)—इसका क्षुप प्रसरी या जमीनपर फैलनेवाला होता है, जिसकी शाखाएँ पतली तथा २० सें० मी० से ६० सें० मी० या ८ इञ्च से २ फुटतक लम्बी होती हैं। पत्तियाँ १.२५ से ३.७५ सें०मी० या ½ से १½ इंच लम्बी, असमपक्षवत्, पत्रक ५–६ (कभी-कभी ११ तक) अभिप्रासवत् ½ से १ सें० मी० (⅕ से ⅖ इञ्च) लम्बे, दोनों तलों पर रोमश होते हैं। पुष्प छोटे, लाल एवं गुच्छबद्ध होते हैं। फली द्विबीजी होती है। यह भारत के मैदानी भागों में (विशेषतः ऊषरभूमि में) पायी जाती है। उत्तरप्रदेश में कहीं-कहीं इसे हनुमान बूटी भी कहते हैं। इसका क्षुप आपाततः देखने में नील-जैसा किन्तु प्रसरी होने के कारण इसे 'मुईनील' कह दियाजाता है। वैसे नील से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

संगठन—इसमें इन्डिकन (*Indican*) नामक ग्लूकोसाइड (*Glucoside*) पायाजाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—रूक्ष, लघु। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—लेखन, वेदनास्थापन केशरंजन (पत्र), वात-कफनाशक, केशवर्धन, दीपन-पाचन, यकृदुत्तेजक, स्वेदजनन एवं ज्वरघ्न (विशेषतः विषमज्वरप्रतिबन्धक), बलवर्धक, रसायन, बाजीकरण (बीज), मूत्रल, रक्तप्रसादन, कफघ्न, विषघ्न। स्वरस का उपयोग पागल कुत्ते के विषशामक एवं मूलक्वाथ संखियाविष-निवारक समझा जाता है। पत्तों का उपयोग खिजाब में डालने के लिए करते हैं। यूनानी-मतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है।

मुख्य योग। चरकोक्त विरेचन एवं सुश्रुतोक्त अधोभागहर औषधियों में 'नीलिनी' का भी उल्लेख है।

नेपाली धनिया—दे०, 'धनिया'।

पटोल—दे०, 'परवल'।

पठानीलोध—दे०, 'लोध'।

पतंग (पतङ्ग—बकम)

नाम। सं०—पत्राङ्ग, पतङ्ग, पट्टरञ्जन (ध०, रा० नि०), पट्टराग (ध० नि०)। कुचन्दन ?। बं०, हिं०—सपन, बकम, पतंग। म०, गु०, द०—पतंग। ता०—पतंगम्। ते०—बकमु। मल०—सप्पनम्। सिंह०—पत्तंगी। अ०—बुक्कम, बक़म, खशबुल् अह्मर। फा०—बकम। अं०—सप्पन वुड *Sappan Wood*; बकम (*Buckam*); ब्रेजिल वुड (*Brazil-Wood*)। (वृक्ष) सेसालपीनिआ सप्पन (Caesalpinia sappan *Linn.*)।

वक्तव्य—'ब्रेजिल-वुड' संज्ञा ब्रेजिलदेश के नामपर आधारित नहीं है। वास्तव में यह '*braise = red coral*' के आधारपर ग्रहीत है, जो पतंगकाष्ठ के रंग से सम्बन्धित है।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : इम्लिका-उपकुल (लेगूमिनोसे; सेसालपिनिआसे *Leguminosae: Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिण भारत तथा बंगाल में पतंग के स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। व्यावसायिक रूपमें काष्ठका संग्रह मुख्यतः दक्षिणभारत में ही होता है, जो बम्बई बाजार से होकर अन्यत्र भेजा जाता है। अन्यत्र भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। पतंग काष्ठ (हृत्काष्ठ या सारकाष्ठ *Heart-wood*) पंसारियों के यहाँ मिलता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त पतंग लंका, ब्रह्मा एवं मलायाद्वीपसमूह में भी होता है। बाजार में 'सिंगापुरी', 'धुनसरी' और 'लंका' ऐसे तीन नामकी लकड़ियाँ मिलती हैं। इनका आयात बम्बई में होता है।

संक्षिप्तपरिचय—पतंग के बड़े गुल्म या छोटे कद के वृक्ष होते हैं, जिसकी कोमल तथा नवीन शाखाएँ रक्ताभ-मृदुरोमश होती हैं, और उपपक्षकों (*pinnae*) के आधार के पास छोटे-छोटे काँटे होते हैं। पत्तियाँ २० सें० मी० से ४० सें० मी० या ८ इञ्च से १६ इञ्च तक लम्बी होती हैं, जिनपर ८ से १२ युग्म पक्षक या पिना (*pinnae*) होते हैं, जो १० सें० मी० से १७.५–२० सें० मी० या ४ इञ्च से ७–८ इञ्च लम्बे तथा अत्यन्त छोटे वृन्तयुक्त (*subsessile*) होते हैं। प्रत्येक पत्र-पक्षपर १०–१८ युग्म पत्रक होते हैं, जो १.२५ सें० मी० से २ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $\frac{3}{4}$ इञ्च) तक लम्बे तथा १ सें० मी० या $\frac{3}{8}$ इञ्च चौड़े, रूपरेखा में आयताकार, किन्तु अग्रपर गोलाकार होते हैं, जो सघन स्थित होते हैं और छोटे वृन्तकयुक्त होते हैं। पुष्प पीलेरंग के होते हैं, जो शाखाग्रथ एवं पत्रकोणोद्भूत मञ्जरियों (३० सें० मी० से ४० सें० मी० या १२ इञ्च से १६ इञ्च लम्बी) में निकलते हैं। फलियाँ ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० × ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (३ इञ्च से ४ इञ्च × $1\frac{1}{2}$ से २ इञ्च), रूपरेखा में तिर्यगायताकार चपटी, काष्ठीय तथा अस्फोटी होती हैं। इनमें १ से ४ बीज होते हैं। चौड़ेसिरे की ऊर्ध्वधारापर (*S*) के आकार की चोंच-सी होती है। फलियों के छिलके एवं काण्ड-त्वक् का उपयोग व्यवसाय में चमड़ा सिझाने के लिए तथा हृत्काष्ठ औषध्यर्थ व्यवहृत होता है।

उपयोगी अंग—सारकाष्ठ या हृतकाष्ठ (*Heart-Wood*)।

मात्रा—२ ग्राम से ३ ग्राम या २ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—पतंगकाष्ठ ठोस, भारी, कड़ा तथा ताजा कटा होवे पर रक्ताभ-श्वेत, किन्तु वायु में खुला रहने पर लाल हो जाता है। इसमें कोई विशेष गन्ध एवं स्वाद नहीं होता, किंतु कषाय (संग्राही) होता है। इससे जल तथा सुरासार में उत्तम काररंग आ जाता है। बाजार में इसके विभिन्न आकार-प्रकार के टुकड़े, भारी टुकड़े या लाल नारंगीरंग की चपटियाँ मिलती हैं। अनुप्रस्थ विच्छेद (आड़ेरुख काटने से) करने पर इन पर वृत एवं सरल रेखाएँ पायी जाती हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पतंगकाष्ठ को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—इसमें 'सप्पनिन' नामक एक क्रिस्टलीसत्व होता है, जो हीमेटॉक्सीलीन के समान है।

स्वभाव—पतंगकाष्ठ दूसरे दर्जे में गरम और चौथे में खुश्क होता है। यह उपशोषण, व्रणलेखन, संग्राही और रक्तस्तम्भन होता है। अतिसार-प्रवाहिका में इसे खिलाते हैं, तथा संग्राही उत्तरवस्ति के रूप में इसका व्यवहार होता है।

मुख्ययोग—पत्राङ्गासव (पतंगासव)।

विशेष—'पतङ्गासव' एक उत्तम रक्तस्तम्भक योग है। रक्त-प्रदर में अत्यधिक रक्तस्राव रोकनेके लिए बहुत उपयोगी है।

वक्तव्य—'पतंग' का उल्लेख चरकसंहिता में तो नहीं के बराबर है, किन्तु सुश्रुतसंहिता तथा अष्टांगहृदय आदि में बहुशः है। इससे लक्षित होता है, कि इसका प्रसार पूर्वीभारत से हुआ होगा। ज्ञातव्य है कि 'पतंग' प्राचीन-काल में एक मुख्य व्यावसायिक द्रव्य था। इसके हृत्काष्ठ से एक पीलारंग प्राप्त होता है, जिसका उपयोग 'वस्त्र-रञ्जन *textile dyeing*' के लिये किया जाता था। पतंग संज्ञा जो वास्तव में पट्टरङ्ग (>पत्रङ्ग> पतंग) से व्युत्पन्न है, स्वयं इस तथ्यका द्योतक है। ('पट्टरङ्ग बकम इति'—जल्पकल्पतरु टीका)। बंगाल में वस्त्ररंजन के लिये इसका उपयोग बहुत किया जाता रहा है। वास्तव में पहले बंगाल में इसका आयात बर्मा से होता था। व्यवसाय में यह 'बकम, बोकम' नाम से प्रसिद्ध था और है। उक्त संज्ञा बर्मा के क्षेत्रविशेष के नामपर आधारित है, जहाँ पतंग अधिक होता तथा इसके व्यवसाय का केन्द्र था। अरब-व्यापारियोंद्वारा बक्कम पश्चिमी देशों को भी ले जाया जाता था। वैजयन्तीकोष में इसका उल्लेख अन्य चन्दन भेदों के साथ 'वैश्याध्याय' में है। आयुर्वेदीय निघण्टुओं में भी इसका समावेश चन्दनभेदों में ही है। सोढल ने—'पतङ्गः पुनरष्टमम्' से पतंग को आठवाँ चन्दनभेद माना है। इसके रंजनगुण को

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मान्यता को स्वीकारकर रसग्रन्थों ने पतङ्ग को 'पीतवर्ग' में (रसार्णव, पटल ५/३९) रखा है। (लेखक)।

पत्ता अजवायन (पत्थरचूर)

नाम। सं०—पर्णयवानी; पाषाणभेदी। हिं०—पत्ता अजवायन। बं—पाथरचूर। म०—पानओवा। अं—कन्ट्री बोरेज (*Country Borage*)। ले०—कोलेउस आंबोइनिकूस **Coleus amboinicus** *Lour.* (पर्याय—कोलेउस आरोमाटीकुस *C. aromaticus Benth.*)।

वानस्पतिक-कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटे *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान—यह मलक्का-द्वीपपुञ्ज की आदिवासी वनस्पति है; किन्तु सम्प्रति सुगन्धित पत्तों के लिए सर्वत्र भारतवर्ष में वाटिकाओं में लगायी जाती है। पत्तियों की पकौड़ी बनाकर खायी जाती है।

संक्षिप्त परिचय—इसके बहुवर्षायु स्वरूपके कोमल काण्डीय पौधे सर्वत्र बगीचों में लगाये हुए मिलते हैं। इसके क्षुप रोमश होते हैं, तथा जड़ के पास का भाग गुल्म स्वभाव का होता है। पत्तियाँ सवृन्त (परन्तु वृन्त छोटा), वृत्ताकार, हृद्वत्, गोलदन्तुर, मोटी, मांसल तथा किंचित् रोमश और लगभग २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च तक लम्बी होती हैं। इनमें अजवायन-जैसी उग्र सुगन्धि पायीजाती है, इसीलिए इसे संस्कृत में 'पर्णयवानी' तथा हिन्दी में 'पत्ता अजवायन' कहते हैं। पुष्प बहुत छोटे, नीले या हल्के जामुनीरंग के और सघन, परन्तु दूर-दूर स्थित चक्रों में निकलते हैं। कलिकायुक्त कोणपुष्पकों की चार कतारें रहती हैं। पत्तियाँ मूत्रल एवं अश्मरीघ्न समझी जाती हैं। अतएव 'पाषाणभेदी' एवं 'पाथरचूर' आदि नाम इसके लिए प्रसिद्ध हो गये हैं। रुचिकारक गुण में विदेशी वनस्पति (**Borago officinalis** *Linn.*) का उत्तम प्रतिनिधि है। इसी से अंग्रेजी में इसे "*Country Borage*" कहते हैं। जाड़ों के अन्त में पुष्प तथा गर्मियों में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—पत्र।

मात्रा। स्वरस—६ ग्राम से ११.६६ ग्राम या ½ से १ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—'पत्ताअजवायन' की पत्तियाँ ७.५ सें० मी० या ३ इञ्च तक लम्बी; मोटी एवं मांसल तथा रूपरेखा में वृत्ताकार, हृद्वत्—गोल अथवा चौड़ी—लट्वाकार होती हैं। पत्तियों के किनारे दन्तुर या दंदानेदार (*crenated*) होते हैं। पत्र-पृष्ठ ग्रन्थि रोमश (*glandular-hairy*) होते हैं, जो अधःपृष्ठ पर और भी सघन होते हैं, जिससे यह ओसलिप्त-सा श्वेताभ (*frosted appearance*) मालूम होता है। शिरा विन्यास (*venation*) जालमय (*reticulate*) होता है; जो अतःपृष्ठ पर अधिक स्पष्ट होता है। इतस्ततः तैलबिन्दु भी पाये जाते हैं, किन्तु सुगन्धि मुख्यतः ग्रन्थि रोमों के ही कारण होती है। पत्तियों में अजवायन-जैसी उग्र मनोरम सुगन्धि होती है, और मुख में चाबने पर सुगन्धित और तीक्ष्ण (*pungent*) होती है।

संगठन—पत्तियों में अल्पमात्रा में सुगन्धित उत्पत् तैल मुख्यतः कार्वेक्रोल (*Carvacrol*) नामक तत्त्व से युक्त पाया जाता है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु; तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—कफवातशामक, वेदनास्थापन, विषघ्न, आक्षेपहर, रोचन, दीपन-पाचन, ग्राही, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, कफदुर्गन्धनाशक, श्वासहर, मूत्रल, अश्मरीघ्न आदि। अहितकर—अधिक मात्रा में मादक होता है। अतः इसका प्रयोग करते समय सावधान रहें।

विशेष—हाल में ही कलकत्ते में पत्ता अजवायन का परीक्षण विशूचिका या हैजा (*Cholera*) के रोगियों में किया गया है, जिसमें अत्यन्त संतोषप्रद परिणाम मिला है। यद्यपि इससे विशूचिका के जीवाणु नष्ट तो नहीं होते, किन्तु उपद्रवों की शान्ति होकर रोगी निरोग हो जाता है। एतदर्थ प्रथम मात्रा ४ ड्राम या १¾ तोले की, तथा इसके बाद १—१ घंटे के अन्तर से दो मात्राएँ २ ड्राम या ७½ माशे की दी जाती हैं। यदि इससे दस्त बन्द न हों तो ८ घंटे पर यही चिकित्सा क्रम दुहराया जाता है, जब तक कि दस्त रुक न जायें। इस प्रकार यह हैजे की सर्वसुलभ एवं सुगम औषधि है।

पद्मकाष्ठ (पद्मक)

नाम—सं०—पद्मक, पद्मगंधि। हिं०—पद्माक, पद्माख, पद्मकाष्ठ, पदमकाठ; (जौनसार आदि हिमालयप्रदेश)—पाजा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*Pajja*), फाजा (*Phajja*)। म०; गु०—पद्मकाष्ठ। अं०—हिमालयन चेरी (*Himalayan Cherry*)। ले०—प्रूनुस सेरासोइडेस **Prunus cerasoides** *D.Don.* (पर्याय—प्रूनुस पद्दुम *Prunus puddum Roxb. ex Wall.*)।

वानस्पतिक-कुल। तरुणी-कुल (रोजासे *Rosaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयप्रदेश (*Temperate Himalayas*) में सतलज से गढ़वाल (९१४.४ मीटर से १८२८.८ मीटर या ३,००० फुट से ६,००० फुट) तथा भूटान (२५२३ मीटर से २४०८.३६ मीटर या ५,००० फुट ८,००० फुट) तक, खसिया, मनीपुर, उत्तरीब्रह्मा तथा दक्षिणभारत में उटकमंड आदि की पहाड़ियों पर पद्मकाष्ठ के जंगली वृक्ष पायेजाते हैं। उक्त प्रदेशों के गाँवों के आसपास के जंगलों में तथा बगीचों में इसके स्वयंजात एवं लगाये हुए दोनों वृक्ष मिलते हैं। 'काष्ठ' पंसारियों के यहाँ बिकता है।

संक्षिप्तपरिचय—पद्माख से मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं, जिनकी छाल हल्का भूरापनलिए खाकस्तरी (*brownish-grey*) रंग की तथा चिकनी होती है, और इसकी पतली चमकीली पपड़ियाँ छूटती (*bark peeling off in thin shining horizontal strips*) हैं। काण्ड गोलाकार, रक्ताभ तथा ग्रन्थियुक्त होता है, और इसमें कमल के समान गंध होती है। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ३ इंच से ५ इंच लम्बी, २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इंच से १½ इंच चौड़ी, भालाकार-लट्वाकार, लंबे नोंकवाली (*long-acuminate*) एवं चिकनी तथा दोहरे दाँतोंवाली (*closely doubly serrate*) होती हैं। पत्रवृन्त लगभग १.२५ सें० मी० या ½ इंच लम्बा, जिसके आधार पर २ से ४ ग्रंथियाँ होती हैं। पतझड़ के बाद पहले पुष्पागम (अप्रैल—मई तक) होता है, तब पत्तियाँ विकलती (मई—जून) हैं। पुष्पानम होने पर इसके वृक्ष बहुत सुन्दर मालूम होते हैं। पुष्प व्यास में २ सें० मी० या ¾ इंच तथा पहले गुलाबीरंग के बाद में सफेद हो जाते हैं। पुष्पवाहक दण्ड (*pedunclcs*) १.२५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० मा ½ इंच से १½ इंच लम्बे होते हैं, और मंजरियाँ छत्राकार (*umbellate fascicles*) होती हैं। पुष्पों से भी कमल की-सी हल्कीगंध आती है। पुष्पागम के लगभग २ माह बाद फलागम होता हैं। इसका अष्ठिफल (*drupe*) अंडाकार, पीला या लाल, दोनों सिरोंपर कुण्ठित (*obtuse at both ends*) तथा स्वाद में किंचित् कसैलापन लिए खट्टा होता है। पके फल स्थानिक लोग खाते हैं। फलों में गूदा प्रायः कम तथा गुठली (*stone*) अपेक्षाकृत बड़ी होती है, जो झुर्रीदार एवं खातोदर रेखांकित (*rugose and furrowed*) होती है। पद्मकाष्ठ की सीधी डालियों की 'छड़ियाँ' (*walking-sticks*) बनाते हैं, तथा गुठलियों को सुखाकर 'माला' बनाते हैं।

उपयोगी अंग। काण्डकाष्ठ एवं छाल तथा बीजमज्जा।

मात्रा। चूर्ण—½ ग्राम से २ ग्राम या ½ माशा से २ माशा। फाण्ट—२ तोला से ४ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में पद्माखकाण्ड के टुकड़े मिलते हैं, जिनकी त्वचा कृष्णाभरक्त तथा हृत्काष्ठ (*heart-wood*), रक्तपीताभश्वेत होता है। औषध्यर्थ नयेकाण्ड का व्यवहार करना चाहिए। क्वाथ बनाने में इसका सत्व उड़जाता है, अतएव इसका 'फाण्ट' बनाना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—काष्ठ एवं अन्य उपयोगी अंगों को मुखबन्द शीशियों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन। काण्डत्वक् में एमिग्डेलिन (*Amygdalin*), प्रुनेसेटिन एवं हायड्रोसाइनिक एसिड नामक तीव्र विषाक्त सत्व पाया जाता है। अतएव इसकी छाल का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।

वीर्यकालावधि—३ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—कषाय, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—त्रिदोषहर। प्रधान कर्म—काण्ड एवं छाल स्तम्भन, कटुपौष्टिक, वेदनास्थापक, रक्तशोधक एवं शामक तथा बीजमज्जा अश्मरीघ्न होती है।

मुख्य योग—अर्क हरामरा।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) वर्ण्य तथा वेदनास्थापन महाकषाय एवं कषायस्कन्ध के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) सारिवादि एवं चन्दनादिगण में 'पद्मक' भी है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पपीता (एरण्डकर्कटी)

नाम। सं०–एरण्डकर्कटी (अभिनव)?। हिं०–एरंड (अरंड) ककड़ी, एरण्ड (अरंड) खरबूजा, पपीता, पपैया, पपय्या, विलायती रेंड। बं०–पेपे। म०–पपाया। गु०–झाड़चीभडुं, पोपैयुं। सिंध–काठगिदरो। ता०–पचलै, पप्पलि। ते०–बोप्पयी। मल०–पप्पायम्। अ०–शजतुल् बित्तीख। फा०–दरख्त खुरपूजा (–खर्बुजा)। अं०–पपाव (या) ट्री *Papaw* (*Papaya*) *Tree*। ले०–कैरीका पपाया (**Carica papaya** *Linn.*)।

वक्तव्य–स्पेन की भाषा में 'पपीता' शब्द का प्रयोग 'कुचिलावर्ग की एक अन्य विषैली ओषधि (स्ट्रिक्नोस इग्नाटी (**Strychnos ignatii**) के अर्थ में भी होता है।

वानस्पतिक-कुल। एरण्डकर्कटी-कुल (कारीकासे *Caricaceae*)।

प्राप्तिस्थान–पपीता वास्तव में ब्रेजिल (दक्षिणी अमेरीका) का आदिवासी पौधा है। किन्तु अब यह भारतवर्ष में भी अधिवासी हो गया है। समस्त भारतवर्ष में इसकी प्रचुरमात्रा में खेती की जाती है। कच्चे एवं पके पपीता के फल तरकारी बाजारों में सर्वदा विकते हैं। प्रौढ़ कच्चेफल के 'दूध' का व्यवहार औषधि में होता है।

संक्षिप्तपरिचय–पपीते के छोटे कद के वृक्ष लगभग ६ मीटर से ९ मीटर (२० फुट से ३० फुट ऊँचे) होते हैं, जिनका काण्डस्कन्ध एवं डालियाँ कोमल (*soft-wooded*) होती हैं। वृक्ष होते हुए भी यह अल्पायु होता है, और इसका सक्रिय जीवन-काल केवल ४ से ५ वर्षों का होता है। अर्थात् इसमें फूल-फल केवल उक्त अवधि तक ही आते हैं, और इस जीवन को समाप्त करने के बाद वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। इसकी पत्तियाँ चौड़ी-चौड़ी, चमकीली, अर्धानुत्तर–खण्डित या पाणिदर (पाल्मेटोफिड *palmatifid*) तथा पाणिवत् शिरा-विन्यास युक्त (*palminerved*) होती हैं। ये पत्तियाँ केवल वृक्ष के शिखर पर छत्रवत् समूहबद्ध स्थित होती हैं। पर्णवृन्त या डंठल एरण्ड की भाँति लम्बे-लम्बे तथा खोखले होते हैं। इसमें हल्के पीलेरंग के सुगंधित पुष्प आते हैं, जो एकलिंगी होते हैं, और नरपुष्प तथा नारीपुष्प पृथक्-पृथक् वृक्षों पर आते हैं। नरपुष्प लम्बी सगुच्छ मञ्जरियों में लगते हैं, जो नीचे को लटकी रहती (*drooping panicles*) हैं। नारी-पुष्पव्यूहधारकदण्ड छोटा होता है। अतएव यह गुच्छकों में दिखाई देते हैं। नरपुष्पों का आभ्यन्तरकोष नलिकाकार एवं श्वेतरंगका, तथा स्त्री-पुष्पों में बड़ा, मांसल एवं पीलेरंग का और पाँच खण्डों से युक्त (*5-lobed*) होता है। फल छोटे तरबूज के बराबर तथा गूदेदार होते हैं, जो कच्चे होने पर हरे और कड़े तथा पकने पर पीताभवर्ण के तथा कोमल हो जाते हैं। फलों के अन्दर खोखला अवकाश होता है, जिसमें गोल-गोल, खाकस्तरीरंग के तथा स्पर्श में चिपचिपे असंख्य बीज भरे होते हैं। बीजों में एक विशिष्ट प्रकार की हल्की गन्ध भी होती है। कच्चेफलों पर चीरा लगाने से आक्षीर या लैटेक्स (*latex or milky juice*) निकलता है। औषधीय दृष्टि से यही विशेष महत्त्व का है। इसी से पैपेन (*Papain*) प्राप्त किया जाता है। पपीता एक उत्तम मांसपाचक शाक है। कच्चे फलों की तरकारी तथा अचार बनाया जाता है, और पके फल अन्य फलों की भाँति खाये जाते हैं।

उपयोगी अंग। फल, बीज, पत्र एवं दूध (*Latex*), तथा दूध से प्राप्तसत्व (पपेन *Papain*)।

मात्रा। दूध–०.५ ग्राम से १ ग्राम या ½ तोला १ तोला।
पपेन–१२५ मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० या १ रत्ती से ४ रत्ती।
बीजचूर्ण–०.५ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से ८ रत्ती।
फल–आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–पपेन, सफेद से हल्के भूरेरंग के अथवा भूरापन लिये खाकस्तरी से हल्के पीलेरंग के चूर्ण के रूप में मिलता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की हल्की गन्ध एवं हल्का खट्टा या नमकीन स्वाद होता है। कन्दुक में शुष्क किएहुए (*oven-dried*) पपेन में धूप में सुखाये हुए पपेन (*sun-dried*) की अपेक्षा सक्रियता अधिक होती है। विलेयता–नमक के पानी में यह थोड़ा-थोड़ा घुलता है, किन्तु ऐल्कोहल् (७०%) में अच्छी तरह घुलजाता है। ईथर तथा क्लोरोफॉर्म में अघुलनशील होता है। भस्म–अधिकतम १% प्राप्त होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण—इसका संग्रह करने के लिए प्रगल्भ कच्चे फलों पर प्रातःकाल अनुलम्ब दिशा में २ से ३ चीरा (३.१२५ मि० मी० या ⅛ इञ्चतक गहरा) लगा दिया जाता है। ३ से ७ दिन के अन्तरसे इस क्रिया को दुहराते रहते हैं। इसप्रकार जो दूधजैसा सफेद तथा गाढ़ास्राव निकलता है, उसे खरोंचकर शीशे के पात्र में एकत्रित करते रहते हैं। दूध का अधिकतम स्राव वर्षा के अन्त में अक्टूबर-नवम्बर के महीनों में होता है। संग्रहीत दूध में १०% सेंधानमक मिला दिया जाता है। इससे दूध की क्रियाशीलता क्षीण नहीं होने पाती। इसे छायाशुष्क करके अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में, जिनमें हवा भी प्रविष्ट न होसके, संरक्षित करना चाहिये।

संगठन—पपीते के आक्षीर (दूध) में 'पपेन' या 'पपायोटिन' नामक मांसपाचकसत्व पायाजाता है। यह प्राणिज पेप्सिननामक पाचकद्रव्य के समान, प्रत्युत अनेक विषयों में उससे भी उत्तम है। ताजेफल में शर्करा, पेक्टिन, सीट्रिक एसिड, टार्टरिक एसिड, मेलिकएसिड तथा विटामिन '*A*', '*B*' एवं '*C*' भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पपीते में कैल्सियम्, फास्फोरस, लौह, एवं मैगनीशियम् के लवण भी पाये जाते हैं। बीजों में एक प्रकार का कुस्वाद और अप्रियगंधीतेल होता है, जिसे 'पपैया का तेल (*Papaya Oil*)' कहते हैं। पत्तियों में कार्पेन (*Carpaine*) नामक ऐल्केलाइड तथा कार्पोसाइड (*Carposide*) नायक ग्लाइकोसाइड तथा विटामिन '*C*' एवं '*E*' पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। शुष्कक्षीर—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक (पक्का फल—पित्तशामक)। दूध (आक्षीर)—लेखन, वेदनास्थापन, मांसपाचक, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न (विशेषतः—केंचुए एवं स्फीतकृमिनाशक), आर्तवजनन, स्तन्यजनन, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न। (पत्र एवं बीज) शोथहर. आर्तवजनन, स्वेदजनन, रक्तशोधक, हृद्य, कटुपौष्टिक, बल्य। यूनानीमतानुसार पक्व पपीताफल उष्ण एवं तर तथा कच्चा पपीता उष्ण एवं रूक्ष है। इसके सेवन से आमाशय बलवान होता है, खूब भूख लगती है, तथा अपानवायु खुलती है। अहितकर—उष्ण प्रकृति वालों तथा गर्भवती स्त्रियों में भी इसका प्रयोग सतर्कता से करना चाहिए।

विशेष—कच्चे पपीते की तरकारी एवं अचार बनाया जाता है, और पक्व फल खाये जाते हैं। यकृद्विकार में तथा मांसहारियों के लिए उत्तम पथ्य द्रव्य है। पकापपीता भोजनोत्तर सेवन के लिये बहुत उपयुक्त एवं लाभदायक है। यह सर्वत्र तरकारी एवं फलबाजारों में मिलते हैं। बाजारों में एक 'बम्बइया पपीता' नाम से बिकता है। बाह्यतः देखने में इसका डोलडौल एवं बाह्य रूपरेखा तो ऊबड़-खाबड़ लगती है, किन्तु इसका गूदा अपेक्षाकृत लालिमालिये और बहुत मीठा होता है।

परजाता (पारिजात)

नाम। सं०—पारिजात, शेफालिका। हिं०—हरश्रृंगार, हरसिंगार, परजाता। (देहरादून)—कूरी (*Kurri*)। को०, संथा०—सपरोम। माल०—कुलामारसल। बं०—सिंटिक, शेफालिका। म०—पारिजात। गु०—हारशणगार। अं०—वीपिंग निक्टेंथीस (*Weeping Nyctanthes*), नाइट जैस्मिन (*Night Jasmine*)। ले०—निक्टांथेस आर्बोरट्रीस्टिस (**Nyctanthes arbortristis** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। यूथिका-कुल (ओलेआसे *Oleaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (विशेषतः हिमालय की बाहरी पर्वतश्रेणियों) में इसके जंगली एवं लगाये हुए वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—हरसिंगार के पर्णपाती छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं जिसकी पतली शाखाएँ प्रायः चतुष्कोणाकार और छाल खाकस्तरीरंग या हरिताभ-श्वेतवर्ण की तथा कर्कश होती है। पत्तियाँ अभिमुखक्रम से स्थित (*opposite*) तथा १० सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ४ इंच से ५ इंच लम्बी, १½ इंच से ३ इंच चौड़ी, लट्वाकार या हृदयाकार अथवा आयताकार, अग्र नुकीले, किनारे प्रायः सरल (कभी-कभी दूर-दूर दन्तुर से) होते हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ हरितवर्ण, तथा अधः पृष्ठ श्वेताभ होता है। पत्तियों पर तीक्ष्णाग्र श्वेतरोम पायेजाते हैं; जिससे स्पर्श में यह कर्कश होती हैं। पर्णवृन्त ०.५ सें० मी० से १.२५ सें० मी० (¼ इंच से ½ इंच) लम्बा होता है। पुष्प सुगन्धित होते हैं, जो सशाख गुच्छों में (३ पुष्प से ७ पुष्प) निकलते हैं। आभ्यन्तरकोष-नलिका

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या दलपुञ्ज-नलिका कॉरोला-ट्यूब (*corolla-tube*) पीत रक्त, तथा दल सफेद और सुगन्धित होते हैं। पुष्प प्रायः रात में खिलते तथा प्रातः झड़जाते हैं। फल (*capsule*) १.८७५ सें० मी० या ¾ इञ्चतक लम्बा, १.२५ सें० मी० (½ इञ्च) तक चौड़ा, लम्बगोल. लोमाग्र (*mucronate*), चपटा, पकने पर भूरेरंग का तथा प्रायः द्विकोष्ठीय होता है। प्रत्येककोष्ठ में हल्के भूरेरंग का चपटा एवं पतला बीज होता है। आभ्यन्तरकोष-नलिकाओं को पृथक् करके नारंगीरंग (*orange colour*) प्राप्त किया जाता है। पत्तियाँ, छाल एवं बीज स्वाद में कसैलापन लिये तिक्त होते हैं। पुष्पागम—अगस्त से अक्टूबर तक। फलागम—जाड़े के दिनों में।

उपयोगी अंग। पत्र, छाल एवं बीज।

मात्रा। पत्रस्वरस—६ माशा से २ तोला।

चूर्ण—१२५ मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० या १ रत्ती ४ रत्ती।

संग्रह एवं संरक्षण—इसके वृक्ष सर्वत्र सुलभ होने से ताजी पत्तियों का व्यवहार करना चाहिए। यदि संग्रह करना हो, तो उपयुक्त अंगों को छायाशुष्क करके मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—पुष्पों में चमेली की भाँति सुगन्धिततैल होता है। पत्तियों में निक्टेन्थीन (*Nyctanthine*) नामक क्षारोद तथा कषायद्रव्य, रालीयतत्त्व, रंजकद्रव्य आदि पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। त्वक्—१ वर्ष।

स्वभाव—गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—ज्वरघ्न, यकृतोत्तेजक, कृमिघ्न कटुपौष्टिक, आनुलोमिक, रक्तशोधक, कफघ्न, स्वेद-जनन, मूत्रल, विषघ्न, केश्य।

विशेष—कहीं-कहीं इसे 'सडसियारी' भी कहते हैं। कुछ लोग इसे ही भ्रम से 'पारिभद्र' मानते हैं, जो वस्तुतः 'फरहद' का नाम है। हरसिंगार सम्भवतः 'शेफालिका' है, जिसे कुछ लोग सम्भालूभेद ? कह दिया करते हैं।

वक्तव्य—'पारिजात', 'पारिभद्र' एवं 'शेफाली' का उल्लेख चरकसंहिता में तो नहीं है, तथा आयुर्वेदीय निघण्टुओं एवं संस्कृत कोषों में भी वनस्पतिनाम के संदर्भ में नानार्थरूप दिखाई देता है। किन्तु सुश्रुत (सूत्र अ० ८) तथा अष्टांगहृदय (उत्तर अ० ९) में जिस 'शेफालिका' का उल्लेख है, वह निश्चयरूप से **Nyctanthes** प्रजाति है, जिसे उत्तरभारत तथा मध्यप्रदेश एवं गुजरात—महाराष्ट्र आदि में 'परिजाता' या 'हरसिंगार' बोलते हैं। कहीं-कहीं इसे सेहाली (लियो) भी कहते हैं, जो 'शेफालिका' का ही प्राकृत/अपभ्रंशरूप है। उक्त शेफालिका उत्तरपश्चिम सीमाप्रान्तीय क्षेत्रमें अतिप्राचीनकाल से सुविज्ञात है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'हरीतक्यादिगणपाठ' (४.३.१६७) में शेफालिका का भी समावेशकिया है। भाष्यकार पतञ्जलि ने उससे रंगेवस्त्र (शैफालिकवस्त्र) का निर्देश किया है। ज्ञातव्य है, कि हरसिंगार के लाल पुष्पवृन्तों से सम्प्रति लालस्याही (*red ink*) बनाई जाती है। शेफालिकापत्र स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं। अतः इनका 'स्वरस' अनुपानरूप में विषमज्वर एवं कालज्वर (*kala-azar*) की औषधि के साथ दिया जाता है। पत्रपृष्ठ अत्यंत कर्कश (*scabrid*) होनेसे सुश्रुत ने इन्हें अनुशस्त्र की मान्यतादेकर लेखनार्थ (*curetting*) इनके उपयोग का अनुमोदन किया है। (लेखक)

परवल (पटोल-जंगली परवल)

नाम। स०—पटोल, कर्कशच्छद, राजीफल। हिं०—परवल, परवर, परोरा। बं०—पटोल, पल्ता। म०—पडवल। गु०—पाडर, पटोल। पं०—पलवल। ले०—ट्रीकोज़ांथेस डिओइका (**Trichosanthes dioica** *Roxb.*)। उक्त लता के २ भेद होते हैं—(१) कृषिजन्य (*Cultivated Variety*) तथा (२) स्वयंजात या जंगली (*Wild Variety*)। कृषिजन्यलता से प्राप्तफल तिक्त नहीं होता। इसी से इसे 'मीठा पटोल' कहते हैं। इसका शाक बनाया जाता है। वन्य पटोल का पंचांग अत्यंत तिक्त होता है। इसे 'तिक्तपटोल' कहते हैं। औषधीय प्रयोग के लिए प्रायः यही व्यवहृत होता है।

वानस्पतिक कुल। कूष्माण्ड-कुल (कूकुरबिटासे *Cucurbitaceae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तरभारत के मैदानी भागों में पूरब में आसाम, बंगाल तक।

संक्षिप्त परिचय—परवल की एकवर्षायु दीर्घ-आरोही लता होती है, जिसका काण्ड कुछ कर्कश तथा रोमावृत होता है। शाखाओं का रूपान्तर तन्तु या टेंड्रिल (*tendrils*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में होता है, जो २-४ शाखाओं में विभक्त होते हैं। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० (३ इंच से ४ इंच) लम्बी, ५ सें० मी० या २ इंच चौड़ी, लट्वाकार-आयताकार या हृदयाकार। अग्र नुकीला, पत्र-तट लहरदार-दंतुर होता है। पत्र के दोनों तल प्रायः कर्कश होते हैं। पर्णवृन्त लगभग १.८७५ सें० मी० या $\frac{3}{4}$ इंच लम्बा होता है। पुष्प एकलिंगी, नर एवं नारीपुष्प पृथक्-पृथक् पौधों पर होते (डोयोशिअस) हैं। फल लम्बगोल, दोनों सिरों की ओर नुकीले, ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (२ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बे होते हैं। कच्चे फल श्वेताभ-हरित, पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों पर सफेद धारियाँ होती हैं। जंगलीलता का पंचाङ्ग स्वाद में अत्यंत तिक्त होता है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला।

क्वाथ—५ तोला से १० तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—परवल का काण्ड चक्रारोही (आधार को लपेट कर चढ़ता है) होता है, जो स्पर्श में कर्कश एवं रूई के समान कोमल रोमावृत्त (*woolly*) होता है। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० × ५ सें० मी० (३ इञ्च × २ इञ्च), प्रायः अखण्डित तथा किनारे लहरदार गोलदन्तुर (*sinuate dentate*), पर्णवृन्त लगभग १.८७५ सें० मी० या $\frac{3}{4}$ इञ्च लम्बे, तथा आरोही प्रतान द्विधा-विभक्त (*tendrils bifid*) होते हैं। नरपुष्पवाहक दण्ड दो-दो एक-एक साथ निकलते हैं। फल ५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० या २ इञ्च से $3\frac{1}{2}$ इञ्च तक लम्बा, रूपरेखा में लम्बगोल तथा दोनों छोरों की ओर क्रमशः नुकीला होता है। कच्चाफल सफेदीलिये हरा रहता है, जो पकने पर पीला या नारंगीरंग का हो जाता है। बीज $\frac{1}{2}$ सें० मी० से $\frac{1}{4}$ सें० मी० या $\frac{1}{8}$ इंच से $\frac{3}{8}$ इंच लम्बे, चपटे, प्रायः अर्धगोलाकार (*half-ellipsoid*) तथा किनारों पर किंचित् सिकुड़े हुए या झुर्रीदार (*corrugate*) होते हैं। इसमें पुष्प एकलिंगी होते हैं, तथा नरपुष्प एवं नारीपुष्प पृथक्-पृथक् पौधों पर पाये जाते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—विशेषतः दक्षिणभारत में तथा अन्य प्रान्तों में भी जहाँ परवल नहीं होता, वहाँ 'चिचिंडा' का ग्रहण परवल के नाम से किया जाता है। कृषिजन्य चिचिंडा (**Trichosanthes anguina** *L.*) काफी बड़ा-बड़ा (१ से २ हाथतक) होता है, और इसका शाक बनाया जाता है। 'वन्यप्रकार' का ग्रहण औषध्यर्थ 'वनपटोल' के स्थानपर किया जाता है। (नाम) ट्रीकोज़ांथेस कुकुमेरिना (**Trichosanthes cucumerina** *Linn.*)। इसकी भी चक्रारोही लता होती है। पत्तियाँ ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच लम्बी, ५ खण्डोंवाली, खण्डाग्र कुण्ठिताग्र या कभी-कभी अग्र पर नुकीले होते हैं। इसका फल पटोल से कुछ लम्बा २.५ सें० मी० से १० सें० मी० (१ इंच से ४ इञ्च) किन्तु स्वरूपतः मिलता-जुलता है। गुण में भी यह पटोल से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। अतएव पटोल के अभाव में इसका ग्रहण किया जा सकता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पंचाङ्ग को छायाशुष्ककर मुखबंद पात्रों में यथास्थान रखें।

संगठन—परवल की जड़ में एक अक्रिस्टली सैपोनिन (*Amorphous Saponin*), एक तिक्तसत्व जो ग्लूकोसाइडस्वभाव का होता है, तथा अल्पमात्रा में उत्पत् तैल आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। १ वर्ष से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषशामक, केश्य, व्रणशोधनरोपण, रोचन, दीपन—पाचन, तृष्णानिग्रहण, पित्तसारक, अनुलोमन, कृमिघ्न, (अधिकमात्रा में वामक तथा रेचन), रक्तशोधक, ज्वरघ्न (विशेषतः पित्तज्वरनाशक), कुष्ठघ्न, बल्य, विषघ्न, कफघ्न। आदि यूनानीमतानुसार पहले दर्जे में उष्ण और दूसरे में तर है। अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारण—हरा एवं सूखा धनिया। प्रतिनिधि—तुरई।

मुख्य योग—पटोलादिक्वाथ, पटोलाद्यचूर्ण।

विशेष—कृषिजन्य मीठापरवल एवं आरण्य तिक्तपटोल वानस्पतिक दृष्टि से वास्तव में एक ही लता है, जो परिस्थितजन्य परिवर्तनों के कारण मीठा (अर्थात् जो तिक्त न हो) तथा तीता परवल फल देती हैं। सुदीर्घ काल तक यत्नपूर्वक पालित होने से आरण्य तिक्त पटोल ही स्वादु (मीठा) पटोल में परिणत हो जाता है। इसीप्रकार मीठापटोल भी वन्यज परिस्थिति में दीर्घ काल तक रहने पर तिक्तपटोल हो जाता है। मीठे का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रयोग आहार के रूप में, तथा तिक्तपटोल औषध्यर्थ प्रयुक्त होता है। परवल त्रिदोषशामक एवं सुपाच्य फलशाक है, अतएव रोगनिवृत्ति काल (*convalescent period*) के लिए यह एक परमोत्तम पथ्य है। बाजार में २ प्रकार का परवल मिलता है। एकका फल छोटा, चिक्कण, एवं गूदा मुलायम होता है। दूसरे (बिहार में कर्षितप्रकार) में फल बड़ा और कड़ा होता है। इनमें प्रायः प्रथम प्रकार ही श्रेष्ठ होता है। अनेक स्थानों में जहाँ उक्त परवल उपलब्ध नहीं होता, इससे मिलते-जुलते अन्यतम द्रव्यों का ग्रहण परवल के नाम से होता है, जैसे चिचिण्डा, जिसका वर्णन 'प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट' शीर्षक में किया गया है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं कार्कोटकी (खेकसा–**Momordica cochinchinensis** *Spreng.*) का ग्रहण भी पटोल के नाम से होता है। इसके फल देखने में करैले-जैसे किन्तु आकार में छोटे होते हैं।

पर्पट (पित्तपापड़ा) : शाहतरा

नाम। (१) सं०–क्षेत्रपर्पट। हिं०–पित(त्त)पापड़ा, धमगजरा, देशी शाहतरा, खेतपापड़ा। सिं०–शाहतरा, शातरा। म०–पित्तपापड़ा। गु०–शाहतरा, पित्तपापड़ो। फा०–शाहतरः। अ०–शाहतरज। अं०–फाइव-लीव्ड फ्युमिटरी (*Five-leaved Fumitory*)। ले०–फ़ूमारिआ ईंडिका **Fumaria indica** (*Haussk.*) *Pugsley* (पर्याय–*F. parviflora Wt. & Arn.* : *F. vaillantii Loisel var. indica Haussk.*)। (२) शाहतरा। फा०–शाहतरः। अ०–शाहतरज, कुज्बुरतुल् हिमार, बक़लतुल् मलिक, मलिकुल्बकूल। सं०–यवनपर्पट। हिं०–पित्तपापड़ा, शाहतरा। म०, बम्ब०–शातरा। अं०–कॉमन फ्युमिटरी (*Common Fumitory*)। यू०–कापलूस। ले०–फ़ूमारिआ आफ़ीसिनालिस (**Fumaria officinalis** *L.*)।

वानस्पतिक-कुल। पर्पटादि-कुल (फ़ूमारिआसे *Fumariaceae*)।

प्राप्तिस्थान–'शाहतरा' फारस में बोये हुए खेतों में होता है, और फ़ारस से ही इसका आयात होता है। 'धमगजरा' (देशी शाहतरा) भारत के अनेक भागों में (विशेषतः उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं बलूचिस्तान आदि) गेहूँ और चने के खेतों में होता है। इसके अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष में इसके इतस्ततः स्वयंजात पौधे भी मिलते हैं। इसका 'शुष्क पंचाङ्ग' भी पंसारी लोग पित्तपापड़ा एवं शाहतरा दोनों ही नामों में बेचते हैं।

संक्षिप्त परिचय–धमगजरा, शाहतरा का ही देशी भेद है (इसीलिए इसको 'देशी शाहतरा' कहते हैं), और औषधि में उसी के स्थान में प्रयुक्त होता है। इसके छोटे-छोटे (१५ सें० मी० से ३० सें० मी० या आधा से १ फुट) एकवर्षायु कोमल पौधे होते हैं, जो जाड़े की फसल में जौ, गेहूँ तथा चने के खेतों में प्रचुरता से घास के रूप में उगे हुए मिलते हैं। पत्ते गाजर या धनिये की तरह सूक्ष्म और कटे हुए होते हैं। इसीलिए इसको 'धमगजरा' कहा जाता है। पुष्प छोटे, श्वेत या गुलाबी (अग्रभाग पर बैंगनी) रंग के होते हैं। फल शाहतरे के फल की तरह क्षुद्र एवं गोल तथा अग्रपर २–खात युक्त (*double-pitted at the apex*) होते हैं। यह स्वाद में अत्यंत तिक्त होता है। इसमें पुष्प और फल माघ-फाल्गुन में आते हैं।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग।

मात्रा। चूर्ण–५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा। क्वाथ–२½ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–'यवनपर्पट' या पारस्य क्षेत्रपर्पट (फ़ूमारिआ ऑफ़ीसिनालिस) का सुखाया हुआ पंचाङ्ग होता है। बाजार में इसके सूखे पौधे के प्रायः बहुत टूटे फूटे टुकड़े मिलते हैं, जिसमें लगभग गोल मसृण और अस्फोटी, आल्पीन के मुण्ड (घुण्डी) से कुछ बड़े (*large pin's head*) बहुसंख्यक फल मिश्रीभूत होते हैं। प्रत्येक फल में एक बीज होता है। यह प्रायः निर्गन्ध, और स्वाद में किंचित् कड़ुवापन एवं कसैलापन लिए तिक्त होता है। 'धमगजरा' या 'देशीशाहतरा' इसका उत्तम प्रतिनिधिद्रव्य है। यह सर्वत्र सुलभ होने के कारण मौसम में प्रायः ताजा भी मिल सकता है। इसका सुखाया पंचाङ्ग पंसारी भी रखते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–खेतपापड़ा (क्षेत्रपर्पट) के नाम से भी भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न ओषधियों का ग्रहण किया जाता है। उत्तरभारत में विशेषतः पूर्ववर्णित 'धमगजरा' ही प्रचलित है। इसीरूप में तथा इन्हीं कार्यों के लिए युनानी चिकित्सा में शाहतरा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का प्रचलन है। गुण-कर्म की दृष्टि से निम्न वर्णित प्रान्तीय-क्षेत्रपर्पट एक-दूसरे से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। अतएव अभाव में एक दूसरे के प्रतिनिधि रूप में इनका भी ग्रहण किया जा सकता है :—

(१) बंगीयपर्पट। (नाम) सं०—क्षेत्रपर्पट। बं०—खेतपापड़ी। म०—परिपाठ। ले०—ओल्डेंकांडिआ कोरीम्बोसा **Oldenlandia corymbosa** *Linn.* (मंजिष्ठाकुल : रूबीआसे *Rubiaceae*)। इसके छोटे-छोटे (३ इंच से १५ इंच ऊँचे) शाकीय पौधे होते हैं, जो समस्त भारतवर्ष (विशेषतः बंगाल) में स्वयंजात पाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ रेखाकार या अंडाकार-भालाकार किन्तु बहुत कम चौड़ी, किनारे बाहर को मुड़े हुए तथा पुष्पवाहकदण्ड एकल (*solitary*) होता है, जिस पर १ से ४ लम्बेवृन्तयुक्त छोटे पुष्प होते हैं। इसके पौधे के स्वरूप एवं पत्रादि की रचना में नानारूपिता पायीजाती है। बंगाल में इसकी या इसकी अन्य जातियों (*other species of* **Oldenlandia**) का ताजा या सुखाया हुआ पंचाङ्ग खेतपापड़े के नाम से व्यवहृत होता है।

(२) जौनपुरी पित्तपापड़ा। ले०—पॉलीकार्पेआ कोरीम्बोसा **Polycarpaea corymbosa** *Lamk.* (*Family* : *Caryophyllaceae*)। इसके छोटे-छोटे (७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इञ्च से ६ इंच कभी-कभी ३० सें० मी० या १२ इंच तक) बहुशाखी शाकीय पौधे होते हैं। पत्तियाँ रेखाकार और अभिमुख होती हैं। शीर्षस्थ सघन मंजरियाँ द्विविभक्त, रजत-वर्ण और पुष्प बहुत छोटे होते हैं। उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में क्वार-कार्तिक के महीनों में प्रायः बाजरे के खेतों में इसके पौधे उगे हुए मिलते हैं और ग्रामीण पित्तपापड़ा के नाम से पित्तप्रकोप की शान्ति के लिए इसका व्यवहार करते हैं।

(३) पित्तपापड़ा (बम्बई)। (नाम)—बम्बई, म०—पित्तपापड़ा, घाटीपित्तपापड़ा। गु०—खडसलीया पित्तपापड़ा। ले०—जुस्टीसिआ प्रोकुम्बेंस **Justicia procumbens** *Linn.* (वासक-कुल : अकान्थासे *Acanthaceae*)। यह कोंकण, बम्बई, मद्रास, ट्रावन्कोर में होता है। बम्बई बाजार में शाहतरा के स्थानापन्न ओषधि के रूप में बिकता है।

(४) पूना और शोलापुरी पित्तपापड़ा। म०—पथरसोआ। हिं०—बनसोआ। ले०—ग्लॉस्सोकार्डिआ लिनेआरीफोलिआ **Glossocordia linearifolia** *Cass.* (पर्याय-ग्लोसोकार्डिआ बोस्वाल्लिआ *Glossocardia bosvallia DC.*) मुण्डी-कुल (कॉम्पोजिटी *Compositae*)। दकन, महाराष्ट्र, कोंकण, मध्यभारत आदि में इसके पौधे स्वयंजात होते हैं। इसके छोटे-छोटे एक वर्षायु शाकीय पौधे होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—जिस समय ताजा पौधा होता है, उस समय तो ताजे पंचाङ्ग का व्यवहार करना चाहिए। यदि संग्रह करना हो तो माघ-फागुन में धमगजरे में फलागम होने पर पूरा पौधा उखाड़ कर, छायाशुष्क कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—धमगजरा तथा शाहतरा में 'फ्युमेरिक एसिड' तथा 'फ्युमेरीन' नामक क्षारोदसत्व पाये जाते हैं। भस्म में पोटासियम् के लवण पाये जाते हैं, जिसके कारण इसमें मूत्रल प्रभाव पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—६ मास से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—पित्तशामक, तृष्णाशामक, दीपन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, रक्तशोधक, रक्तस्तम्भन, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न (विशेषतः पित्तज्वरनाशक), दाहशामक। यूनानी मतानुसार यह समशीतोष्ण तथा दूसरे दर्जे में खुश्क है।

मुख्ययोग—पर्पटादि क्वाथ, पर्पटाद्यरिष्ट, षडंगपानीय। चरकोक्त तृष्णानिग्रहणगण के द्रव्यों में 'पर्पट' का भी उल्लेख है।

विशेष—पैत्तिकज्वर एवं उसमें होनेवाले तृष्णा के उपद्रव को शमनकरने के लिए, तथा अन्य अनेक पैत्तिक विकृतियों में पित्तपापड़ा एक परमोपयोगी औषधि है। इस शीर्षक में वर्णित तथा पर्पट के नाम से व्यवहृत प्रायः सभी ओषधियाँ मैदानी भागों या कर्षितभूमि में पायीजाती हैं। हिमालय की पर्वतश्रेणियों पर काफी ऊँचाईपर एक और पर्पट मिलता है, जिसे पहाड़ों पर होने के कारण 'गिरिपर्पट (रिखपित्ता)' कहते हैं। इसका प्रयोग पित्तसारक के रूप में अनेक यकृद्-विकृतियों में किया जाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गिरिपर्पट (रिखपित्ता)

नाम। सं०–गिरिपर्पट, वनवृन्ताक। हिं०, पं०–बनककड़ी; रिखपित्ता (देवबन)। अं०–इण्डियन पोडोफ़िलम् (*Indian Podophyllum*)। ले०–पोडोफ़ीलम हेक्सांड्रम् **Podophyllum hexandrum** *Royle.* (पर्याय–*P. emodi Wall.*)।

वानस्पतिक-कुल। दारुहरिद्रा-कुल (बेर्बेरीडासे : *Berberidaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालय की भीतरी पर्वतश्रेणियों पर पूरब में सिक्किम से लेकर पश्चिम में हज़ारा, कश्मीरतक (२७२७.१८ मीटर से ४२५० मीटर या ९,००० से १४,००० फुट की ऊँचाई के क्षेत्रों में भी–सिक्किम, गढ़वाल, शिमला, चम्बा, कुलू, कांगड़ा तथा कश्मीर) गिरिपर्पट के कोमल शाकजातीय पौधे छायादार जगहों में पाये जाते हैं। इसका भौमिककाण्ड (राइजोम) देशी एवं डाक्टरी दोनों पद्धतियों में चिकित्सार्थ व्यवहृत होता है। अतएव अधिकांश औषधि (अंग्रेजीदवा) निर्माण करनेवाली फार्मेसियों द्वारा सीधे खरीद ली जाती है। हिमालयप्रदेश के स्थानिक बाजारों एवं मण्डियों में इसका मूलस्तम्भ विक्रयार्थ रखाजाता है, जिसे पहाड़ी थोड़ी मात्रा में लाकर बेच जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। गिरिपर्पट के छोटे-छोटे शाकीय मांसल पौधे (*succulent herb*) होते हैं, जिनका वायव्य भाग तो प्रतिवर्ष सूख जाता है, किन्तु मूलस्तम्भ *root-stock*) बहुवर्षायु स्वरूप का होता है, और जमीन के अन्दर फैलता रहता है। औषधि में इसीका व्यवहार होता है। पुष्पध्वज या स्केप (*scape*) १५ सें० मी० से ४५ सें० या ६ इञ्च से १८ इञ्च लम्बा, काफी मोटा किन्तु कोमल और स्वावलम्बी होता है, जिसके सिरेके पास २-३ (प्रायः २) पत्तियाँ होती हैं, जो एकान्तर क्रम से स्थित होती हैं। उक्त पत्तियाँ स्थूलतः रूपरेखा में गोलाकार, व्यास में १५ सें० मी० से २५ सें० मी० या ६ इञ्च से १० इञ्च, ३ से ५ खण्डों से युक्त जिनके कटाव की गहराई, आधी चौड़ाई तक अथवा कभी-कभी आधारतक भी होता है। खण्डों के किनारे सूक्ष्म दन्तुर होते हैं। पत्तियाँ पर्णवृन्त से पृष्ठपर जुड़ी (*peltate*) होती हैं, जो काफी लम्बे होते हैं। पत्तियों की उक्त रचनाविशेष के कारण गिरिपर्पट के पौधों को आपाततः देखन से अगेली (**Anemone obtusifolia** *Don.* (*Family : Ranunclaceae*) का भ्रम हो जाता है। वसन्त में पुष्प आते हैं, जो एकल (*solitary*) तथा संख्या में एक या कभी दो होते हैं। पत्तियों के निकलने के पूर्व पुष्पवाहकदण्ड अग्रच (*terminal*) मालूम होता है, किन्तु पत्तियों की अवस्था में कोणों से किंचित् ऊपर स्थित-सा (*supra-axillary*) होता है। पुष्प बड़े तथा कटोरेनुमा रूपरेखा के, व्यास में ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १½ इंच से २ इञ्च और प्रायः सफेद या कभी-कभी गुलाबीरंग के होते हैं। पुटपत्र (*sepals*) संख्या में तीन तथा दलपत्रवत् होते हैं; किन्तु यह शीघ्र पतनशील होते हैं। दलपत्र (*petals*) एवं पुंकेशर संख्या में ६, कुक्षिवृन्त छोटा तथा कुक्षि (*stigma*) बाह्यपृष्ठ पर उन्नतरेखाओं से युक्त (*crest-like ridge*) होते हैं। फूलों के गिरने के बाद गर्मियों में टमाटर-जैसे तथा रूपरेखा में अण्डाकार, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च बड़े, मांसल एवं पुष्कल बीजवाले फल लगते हैं। स्थानिक लोग इसका पक्वफल खाते हैं, तथा मूलस्तम्भ (*Root-stock*) औषधि के काम आता है। गुणकर्म में पर्पट की भाँति तथा ऊँचे पहाड़ों पर उत्पन्न होने के कारण इसे 'गिरिपर्पट' तथा फल बनभण्टा-जैसे होने के कारण 'वनवृन्ताक' तथा फल खाद्य होने से 'वनककड़ी' आदि नाम रखे गये हैं। गिरिपर्पट उत्तम पित्तसारक एवं विरेचन द्रव्य है। पैतिक विकृतियों एवं यकृन्मन्दता आदि रोगों में यह परमोपयोगी औषधि है। इसका नाम 'रिखपित्ता या रिसपित्ता (< सं०–ऋषिपित्ता' अर्थात् पर्वतवासियों को सुलभ पित्तप्रकोप में उपयोगीद्रव्य) भी इसके उक्त गुणकर्म की परम्परागत ख्याति का द्योतक है।

उपयोगी अंग–मूलस्तम्भ (विशेषतः राइजोम) एवं इसमें पाया जानेवाला रालीय सत्त्व (पोडोफाइलिन)।

मात्रा। मूल–२५० मि० ग्राम से ६२५ मि० ग्राम या २ से ५ रत्ती।

सत्व–१५.५ मि० ग्राम से ६२.५ मि० ग्रा० या ¼ रत्ती से ½ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–गिरिपर्पट के भौमिककाण्ड के टेढ़े-मेढ़े

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रायः २ सें० मी० से ४ सें० मी (¾ इंच से १½ इंच) लम्बे एवं १ सें० मी० से २ सें० मी० (½ इंच से ¾) इन्च तक मोटे टुकड़े होते हैं, जो रूपरेखा में बेलनाकार अथवा पार्श्वों में तो बेलनाकार, पृष्ठ एवं अधस्तल पर कुछ चिपटे (*flattened dorsi-ventrally*) होते हैं। पृष्ठतल पर टूटेहुए वायव्यकाण्डों के ३-४ प्यालेनुमा किन्तु अत्यन्त छोटे चिह्न होते हैं। अधस्तल पर पतली रस्सी की भाँति अनेक दृढ़ जड़ें लगी होती हैं, अथवा टूटी जड़ों के चिन्ह पाये जाते हैं। गिरिपर्पट के उक्त टुकड़े बाह्यतः पीताभ-भूरे या मटमैले भूरेरंग के होते हैं, और तोड़नेपर खटसे टूटते (*Fracture Short*) हैं। इनमें एक विशिष्टप्रकार की हल्कीगन्ध पायी जाती है, तथा स्वाद में तिक्त एवं कड़वे होते हैं। अनुप्रस्थ-विच्छेद करनेपर कटाहुआ तल स्थूलतः रूपरेखा में वृत्ताकार तथा देखने में हल्के भूरेरंग का और पिष्टमय (*starchy*) मालुम होता है। केन्द्रमज्जक (*pith*) का भाग काफी चौड़ा होता है, जहाँ से पहिए के अरों की भाँति स्थित वाहिनी-पूलों (*vascular bundles*) की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं, जो संख्या में २० तक होती हैं। इनके बीच-बीच में मज्जक-किरणें (*medullary rays*) होती हैं। परिधि को गाढ़े रंग की रेखा कार्कयुक्तवल्कल की होती है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम २% तक होते हैं। गिरिपर्पटका चूर्ण हल्के भूरेरंग का होता है।

परीक्षण—½ ग्राम या ७½ ग्रेन (३ रत्ती गिरिपर्पटका चूर्ण १० मिलिलिटर (सी० सी०) ऐल्कोहल् (९०%) में भिगों दें। १० मिनटके बाद इसे छान लें। इसमें ¾ सी० सी० (०.६ मि० लि०) स्ट्रांग सॉल्यूशन ऑव कापर एसिटेट मिलावें। इस प्रकार परखनलिका के तल में भूरेरंग का अधःक्षेप (*brown precipitate*) होता है, किन्तु विलयन का रंग हरा नहीं होता।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—गिरिपर्पट में काफी मात्रा में टूटी हुई जड़ें भी मिली होती हैं। विदेशीय गिरिपर्पट (पोडोफ़ील्लुम पेल्टाटुम **P. peltatum** *Linn.*) भी गुणकर्म में भारतीय गिरिपर्पट की ही भाँति होता है। किन्तु रेजिन की मात्रा अपेक्षाकृत भारतीय गिरिपर्पट में अधिक पायी जाती है। अतएव विदेशीय या अमेरिकन गिरिपर्पट की अपेक्षा यह अधिक उत्कृष्ट है।

संग्रह एवं संरक्षण—गिरिपर्पट की जड़ों का संग्रह नया वायव्य काण्ड निकलने के पूर्व ही करना अधिक श्रेयस्कर है, क्योंकि रेजिन की मात्रा इस समय अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। किन्तु चूँकि इस समय पौधे का पता नहीं चलता, इसलिए फुलने-फलने के बाद जब वायव्यभाग सूखजाता है, उस समय मूलस्तम्भ को खोदकर निकाल लें, और मिट्टी आदि साफ करके इसे टुकड़े-टुकड़े काट, छायाशुष्ककरके मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—गिरिपर्पट में १०% तक पोडोफिलिन् (*Podophyllin*) नामक रालीयसत्व पाया जाता है, जो इसका सक्रियघटक है। पोडोफिलिन में पोडोफिलोटॉक्सिन (*Podophyllotoxin*), क्वर्सेटिन (*Quercetin*) एवं पोडोफिलो-रेजिन (*Podophyllo-resin*) आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—अच्छी तरह संरक्षित करने से इसमें कई वर्ष तक वीर्य बना रहता है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफपित्तहर विशेषतः पित्तशोधन, दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, विरेचन (अल्प मात्रा में) कटु पौष्टिक एवं रक्तशोधक आदि। बाह्यतः स्थानिक प्रयोग से लेखन एवं क्षोभक है। गिरिपर्पट पित्तसारक एवं विरेचन होने के कारण, पित्तप्रकोप की अवस्थाओं में विरेचन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। एतदर्थ मूलचूर्ण एवं रालीयसत्व दोनों में से किसी का सुविधानुसार व्यवहार कर सकते हैं। इससे पीलेरंग के पतले दस्त होते तथा यकृत् का शोथ उतरता है और उसकी क्रिया सुधरती है। यकृद्विकारजन्य अग्निमांद्य, जीर्णविबन्ध एवं अग्निमांद्यजन्य दौर्बल्य में अपेक्षाकृत अल्प मात्राओंमें गिरिपर्पट अथवा इसके सत्व का व्यवहार करने से बहुत लाभ होता है। आमवात, वातरक्त एवं कुष्ठ आदि त्वचा रोगों में भी इसका प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता है। इससे स्रोतों का अवरोध दूर होकर संचित दोषों का निर्हरण होता है। अहितकर—औषधीय मात्राओं में भी गिरिपर्पट के प्रयोग से आँतों में मरोड़ होती है, तथा कभी-कभी हृल्लास एवं वमन भी होता है। मात्रातियोग से आमाशयांत्रप्रदाह होता है। गिरिपर्पट अथवा इसका सत्व आँखों में लगने पर उग्र क्षोभक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रभाव करता है अतएव अंगुलियों में लगने पर आँखों में स्पर्श न हो इस बात का ध्यान रखना चाहिए। निवारण–हृल्लास-वमन की प्रवृत्ति, एवं मरोड़ के निवारण के लिए गिरिपर्पट एवं इसके सत्व का प्रयोग सुगन्धित द्रव्यों अथवा खुरसानी अजवायन अथवा बेलाडोना आदि औषधियों के साथ मिला कर वटिका या गुटिका रूप में व्यवहृत करना अधिक उपयुक्त है। मात्रातियोग जन्य आमाशयान्त्रप्रदाह की अवस्था में दूध, नीबू का शर्बत आदि स्निग्ध, मधुर एवं शीत द्रव्यों को सेवन करना चाहिए।

पलाण्डु–दे०, 'प्याज'।

पलास (पलाश)

नाम। (१) वृक्ष (सं०) पलाश, किंशुक, क्षारश्रेष्ठ। हिं०–पलास, परास, ढाक, ढाँख, छिडल, छिडला। द०–पलाश का झाड़। बं०–पलाश गाछ। म०–पलस। गु०–खाखरो, खाखयड़ो। फा०–पलः, दरख्ते पलः। अं०–बस्टर्ड-टीक (*Bastard-Teak*)। ले०–बूटेआ मोनोस्पेर्मा **Butea monosperma** (*Lamk.*) *Taub.* (पर्याय–*B. frondosa Koen. ex Roxb.*)।

(२) शिम्बी या फली। हिं०–ढकपन्ना।

(३) बीज। सं०–पलाशबीज। हिं०–पसदामा, पलास (ढाक) के बीज, पलास (ढाक) पापड़ा। द०–पलासपापड़ा। म०–पलसाचीबीज। गु०–पलासपापड़ो। फा०–तुख्म पलः। अं०–ब्यूटिया सीड्स *Butea Seeds*। ले०–बूटेआ सेमिना *Butea Semina* (*Butea Sem.*)।

(४) गोंद। सं०–पलाशनिर्यास। हिं०–पलास या ढाक का गोंद, कमरकस, चुनियाँ गोंद, चुन्नीगोंद, ढाककी कनी। बं०–पलाशगुन्द। म०–पलसाचागोंद। गु०–खाखरनोगोंद। फा०–समग़पलः। ले०–बूटेई गम्मी *Buteae Gummi*। अं०–ब्युटिआ-गम (*Butea-Gum*), बेंगाल काइनो (*Bengal-Kino*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बीकुल-अपराजितादि उपकुल : लेगुमिनोसे : पापीलीओनासे *Leguminosae* : *Papilionaceae*।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में १२०४.१८ मीटर या ४.००० फुट की ऊँचाई तक सर्वत्र इसके जंगली पेड़ पाये जाते हैं। केवल बहुत बलुई जमीन में यह नहीं होता। पलाश का गोंद, बीज एवं शुष्कपुष्प पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–पलास के मध्यम कद के पर्णपाती वृक्ष होते हैं। काण्ड-स्कन्ध (*trunk*) प्रायः टेढ़ा-मेढ़ा (*crooked*) होता है। पत्तियों में ३-३ पत्रक (*3–foliolate*), दो आमने-सामने तथा तीसरा सिरेपर होता है। पत्रक मजबूत, कर्कश तथा चर्मिल (*rigidly coriaceous*), ऊर्ध्व तल पर चिकने किन्तु अधःपृष्ठ पर रेशमीरोंयेदार (*silky-tomentose*); संमुखवर्ती पत्रक १५ सें० मी० से २० सें० मी० या ६ इंच से ८ इंच लम्बे, ७.५ सें०मी० से १८.७५ सें० मी० या ५ इंच से ७½ इंच चौड़े, तिरछे लट्वाकार (*obliquely-ovate*) अथवा चौड़े-अण्डाकार (*broad elliptic*) तथा ⅝ सें० मी० से १ सें० मी० (⅓ इंच से ⅜ इञ्च) लम्बे मजबूत वृन्तकों (*petiolule*) पर धारण किये जाते हैं। तीसरा पत्रक १२,५ सें० मी० से २० सें० मी० (५ इञ्च से ८ इञ्च) लम्बा तथा ११.२५ से १७.५ सें० मी० (४½ इंच से ७ इंच) चौड़ा तथा रूपरेखा में समांतर असमचतुर्भुजाकार (*rhomboid*) से चौड़ा अभिलट्वाकार होता है। वसन्त में पतझड़ होने पर जब नयी पत्तियाँ निकलनी शुरू होती हैं, तो वृक्ष रक्त-पीत पुष्पों से लदजाता है। जंगलों में जहाँ इसके समूहबद्ध वृक्ष पाये जाते हैं, पुष्पागम के समय दूर से देखने में अग्नि-ज्वाला की भाँति लगते हैं। इसीलिए इसे '*Flame of the Jungle*' भी कहते हैं। पुष्प ५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० या २ इंच से ३½ इंच लम्बे अपराजितादि-उपकुल के विशिष्टपुष्प की भाँति (*Papilionaceous*) होते हैं। बाह्यकोष १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च लम्बा अन्तस्तल पर खाकस्तरी-रेशमी रंग का तथा मांसल होता है। आभ्यन्तरकोष नारंगी की भाँति लालरंग का होता बाह्यतल पर दलपत्र सफेदरोंयेदार (*silvery-tomentose*) होते हैं। ध्वजदल (*standard*) लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च चौड़ा होता है, और अग्र की ओर नुकीला तथा अन्दर को मुड़ा हुआ होता है, जिससे पुष्प सुग्गेकी चोंचकी भाँति मालूम पड़ता है। इसीलिए पलाश को "किंशुक" भी कहते हैं। फलागम जून-जुलाई के महीने में होता है। फलियाँ (*pod*) १० सें० मी० से १५ सें० मी० या ४ इञ्च से ६ इञ्च

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १½ इञ्च से २ इञ्च चौड़ी, चपटी तथा कच्ची अवस्था में बाह्यतल पर रेशमी रोयेंदार होती हैं, जो वृन्त (½ इञ्च से ⅗ इंच लम्बे) के सहारे नीचे को लटकी रहती (*pendulous*) हैं। प्रत्येक फली में एक चपटा गोलाकार बीज होता है, जो फली के अग्रकी ओर होता है। फली का स्फुटन (*dehiscence*) केवल बीज के भाग में ही होता है। 'पलासकी लाख' उत्तम समझी जाती है। पलास के काण्ड पर चीरा लगाने से लालरंग का एक गाढ़ारस निकलता है, जो बाद में जमजाता है। इसे 'पलाशकी गोंद' कहते हैं। गोंदका स्राव (*exudation*) अपने आप भी होता है।

उपयोगी अंग। बीज, पुष्प, गोंद, पत्र, छाल एवं क्षार।

मात्रा। बीजचूर्ण–२५० मि० ग्रा० से १ ग्राम या २ रत्ती से ८ रत्ती। (कृमिघ्नमात्रा) १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

गोंद–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

पुष्प या फूल (गुल टेसू)–६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।

पत्रस्वरस–३ माशा से २ तोला तक।

छाल–६ माशा से १ तोला।

त्वक्क्वाथ–१½ तोला से ५ तोला तक।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। बीज (पलासपापड़ा)–पलास के बीज चपटे, बहुत पतले, रूपरेखा में किंचित् वृक्काकार (*reniform*), ३.७५ सें० मी० या १½ इञ्च लम्बे, २.५ सें० मी० या १ इञ्च चौड़े तथा ⅗ सें० मी० या ⅕ इञ्च मोटे होते हैं। बीजावरण या बाह्यचोल (*testa*) लालिमालिये गाढ़े भूरेरंगका, पतला, चमकदार-रेखांकित (*glossy veined*), तथा किंचित् झुर्रीदार (*wrinkled*) होता है। नाभि (*hilum*) खातोदरधारा के मध्य में स्थित होती है। बीज-द्विदल (*cotyledons*) बड़े, पीताभवर्ण के तथा पतले होते हैं। द्विदलों पर भी सूक्ष्म रेखाएँ-सी होती हैं। बीजों में एक अत्यंत हल्की गन्ध होती है, तथा स्वाद में यह हल्के कड़वे एवं तिक्त होते हैं। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% होते हैं, तथा १००° तापक्रम पर शुष्ककरने से भार में अधिकतम ८% तक कमी होती है। भस्म–अधिकतम ६% तक प्राप्त होती है। बीजों से ऐल्ब्युमिनाइड्स की सकलमात्रा (*Total Albuminoids*)–कम-से-कम १८% होती है।

पलासनिर्यास (चुनियाँ गोंद)–ताजानिर्यास माणिक्य की भाँति लालरंग का होता है, और अधिकांश जल में घुलनशील होता है। किन्तु कुछ समय के बाद बबूल के गोंद की भाँति फुलकर परिमाण में बढ़जाता है, और इसका रंग भी गाढ़ा होकर काली आभालिये लाल हो जाता है। बाजार में पलाश गोंद के छोटे-छोटे (जौ के बराबर या उससे भी छोटे) अश्रुवत् दाने (*tears*) या चपटे अथवा कोणाकार टुकड़े (*flattish-angular fragments*) मिलते हैं। साधारणतया देखने में यह कालिमामय लालरंग के तथा अपारदर्शक (*black and opaque*) मालूम पड़ते हैं, किन्तु प्रकाश में देखने से माणिक्य की भाँति चमकदारलाल एवं पारभासी (*translucent*) होते हैं। उक्त टुकड़े कड़े एवं अत्यन्त भंगुर होते हैं, और खरल में घोंटने पर फौरन चूर्णित हो जावे हैं, जिससे हल्के लालरंग का चूर्ण प्राप्त होता है। रेक्टिफाइड-स्प्रिट में घोलनेपर ताजे एवं सूखे बाजारू गोंद दोनों का ही टैनिन (*tannin*) का तो लगभग आधा भाग घुलजाता है, किन्तु शेष भाग अविलेय रहता है।

संग्रह एवं संरक्षण–पलासपापड़ा, पुष्प एवं गोंद को अच्छी तरह डाँटबन्दपात्रों में रखना चाहिए, और नमी से बचाना चाहिए। क्षार को अच्छीतरह बन्दपात्रों में रखना और नमी से बचाना चाहिए।

संगठन। (१) बीज–में १८% एक पीलेरंग का स्थिर तैल (*Moodooga oil or Kino-tree oil*) तथा १९ प्रतिशत तक ऐल्ब्युमिनाइड्स (*Albuminoids*) एवं शर्करा प्रभृति तत्त्व, तथा ताजेबीजों में प्रोटीन एवं वसापाचककिण्व (*enzymes*) भी पाये जाते हैं। गोंद एवं छाल में काइनो-टैनिक एवं गैलिक अम्ल तथा पुष्प में १½% ब्युट्रिन नामक ग्लूकोसाइड, ०.३% ब्युटीन (*Butein*) एवं एक पीतरञ्जक द्रव्य आदि होते हैं।

वीर्यकालावधि–बीज, पुष्प एवं छाल में १ वर्षतक। तथा गोंद एवं क्षार में कईवर्षों तक।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–कटु, तिक्त, कषाय।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। (पुष्प) मधुरविपाक एवं शीतवीर्य होते हैं। प्रधान कर्म। (१) बीज–लेखन, भेदन, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, वातरक्तनाशक, प्रमेहघ्न, विषघ्न। (२) पुष्प–स्तम्भन, रक्तस्तम्भन, मूत्रल, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, श्वेतप्रदरनाशक। (३) गोंद–स्तम्भन, अम्लतानाशक, रक्तस्तम्भन, वृष्य, बल्य, संधानीय। (४) क्षार–अनुलोमन, भेदन, आदि। (५) छाल एवं पत्र–संग्राही, वीर्यपुष्टिकर, मूत्रजनन तथा आर्तवजनन, आदि। यूनानीमतानुसार बीज तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं, पलाशगोंद गरम और खुश्क होता है। अहितकर–अधः अंगों को। निवारण–कतीरा, अर्कगुलाब और चन्दन। प्रतिनिधि–बबूल का गोंद। पुष्प–उष्णता लिये शीत एवं खुश्क हैं। अहितकर–शीतप्रकृति के लिए। निवारण–नमक। छाल एवं पत्र शीत एवं रूक्ष होते हैं। अहितकर–आंत्र के लिए। निवारण–अर्क गुलाब और बाबूना। पलाशबीज एक उत्तम आंत्रकृमिहर औषधि है, विशेषतः इसकी क्रिया केंचुए (*Round-worm*) पर होती है। इसका गोंद शुक्रमेह आदि में प्रयुक्त माजूनों एवं चूर्णों में पड़ता है।

मुख्य योग। पलाशबीजादिचूर्ण, पलाशक्षारघृत।

विशेष–सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) रोध्रादि, मुष्ककादि, अम्बष्ठादि एवं न्यग्रोधादिगण के द्रव्यों में पलाश भी है।

पाठा (पाढ़ी)

नाम। सं०–पाठा, अम्बष्ठा, अम्बष्ठकी, वनतिक्ता, वरतिक्ता, अविद्धकर्णी, कुचेला, पापचेलिका। हिं०–पाढ़, पाढ़ी, पाढ़ी, हरजोड़ी (देहरादून, गढ़वाल)। को०–पीटूसिंह, रानू-रेड। बं०–आकनादि। म०–पहाडवेल, वेलपाडली नाडावल। गु०–कालीपाठ, करढियुं। ले०–सीस्साम्पेलॉस पारेईरा (**Cissampelos pareira** *Linn.* ?)।

वानस्पतिक-कुल। गुडूची-कुल (मेनिस्पेर्मासे : *Menispermaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष तथा लंका के उष्ण एवं समशीतोष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों में 'पाठा' की स्वयंजात पतली लताएँ होती हैं, जो खुली हुई पथरीली जगहों में प्रायः छोटे वृक्षों तथा झाड़ियों पर फैली हुई मिलती हैं। 'पाठामूल' एवं 'शुष्क पंचाङ्ग' सर्वत्र बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–पाठा की आरोही लताएँ होती हैं, जिनका मूलस्तम्भ (*Root-stock*) तो बहुवर्षायुस्वरूप का होता है, किन्तु वायव्य भाग प्रतिवर्ष फूलने-फलने के बाद सूखजाता तथा बरसात में नये काण्ड निकलते हैं, जो पतले तथा मृदु श्वेताभ रोमों से आवृत होते हैं। पत्तियाँ ३.७५ सें० मी० से १० सें० मी० या १½ इंच से ४ इञ्च तक लम्बी, २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इंच से १½ इंच चौड़ी, रूपरेखा में चौड़ी लट्वाकार एवं कुछ-कुछ त्रिकोणाकार, वृत्ताकार या कभी-कभी वृत्ताकार-वृक्काकार होती हैं, जो अग्रपर कुण्ठित एवं तीक्ष्णलोमयुक्त (*mucronate*) होती हैं। उक्त पत्तियाँ पहले तो दोनों पृष्ठों पर मृदुरोमश, किन्तु बाद में चिकनी दिखाई पड़ती हैं। पर्णवृन्त ३.७५ सें० मी० से १० सें० मी० या १½ इञ्च से ४ इंच तक लम्बे तथा पत्तियों से पृष्ठ पर जुड़े (*peltate*) होते हैं। आधार की ओर पत्र-फलक हृदयाकार अथवा मुण्डित या छिन्नाभ (*truncate*) होता है। पुष्प एकलिंगी तथा छोटे-छोटे और पीताभ-श्वेतवर्ण के होते हैं। नरपुष्प पत्रकोणोद्भूत सशाख एवं गुच्छीभूत मंजरियों में निकलते हैं, अथवा कभी यह मंजरियाँ कोमल शाखाग्रों पर भी होती हैं। नारीपुष्पों के गुच्छे कोणपुष्पकों या निपत्रों (*bracts*) के कोणों से निकलते हैं। नरपुष्पों में पुटपत्र संख्या में ४ तथा रूपरेखा में अभिलट्वाकार-आयताकार तथा बाह्यतल पर मृदुरोमावृत होते हैं। दलपत्र (*petals*) भी संख्या में चार, किन्तु परस्पर जुटे होते हैं, जिससे यह प्याले (*cup*) के आकार के मालूम होते हैं। पुंकेसर भी संख्या में ४ होते हैं जो परस्पर जटे होते हैं। स्त्रीपुष्पों में पुटपत्र, दलपत्र एवं डिम्बाशय प्रत्येक १-१ तथा कुक्षिवृन्त अग्रपर ३ खण्डों में विभक्त (*3-fid*) होते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) मटर के सदृश, व्यास में लगभग ०.५ सें० मी० या ¼ इञ्च तथा पकने पर लालरंग के हो जाते हैं। गुठली (*endocarp*) पर अनुप्रस्थ दिशा में रेखाएँ होती हैं। वर्षा-ऋतु में पुष्पागम तथा जाड़ों में फलागम होता है। 'पाठामूल' का व्यवहार औषधि में होता है। बिहार के आदिवासी अपने चावली-रानू (*Rice-Beer*) नामक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पेय बनाने में किण्वीकरण के लिए अन्य वानस्पतिक मूलों के साथ-साथ 'पाठामूल' का भी व्यवहार करते हैं।

उपयोगी अङ्ग—मूल।

मात्रा। चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—पाठा की जड़ व्यास में १.२५ सें०मी० या आधा इञ्चतक और बाह्यतल हल्के भूरेरंग का तथा इस पर लम्बाई के रुख (अनुलम्ब दिशा में) अनेक हलखात (*longitudinal furrows*) होते हैं। अनुप्रस्थ (बेड़े) दिशा में जड़ जगह-जगह सिकुड़ी-सी (*transverse constrictions*) या कभी-कभी जड़ बहुत टेढ़ी-मेढ़ी तथा ग्रंथिल (*crooked and knotty*) होती है। कंकरीली जमीन में उगी हुई लताओं की जड़ों में प्रायः इस प्रकार की सम्भावना अधिक रहती है। तोड़ने पर पाठा की जड़ मुलेठी की भाँति रेशेदार टूटती (*fraciure fibrous*) है। मूलत्वक् कार्कयुक्त तथा जड़ की मोटाई को देखते हुए काफी मोटी होती है। काष्ठीयभाग पीताभवर्ण का होता है, जो गुडूचीकाण्ड की भाँति १०-१५ बंडलों (*wedge-shaped bundles*) में विभक्त-सा मालूम होता है। पाठा की 'ताजीजड़' में तो प्रायः कोई गंध नहीं होती, किन्तु 'सूखीजड़ों' में एक अत्यंत धीमी सुगंधि पायी जाती है, और स्वाद में यह अत्यंत तिक्त होती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—सूक्ष्मरचना में पाठा की जड़, इस कुल की अन्य अनेक वनस्पतियों के काण्ड एवं मूल से मिलती-जुलती है। अतएव केवल सूक्ष्मरचना के आधार पर इसका निर्णय कभी-कभी कठिन हो जाता है। पाठा के साथ-साथ इसी कुल की स्टेफानिआ प्रजाति की लताएँ भी पायी जाती हैं, जो आपाततः देखने में पाठा-जैसी मालूम होती है। अतएव भ्रमवश संग्रहकर्ता इसका भी संग्रह करलेते हैं। इनमें स्टेफानिआ ग्लाब्रा **Stephania glabra** (*Roxb.*) *Miers.* (पर्याय—*Stephania rotunda Hook. f. and Thomas*) विशेष महत्त्वकी है। कहीं-कहीं इसे पाठा का ही नाम (पाढी) दे दिया जाता है। किन्तु इसमें मूल कन्दवत्, पत्तियाँ हमेशा चिकनी तथा अपेक्षाकृत बड़ी और पुष्पमञ्जरी सचूड़ एवं छत्रक-सम (*compound pedunculate umbels*) होती है। सीक्लेआ (**Cyclea**) प्रजाति की भी लताएँ पाठा से कुछ-कुछ मिलती-जुलती हैं। ट्रावन्कोर-कोचीन में सीक्लेआ पेल्टाटा **Cyclea peltata** *Diels* की जड़ काही ग्रहण 'पाठामूल' के नाम से कियाजाता है। चरक आदि आयुर्वेदीय संहिताओं में पाठा के दो भेदों का उल्लेख मिलता है:—(१) पाठा (पाढ़ी या छोटी पाठा) तथा (२) राजपाठा (पाढ़ा या बड़ी पाठा)। छोटी पाठा, पाढ़ी या मात्र पाठा से उपर्युक्त ओषधि का ग्रहण होना चाहिए। राजपाठा के नाम से स्टिफानिआ हेर्नान्डीफोलिआ **Stephania hernandifolia** (*Willd.*) *Walp.* नामक लता की जड़ का ग्रहण किया जा सकता है। इसकी लताएँ आपाततः देखने में पाठाजैसी मालूम होती है। यह बिहार, बंगाल, आसाम, सिक्कम तथा हिमालय की तराई में भी कहीं-कहीं (देहरादून आदि) और दक्षिणभारत में पूर्वीय एवं पश्चिमी समुद्रतटीय प्रदेशों में पायी जाती है। राजपाठा की पत्तियाँ अपेक्षाकृत बड़ी होती है और दोनों की पुष्पमञ्जरियों में बहुत अन्तर होता है, जिससे एक दूसरे को पहचाना जा सकता है। पाठा में पुटपत्र संख्या में ४ (पुं-पुष्प) या १-२ (स्त्री-पुष्प) होते हैं, किन्तु राजपाठा में यह ६-१० तक पाये जाते हैं। इसीप्रकार दलपत्रों की संख्या में भी अन्तर होता है, जो राजपाठा में ३-५ तक, किन्तु पाठा में परस्पर संसक्त होने से एक ही होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—'पाठामूल' का संग्रह जाड़ों में फूल-फल आजानेपर करना चाहिए, और मिट्टी आदि को जल से धोकर जड़ों को छायाशुष्ककर मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—पाठा की जड़ में बर्बेरीन (*Berberine* ०.५%), सिरसैम्पेलीन (*Cissampeline*), एवं सेपीरीन (*Sepeerine*) आदि ऐल्केलाइड्स तथा कुछ सैपनिन एवं क्षार भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषशामक विशेषतः कफवातशामक, कुष्ठघ्न, व्रणरोपण, दीपन-पाचन, ग्राही, अनुलोमन, कटुपौष्टिक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, शोथहर, कफघ्न, स्तन्य-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शोधम, मूत्रल, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, विषघ्न आदि। इसका निस्सरण मूत्रमार्ग से होता है। ज्वरातिसार, प्रवाहिका, अग्निमांद्य, ज्वरोत्तरकालिक दौर्बल्य, श्वास-कास आदि में यह विशेष रूपेण उपयोगी है।

मुख्य योग—गंगाधरचूर्ण, कुटजाष्टकक्वाथ।

वक्तव्य—'पाठा' का उल्लेख अथर्ववेद (२.२७.४) तथा तत्पश्चात् कौटिलीय-अर्थशास्त्र (सुराप्रसादन के प्रसंग में) एवं चरकसंहिता और तदनुवर्ती साहित्य में बराबर मिलता है। चरकसंहिता में भी पाठा का उल्लेख दो सर्वथाभिन्न प्रसंगों में मिलता है। 'पाठा' एवं 'कुचेला' चरकोक्त 'शाकवर्ग' (सू० अ० २७) में और शेष सभी उल्लेख औषधीय प्रसंगों में हैं। चरकसंहिता में उल्लेख बारम्बारिता भी सभी संहिताओं की अपेक्षा अत्यधिक है, जिससे लक्षित होता है, कि उत्तर-पश्चिम प्राचीन भारतीय सीमाक्षेत्र में यह वनौषधि सुविज्ञात एवं व्यवहारप्रचलित थी। आयुर्वेदीय ग्रंथों एवं परम्परा में पाठाद्वय (पाठे द्वे—पाठा/राजपाठा) का भी उल्लेख मिलता है। यद्यपि आधुनिक सभी लेखक एवं ग्रन्थ 'पाठा' का वानस्पतिक विनिश्चय 'Cissampelos' प्रजाति तथा 'राजपाठा' का 'Cyclea' एवं 'Stephania' प्रजातियों से करते हैं, किन्तु यह विनिश्चय चरकोक्त शाकवर्गीयपाठा/कुचेला तथा उनके पूर्ववर्ती अनुबन्ध में अर्थशास्त्रोक्त एवं अथर्ववेदोक्त पाठा के संदर्भ में युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। अतः उक्त संदर्भों की पाठा परवर्ती 'औषधीय पाठा' से सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है। इस विषय पर डा० बी० एन० सिंह ने '*Indian Source-Plants of Ancient Mallow-Cloth*' शीर्षक, रायल एशियाटिक सोसायटी बाम्बे के जर्नल के '*Indian Textiles*' पर प्रकाशित विशिष्ट संस्करण में अपने आमंत्रित लेखमें विस्तार से विवेचन एवं 'पाठा' के वानस्पतिक विनिश्चय का सफल प्रयास किया है। पाठकगण उक्त लेख का अवलोकन करें। (लेखक)

पाढ़ल (पाटला)

नाम। सं०—पाटला। हिं०—पाढ़ल, अघकपारी। बं०—पारुल। म०, गु०—पाडल। पं०—पाडल। था०—परार। संथा०—पाड़ेर, पाड़र। उरि०—बोरो पाटुली। को०—हूमी। मल०—पाति(दि)रि। ले०—स्टेरोस्पेर्मुम सूआवेओलेन्स (**Sterospermum suaveolens** *DC.*)।

वानस्पतिक-कुल। श्योनाक-कुल (बिग्नोनिआसे : *Bignoniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (विशेषतः उत्तरीभारत बंगाल बिहार, हिमालय की तराई) में इसके लगाये हुए तथा जंगली वृक्ष मिलते हैं। हिमालय की तराई में शाल के जंगलों में पाटला के भी (समूहबद्ध) वृक्ष मिलते हैं। मूलत्वक् पंसारियों के यहाँ मिलती है।

संक्षिप्त परिचय—पाटला के बहुत बड़े या मध्यम ऊँचाई (९.१४ मीटर से १८.२८ मीटर या ३० फुट से ६० फुट ऊँचे) के पतझड़ करनेवाले सुन्दर वृक्ष होते हैं, जिनके नवीन भाग चिपचिपे-रोमश और ग्रंथिमय होते हैं। पत्तियाँ ३० सें० मी० से ६० सें० मी० या १ फीट से २ फीट लम्बी, विपरीतक्रम से स्थित, अयुग्मपक्षाकार या विषमपक्षवत् (*imparipinnate*) होती हैं। पत्रक (*leaflets*) संख्या में ५-९ (सामान्यतः ७), ७.५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० × ५ सें० मी० से ८.२५ सें० मी० (३ इञ्च से ७ इंच × २ इञ्च से ३½ इंच), रूपरेखा में चौड़े अंडाकार या आयताकार, एकायक लम्बाग्र, अवृन्त या छोटे वृन्तवाले, चर्मिल, कर्कश (*scabrous*) या मृदुरोमश तथा कोमल एवं नये पत्रकों कातट तीक्ष्णतन्तुर किन्तु पुराने पत्रक अखण्ड या सरलधारवाले होते हैं। पुष्प अत्यंत सुगन्धित, बाहर से लाल किन्तु भीतर पीली रेखाओं से युक्त होते हैं, जो त्रिधाविभक्त, चिपचिपी एवं शाखाग्रय पुष्पगुच्छवत् मंजरियों (*viscid tri-chotomous panicles*) में, बाह्यदलपुंज या कैलिक्स (*calyx*) छोटा (१.२५ सें० मी० से १.६ सें० मी० या ½ इंच से ⅝ इञ्च), घंटिकाकार तथा अग्र पर ३-५ खण्डयुक्त होता है। दलपुंज या कॉरोला २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १½ इञ्च लम्बा, अत्यंत मृदु, तथा द्वि-ओष्ठीय-सा, पुंकेशर ४, जिनमें दो छोटे और दो बड़े (विषमयुग्म *didynamous*) होते हैं। कभी पाँचवाँ अप्रगल्भ पुंकेशर भी पाया जाता है। फली (*capsule*) ३७.५ सें० मी० से ६० सें० मी० या १¼ फुट से २ फुट तक लम्बी, टेढ़ी या ऐंठी हुई-सी, बेलनाकार और व्यास में १.५ सें० मी० (⅝ इञ्च

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से ½ इञ्च), चार अस्पष्ट धाराओं से युक्त होती है, जिसका पृष्ठ गाढ़े खाकस्तरी रंग का तथा श्वेत बिन्दुओं (*white specks*) से युक्त होता है। बीज प्रत्येक फली में प्रायः १२-३० होते हैं, जो ३.७५ सें० मी० × ०.८३ सें० मी० (१½ इञ्च × ⅓ इञ्च) तथा सपक्ष होते हैं। पुष्प ग्रीष्म-ऋतु (मई-जून) में नई पत्तियों के साथ लगते हैं, तथा फलियाँ जाड़ों में लगती हैं, जो बहुत दिनों तक पेड़ों में लगी रहती हैं। पाटला के वृक्षों में पुष्प एवं फल वृक्ष के काफी पुराना होने पर लगते हैं।

उपयोगी अंग। मूलत्वक्, पुष्प, क्षार, फलमज्जा।

मात्रा। मूलत्वक्चूर्ण–१¾ ग्राम से २½ ग्राम या १० रत्ती से २० रत्ती।

पुष्पस्वरस–१ तोला से २ तोला।

क्षार–½ ग्राम से १½ ग्राम या ४ रत्ती से १½ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–पाटला की छाल बाह्यतः खाकस्तरीरंग की तथा स्पर्श में कर्कश होती है। काटने पर यह हल्के पीलेरंग की होती है, और उसमें कड़े और मुलायम पर्त बारी-बारी से निकलते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। दक्षिणभारत (विशेषतः मलाबार, कोंकण आदि) में पाटला का दूसरा भेद पाया जाता है। वहाँ पाटला या पाडरीनाम से इसी की छाल का ग्रहण किया जाता है। इसे स्टेरेओस्पेर्मुम केलोनोइडेस **S. chelonoides** *DC.* (पर्याय–*S. tetragonum DC.*) कहते हैं। अन्यत्र भी इसके वृक्ष मिलते हैं, किन्तु अपेक्षाकृत कम। यह प्रायः नमभूमि में होता है। पत्तियाँ ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० या १२ इञ्च से १८ इञ्च लम्बी, अयुग्म पक्षवत् तथा छोटी-छोटी टहनियों के अग्रपर समूहबद्ध होती हैं। पत्रक संख्या में ७-११, चिकने, अंडाकार तथा ८.७५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ३½ इञ्च से ५ इञ्च लम्बे, तथा पुष्प पीले या गुलाबीरंग के (पीतपुष्पपाटला या निघण्टुओं की सितपाटला) होते हैं। फल ३० सें० मी० से ५० सें० मी० या १२ इञ्च से २० इञ्च लम्बा, घेरे में गोल न होकर सपक्ष या चार उभरीहुई रेखाओं से युक्त होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–पाढ़ल की छाल को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–इसके पुष्पों में ऐल्ब्युमिन, शर्करा, म्युसिलेज तथा मोमीय पदार्थ होता है।

वीर्यकालावधि। छाल–३ से ६ महीना।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण (किंचित्)। (पुष्प एवं फल) कषाय-मधुररस एवं शीतवीर्य हैं। कर्म–त्रिदोषशामक, वेदनास्थापन व्रणरोपण, रुचिवर्धक, तृष्णाशामक, ग्राही, यकृदुत्तेजक, शोथहर, मूत्रल, अश्मरीनाशन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन। (पुष्प) हृद्य, पौष्टिक एवं वाजीकरण हैं।

मुख्ययोग–बृहत्पंचमूल, पाटलीतैल।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) शोथहर महाकषाय एवं सुश्रुतोक्त आरग्वधादि, महत्पंचमूल एवं अधोभागहर (सू० अ० ३८, ३९) गण के द्रव्यों में 'पाटला' भी है।

पातालगरुड़ी (छिलहिण्ट)

नाम। सं०–पातालगरुडी, छिलहिण्ट, महामूल। हिं०–पातालगरुड़ी, छिरेटा, छिलहिन्ड, जलजमनी, फरीदबूटी ? मल०–पाणलवेरु। ले०–कॉक्कूलुस हीर्सुटुस **Cocculus hirsutus**(*Linn.*) *Diels.* (पर्याय–*C. villosus DC.*)।

वानस्पतिक-कुल। गुडूची-कुल (मेनिस्पेर्मासे *Menispemaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष के उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रदेशों में 'जलजमनी' की इतस्ततः झाड़ियों पर फैली हुई या आश्रय न मिलने पर भूमिपर प्रसरी लताएँ मिलती हैं। किन्तु बाजारों में विक्रयार्थ प्रायः इसका संग्रह नहीं किया जाता। जलजमनी की 'पत्तियों' एवं 'मूल' का उपयोग चिकित्सार्थ किया जाता है।

संक्षिप्त-परिचय। पातालगरुड़ी की लता होती है, जिसके काण्ड पतले एवं मुलायम होते हैं। कभी-कभी यह आरोही गुल्मक के रूप में भी प्राप्त होती है। पत्तियाँ मृदु, श्वेताभ-रोमावरण से ढकी हुई तथा एक ही लता में नीचे से ऊपरतक अनेक आकार-प्रकार की होती हैं। नीचे की पत्तियाँ प्रायः लट्वाकार-आयताकार, ७.५ सें० मी० या ३ इञ्च तक लम्बी तथा ५ सें० मी० या २ इञ्च तक चौड़ी और ऊपर की ओर क्रमशः छोटी और आयताकार होती हैं। शीर्षपर प्रायः यह लोमयुक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*mucronate*) होती हैं। पर्णवृन्त १.२५ सें० मी० या ½ इञ्चतक लम्बा होता है। पुष्प छोटे, हरिताभवर्ण के तथा एकलिंग होते हैं। नरपुष्प प्रायः पत्रकोणोद्भूत मंजरियों में निकलते हैं, किन्तु स्त्रीपुष्प पत्रकोणों में छोटे वृन्तों पर और प्रायः एक साथ १-३ निकले होते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) व्यास में ०.५ सें० मी० या ⅕ इंच और कच्चे में हरे तथा पकने पर काले बैंगनी-रंग के हो जाते हैं।

उपयोगी अंग—पत्र एवं मूल।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—हरी एवं ताजी पत्तियों को जल में मसलने से पानी जमजाता है। मूल—पातालगरुड़ी की जड़ काफी लम्बी तथा टेढ़ी-मेढ़ी और ऐंठी हुई होती है, जिससे कुछ पतले सूत्राकार उपमूल निकले होते हैं। बाह्यतः यह हल्के भूरेरंग की होती है, तथा अनुप्रस्थ विच्छेद (*T. S.*) करने पर कटा हुआ तल हल्के पीले रंग का होता है, जिसपर अरवत् मटमैले पीलेरंग की रेखाएं (*radiating darker yellow lines*) दिखाई देती हैं। इसमें एक हल्की अप्रियगंध होती है, तथा स्वाद भी अरुचिकारक एवं तिक्त होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—सर्वत्र सुलभ होने से पत्तियां एवं मूल दोनों ही ताजे प्राप्त किये जासकते हैं। रखने के लिए मूल को जाड़ों में संग्रहकर मुखबंदपात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

संगठन—एक अम्ल एवं दूसरा ऐल्केलाइड या क्षारोद स्वभाव के दो तत्त्व तथा राल आदि घटक होते हैं।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—विषघ्न। कर्म—पाचन, अनुलोमन, बल्य, वृष्य, ज्वरघ्न, रक्तशोधक, कफघ्न, मूत्रल एवं मूत्रमार्ग का स्नेहन करनेवाला एवं विषघ्न आदि। बाह्यतः स्थानिकप्रयोग से इसका लेप विषघ्न, शामक एवं त्वग्दोषहर है।

मुख्ययोग—पाणलवेरादिकषाय (सहस्रयोग)।

वक्तव्य—'पातालगरुड़ी' का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में तो नहीं है, किन्तु शार्ङ्गधरसंहिता में लोहमारण के प्रसंग (मध्यमखण्ड अ० ११/४४) में है। उसी क्षेत्र के मदनपालनिघण्टु (अभयादिवर्ग १) में भी छिल्लहिण्टः (पातालगरुड़ः) है। प्रसिद्ध मलयालम भेषजग्रंथ 'सहस्र-योग' के 'पाणलवेरादिकषाय में 'पाणलवेरु' से पातालगरुडी ही अभिप्रेत है। पातालगरुडी की जड़ें बहुत लम्बी (३ मीटर से ६ मीटर) होती हैं, जो बहुत गहराईतक चलीजाती हैं। इसके बीज २० वर्ष से २५ वर्ष तक भी जमीन में पड़े रहनेपर उगने की क्षमता रखते हैं। इसकी पत्तियों को जल में मसलने से पानी जमजाता है। इसीलिये व्यवहार में 'जलजमनी' नाम से जानते हैं। यूनानीचिकित्सा में 'फरीदबूटी' एक सामान्य संज्ञा है, जो इसप्रकार जलको जमाने वाली अनेक औषधियों के लिए व्यवहृत है। इसे वल्य एवं शुक्रतारल्यनाशक मानते हैं। (लेखक)

पान (ताम्बूल)

नाम। सं०—ताम्बूल, नागवल्लरी, ताम्बूलवल्ली, नागवल्ली। हिं०, बं०, द०—पान। म०—नागवेल, पानवेल, नागर-बेल। गु०—नागरवेलनापान, पान। फा०—तंबूल। अ०—तंबूल, तांबूल। अं०—बीटेल या पेपर-लीफ (*Betel or Pepper-Leaf*)। ले०—पीपेर बेटेल (**Piper betle** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। पिप्पल्यादि-कुल (पीपेरासे *Piperaceae*)।

प्राप्तिस्थान—'ताम्बूल' या 'पान' भारतवर्ष का ही आदिवासी पौधा है, और उष्ण एवं नम प्रदेशों में प्रचुरता से इसकी खेती की जाती है। लंका एवं मलाया द्वीप-पुंज में भी पान बोया जाता है। भारतवर्ष में पान बहुत खाया जाता है, और सर्वत्र इसकी दुकानें मिलती हैं। पान भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध व्यावसायिक द्रव्य है।

संक्षिप्त परिचय—यह एक बहुवर्षायु लता है। इसके पत्ते खायेजाते और औषध के काम में लिये जाते हैं। स्वरूप एवं स्वादके न्यूनाधिक भेदसे हिन्दुस्तान में इसके अनेक भेद होते हैं। पान की खेती के लिए बड़ी कुशलता एवं दक्षता की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए उपयुक्त भूमि में भीटे बना दियेजाते हैं, और मवेशियों से बचाने के लिए झाड़ियों से घेरा बना दिया जाता है। फिर इसपर धूप एवं झकर या आंधी वगैरह से बचाने के लिए छायादार झोपड़ियां बना दी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाती है। अन्दर इसके पौधे रोपे जाते हैं, और बेल को चढ़ने के लिए स्थान-स्थान पर एरण्ड, पपीता, जयन्ती तथा अगस्त आदि के वृक्ष लगा दिये जाते हैं। प्रायः १८ माह से २ वर्ष बाद फसल मिलने लगती है, और कईवर्षों तक भीटे (*Betle gardens*) ज्योंके त्यों रखे जाते हैं। यह आगन्तुक जड़ों (*adventitious rootlets*) द्वारा सहारे के वृक्ष पर ऊँचाई तक चढ़ जाता है। पर्वों पर काण्ड अधिक मोटा या फूला होता है। कोमलकाण्ड चिकने होते हैं। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० या ३ इञ्च से ८ इञ्च लम्बी, चौड़ी-लट्वाकार तथा किंचित् हृदयाकार तथा अग्रपर नुकीली होती हैं। पुष्प एकलिंगी तथा रम्भाकार अवृन्तकाण्डज सघन मञ्जरियों (*cylindrical dense spikes*) में निकले होते हैं, जो २.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या १ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी, मांसल एवं अधोमुख लटकी रहती (*pendulus*) है। फलागम अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। फल छोटे-छोटे होते हैं, जो मञ्जरीपर छोटे-छोटे ग्रन्थि से (*nodosities*) मालूम होते हैं। वसन्त और ग्रीष्म में पुष्प-फल आते हैं।

उपयोगी अङ्ग—पत्र (पान)।

मात्रा। स्वरस—३ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। पान का पत्ता लगभग ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० या ३ इञ्च से ८ इञ्च लम्बा तथा ५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या २ इञ्च से ५ इञ्च तक चौड़ा, रूपरेखा में चौड़ा-भालाकार (*broadly ovate*) तथा आधार की ओर तिरछे हृदयाकार (*obliquely cordate*) होता है। अग्र सहसा नुकीला (*acute*) या लम्बा-नुकीला (*acuminate*) होता है। ऊर्ध्वपृष्ठ चमकदार होता है, और इसपर ५ से ७ नाड़ियाँ होती हैं। पत्र वयन(*texture*) में चर्मिल (*coriaceous*) होता है। इसमें कभी-कभी डंठल लगा होता है, जो १.१२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इञ्च से १ इञ्च लम्बा होता है। पान के पत्तों में एक सुगन्धि पायी जाती है, तथा मुँह में चाबने पर स्वाद में तीक्ष्णता लिये तिक्त एवं उष्ण और सुगन्धित होता है। स्थान भेद से अनेक व्यावसायिक नामों से पान मिलता है, यथा—बंगला, देसावरी, कपूरी, मूंगिया, महोबा, मालवी (मालवा का), मदरासी, माघी, अहमदाबादी, बनारसी आदि। खाने के लिए बनारसी माघी, महोबा एवं बंगला पान अधिक पसन्द किया जाता है। औषधीय कार्य के लिए सभी ग्राह्य हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पान के पत्ते सर्वत्र १२ महीने सुलभ होते हैं।

संगठन—पत्ते में (०.२% से २%) एक उड़नशीलतैल पायाजाता है, जो पीलेरंग का, सुगन्धित, तीक्ष्ण दाहकस्वादयुक्त एवं उष्ण होता है। कोमल पत्तों में यह विशेष रूप से पाया जाता है। तेल में बीट्ल-फिनोल (*Betlephenole*) और टर्पिन होता है। स्थान भेद से उक्त घटक की मात्रा में न्यूनाधिक्य भी देखा जाता है। पान की पत्तियों में काफी मात्रा में श्वेत-सारपाचक किण्व (*Diastase*) पायाजाता है।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण, विशत। रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—वात-कफशामक किन्तु पित्तप्रकोपक, जीवाणुनाशक, शोथहर, वेदनास्थापन, उत्तेजक, पूतिहर, मुखवैशद्यकारक, दीपन-पाचन, अनुलोमन; हृदयोत्तेजक, शीतप्रशमन, ज्वरघ्न, कफनिस्सारक, वाजीकरण, एवं कटुपौष्टिक आदि। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं। अहितकर—उष्ण प्रकृतिवालों के लिए विशेषतः निहार मुंह। तीक्ष्ण, उष्ण एवं पित्तप्रकोपक होने के कारण रक्तपित्त, उरःक्षत एवं मूर्च्छा आदि पैत्तिक विकारों में इसका प्रयोग निषिद्ध है। निवारण—सफेद इलायची। प्रतिनिधि—लौंग।

मुख्य योग—अर्कताम्बूल। ताम्बूलपत्र—स्वरस का उपयोग चिकित्सा में बहुशः अनुपान के रूप में किया जाता है।

विशेष—भ्रमवश लोग पान की जड़ को 'कुलंजन' कह दिया करते हैं, किन्तु कुलंजन एक पृथक् द्रव्य है। 'कुलंजन' का विवेचन उक्त शीर्षक में पृथक् किया गया है।

पानडी

नाम। हिं०—पनडी, पानडी, जभी, पपंटी।

प्राप्तिस्थान—जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर। सर्वत्र बड़े पंसारियों के यहाँ इसके शुष्कपत्र बिकते हैं।

परिचय एवं उपयोग—यह एक प्रकारकी सुगन्धित पत्ती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती है। मीठे पेयपदार्थों तथा तेल एवं उबटन आदि में, उन्हें सुगन्धित करने के लिए इसे डालते हैं। यह रक्तशोधक एवं मनःप्रसादकर होती है। इसका काढ़ा बना कर पिलाते हैं। यह जुवारिश और माजून के के योगों में भी पड़ती है, तथा इसका इत्र एवं अर्क भी खींचते हैं। जोधपुर में सुगन्धि केलिए इसे नस्य में डालते हैं। कपड़ों में भी रखते है।

मात्रा। ३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

पारिभद्र (फरहद)

नाम। सं०—पारिभद्र, कंटकीपलाश। हिं०—फरहद। बं०—पाल्ते मदार। संथा—मरार। खर०—फरार। म०—पांगरा। गु०—पांडेखो, पनरवो। अं०—कोरल-ट्री (*Coral-Ttree*)। ले०—एरीथ्रीना वारिएगाटा प्र० ओरिएन्टालिस **Erythrina variegata** *L. var.* **orientals** *L, Merr.* (*Syn, E. indica Lamk.*)

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (पैपीलिओनासे *Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ती स्थान, बंगाल, बिहार, आदि। तथा अन्यत्र भी कहीं-कहीं 'जगली' तथा 'लगाये हुए' इसके वृक्ष सर्वत्र मिलते हैं। पारिभद्र भारत के समुद्रतटवर्ती क्षेत्र का अधिवासी हो गया है।

संक्षिप्तपरिचय—फरहद के (४,५७ मीटर से १२.१८ मीटर या १५ फुट से ४० फुट—कहीं-कहीं १८.२८ मीटर या ६० फुट ऊँचे तक) सुन्दर, कण्टकित वृक्ष होते हैं। कण्टकित होनेसे बगीचों एवं खेतों की मेड़पर तथा सौन्दर्य के लिए बगीचों में लगाया मिलता है। पत्तियाँ पलाश-जैसी त्रिपत्रक (जिनमें सिरेवाला पत्रक अपेक्षाकृत बड़ा) होता है। पत्रक ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इंच से ६ इंच बड़े और चौड़े तथा रूपरेखा में कुछ त्रिकोणाकार (*deltoid*) होते हैं। जाड़े के अन्त तक सब पत्तियाँ झड़जाती हैं, और वसन्त-ऋतु में सुग्गे की टोंट-जैसे सुन्दर रक्तवर्ण के पुष्प निकलते हैं। नयी पत्तियाँ पुष्पागम के बाद निकलती हैं, और गर्मियों में यह एक उत्तम छायावृक्ष होता है। मञ्जरी लगभग १५ सें० मी० या ६ इंच लम्बी और पुष्पदण्ड १० सें० मा० या ४ इंच लम्बा होता है। फूलों का बाह्यकोश एकओर मूलतक फट जाता है, और अग्रपर पांच दांत बनजाते हैं। फलियाँ प्रारम्भ में हरी किन्तु पकने पर काली हो जाती हैं। यह १५ सें० मी० से ३० सें० मी० या ६ इञ्च से १२ इञ्च तक लम्बी, चोंचदार तथा किंचित् टेढ़ी होती हैं, जिनमें ६ से १२ तक लाल, भूरे या जामुनीरंग के अंडाकार बीज होते हैं।

उपयोगी अंग। छाल (काण्डत्वक्) एवं पत्र।

मात्रा। छाल—३ ग्राम से २३.५ ग्राम या ३ माशा से २ तोला। पत्रस्वरस—६ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—फरहद की ताजी छाल प्रायः चिकनी तथा खाकस्तरीरंग की होती है, जिसपर समकोण दिशा में छोटे-छोटे दरारनुमा श्वसनरंध्र के चिह्न (*lenticels*) पायेजाते हैं। नख से खुरचने पर बाहरी पतला आवरण (*suber*) पृथक् होकर अन्दरका हरातल निकल आता है। छाल का बाहरीभाग दानेदार तथा भंगुर होता है। इसमें अरुचिकारक स्वाद तो होता है, किन्तु स्वाद में तिक्त नहीं होती।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—अभाव में फरहद की उक्त जाति के स्थान में इसकी कतिपय अन्य जातियों का भी ग्रहण किया जाता है, जिनमें एरीथ्रीना सुबेरोसा (**E. suberosa** *Roxb.*) मुख्य है। इसे उत्तरभारत में 'धवलढाक', 'मदार', 'पांगरा आदि कहते हैं। इसे हम उत्तर भारत का पारिभद्र कहसकते हैं।

विशेष—पारिभद्र 'निम्ब' से पृथक् द्रव्य है, अतएव सर्वत्र इसे नीम का पर्याय मानना ठीक नहीं है।

संग्रह एवं संरक्षण—पारिभद्र के काण्डत्वक् को छायाशुष्क कर मुखबदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—इसकी छाल में रालीयतत्त्व तथा एरिथ्रीन (*Erythrine*) नामक तिक्तसत्व पायाजाया है। पत्तियों में भी एरिथ्रीन होता है।

स्वभाव। गुण—लघु। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—कफवातशामक, शोथहर, व्रणशोधन, कर्णरोगहर, मस्तिष्कशामक, आक्षेपहर, निद्राजनन, दीपन-पाचन, अनुलोमन, शूलहर, रक्तप्रसादन, कफनिःसारक, मूत्रल, आर्तवजनन, वाजीकरण, मेदोनाशक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा ज्वरघ्न आदि। कुपीलु-विषाक्तता में यह अगद की तरह कार्यकरता है।

वक्तव्य—रोहितिक के प्रकरण में बताया जा चुका है, कि वास्तव में इसकी 'असली छाल' बाजारों में नहीं आती। अतः रोहितक या 'रोहेड़ाछाल' नाम से जो छाल बाजारों में मिलती है, वह अन्य वृक्षों की होती है। इनमें चित्रकूट आदि में 'रक्तरोहिणी की छाल' संग्रहीत की जाती तथा 'रोहितक की छाल' के नाम से पारित की जाती है। इसी प्रकार अन्य जाङ्गलक्षेत्रों में (२) फरहद की छाल भी रोहितक के नाम पर संग्रहीत एवं पारित की जाती है।

(२) आधुनिक शोधपरीक्षण में पारिभद्र के काण्डत्वक् (Stem-bark) में प्रबल कृमिघ्न (Anthelmintic) कर्म पाया गया है। एतदर्थ छाल का क्वाथ या उसका घनसत्व व्यवहार्य होता है, जो सुविधाजनक भी है। मेरे निर्देशन में सामूहिक कृमिघ्नयोग *'Compound K'* का योजना किया गया है, जो परम व्यवहारोपयोगी कृमिघ्नयोग सिद्ध हुआ है। इसमें 'पारिभद्र-घनसत्व' भी सम्मिलित किया गया है।

(लेखक)

पालकजूही (यूथिकपर्णी)

नाम। सं—यूथिकपर्णी। हिं०—पालकजूही, पालिकजुहिया, जूईपानी। बं०—जोईपाणी। द०—कबूतर का झाड़। म०—गजकर्णी। बम्ब—जुइपान। गु०—गजकरण। फा०—गुलबगला। ले०—रूहीनाकांथुस नासूटा **Rhinacanthus nasutas** (*L*) *Kurz.* (पर्याय—*R. communis Nees.*)।

वानस्पतिक-कुल। वासक-कुल (आकान्थासे : *Acanthaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दकनप्रायद्वीप तथा पश्चिमीघाट के जंगलों में यह स्वयंजात होती है। इसके अतिरिक्त प्रायः समस्त भारतवर्ष में इसके लगाये हुए पौधे मिलते हैं। इसके औषधीय अंग प्रायः बाजारों में नहीं बिकते।

संक्षिप्त-परिचय—इसके १.५ मीटर या ५ फीट तक ऊँचे झाड़ीनुमा क्षुप होते हैं, जिनके काण्ड सरल एवं अनेक शाखाओं से युक्त होते हैं। पुरानी शाखाएँ गोलाकार तथा खाकस्तरी छालयुक्त होती हैं। कोमल शाखाएँ कुछ-कुछ ६ पहल (*6-sided*) मालूम होती हैं। पत्र, ५ सें०मी० से १० सें०मी० या २ इञ्च से ४ इञ्च लम्बे, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च चौड़े, रूपरेखा में चौड़े, भालाकार किन्तु कुण्ठिताग्र, ऊर्ध्व तलपर चिकने तथा अधस्तल पर मृदुरोमश, सरलतट वाले एवं सवृन्त होते हैं, जो अभिमुखक्रम से स्थित होते हैं। पत्तियों को मसलने से एक दुर्गन्धि-सी आती है, तथा मुख में चबाने पर स्वाद में तीक्ष्ण (*pungent*) होती हैं। पुष्प छोटे तथा सफेद होते हैं, जो पत्रकोणों एवं शाखाग्रस्थित मञ्जरियों में निकलते हैं। पालकजूही के पत्र एवं मूल का व्यवहार अनेक त्वचारोगों में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

उपयोगी अंग—पत्र एवं मूल।

मात्रा। पत्रस्वरस—६ माशा से १ तोला।

मूल—½ ग्राम से २ ग्राम या ४ रत्ती से २ माशा।

संगठन—इसके मूल और छाल में रूहाइनाकैन्थिन (*Rhinacanthin*) नामक लालरंगका रालीय सक्रियतत्त्व पाया जाता है। इसमें बहुत-कुछ क्राइसोफेनिक एसिड एवं फ्रैंग्युलिक एसिड से साम्यता पायी जाती है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—चर्मरोगनाशक (विशेषतः दद्रुघ्न), रक्तशोधक, विषघ्न, बाजीकरण आदि।

मुख्य योग—जिमाददाद।

पाषाणभेद (पखानभेद)

नाम। सं०—पाषाणभेद, अश्मघ्न। (राजनिघण्टु) वटपत्री। हिं०—पखानभेद, सिलफड़ा, (पथरचूर)। म०, गु०—पषानभेद। ले०—बेर्जेनिआ लीगूलाटा **Bergenia ligulata** (*Wall.*) *Engl.* (पर्याय—साक्सीफ्राजा लिगूलाटा **Saxifraga ligulata** *Wall.*)।

वक्तव्य—"साक्सीफ्राजा *Saxifraga*" शब्द व्युत्पन्न है लेटिन "साक्सुम *Saxum = a stone* (पाषाण) तथा "फ्रान्जो *frango = to break* (भेदनकरना)" से। परम्परा से इसकी कुछ प्रजातियाँ अश्मरीघ्न (*lithontriptic*) क्रिया के लिए प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उक्त नाम इसकी प्रजातियों के पत्थरों के अन्तर्मध्य (*from their growing among rocks*) से उगने के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण भी रखे गये हैं। उपर्युक्त पाषाणभेद में उक्त दोनों ही विशेषताएं पायी जाती हैं।

वानस्पतिक-कुल। पाषाणभेद-कुल (साक्सीफ्रागासे : *Saxifragaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समशीतोष्ण हिमालयप्रदेश (*Temperate Himalayas*) में कश्मीर से भूटान (२१३३.६ मीटर से ३०४६ मीटर या ७,००० से १०,००० फुट की ऊँचाई) तक तथा खसिया की पहाड़ियों (१२०४.८ मीटर या ४००० फुट की ऊँचाई) पर इसके पौधे पर्वतों की ढालोंपर पत्थरों की दरारों में कसरत से निकले हुए मिलते हैं। इसके भौमिककाण्ड के गोल-गोल काटकर सुखाये हुए टुकड़े पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—इसके बहुवर्षायु छोटे-छोटे कोमल क्षुप होते हैं। चट्टानों के बीच के दरारों से इसका काण्ड बाहर निकला होता है। मूलस्तम्भ (*root-stock*) रक्ताभ (भीतर सफेद) और लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च मोटा होता है। इससे पतले उपमूल निकल कर पत्थरों के बीच फैले रहते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार या कुछ-कुछ गोल २.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या २ इञ्च से ६ इञ्च (३० सें० मी० या १२ इञ्च तक) लम्बी, काफी चौड़ी, मांसल एवं चिकनी या कभी-कभी मृदुरोमश तथा ऊपरी पृष्ठपर हरी और अधःपृष्ठ पर रक्ताभ, किनारे (तट) सूक्ष्म सघनदांतों से युक्त होते हैं। एक स्थान पर प्रायः ३ पत्तियों या ४ पत्तियों से अधिक नहीं निकलतीं। पुष्प सफेद, गुलाबी या हल्के जामुनीरंग के, व्यास में ३.१२५ सें० मी० या १½ इञ्च तथा बहुवर्ष्यक्ष, गुच्छवत् मञ्जरियों (*cymose panicle*) में निकलते हैं। पुष्पवाहकदण्ड प्रायः कोमल, नम्य या लचीला (*flexible*) तथा १० स० मी० से २५ सें० मी० या ४ इञ्च से १० इञ्चतक लम्बा होता है। औषधि में इसके मूलस्तम्भ या भौमिककाण्ड का व्यवहार होता है। बाजारों में इसके सुखाये हुए कतरे 'पाखानभेद' के नाम से मिलते हैं।

उपयोगी अंग—मूलस्तम्भ या राइजोम (भौमिककाण्ड)।

मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में 'पाषाणभेद' के काटकर सुखाये हुए टुकड़े मिलते हैं, जो २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बे तथा मोटाई में १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) व्यास के होते हैं। बाह्यतः यह भूरेरंग के तथा झुर्रीदार (*wrinkled*) होते हैं, तथा इतस्ततः इनपर टूटे हुए उपमूलों के चिन्ह पाये जाते हैं। अन्तर्वस्तु, सघन, कठिन तथा रक्ताभवर्ण का होता है। स्वाद में यह किंचित् कसैले होते हैं, तथा इनमें एक विशिष्टप्रकार की हल्की सुगन्धि पायी जाती है। सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षण करने पर अनेक क्रिस्टल-पुंज (*conglomerate crystals*) एवं अण्डाकार स्टार्चकण (*ovoid starch cells*) दिखाई पड़ते हैं। भस्म—१२.८७ प्रतिशत।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। 'पाषाणभेद' एक सन्दिग्ध द्रव्य है। इस नाम से स्थानभेद से अन्य अनेक औषधियों का ग्रहण होता है। किन्तु बाजारों में जो द्रव्य पाषाणभेद से मिलता है, वह उपर्युक्त औषधि के मूलस्तम्भ के काटे हुए शुष्कटुकड़े ही होते हैं। पाषाणभेद नाम से वस्तुतः इसी का ग्रहण होना चाहिए। वैसे प्रतिनिधि द्रव्यों में भी कतिपय में, अश्मरीघ्न एवं मूत्रल गुण होने के कारण अभावे उनका भी ग्रहण किया जासकता है। पाषाणभेद नाम से प्रयुक्त अन्य औषधियाँ :—

(१) पथरचूर। नाम। सं०—ऐरावती (राजनिघण्टु)। हिं०—पथरचूर, पर्णबीज। पं०—पाथरकुचि। ले०—कालांकोए पीन्नाटा **Kalanchoe pinnata** *Pers.* (पर्याय—ब्रीओफ़ाल्लुम कालीसिनुम *Bryophyllum calycinum Salisb.* (*Family* : *Crassulaceae*)। यह मूत्रल होता है और पाषाणभेद का प्रतिनिधित्व करसकता है।

(२) कोलेउस आंबोइनिकुस **Coleus amboinicus** *Benth.* (पर्याय—कोलेउस आरोमाटिकुस *Coleus aromaticus Benth.* (*Family* : *Labiatae*)। नाम। द०—अजवानका पत्ता। ता०—कर्पूरवल्ली। बम्बई—ओंवा, पाथरचूर। यह वाटिकाओं में लगायी जाती है, तथा राजस्थान में जंगली भी होती है।

(३) एर्वा लानाटा **Aerva lanata** *Juss.* (*Family*: *Amaranthaceae*)। नाम—गोरखगांजा। समस्त भारतवर्ष ३,००० फुट की ऊँचाई तक इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(४) ईरिस प्सेउडोआकोरस **Iris pseudo-acho-rus** (*Family : Irideae*)। यह केसरजातीय पौधा होता है। इसका भौमिक काण्ड 'पखानभेद लकड़ी' के नाम से मिलता है।

(५) ममरी या ऑसीमुम बासीलिकुम **Ocimum basilicum** *Linn.* (*Lablatae*)।

(६) फतरसोआ (ब्रीडेलिआ रेटूसा **Bridelia retusa** *Spreng.* (*Family : Euphorbiaceae*)।

(७) रोटूला आक्वाटिका **Rotula aquatica** *Lour.* (*Family : Boraginaceae*)। पर्याय–रूहाब्डिआ लीसीओइडेस (*Rhabdia lycioides Mart.*)।

संग्रह एवं संरक्षण–पाषाणभेद के टुकड़ों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–टैनिक एसिड, गैलिक एसिड १५½%, ग्लूकोज ५.६%म्युसिलेज २¾%, मोम (*wax*), स्टार्च १९%, खनिज लवण, मेटाबिन एवं ऐल्ब्युमिन ७¾% आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण। रस–कषाय, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रभाव–अश्मरीभेदन। प्रधान कर्म–त्रिदोषशामक, रक्तपित्तशामक, हृद्य, अश्मरीभेदन एवं मूत्रल, ज्वरघ्न, विषघ्न, कफनिस्सारक। मुख्य योग–पाषाणभेदादि क्वाथ, पाषाणभेदाद्यघृत। विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) मूत्रविरेचनीय महाकषाय एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) वीरतर्वादिगण के द्रव्यों में 'पाषाणभेद' भी है।

पिप्पली (पीपल)

नाम। सं०–पिप्पली, मागधी, वैदेही, कृष्णा, कणा, तीक्ष्ण-तण्डुला, ऊषणा, उपकुल्या, शौण्डी, कोला इत्यादि। हिं०–पीप(ल)र। द०–पिपली, पिपलियाँ। बं०–पिपुल। गु०–पीपर, लींडीपीपर। म०–पिंपली। सिंध–तिप्पिली। को०–राली-रेड, नजमरेड। संथा०–राली, रानू रैन। फा०–फ़िल्फ़िल्। अ०–दारफ़िल्फ़िल्। अं०–लांग पेपर (*Long Pepper*)। (जड़) सं०–पिप्पलीमूल। हिं०–पि(पी)पली(ला)मूल, पिपला(रा)मूल (र)। बं०–पिपुली-मूल। म०, गु०–पिपलीमूल। था०–पिपलामूल। अ०–फ़िल्फ़िल् मूयः, बेख दारफ़िल्फ़िल्। अं०–पेपर (पाइपर) रूट (*Pepper* (*Piper*) *Root*)। लताका नाम–पीपेर लोंगुम (**Piper longum** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। पिप्पल्यादि-कुल (पीपेरासे *Piperaeeae*)

प्राप्तिस्थान–उत्तर-पूर्वी और दक्षिण भारत, लंका, मलक्का एवं फिलिपाइन द्वीपसमूह में जंगली रूपसे भी पायी जाती है, तथा इसकी काफी परिमाण में खेती भी की जाती है। पिप्पली छायादार एवं नम जमीन में होती है। बिहार में चम्पारन, पूर्निया, सिंहभूमि, पलामू एवं संथाल परगना में यह जंगली होती है। असम में तथा देहरादून की निचली पहाड़ियों में यह पायी जाती है। पूर्वीबंगाल में फल के लिए इसकी खेती भी की जाती है। पिप्पली (फल) एवं पिप्पलीमूल पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। पिप्पली की गुल्मक (*undershrub*) स्वभाव की कोमलकाण्डीय बेल होती है, जिससे अनेक लम्बी-लम्बी आरोही (*ascending*) अथवा विसर्पी या भूशायी (*prostrate*) शाखायें निकलकर चारों ओर फैलती हैं, जो प्रायः मृदुरोमश होतीं तथा इसमें किंचित् गन्ध भी पायी जाती है। पीपल की लता के काण्ड रूपरेखा में बेलनाकार (*cylindrical*) तथा पर्वों (*nodes*) पर अपेक्षाकृत अधिक मोटे होते हैं। पत्तियाँ ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ५ इंच लम्बी, ३.७५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (१½ इंच से ३ इंच) चौड़ी, एकान्तर, दूर-दूर पर निकली हुई, नीचे की लम्बेवृन्त या डण्ठलवाली तथा रूपरेखा में हृद्वत् (*cordate*), प्रायः लट्वाकार या वृत्ताकार तथा ऊपर की छोटेडंठलयुक्त अथवा अवृन्त (*sessile*) तथा काण्ड-संसक्त (*stem-clasping*) और रूपरेखा में आयताकार-अण्डाकार तथा फलकमूल की ओर किंचित् हृदयाकार होती हैं। अग्रपर प्रायः सभी पत्तियाँ न्यूनाधिक नुकीली (*sub-acute*) तथा चिकनी, पतली, सरल (*entire*), ऊर्ध्वपृष्ठ पर गाढ़े हरेरंग की और चमकदार तथा अधः-पृष्ठपर हल्के (फीके) रंग की होती हैं। पुष्प एकलिंग और कोणपुष्पक या निपत्र (*bracts*) वृन्त–गोलायत या ढालाकार (*peltate*) होते हैं। पुंपुष्पों की अवृन्तकाण्डज मञ्जरी या शूकी (*male spikes*) ३.७५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० या १½ इंच से ३½ इञ्च लम्बी और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पोली होती है, और स्त्रीपुष्पों की मंजरी १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० (½ इञ्च से ¾ इञ्च) लम्बी तथा फल ३ सें० मी० या १½ इञ्च तक लम्बे तथा रूपरेखा में लम्बगोल शुण्डाकार एव देखने में कच्चे शहतूत की भाँति होते हैं। पकने पर इनका वर्ण रक्त होता है, जो सूखने पर कृष्णाभ-धूसरवर्ण के हो जाते हैं। पुष्पागम वर्षा-ऋतु में तथा फलागम शरद्-ऋतु में होता है।

उपयोगी अंग—सुखाये हुए पक्व या अपक्व फल (पिप्पली) एवं मूल (पिप्पलीमूल)।

मात्रा। चूर्ण—६२५ मि० ग्रा० से १.२५ ग्राम या ५ रत्ती से १० रत्ती (१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशे या ८ रत्ती से २ माशे या १६ रत्ती तक)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में छोटी तथा बड़ी भेद से दो प्रकार की पीपल मिलती है। छोटीपीपल देशी होती है, जो आसाम-बंगाल आदि से आती है, और लगायी हुई या जंगली लताओं से संग्रहीत की जाती है। बड़ीपिप्पली बाहर सिंगापुर, लंका, जंजीबार आदि से आती है। छोटीपिप्पली की फली (*amentum*) २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १½ इञ्च लम्बी (या छोटी) रूपरेखा में लम्बगोल—आयताकार बालियों के रूप में होती है, जो कृष्णाभ हरितवर्ण की तथा चमकीली होती है। आपाततः देखने में यह कच्चे शहतूत की भाँति मालूम होती है, जिसमें फल छोटे-छोटे दानों के रूप में ठसाठस भरे होते हैं। 'बड़ीपिप्पली' लम्बाई तथा मोटाई दोनों में छोटी से अधिक तथा कृष्णाभ खाकस्तरी रंग की होती है, किन्तु जल से धो देनेपर दाने रक्ताभ-भूरेरंग के मालूम होते हैं। ताजे पीपर में तो कोई गन्ध नहीं होती, किन्तु सूखने की प्रक्रिया में इसमें एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि पैदा हो जाती है। स्वाद कालीमिर्च की तरह कड़वाहट लिए तीक्ष्ण एवं चरपरा तथा साथ ही कुछ सुगन्धित होता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य-अधिकतम २% होते हैं।

पीपलामूल—यह पिप्पली की लता की जड़ होती है, जो ग्रन्थिल, कड़ी और भारी होती है। इसकी आकृति कुछ-कुछ तगर की तरह और रंगत श्यामलता लिये खाकस्तरी होती है, और तोड़ने पर अन्दर से सफेद निकलती है। स्वाद पिप्पली की तरह कड़वाहट लिये तीक्ष्ण एवं चरपरा होता है। बाजार में इसके छोटे-बड़े काटेहुए टुकड़े आते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पीपल एवं पिपरामूल को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। संग्रह में पक्वफलों को ही ग्रहण करना चाहिए, और संरक्षण के पूर्व इन्हें अच्छी तरह शुष्ककर लेना चाहिए। बड़े औषधि-निर्माताओं को पीपल खरीदते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। अन्यथा बाद में इसके वजन में काफी कमी हो जाती है। पिपरामूल के लिए प्रायः ५-६ वर्ष पुरानी लताओं को खोदकर, इनकी जड़ें संग्रहीत की जाती है।

संगठन—इसमें १% से २% तक एक 'उत्पत्तैल' पाया जाता है, जिसमें पिप्पलीन (पाइपेरीन *Piperine*), पाइपेरीडीन (*Piperidine*) नामक ऐल्केलाइड्स, एक तीक्ष्ण रालीयसत्व (चविसीन *Chavicine*) एवं स्टार्च, वसामयतैल आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण। रस—कटु। विपाक—मधुर। वीर्य—अनुष्णशीत। (इसका आर्द्रफल) गुरु, मधुर-रस एवं शीतवीर्य होता है। कर्म—शुष्कफल वातकफ-शामक, आर्द्रफल वातकफवर्धक एवं पित्तशामक, मेध्य, दीपन, वातानुलोमन, शूलप्रशमन, यकृदुत्तेजक, प्लीहा-वृद्धिहर, रक्तवर्धक, रक्तशोधक, कास-श्वासहर, हिक्का-निग्रहण। (चूर्ण, शिरोविरेचन, मूत्रल, वृष्य, ज्वरघ्न (विशेषतः नियतकालिक-ज्वरनाशक), रसायन, बल्य, कुष्ठघ्न आदि। यूनानीमतानुसार पीपल (शुष्क) एवं पीपलामूल दोनों दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं।

मुख्ययोग। पिप्पल्यासव, पिप्पलीखंड, गुड़पिप्पली, पिप्पली वर्धमानरसायन। पीपल त्रिकटु (त्र्यूषण), चतुरूषण एवं पंचकोल तथा षड्षण का उपादान।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ५) शिरोविरेचन एवं वमन द्रव्यों में तथा (सू० अ० ४ में कहे) दीपनीय, तृप्तिघ्न, हिक्कानिग्रहण, कासहर एवं शूलप्रशमन महाकषायों में एवं सुश्रुतोक्त पिप्पल्यादिगण, ऊर्ध्वभागहर एवं शिरो-विरेचन (सू० अ० ३८, ३९), द्रव्यों में 'पिप्पली' भी है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पियाबासा (सैरेयक)

नाम। (सं०) पीतसैरेयक, कुरण्टक। हिं०—कटसरैया, पियाबाँसा। बं०—कांटाजाती। उड़ि०—दासकरण्टा। म०—कोरण्टा। गु०—काँटासेरियों। ले०—बार्लेरिआ प्रीओनाडिस (**Barleria prionatis** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। वासक-कुल (आकान्थाषे : *Acanthaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों (विशेषतः बम्बई, मद्रास, असम, सिलहट आदि) में इसके स्वयंजातक्षुप पाये जाते हैं। गाँवों के आसपास, बगीचों की मेड़ पर, तथा मन्दिरों के पास इसके 'लगाये हुए पौधे' मिलते हैं। पियाबाँसा का फूल देवताओं को भी चढ़ाया जाता है।

संक्षिप्त-परिचय। पियाबाँसा के गुल्म काँटेदार तथा ०.६ मीटर से १.५ मीटर या २ फुट से ५ फुट ऊँचे, और बहुशाखी होते हैं। शाखाएँ जड़ के पास से निकलती हैं और सम्मुखवर्ती, गोल, मसृण और सीधी होती हैं। पत्तियाँ अण्डाकार ३.७५ सें० मी० से १० सें० मी० या १½ इञ्च से ४ इञ्च लम्बी (शाखाओं की पत्तियाँ आयताकार-प्रासवत्), अभिमुखक्रम से स्थित, अखण्डतट वाली तथा कण्टकित अग्रवाली और पर्णवृन्त प्रायः छोटे होते हैं। इसके पौधे कहीं-कहीं बड़े सुखी और हरे-भरे, परन्तु शुष्कभूमि में अल्पवृद्धि वाले और छोटे रह जाते हैं। पुष्प अवृन्त, बड़े तथा पीले रंग के होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत तथा प्रायः एकाकी (*solitary*) होते हैं। कोणपुष्पक या निपत्र (*bracts*) रेखाकार या रेखाकार-आयताकार होते हैं, और उनका अग्र कंटकी होता है। वृन्तपत्रक का भी प्रायः काँटों में रूपान्तर हुआ रहता है। बाह्यदल भी अग्रपर कंटकित होते हैं। फल (*capsule*) अड़ूसे की तरह यवाकृतिक तथा द्विकोष्ठीय होते हैं। प्रत्येक कोष्ठ में १-१ बीज होता है। जड़ काष्ठीय तथा बहु-वर्षायु स्वभाव की होती है, जिससे अनेक पार्श्विक उपमूल निकले होते हैं।

उपयोगी अङ्ग—पंचाङ्ग (विशेषतः पत्र एवं मूल)।

मात्रा। ३ ग्राम से ११.६ ग्राम या ३ माशा से १ तोला।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—पुष्प के रंग भेद से सैरेयक ४ प्रकार का होता है—(१) श्वेत—बार्लेरिआ डाइकोटोमा **Barleria dichotoma** *Roxb.* (पर्याय—*B. cristata Linn. var. dichotoma*)। इसे संस्कृत में सैरेयक, सहचर, झिण्टी आदि कहते हैं। (२) पीत—कटसरैया, पियाबाँसा। (३) रक्त—बार्लेरिआ क्रीस्टाटा (**Barleria cristata** *Linn.*)। इसे जाती (बं०), रेलावाहा (संथा०) तथा रक्तसैरेयक या कुरण्टक कहते हैं। इसमें पुष्प भड़कीले, गुलाबीरंग के या कभी सफेद और प्रायः अत्यधिक संख्या में निकलते हैं। इस जाति के पौधों में स्थानभेद से पत्रादिके आकारादि एवं पुष्पवर्ण में बहुत भिन्नता देखने में आती है। हिमालय पर होनेवाले पौधों में जामुनी नीलवर्ण के पुष्प होते हैं। (४) नील—बार्लेरिआ स्ट्रीगोसा (**Barleria strigosa** *Willd.*)। इसके लिए बाण, दासी, आर्त्तगल आदि संस्कृत नाम निघंटुओं में दिये गये हैं। अन्य नाम—रैलावाहा (संथा०), दासी—(बं०), ववमल्ली—(उड़ि०)। इसके पुष्प नीले, २ इञ्च लम्बे और १ इञ्च से ३ इञ्च चौड़े होते हैं, जो अवृन्तकाण्डजक्रम से सघन मञ्जरियों में निकले होते हैं। मंजरियाँ वृन्तपत्रकोंसे युक्त और एकपार्श्वीयकतारों में तथा दो बड़े-बड़े बाह्यदल ऊपर की ओर एककतार में रहते हैं। इनमें औषध्यर्थ प्रायः 'पीलेफूलवाले कटसरैया' का व्यवहार होता है, जो सर्वत्र सुलभ होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पियाबाँसा सर्वत्र सुलभ है। 'स्वरस' आदि के लिए ताजापौधा व्यवहृत करें। 'जड़' को छायाशुष्ककर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संग्रहीत करें।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—तिक्त, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, रक्तशोधक, शोथहर, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कफघ्न, विषघ्न, कुष्ठघ्न, शुक्रशोधन, नाड़ीबल्य आदि। लेपके रूपमें स्थानिकप्रयोग से शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणपाचन, व्रणशोधन, कुष्ठघ्न, एवं केश्य होता है। श्वसनसंस्थान के रोगों में इसका स्वरस एकौषधि के रूप में अथवा अन्य औषधियों के साथ अनुपान के रूप में देने से बहुत उपकार होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पियारांगा (पीआरंग)

नाम। सं०–पीतरङ्गा। हिं०–पियारांगा, पयारांगा, पीलीजड़ी, शूप्रक, पीतरांगा। बम्ब०–पीआरंग। ले०–थालीक्ट्रम फ़ोलिओलोसुम (**Thalictrum foliolosum** *DC.*)।

वानस्पतिक-कुल। वत्सनाभ-कुल (रानुन्कुलासे : *Ranunculaceae*)।

प्राप्तिस्थान–यह हिमालय में सर्वत्र १५२३ मीटर से २७२७ मीटर या ५,००० फुट से ९,००० फुट की ऊँचाई पर, तथा खसिया की पहाड़ियों पर १२०४ मीटर से १८२८.८ मीटर या ४,००० फुट से ६,००० फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह खसिया पर्वतमाला पर विशेष होता है। संग्रहकर्ता सिलहट और इसलामाबाद में लाते हैं, जहाँ से इसे अन्यत्र ले जाते हैं। हिमालय के अन्य क्षेत्रों से भी संग्रहकर्ता थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मैदान के बाजारों में ले आते तथा 'पिआरंग' नाम से बेच जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। पियारांगा के बहुवर्षायु स्वभाव से १.२ मीटर से २.४ मीटर या ४ फुट से ८ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं, जिसकी पत्तियाँ १५ सें० मी० से ३५ सें०मी० या ६ इञ्च से ८ इंच लम्बी होती हैं। अनुपपत्रक पक्ष की (*pinnules*) प्रायः त्रिपत्रक होती हैं। उक्त पत्रक १ सें० मी० से २ सें० मी० ($\frac{3}{8}$ इंच से $\frac{4}{5}$ इंच) लम्बे, रूपरेखा में आयताकार-लट्वाकार, तीन–खण्डोंवाले तथा दन्तुर धारवाले होते हैं। पुटपत्र या बाह्यदल (*sepals*) लगभग ०.५ सें० मी० या $\frac{1}{5}$ इंच, रूपरेखा में लट्वाकार तथा हरितवर्ण के होते हैं। चर्मफल ०.५ सें० मी० या $\frac{1}{5}$ इंच तक लम्बे होते हैं। जड़ों का व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोगी अंग–मूल।

मात्रा–०.५ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–पियारांगा के मूल ललाईलिये पीले रंग के, १५ सें० मी० से २० सें० मी० या ६ इञ्च से ८ इञ्च तक लम्बे, अंगुलि के बराबर मोटे तथा स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं। मूलत्वक चिकनी, लम्बाई के रुख झुर्रीदार तथा पीताभ भूरेरंग की होती है। काष्ठीयभाग कड़ा तथा चमकीले पीलेरंग का होता और जल में भिगोवे पर पीलारंग आजाता है। आपाततः देखने में यह मुलेठी के टुकड़ों की भाँति मालूम होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–पियारांगा को मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–पियारांगा की जड़ों में भी ममीरा एवं दारुहरिद्रा में पाया जावे वाला बर्बेरीन (*Berberine*) नामक तिक्त ऐल्केलाइड् पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव। सामान्यतः इसके गुण-कर्म भी ममीरा की ही भाँति होते हैं, किन्तु अपेक्षाकृत यह अधिक उष्ण एवं रूक्ष है। यह वेदनास्थापन, शोथविलयन, दीपन, श्लेष्मनिःसारक, विशूचिकाहर एवं विषघ्न होता है। सहायक औषधि के रूप में इसका प्रयोग अनेक विकृतियों में किया जाता है। हैजे में विशेष गुणदायक है। एतदर्थ इसे अर्कगुलाब में घिसकर पिलाते हैं। शीतल शोथों को बैठाने के लिए तथा कई प्रकार के दर्दों के शमन के लिए इसका लेप करते हैं। श्वास-कास एवं फुफ्फुस शोथ में उपयुक्त औषधियों के साथ देते हैं।

विशेष–कहीं-कहीं इसे 'ममीरा' भी कहते हैं। अतएव व्यवसायीलोग इसका उपयोग ममीरा में मिलावट करने के लिए भी करते हैं।

पीपर (अश्वत्थ)

नाम। सं०–पिप्पल, अश्वत्थ, चलपत्र, बोधिद्रुम। हिं०–पीपर। बं०–आशुद्गाछ। म०–पिंपल। गु०–पीपलो। नेपा०–पिप्ली। मल०–अरयाल् (*Arayal*)। ता०–अरसु, अरसुमरम्। अ०–शज्रतुल् मुर्तअश। फा०–दरख्ते लरज़ाँ। अं०–पीपल ट्री (*Peepul tree*), सैक्रेड फिग (*Sacred Fig*)। ले०–फ़ीकुस रेलीजिओसा (**Ficus religiosa** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। वट-कुल (ऊर्टीकासे *Urticaceae*)।

प्राप्तिस्थान। समस्त भारतवर्ष में लगाये हुए तथा स्वयं उगे हुए पीपर के वृक्ष पाये जाते हैं। यह हिन्दुओं का पवित्र वृक्ष है। पीपर के वृक्ष प्रायः देवस्थानों एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुओं के पास, तथा छायाके लिए सड़कों के किनारे एवं गाँवों के आसपास मिलते हैं। सर्वत्र सुलभ एवं सस्ता होने से इसकी लाक्षा के अतिरिक्त प्रायः अन्य अंगों का संग्रह विक्रयार्थ नहीं किया जाता।

संक्षिप्त-परिचय। पीपर के पर्णपाती विशालकाय (२१ मीटर से २४ मीटर या ७० फुट से ८० फुटतक ऊँचे) क्षीरी एवं छायावृक्ष होते हैं, जिनके काण्डस्कन्ध से मोटी-मोटी शाखाएँ निकलकर चतुर्दिक फैली होती हैं। किन्तु कोमल एवं पतले शाखाग्र नीचे को लटके रहते हैं, जिनपर लम्बे डंठलयुक्त, लट्वाकार-हृदयाकार तथा लम्बे अग्रवाली एवं चमकदार पत्तियों का पुंज होता है। मंद हवा से भी पीपर की पत्तियाँ शब्दायमान होकर गतिशील (चलपत्र) होती है। छोटे वृक्षों का काण्डस्कन्ध सीधा तथा समतल एवं गोलाकार होता है। किन्तु पुराने वृक्षों में यह फूला हुआ, ऊबड़-खाबड़ (*buttressed*) अथवा खोखलेयुक्त होता है। प्रथम १० वर्ष से १५ वर्षतक वृक्षों की वृद्धि मन्दगति से, किन्तु बाद में बहुत तेजी से होती है। अन्य क्षीरीवृक्षों की भाँति पीपर के वृक्ष भी दीर्घायु होते हैं। चैत मास में पतझड़ होता, तथा ग्रीष्म में फल लगते और वर्षा में पकते हैं। फल (गोदा) छोटे एवं गोलाकार होते हैं, जो कच्चे होनेपर हरे, किन्तु पकने पर गाढ़ेलाल या बैंगनी रंग के हो जाते हैं, और पत्रकोणों में दो-दो एक साथ (*axillary pairs*) निकलते एवं अवृन्त (*sessile*) होते हैं। पुराने वृक्षों पर लाक्षा (लाह) लगती है, जो उत्तम प्रकार की समझा जाती है। पीपल की पत्तियाँ हाथियों के लिए उत्तम चारा का काम देती हैं।

उपयोगी अंग। पत्र (एवं अश्वत्थशुंग), फल, त्वक् (छाल) एवं दूध (आक्षीर *latex*)।

मात्रा। फलचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

क्वाथ—४ तोला से ८ तोला।

स्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा। छाल (काण्डत्वक्)—पीपरकी छाल खाकस्तरीरंग की, तथा १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इंच से १ इंच तक मोटी होती है। किन्तु आयु के न्यूनाधिक्य से छाल की मोटाई में भी न्यूनाधिक्य पाया जाता है, तथा रंग में भी अन्तर हो जाता है। छोटे वृक्षों की छाल बाह्यतः हरिताभ से लेकर नारंगभूरेरंग की तथा चिकनी होती है, तथा छाल का बाह्यस्तर गूलर की छाल की भाँति कागज की तरह पतले पर्तों में छूटता है। किन्तु पुराने वृक्षों की छाल हल्के भूरेरंगकी तथा अपेक्षाकृत मोटी होती है, और बाह्यतल पर श्वेताभ या खाकस्तरीरंग की कड़ी पपड़ीदार चैली सी लगी होती है। अथवा कभी चैली पृथक् हो गयी रहती है जिससे छाल का बाह्यतल चिकना न होकर ऊबड़-खाबड़ होता है, और उसपर छूटी हुई चैली की रूपरेखा के अनुरूप लट्वाकार या अंडाकार आदि खातोदर चिह्न पाये जाते हैं। और जगह-जगह सूखे हुए दुग्ध (*latex*) के छोटे कण भी मिलते हैं। परन्तु छालपर दरार (*cracks or fissures*) एवं वातरन्ध्रों के चिह्न (*lenticels*) का प्रायः अभाव ही होता है। ताजी छाल का अनुप्रस्थ-काट (*T. S.*) करनेपर बाह्यत्वक् की ओर यह गाढ़े गुलाबी या भूरेरंग की होती है। किन्तु अन्दर की ओर उत्तरोत्तर रंग फीका होता है, और अन्तःछाल प्रायः सफेदरंग की होती है। मध्यत्वक् (*Middle Bark*) प्रायः पूरी मोटाई का चतुर्थांश होती है, और अनुप्रस्थविच्छेद में हल्के लाल या भूरे रंग की मालूम होती है। अन्तस्त्वक् (*Inner Bark*) प्रायः पूरीछाल का ⅔ भाग होती है, जो स्तरित (*lamellated*) होती है। इसमें एक के बाद दूसरा करके हल्के पीताभ या नारंग भूरेरंग के कणदार-ऊति (*granular tissue*) एवं हल्के गुलाबी या पाटलवर्ण के तन्तुमय-ऊति (*fibrous tissue*) के स्तर पाये जाते हैं (१ मि० मी० मोटे)। छाल के सबसे अन्दर का भाग जो काण्ड के काष्ठीयभाग के सम्पर्क में रहता है, अपेक्षाकृत अधिक तन्तुमय तथा श्वेताभ होता है।

फल (गोदा)—पीपर का फल कुम्भव्यूहोद्भव (*syconia*) होता है, जो गोल-गोल, शीर्षपर कुछ अंदर को धँसा हुआ, चिकना, व्यास में ½ सें० मी० से १.२५ सें० मी० या ⅕ इञ्च से ½ इञ्च, और पकने पर जामुनीरंग लिये रक्तवर्ण का होता है और पत्तियों के कोणों में दो-दो एक-एक साथ निकलते एवं अवृन्त होते हैं। नर, नारी एवं क्लीब तीनों ही प्रकार के पुष्प एक ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फल में पाये जाते हैं। नारीपुष्पों से छोटे-छोटे बीजाकार फल बनते हैं। पक्वफल स्वाद में मीठा होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—उपयोगी अंगों को मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—फलों में ऐल्ब्युमिनाइड्स (७.९%), कार्बोहाइड्रेट (३४.९%), वसामय अंश (५.३%), रंजकतत्त्व (७.५%), सिलिका (१.८%), फास्फोरस (०.६९%) तथा भस्म (८.३%) तक प्राप्त होती है। छाल में टैनिन (४%), रबड़ एवं मोम आदि तत्त्व होते हैं।

स्वभाव। गुण—गुरु, रूक्ष। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—कफपित्तशामक, शोथहर, वेदना स्थापन, व्रणरोपण, वर्ण्य, रक्तस्तम्भक। (छाल) स्तम्भन, रक्तशोधक, रक्तपित्तशामक, कफघ्न, श्वासहर, मूत्रसंग्रहणीय, गर्भस्थापन, वाजीकरण, आदि। (पक्व फल) स्नेहन, अनुलोमन, मृदुरेचन, श्वासहर, मूत्रसंग्रहणीय आदि।

मुख्य योग। शर्वतपीपर।

विशेष—चरकोक्त मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय (च० सू० अ० ४), कषायस्कन्ध (च० वि० अ० ८) एवं सुश्रुतोक्त, न्यग्रोधादिगण (सु० सू० अ० ३८) तथा भावप्रकाशोक्त पंचक्षीरी वृक्षों एवं पञ्चवल्कल में 'पिप्पल' भी है।

पीलु (छोटा तथा बड़ा)

नाम। (१) (छोटा पीलु)। सं०—पीलु, गुडफल। हिं०—पीलु। पं०—पीलू, वण, जाल। म०—पीलु। गु०—खारी जाल। फा०—दरख्ते मिस्वाक। अं०—टूथब्रश-ट्री (*Tooth-Brush Tree*)। ले०—साल्वाडोरा पेर्सिका (**Salvadora persica** *Linn.*)। (२) (बड़ा पीलु) सं०—वृद्धपीलु। गु०—मीठी जाल। ले०—साल्वाडोरा ओलेओइडेस (**Salvadora oleoides** *Decne.*)।

वानस्पतिक-कुल। पीलु-कुल (साल्वाडोरासे *Salvadoraceae*)।

प्राप्तिस्थान—निचला पंजाब, राजस्थान, सिंधु, गुजरात, कच्छ, बिहार, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले (विशेषतः इटावा), दकन, कोंकण, तथा कर्नाटक आदि प्रदेशों में पीलु के वृक्ष अधिक होते हैं। प्रायः यह बाजारों में नहीं बिकता। 'बीजोत्थतैल' बम्बई बाजार में 'खांखण का तेल' के नाम से मिलता है।

संक्षिप्त-परिचय। इसके बड़े-बड़े गुल्म अथवा छोटे तथा टेढ़े-मेढ़े वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ नीचे झुकी हुई और दुर्बल होती हैं। पत्तियाँ आमने-सामने, रूपरेखा में अण्डाकार—आयताकार, ३.१२५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इंच) तक लम्बी, दोनों सिरोंपर गोल और बनावट में चर्मिल (*leathery*) होती हैं। पुष्प सूक्ष्म, हरिताभश्वेत, चतुरङ्गभागी और फल एक बीजवाला तथा मांसल होता है, और मसल कर सूंघने पर राई-जैसी तीक्ष्ण गन्ध आती है। पुष्पागम पौष-माघ में होता है, और फल चैत्र-वैशाख में पक जाते हैं। पकने पर यह श्यामता लिये लालरंग के होते हैं। फल का स्वाद मीठा और चरपरा होता है। छोटे पीलु के पुष्प हरिताभ पीतवर्ण के तथा सवृन्त और बड़े पीलु के फूल हरिताभ श्वेत तथा अवृन्त होते हैं। छोटे एवं बड़े दोनों प्रकार के पीलु का अष्ठिफल (*drupe*) रूपरेखा में समान किन्तु छोटे का अपेक्षाकृत छोटा, (व्यास में ०.३१ सें०मी० या ½ इञ्च) और पकने पर लालरंग का तथा बड़ेपीलु का अपेक्षाकृत बड़ा (०.१ १ सें० मी० से ०.५ सें० मी० ½ इंच से ⅕ इंच) और पकनेपर पीला होता है। पीलु की हरी पत्तियों को ऊँट बड़े चाव से खाते हैं, किन्तु दूसरे जानवर नहीं छूते।

उपयोगी अंग। फल, बीजोत्थ तैल, मूलत्वक् एवं पत्र।

मात्रा। फलरस—½ तोला से १ तोला।

मूलत्वक्—३ ग्राम से ११.६ ग्राम या ३ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—छोटे पीलु (**S. persica**) का फल (*berry*) अपेक्षाकृत छोटा, चिकना तथा रसदार होता है। बड़े पीलु (**S. oleoides**) का फल इससे बड़ा तथा पीलेरंग का होता है। बीजों में एक उग्रगन्ध आती है, और स्वाद में यह 'चन्द्रशूर' की भाँति होते हैं। तैल—पीलुका तेल (खांखण का तेल) घी की तरह जमने वाला तथा चमकीले हरेरंग का होता है, और इसमें एक तीक्ष्णगन्ध होती है। बाजारों में मिलने वाले तेल में अन्य अपद्रव्यों का मिलावट होता है, जिससे यह हरिताभ-पीतरंग का होता है। मूलत्वक्—ताजी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छाल हल्के भूरेरंग की तथा प्रायः चिकनी होती है। इसपर जगह-जगह छोटे-छोटे उत्सेध होते हैं। अन्तर्वस्तु सफेद तथा मुलायम और स्वाद में उष्ण एवं तीक्ष्ण होता है। तोड़ने पर छाल खटसे टूटती है।

संग्रह एवं संरक्षण—'तैल' को चौड़ेमुंह की अम्बरी शीशियों में रखकर शीतल एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए। 'मूलत्वक्' मुखबंदडिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन। मूलत्वक् में राल, रंजकतत्त्व, ट्राइ-मेथिलैमीन (*Trimethylamine*), सैल्वेडोरीन नामक क्षारोद, तथा भस्म (२७%) प्राप्त होती है, जिसमें प्रचुरमात्रा में क्लोरीन पायीजाती है। फल में शर्करा, वसा एवं रंजकतत्त्व आदि, और बीजों में (विशेषतः वृद्धपीलु के) काफीमात्रा में वसा तथा कुछ रंजकतत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि। तैल—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। पीलु तिक्त, कटु, कटु-विपाकी, तीक्ष्ण, किंचित् स्निग्ध, सारक, शिरोविरेचन, विरेचनोपग. ज्वरहर, पित्तकर, कफवातहर, रक्तपित्तशामक तथा अर्शोघ्न होता है। (छोटापीलु) कटु, कषाय, खटमीठा, स्वादिष्ट, सारक, दीपन और गुल्म तथा अर्श का नाशकरने वाला है। (बड़ा पीलु) मधुर, वृष्य, रोचन, दीपन, पित्तप्रशमन तथा आमपाचन एवं विषघ्न होता है। 'छोटेपीलु' की पत्तियाँ सनाय-जैसी रेचक होती हैं, और बड़ेपीलु की पत्तियाँ उष्णवीर्य, वातनाशक, मूत्रजनन, और क्षीरजनन हैं। संधिवात में तैल का मालिश करने से वेदना का शमन होता है।

विशेष—चरकोक्त शिरोविरेचन, विरेचन (सू० अ० २), विरेचनोपग तथा ज्वरहर महाकषाय (सू० अ० ४) एवं कटुस्कन्धोक्त (वि० अ० ८) द्रव्यों में 'पीलु' का भी उल्लेख है। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) शिरोविरेचन द्रव्यों में 'पीलुपुष्प' का पाठ है।

पुदीना

नाम। सं० पूतिहा, पुदिनः, रोचनी। हिं०—पुदीना। बं०—पुदिना। म०—पुदिना। गु०—फुदीनो। फा०—पूदिनः, पूदीनः। अ०-फूतनज, फूदनज। लै०—(१) मेन्था साटीवा (**Mentha sativa** *Linn.*)। (२) मेन्था स्पीकाटा **Mentha spicata** *Linn.* (पर्याय—मेन्था विरिडिस *Mentha viridis Linn.*)।

वक्तव्य—'मेन्था' लेटिनशब्द यूनानी 'मिन्था' (एक कुमारी) से व्युत्पन्न है। मेन्था का अरबीरूपान्तर 'मेन्सा' है, जिसे 'मखजन' और 'मुहीत' के फूदनज के प्रकरण में प्रमादवश 'मशी' लिखा है। पूदीना का फारसी नाम 'पूद' है, जिसका अरबी रूपान्तर 'तूदानज-पूदानज-पोदानज' है। इन्हीं नामों से पूदीना या पोदीना आदि संज्ञाएँ बनी प्रतीत होती हैं।

वानस्पतिक-कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटे : *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में पुदीना की खेती की जाती है। इसकी पत्तियाँ चटनी आदि के काम में ली जाती हैं। ताजा पुदीना तरकारी बेचने वालों के यहाँ सदैव (विशेषतः गर्मी के दिनों में) सर्वत्र मिलता है। घरेलू खर्च के लिए प्रायः इसे गृह-उद्यानों में भी लगाते हैं।

संक्षिप्त परिचय—यह भूमि पर फैलनेवाला एक प्रसिद्ध सुगन्धित क्षुद्र क्षुप है। एक पौधा लगा देनेपर उससे अन्तर्धावी काण्डों (*stolons*) द्वारा बढ़ता जाता है। काण्ड कोमल एवं पत्रबहुल होता है। पत्तियाँ अवृन्त, रूपरेखा में भालाकार से आयताकार (*oblong*) तथा अग्रपर नुकीली होती हैं। पत्रतट दन्तुर-से (*coarsely dentate*) होते हैं। पुष्पदण्ड मृदु होता है, जिसके चारोंओर फूलों के गुच्छे होते हैं।

उपयोगी अंग—पत्र।

मात्रा। स्वरस—½ तोला से २ तोला।
अर्क—२ तोला से ४ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—पुदीने की अनेक अन्य जातियाँ भी पायी जाती हैं। उत्पत्तिस्थानभेद से इनको जंगली पुदीना (पूदिनः बर्री), पहाड़ीपुदीना (पूदिनः कोही), तथा जलपुदीना (पूदिनः नहरी) कहते हैं। साधारणतया एक भेद दूसरे का प्रतिनिधि हो सकता है। औषधीय एवं आहारोपयोग के लिए उद्यानज (पूदिनः बुस्तानी) या 'बोयाहुआ' पुदीना अधिक उत्तम होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—ताजा पुदीना प्रायः सर्वदा एवं सर्वत्र सुलभ है। संग्रह के लिए पत्तियों को सुखाकर मुखबन्द पात्रों में रखें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–पुदीने को पत्तियों एवं पुष्पमंजरी में एक 'सुगन्धित उड़नशीलतैल', राल, निर्यास (गोंद) एवं कषायसत्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–३ महीना से ६ महीना।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफवातशामक, वेदनास्थापन, दुर्गन्धनाशक, जन्तुघ्न, व्रणरोपण, रोचन, दीपन, छर्दिनिग्रहण, वातानुलोमन, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, कफ-निस्सारक, मूत्रल, स्वेदल, ज्वरघ्न, गर्भाशयोत्तेजक, विषघ्न आदि। यूनानीमतानुसार दूसरेदर्जे में गरम एवं खुश्क है।

मुख्य योग। अर्क पुदीना, माजूने फ़ुतंजी।

विशेष–मेंथा पीपेरीटा (**Mentha piperita** *Linn.*) भी पूदीने की ही एक प्रजाति है, जिससे सतपुदीना (मेंथॉल *Menthol*) प्राप्त किया जाता है।

पुनर्नवा (रक्तपुनर्नवा–गदहपूरना)

नाम। सं०–पुनर्नवा, वृश्चीर, शोथघ्नी। हिं०–गदहपूरना, विष(स)खपरा, पथरी, ठीकरी। पं०–इटसिट। बं०–पुनर्नवा, गदापुण्या। म०–घेटुली, खापरा। गु०–राती साटोडी, वसेडो। मा०–साटी। संथाल–ग्रोहेक अड़ा। अ०–हन्दकूकी। अं०–स्प्रेडिंग हाग्-वीड (*Spreading Hog-weed*)। ले०–बोएर्हाविआ डीफ्फूजा **Boerhaavia diffusa** *Linn.* (पर्याय–*B. repens L.*)।

वानस्पतिक-कुल। पुनर्नवा-कुल (निक्टाजिनासे *Nyctaginaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में घास की भाँति उगती है। प्रायः परती जमीन तथा सड़कों के किनारे मिलती है।

संक्षिप्त-परिचय। पुनर्नवा के छोटे-छोटे पौधे होते हैं, जिसकी जड़ प्रायः बहुवर्षायु होती है। प्रतिवर्ष वर्षा में नये पौधे निकलते हैं, और ग्रीष्म में सूख जाते हैं। पत्र अभिमुखक्रम से स्थित होते हैं। प्रत्येक पर्व की दोनों पत्तियों में एक छोटी तथा दूसरी बड़ी होती है। पुष्प छोटे-छोटे, सफेद या हल्के गुलाबीरंग के होते हैं, जो प्रायः वृन्तरहित या छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। इस प्रकार ४–१० पुष्प छत्रक-सम गुच्छकों (*umbels*) में स्थित होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत लम्बे डंठल पर धारण किये जाते हैं। फल छोटे (०.६२५ सें० मी० या ¼ इञ्च लम्बे) होते हैं, जिनमें चौलाई की तरह बीज भरे होते हैं। शीतकाल में पुष्प और फल आते हैं। फलों में कुलफा की भाँति काले-काले बीज भरे होते हैं। पुनर्नवामूल–गदहपूरना की जड़ प्रायः ३० सें० मी० या १ फुट तक लम्बी, ताजी अवस्था में अंगुली के बराबर मोटी एवं गूदेदार तथा २ से ३ शाखाओं से युक्त होती है। स्वाद में यह कुछ तीती (तिक्त) एवं उत्क्लेशकारि (*nauseous*) होती है। पुनर्नवा-पंचांग में विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम–२% तक होते हैं।

स्थानापन्नद्रव्य एवं मिलावट–श्वेतजाति का वर्षाभू (विषखपरा या पथरी) गुण-कर्म की दृष्टि से पुनर्नवा से बिलकुल मिलता-जुलता है। अतएव पुनर्नवा के स्थानापन्न द्रव्य के रूप में इसका उपयोग कर सकते हैं। इसका वानस्पतिक नाम ट्रिआंथेमा पोर्टुलाकास्ट्रम **Trianthema portulacastrum** *Linn.* (पर्याय–*T. monogyna L.*) है। उक्त औषधि इसी का 'सफेद भेद' (*white variety*) होती है। इसके पौधे सर्वत्र भारतवर्ष में पाये जाते हैं, और वर्षा का पानी पड़ते ही उगते हैं तथा जमीनपर छाजाते हैं। शाखाएँ कोमल, गूदेदार, रूपरेखा में कुछ-कुछ कोणाकार तथा अनेक प्रशाखाओं से युक्त होती हैं। पत्तियाँ मोटी, चौड़ी, लट्वाकार या गोलाकार तथा अग्रपर लोमयुक्त (*apiculate*) होती हैं, जो शाखाओं पर अभिमुखक्रम से नीचे ऊपर तिरछे रूप से (*obliquely opposite*) स्थित होती हैं। इनमें ऊपरवाली पत्ती नीचेवाली से बड़ी, १.८७५ सें० मी० से २.५ सें० मी० लम्बी तथा १.८७५ सें० मी० से ३.१२५ सें० मी० (¾ इञ्च से १¼ इञ्च) चौड़ी होती है। पर्णवृन्त ¼ इञ्च से ½ इञ्च लम्बे तथा कोमल होते हैं। पुष्प छोटे तथा विनाल (*sessile*) और एकल (*solitary*) क्रम से निकले होते हैं, जो पत्रकोणों में स्थित होते हैं। पुंकेसर संख्या में १० से २० तक होते हैं। फल (*capsule*) १ से ५ बीजयुक्त होते हैं। बीज मटमैले कालेरंग के, रूपरेखा में वृक्काकार होते हैं, जिनपर एककेन्द्रिक उन्नत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लहरदार रेखाएँ होती हैं। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम २%।

संग्रह एवं संरक्षण—'शुष्क पंचाङ्ग' को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद डिब्बों में रखें।

संगठन—उक्त दोनों वनस्पतियों में पुनर्नवीन (*Punarnavine* : ०.०१% से ०.०४%) नामक ऐल्केलाइड् पाया जाता है। पुनर्नवा में (०.५%) पोटासियम् नाइट्रेट, सल्फेट्स एवं क्लोराइड्स तथा तैल भी पाये जाते हैं। वर्षाभू में एक अन्य ऐल्केलाइड् ($C_{32}N_{46}O_9N_2$) भी पाया जाता है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला तक।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—मधुर, तिक्त, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषहर, लेखन, शोथहर, दीपन, अनुलोमन, रेचन, (अधिकमात्रा में) वामक, हृद्य, रक्तवर्धक, शोथहर, कासहर, मूत्रजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, रसायन, विषघ्न। (बीज) वृष्य हैं। यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर-वक्ष के लिए। निवारण—शहद।

मुख्ययोग—पुनर्नवादिमण्डूर, पुनर्नवासव, पुनर्नवार्क, पुनर्नवाष्टक, पुनर्नवादिक्वाथ एवं चूर्ण।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) स्वेदोपग, अनुवासनोपग, कासहर तथा वयःस्थापन महाकषायों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) विदारिगन्धादिगण के द्रव्यों में 'पुनर्नवा' भी है।

पुष्करमूल

नाम। सं०—पुष्करमूल, पद्मपत्रक, काश्मीर, कुष्ठभेद। हिं०—पोहकरमूल। काश्मीर—पोकर, पोष्कर। म०, गु०—पुष्करमूल, पोहकरमूल। ले०—ईनूला रासेमोसा (**Inula racemosa** *Hook. f.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजीटे *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—पश्चिमी हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में (५,००० फुट से १४,००० फुट की ऊँचाई तक) विशेषतः कश्मीर में (५,००० फुट से ७,००० फुट की ऊँचाई तक)। कश्मीर में सरकारी नियंत्रण में इसकी खेती भी की जाती है। भारतीय बाजारों में पोहकरमूल विशेषतः कश्मीर से ही आता है। जम्मू, अमृतसर और दिल्ली इसके प्रधान बिक्रीकेन्द्र हैं।

संक्षिप्त-परिचय। पुष्करमूल केशाकीय किन्तु बड़े पौधे होते हैं। काण्ड ३० सें० मी० से १२०—१८० सें० मी० या १ फुट से ४—६ फुटतक ऊँचा, कुछ खुरखुरा एवं नालीदार होता है। पत्तियाँ अधःभाग(मूल के पास) में बड़ी (२० सें०मी० से ४५ सें० मी० × १२.५ सें०मी० से २० सें० मी० या ८ इञ्च में १८ इञ्च × ५ इञ्च से ८ इञ्च), रूपरेखा में अंडाकार-भालाकार तथा लम्बेपर्णवृन्त (डंठल) पर धारण की जाती हैं। काण्डीयपत्र रूपरेखा में आयताकार-से तथा आधारपर गहरेकटाववुक्त होते हैं, जो कुछ काण्ड-संसक्त होते हैं। पुष्पमुण्डक अनेक तथा बड़े (व्यास में ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १½ इञ्च से १ इञ्च तक) पीलिरंग के, आपाततः देखने में सूर्यमुखी की भाँति होते हैं। युतोत्फल लगभग ४ मि० मी० या ⅙ इंच लम्बा, कोमल एवं लोमरहित होते हैं। पुष्करमूल की जड़ का व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोगी अंग—मूल (जड़)।

मात्रा। २५० मि० ग्रा० से १.२५ ग्रा० या २ रत्ती से १० रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—पुष्करमूल की जड़ आकृति में कुछ-कुछ कुष्ठ से मिलती-जुलती है। तोड़ने पर यह कठोर एवं चटकदार टूटती है, और ताजी अवस्था में टूटाहुआ तल सफेदोलिए मटमैला-सा होता है। इसके अतिरिक्त यह कुछ सुषिर भी मालूम होता है। कुष्ठ का तोड़ नरम एवं भुरभुरा होता है। पुष्करमूल में कपूरकी-सी कुछ गंध लिए मीठी-मीठी बास आती है, जो कईवर्षों तक बनी रहती है। इसमें कीड़ा नहीं लगता। पुष्करमूल स्वाद में कुछ चरपरा एवं कटुगंध युक्त होता है, और कंठ में लगता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। कभी-कभी पुष्करमूल में कुष्ठ के डंठल के टुकड़े मिलाये जाते हैं। 'ओरिस-रूट' का व्यवहार पुष्करमूल के नाम से नहीं होना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह भी कश्मीर में होता है, जिसे वहाँ 'मजारमुंख' और 'मजारपोश' कहते हैं। यूनानीचिकित्सा में इसे 'ईरसा' या 'सोसन' आदि नाम दिये गये हैं। यह किसी कदर आयुर्वेदीय निघण्टुओं की 'हैमवतीवचा' हो सकती है। किन्तु पुष्करमूल के नाम से इसको व्यवहृत करना भयंकर भूल है।

संग्रह एवं संरक्षण–'पुष्करमूल' का संग्रह बीज पकजाने के बाद ग्रीष्मके अन्त में या शरद्-ऋतु के प्रारम्भ में किया जाता है। पुष्करमूल को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन–पुष्करमूल में एक 'उत्पत् तैल' तथा कुछ 'ऐल्केलाइड' पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अल्पतः बेंजोइक एसिड भी होता है।

वीर्यकालावधि–कईवर्ष तक।

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–कफवातशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य, कास-श्वासहर, हिक्कानिग्रहण, पार्श्वशूलनाशक, दीपन-पाचन, अनुलोमन, कटुपौष्टिक, बाजीकर, गर्भाशयोत्तेजक, आमपाचन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, आदि।

मुख्ययोग–पुष्करमूलादिचूर्ण, पुष्करादिचूर्ण।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) श्वासहर एवं हिक्कानिग्रहण महाकषायों में 'पुष्करमूल' भी है। डीमक आदि पाश्चात्य लेखक और उनकी देखादेखी वनौषधिदर्पणकारादि ने "ऑरिस रूट *Oris Root* (**Iris germanica** *Linn. or* **Iris species** (*Family : Iridaceae*)" को, जिसे यूनानी ग्रन्थकार 'ईरसा' या 'सोसन' कहते हैं, पुष्करमूल माना है। परन्तु यह ठीक नहीं है। वस्तुतः कश्मीर से आनेवाला पुष्करमूल ईनूला रासेमोसा **Inula racemosa** *Hook. f.* (*Family : Compositae*) की ही जड़ होती है। "कुस्तेशामी" जिसे 'जंजबीले शामी' या रासन (**Inula helenium** *Linn.*) भी कहते हैं, पृथक् द्रव्य है। स्वरूपतः एवं गुणतः बहुत-कुछ समान होने के कारण ही पुष्कर मूल को भावप्रकाशकार ने 'कुष्ठभेद' लिखा है।

पूग–दे०, 'सुपारी'। (लेखक)

पेठा–दे०, 'कूष्माण्ड'।

प्याज (पलाण्डु)

नाम। सं०–पलाण्डु। हिं०–प्याज। बं०–पेंयाज। म०–कांदा। गु०–डुंगली, डुंगरी, कांदो। पं०–गंडा। सिंध–बसर। अ०–बस्ल। फा०–पियाज। अं०–ऑनियन *Onion*। ले०-आल्लियम् सेपा (**Allium cepa** *Linn.*)। लेटिन नाम वनस्पतिका है।

वानस्पतिक-कुल। पलाण्डु-कुल (लीलिआसे : *Liliaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में प्याज की लम्बे परिमाण में खेती की जाती है। इसमें प्रपुष्ट पत्रककंद (*bulbs*) भी लगते हैं। बोने के लिए उक्त कलिकाओं एवं बीज तथा कन्द तीनों का ही प्रयोग किया जाता है। रंगभेद से प्याज का कन्द सफेद, पीला, लाल तथा भूरा और रूपरेखा में गोला, चपटा तथा शंक्वाकार (*conical*) होता है। 'सफेद प्याज' की अपेक्षा 'लाल प्याज' अधिक तीक्ष्ण होता है। इसके बीजों को अरबी एवं फारसी में क्रमशः 'बज़्रुल्बस्ल' एवं 'तुख्मेपियाज' कहते हैं।

उपयोगी अंग। कन्द एवं बीज।

मात्रा। कन्दस्वरस—१ से ३ तोला।

बीजचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण–कन्द एवं बीजों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–कन्द में (पूरे पौधे में भी) एक उग्रगन्धी एवं चरपरा उत्पल तैल (पचाङ्ग का ०.०५%) तथा गन्धक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त स्टार्च, कैल्सियम्, लौह एवं विटामिन '*A*', '*B*' एवं '*C*' भी पाये जाते हैं। कद के बाहरीछिलके में 'क्वर्सेटीन' नामक पीतरञ्जक तत्त्व भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव–गुण–गुरु, तीक्ष्ण, स्निग्ध। रस–मधुर, कटु। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। कर्म–वातहर, तथा पित्त एवं कफकारक। (बाह्यप्रयोग से) वेदनास्थापन, शोथहर, पाचन, लेखन, त्वग्दोषहर एवं (आभ्यन्तरसेवन से) दीपन, रोचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, अमेध्य, हृदयोत्तेजक, छेदन, कफनिस्सारक, मूत्रजनन, शुक्रजनन, बाजीकरण, आर्त्तवजनन, बल्य, त्वग्दोषहर, रक्तस्तम्भक आदि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यूनानीमतानुसार कन्द तीसरे दर्जे में गरम एवं पहले दर्जे में खुश्क तथा बीज दूसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क। बीज विशेषतः बाजीकर एवं लेखन हैं। अहितकर–उष्ण प्रकृति को। निवारण–सिरका, नमक, मधु और अनार का रस।

मुख्य योग–माजून प्याज।

प्रसारिणी (गन्धप्रसारिणी)

नाम। सं०–प्रसारिणी। हिं०–गन्धप्रसारनी, पसरन। खर०–गन्धाली, गन्ध-भादुली, गोलालरंग। बं०–गन्धभादुलिया। ले०–पेडेरिआ फेटीडा (**Paederia foetida** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। मञ्जिष्ठा-कुल (रूबियासे : *Rubiaceae*)।

प्राप्तिस्थान–मध्यवर्ती एवं पूर्वी हिमालयप्रदेश में ५,००० फुट की ऊँचाई तक विशेषतः नेपाल, आसाम एवं बंगाल (पूरब में मलाया एवं पूर्वी–द्वीपसमूह तक) में इसकी स्वयंजात लताएँ पायी जाती हैं। बंगाल में प्रचुरता से होती है। सुखायाहुआ पत्र पंसारियों के यहाँ मिलता हैं।

संक्षिप्त-परिचय। 'गंधप्रसारणी' की सुदीर्घ प्रसरणशील या आरोही लताएँ होती हैं। ऊँचे वृक्षों का सहारा पाकर इसकी लताएँ काफी ऊँचाई तक चढ़ जाती एवं ऊपर खूब फैलकर छाजाती हैं। पत्तियाँ लट्वाकार या भालाकार अथवा आयताकार-लट्वाकार, नुकीली अथवा कुण्ठिताग्र, ५ सें०मी० से ७.५ सें०मी० (२ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बी, २.५ सें०मी० से ३.७ सें०मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) चौड़ी, तथा अभिमुखक्रम से स्थित होती हैं। दोनों पत्तियों के बीच में प्रतिग्रंथिगर दो-दो संयुक्त उपपत्र होते हैं। पर्ण-वृन्त १.२५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (½ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बे होते हैं। वर्षान्त या शरद् के प्रारम्भ में पुष्प लगते हैं, जो रूपरेखा में फनेल के आकार के तथा बैगनीरंग के होते हैं, और प्रायः तीन-तीन के गुच्छों में लगभग १५ सें० मी० (६ इञ्च) लम्बीमञ्जरियों में निकलते हैं। जाड़ों में फल लगते हैं, जो गोलाकार, छोटे तथा पक्षयुक्त होते हैं, जिनमें छोटे-छोटे दावेदार बीज निकलते हैं। गंध-प्रसारनी के पंचाङ्ग को मसलने पर बड़ी दुर्गन्ध (कार्बन-बाइसल्फाइड जैसी) आती है, किन्तु उबालने से यह दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है। प्रसारिणी की लताएँ प्रायःआर्द्र स्थानों में पायी जाती हैं।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–प्रसारिणी का काण्ड कड़ा (*ligneous*) और कोमल भाग चिकना होता है। विजातीय सेन्द्रिय द्रव्य अधिकतम–३%। सूखीपत्तियों का चूर्ण हरिताभ भूरेरंग का तथा अत्यन्त दुर्गन्धित होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–लता का संग्रह सूखने के पूर्व करना चाहिए। अतएव जाड़े में इसका संग्रह कर छायाशुष्क करके मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–पंचाङ्ग में एक उड़नशील तैल, जिसमें ताजे पौधे जैसी-दुर्गन्ध, 'अल्फा' एवं 'बीटा' पिडेरीन (*Paederin*) नामक दो ऐल्केलाइड्स भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। ५–६ मास।

स्वभाव। गुण–गुरु, सर। रस–तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–कफवातशामक, नाड़ीबल्य; वातानुलोमन, वेदनास्थापक, सारक, रक्तशोधक, बल्य एवं वृष्य।

मुख्य योग–प्रसारिणीतैल।

विशेष–'वातव्याधि' में तथा 'आमवात' के रोगियों को प्रसारिणी का पत्रशाक एक उत्तम पथ्य है।

प्रियंगु (गंधप्रियंगु)

नाम। सं०–प्रियंगु, गंधप्रियंगु, फलिनी। हिं०, बाजार–फूलप्रियंगु। (देहरादून, गढ़वाल)–डइया। बं–मठुरा। को०–वुंडुढ। संथा०–बूढ़ीघासी। ले०–काल्लीकार्पा माक्रोफ़िल्ला (**Callicarpa macrophylla** *Vahl.*)।

वानस्पतिक-कुल। निर्गुण्डी-कुल (वेर्बेनासे : *Verbenaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालय की तराई में कश्मीर से आसाम तक (१८२८.८ मीटर या ६,००० फुट की ऊँचाई तक) तथा बंगाल, बिहार में इसके गुल्म जंगलों के किनारे, घाट और ऊँची चढ़ाइयों पर, खुले मैदान तथा परती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जमीन में पाये जाते हैं। गंधप्रियंगु, इसी के प्रियंगु-धान्यसदृश पुष्पकलिकाएँ या छोटे-छोटे फल होते हैं, जो बाजार में 'फूल प्रियंगु' के नाम से बिकते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। गंधप्रियंगु के मजबूत गुल्म होते हैं, जिनकी शाखाएँ अनियमितरूप से फैली रहती हैं। शाखा, पत्ती तथा पुष्पव्यूह आदि भागों में तूलसदृश सघनरोम होते हैं। पत्तियाँ १२.५ सें० मी० से २५ सें० मी० या ५ इञ्च से १० इञ्च लम्बी, अण्डाकार, कभी-कभी लट्वाकार-प्रासवत् तथा लम्बाग्र होती हैं, जिनके किनारे (पत्रतट) गोल-दन्तुर होते हैं। पर्णवृन्त ⅓ इञ्च से ½ इञ्च लम्बा होता है। वर्षा-ऋतु में पुष्प आते हैं, जो छोटे-छोटे, हल्के गुलाबीरंग के होते हैं, और पत्र-कोणोद्भूत, द्विविभक्त, मुण्डाकार, सघन गुच्छकों (*dense-flowered globose axillary compound cyme*) में निकलते हैं, जो २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बे तथा व्यास में लगभग ५ सें० मी० या २ इंच होते हैं। डालियाँ पुष्पगुच्छों से लद जाती हैं, और उनके भार से झुकी रहती हैं। पुष्प के बाह्य एवं आभ्यन्तर कोष ४–४ खण्डोंवाले, पुंकेशर ४ तथा डिम्बाशय भी ४–कोषीय होता है। अष्ठिलफल (*drupe*) मांसल, श्वेत तथा चार गुठलिकाओं (*4 one-celled pyrenes*) से युक्त होता है, और पकने पर ऊपरीपृष्ठ कुछ स्पञ्जाकार तथा रसदारमांसल (*spongy succulent*) होता है। जाड़ों में फल बाजारों में 'फूलप्रियंगु' के नाम से बिकते हैं। इनमें मसलनेपर गन्ध भी होती है।

उपयोगी अंग। फल, पुष्पकलिकाएँ और पत्र।

मात्रा। चूर्ण–१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा। पत्र (बाह्यप्रयोग के लिए)–आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। वास्तव में 'गन्धप्रियंगु' से उपर्युक्त औषधि का ही ग्रहण होना चाहिए। किन्तु बाजारों में तथा अन्य स्थानिक प्रयोगों में प्रियंगुनाम से अन्य द्रव्यों के व्यवहार की भी परम्परा है। (१) फलप्रियंगु। प्रियंगु–बं०, हिं०। ले०–आग्लाइआ रॉक्सबुर्घिआना **Aglaia roxburghiana** *Miq.* (*Family : Meliaceae*)। इसके वृक्ष विशेषतः दक्षिणभारत (कोंकण, कनाड़ा, मलाबार, ट्रावन्कोर, तिन्नेवाली, दकन) आदि में प्रचुरता से पाये जाते हैं। उत्तरभारत में (उड़ीसा आदि) कहीं-कहीं मिलता है। इसके ऊँचे वृक्ष होते हैं। फल लम्बगोल, व्यास में १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० (½ इञ्च से ¾ इञ्च), पकने पर ताजी अवस्था में पीताभवर्ण के तथा सूखनेपर भूरे हो जाते हैं, जिनका बाह्यतल सिकुड़ा एवं झुर्रीदार होता है। अन्दर गुठली होती है, जिसको तोड़ने पर १ से २ भूरे बीज निकलते हैं, जिनके चारों ओर हल्का गुलाबी गूदा-सा लगा होता (*pink fleshy aril*) है। बीज कुछ खट्टे और कषैले होते हैं। सूखने पर इनमें हल्की सुगन्धि भी पायी जाती है। (२) गहुला–म०। घऊँला–गु०। महालिब–अ०। बम्ब०–घंउला, महालिब। ले०–प्रूनुस महालेब **Prunus mahaleb** *Linn.* (तरुणी-कुल : *Rosaceae*)। इसके वृक्ष बलूचिस्तान एवं उत्तर-पश्चिम हिमालयप्रदेश में होते तथा लगाये जाते हैं। इसके फल आपाततः देखने में बादाम-जैसे किन्तु अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। मग्ज बम्बई बाजार में 'घऊँला' नाम से बिकता है, जो चिरौंजी-जैसा, गोधूमवर्ण और सुगन्धित होता है। गन्धप्रियंगु के प्रतिनिधिद्रव्य के रूप में इसका ग्रहण किया जा सकता है। (३) गोंदनी (१) ब्रीडेलिआ मोन्टाना **Bridelia montana** *Willd.* (*Euphorbiaceae*); (२) कॉर्डिआ रॉथीआइ **Cordia rothii** *Roem. & Schult.* (*Boraginaceae*)। उक्त वृक्ष के 'फल' को भी भ्रमवश प्रियंगु कह देते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–छायाशुष्क पक्वफलों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

स्वभाव। गुण–गुरु, रूक्ष। रस–तिक्त, कषाय मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। कर्म–त्रिदोषशामक, दाहप्रशमन, वेदनास्थापन, दीपन, अनुलोमन, स्तम्भन, रक्तशोधक, मूत्रविरजनीय, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, त्वग्दोषहर।

मुख्य योग। प्रियंग्वादि तैल।

फालसा (परूषक)

नाम। सं०–परूषक। हिं०–फालसा, पालसा, फरसिया, पुरुषा। बं०–फल्सा। म०, गु०–फालसा। सिंध–फारवा। फा०–फाश्सः। ले०–ग्रूइआ सुबइनेक्वालिस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Grewia subinequalis *DC.* (पर्याय–**G. asiatica** *Mart.*)।

वानस्पतिक-कुल। परूषकादि-कुल (टीलिआसे : *Tiliaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में फालसे के वृक्ष लगाये जाते हैं। इसके वृक्ष प्रायः जंगली नहीं मिलते। फ़ालसा के पकेफल गर्मियों में बाजारों में बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय–फालसे के गुल्म अथवा कभी उपयुक्त परिस्थिति में छोटे वृक्ष होते हैं, जिसकी कोमल शाखाएँ रोमश होती हैं। पत्तियाँ सवृन्त ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० या ३ इंच ४ इंच लम्बी, अधस्तल पर प्रायः सफेद तथा आरावत्–दन्तुरधारवाली होती हैं। पर्णवृन्त ६.२५ मि० मी० से १२.५ मि० मी० या ¼ इञ्च से ½ इञ्च लम्बे एक अग्र पर अपेक्षाकृत स्थूल होने से मुद्गराकार होते हैं। पुष्पवाहकदण्ड (*peduncle*) पर्णवृन्त से काफी लम्बे होते हैं, जिनपर छोटे, पीलेरंग के पुष्प होते हैं। दलपत्र, पुटपत्रों की अपेक्षा छोटे होते हैं। कुक्षिवृन्त काफी मोटा तथा कुक्षि चार खण्डों युक्त होती है।

उपयोगी अंग–पक्वफल एवं अन्तस्त्वक् (अन्त : छाल)।

मात्रा। फालसा मेवाकी भाँति–२ तोला से ५ तोला।

औषधरूप से स्वरस–२ तोला से ३ तोला।

छाल (फाण्ट के लिए)–१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–फालसा का 'प्रगल्भ फल' जंगली बेर के बराबर या उससे छोटा होता है। कच्चा फालसा हरा और कसैला, अधपका लाल एवं खट्टा और पूरापका कालाईलियेलाल एवं खटमिट्ठा होता है। फालसा प्रायः २ प्रकार का मिलता है—(१) यह रसीला, पकने के पूर्व खट्टा और पकने के उपरान्त खटमिट्ठा होता है। इसे 'फ़ालसा शर्बती' कहते हैं। (२) यह कम रसीला, खटमिट्ठा, और बाद में मीठा होता है। इसको 'फालसा-शकरी' कहते हैं। शर्बत निर्माण के लिए खटमिट्ठा फालसा अधिक अच्छा होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–फालसे का शर्बत फसल के समय जब ताजा फल मिलता है, तब बनाना चाहिए। सर्वत्र सुलभ होने से छाल भी ताजी मिल सकती है। संग्रहार्थ इसे छायाशुष्क कर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–इसके फल में अम्ल, शर्करा आदि तथा त्वक् में पिच्छिल द्रव्य होता है।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, अम्ल, कषाय। विपाक–कच्चे फल का विपाक अम्ल तथा पके फल का विपाक मधुर होता है। वीर्य–शीत। कर्म–वातपित्त-शामक, रोचन-दीपन, ग्राही, यकृदुत्तेजक (कच्चा फल) तथा तृष्णानिग्रहण, छर्दिनिग्रहण, विरेचनोपग, हृद्य, रक्तपित्तशामक, कफनिःसारक, बल्य, बृंहण, वृष्य, ज्वघ्न, दाहप्रशमन, शोषहर। (छाल) मूत्रल, दाह-प्रशमन, स्नेहन (*demulcent*), इक्षुमेहनाशक। यूनानी-मतानुसार फालसा दूसरे दर्जे में शीत एवं पहले दर्जे में स्निग्ध तथा पित्त की तीक्ष्णता को दूर करनेवाला; रक्त के प्रकोप को शमनकरनेवाला, उत्क्लेश–वमन और उबकाई को लाभप्रद, उदरसंग्राहक, हृदयबलदायक, उष्ण, यकृदामाशयबलदायक, पित्तज्वरनाशक, विशेषतः पित्तज रोग एवं हृद्द्रवनाशक है। मधुमेह में इसकी अन्तःछालका फाण्ट बहुत उपयोगी होता है। अहित-कर–आनाहकारक। निवारण–गुलकन्द, अनीसूं और माजून कम्मून।

मुख्ययोग–शर्बत फालसा।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) विरेचनोपग, ज्वरहर एवं श्रमहर महाकषायों में तथा सुश्रुतोक्त मधुरस्कन्ध एवं परूषकादिगण के द्रव्यों में फालसा या 'परूषक' भी है।

बंदाल (देवदाली)

नाम। सं०–जीमूत (क), देवदाली, गरागरी, देवताडक। हिं०–बंदाल, बिंदाल, बंडाल, घघरबेल, सोनैया। बं०–देवताड। पं०–घगडवेल। म०–देवडांगरी। गु०–कुकुड-वेला। सिंध–नेघेजा डेलू। मा०–बंदालडोडा। बम्ब०–कुकुडवेल। लै०–लूफ़ा एकीनाटा (**Luffa echinata** *Roxb.*)।

वानस्पतिक-कुल। कूष्माण्ड-कुल (कूकुरबिटासे : *Cucurbitaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष (विशेषतः सिंध, गुजरात, बम्बई, देहरादून, उत्तरी अवध, बुन्देलखण्ड, बिहार एवं बंगाल आदि) में बंदाल की 'जंगली लताएँ' पायी जाती हैं। सुखाये हुए पक्वफल पंसारियों के यहाँ भी मिलते हैं। इसके फल 'बंदालडोडा' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय—बंदाल की प्रसरणशील लताएँ होती हैं, जिनके काण्ड पतले, पांचकोने वाले तथा केवल काण्ड-ग्रन्थियों पर स्पर्श में कर्कश होते हैं। काण्डसूत्र द्विविभक्त होते हैं। पत्तियाँ सवृन्त, व्यास में २.५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १ इंच से २½ इंच, वृक्काकार-गोल, लट्वाकार याहृद्वत्, अखण्डित या विच्छिन्न (५ खण्डों में) तथा दोनों तलों पर रोमश होती हैं, जिससे स्पर्श में यह खुरखुरी मालूम होती हैं। पुष्प सफेद (कभी-कभी पीले) तथा व्यास में १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) होते हैं। पुं-पुष्प ५ सें० मी० से २० सें० मी० (२ इंच से ८ इंच) लम्बी मञ्जरियों में निकलते हैं, और उन्हीं पत्रकोणों में एकाकी स्त्रीपुष्प भी निकलते हैं। फल २.५ सें० मी० से ३.७५ सें०मी० (१ इंच से १½ इंच) लम्बे, दीर्घवृत्ताभ तथा देखने में आपाततः खेखसे के फलों की तरह मालूम होते हैं। औषध्यर्थ इन्हीं का व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग—फल।

मात्रा। (कटुपौष्टिक) ½ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा। (संशोधनार्थ) १ से २ ग्राम या १ से २ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—'बंदालडोडा' २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बा, रूपरेखा में दीर्घ-वृत्ताभ या अण्डाकार, पीलीहड़ या जायफल के समान किन्तु हलके, पोले, धारारहित परन्तु खेखसे (ककोड़ा) की तरह कण्टकित तथा कुण्ठित-शंक्वाकार अग्रवाला होता है। फलों के ऊपर घने बारीक और नरम कांटे खड़े होते हैं, और पक्व फलों की रंगत पिलाई लिये होती है। फलों के अन्दर का अवकाश जालीदारतन्तुओं से पूर्ण होता है, तथा स्थूलतः तीन कोष्ठों में विभक्त-सा मालूम होता है। स्फुटन के समय शंक्वाकार अग्र ढक्कन की भाँति पृथक् हो जाता है। प्रत्येक फल में लगभग १८ तक बीज निकलते हैं, जो लट्वाकार चपटे, कालेरंग के तथा तलस्पर्श में खुरखुरे होते हैं। बीज-त्वक् (*testa*) बहुत कड़ी होती है, तथा अन्दर की मज्जा (मग्ज या गिरी) सफेद होती है। फलों के अन्दर का तन्तुलभाग स्वाद में अत्यन्त तिक्त होता है। मुख्यतः बन्दाल का सक्रिय-अंश यही होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—आपाततः देखने में बन्दाल डोडा भी कर्कोटकी या खेखसे के फलों-जैसा मालूम होता है। किन्तु खेखसाका फल तीक्ष्णाग्र और चोंचदार होता है। कहीं-कहीं बन्दाल की जाति की एक दूसरी लता (**Luffa graveolens** *Roxb.*) भी पायी जाती है, जिसके फल भी आपाततः देखने में बन्दाल-जैसे होते हैं। किन्तु उक्त लता के काण्डसूत्र ३-४ शाखाओंवाले, पुष्प पीले; पुं-पुष्प गुच्छबद्ध तथा पुंकेशर संख्या में ५ होते हैं, जब कि देवदाली में यह संख्या में केवल तीन तथा पुष्प भी सफेद होते हैं। इसके फल भी देवदाली सदृश कांटेदार होते हैं, किन्तु उक्त कण्टकाकार वृद्धियाँ बन्दाल की अपेक्षा मुलायम होती हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—बन्दाल के फलों को मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए, और इसपर एक लेबिल लगाना चाहिए जिसपर 'विष' लिखा हो।

संगठन—बंदाल में लुफ्फीन (*Luffein*) नामक तिक्तसत्व पाया जाता है, जिसकी क्रिया इन्द्रायण में पाये जाने वाले कोलोसिन्थिन् नामक तत्त्व की भाँति तीव्रवामक एवं रेचक (उभयतोभागहर) होती है। बीजों में एक स्थिरतैल पायाजाता है; जो कड़वा नहीं होता।

वीर्यकालावधि। फल—४ वर्षतक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषहर, विशेषतः कफपित्तहर। अल्पमात्रा में यह दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक तथा कटुपौष्टिक, किन्तु अधिकमात्रा में वामक एवं रेचक (उभयतोभागहर) तथा कृमिघ्न एवं विषघ्न होता है। इसके अतिरिक्त रक्तशोधक, शोथहर, कफ-निःसारक मूत्रल, गर्भाशय-संकोचक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न आदि भी है। स्थानिकप्रयोग से बन्दाल व्रणशोधन एवं रोपण तथा लेखन और (नस्य से) शिरोविरेचन होता है। यूनानीमतानुसार बन्दाल तीसरे दर्जे में गरम एवं खुष्क है। अहितकर—देवदाली एक उग्र स्वरूप की औषधि है। मात्राधिक्य से घातक परिणाम हो सकते हैं। निवारण—स्नेहद्रव्य। कामला एवं कफज शिरोरोग में इसका नस्य उपयोगी होता है। घ्राणाज्ञान, पीनस एवं अपस्मार में इसको पीसकर, गोघृत में मिलाकर नाक के अन्दर टपकाते हैं। पीत कामला को नष्ट करने के लिए २-३ बंदालडोडा को रात्रि में जल में भिगोकर छोड़ देते हैं। प्रातःकाल उसमें से २-३ बूंद पानी लेकर नाक में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टपकाते हैं। इससे नाक से पीला पानी बहता है, और आँखों की पिलाई दूर होजाती है। बंदालडोडे का पीसकर, टिकियाबनाकर घृताक्तकर अर्शांकुरों पर बाँधने या अग्निपर डालकर धूनी देने से मस्से सूख-कर झड़जाते हैं। 'पंचकर्म' में देवदाली का उपयोग वमन-विरेचन कराने के लिए किया जाता है। जीमूतक (बंदाल) की क्रिया कड़वी तोरई तथा इन्द्रायण की भाँति होती है।

विशेष—चरकोक्त एकोनविंशतिफलानि द्रव्यों (सू० अ० १) में तथा वमन द्रव्यों (सू० अ० २) में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) ऊर्ध्वभागहर एवं उभयतोभागहरगण के द्रव्यों में 'जीमूत' या 'जीमूतक' भी है।

बकायन (महानिम्ब)

नाम। सं०—महानिम्ब, द्रेक। हिं०—बकाइन, बकायन। द०—गौरीनीम। म०—बकाणा (णि) निंब। गु०—बकान लींबड़ो। बं०—द्रेक। (देहरादून) बकाइन, डेक। (जौन-सार) डेकनोई। बं०—घोड़ानिम्। फा०—ताक, आज़ाद दरख्त। अं०—पर्सियन लिलेक (*Persian Lilac*)। ले०—मेलिआ आज़ेडाराक (**Melia azedarach** *Linn.*)।

वक्तव्य—किसी-किसी ने 'आजाददरख्त' को इससे भिन्न माना है। 'घोड़ानिम्ब' या 'अरलु' अन्यत्र आइलान्थुस एक्सेल्सा **Ailanthus excelsa** *Roxb.* (*Family* : *Simarubaceae*) को कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। निम्ब-कुल (मेलिआसे *Meliaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय के निम्न प्रदेशों (६०२ से ९१४.४ मीटर या २,०००—३,००० फुट की ऊँचाई तक) तथा कश्मीर, दक्षिणभारत एवं भारतवर्ष में अन्यत्र भी इसके 'लगाये हुए' तथा 'जंगली वृक्ष' मिलते हैं। इसके अतिरिक्त बलूचिस्तान, फारस एवं चीन में भी इसके वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। बकायन के 'शुष्क फल' एवं 'बीज' पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। यह नीम की जाति का और उसके समान एक बड़ा वृक्ष है। पत्र २२.५ सें० मी० से ४५ सें०मी० या ९ इञ्च से १८ इञ्च लम्बे, सपत्रक पक्षवत्, जो प्रायः द्विपक्षवत् (*bipinnate*) किन्तु कभी-कभी त्रिपक्षवत् (*tripinnate*) भी होते हैं। पत्रक (*leaflets*) संख्या में ३-७ होते हैं, जो १.२५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $1\frac{1}{2}$ इञ्च) लम्बे, लट्वाकार—भालाकार तथा अग्र नुकीला एवं लम्बा (*acuminate*) होता है। पत्रपट (पत्तियों के किनारे) नीम की पत्तियों की भाँति आरा की भाँति दन्तुर (*serrate*) होते हैं। पुष्प नीली आभा लिये श्वेतवर्ण के, जो सवृन्तकाण्डज मञ्जरियों या पुष्प-गुच्छों (*axillary cyme-bearing panicles*) में निकलते हैं। पुष्पवाहकदण्ड (*peduncle*) ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० या ३ इञ्च से ४ इञ्च लम्बा होता है। पुष्प बाह्यकोष ५ गम्भीर खण्डों वाला (*deeply 5-lobed*) तथा दलपत्र संख्या में ५, जो $\frac{1}{2}$ सें०मी० से $\frac{3}{4}$ सें मी० ($\frac{1}{5}$ इञ्च से $\frac{3}{10}$ इञ्च) लम्बे तथा रूपरेखा में पतले एवं अभिप्रासवत् (*linear-oblanceolate*) होते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) गोलाकार, व्यास में १.२५ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इञ्च, देखने में निबकौली (नीम की फली) की भाँति तथा हरेरंग के होते हैं, जो पकने पर पीले हो जाते हैं। पकेफल पहले तो चिकने किन्तु बाद में झुर्रीदार (*wrinkled*) हो जाते हैं। पकने के बाद भी फल काफी दिनों तक पेड़पर लगेरहते हैं। अन्दर फल प्रायः ५-कोष्ठीय होते हैं, जिनमें प्रत्येक में एक-एक बीज करके ५ बीज (*5-celled & 5-seeded*) होते हैं। पतझड़काल—दिसम्बर से मार्च। पुष्पागम—मार्च से मई तक। फलागम—शीतकाल। इसके वृक्ष से भी नीम की भाँति गोंद निकलता है।

उपयोगी अंग। जड़ की ताजीछाल, पत्र, फूल, फल एवं गिरी से प्राप्त तैल।

मात्रा। बीजचूर्ण-$\frac{1}{2}$ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा।
छाल—६ ग्राम से १२ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।
त्वक् क्वाथ—$2\frac{1}{2}$ तोला से ५ तोला।
पत्रस्वरस—१ तोला से २ तोला।
पत्रचूर्ण—२ ग्राम से ४ ग्राम या २ माशा से ४ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बकाइन के जड़ की ताजीछाल मोटी होती है, जो बाहर से गाढ़े भूरेरंग की तथा खुरदरी एवं जगह-जगह ग्रंथिल (*warty*) सी होती है। अन्तस्तल सफेद तथा छाल का अन्तर्वस्तु गुलाबीरंग का होता है। स्वाद में यह कड़वी, तिक्त एवं किंचित् कसैली तथा उत्क्लेशकारी होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण–उपयोगी अंगों को संग्रहकर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–इसका गुणोत्पादकवीर्य एक हल्का पीला अक्रिस्टली तिक्तरालदार, क्षारोदगुणविरहित पदार्थ है। इसके अतिरिक्त इसमें शर्करा होती है। छाल के बाहरी भाग में एक कषायिन या टैनिन (*tannin*) होती है। वीर्यवान्भाग इसका 'अन्तःछाल' है। फलों में एक विषैलाघटक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त नीम की भाँति मार्गोसीन (*Margosine*) नामक तिक्तसत्व पाया जाता है, जो ज्वरनाशक होता है। गिरि से प्राप्त स्थिर तैल में गन्धक पाया जाता है। इसके गुणकर्म 'नीमकौलीके तेल' की भाँति होते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कटु, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–अनुष्ण। प्रभाव–अर्शोघ्न। प्रधानकर्म–अर्शोघ्न, कृमिघ्न, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, प्रमेहघ्न, कटुपौष्टिक (अल्पमात्रा में) तथा गर्भाशयसंकोचक आदि। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है। अहितकर–यकृत् एवं आमाशय को। निवारण–अनीसूं। प्रतिनिधि–तज एवं जावित्री।

विषाक्त प्रभाव–अधिक मात्रा में (७–८ बीज) प्रयुक्त करने से विषाक्तता होने की आशंका होती है। इससे मादकता होती तथा अन्ततः मृत्यु तक हो जाती है।

मुख्य योग–अर्शोघ्नवटी, हब्बे बवासीर।

विशेष–सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) पिप्पल्यादिगण एवं अधोभागहरवर्ग (सू० अ० ३९) में ('रम्यक' नाम से–"रम्यको द्रेक्का, 'बकाइण' इति लोके डल्हणः) महानिम्ब भी है।

बच–दे०, 'वचा'।

बछनाग (< वत्सनाभ)

नाम। सं०–वत्सनाभ, विष, अमृत, महौषध, नेपाल, शृङ्गीविष। हिं०–सिंगियाविष, मीठाजहर, बछनाग (भा० बाजार)। पं०–मीठातेलिया, मीठाविष। गु०–बछनाग। मरा०–सिंगीमोहरा। बं०–मीठे विष। ग्रीक–*Akoniton*> (ले०) *Aconitum*। (अं०) एकोनाइट (*Aconite*)। (पौधे का वानस्पतिक नाम)–(१) आकोनीटुम् फेरोक्स (**Aconitum ferox** *Wall.*); (२) आकोनीटुम् चास्मान्थुम् (**Aconitum chasmanthum** *Stapf.*)। वत्सनाभ (>बछनाग) संज्ञा का प्रयोग सामान्यरूपसे इसके पौधे तथा मूल दोनों ही के लिए होता है। उपर्युक्त 'ग्रीक' एवं 'लेटिन' नाम सम्भवतः कालासागरतटपर स्थित '*Acona*' नामक प्राचीन बन्दरगाह के नामपर रखा गया था। इसके आसपास 'एकोनाइट' के पौधे प्रचुरता से पाये जाते थे। उक्त लेटिन '*Aconitum*' वानस्पतिकनामकरण में जेनरिक 'Generic' नाम बनगया। उक्त संज्ञाओं के देखने से प्रतीत होता है, कि भारतीय एवं योरोपीय संज्ञाएँ एक-दूसरे से भिन्न अपनी-अपनी परम्पराओं से अनुबद्ध हैं। यूरोपीय प्रजाति का नाम आकोनीटुम् नापिलुस् (**Aconitum napellus** *Linn.*) है।

वानस्पतिक-कुल। वत्सनाभ-कुल (रानुनकुलासे *Ranunculaceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष में हिमालयप्रदेश में सिक्कम से लेकर उत्तरपश्चिमी हिमालय तक १०,००० फुट से १५,००० फुट की ऊँचाई पर इसके पौधे पाये जाते हैं। एकोनाइट की अनेक प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जो 'विषैली तथा 'निर्विषैली' दोनों प्रकार की होती हैं। इनके पुष्प बड़े आकर्षक होते हैं। विषैली प्रजातियों का पंचाङ्ग विषैला होता है। फूलों को सूँघने से भी बेहोशी हो जाती है। किन्तु सर्वाधिक विषाक्तता इनकी शृंगाकार जड़ों में होती है, और व्यवहारार्थ इन्हीं 'कन्दाकारजड़ों' का संग्रह कियाजाता है। उक्त जड़ों का संग्रह द्विवर्षायु पौधों से किया जाता है, जिनमें दो-दो जड़ें ऊपर आपस में जुड़ी रहती हैं। पहले वर्ष की जड़ (*parent root*) दूसरे वर्षकी जड़ (*daughter root*) की अपेक्षा बड़ी तथा मोटी होती हैं। आकार आधार पर ही इन्हें 'मेषशृंगी', 'शृंगी' तथा 'वत्सनाभ' आदि संज्ञायें दी गयी है। **A. chasmanthum** प्रायः उत्तरपश्चिमहिमालय में तथा **A. ferox** नैपाल में पाया जाता है। पहले अमृतसर हिमालय की अन्य ओषधियों की भाँति वत्सनाभ की भी मंडी था। अब यह दिल्ली तथा सीधे बम्बई आदि को जाता है। बाजारों में बछनाग विषैली ओषधियों के अधिकृत विक्रेताओं के यहाँ मिलता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त-परिचय। क्षुप–बहुवर्षायु। मूल–कन्दयुक्त, २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इंच से ३ इञ्च लम्बा, ०.६२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० ¼ इञ्च से १ इञ्च मोटा गाजर की आकृति के समान, बाह्यवर्ण धूसर और अन्तःवर्ण श्वेताभ-स्निग्ध तथा किंचित् चमकयुक्त। तना–सीधा गोल, शाखा–सीधी कोमल और हरिताभ। पत्र–परस्पराभिमुख, आकृति में सम्भालू पत्र के समान। पुष्प–रक्ताभश्वेत तथा पीत। फल–गोलचिकने।

उपयोगी अंग–मूलकन्द।

मात्रा–६२.५ मि० ग्रा० से १२५ मि० ग्रा० या ½ रत्ती से १ रत्ती।

संग्रह एवं संरक्षण–वत्सनाभ के 'शोधित मूलों' को स्वच्छ और कार्कयुक्त शीशियों में अनार्द्र तथा शीतल स्थान पर रखें और शीशी पर 'विष' का संज्ञापक लगा दें।

संगठन–एकोनाइट एवं स्युडो–एकोनाइटिन नामक विषाक्त तत्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष (कृमिभक्षित न होने पर कईवर्ष)।

स्वभाव। गुण–रूक्ष, सूक्ष्म। **रस**–मधुर। **विपाक**–कटु। **वीर्य**–उष्ण।

मुख्य योग। मृत्युञ्जयरस, संजीवनीवटी, त्रिभुवनकीर्ति रस।

विशेष–वस्तुतः प्राकृतिक वत्सनाभ का वर्ण श्वेत होता है। अमृतसर में व्यापारी उसको विशेष विधि से रंगकर काला बनाते हैं। इस प्रकार रंगे हुए वत्सनाभ में कीड़े नहीं लगते।

बड़ा गोखरू–दे०, 'गोखरू बड़ा'।

बड़ी ईलायची–दे०, 'इलायची बड़ी'।

बड़ी कटाई (कटेरी)–दे०, 'कटाई बड़ी'।

बनफ़शा (बनफसा)

नाम। हिं०, म०, गु०–बनफसा (शा)। फा०–बनफ़्शः। अ०–बनफ़्सज, फ़रफ़ीर। अं०–स्वीट-वायोलेट (*Sweet-Violet*)। ले०–विओला ओडोराटा (**Viola odorata** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। वनफ़शादि-कुल (विओलासे *Violaceae*)।

प्राप्तिस्थान–बैंगनीफूलवाले बनफ़शा का फारस आदि स्थान है। जहाँ यह प्रचुरता से स्वयंजात होता है। इसके निकटतम भेद (*varieties*) भारतवर्ष में कश्मीर एवं अनुष्णशीत पश्चिमीहिमालय में १,५२३ मीटर से १८२८.८ मीटर या ५,००० फुट से ६,००० फुट की ऊँचाई पर जंगलों में स्वयंजात होते हैं। उक्त क्षेत्रों में अनेक पहाड़ी स्थानों (*hill-stations*) पर बनफ़शे की खेती भी की जाती है। भारतीय बाजारों में बनफ़शा मुख्यतः फारस से तथा कश्मीर से आता है।

संक्षिप्त-परिचय। यह एक क्षुद्रवनस्पति है, जिसकी पत्तियाँ हृदयाकृति गोल, अधःपृष्ठपर रोमश तथा शिरावंधुर होती हैं, और ब्राह्मी की पत्तियों की भाँति दाँतेदार दिखाई पड़ती हैं। फूल बैंगनी नीलेरंग के झुमकेदार होते हैं, और उसमें से बड़ी ही मनोरम सुगंधि आती है। पुराना पड़नेपर यह भूरे या पिलाई लिये सफेद हो जाते हैं। जड़ ५-६ उपमूलयुक्त पतली होती है। इसका पंचाङ्ग "बनफसा" तथा फूल "गुले बनफशा" एवं जड़ "बीखे बनफशः" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

उपयोगी अंग। पञ्चाङ्ग (बनफशः) एवं पुष्प (गुले बनफशः)।

मात्रा। ५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा। (स्वेदजनन एवं कफघ्न कर्म के लिए) ६२५ मि० ग्रा० से १.२५ ग्राम या ५ रत्ती से १० रत्ती पंचाङ्ग, तथा रक्तस्तम्भन के लिए १.८७५ ग्राम से २.५ ग्राम या १५ रत्ती से २० रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–'बनफसा' नाम से इसका सुखाया हुआ 'पंचाङ्ग' या गुलेबनफशा नाम से पृथक् रूप से केवल इसका 'पुष्प' दोनों ही चीजें बाजार में मिलती हैं। बम्बईबाजार में यह दोनों फारस से आती हैं, और वहाँ से अन्य भारतीय बाजारों में भेजी जाती हैं। भारतीय बाजारों में सीधे अथवा बम्बई होकर उक्त दोनों ही द्रव्य कश्मीर से भी आते हैं। इनको 'कश्मीरी बनफशा' या 'बागबनफशा' कहते हैं। पुष्पों के रंगभेद से बनफशा के कई भेद होते हैं, जिनमें नीले या जामुनीरंग मिश्रित (नीललोहित *purple*) फूल की वनस्पति अधिक उत्तम समझी जाती है। इस दृष्टि से फारस का बनफशा कश्मीरी बनफशे की अपेक्षा अधिक अच्छा होता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। बनफशे की जड़ (बीख़ बनफशा) फीके पीलेरंग की तथा कौवे की चोंच के बराबर मोटी एवं टेढ़ी-मेढ़ी होती है, जिसमें ४-५ पतले उपमूल लगे होते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–उत्तरीभारत में असली बनफशे के स्थान में विओला सिनेरेआ (**Viola cinerea** *Boiss.*) तथा विओला सेर्पेन्स (**Viola serpens** *Wall.*) जाति का बनफशा भी प्रयुक्त किया जाता है। इनके गुण-कर्म भी बहुत-कुछ असली बनफशे की ही भाँति होते हैं। इनमें प्रथम प्रजाति बजीरिस्तान, पंजाब, बलूचिस्तान तथा सिंध, काठियावाड़ एवं पश्चिमी राजपुताने की पहाड़ियों पर जंगलीरूप से, तथा द्वितीयप्रजाति समस्त भारतवर्ष के पहाड़ी इलाकों में जगह-जगह पायी जाती है।

संग्रह एवं संरक्षण–बनफशा को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में तथा अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए तथा सूर्य प्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन। इसमें बनफशोन या वायोलीन (*Violine*) नामक इपेकोक्वाना में पाये जाने वाले इमेटीन की भाँति वामक ऐल्केलाइड् (क्षारोद), वायोला-क्वर्सेट्रिन (*Violaquercitrin*) नामक पीलासत्व, अल्पमात्रा में उत्पत् तैल, कई रंजकतत्त्व तथा शर्करा प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं। बनफशा के सभी अंगों में ग्लूकोसाइड के रूप में 'मेथिल सेलिसिलेट' पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध। रस–मधुर, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–ज्वरघ्न (विशेषतः वातश्लैष्मिक ज्वर में उपयुक्त), श्लेष्मनिस्सारक, रक्तस्तम्भक, पित्तसंशमन, उरः कंठमार्दवकर। यूनानी मतानुसार यह पहले दर्जे में शीत एवं तर होता है। इसका खमीरा और शर्बत मलावरोध, प्रसेक–प्रतिश्याय और ज्वर में उपयोगी होते हैं। 'रोग़नबनफशा' शिरोभ्यंग से मस्तिष्कस्नेहन एवं स्वाप्नजनक (निद्राकारक) होता है। अहितकर–आकुलताकारक। निवारण–नीलूफर और मर्जञ्जोश। प्रतिनिधि–खुब्बाजी के पत्र तथा गावजबान एवं मुलेठी।

मुख्य योग–बनफशादिक्वाथ, शरबतबनफशा, खमीरा बनफशा, गुलकन्द बनफशा एवं रोग़न बनफशा।

बबूल (बब्बूल)

नाम। सं०–बब्बूल। हिं०–बबुल, बबूल, बबुर, बबूर, कीकर। पं०–किक्कर। बं०–बाबला। सिंध–बबुर। मा०–बावलियो। म०–बाभूल। गु०–बाबल। अं०–ऐकैशिया ट्री (*Acacia Tree.*)। ले०–आकासिआ आराबिका (**Acacia arabica** *Willd.*)। उपर्युक्त नाम इसके वृक्ष के हैं। (गोंद) हिं०–बबूल का गोंद। अ०–समग़ अरबी। ले०–गम आकासिआ (*Gum Acacia*), गम अरेबिक (*Gum Arabic*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुलः बब्बूल-उपकुल (लेगूमिनोसेः माइमोसासे *Leguminosae : Mimosaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्तभारतवर्ष में बबूल के 'जंगली' या 'लगाये हुए' वृक्ष मिलते हैं। सिंध तथा दकन एवं राजस्थान में बबूल के बड़े-बड़े जंगल पाये जाते हैं। बबूल की छाल एवं गोंद प्रसिद्ध व्यावसायिक द्रव्य हैं। छाल का उपयोग चमड़ासिझाने के लिए भी किया जाता है। बबूल का गोंद सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त-परिचय–बबूल के मध्यमकद के वृक्ष होते हैं, जो सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। काण्डत्वक् गाढ़े भूरेरंग की या कालिमालिये होती है, जिसपर लम्बाई के रुख दरारें (*longitudinally fissured*) पड़ी होती हैं। शाखाएँ गोल, सरल तथा झुकी हुई होती हैं। कोमल एवं नवीन शाखाएँ चिकनी होती हैं, जिनका दातून किया जाता है। अनुपत्रों का रूपान्तर काँटों में (*stipular spines*) होता है, जो ०.६२५ सें० मी० से ५ सें० मी० ($\frac{1}{4}$ इंच से २ इञ्च) तक लम्बे, चिकने, सफेद या धूसर वर्ण के और अग्र पर नुकीफे होते हैं। पत्र द्विपक्षवत्, ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इञ्च से ४ इंच लम्बे होते हैं। उपपक्ष या पक्षक (*pinnae*) ४ युग्म से ९ युग्म, २.५ सें० मी० या १ इञ्च लम्बे तथा छोटे वृन्त युक्त होते हैं। वत्रक १० से २५ युग्म, ०.३१२५ सें० मी० से ०.४२५ सें० मी० ($\frac{1}{8}$ इंच से $\frac{1}{6}$ इंच) तक लम्बे, ०.१२५ सें० मी० से ०.२० सें० मी० ($\frac{1}{20}$ इंच से $\frac{1}{12}$ इंच) तक चौड़े, रेखाकार एवं चिकने होते हैं। ग्रीष्म-ऋतु में फूल आते हैं, जो पीलेरंग के होते हैं, और गोलाकार मुण्डकों (*globose heads*) में लगते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। पुष्पवाहक-दण्ड पत्रकोणों से निकलते हैं, और प्रत्येक २ से ६ पुष्पों को धारण करते हैं। जाड़ों में फलियाँ लगती हैं, जो प्रगल्भ होने पर ७.५ सें० मी० या ३ इञ्च से ६ इञ्च तक लम्बी, १.२५ सें० मी० (½ इंच) तक चौड़ी एवं चपटी तथा बाहर से देखने में खाकस्तरी होती हैं। प्रत्येक फली में ८-१२ तक चपटे बीज होते हैं। बीजो के बीच-बीच में फली दबी होती है, जिससे देखने में मालाकार (*moniliform*) मालूम होती है। बबूल के तने पर कुछ लालिमा लिये सफेदरंग का गोंद निकलता है, जो प्रायः स्वयं स्रवित होता है। त्वचा पर क्षत करनेसे निर्यास जल्दी और अधिक मात्रा में निकलता है। गर्मियों में तथा नये वृक्षों से अपेक्षाकृत गोंद अधिक निकलता है। बबूल की लकड़ी जलाने से लिए बहुत उत्तम समझी जाती है।

उपयोगी अंग—त्वक् (छाल), निर्यास (गोंद), फल एवं पत्र।

मात्रा। छाल क्वाथार्थ—६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तो०।

फलचूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

पत्र—२ ग्राम से ४ ग्राम या २ माशा से ४ माशा।

गोंद—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बबूल की छाल, कड़ी काष्ठीय, बाहर से कालिमालिये, अन्दर से मुरचई भूरेरंग की होती है। बाह्यतल खुरदुरा एवं अनुलम्ब दिशा में अनेक दरार-युक्त होता है। अन्तस्तल चिकना एवं रेशेदार होता है। स्वाद में यह कसैली एवं लुआबी होती है। (गोंद) बबूल के गोंद के गोल-गोल अथवा लम्बगोल, छोटे-बड़े अश्रुवत् दाने होते हैं। बाजारों में जो गोंद मिलता है, उसमें समूचे टुकड़े या इनके अनियमित रूपरेखा के टूटे हुए टुकड़े भी होते हैं, जो रंग में सफेद ते लेकर हल्के गुलाबी या भूरे तथा कभी कालिमा लिये होते हैं। इन टुकड़ों पर अनेक सूक्ष्म दरारें (*minute fissures*) पड़ी होती हैं। टूटा हुआ तल चमकदार होता है। सफेद दाने अधिक उत्तम समझे जाते हैं। बबूल का गोंद प्रायः गन्धहीन तथा स्वाद में कुछ मिठास लिये फीका और लुआबी होता है। इसका चूर्ण हल्के भूरे या पीताभ वर्ण का होता है। विलेयता—तोल में दुगुने जल में बबूल का गोंद पूर्णतः घुल जाता है, जिससे चिपचिपा गाढ़ा लसीला विलयन प्राप्त होता है, जो प्रतिक्रिया में कुछ-कुछ 'आम्लिक' होता है। उक्त विलयन में और पानी मिलाने पर गोंद का कुछ भाग तलस्थित हो जाता है। ऐल्कोहल् (९०%) में गोंद अविलेय होता है। भस्म—अधिकतम ४%। अम्ल में अविलेयभस्म—अधिकतम ½%। द्रवांश—अधिकतम १५%। अपवर्तनांक (*Optical Rotation*)—ऐकैशियाअरेबिका के गोंद का १०%बल का जलीयविलयन दक्षिणप्रकाशपरावर्ती (*Dextrorotatory*) होता है; किन्तु ऐकैशिया सेनेगलसे प्राप्त गोंद का विलयन वाम-प्रकाशपरावर्ती (*Laevorotatory*) होता है।

परीक्षण। (१) बबूल के गोंद के २%बल का जलीय विलयन १० मि० लि० (१० सी० सी०) एक परख-नलिका में लें। इसमें ३ बूंद (०.२ मि० लि०) डायल्यूट सॉल्यूशन ऑव लेड-सबएसिटेट (*Dilute Lead Subacetate Solution*) डालें। ऊर्णमय अधःक्षेप (*flocculent precipitate*) होगा। (२) बबूल के गोंद का २%बल का जलीयविलयन बनाकर उबाल लें, और इसे ठंढा होनेपर इसमें आयोडीन सॉल्यूशन मिलाने से यदि विलयन का रंग हल्का नीला या लाल नहीं होता, तो यह नमूने में स्टार्च या डेक्स्ट्रिन के अभाव का द्योतक होता है। (३) एक परख नलिका में बबूल के गोंद का २% बल का जलीय विलयन १० मि० लि० लें। इसमें १½–२ बूंद (०.१ मि० लि०) फेरिक क्लोराइड सॉल्यूशन डालें। अब विलयन न तो नीलिमा लिये काले रंग का (*bluish-black*) होता है, और न इस रंग का अधःक्षेप ही होता है। यह टैनिनबहुल गोंदों (*tannin-containing gums*) के मिलावट के अभाव का द्योतक होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—बबूल के गोंद का संग्रह ऐकैशिया सेनेगल (**A. senegal** *Willd.*) प्रजाति से भी किया जाता है। और यह गोंद अधिक साफ एवं उत्तम होता है। इसके वृक्ष भारतवर्ष में सिंध, पंजाब एवं राजपूताने में पाये जाते हैं। अफ्रीका, अरब आदि विदेशों में गम-अरेबिक का संग्रह प्रायः इसी प्रजाति से किया जाता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वीर्यकालावधि। फल, पत्र–१ वर्ष। छाल–२वर्ष। गोंद–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–गुरु, रूक्ष। रस–कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। गोंद–स्निग्ध, मधुरकषाय रस, मधुर विपाक और शीतवीर्य होता है। कर्म–कफपित्तशामक, व्रणरोपण, स्तम्भन, संकोचक, रक्तरोधक, कफघ्न, गर्भाशयशोथ एवं स्रावहर, कुष्ठघ्न, दाहप्रशमन, विषघ्न। गोंद–वातपित्तशामक, स्नेहन, ग्राही, मूत्रल, वृष्य, बल्य आदि। यूनानीमतानुसार (पत्र, फली, छाल आदि) दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष हैं; तथा बबूल का गोंद अनुष्ण शीत एवं दूसरे दर्जे में खुश्क होता है। अकाकिया भी दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष होता है। बबूल की कोमल फलियाँ एवं पत्र श्वेतप्रदर एवं शुक्ररोग तथा अतीसार आदि में दिये जाते हैं। छाल, अतीसार-प्रवाहिका नाशक क्वाथों में पड़ता है। इसके क्वाथ से कासहर गुटिकाएँ बनायी जाती हैं। बबूल के गोंद के लुआब में औषधियों को गूंधकर गोलियाँ और चक्रिकाएँ बनायी जाती हैं, तथा पौष्टिक योगों में भी यह पड़ता है। उरःकंठ के खरत्व, फुफ्फुसव्रण, उरःक्षत, प्रवाहिका और अतीसार में भी इसका उपयोग होता है।

मुख्य योग–बब्बूलारिष्ट, लवंगादि वटी, अकाकिया, दवाए जरयान कोहना, सुतून पोस्त मुग़ोलाँ, कुर्स अक़ाकिया।

विशेष–पाश्चात्य भैषज्य-कल्पना में भी बबूल के गोंद का व्यवहार किया जाता है। एतदर्थ यह इमल्सन-निर्माण तथा टैबलेट, पिल एवं मुख-चक्रिका (*Lozenges*) आदि बनाने के लिए प्रयुक्त होता है।

बरगद (वट)

नाम। सं०–वट, न्यग्रोध, बहुपाद, रक्तफल, शुङ्गी, क्षीरी। हिं०–बड़, बर, बरगद। बं०–वटगाछ। प०–बूहड़। म०–वट। गु०–वड, वडलो। सिं०–नुग। मल०–आल (*Al*), पेराल (*Peral*)। ता०–आलमरम् (*Al-maram*), वटमरम् (*Vata-maram*)। फा०–दरख्ते रीशः। अ०–जातुज्जवानिब, कबीरुल्अश्जार। अं०–बैनीयन-ट्री (*Banyan-Tree*)। ले०–फ़ीकुस बेंगालेंसिस (**Ficus bengalensis** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। वटादि-कुल (ऊर्टिकासे *Urticaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालय की तराई, दक्षिण का पश्चिमी पठार तथा भारतवर्ष में अन्यत्र सभी जगह इसके 'स्वयंजात' एवं 'लगाये हुए' वृक्ष मिलते हैं। उत्तम छायावृक्ष होने के कारण सड़कों के किनारे अथवा गाँवों के आस-पास लगाये हुए इसके वृक्ष बहुधा मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय–बरगद के सदाहरित विशालकाय छाया-वृक्ष होते हैं, जिसकी मोटी शाखाएँ प्रायः चारों ओर पार्श्वों की ओर फैली रहती हैं। इनसे अनेक वायव्य जड़ें (*aerial roots*) निकलकर झूलती रहती हैं, जो कभी-कभी जमीनतक पहुँच जाती हैं और वृक्ष को सहारा देवे (*propr oots*) तथा जमीन से खाद्यरस पहुँचाने का काम करती हैं। कोमल टहनियाँ सूक्ष्म-मृदु रोशम होती हैं। पत्तियाँ एकान्तर (*alternate*), १० सें० मी० से २० सें० मी० या ४ इञ्च से ८ इञ्च लम्बी तथा ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इञ्च से ५ इञ्च चौड़ी, रूपरेखा में लट्वाकार या अण्डाकार, कुण्ठिताग्र (*obtuse*), आधारकी ओर किंचित् हृदयाकार (*subcordate*) या गोल तथा किनारे सरल (*entire*) होते हैं, और वयन (*texture*) में काफी मोटी और चर्मिल (*thickly coriaceous*) होती हैं। पर्णवृन्त २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बे तथा मोटे होते हैं। अनुपत्र या उपपत्र १.७५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ($\frac{3}{10}$ इंच से १ इंच) तक लम्बे, चर्मिल एवं कोषाकार (*coriaceous & sheathing*) होते हैं। नर एवं अप्रगल्भ या वन्ध्या, तथा प्रगल्भ नारीपुष्प (*male, female & gall flowers*) छोटे-छोटे तथा एक ही कुम्भाभ–व्यूह या हाइपैन्थोडियम् (*hypanthodium*) में स्थित होते हैं। दलपक्ष (*receptacle*) ही बढ़ कर कुम्भाकार होकर सारे पुष्प-व्यूह को आवृत्त किये रहता है। यह व्यास में १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० या ($\frac{1}{2}$ इंच से $\frac{3}{4}$ इंच) तक होता है। उक्त पुष्प-व्यूह ही को व्यवहार में 'फल' कहा जाता है, जो पत्रकोणोद्भूत तथा जोड़ों में (दो-दो), वृन्तरहित (*sessile*), गोलाकार, किंचित् रोमश (*puberulous*) तथा कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों के आधार पर ३ चौड़े, चर्मिल, कोणपुष्पकों (*bracts*) की शय्या-सी होती है। बरगद की टहनियाँ काटकर लगा देने से ही नया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृक्ष लग जाता है। इसके वृक्षों पर भी कभी-कभी लाक्षा (*Lac*) लगती है।

उपयोगी अंग। त्वक्, क्षीर, पत्र (एवं वटशुंग), जटा, (रीशे बर्गद), तथा फल।

मात्रा। चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ से ६ माशा।
क्वाथ—२½ तोला से ५ तोला।
क्षीर—५ बूंद से २० बूंद।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। काण्डत्वक् (बरगछकीछाल)—बरगद की छाल अपेक्षाकृत मोटी होती है, किन्तु वृक्ष की आयु के अनुसार छाल की मुटाई में भी अन्तर पाया जाता है। बाह्यतल गाढ़े सलेटी खाकस्तरीरंग का होता है, और इस पर अनुलम्ब दिशा में श्वसन-रन्ध्रों के चिह्न (*lenticellate*) पाये जाते हैं। किन्तु छालपर प्रायः गम्भीर दरारें (*cracks and fissures*) नहीं पायी जातीं। छोटे वृक्षों के काण्डस्कन्ध अथवा शाखाओं की छाल बाह्यतः चिकनी, किन्तु पुराने वृक्षों में यह खुरदरी तथा कड़ी पपड़ीदार चैलीयुक्त भी होती है। चैली छुटने पर उसी रूपरेखा के खातोदर स्थल भी होते हैं। छाल का बाहरी ⅔ भाग प्रायः गुलाबी या हल्के लालरंग का (बाहर की ओर उत्तरोत्तर रंग गाढ़ा होता है) तथा दानेदार और बिन्दुकित, तथा अन्तर्भाग श्वेताभ एवं रेशेदार होता है। सूखनेपर पूरी छालका रंग धीरे-धीरे मटमैलागुलाबी और अन्ततः हल्काभूरा हो जाता है। तोड़ने पर छाल का बाहरी ⅔ दानेदार भाग खट से टूटता (*with a clean short fracture*) तथा अन्दर का शेषभाग रेशेदार और आसानी से नहीं टूटता। छाल में प्रायः कोई गन्ध नहींपायी जाती, किन्तु स्वाद में यह कसैली (*astringent*) होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—बरगद सर्वत्र सुलभ होने से आवश्यकता पड़ने पर यह ताजा प्राप्त किया जा सकता है।

संगठन—छाल और शुङ्ग में १० प्रतिशत टैनिन, मोम और रबड़ होता है। फल में तैल, ऐल्ब्युमिनाइड्स, कार्बोहाइड्रेट, तन्तु (*fibres*) एवं क्षार (भस्म) ५% से ६% होते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, रूक्ष। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रधानकर्म—वेदनास्थापन, व्रणरोपण, शोथहर, चक्षुष्य, रक्तस्तम्भक, रक्तपित्तहर, गर्भाशय-शोथहर एवं शुक्रस्तम्भक, मूत्रसंग्रहणीय, अतिसार-प्रवाहिकानाशक, गर्भस्थापन, रक्त एवं श्वेतप्रदर में विशेष उपयोगी। यूनानीमतानुसार यह पहले दर्जे में शीत और दूसरे में खुश्क तथा वटक्षीर (शीरबरगद) तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष होता है। अहितकर—आन्त्र और आमाशय के लिए। निवारण—शर्करा, मधु और कतीरा। प्रतिनिधि—गूलर का दूध।

मुख्य योग। न्यग्रोधादिचूर्ण, न्यग्रोधादिक्वाथ, न्यग्रोधाद्य घृत, माजून बरगद।

विशेष—उदुम्बर (गूलर) एवं अश्वत्थ (पीपर) की भाँति वट (बरगद) भी चरकोक्त मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय, कषायस्कन्ध एवं सुश्रुतोक्त न्यग्रोधादिगण तथा भावप्रकाशोक्त क्षीरिवृक्षों और पंचवल्कल में है।

बरना (वरुण)

नाम। सं०—वरुण। हिं०—वरुना, बरना। पं०—बरना। (सहारनपुर) बरना। ब०—बरुण। म०—हाडवर्णा, वायवर्णा। गु०—वरणो, वायवरणो, कागडाकेरी। मल०—नीर्वाल्। ले०—क्राटेवा नुर्वाला **Crataeva nurvala** *Buch-Ham.* (पर्याय—*C. relgiosa Hook. & Lh.*)।

वानस्पतिक-कुल। वरुण-कुल (काप्पारीडासे *Capparidaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (विशेषतः मलाबार, कन्नड़ एवं हिमालय की तराई, बंगाल आदि) में वरुण के जंगली तथा ग्रामों के पास उद्यानों में लगाये हुए वृक्ष मिलते है। जंगलों में प्रायः नालों के किनारे या आर्द्र जगहों में इसके वृक्ष मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—वरुण के प्रायः मध्यम कद के ७.५ मीटर से ९.१४ मीटर (२५ फुट से ३० फुट ऊँचे) पतझड़ करनेवाले अर्थात् पतझड़ी वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ बेलपत्र की भाँति त्रि-पत्रक (*3-foliolate*) होती हैं। पत्रवृन्त—१० सें० मी० से १५ सें० मी० या ४ इंच से ६ इंच लम्बे, पत्रक ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० × ३.३ सें० मी० से ७.५ सें० मी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(३ इंच से ६ इंच × १½ इंच से ३ इंच), रूपरेखा में लट्वाकार, या लट्वाकार-भालाकार, नुकीले अग्रवाले, चिकने, कुछ चर्मिल (*subcoriaceous*), अधः पृष्ठ पर फीके रंग के तथा सरलधारवाले (*entire*) होते हैं। पत्रकवृन्त (*petiolule*) कुछ कर्णाकार (*auriculate*) होते हैं। पुष्पागम वसन्तऋतु में होता है। फूल व्यास में ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ३ इंच, भूरी और जामुनीछाया लिये सफेदरंग के होते हैं, जो शाखाग्रों पर समशिख नम्य गुच्छकाकार मञ्जरियों (*lax terminal corymbs*) में निकलते हैं, और इनमें एक धीमी, मीठी सुगन्धि होती है। पुटपत्र संख्या में ४ तथा कलिकायुक्त या शीघ्रपाती (*deciduous*) तथा दलपत्र ४, आयताकार, लट्वाकार या स्रुवाकार (*spathulate*) होते हैं। पुंकेशर अनेक तथा दलपत्रों से बड़े होते हैं। कुक्षि, कुक्षिवृन्तरहित होती है। फल (*berry*) कम्बगोल, व्यास में २.५ सें०मी० से ५ सें०मी० या १ इंच से २ इंच, नीबू के आकार के तथा आषाढ़-श्रावण में लगते हैं, जो पकने पर लाल हो जाते हैं। फल-मज्जा पीलेरंग की होती है, जिसमें कई कई बीज छिटके रहते हैं। पत्रकों को मसलनेपर एक तीक्ष्ण गन्ध निकलती है। इसके पत्र, फूल और कच्चेफल का स्वाद तिक्त होता है। फल पकनेपर किंचित् मधुर हो जाता है। वरुण की जड़, छाल एवं पत्तियों का उपयोग चिकित्सा में होता है।

उपयोगी अंग। छाल, मूल एवं पत्र।

मात्रा। चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।
स्वरस—१ तोला से २ तोला।
क्वाथार्थ छाल एवं मूलत्वक्—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—वरुण की छाल मोटी एवं बाह्यतः खाकस्तरी रंग की होती है। बाह्यत्वचा अनुप्रस्थदिशा में फटी हुई या दरारयुक्त (*fissured*) होती है। त्वचा के बाह्यस्तर (*epidermis*) के नीचेका स्तर हरेरंग का तथा अन्तर्वस्तु सफेद होता है। तोड़ने पर छाल खटसे टूटती (*fracture short*) है। छाल का अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर जगह-जगह बड़ी-बड़ी अश्म-कोशाओं (*stone cells*) के पुञ्ज मालूम पड़ते हैं, जो पीले बिन्दुओं के रूप में दिखते हैं। स्वाद में छाल किंचित् तिक्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—उपयोगी अंगों को मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—छाल में सेनेगा की भाँति सैपोनिन (*Saponin*) तत्त्व पाया जाता है। अल्पमात्रा में टैनिन भी पायी जाती है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, मधुर, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—भेदन। कर्म—कफवातशामक, दीपन, अनुलोमन, पित्तसारक, भेदन, रक्तशोधक, अश्मरीभेदन एवं मूत्रल, ज्वरघ्न (अल्पमात्रा में कटुपौष्टिक) यूनानीमतानुसार वरुण तीसरे दर्जे में गरम एवं शुष्क है।

मुख्ययोग। वरुणादिक्वाथ, वरुणादिघृत, वरुणादितैल।

विशेष—वरुण की छाल उत्तम जीवाणु-नाशक औषधि है। पूयमयता (*pyaemia*) एवं जीवाणुमयता (*septicaemia*), विद्रधि, व्रण एवं गण्डमालादि रोगों में इसका व्यवहार उत्तम है। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८, चि० अ० ७) वरुणादि, वाताश्मरीनाशन एवं कफाश्मरीनाशन गण के द्रव्यों में 'वरुण' भी है।

बला (बरियारा)

नाम। सं०—बला, बाट्यालिका। हिं०—बरियार, खरैटी, बरियरा। बं०—बेडेला। पं०—खरयटी। गु०—बल, बला, खरेटी। म०—चिकड़ा। अं०—कन्ट्री मैलो (*Country Mallow*)। ले०—(१) सीडा रहॉम्बीफ़ोलिआ **Sida rhombifolia** *Linn.*; (२) सीडा कॉर्डीफ़ोलिआ (**Sida cordifolia** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। कार्पास-कुल (माल्वासे *Malvaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के उष्ण कटिबन्धीय तथा समशीतोष्ण प्रान्तों में जंगलों में तथा गाँवों के आसपास की परती जमीन एवं बगीचों में बला के 'स्वयंजात' पौधे पाये जाते हैं।

संक्षिप्तपरिचय। (१) **Sida rhombifolia** *Linn.*—इसके ६० सें०मी० से १२० सें०मी० (२ फुट से ४ फुट)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊँचे, सीधे क्षुप या गुल्मक (*undershrub*) होते हैं, जिसकी शाखाएँ तूल-रोमश (*stellate tomentose*) होती हैं। पत्तियाँ २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बी, रूपरेखा में बहुत परिवर्तनशील, सामान्यतः तिर्यगायताकार (**rhomboid**) या अभिलट्वाकार, ऊर्ध्वपृष्ठ पर प्रायः चिकनी, किन्तु अधःपृष्ठ पर मृदुरोमश होती हैं। किनारे आधार की ओर सरल, किन्तु अग्र की ओर दन्तुर (*denatate-serrate*) होते हैं। आधार की ओर यह स्फानाकार (*cuneate*) होती और तीन स्पष्ट शिराएँ होती हैं। पर्णवृन्त ०.६२५ सें० मी० या ¼ इञ्च तक लम्बे होते हैं। पुष्पवाहकदण्ड पत्रकोणों से निकलते हैं, अथवा शाखाग्रों पर समूहबद्ध होते हैं, जिनपर पीले या पीताभ-श्वेतवर्ण के पुष्प होते हैं। बाह्यकोष ५-कोणीय होता है, जिसके खण्ड त्रिकोणाकार तथा लम्बाग्र होते हैं। स्त्रीकेशर (*carpels*) संख्या में ८ से १० तक, शूक (*awns*) २ तथा छोटे होते हैं। यह एक परिवर्तनशील जाति है, जिसके अन्दर कई उपभेद पाये जाते हैं। (२) **Sida cordifolia** *Linn.*—इसके ६० सें० मी० (०.६ मीटर) से १२० सें० मी० (१.२ मीटर) या २ फुट से ४ फुट ऊँचा स्वावलम्बी गुल्मक (*erect undershrub*) होते हैं। पत्तियाँ १ इञ्च से २ इञ्च लम्बी, लट्वाकार या लट्वाकार-आयताकार, आधार हृद्वत्, कुण्ठिताग्र या कुछ नुकीले अग्रवाली, दोनों तलों पर तूल-रोमश तथा तट गोलदन्तुर (*crenate*) होते हैं। पर्णवृन्त ½ इञ्च से १½ इञ्च तक लम्बा होता है। पुष्पवाहक दण्ड पत्रकोणोद्भूत, अकेला या कई-कई साथ-साथ होते हैं। नीचे के पुष्पों के वृन्त पर्णवृन्त से बड़े, किन्तु ऊपर के छोटे होते हैं। पुष्प पीलेरंग के होते हैं। पुष्प के बाह्य एवं अभ्यन्तर दल संख्या में प्रायः ५-५ होते हैं। बीज छोटे, भूरे या कालेरंग के दानों के रूप में होते हैं। वर्षा के बाद पुष्प और फल लगते हैं। बला के बीजों को 'बीजबन्द' कहते हैं।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग (विशेषतः मूल), बीज एवं पत्र।

मात्रा। स्वरस—१ तोला से २ तोला।

चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा एवं स्थानापन्न द्रव्य। बला नाम से प्रायः 'सीडा' की उपर्युक्त दोनों जातियों का ही ग्रहण होना चाहिए। उनमें भी उत्तरप्रदेश में अपेक्षाकृत सीडा रहोम्बीफोलिया अधिक पायी जाती है। इनके अतिरिक्त बला की कई अन्य जातियाँ भी पायी जाती हैं, जिनका ग्रहण स्थान-स्थान में बला के नाम से होता है। वैसे बला-भेद के नाम से इनका ग्रहण स्थानापन्नद्रव्य के रूप में ही विचारणीय हो सकता है। (१) सीडा स्पीनोजा (**Sida spinosa** *Linn.*)—यह लगभग ३० सें०मी० या १ फुट ऊँची गुल्माकार वनस्पति होती है, जिसकी पत्तियाँ प्रायः छोटी, अग्रपर गोली और कभी ५ सें० मी० या २ इञ्च तक लम्बी होती हैं। पुष्प पीले या श्वेताभ होते हैं। पर्णवृन्त के आधार के पास प्रायः तीक्ष्ण बाह्यवृद्धियाँ (*petioles with small spiny tubercles at the base*) होती हैं। इसके भी पुष्प के रंगभेद से २ भेद होते हैं। सीडा आल्बा (**Sida alba**) के पुष्प 'सफेद' तथा सीडा आल्नीफोलिआ (**S. alnifolia**) के पुष्प 'पीतवर्ण' के होते हैं। इसको 'श्वेतपुष्पा बला' कह सकते हैं। (२) सीडा आकूटा (**Sida acuta** *Burm.*)—इसके क्षुप ६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ फुट से ३ फुट ऊँचे (कभी-कभी १.५ मीटर या ५ फुट तक) होते हैं। पत्तियाँ ३.७५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० या १½ इंच से ३½ इंच लम्बी, १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इंच से १ इंच चौड़ी, प्रासवत् (*lanceolate*) अथवा प्रासवत्-अभिलट्वाकार (*lanceolate-obovate*), चिकनी, अभ्यारावत् धारवाली होती हैं। पुष्प हल्के पीलेरंग के होते हैं। यह भी प्रायः सर्वत्र ऊषर भूमि में पायी जाती है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में जड़ों का संग्रहकर जल से धोकर सुखा लें, और मुखबन्दपात्रों में उपयुक्त स्थान में संरक्षित करें।

संगठन। जड़ों में पिच्छिलद्रव्य, वसाम्ल, राल एवं पोटासियम् नाइट्रेट आदि तत्त्व होते हैं। इसके अतिरिक्त ०.०८५ क्षारतत्त्व पाया जाता है। बीजों में क्षारतत्त्व अपेक्षाकृत अधिक होता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—वातपित्तशामक,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाड़ीबल्य, स्नेहन, हृद्य, रक्तपित्तशामक, शुक्रल, प्रजास्थापन, मूत्रल, ज्वरघ्न, बल्य, बृंहण, ओजोवर्धक।

मुख्य योग। बलाद्यघृत, चन्दनबलालाक्षादितैल, बलातैल। आदि।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) बृंहणीय महाकषाय में ('वात्यायनी' नामसे), प्रजास्थापन महाकषाय में ('वात्यपुष्पी' नाम से) तथा बल्य महाकषाय एवं मधुरस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) वातसंशमनवर्ग में 'बला' भी है।

बहमन, लाल

नाम। हिं०–लालबहमन। फा०–बहमने सुर्ख। अं०–रेड बहमन या रहैपटोनिक (*Red Bahman or Rhaptonic*), ब्लडवेन्ड सेज (*Bloodvened Sage*)। ले०–साल्विआ हेमोटाडेस (**Salvia hemotades**)। लेटिन नाम इसकी वनस्पति का है।

वानस्पतिक-कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटे : *Labiatae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष तथा खुरासान। भारतवर्ष में इसका आयात फारस से होता है। सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलता है।

उपयोगी अंग। कंदाकार शुष्कमूल।

मात्रा–५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–यह प्रसिद्ध सूखी जड़ है, जो छोटे गाजर के समान झुर्रीदार, खुरदरी, कड़ी, भारी और किसी कदर टेढ़ी होती है। यह तोड़ने पर सख्ती से टूटती है। बाहर से कालाईलिये अधिकलाल और अंदर से कमलाल होती है। साफ, भारी और लाल जड़ उत्तम समझी जाती है। इसका स्वाद लबाबी और कुछ कसैला होता है, तथा इसमें हल्की सुगंधि भी आती है। कभी-कभी बाजारों में इसके कतरेनुमा काटे टुकड़े आते हैं, जिनमें से केन्द्रस्थ काष्ठीयभाग निकाल दिया जाता है। सूक्ष्मरचना में लालबहमन की जड़ें कुछ-कुछ ऊदसलीब से मिलती-जुलती हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–इसे मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–इसमें वसा, टैनिक एसिड (*Tannic acid*) एवं बहमनीन नामक किस्टलीस्वरूप का तिक्तक्षारोद (एल्केलॉइड) प्रभृति तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव। उष्ण एवं रूक्ष तथा बाजीकर, बृंहण, शुक्रल, हृद्य, और हृदयोल्लासकर। दोनों बहमन को हृद्य और सौमनस्यजननार्थ दिल की धड़कन और हृदयदौर्बल्य में उपयोग करते हैं। एतदर्थ इसे शुफर्रेह या याकूती कल्पों में डाल कर खिलाते हैं। बाजीकर एवं शुक्रजनन कर्म के लिए अकेले इसका चूर्ण दूध के साथ या उपयुक्त औषधियों के साथ 'चूर्ण' या 'माजून' बनाकर खिलाते हैं। शरीर को स्थूल करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। अहितकर–उष्णप्रकृति को। प्रतिनिधि–दोनों बहमन एक दूसरे के प्रतिनिधि हैं। दोनों का प्रतिनिधि 'तोदरी' और 'मुसली' है।

विशेष–'बहमनसुर्ख' का उपयोग जीवक (अष्टवर्गोक्त) के प्रतिनिधिद्रव्य के रूप में भी किया जाता है।

बहमन, सफेद

नाम। हिं०–सुफेद बहमन। अ०–बहमन अब्यज। फा०–बहमने सुफ़ेद। अं०–व्हाइट बिहीन (*White Behen*), व्हाइट रहैपटोनिक (*White Rhaptonic*)। ले०–सेंटाउरेआ बेहेन (**Centaurea behen** *Linn.*)। लेटिन नाम इसकी वनस्पति का है।

वानस्पतिक-कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजीटे : *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान–फारस, सीरिया, अरमीनिया। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्यतः फारस से होता है। यह सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलता है।

उपयोगी अंग–मूल (कन्दाकार जड़)।

मात्रा–१ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशा से ७ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–यह एक सूखीजड़ होती है, जो बाहर से सफेदी लिये भूरी, अत्यंत झुर्रीदार एवं खुरदरी तथा पेंचदार या व्यावृत्त (*twisted*) होती है। शीर्ष (*crown*) से समीप विपुल वृत्ताकार रेखाओं से अंकित होती है। कभी जड़ सीधी तथा कभी नीचे की ओर क्रमशः कममोटी, और कभी सशाख होती है। कभी-कभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काण्ड का कुछ भाग भी लगा होता है। औसतन सफेद बहमन की जड़ें ६.२५ सें० मी० या २½ इंच लम्बी तथा व्यास में १.८७५ सें० मी० या ¾ इंच होती हैं। काटने पर अन्दरका भाग सफेद तथा कुछ स्पंजवत् (*spongy*) होता है। जल में भिगोने पर यह फूल जाती तथा लुबाबी हो जाती तथा स्वाद में भी लुआबी एवं किंचित् तिक्त होती है। सूक्ष्मदर्शक से देखने पर अन्दर तनुभित्तिक-ऊति या पैरेंकाइमा (*parenchyma*) का भाग होता है। वल्कल (*cortex*) की कोशाएँ भूरेरंग की तथा रूपरेखा में आयताकार होती हैं। तनुभित्तिक ऊति की कोशाओं का अन्तर्वस्तु 'आयोडीन सोल्यूशन' के संपर्क से कुछ कृष्णाभ नीली-आभा का हो जाता है। भारी, कड़ी तथा खुरासानी और अर्मनी जड़ उत्तम होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—सफेदबहमन की जड़ों को मुखबंद पात्रों में शनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—इसकी जड़ों में म्युसिलेज, शर्करा एवं वसा प्रभृतितत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। बहुत कुछ लालबहमन की भाँति।

विशेष—'सफेद बहमन' का उपयोग अष्टवर्गोक्त 'ऋषभक' नामक औषधि के प्रतिनिधि स्वरूप में किया जाता है।

बहेड़ा (बिभीतक)

नाम। सं०—अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम। हिं०—बहेड़ा। बं०—बयड़ा, बहेड़ा। अ०—बलीलज। फा०—बलीलः। अं०—बेलेरिक मायरोबलन (*Beleric Myrobalan*)। ले०—टेर्मिनालिआ बेल्लीरिका (**Terminalia belerica** *Roxb.*)। लेटिन नाम बहेड़े के वृक्षका है।

वानस्पति-कुल। हरीतकी-कुल (कॉम्ब्रीटासे *Combretacece*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्तभारत में ९१४.४ मीटर या ३,००० फुट की ऊँचाईतक, एवं लंका तथा बर्मा के जंगलों में बहेड़े के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। बहेड़े के ९ मीटर से १८ मीटर या ३० से लेकर ६० फुट तक और कभी-कभी इससे भी ऊँचे वृक्ष होते हैं। काण्डस्कन्ध लम्बा, सीधा और व्यास में १.८ मीटर से ३ मीटर या ६ फुट से १० फुट अथवा कभी-कभी ४.८ मीटर से ६ मीटर या १६ फुट से २० फुट तक भी होता है। काण्डत्वक् या छाल २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च तक मोटी श्वेताभवर्ण की और ऊँची-नीची होती है। पत्र १० सें० मी० से २२.५ सें० मी० या ४ इंच से ९ इंच लम्बे, छोटी शाखाओं पर तथा एकान्तरक्रम से स्थित एवं शाखाग्रों पर समूहबद्ध होते हैं, जिससे बिभीतक या बहेड़ा एक छायावृक्ष भी होता है। पत्तियों की रूपरेखा एवं क्रम को देखते हुए दूर से इसके वृक्ष महुए के वृक्षों की भाँति प्रतीत होते हैं। पर्ण-वृन्त या पत्तियों का डंठल २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च लम्बा होता है। पुष्प छोटे-छोटे हरिताभपीत वर्ण के एवं सुगन्धयुक्त होते हैं, और नरपुष्प एवं उभयलिंगी दोनों ही प्रकार के पुष्प एक ही मंजरी में पाये जाते हैं। बाह्यदलकोश रोमश होता है। फल लम्बगोल लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च लम्बा तथा पकने पर हलका भूरापन लिये खाकस्तरी मखमलीरंग का हो जाता है। व्यवहार में इन्हीं फलों का उपयोग 'बहेड़ा' के नाम से होता है।

उपयोगी अंग—पक्वफल (प्रायः फल का छिलका)।

मात्रा—१ से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—'छोटे बहेड़ा' के फल प्रायः गोलाकार और व्यास में १.२५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या आधे से ३ इञ्च होते हैं, और एक छोटे से डंठल के साथ लगे होते हैं। पकेफलों के बाह्यतल पर पीताभ भूरे रंग का एक सूक्ष्म मखमली आवरण होता है। फल के अन्दर पंचकोषीय गुठली होती है। गुठली को तोड़ने पर इसके अन्दर बादाम की भाँति मीठी गिरी निकलती है। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम—२ प्रतिशत।

संग्रह एवं संरक्षण। पक्वफलों को ग्रहणकर गुठली निकाल दें, और फिर इसे सुखाकर अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंदपात्रों में रखें।

संगठन—फल में १७ प्रतिशत टैनिन पाया जाता है। फल के ऐल्कोहल-विलेय सत्त्व का कुछ भाग पेट्रोलियम-ईथर में घुलनशील होता है, और कुछ भाग नहीं घुलता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम में 'स्थिरतैल' और द्वितीय में 'सैपोनिन' आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—रूक्ष, लघु। रस—कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—(फलत्वक्) श्वास, कास एवं स्वरभेदनाशक होता है। इसके अतिरिक्त यह चक्षुष्य, त्वग्रोगनाशक, दीपन-पाचन, अनुलोमन तथा संग्राही एवं मेध्य होता है। यूनानीमतानुसार यह पहले दर्जे में शीत एवं दूसरे दर्जे में रूक्ष होता। अहितकर—अन्त्र एवं गुदा के लिए। निवारण—मधु और शर्करा।

मुख्य योग—त्रिफलाचूर्ण, बिभीतकतैल, फलत्रिकादि क्वाथ एवं लवंगादि वटी।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) विरेचनोपग तथा ज्वरहर महाकषाय एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) मुस्तादिगण और त्रिफलागण की औषधियों में 'बिभीतक' या बहेड़ा भी है।

बाकुची (बावची)

नाम। सं०—बाकुची, पूतिफली, कृष्णफला, कुष्ठघ्नी। हिं०—बकुची, बाकुची, बावची। ब०—बुक्चिदाना। म०, गु०—बावची। अं०—पर्पिल फ्लीबेन (*Purple Fleabane*), सोरेलिआ सीड्स (*Psoralea Seeds*)। ले०—(१) फल (बीज)—प्सोरालेए सेमिना *Psoraleae Semina* (*Psoral. Sem.*)। (२) वनस्पति—प्सोरालेआ कोरीलीफ़ोलिआ (**Psoralea corylifolia** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल। (लेगूमिनोसे : पैपीलीओनासे *Leguminosae* : *Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष एवं लंका में बाकुची के स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। जगह-जगह इसकी खेती भी की जाती है।

संक्षिप्त परिचय—बाकुची के ६० से० मी० (०.६ मीटर) से १२० से० मी० (१.२ मीटर) या १ फुट से ४ फुट तक ऊंचे सीधे खड़े कोमल पौधे होते हैं, जो साधारणतः एकवर्षायु होते हैं। किन्तु सावधानी से रखने पर इसके क्षुप ४ वर्ष से ५ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। शाखाएँ अपेक्षाकृत कड़ी तथा ग्रंथि-बिन्दुकित (*gland-dotted*) होती हैं। पत्तियाँ—साधारण, सवृन्त, २.५ सें०मी० से ७.५ सें०मी० (१ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बी-रूपरेखा में गोलाकार तथा वयन में मजबूत (*firm in texture*), प्रायः चिकनी तथा दोनों पृष्ठों पर कृष्ण-बिन्दुकित (*dotted with black dots*) होती हैं। पुष्प नीलापनलिये बैंगनी (हल्के जामुनी) रंग के आते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत १० से ३० फूलों की सवृन्त-काण्डज सघन एकवर्ष्यक्ष मञ्जरियों या रेसीम (*dense axillauy 10-30 flowered racems*) में निकलते हैं। पुष्पवाहकदण्ड (*peduncles*) २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बे एवं मृदुरोमावृत होते हैं। पुष्प इन्हीं दण्डों पर छोटे-छोटे पुष्पवृन्तकों (*pedicels*)द्वारा धारण कियेजाते हैं। बाह्यकोष ६.१२५ मि० मी० से ४.१६ मि० मी० या बाह्यदलपुञ्ज (१/८ इंच से १/६ इंच) लम्बा तथा बाह्यतल पर मृदुरोमावृत्त होता है। आभ्यन्तरकोष या दलपुञ्ज (*corolla*) प्रायः बाह्यकोष से दुगुना बड़ा, फली (*pod*) छोटी-छोटी, कालेरंग की, लम्बगोल, चिकनी होती है, जिसमें बाह्यत्वचा (*pericarp*) बीजसे चिपकी (*adhering to the seed*) होती है। उक्त फलियाँ प्रायः अस्फोटी (*indehiscent*) होती हैं, और प्रत्येक में १-१ बीज होते हैं, जो फलियों की रूपरेखा के, कालेरंग के तथा बेल की तरह सुगन्धियुक्त होते हैं। पुष्पागमकाल—शीतकाल। फलागम—ग्रीष्म-ऋतु।

उपयोगी अंग। बीज एवं बीजों से प्राप्त तैल (*Oleo-Resinous Extract*)।

मात्रा। बीजचूर्ण १ ग्राम से ३ ग्राम १ माशा से ३ माशा (कृमिघ्नप्रभाव के लिए) ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। तैल—बाह्यप्रयोग के लिए आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाकुची के बीज प्रायः बाजार में मिलते हैं, जो मसूर के दाने की तरह, किन्तु उससे किंचित् बड़े काले या गहरे भूरे, लम्बगोल और चपटे, कड़े किन्तु अभंगुर एवं खुरदरे होते हैं। इन्हें काटने पर अंदर से सफेद मज्ज निकलता है। गंध ठीक बेल के फल सरीखा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुचिकर एवं सुगंधित, और स्वाद तिक्त एवं चरपरा होता है, जो जबान में लगता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम–२% होते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। अमेरिका की फार्माकोपिआ में बाकुची का ग्रहण कृमिघ्नकार्य के लिए किया गया था। अतएव सोरेलेआ की अन्य कई प्रजातियों का व्यवहार वहाँ किया जाता है, और गुण-कर्म की दृष्टि से वह सब भी भारतीय बाकुची जाति से मिलती-जुलती हैं।

संग्रह एवं संरक्षण। बाकुची-बीजों को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। तैल को अच्छी तरह डाटबंद शीशियों में रखकर सूखेस्थान में रखें, और सूर्यप्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन–बीजों में एक उड़नशील तैल, एक राल या रेजिन (*Resin*), एक स्थिरतैल, तथा दो क्रिस्टलाइन सत्व–सोरालेन (*Psoralen*) एवं आइसो-सोरालेन (*Isopsoralen*) पाये जाते हैं। फल की बाह्यत्वचा (*pericarp*) से सोरेलिडिन (*Psoralidin*) नामक सत्व भी प्राप्त कियागया है। बाकुची के सोरालेन एवं आइसो-सोरालेन नामक उक्त दोनों सत्व तैल में घुलनशील होते हैं। बाकुची के कुष्ठघ्न एवं कृमिघ्न यह दोनों प्रसिद्ध कर्म इन्हीं सत्वों के कारण होते हैं। रासायनिक दृष्टि से यह फूरोकूमारीन (*Furo-coumarins*) होते हैं। सोरेलिन, अंजीर में पाये जाने वाले फीकुसिन (*Ficusin*) नामक सत्व से बहुत कुछ मिलता-जुलता या तदनुरूपिक (*identical*) है।

वीर्यकालावधि। बीजों में १ वर्ष। तैल को ठीक तरह सुरक्षित रखने से कईवर्ष तक सक्रियता बनी रहती है।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–कुष्ठघ्न, एवं कृमिघ्न। प्रधान कर्म–वात-कफनाशक, कुष्ठघ्न, कटु पौष्टिक, कृमिघ्न, उत्तेजक, बाजीकरण, दीपन-पाचन, नाड़ीबल्य। प्रमेहघ्न; श्वासकासहर, ज्वरघ्न। तैल (बाह्यप्रयोग से) श्वित्रहर। यूनानीमतानुसार बाकुची दूसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क होती है। अहितकर–आनाहकारक। निवारण–दही एव स्नेहद्रव्य। प्रतिनिधि–पर्वाड़ (चक्रमर्द) के बीज।

मुख्ययोग–बाकुचीतैल।

विशेष–आभ्यन्तरप्रयोग के लिए पहले बीजों को शुद्ध कर लेना चाहिए। एतदर्थ बीजों को एक सप्ताह तक गोमूत्र या अदरक के रस में भिगोना चाहिए, और प्रति दिन इसको बदलते रहें।

बादाम मीठा (वाताद)

नाम। सं०–मिष्ठवाताद, मधुरवाताम। हिं०–मीठा बादाम, बदाम। बं०, पं०–मीठा बदाम। गु०–मीठो बदाम। म०–गोडबदाम। अं०–स्वीट आमंड (*Sweet Almond*)। ले०–आमीग्डाला डुल्सिस (**Amygdala dulcis**)। (वृक्ष) सं०–मिष्टवातादवृक्ष। फा०–दरख्त बादामशीरीं। अ०–शज्रतुल् लौंजुल्हलों। ले०–प्रूनुस आमीग्डालुस प्र० डुल्सिस **Prunus amygdalus** *Batsch. var.* **dulcis** (*DC*) *Koehne.* (*P. communis Arcang. var. dulcis Schneid.*)।

वानस्पतिक-कुल। तरुणी-कुल (रोजासे *Rosaceae*)।

आविस्थान–यह पश्चिमी एशिया में अधिकता से होता है। कश्मीर, पंजाब, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, फारस, एवं भूमध्यसागरतटीय प्रान्तों में इसके वृक्ष प्रचुरता से लगाये जाते हैं, और इन्हीं स्थानों से भारतीय बाजारों में बादाम आता है।

संक्षिप्त परिचय–बादाम के वृक्ष मध्यमकद के होते हैं, जिनकी शाखाएँ चिकनी तथा हल्केरंग की होती हैं। पूर्ण प्रगल्भ (*full-grown*) पत्तियाँ खाकस्तरी रंगकी, रूपरेखा में आयताकार-भालाकार तथा किनारे सूक्ष्मदन्तुर (*serrulate*) होते हैं। वृन्त (*petiole*) पत्ती की अधिकतम चौड़ाई के बराबर या कुछ अधिक लम्बे होते हैं। पुष्प सफेद, जो लालरंग से चित्रित (*tinged with red*) होता, तथा नयी पत्तियाँ निकलने के पूर्व ही निकलते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) बाहर से मखमली (*velvety*), किन्तु पकने पर कड़ा हो जाता है। कच्चा फल खट्टा तथा पकने पर खटमिट्ठा हो जाता है। कच्चे फलों का साग बनाते हैं। बीज या गुठली (*stone*), पार्श्वों में चिपटी तथा किंचित् झुर्रीदारसा तथा उसपर अनेक छोटे-छोटे सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इनको तोड़ने पर अन्दर मग्ज या गिरी निकलती है। बाजार में उक्त बीज ही बादाम के नाम से बिकते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपयोगी अंग—बीज या बादाम के ऊपर का कड़ा छिलका, मग्ज या बीजमज्जा तथा मग्ज से प्राप्त तैल या बीज-मज्जा तैल (बादाम का तेल—रोग़न बादाम)।

मात्रा। बीजमज्जा—७ से ११ दाने।

तैल (रोग़न बादाम)—३ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। यह बादाम के वृक्ष के फल का प्रसिद्ध-बीज होता है, जिसको तोड़ने पर अन्दर से सफेद मज्जा (मग्ज) निकलती है। यह स्वाद में मीठा एवं स्वादिष्ट होता है। इसके कई भेद हैं। उनमें एक का छिलका इतना पतला होता है, कि चुटकी से मलने से टूट जाता है। इसको काग़जी (*thin-celled*) बादाम कहते हैं। यह सर्वोत्तम होता है। बादाम (के बीज) प्रायः २.५ सें० मी० या १ इञ्च से कुछ अधिकतक लम्बे तथा १.२५ सें० मी० या ½ इंच तक चौड़े, रूपरेखा में आयताकार-गोलाकार होते हैं, जिनका एक सिरा कमचौड़ा तथा नुकीला और दूसरा अधिक चौड़ा एवं गोलाकार-सा होता है। इसपर दालचीनी के रंग का एक छिलकेदार आवरण होता है, जो अनुलम्ब दिशा में झुर्रीदार-सा होता है। नाभि (*hilum*) नुकीले सिरे से लेकर आधी लम्बाई तक स्थित होती है। चौड़े सिरे की ओर कैलाजा (*chalaza*) स्थित होता है, जहाँ से अनेक सूक्ष्म रेखाएँ पहिये की अरों की भाँति चारों ओर जाती दिखाई देती हैं। थोड़ी देर जल में भिगो देने से बीजों का छिलका आसानी से पृथक् हो जाता है। छिलका हटाने पर अन्दर सफेद रंग के तैलीय द्विदल निकलते हैं, जो अन्तस्तल पर चपटे तथा बाह्यतल पर उन्नतोदर (*plano-convex cotyledons*) होते हैं। द्विदलों के अन्तर्मध्य मूलभ्रूण (*radicle*) एवं भ्रूणाग्र (*plumule*) होते हैं। भस्म अधिकतम—२%। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम—१% होते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—कड़वे बादाम में 'हाइड्रोसायनिक एसिड' नामक तीव्र विषैलासत्व पाया जाता है। अतः इसका मौखिकसेवन कदापि नहीं होना चाहिए। कभी-कभी गलती से मीठे बादाम में यदा-कदा कड़वे बीज भी मिल जाते हैं। ऐसे बादाम के सेवन से भयंकर परिणाम हो सकता है।

संग्रह एवं संरक्षण—बादाम को उचित स्थानों में मुखबन्द पात्रों में रखें।

संगठन—मीठे बादाम के बीजों में ४५% से ५६% तक स्थिरतैल (बादाम का तेल) होता है। इसके अतिरिक्त प्रोटीन एवं इमल्सिन (*Emulsin*) नामक किण्वों (*enzymes*) का मिश्रण, शर्करा एवं लवाब आदि पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष। तैल में कईवर्षों तक।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—वातशामक तथा कफपित्तवर्धक, दन्त्य, वर्ण्य, स्नेहन, अनुलोमन, मृदुरेचन (इस क्रिया में जैतून के तेल का उत्तम प्रतिनिधि है)। नाड़ी-संस्थान-बल्य, शुक्रजनन, वाजीकर, स्तन्यार्तवजनन, बृंहण, मूत्रल आदि। गुठली का बाहरी छिलका जलाकर दंतमंजनों में डालते हैं। यूनानीमतानुसार मीठाबादाम पहले दर्जे में गरम और तर है। अहितकर—चिरपाकी है। निवारण—मस्तगी एवं मिश्री। प्रतिनिधि—अखरोट का मग्ज।

मुख्य योग—बादामपाक, खमीराबादाम, लऊक बादाम, रोग़न बादाम।

विशेष—औषधि में गिरी या मज्जा के अतिरिक्त इनसे प्रपीड़नद्वारा तैल पृथक् रूप से भी प्राप्त कियाजाता है। आभ्यन्तरप्रयोग के लिए केवल मीठेबादाम का तेल (रोग़न बादाम) ही व्यवहृत होता है। बाह्यप्रयोग के लिए कड़वेबादाम का तेल (रोग़नबादाम तल्ख) अथवा मीठे तथा कड़वे दोनों प्रकार के मिश्रित बीजों के तेल का व्यवहार होता है। यह जैतून के तेल की भाँति स्नेहन एवं मार्दवकर तथा आभ्यन्तरप्रयोग से सारक भी होता है।

बायबिडंग (विडङ्ग)

नाम। सं०—विळङ्ग (विलंग), विडङ्ग, कृमिघ्न, चित्रतण्डुल आदि। हिं०—वायविडग (>वाविरंग>) भाभीरंग। पं०—वावडींग। म०, गु०—बावडिंग। अ०—विरंक (ज) काबुली। फा०—विरंग काबुली। अं०—इम्बेलिया (*Embelia*)। ले०—(१) एम्बेलिआ रीबेज **Embelia ribes** *Burm. f.* (२) एम्बेलिआ त्सजेरिआम-कोट्टाम **E.tsjeriam-cottam** *A.DC.* (पर्याय-**E.robusta** *C.B. Clarke* (*Fl. Br. India. non Roxb.*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वक्तव्य—आधुनिक सभी ग्रन्थ विडंग का वानस्पतिक-विनिश्चय 'एम्बेलिआ रीबेज' से करते हैं। किन्तु आधुनिक शोध-कार्यों के परिणाम से ज्ञात होता है, कि कृमिघ्नक्रिया की दृष्टि से 'एम्बेलिआ राबस्टा' कहीं अधिक सबल है। अतः विडंग के वानस्पतिक विनिश्चय में इसको भी स्वीकार करना चाहिए। सभी भारतीय एवं अरबी-फारसी नाम 'विलंग (विडंग)' से ही व्युत्पन्न प्रतीत होते हैं। सिंहली में पिडंग का नाम 'वेल (*Wel = climber*) एम्बिल्ल *Embill*' है। वानस्पतिकनाम में 'जेनरिक (*Generic*)' संज्ञा '*Embelia*' सिंहली '*Embilla*' पर आधारित प्रतीत होती है। विडंग संज्ञा कालानुक्रमिक-परम्परा में आद्योपान्त यथावत् व्यापक प्रतीत होती है। संस्कृत में विडंग शब्द पुंलिंग एवं नपुंसक लिंग दोनों में व्यवहृत (विडंगः/विडंगं) है। विडंग का समावेश अष्टाध्यायी के 'अर्धर्चादिगणपाठ' (पाणिनि २. ४. ३१) में भी है, जिसमें ऐसे शब्दों का संग्रह है, जिनकी मान्यता दोनों लिंगों में थी। (लेखक)

वानस्पतिक-कुल। विडङ्गादि-कुल (मोर्सिनासे *Myrsinaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में जंगली प्रदेशों में ५,००० फुट की ऊँचाई तक इसके स्वयंजात गुल्म पाये जाते हैं। इसके सुखाये हुए पक्वफलों का व्यवहार औषधि में होता है, जो बाजारों में पंसारियों तथा वनौषधि विक्रेताओं के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय। (१) *Embelia ribes*—के आरोहीस्वभाव के बड़े गुल्म (*large scandent shrub*) होते हैं, जिसकी शाखा-प्रशाखाएँ लम्बी, पतली तथा लचीली और रूपरेखा में वेलनाकार या गोली (*terete*) होती हैं। पर्व (*nodes*) दूर-दूर होते हैं। काण्डत्वक् पर जगह-जगह वातरंध्र के चिह्न (*lenticels*) पाये जाते हैं। पत्तियाँ चर्मिल (*cortaceous*), ५ से०मी० से ७.५ सें०मी० या २ इञ्च से ३ इञ्च लम्बी, १.८७५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या ¾ इञ्च से १½ इञ्च चौड़ी, रूपरेखा में अण्डाकार या अण्डाकार-भालाकार तथा अग्रपर सहसा नुकीली या लम्बे अग्रवाली तथा सरलधारवाली होती हैं। फलक के दोनों पृष्ठ चिक्कण होते हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ चमकदार तथा अधःपृष्ठ फीकेरंग का होता है, जिसपर सर्वत्र सूक्ष्म लाल बिंदु पाये जाते हैं, जो नयी पत्तियों में अधिक स्पष्ट होते हैं। फलकमूल किन्हीं पत्तियों में गोलाकार, किन्तु किन्हीं-किन्हीं में उत्तरोत्तर कमचौड़ा होता हुआ नुकीला (*acute*) हो जाता है। पर्णवृन्त ६.२५ मि० मी० से १५ मि० मी० या ¼ इञ्च से ¾ इञ्च लम्बा होता है। पुष्प छोटे-छोटे तथा हरिताभ पीतवर्ण के और पंचभागीय (*5-merous*) होते हैं। मञ्जरियाँ शाखाग्रों पर निकलती हैं, फल मरिच की भाँति गुच्छों में लगते हैं, जो व्यास में ३ से ४ मिलिमीटर (⅛ इञ्च से ⅙ इञ्च), चिकने तथा कुछ गूदेदार (*succulent*) होते हैं, जो पकने पर लालिमालिये कालेरंग के हो जाते हैं और सूखने पर रक्ताभधूसर वर्ण्ण के और कुछ-कुछ काली मिर्च की भाँति लगते हैं। फल के भीतर धूसरवर्ण की मज्जा तथा एक बीज होता है, जिसपर सफेद दाग होते हैं। फल के शीर्षपर चोंच-जैसी चोटी होती है। यह कुक्षिवृन्त का अवशेष होती है। (२) एम्बेलिया त्सजेरियाम कोट्टाम। हिं०—अमचुर। (देहरादून) गैया (*Gaia*)। को०—गोयण्टा (कोयतङ्), माटा। संथा०—भाबरी। ले०—एम्बेलिया त्सजेरिआम-कोट्टाम **Embelia tsjeriam-cottam** *A.DC.* (पर्याय—*E. robusta C. B. Clarke* (*Fl. Br. Ind. non Roxb.*)। यह भी समस्त भारतवर्ष में ५,००० फुट की ऊँचाई तक (विशेषतः देहरादून, छोटा नागपुर, सिलहट, आसाम एवं मलाबार आदि में) पाया जाता है। इसके बड़े गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ हल्के धूसररंग की और बिन्दुकित तथा कोमल शाखाएँ मुरचई रंग की होती हैं। पत्तियाँ १२.५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० या ५ इंच से ७ इंच लम्बी, ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ३ इंच चौड़ी, अंडाकार, अग्रपर सहसा नुकीली, लहरदार और कभी-कभी सूक्ष्म दन्तुरधार से युक्त, अधःपृष्ठ पर प्रायः रोमश और मुरचई रंग की होती हैं। फल गोल, नीरस और लाल तथा पके फल खाने में खटमिट्ठे होते हैं। असली विडंग की भाँति यह भी अग्रपर कुक्षिवृन्त से युक्त होते हैं। बीज बिडंग की भाँति गोल और आधार पर अन्दर की ओर धँसा होता है।

उपयोगी अंग—सुखाये हुए पक्वफल (विडंग)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्रा। १ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–विडंग का सुखायाहुआ फल कालीमिर्च के समान, किन्तु उससे छोटा और चिकना, गोल, ललाईलिये काला (खाकस्तरी) होता है, जिसमें प्रायः एक पतला वृन्त या डंठल तथा कटोरीनुमा पंचखंडीय बाह्यकोष लगा होता है। फल के बाह्यतल पर आधार से शीर्ष की ओर अनेक अनुलम्ब रेखाएँ या धारियाँ होती हैं। सिरेपर एक चोंचदार चोटी (*small beak*) होती है, जो वस्तुतः स्थायी कुक्षिवृन्त (*style*) ही होती है। फलों पर छोटे-छोटे बिन्दु (*dark spots*) से भी मालूम होते हैं। बायबिडंग का छिलका (*pericarp*) भंगुर होता है। इसके अन्दर रक्ताभवर्णका बीज होता है, जो एक पतले आवरण से ढँका होता है। बीज गोल और आधार (डंठल के स्थान) पर भीतर को धँसा होता है। इसपर छोटे-छोटे सफेद दाग होते हैं जो बीजों को जल में भिगोने पर हल्के पड़ जाते हैं। रखनेपर कालान्तर से विडंग गाढ़ेरंग का हो जाता है। बायबिडंग में विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम–२% तक होता है। दूसरी प्रजाति के फल भी प्रायः पहली की ही भाँति होते हैं, किन्तु रंग में लालिमा लिये होते हैं। बाजार के विडंग में दोनों के मिले-जुले फल रहते हैं, किन्तु रंग से इनकी पहचान की जा सकती है।

विनिश्चय–एक परखनलिका में ५ मिलिलिटर (५ सी०सी०) ईथर लें। इसमें ०.२ ग्राम बायबिडंग का चूर्ण डालकर खूब हिलावें और इसे छान लें। इसमें १-२ बूँद डायल्यूट सॉल्यूशन ऑव अमोनिया डालने पर नीलापन लिये बैंगनी रंग का अधःक्षेप (*bluish-violet precipitate*) होता है, जो असली बायबिडंग का द्योतक है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–हिमालय की पर्वतश्रेणियों में कश्मीर से नेपालतक १५४.६ मीटर से २३६.५५ मीटर या १,००० फुट से ८,५०० फुट की ऊँचाई तक एक और वृक्ष होता है, जिसे बनवान (जौनसार), रिखडाल्मी *Rikhdalmi* (गढ़वाल) कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम मीरसीने अफ्रीकाना (**Myrsine africana** *Linn.*) है। इसके छोटे-छोटे सदाहरित झाड़ीनुमा गुल्म होते हैं, जिनकी कोमल शाखाएँ एवं पर्णवृन्त मुरचईरंग के (*ferruginous*) होते हैं। इसके फल भी गोल (व्यास में ५ मि० मी० से ६.२५ मि० मी० या $\frac{1}{50}$ इंच से $\frac{1}{4}$ इञ्च), लालरंग के (पूर्णतः पकने पर कालिमालिये बैंगनीरंग के) होते हैं। यह भी विडंग के नाम से बेचे जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–बायबिडंग को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए।

संगठन–बायबिडंग में २.५% से ३.१% विडंगाम्ल या एम्बेलिक एसिड (*Embelic acid*) या एम्बेलिन *Embelin*, $C_{18}H_{28}O_4$ (*2 : 5—dihydroxy—3—laurylpara-bezoquinone*) पायाजाता है, जो सुनहले पीलेरंग के मणिभ या क्रिस्टल्स (*crystals*) के रूप में प्राप्त होता है। यह क्रिस्टल्स जल में तो अविलेय होते हैं, किन्तु ऐल्कोहल्, ईथर, क्लोरोफॉर्म तथा बेंजीन में घुलनशील होते हैं। क्षारीय विलयन (*alkaline solution*) में इसके घुलने से लालरंग का विलयन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अल्पमात्रा में एक उत्पत् तैल, रालदारपदार्थ, रंजकद्रव्य तथा क्रिस्टेम्बीन (*Christembine*) नामक ऐल्केलाइड या क्षारोदतत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। २ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–दीपन, पाचन, अनुलोमन, उदरकृमिनाशक (*Anthelmintic*), शिरोविरेचन, नाड़ीबल्य, रक्तशोधक, मूत्रल, वर्ण्य, रसायन, कुष्ठनाशक। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। अहितकर–अन्त्रको। निवारण-कतीरा और मस्तगी।

मुख्ययोग–विडंगारिष्ट, विडङ्गादिचूर्ण, विडंगलौह, विडंग तैल।

विशेष–(१) बहुत-से लोग भ्रमवश 'कमीला (कम्पिल्लक)' के बीज को विडंग मानते हैं। किन्तु दोनों पृथक् द्रव्य हैं। कबीला, बायबिडंगफलरज नहीं अपितु 'कम्पिल्लक फलका रज' है।

(२) चरकोक्त (सू० अ० ४) तृप्तिघ्न, कृमिघ्न एवं कुष्ठघ्न महाकषाय एवं शिरोविरेचन द्रव्यों (सू०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अ० २) में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) सुरसादि एवं पिप्पल्यादिगण में 'बिडंग' भी है।

वक्तव्य—यद्यपि 'बिडंग' का उल्लेख वैदिकसाहित्य में नहीं मिलता, तथापि लगता है, प्राचीन उत्तर-पश्चिमी भारतीयसीमाक्षेत्र में यह प्राग्वैदिक-काल से ही सुविज्ञात एवं व्यवहारप्रचलित था। पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' के 'अर्धर्चादिगणपाठ' में भी इसका संग्रह किया गया है। नपुंसकलिंग में भी इसके लोकप्रचलन का तथ्य पूर्वतः बसी आर्येतर जनजातियों के सम्बन्ध का संकेत करता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी 'शिरोविरेचन' एवं अन्य व्यवहारोपयोगों के लिये इसका उल्लेख मिलता है। उल्लेखवारंबारिता चरकसंहिता में अपेक्षाकृत अत्यधिक दिखाई देती है। चरक ने इसे सर्वश्रेष्ठ कृमिघ्नद्रव्य माना है। इससे लक्षित होता है, कि आचार्यों को पुरीषज-कृमियों (*Intestinal Heliminthes*) का विभेदक सूक्ष्मदर्शकीयज्ञान भले ही नरहा हो, किन्तु इनसे होने वाले रोग एवं उसकी चिकित्सा से सुपरिचित अवश्य थे। आज भी उदरकृमिरोग भारत का एक व्यापी रोग है। प्राचीनकाल में पेयजल आदि की श्रेष्ठतर व्यवस्था न होने से स्वाभाविक है, कि इस रोग की विभीषिका भी अधिक रही होगी। अनागतबाधाप्रतिषेध की भावना से भी बिडंग का व्यवहारप्रचलन था, क्योंकि बुद्ध के पालीसाहित्य से ज्ञात होता है, कि बाजारों में बिकने वाले यवागू आदि खाद्यकल्पों में बिडंग भी मिलाया जाता था। 'मालवा' के क्षेत्र में आज भी स्त्रियाँ शिशुओं के दूध में बिडंग मिलाकर पकाती हैं। मेरे निर्देशन में शोधछात्रों द्वारा किये गये अध्ययन में भी आधुनिक सर्वमान्य वैज्ञानिक मानदण्डों के अनुसार बिडंग की कृमिघ्नक्रिया केंचुआ (*Round-Worm*), अंकुशमुखकृमि (*Hook-Worm*) तथा स्फीतकृमि (*Tape-Worm*) पर पायी गयी। बल्कि केंचुओं पर तो बिडंग की क्रियाशीलता आधुनिक मान्य कृमिघ्न औषधि 'सेन्टोनिन' से भी श्रेष्ठतर पायी गयी। अनुलोमन होने से आधुनिक चिकित्साक्रम की भाँति कृमिनिर्हरण हेतु रेचक औषधि भी नहीं देनी पड़ती। कृमियों को निकालने के साथ-साथ बिडंग कृमिरोग के सभी उपद्रवों का भी शमन करता है। (लेखक)

बालवच—दे०, 'वचा'।

बिखमा (प्रतिविषा)

नाम। सं०—प्रतिविषा, श्यामकन्दा। हिं०—बिखमा, बिखमा। म० (एवं बम्बईबाजार)—वखमा। गु०—वखमो, वखमो। ले०—आकोनीटुम पाल्माटुम (**Aconitum palmatum** *D. Don.*)। विष (वत्सनाभ) वर्ग की होने पर भी यह भी 'अतीस (अतिविषा)' की भाँति विषैली नहीं होती। इसीलिए इसे प्रतिविषा ('विषं प्रति विरुद्धा' इति प्रतिविषा = विषवर्गकी होने पर भी विष नहीं) संज्ञा दीगयी है। अतीस की भाँति इसके भी शंक्वाकार रूपरेखा के द्विवर्षायु-कन्द होते हैं, जो रंग में सफेद न होकर सफेदीलिये कालेरंग के होते हैं। अतएव इसे 'श्यामकन्दा' कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। वत्सनाभ-कुल (रानुनकुलासे *Ranunculaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पूर्वी समशीतोष्ण हिमालयप्रदेश में सिक्कम से गढ़वालतक तथा तिब्बत के दक्षिणीप्रदेश में (३,०४६ मीटर से ४८७४.८ मीटर या १०,००० फुट से १६,००० फुट ऊँचाईपर) तथा मिश्मी की पहाड़ियों पर बिखमा के क्षुप पाये जाते हैं। अतीस की भाँति इसके भी द्विवर्षायु, युग्म एवं शंक्वाकार या ढोला जैसे लंबगोल कंद होते हैं। व्यावसायिकरूप में इसका संग्रह नहीं किया जाता, जिससे बाजारों में आमतौर से नहीं मिलती। किन्तु, उक्त इलाकों के छोटे व्यापारी या संग्रहकर्ता न्यूनाधिक मात्रा में बिखमा के कन्द भी लाते तथा समीपवर्ती बाजारों एवं मंडियों में बेच जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। प्रतिविषा या बिखमा के शाकीय पौधे होते हैं, जिनका भौमिकभाग बहुवर्षायु स्वरूपका (*perennial*) होता है। काण्ड ६० सें० मी० से १५० सें० मी० या २ फुट से ५ फुटतक ऊँचा तथा खड़ा (*erect*), प्रायः चिकना एवं पत्रबहुल होता है। पत्तियाँ सवृन्त, रूपरेखा में स्थूलतः वृक्काकार, व्यास में १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च) तक और ५ गम्भीर खण्डों से युक्त होती हैं। पत्रवृन्त काफी लम्बे होते हैं। पुष्प बड़े, हरिताभ-नीलवर्ण के तथा लम्बे वृन्तयुक्त होते हैं, और अल्पपुष्पीय मञ्जरियों में निकलते हैं। फल (पुटिका) या फॉलिकिल (*follicles*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इंच से १½ इञ्च लम्बे होते हैं, जिनमें अनेक बीज होते हैं। वत्सनाभ-कुल की होने पर भी यह भी अतीस की भाँति निर्विषैली होती है। कन्दों का व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोगी अंग। कंद।

मात्रा। २५० मि० ग्रा० से ६२५ मि० ग्रा० या २ रत्ती से ५ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बिखमा के कन्द भी द्विवर्षायु, एकसाथ दो-दो (प्रथम एवं द्वितीयवर्ष के), रूपरेखा में शंक्वाकार या ढोल-जैसे लबगोल, ३.७५ सें० मी० से १० सें० मी० (१½ इञ्च से ४ इञ्च) तक लम्बे तथा ½ सें० मी० से ⅝ सें० मी० (¼ इञ्च से ⅓ इञ्च) तक मोटे और वजनदार होते हैं। बाह्यतः उक्त कन्द सफेदीलिये कालेरंग के, तथा तोड़नेपर खटसे टूटते (*fracture short*) और अन्तर्वस्तु सफेद तथा पिष्टमय अथवा पीताभ या हल्के भूरेरंग का तथा वत्सनाभ की भाँति कुछ चमकीला (*horny*) होता है। उक्त दोनों ही प्रकार के कन्द स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं। मुँह में चाबने पर, जीभ पर इसकी कड़ुआहट बहुतदेरतक बनी रहती है। जिन कन्दों का अन्तर्वस्तु भूरेरंग का होता है, उन्हें जल से आर्द्रकरनेपर तीक्ष्णगंध-सी उत्पन्न हो जाती है। सूक्ष्मदर्शक से परीक्षण करने पर अन्तर्वस्तु तनुभित्तिकऊति या पैरेन्काइमा (*parenchyma*) का बना होता है, जिसमें ६–१२ वाहिनीपूल (*bundles of scalariform vessels*) पाये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—इसका संग्रह एवं संरक्षण अतीस की ही भाँति समझना चाहिए।

संगठन—बिखमा में भी अतीस में पाया जानेवाला ऐल्केलाइड् अतीसीन (Atisine) पायाजाता है।

वीर्यकालावधि। २ वर्ष।

स्वभाव। बिखमा के गुण-कर्म भी बहुत-कुछ अतीस की ही भाँति होते हैं। विशेषकर यह वातघ्न, दीपन-पाचन, शूलप्रशमन, कृमिघ्न एवं ज्वरघ्न है। अजीर्ण, पेटका दर्द, अजीर्णजन्य वमन, अतिसार और आध्मान में इसको कालीमिर्च और जावित्री आदि के साथ मिला कर चूर्ण के रूप में देते हैं। जीर्णज्वर, कृमिविकार तथा हैजे आदि में भी इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है।

विशेष—'बिखमा' को प्राचीन निघण्टुकारों ने अतीसका एक भेद माना है। 'अतिविषा शुक्लकन्दापरा प्रतिविषा' (कैयदेव-निघण्टु), 'श्यामकन्दा प्रतिविषा विरूपा घुणवल्लभा' (नि० सं०) आदि वचन इसीका संकेत करते हैं।

बिजयसार (बीजक)

नाम। (१) वृक्ष। सं०—असन, बीजक, प्रियक। हिं०—बिजयसार, बिजासार। प०—बिजयसार। बं०—पियासाल। बिहार-पैसार, बिजासार, बीया। को०—हिद। संथा०—मुरगा। म०—विवला। गु०—बीयो। मा०—बिजैसार। अं०—इण्डियन काइनो-ट्री (*Indian Kino-Tree*)। ले०—पटेरोकार्पुस मार्सूपिअम **Pterocarpus marsupium** *Roxb.*। (२) बिजयसारनिर्यास (गोंद)—मलाबार-काइनो (*Malabar-Kino*), कोचिन-काइनो (*Cochin-Kino*), ईस्ट-इण्डियन-काइनो (*East-Indian-Kino*), मद्रास-काइनो (*Madras-Kino*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : प्रजापति-उपकुल (लेगुमिनोसे : पैपीलिओनासे *Leguminosae : Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिणभारत (विशेषतः दकन के पश्चिमवर्ती जंगलप्रदेश, मलाबार, मद्रास, कोचिन आदि) तथा बिहार आदि में बिजयसार के वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। इसके गोंद का व्यावसायिकरूप से संग्रह मुख्यतः कनाडा एवं मलाबार आदि में किया जाता है, जो कोचिन होकर विदेशों को भेजा जाता है। इसी कारण इसके 'मलाबार-काइनो' एवं 'कोचिन-काइनो' आदि नाम पड़े हैं। मद्रास में भी काफी परिमाण में गोंद संग्रहीत कियाजाता है। भारतीय बाजारों में इसकी आमद बम्बई होकर होती है। बिजयसार का गोंद बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त-परिचय। बिजयसार के ऊँचे-ऊँचे तथा पतझड़ करनेवाले सुन्दर वृक्ष होते हैं, जिनका काण्डस्कन्ध मोटा और कुछ टेढ़ा-मेढ़ा होता है, और इससे शाखाएँ निकलकर चारों ओर फैली होती हैं। पत्तियाँ पक्षवत् तथा ५ से ७ पत्रकोसेयुक्त होती है, जो रूपरेखा में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आयताकार या अण्डाकार, ६.२५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (२½ इंच से ५ इंच) तक लम्बे तथा ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इंच से २ इंच) तक चौड़े, कुण्ठित या नताग्र तथा दोनों पृष्ठों पर चिकने और अधःस्तल पर चमकीले होते हैं। पुष्प शीतकाल के आरम्भ में लगते हैं, और श्वेताभ पीतवर्ण के होते तथा सघन एवं सशाख अग्र्य मञ्जरियों में लगते हैं। बाह्यकोश ६.२५ मि० मी० या ¼ इंच से कुछ कम लम्बा तथा आभ्यन्तरकोश लगभग इसका द्विगुण होता है। जाड़े के अन्त तक फलियाँ पकती हैं, जो वृत्ताकार एवं सपक्ष तथा व्यास में २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच तक होती है। वृन्त के पास का कोना कुछ चोंचदार होता है। बीज छोटे होते हैं। बिजयसार के काण्डत्क् पर चीरा लगाने से प्रचुरमात्रा में लालरस निकलता है, जो कालान्तर से सूखकर कड़ा और काला पड़जाता है। यही इसका गोंद होता है। व्यवसाय में इसे पुनः जल में घोलकर उबाल लिया जाता है, और रसक्रियाद्वारा घनीभूत करते हैं। यही उत्तम व्यावसायिक 'मलाबार-काइनो' होता है।

उपयोगी अंग—गोंद (मलाबार-काइनो), सारकाष्ठ एवं त्वक् (छाल)।

मात्रा। गोंद (निर्यास)—२५० मि० ग्रा० से ६२५ मि० ग्रा० या २ रत्ती ५ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बिजयसार की छाल पीताभखाकस्तरी रंग की तथा काफी मोटी होती है, जिसके बाह्यतल पर अनुलम्ब दिशा में दरारें होती हैं। इसका बाह्यतल कार्कयुक्त होता है। स्वाद में छाल कसैली होती है। बिजयसार के काष्ठ को पानी में डालने पर पहले यह पीला तथा बाद में कालेरंग का हो जाता है। गोंद—बाजार में बिजयसार के गोंद के छोटे-छोटे (३.१२५ मि० मी० से ५ मि० मी० या ⅛ इंच से ¼ इंच) कोणाकार-टुकड़े (*angular fragments*) मिलते हैं, जो चिकने, चमकीले तथा कालिमा लिये गाढ़े लालरग के होते हैं। किन्तु प्रकाश में इसके किनारों को देखने पर यह माणिक्य की भाँति लाल रंग का मालूम होता है। उक्त टुकड़े काफी भंगुर (*brittle*) होते हैं, और चूरा (चूर्ण) भूरापनलिए लालरंग का होता तथा टूटा हुआ तल चमकदार होता है। गोंद में प्रायः कोई गंध नहीं होती, और मुख में चाबने पर अत्यंत कसैला होता तथा दाँतों में चिपक जाता है। लालास्राव लालरंग का हो जाता हैं। इसमें १५% तक आर्द्रता होती है और जलाने पर २½% तक भस्म प्राप्त होती है। उत्तम गोंद में ७०% से ८५% तक टैनिक एसिड (*Kino-tannic acid*) पाया जाता है। विलेयता—ठंढे जल में गोंद अंशतः (६०% से ७०%) घुलता है, किन्तु उबलते जल में यह प्रायः अधिकांशतः (९०%) घुल जाता है। ऐल्कोहल् (९०%) में भी उक्त गोंद अंशतः घुलता है, किन्तु ईथर में पूर्णतः विलेय है। उत्तम गोंद रेक्टिफाइड स्प्रिट में भी पूर्णतः घुल जाता है, जिससे गाढ़े लालरंग का निष्कर्ष प्राप्त होता है। किन्तु कुछ समय पड़ा रहनेपर यह चिपचिपा-सा हो जाता है। इसमें थोड़ा ग्लिसरिन मिला देने से निष्कर्ष (टिंक्चर) चिपचिपा नहीं होने पाता।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। गुण-कर्म की दृष्टि से बिजासार का गोंद प्रसिद्ध औषधि 'खूनखरावा (दम्मुल् अख्वैन)' एवं पलाशगोंद (*Butea-Kino*) का उत्तम प्रतिनिधिद्रव्य है। व्यवसाय में बीजक-निर्यास की काफी खपत होने के कारण इसमें स्वरूपतः मिलते-जुलते अन्य वृक्षों से प्राप्त गोंदों के मिलावट की सम्भावना अधिक रहती है, जिनमें मुख्य यह हैं :—(१) मकरेंगा-काइनो (*Macaranga-Kino*)—यह माकारांगा पेल्टाटा (**Macaranga peltata** *Muell. Arg.*) पर्याय—*M. roxburghii Wight.* (*Familty: Euphorbiaceae*) नामक वृक्ष से प्राप्त होता है। इसके वृक्ष भी उन्हीं क्षेत्रों में पाये जाते हैं, जहाँ-जहाँ बीजक पाया जाता है। मकरेंगा-काइनो के अश्रुवत् अथवा अनियमित रूपरेखा के टुकड़े होते हैं, जो प्रायः गंधहीन तथा स्वादहीन होते हैं। (२) रामपत्री एवं जातिपत्री (**Myristica malabarica** *Lam.* तथा **M. fragrans** *Houtt.*) से प्राप्त गोंद भी आपाततः देखने में बीजक-निर्यास की भाँति होता है, किन्तु इसमें कैल्सियम् टारट्रेट के क्रिस्टल्स पाये जाते हैं। किन्तु असली बीजक-निर्यास में इनका अभाव होता है। (३) पलाश निर्यास (*Butea-Kino or Bengal-Kino*)। (४) युकेलिप्टस जातियों से प्राप्त रक्तनिर्यास (*Eucalyptus-Kino*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परीक्षण–बीजकनिर्यास का जलीयविलयन प्रतिक्रिया में हल्का एसिडिक (*Faintly acid*) होता है, तथा इसमें फेरिक क्लोराइड सॉल्यूशन मिलाने से गाढ़े हरेरंग का अधःक्षेप होता है। इसके अतिरिक्त बीजक-निर्यास के जलीय विलयन में क्षारों का जलीयविलयन (*Alkali solution*) मिलाने से विलयन भूरे या नारंगवर्ण हो जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण–छाल एवं काष्ठ को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंदपात्रों में रखें। गोंद को विशेषतः अच्छी तरह मुखबंदपात्रों में संरक्षित करें, और अन्दर नमी न पहुँचे इसका ध्यान रखना चाहिए।

संगठन–बिजयसार के गोंद में काफी मात्रा में काइनोटैनिक एसिड, पायरो-कैटेचिन, गैलिक एसिड आदि अन्य 'कषाय-तत्त्व' एवं कुछ 'गोंद' का अंश भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रधानकर्म–बाह्यप्रयोग से शोथहर, संधानीय, कुष्ठघ्न। तथा आभ्यन्तरप्रयोग से स्तम्भन, रक्तरोधक, रक्तपित्तशामक, मूत्रसंग्रहणीय, प्रमेह-नाशक (विशेषतः मधुमेहहर), कुष्ठघ्न, सन्धानीय आदि।

विशेष–आजकल एकौषध के रूप में 'बीजासार' के मधुमेह-नाशक (*Antidiabetic action*) की बड़ी चर्चा है। बाजारों में बीजासार की लकड़ी के गिलास भी मिलते हैं। इसमें जल रखकर, उसी जल को पीना मधुमेह रोगी के लिए सुखकारक है। मेरी सम्मति में एकौषधि के बजाय मधुमेहनाशक योगौषध में इसके शीतकषाय का प्रयोग (भावना आदि के रूप में) करना अधिक उपयुक्त होगा। (लेखक)

वक्तव्य–इधर 'असन', 'बीजक' एवं 'प्रियक' के पारस्परिक सापेक्ष वानस्पतिक विनिश्चय की दिशा में काफी भ्रान्ति रही है। किन्तु पूर्वापर शास्त्रावलोकन से यही निष्कर्ष निकलता है कि, उक्त तीनों संज्ञायें परस्पर पर्यायवाची-सी ही हैं। भेल एवं चरक संहिता आदि प्राचीन ग्रंथों में बीजक के स्थान में प्रायः 'असन' ही मिलता है। कहीं-कहीं प्रियक से 'कदम्ब' भी अभिप्रेत होता है। इसका निर्णय संदर्भ को देखकर करना चाहिए। (लेखक)

बिहीदाना

नाम। (१) बीज। हिं०–बिहीदाना, बेहदाना। म०–बीहीदाणा, मोंगली बेदाणा। गु०–मोगलाइ बेदाण। अ०–हब्बुस्सफ़रजल। फा०–बिहीदानः, बेहदानः। अं०–क्विन्स सीड (*Quince Seed*)। (२) फल। हिं०–बिही, बोहि, कश्मीरी नाशपाती। कश्मीर–बमचूंठ। अ०–सफ़रजल। फा०–बेह, बिही। (खुरासान)–बिही। म०–बिहि। अं०–क्विन्स (*Quince*)। (वृक्ष) ले०–सीडोनिआ ओब्लोंगा **Cydonia oblonga** *Mill*, (पर्याय–*Cydonia vulgaris Pers.*; *Pyrus cydonia Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। तरुणी-कुल (रोजासे : *Rosacece*)।

प्राप्तिस्थान–ईरान, अफगानिस्तान और पेशावर तथा उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष के कश्मीर, पंजाब आदि प्रदेश। दक्षिणभारत में नीलगिरि में भी इसके वृक्ष लगाये गये हैं। भारतीय बाजारों में फलों की आमद पेशावर, काबुल, तथा कश्मीर, पंजाब आदि से होती है। इसके बीज (बिहीदाना) सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलते हैं, जो ईरान, अफगानिस्तान एवं कश्मीर आदि से आते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। बिही के बड़े गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं, जिसमें अनेक शाखा-प्रशाखाएँ होती हैं। काण्डत्वक् कृष्णाभरंग की होती है। पत्तियाँ साधारण (*simple*), सानुपत्र (*stipulate*), अंडाकार तथा सरलधारवाली, एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। पुष्प बड़े, सफेद या गुलाबीरंग के तथा तूलरोमश (*woolly*), एकल (*solitary*) क्रम से स्थित होते हैं। कोणपुष्पक या निपत्र (*bracts*) पत्रमय होते हैं। पुटपत्र बड़े, फैले हुए मुद्गराकार तथा दन्तुरधारवाले होते हैं। दलपत्र ५, पुंकेशर २०, तथा कुक्षिवृन्त संख्या में ५ होते हैं। फल रूपरेखा में अमरूद या सेब की तरह, गूदेदार और पकने पर सुनहले पीलेरंग का तथा मनोहर सुगंधयुक्त एवं खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। स्वाद की दृष्टि से यह मीठा (मधुर), खटमिट्ठा (मधुराम्ल) एवं खट्टा (अम्ल)–तीन प्रकार का होता है। बिही के फल अन्दर पंचकोष्ठीय-से होते हैं। प्रत्येक कोष्ठ में अनेक बीज भरे होते हैं। पकेफल खाये जाते हैं, तथा फल एवं बीजों का व्यवहार औषध्यर्थ भी होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपयोगी अंग—फल एवं बीज।

मात्रा। बीज—३ ग्राम से ५ ग्राम (३ माशा से ५ माशा)।

फल का मुरब्बा—१ तोला से २ तोला।

शर्बत—१ माशा से ५ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बिही का फल रूपरेखा में अमरूद या सेब की तरह होता है, और पकने पर सुनहले पीलेरंग का, मनोहर सुगन्धयुक्त और खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। मीठा, खट्टा और खटमिट्ठा भेद से यह तीन प्रकार का होता है। फारस में प्रायः मीठे बिही के पेड़ लगाये जाते हैं। फलों के अन्दर प्रत्येक कोष्ठ में अनेक बीज भरे होते हैं। यही 'बिहीदाना' के नाम से बिकते हैं। उक्त बीज रूपरेखा में लम्बगोल किन्तु चिपटे तथा त्रिपार्श्विक-से होते हैं। निचले सिरे पर नाभि (*hilum*) होती है, जहाँ से सन्धिरेखा या रेफ (*raphe*) ऊर्ध्व-सिरे की ओर जाती है। शीर्ष या ऊपरी सिरा कुछ चोंचदार टेढ़ा होता है, तथा इसपर एक चिह्न (*chalaza*) होता है। बीजत्वक् या बीजचोल (*testa*) गाढ़े भूरेरंग का होता है, जो अत्यन्त लुआबी होता है। जल में भिगोने पर बीज फूल जाते हैं, और एक फीका लुआब बना देते हैं। बीजपत्र (*cotyledons*) दो होते हैं, जो गन्ध एवं स्वाद में कड़वे बादाम-जैसे होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—बिहीदाना को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—बीज में साइडोनिन (*Cydonin*) नामक एक पिच्छिल द्रव्य तथा १५.३% बादाम के तेल-जैसा पीला एवं मन्दगन्धी तेल होता है। बीजों के भस्म में यवक्षार, सर्जिक्षार, मैग्नीसियम्, कैल्सियम्, लौह, फास्फोरिक एसिड सल्फ्युरिक एसिड प्रभृति द्रव्य पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। बीज—१ वर्ष। फलों का मुरब्बा, एवं शर्बत—दीर्घकालतक।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—वातपित्तशामक, मेध्य, सौमनस्य-जनन, रोचन, दीपन, स्नेहन, यकृद्बल्य, हृद्य, रक्त-प्रसादन, रक्तवर्धक, रक्तस्तम्भन, कफनिःसारक, मूत्रजनन, दाहप्रशमन, ज्वरघ्न, बल्य एवं बृंहण। यूनानीमता-नुसार 'मीठीबिही' अनुष्णाशीत और पहले दर्जे में तर, तथा 'खट्टीबिही' पहले दर्जे में शीत और दूसरे में खुश्क है। 'बिहीदाना' दूसरे दर्जे में शीत एवं तर होता है। बिही मेवा की भाँति खायी जाती है। यह भारी एवं काबिज है। हृदय एवं मस्तिष्क को उल्लास एवं शक्ति पहुँचाती है, और उष्ण प्रकृतिवालों के लिए सात्म्य है। हृदयदौर्बल्य, उष्ण-हृत्स्पंदन, पित्तातिसार और यकृदामाशय का संताप शमनकरने के लिए इसका शर्बत, मुरब्बा, या पानक देते हैं। अग्निमांद्य, अरुचि, हृल्लास, छर्दि, तृष्णा, कोष्ठगतरौक्ष्य, उदरशूल एवं रक्तातिसार में फल एवं बीजों का व्यवहार किया जाता है। गरम प्रसेक, प्रतिश्याय, गरम खाँसी, कंठ की कर्कशता, जिह्वाशोथ, उरःक्षत, पेचिस एवं उष्ण ज्वरों में बिहीदाने का लुआब बहुत उपयोगी होता है। हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, रक्ताल्पता, एवं रक्तपित्त में भी औषधीय अथवा पथ्यरूप में बिही का प्रयोग उपयोगी है।

मुख्य योग—जुवारिश सफरजली क़ाबिज (अथवा मुसहिल), मुरब्बा-बिही, लऊक़ बिहीदाना, शर्बत बिहीदाना।

बेदमुश्क

नाम। हिं०, पं०—बेदमिश्क। अ०—खिलाफुल् बलसी। फा०—बेदेमुश्क, मुश्कबेद। पश्तो, अफ०—ख्वगबल। कश्मीर—मुश्कबेद। अं०—गोट्स सैलो (*Goats'-Sallow*)। ले०—सालिक्स काप्रेआ (**Salix caprea** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। वेतस-कुल (साल्लीकासे *Salicaceae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम भारत (विशेषतः पंजाब, कश्मीर) में इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त फारस तथा यूरोप में भी होता है। 'अर्कबेदमुश्क' पंजाब से आता है, और यूनानी दवाखानों में मिलता है।

संक्षिप्त परिचय—यह वेतस (बेद या सैलिक्स **Salix**) की जाति का और बेदसादा की तरह का एक क्षुप या १.५ से ३ मीटर अथवा १५ फुट से ३० फुट तक ऊँचा छोटा वृक्ष होता है। पत्र एकान्तरक्रम से स्थित होते हैं, तथा रूपरेखा में लम्बगोल, अग्रपर नुकीले एवं दंतुरधार होते हैं। मंजरी या कैटकिन (*catkin*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बी तथा मोटी एवं रूपरेखा में बेलवाकार, अथवा कोई-कोई बिल्ली के हाथ-जैसी और चमकीले पीलेरंग की एवं परम सुगन्धित होती है। पुष्पों पर लम्बे-लम्बे रोयें पाये जाते हैं। पुष्पागम नयी पत्तियों के निकलते के पूर्व ही होता है। पुष्पों का संग्रह 'अर्क' बनाने के लिए किया जाता है।

उपयोगी अङ्ग। पुष्प एवं छाल।

संगठन—इसकी छाल में सैलीसिन (*Salicin*) नामक तिक्त सत्व पायाजाता है। इसके अतिरिक्त टैनिन, मोम, बसा एवं निर्यास प्रभृति तत्त्व भी पाये जाते हैं। पुष्पों में सुगन्धित उत्पत्-तैल पाया जाता है।

स्वभाव। पहले दर्जे में शीत एवं तर है। तथा हृदयोल्लासकारक, मेध्य, सन्तापहर, मूत्रल, वेदनास्थापन, सारक, विशेषतः शिरःशूल-नाशक एवं हृदयबलदायक होता है।

मुख्य योग—अर्कबेदमुश्क।

विशेष—'अर्क वेदमुश्क' का उपयोग पिष्टी बनाने में किया जाता है। योगों को सुगन्धित करने के लिए भी इसे डालते हैं। सौममस्यजनन आदि के लिए अर्कबेदमुश्क का स्वतंत्ररूप से भी प्रयोग करते हैं।

बेल (बिल्व)

नाम। सं०—बिल्व, श्रीफल। हिं०—बेल। बं—बेल। को०—लोहगासी। संथा०—सिंजो। म०—बेल। गु०—बेली। पं०—बेल, सीफल। का०—थिलकथ। फा०—बेह हिन्दी, बल, शुल्ल। अ०—सफ़रजले हिंदी। अं०—बेंगाल क्विंस (*Bengal Quince*)। ले०—एग्ले मार्मेलॉस (**Aegle marmleos** *Correa.*)। इसकी मज्जा को 'बिल्व-पेशिका' या 'बिल्वकर्कटी' तथा सूखे हुए गूदे को 'बेलसोंठ' या 'बेलगिरी' कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। जम्बीर-कुल (रूटासे *Rutaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय की तराई, मध्य एवं दक्षिण भारत तथा बिहार एवं बंगाल आदि में बेल के जंगल पाये जाते हैं। फलों एवं बेलपत्र के लिए समस्त भारतवर्ष में इसके वृक्ष बगीचों एवं मंदिरों के पास लगाये जाते हैं। कच्चेफल के गोल-गोल काटे हुए कतरे सुखा कर 'बेलगिरी' के नाम से बाजारों में मिलते हैं। लगाये हुए वृक्षों के पकेफल मौसम में सब्जी एवं मेवा फरोशों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—बेल के मध्यमकद के ४.५ मीटर से ९ मीटर (१५ फुट से ३० फुट ऊँचे) तथा पतझड़ करनेवाले कँटीले वृक्ष होते हैं, जो सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। कोणोद्भूत कण्टक २.५ सें० मी० (१ इंच) लम्बे तथा मजबूत होते हैं। पत्तियाँ सपत्रक, प्रायः ३—पत्रकों वाली (कभी-कभी ५—पत्रकयुक्त) तथा एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं। पर्णवृन्त २.५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (१ इंच से २½ इंच) तक लम्बा होता है। पत्रक ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच लम्बे, २.५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १ इंच से २½ इंच चौड़े तथा रूपरेखा में लट्वाकार-भालाकार या तिर्यगायताकार (*rhomboid*) तथा लम्बाग्र होते हैं। पार्श्ववर्ती पत्रक प्रायः विनाल (*sessile*) या बहुत छोटे वृन्तक (२.५ मि० मी० या १/१० इञ्च) युक्त तथा अग्रपर स्थित पत्रक १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इञ्च से १ इञ्च लम्बा होता है। पत्तियों को मसलने से इनमें एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में यह तिक्त होती हैं। गर्मियों में पत्ते गिर जाते हैं, तथा पुष्पागम मई के महीनों में होता है। फल अगले वर्ष में मार्च-मई तक आते हैं। पुष्प हरिताभ श्वेतवर्ण के, व्यास में, २.५ सें० मी० या एक इञ्च तथा सुगन्धित होते हैं। फल (बेरी *berry*) व्यास में ५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० या २ इञ्च से ७ इञ्च तक होते हैं, जिसका खोपड़ा (*shell*) कड़ा (*woody*) और चिकना होता है, जो कच्चे-फलों में हरेरंग का किन्तु पकेफल में सुनहले पीलेरंग का हो जाता है। खोपड़े को तोड़ने पर अन्दर पीलेरंग का सुगन्धित मीठा गूदा (*sweet yellow aromatic mealy pulp*) होता है, जिसको लोग खाते हैं या इसका शर्बत बनाया जाता है। जंगलीबेल के वृक्ष में काँटे अधिक होते हैं, और फल छोटा होता है। खाने या शर्बत बनाने के लिए ग्राम्य या लगायेहुए वृक्षों के फल तथा अतिसार-प्रवाहिका आदि में प्रयुक्त करने के लिए 'जंगली बेल' अधिक उपयुक्त होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपयोगी अंग। पक्वापक्वफल (फल का गूदा, बेलगिरी), पत्र, मूल एवं त्वक् (छाल)। चूर्ण आदि के लिए कच्चा फल, मुरब्बे के लिए अधपकाफल और पानक (शर्बत) के लिए पकाफल लेना चाहिए। दशमूल आदि कषायों में मूल या मूलत्वक् ली जाती है।

मात्रा। चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।
स्वरस—१ तोला से २ तोला।
पानक—२½ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–बेल के गोलाकार (५ सें० मी० से २० सें० मी० या २ इञ्च से ८ इञ्च व्यास तक) बीजिमांसल फल (*berry*) होते हैं। रूपरेखा में नानाप्रकार के गोलाकार यथा गोलाकार अथवा नारंगी की भाँति गोलाकार तथा चपटे, अथवा लम्ब-गोल या शंक्वाकार (*pyriform*) होते हैं। इसकी बाहरीभित्ति कड़े खपड़ोही की भाँति तथा चिकनी, कच्चे फलों में हरिताभ तथा पकने पर पीताभ-भूरे रंग की हो जाती है। बहिर्भित्ति या खपड़ोही (*epicarp*) प्रायः ३.१२५ मि० मी० या ⅛ इञ्च तक मोटी होती है, जिसका अन्तस्तल बहुत रेशेदार होता है। फल की मध्यभित्ति एवं अन्तर्भित्ति (*mesocarp & endocarp*) से इसका गूदेदार भाग बनता है, जो खोपड़ी से चिपका (*adherent to the rind*) रहता है। बेल का गूदा लालिमालिये पीलेरंग का होता है, जिसमें एक विशिष्टप्रकारकी हल्की सुगन्धि पायी जाती है, तथा स्वाद में लुआबी (*mucilaginous*) होता है। फल का अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर यह १०-१५ खण्डों या कोष्ठों में विभक्त-सा मालूम होता है, जिनमें प्रत्येक में ६–१० तक बीज होते हैं, जो सफेद चिपके लुआब से आवृतसे होते हैं। बाजार में कच्चे एवं बाल फलों को छीलकर गोल-गोल कतरेनुमा काटकर सुखाये टुकड़े बेलगिरी के नाम से मिलते हैं। यह देखने में ताजे फल जैसे ही मालूम होते हैं, किन्तु सूखने के कारण कुछ कड़े एवं सिकुड़े हुए (*hard and shrunken*) होते हैं। इसमें बीज भी होते हैं। स्वाद में यह टुकड़े किंचित् कसैले तथा लुआबी होते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–बेल प्रायः सर्वत्र सुलभ होने एवं सस्ता होने से साधारणतया इसमें मिलावट की सम्भावना कम होती है। कभी-कभी इसमें गार्सीनिआ मांगोस्टाना (**Garcinia mongostana** *Linn.* (*Family* : *Guttiferae*) तथा कपित्थ (कैथ) के फल मिला दिये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–छोटे कच्चे बेल के फल को संग्रहकर, छील कर, गोल-गोल कतरेनुमा टुकड़े काटकर सुखाकर मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संग्रहीत करें। औषधीय प्रयोग के लिए 'जंगली फल' अधिक उपयुक्त होते हैं।

संगठन–फलों में बिल्वीन या मार्मेलोसिन (*Marmelosin*) नामक तत्त्व पाया जाता है, जो इसका प्रधान सक्रिय घटक होता है। इसके अतिरिक्त गूदे में लबाब, पेक्टिन, शर्करा, कषायिन एवं उत्पत् तैल आदि पाये जाते हैं। ताजेपत्तों में पीताभ–हरेरंग का 'उत्पत् तैल' पाया जाता है, जो स्वाद में तिक्त होता है, तथा इसमें एक विशिष्ट सुगन्धि पायी जाती है।

स्वभाव। गुण–रूक्ष, लघु। रस–कषाय, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफवातशामक; (कच्चाफल)–दीपन-पाचन, ग्राही, रक्तस्तम्भक। (पक्वफल)–कषाय, मधुर और मृदुरेचन, अधिकमात्रा में विष्टम्भजनक, बल्य, हृद्य। (पत्रस्वरस)–शोथहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, मूत्रगतशर्करा को कमकरनेवाला, प्रतिश्याय, श्वासकासहर। (मूलत्वक्)–शोथघ्न, कफघ्न, ज्वरनाशक, गर्भाशयशोथहर, नाड़ीसंशामक, हृद्य, कटुपौष्टिक आदि। यूनानीमतानुसार बिल्व दूसरे दर्जे में सर्द और तीसरे में खुश्क है। अहितकर–अधिकमात्रा में फलों का सेवन करने से विष्टम्भी होता है, जिससे अर्श के रोगियों के लिए अहितकर है। निवारण–शर्करा।

मुख्य योग–बिल्वादिचूर्ण, बिल्वतैल, बिल्वादि घृत, बृहद् गंगाधरचूर्ण, बिल्वपंचकक्वाथ।

विशेष–बिल्वमूलत्वक् 'दशमूल' का उपादान है। चरकोक्त (सू० अ० ४) अर्शोघ्न, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग एवं शोथघ्न महाकषाय तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) वरुणादि, अम्बष्ठादि एवं 'महापंचमूलगण' के द्रव्यों में 'बिल्व' भी है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बोल (मुरमकी)

नाम। सं०—बोल, गंधरस, बर्बर। हिं०—बोल, बीजाबोल, हीराबोल। बं०—गंधरस, गंधबोल। म०—हिराबोल। गु०—हिराबोल। मा०—बीजाबोल। अ०—मुर्र, मुर। फा०—बोल। अं०—मिर्ह (*Myrrh*)। ले०—मीर्रहा *Myrrha*। (वृक्षका नाम)—कोम्मीफ़ोरा मीर्रहा **Commiphora myrrha** (*Nees*) *Engl.* (पर्याय-बाल्सामोडेन्ड्रोन मीर्रहा *Balsamodendron myrrha T. Nees.*; *C. molmol Engl.*)।

वानस्पतिक-कुल। शल्लकी-कुल (बुर्सेराशे *Burseraceae*)।

प्राप्तिस्थान—सुमालीलैंड, एबीसीनिया, पूर्वीअफ्रीका। इसके अतिरिक्त अरब, फारस, और श्याम में भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं। सुमालीलैंड का बोल तथा मक्का का बोल सर्वोत्तम होता है। मक्काका बोल 'मुर मक्की' के नाम से बिकता है। भारतवर्ष में बोल का आयात सर्वप्रथम बम्बई में होता है, जहाँ इसे छाँट कर उत्तम, मध्यम एवं हीनकोटि का बोल पृथक्-पृथक् करके बेचा जाता है।

संक्षिप्त-परिचय। बोल एक तैल एवं रालयुक्त गोंद (*Oleo-Gum-Resin*) होता है, जो कोम्मीफ़ोरा की अनेक जातियों से प्राप्त किया जाता है। वृक्ष के काण्डत्वक् में अनेक निर्यास-वाहिनियाँ होती हैं। अतएव त्वचा को क्षतकरने से एक पीताभश्वेत गाढ़ानिर्यास निकलता है, जो जमकर लालिमालिये भूरेरंग का हो जाता है। यही 'व्यावसायिक बोल' होता है। कभी-कभी स्वयं भी त्वचा विदीर्ण हो जाती है और निर्यास अपने आप निकलता रहता है।

उपयोगी अङ्ग—निर्यास (*Oleo-Gum-Resin*)।

मात्रा। ६२५ मि० ग्रा० से १.२५ ग्राम (५ रत्ती से १० रत्ती)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बोल के गोल, बेडौल, छोटे-बड़े अश्रुवत् दाने (*tears*) होते हैं, अथवा इन दानों के परस्पर मिलने से विभिन्न आकार-प्रकार की डलियाँ बनजाती हैं। बाहर से इनकी रंगत ललाईलिये पीत या भूरी होती है, तथा बाह्यतल एक सूक्ष्मचूर्ण से धूसरित-सा प्रतीत होता है। बोल के टुकड़े कड़े तथा भंगुर होते हैं। डलियों को तोड़नेपर अनियमित रूपरेखा में टूटती हैं। टूटाहुआ तल कभी-कभी पारभासी (*translucent*) होता है। यह गाढ़े भूरेरंग का और तेलमय मालूम होता है, तथा इसपर जगह-जगह श्वेत चिह्न या रेखाएँ-सी दीखती हैं। बोल में एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि पायी जाती है, तथा स्वाद सुगन्धित एवं कड़वाहट लिये तिक्त होता है। उत्तम बोल में कम से कम ७% तक उड़नशील तेल पाया जाता है। ऐल्कोहल् (९०%) में अविलेय सत्व—अधिकतम ७०%। भस्म—अधिकतम ९०%। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम ४%।

संग्रह एवं संरक्षण—बोल को अच्छी तरह मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—बोल में प्रायः ५७% से ६१% तक गोंद, २५% से ४०% तक रालीय या रेजिन का अंश तथा ७ से १७% तक उड़नशीलतैल पाया जाता है, जो इसका तिक्तसत्व होता है।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—रूक्ष, लघु। रस—तिक्त, कटु, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषहर; कोथप्रशमन, वेदनास्थापन, शोथहर, स्तम्भन, दीपन-पाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक, श्लेष्महर एवं श्लेष्मपूतिहर, मूत्रल, आर्त्तवजनन, स्वेदजनन, त्वग्रोगनाशक। इसका उत्सर्ग त्वचा, मूत्र, एवं फुफ्फुसों से होता है। अतएव उत्सर्ग के समय इन मार्गों की कलापर उत्तेजक एवं जीवाणुनाशक प्रभाव करता है। यूनानीमतानुसार बोल दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको। निवारण-मधु और सर्द एवं तर द्रव्य।

ब्राह्मी

नाम। (१) पंजाबी एवं उत्तरप्रदेशीय ब्राह्मी। सं०—मण्डूकपर्णी, माण्डूकी, ब्राह्मी ?। हिं०—ब्राह्मी, ब्राह्मी। बं०—थुल-कुडी। गु०, म०—ब्राह्मी। का०—ब्राह्मबूटी। हरद्वार—कोट्याली। अं०—इण्डियन पेनीवर्ट (*Indian Penny-Wort*)। ले०—सेन्टेल्ला एशिआटिका **Centella asiatica** *Linn. Urban.* (पर्याय—हीड्रोकोटीले एशिआटिका (*Hydrocotyle asiatica Linn.*)

CC-0. Gurukul Kangri Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२) बंगीय ब्राह्मी। बं०—ब्राह्मीशाक। हि०—जलनीम। ले०—ब्राकोपा मोन्निएरी **Bacopa monnieri** *Pennell* (पर्याय—*B. monniera Wettst.* : हेर्पेस्टिस मोन्निएरा *Herpestis monniera H. B. & K.*)।

वानस्पतिक-कुल। प्रथम ब्राह्मी गर्जर-कुल (ऊम्बेल्लीफ़ेरी *Umbelliferae*) की तथा 'बंगीयब्राह्मी' या जलनीम कटुका-कुल (स्क्रोफुलारिआसे **Scrophulariaceae**) की वनस्पति है। उत्तरभारत के बाजारों में ब्राह्मी नाम से 'सेन्टेल्ला एशिआटिका' या इसकी निकटतम प्रजातियों का सुखाया हुआ पंचाङ्ग मिलता है। ब्राह्मी का आयात बाजारों में प्रधानतः हरद्वार से होता है।

प्राप्तिस्थान—मण्डूकपर्णी भारतवर्ष के शीतप्रधान एवं आर्द्रप्रदेशों (विशेषतः हिमालय की तराई एवं बिहार आदि) में नदी-नालों एवं नहरों के किनारे अधिक देखी जाती है। जल मिलने पर बारहों महीने हरी-भरी रहती है। 'जलनीम' भी समस्त भारतवर्ष में पंजाब से लंका तक (विशेषतः बंगाल में) १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक नम एवं दलदली भूमि के आसपास अधिक पायी जाती है।

संक्षिप्त परिचय—(१) मण्डूकपर्णी—इसके छोटे-छोटे छत्तेदार विसर्पी (*trailing*) पौधे होते हैं। इसका तना दूर-तक जमीनपर फैलता है, जिसकी प्रत्येक ग्रन्थि पर अनेक मूल तथा फूल-फल लगते हैं। पत्तियाँ, गोलाकार-वृक्काकार (*orbicular-reniform*), व्यास में १.२५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (½ इंच से २½ इंच), चिक्कण तथा किनारे सरल या किन्हीं-किन्हीं में गोल दाँतों से युक्त (*crenate*) या कभी-कभी विच्छिन्न (*lobulate*) होती हैं। पुष्प विनाल या वृन्तरहित (*sessile*) तथा लालरंग के होते हैं, जो ३–६ के गुच्छों में स्थित होते हैं। फल लगभग ८.३ मि० मी० या ⅓ इञ्च बड़े होते हैं, जिन पर ७–९ उन्नत धारियाँ होती हैं। फलों में चपटे बीज होते हैं।

(२) जलनीम—इसके चिक्कण एवं मांसल कांडयुक्त (*glabrous and succulent*), प्रसरणशीलस्वभाव के (*creeping*) छोटे-छोटे पौधे (*herb*) होते हैं। पत्तियाँ ६.२५ मि० मी० से २.५ सें० मी० या ¼ इञ्च से १ इञ्च तक लम्बी तथा २.५ मि० मी० से १० मि० मी० या $\frac{1}{10}$ इञ्च से ⅖ इञ्च तक चौड़ी, विनाल (*sessile*) चतुर्पंक्तिक क्रम से स्थित (*decussate*), कुंठिताग्र, सरल तटवाली तथा काली बिन्दुकित होती हैं। पुष्प सफेद अथवा हल्के नीले रंग के ⅓ इंच लम्बे होते हैं, जो छोटे-छोटे तथा पतले पत्रकोणोद्भूत एकल (*axillary solitary*) वृन्तों (*pedicels*) पर धारण किये जाते हैं। फल (*capsule*) लम्बगोल किन्तु अग्रपर नुकीले तथा ⅕ इञ्च लम्बे होते हैं, जिनमें छोटे-छोटे चपटे, लम्बगोल बीज निकलते हैं, जिनका तल सूक्ष्मरेखांकित (*striate*) होता है।

उपयोगी अंग। ताजा या सुखायाहुआ पंचाङ्ग।

मात्रा। पंचाङ्गचूर्ण—३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

स्वरस—१ तोला से २ तोला।

मूलचूर्ण—०.५ ग्राम से १.५ ग्राम या ४ रत्ती से १½ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—(१) मण्डूकपर्णी के प्रधान मूलस्तम्भ (*root-stock*) से अनेक पत्तियाँ निकलती हैं, जो लम्बे-लम्बे वृन्तों (*petioles*) पर धारण की जाती हैं। इनके कोणों से लम्बे-लम्बे सूत्राकार (*filiform*) धावीकाण्ड या भूस्तारीकाण्ड (रनर *runners*) निकलते हैं, जो जमीन पर दूरतक फैलते हैं। इनपर दूर-दूर पर्व या ग्रंथियाँ (*nodes*) होती हैं, जहाँ से पत्र, मूल एवं फूल-फल निकलकर स्वतंत्र पौधे बन जाते हैं। पर्वोंपर प्रायः १–१ पत्तियाँ निकलती हैं। अनुपत्र (*stipules*) छोटे-छोटे तथा काण्डसंसक्त (*adnate to the stem*) होते हैं। ताजाक्षुप मसलने से या चबाने से एक विशेष प्रकार की गाजरवत् गंध देता है। स्वाद उत्क्लेशकारक, तिक्त और किंचित् कषाय होता है। परंतु सूखने पर इसके उक्त गुण बहुत-कुछ जाते रहते हैं। बाजारों में ब्राह्मी की सूखी पत्तियाँ मिलती हैं। किन्तु इनमें काण्ड एवं कुछ विजातीय तृण आदि भी मिले होते हैं। किसी-किसी काण्डग्रंथि पर सूत्राकार जड़ें पायी जाती हैं। इसमें काण्ड का भाग अधिक-से-अधिक १०% तक तथा अन्य विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य २% तक ही होने चाहिए। ब्राह्मी का चूर्ण हरिताभ से हरिताभ-भूरे रंग का होता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। हीड्रोकोटिल की अन्य दो प्रजातियाँ भी इसके साथ-साथ पायी जाती हैं, और यह देखने में बहुत-कुछ मण्डूकपर्णी से मिलती-जुलती भी हैं :—(१) हीड्रोकोटिल रोटुंडीफोलिआ (**Hydrocotyle rotundifolia** *Roxb.*)। तथा (२) ही० जावानिका (**H. javanica** *Thunb.*)। पहली की पत्तियाँ व्यास में १ इंच से ३ इंच और दूसरी की ½ इञ्च से १ इञ्च लम्बी होती हैं। दोनों में दलपत्र कुंठिताग्र और अनाच्छादित (*valvate*) होते हैं। मण्डूकपर्णी (सेन्टेल्ला एशिआटिका या हीड्रोकोटिल एशिआटिका) के दलपत्र कुंठिताग्र और अनाच्छादित होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—ब्राह्मी का प्रयोग यथासम्भव ताजी अवस्था में ही करना चाहिए। यदि 'पंचाङ्ग' का संग्रह करना हो तो, छाया में ही सुखना चाहिए, क्योंकि धूप में सुखाने से इसका उड़नशीलतैल उड़जाता है जिससे इसकी शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण इसका क्वाथ या फाण्ट भी नहीं बनाना चाहिए। सूखी ब्राह्मी को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। ब्राह्मीचूर्ण को अच्छी तरह मुखबंदशीशियों में रखना चाहिए और नमी या आर्द्रता से बचाना चाहिए।

संगठन—इसमें हाइड्रोकार्टिकिन (*Hydrocotylin* : $C_{22}H_{33}No_8$) नामक ऐल्कलाइड, एशियाटिकोसाइड (०.०७% से ०.१२%) नामक ग्लाइकोसाइड, वेल्लेरीन (*Vellarine*) नामक सफेद क्रिस्टलीय स्वाद में तिक्त गुणोत्पादक वीर्य, अल्पमात्रा में एक उड़नशीलतैल, स्थिर तेल एवं रालीय सत्व, पेक्टिक एसिड तथा एस्कोरबिक एसिड (*Ascorbic acid*) आदि तत्त्व पाये जाते हैं। सूखे पौधों में सेन्टोइक एसिड (*Centoic acid* $C_{30}H_{48}O_6$) तथा सेन्टेल्लिक एसिड (*Centellic acid* $G_{30}H_4O_6$) भी पाये जाते हैं। जलनीम या बंगीयब्राह्मी में (०.०१% से ०.०२%) ब्राह्मीन (*Brahmine*) नामक ऐल्कलायड तथा ३ भास्मिक सत्व (*Bases*: B_1 *Oxalate*, B_2 *Oxalate*, B_3 *Chloroplatinate*) तथा एक 'स्टेरोल' पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, सर। रस—तिक्त। अनुरस—कषाय, मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रभाव—मेध्य। प्रधानकर्म—मेध्य, हृद्य, स्तम्भन। (बाह्यप्रयोग से) शोथनाशक और मूत्रल, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, बल्य, रसायन आदि। यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क तथा किसी-किसी के मत में सर्द और खुश्क है। अहितकर—उष्ण प्रकृति के लिए। निवारण—सूखी धनिया। प्रतिनिधि—दालचीनी, कबाबचीनी और तज।

मुख्य योग—ब्राह्मीपाक, ब्राह्मीपानक, ब्राह्मीघृत, ब्राह्मीतैल, सारस्वतारिष्ट, सारस्वतघृत एवं हब्ब बरहमी (ब्राह्मी गुटिका)। यूनानीचिकित्सक इसका माजून भी बनाते हैं।

विशेष—शंखपुष्पी की भाँति ब्राह्मी का सेवन ठंढई के साथ भी कर सकते हैं। चरकोक्त (सू० अ० ४) वयःस्थापन महाकषाय एवं तिक्तस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ४२) तिक्तवर्ग में 'मण्डूकपर्णी' का भी उल्लेख है।

भँगरैया (भृंगराज-श्वेत)

नाम। सं०—भृंगराज, मार्कव, केशराज। हिं०—भँगरा, भांगरा, भँगरैया। बं०—केसरी, केसूटी, भीमराज, केशुत्ते। म०—माका। गु०—भांगरो। अ०—कदीमुल् बित। को०—हातूकेसारी। उ०—केसरडा। ले०—एक्लिप्टा आल्बा (**Eclipta alba** *Hassk.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजीटे *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में १८२८.८ मीटर या ६,००० फुट की ऊँचाई तक भांगरे के 'स्वयंजात' पौधे पाये जाते हैं। यह प्रायः आर्द्रभूमि में या जलाशयों के पास पाया जाता है। ऐसी जगहों में जहाँ पानी का सोता बहता है, बारहो महीने उगता है।

संक्षिप्त परिचय—भांगरा के छोटे-छोटे एक वर्षायु पौधे प्रायः प्रसरणशील (*prostrate*), कभी-कभी खड़े (*erect*) तथा अनेक शाखाओं से युक्त होते हैं। खुरखुरी या रूक्षरोमी शाखाएँ श्वेतरोमावृत और ग्रंथियों पर मूलयुक्त (*rooting at the nodes*) होती हैं। पत्तियाँ अभिमुख, प्रायः अवृन्त या छोटे वृन्तयुक्त, आयताकार-भालाकार, या अण्डाकार और बुकीली होती हैं। मुण्डक (*heads*) व्यास में ६.२५ मि० मी० से ८.१२५

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मि० मी० (½ इंच से ¾ इञ्च) एकाकी या प्रत्येक कोण में दो-दो होते हैं, जो छोटे-बड़े पुष्पवृन्तों पर धारण किये जाते हैं। निचक्रनिपत्र (*involucral bracts*) ८ लट्वाकार, नुकीले या कुण्ठिताग्र तथा खुरखुरे होते हैं। प्रान्तीयपुष्प या रश्मिपुष्प (*ray flowers*) स्त्रीलिंग और पट्टाकार (*ligulate*) तथा केन्द्रीयपुष्प (*disc flowers*) घंटिकाकार होते हैं। इसमें सामान्यतः जाड़ों में पुष्प-फल लगते हैं। बीज लम्बे, छोटे, कालीजीरी के समान होते हैं।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग (ताजा या छायाशुष्क)।

मात्रा। पत्र—३ ग्राम से ३ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। बीज—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—आयुर्वेद में रंग भेद से ३ प्रकार के भृंगराज का उल्लेख मिलता है—(१) श्वेत (२) पीत और (३) कृष्ण। इनमें 'कृष्णभृंगराज' का अभीतक निश्चय नहीं हुआ। सम्भवतः यह सफेद भृंगराज का ही कोई भेद हो। सफ़ेद भांगरे का ऊपर वर्णन किया गया है। पीतभृंगराज भी मिलता है, और इसके गुण-कर्म भी बहुत-कुछ श्वेत की ही भांति होते हैं। पीत-भृंगराज का वानस्पनिक नाम वेडेलिया कालेंडुलासेआ (**Wedelia calendulacea** *Less.*) है। इसके क्षुप प्रसरणशील होते हैं। काण्ड प्रायः जमीन के नीचे ३० सें० मी० या १ फुट से २ फुट की लम्बाई में फैले रहते हैं; और उनसे स्वावलम्बी शाखाएँ ऊपर की ओर निकली रहती हैं। पत्तियाँ आयताकार—प्रासवत्, ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इञ्च ३ इञ्च लम्बी, लगभग अखण्ड या दन्तुर होती हैं। अधः पत्रावली के पत्र लगभग दो चक्रों में और बाहर के ३-५ पत्र बड़े एवं पर्णाकार होते हैं। मुण्डक पीले होते हैं। प्रान्तीय जिह्वाकारपुष्प संख्या में आठ होते हैं। इसके क्षुप भी प्रायः पानी के आस-पास होते हैं और बंगाल, आसाम कोंकण तथा मद्रासप्रान्त (आधुनिक तामिलनाड) में अधिक पाये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—प्रयास से इसका ताजा पचाग सदैव उपलब्ध हो सकता है। संग्रह करना हो तो 'पंचांग' को छायाशुष्क करके मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

सगठन—भांगरे में एक्लिप्टीन (*Ecliptine*) नामक ऐल्केलाइड या क्षारोद तथा विपुल मात्रा में राल पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। ३ महीने।

स्वभाव। गुण—रूक्ष, लघु। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—वातकफनाशक, शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणशोधन, व्रणरोपण, चक्षुष्य, केशवर्धन एवं केशरञ्जन, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, पित्त-विरेचक, शूलप्रशमन, रक्तशोधक, रक्तवर्धक, पाण्डु कामलानाशक, आमपाचन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, बल्य, रसायन, बाजीकरण। बीज—मूत्रल, कुष्ठघ्न आदि। यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है।

मुख्ययोग-भृङ्गराजादि चूर्ण, भृङ्गराजतैल, भृङ्गराज घृत, षड्बिन्दुतैल।

वक्तव्य—वास्तव में आयुर्वेदीयसंहिताओं एवं उत्तरभारतीय प्राचीन आयुर्वेदीय परम्परा में जिस 'भृङ्गराज' का उल्लेख एवं व्यवहारप्रचलन है, उससे उक्त श्वेत-भृङ्गराज (**E. alba**) ही अभिप्रेत है। पीतभृङ्गराज का प्रथमोल्लेख मध्यकालीन पश्चिमभारतीय निघण्टु राज-निघण्टु (शताह्वादि वर्ग ४) में मिलता है। और इसका प्रचार विशेषतः दक्षिण भारत (मद्रास), बंगाल एवं महाराष्ट्र, गुजरात आदि में हैं। प्रायः यह वाटिकाओं में लगाया मिलता है, जो शीघ्र बढ़कर फैल जाता है। लंका में भी रसायन के रूप में चिकित्सा व्यवहार में प्रचलित है (*Flora Ceylon Vol. III. p. 38*)। बंगाल में यह 'केशराज' नामसे प्रचलित है, और बंगीयवैद्य भृङ्गराजतैल में प्रायः पीले भांगरे का प्रयोग श्रेयस्कर मानते हैं। इसका हरापौधा कलकत्ता में वनौषधि विक्रेताओं के यहाँ बराबर उपलब्ध होता है—(*Market Drugs of India—Prof. R. S. Singh*)। तमिलभाषा में यह मंजल (पीला) क्रिसलै (*Manjal Krisalai*) नाम से प्रसिद्ध है। (लेखक)

भव्य (चालता)

नाम। सं०—भव्य। हि०—चालता। बं०—चाल्ता। ले०—डीलेनिआ इंडिका (**Dillenia indica** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। भव्य-कुल (डीलेनिआसे *Dilleniaceae*)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान–हिमालय की तराई के सदाहरित जंगलों में कुमायूं-गढ़वाल से लेकर पूरब में आसाम-बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यभारत, दक्षिणभारत के कोंकण एव लंका आदि में चाल्ता के स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं।

संक्षिप्त परिचय–स्वभावतः चाल्ता या भव्य के सदाहरित वृक्ष होते हैं, किन्तु कभी-कभी गर्मियों में किन्हीं वृक्षों में थोड़े समय के लिए पतझड़ भी होता मिलता है। पत्तियाँ २० सें० मी० से ३० सें० मी० (८ इञ्च से १२ इञ्च) लम्बी तथा काफी चौड़ी क्षौर रूपरेखा में प्रतिभालाकार (*oblanceolate*) अथवा आयताकार-भालाकार, किनारों पर आरावत् तीक्ष्णदन्तुर और अग्र पर सहसा नुकीली या कभी-कभी लम्बे नोकवाली, ऊर्ध्वपृष्ठ पर चिक्कण, अधः पृष्ठ पर मृदुरोमश तथा स्पष्टतः उभरी हुई एवं समानान्तर रूप से स्थित अनेक पार्श्वीय सिराओं से युक्त, प्रायः शाखाग्रों पर समूहबद्ध पायी जाती हैं। आधार के पास पर्णवृन्त कुछ कोषमय होता है। पुष्प सफेदरंग के तथा काफी बड़े (व्यास में १५ सें० मी० से २० सें० मी० (६ इञ्च से ८ इञ्च) होते हैं, जो शाखाग्रों पर एकल-क्रम (*terminal and solitary*) से निकलते हैं और देखने में बहुत आकर्षक होते हैं। बाह्यदलपत्र (*sepals*) काफी बड़े, रूपरेखा में गोलाकार, मोटे तथा मांसल होते हैं, जो पुष्प की अवस्था में तो कुछ खुले होते हैं, किन्तु स्थायीहोकर फलावस्था में उसको चारों ओर से ढके रहते हैं। फल गोलाकार, व्यास में ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ३ इञ्च से ५ इञ्च होता है, तथा उक्त मोटे नतोदर पुटपत्रों से ढँका होता है। कच्चेफल कषाय और पके फले खटमीठे होते हैं। पकेफल दाल, साग और चटनी में खटाई के लिए डालते हैं। गर्मियों में फूल आते तथा जाड़ों में फल पकते हैं। वृक्काकार बीज चिपचिपे गूदे में बिखरे रहते हैं।

उपयोगी अंग–अर्धपक्व एवं पक्वफल।

संगठन–भव्य के दलपत्रों में कुछ द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज), सेवाम्ल (मेलिक एसिड–०.५१%) तथा टैनिन आदि तत्त्व पाये जाते हैं। पत्तियों तथा छाल में कषायद्रव्य (टैनिन) पाया जाता है।

स्वभाव। गुण–गुरु। रस–अम्ल, मधुर एवं कषाय। विपाक–अम्ल। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–मुखशोधन, रोचन, विष्टम्भि, हृद्य, कफनिःसारक, तृष्णा एवं ज्वरशामक।

विशेष–'फलवर्ग' का भव्य यही है, कर्मरंग (कमरख) नहीं, जैसा कुछ लोग मानते हैं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ४६) फलवर्ग एवं चरकोक्त (सू० अ० २७) फलवर्ग में 'भव्य' का भी उल्लेख है।

भाँग (विजया)

नाम। पत्र (सं०) भगा, विजया। हिं०–भंग, भाँग, विजया, सिद्धि, सब्जी। बं०–भाङ्, सिद्धि। म०, गु०–भाँग। अ०–क़िन्नब, कुन्नब, हशीश, वर्कुलखिया। फा०–कनब, किनब, बंग। अं०–इन्डियन हेम्प (*Indian Hemp*)। ले०–कान्नाबिस साटिवा **Cannabis sativa** *Linn.* पर्याय–कान्नाबिस इण्डिका *Cannabis indica Lam.*)। लेटिन एवं अंगरेजी नाम इसकी वनस्पति के हैं। गाँजा (सं०) गंजा। हिं०, बं०–गाँजा। म०, गु०–गाँजा। अ०–कुन्नब, किन्नब। फा०–किन्नब। (बीज) अ०–शहदानज, बज्रुल्किन्नब। फा०–शहदानः, तुख्मे किन्नब, तुख्मे बंग। चरस–भाँग की शाखाओं पर जमे रालसदृश पदार्थ को 'चरस' कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। भंगादि-कुल (कान्नाबिनासे *Cannabinaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालय की तराई में पंजाब से बंगाल तक भाँग के जंगली पौधे प्रचुरता से पाये जाते हैं। उत्तर-प्रदेश, बिहार एवं बंगाल में यह विशेष रूप से मिलता है। इसके अतिरिक्त दकन (*Deccan*) में भी कुछ होता है। सरकार (आबकारी मुहकमा) के नियंत्रण में स्थान-स्थान में इसकी खेती भी की जाती है। इसकी पत्तियाँ भाँग के नाम से, मादा पौधे के सुखाये हुए पुष्पिताग्र (*flowering tops*) के चप्पड़ गाँजा के नाम से, तथा सुखाईराल चरस के नाम से आबकारी के दुकानों में बिकते हैं। विदेशों में ईरान, ईराक और मिस्र में भी होता है। भारतवर्ष में चरस का आयात प्रायः विदेशों से होता है। चरस का संग्रह मध्य एशिया में बहुत किया जाता है। खुरासान, गजनी और कन्धार आदि इसकी मंडियाँ हैं। चरस चमड़े

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की थैलियों में पविन्दा व्यापारियों द्वारा पहले डेरा इस्माइल खाँ, तथा पेशावर आदि से होकर भारतीय व्यापारियों को बेचा जाता था, तथा उनके द्वारा भारत में वितरित होता था। अब इसकी पूर्ति देशी साधनों से ही होती है। नैपाल की सीमा से तस्करीद्वारा काफी परिमाण में गाँजा, भाँग भारतीय सीमा में लाया जाता है।

संक्षिप्त परिचय—भाँग के एकवर्षायु एवं गंधयुक्त ०.९ मीटर से १.५ मीटर या ३.५ फुट ऊँचे तथा खड़े क्षुप होते हैं, जो सशाख या कभी-कभी निःशाख होते हैं। स्त्री-क्षुप (*Pistillate plants*) एवं पुरुष (नर) क्षुप अलग-अलग होते हैं। पत्तियाँ सवृन्त (*stalked*), नीचे की अभिमुख किन्तु ऊपर की एकान्तरक्रम से स्थित, व्यास में ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० (३ इंच से ८ इंच बड़ी तथा खण्डित (*palmate*) होती हैं। ऊपर की पत्तियों में १ से ३ (कभी-कभी ५ तक) एवं नीचे की पत्तियों में ५ से ११ तक खण्ड होवे हैं, जिनमें मध्यस्थखण्ड सबसे बड़ा होता है। पत्रतट तीक्ष्ण दन्तुर होते हैं। पत्तियाँ ऊर्ध्वपृष्ठ पर गाढ़े हरे-रंग की तथा अधःपृष्ठ पर फीकेरंग की एवं मृदु रोमावृत होती हैं। पुष्प हल्के पीताभहरित वर्णके होते हैं। 'नरपुष्प' छोटी-छोटी एव सघन तथा नम्य कोणोद्भूत मंजरियों (*short axillary drooping panicles*) में निकलते हैं, जिनमें सवर्णकोश या परिदलपुंज (*perianth*) ५ खण्डोंवाला, खण्ड नौकाकार तथा पुंकेशर संख्या में ५ होते हैं। 'स्त्रीपुष्प' कोणोद्भूत, अवृन्त होते हैं, जिनमें सवर्णकोष एक-एक अखण्डि पत्रवत् होता है, जो गर्भाशय को ढँके रहता है। कुक्षिवृन्त (*style*) सूत्रवत् तथा दो शाखाओं में विभक्त होता है, जो बाहर को निकला रहता है। चर्मफल (*achene*) $\frac{1}{12}$ इंच लम्बे, किंचित् चपटे होते हैं, जो स्थायी सवणकोश (*Persistent perianth*) से आवृत रहते हैं। इसके फलयुक्त पत्रों को भाँग, मादा पौधे की मञ्जरीयुक्त शाखाग्रों (*female floweing tops*) को जिनपर रालदारद्रव्य लगा होता है गाँजा, और लेसदारद्रव या राल (निर्यास—*resinous exudation*) को जो भंग के पत्तों पर लगी होती है, और हाथ पर चिपक जाती है और जिसे उन पर से खुरचकर संग्रह करलेते हैं, चरस कहते हैं। इसे 'उसारए भंग' और 'इत्रे विलायती' भी कहते हैं। जिन क्षुपों से गाँजा बनता है, उनके आसपास पुरुष क्षुप नहीं होने चाहिए, क्योंकि गर्भावान होने पर मादकत्व लुप्त हो जाता है। इनका प्रयोग औषधि में भी होता है तथा लोग नशे के लिए पत्तियों को खाते हैं तथा चरस एव गाँजे को चिलम पर धूमपान के रूप में सेवन करते हैं। अतएव इसका आयात-निर्यात आबकारी महकमा के नियंत्रण में होता है।

उपयोगी अंग। फलयुक्त शुष्कपत्र (भाँग), गाँजा, चरस एवं बीज।

मात्रा। (भाँग) १२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० या १ रत्ती से २ रत्ती।
(गाँजा) ६२.५ मि० ग्रा० से १२५ मि० ग्रा० या $\frac{1}{2}$ रत्ती से १ रत्ती।
(चरस) ३१.२५ मि० ग्रा० या $\frac{1}{4}$ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—'भाँग' कान्नाबिस साटोवा नामक उपर्युक्त वनस्पति की सुखायी हुई पत्तियाँ होती हैं। एतदर्थ कर्षित (बोये हुए) अथवा जंगली तथा मादा एवं नर सभी पौधों की पत्तियाँ ली जाती हैं। बाजार में प्रायः भाँग की सुखायी हुई पत्तियाँ मिलती हैं, जो गाढ़े हरे रंग की होती हैं। इसमें प्रायः इनके लम्बे वृन्त या डंठल (*petioles*) भी होते हैं। पत्तियाँ करतलाकार खंडित होती हैं, जिनके पत्रक रेखाकार भालाकार (*linear-lanceolate*) तथा तीक्ष्ण दंतुर (*sharply serrated*) किनारे वाले होते हैं। आधार की ओर यह उत्तरोत्तर कम चौड़े होते हैं। बाजारू भाँग में पत्तियाँ प्रायः टूटी हुई होती हैं, जिससे यह स्थूलचूर्ण के रूप में प्राप्त होती हैं। इनमें एक विशिष्टप्रकार की गंध पायी जाती है। गाँजा—बाजार में गाँजा के कालिमा लिए मटमैले हरेरंग के चप्पड़ (*compressed rough dusky-green masses*) मिलते हैं, जिनमें भाँग के स्त्री (मादा) पौधे के पुष्पिताग्र (कोमल शाखा, पत्र, पुष्प एवं फल आदि) होते हैं, जो एक, लसदार या रालदार द्रव के द्वारा परस्पर चिपके रहते हैं। फल छोटे-छोटे एकबीज युक्त होते हैं, तथा इनके साथ एक कोणपुष्पक (*bract*) भी लगा होता है, जो पत्रवत्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं रूपरेखा में लट्वाकार-भालाकार होता है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की उग्र मदकारक गंध होती है, तथा स्वाद में कड़वी एवं तीक्ष्ण होती है। गाँजे में पत्र-काण्ड एवं फल आदि अधिकतम १०% तक होते हैं। विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य अधिकतम २%। ऐल्कोहल् (९०%) में विलेयसत्व कम-से-कम १०%, तथा भस्म अधिकतम १५% और अम्ल में अघुलनशील भस्म अधिकतम ५% प्राप्त होती है। परीक्षण। चरस—शुद्धचरस हरिताभ-भूरेरंग के नम रालीय चप्पड़ (*moist resinous mass*) के रूप में होती है, जिसमें पत्तियों के कण (*fragments of the leaves*) एवं रोम (*hairs*) भी चिपके होते हैं। चरस में भी भाँग के पौधेकी-सी विशिष्ट गंध पायी जाती है। किन्तु बाजारू नमूनों में अपद्रव्यों के मिलावट एवं नये-पुराने के कारण रंग एवं विलेयता (*solubility*) में बहुत अन्तर पाया जाता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—कभी-कभी असावधानी से भाँग की पत्तियों में इसके बीज भी मिले होते हैं। पौधे के नीचे की पत्तियाँ प्रायः निष्क्रिय होती हैं। अतएव इनका भी मिलावट नहीं होना चाहिए। गाँजा में भाँग के बीज एवं पत्तियों का मिलावट नहीं होना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—मैदानों में भाँग का संग्रह प्रायः मई-जून के महीनों में तथा पहाड़ी इलाकों में कुछ देर से (जून-जुलाई) में किया जाता है। पौधों को काट कर दिन में धूप में तथा रात्रि में ओस में रखा जाता है। इस प्रकार कईदिन तक प्रक्रिया दुहराई जाती है। जब सूख जाता है, इन्हें पीट कर पत्तों को पृथक् प्राप्त कर लेते हैं। 'गाँजा' का संग्रह प्रायः लगाये हुए पौधों से ही किया जाता है। जब पौधे बढ़ने लगते हैं, नीचे की शाखाएँ काट दी जाती हैं। इससे पुष्पिताग्रों में तेजी से वृद्धि होती है। जब पुष्प आने शुरू हो जायें तो नर पौधे छाँट कर उखाड़ दिये जाते हैं। जब नीचे की पत्तियाँ सूखकर गिरने लगती हैं, तथा पुष्पवृन्त पीले पड़ने लगते हैं, तब गाँजा के लिए फसल तैयार समझी जाती है। वायु में खुला रहने से गाँजा, चरस आदि की सक्रियता धीरे-धीरे कम हो जाती है। अतएव इनको अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में सुरक्षित करना चाहिए।

संगठन—भाँग में भूरेरंग की एक मृदु राल (*soft resin*) पायी जाती है, जिसे कैनाबिनोन (*Cannabinone*) कहते हैं। राल में लालरंग का एक गाढ़ा चिपचिपा तेल (*viscid red-oil*) पाया जाता है, जो अत्यन्त मदकारि (*narcotic*) होता है। हवा में खुला रहने पर यह रालीय हो जाता है तथा इसकी सक्रियता भी कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त भारतीय भाँग में कुछ गोंदीय पदार्थ, शर्करा, उड़नशील तेल, तथा केल्सियम फॉस्फेट आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—मादक। प्रधानकर्म—वेदनास्थापक, निद्राजनन, आक्षेपहर, दीपन-पाचन, ग्राही, पित्तसारक, आन्त्रशूल-प्रशमन, व्यवायी, विकासी, विकासी, शुक्रस्तम्भक, श्वासहर, अधिकमात्रा में मूर्छाजनक एवं मदकारि। यूनानीमतानुसार भाँग, गाँजा तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष होते हैं तथा चरस चौथे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है। अहितकर—दृष्टि एवं मस्तिष्क के लिए (उन्मादजनक एवं मदकारक है)। निवारण—घी आदि स्निग्ध पदार्थ।

मुख्य योग—काईचूर्ण, जातीफलादिचूर्ण, मदनानन्दमोदक, माजून फ़ालकसेर।

वक्तव्य—यद्यपि 'भंगा' का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में नहीं मिलता, तथापि प्राचीन सुदूर उत्तर-पश्चिमी भारतीय सीमाप्रान्तीय क्षेत्र में इसका ज्ञान आयुर्वेदीय संहिताओं से अनेक शताब्दियों पूर्व से था। भंगा संज्ञा का प्राचीनतम एवं सर्वप्रथमोल्लेख पाणिनि के अष्टाध्यायी में मिलता है, जहाँ इसका परिगणन 'अश्वादिगणपाठ (५.१.३९)' में किया गया है। पुनः सूत्र (विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ५. २. ४) में भी इसका स्पष्टोल्लेख हुआ है, जिससे 'भङ्गा के खेत' के अर्थ में 'भङ्ग्यम् / भाङ्गीकम्' शब्दों की निष्पत्ति होती है। इससे स्पष्टतया लक्षित होता है, कि पाणिनिकाल में भङ्गा की खेती भी की जाती थी। किन्तु उक्त उत्पादन मैदानी भागों में सन, पाट आदि की भाँति इसके काण्ड वल्कसूत्र (*bast-fibres*) के लिये किया जाता था। और इन्हीं की भाँति हरेकाण्ड के गट्ठों को कीचड़ में सड़ाकर सूत्रमयत्वचा को पृथक् किया जाता था। उक्त रेशों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का उपयोग 'रज्जु' बनाने तथा कपड़ा बुनने के लिये भी किया जाता था। एतदर्थ जंगली पौधों का भी उपयोग किया जाता है, जो उत्तर पश्चिमी हिमालय तथा तराई क्षेत्र में सर्वत्र स्वयंजात एवं प्रचुरता से पाये जाते हैं। उल्लेखनीय है कि आज भी हिमांचल प्रदेश, कुलु, नैपाल आदि एवं हिमालय में अन्यत्र उक्त परम्परा चालू है। अथर्ववेद में (२. ४. ५) जङ्गिण के साथ जिस 'शण' का उल्लेख है, तथा उक्तसंदर्भ में जिसके औषधीय महत्त्व का गुणगान किया गया है उससे उक्त परवर्ती 'भङ्गा' ही अभिप्रेत है (**On the Indentity and Critical Appraisal of Vedic Flora**–*Prof. R. S. Singh*)। अथर्ववेद में 'शण' को पर्वतों पर जङ्गलीरूप से उत्पन्न होने का भी उल्लेख किया गया है, जो तथ्यानुरूप ही है। काण्डवल्क सूत्र के संदर्भ में भङ्गा का ही उल्लेख 'शण' नाम से कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी है, जहाँ यह 'कुप्याध्यक्ष' नामक प्रकरण ३५ के पाठ ७ में वन्योत्पाद 'वल्कवर्ग' में परिगणित है। तदनु अध्याय १८ के 'आयुधागाराध्यक्ष' नामक प्रकरण ३६ के पाठ ९ में 'धनुष की ज्या' की डोरी के लिए जिनद्रव्यों का उपयोग एवं संग्रह किया जाता था उनमें 'शण' भी निर्दिष्ट है। इनके अतिरिक्त शण के वल्कलसूत्रों के ज्वलनशील स्वभाव की भी मान्यता की गयी है। उक्त भङ्गाजन्य शणसूत्रों के उपयोग की परम्परा परवर्ती भारतीयग्रन्थों में सर्वत्र निर्दिष्ट है। अन्ततः मैदानी क्षेत्रों में उक्त शणसंज्ञा एवं उसके सूत्रोपयोग का स्थान परवर्ती क्रोटोलारिया जातीय उष्णकटिबन्धीय वनस्पतियों ने ले लिया है।

अपने मादक एवं औषधीय गुणकर्मों की मान्यता तथा गंजा, भातुलानो, जया, विजया आदि अनेक अन्य पर्यायों के साथ भङ्गा अपना नवीन स्वरूप लेकर मध्ययुगीन रसग्रन्थों तथा (तत्प्रभावित) सभी आयुर्वेदीय निघण्टुओं एवं परम्परा में आविर्भूत होती है, जिसकी अविच्छिन्न धारा अद्यावधि चलरही है। इसके मादक व्यवहार की परम्परा गैर-इस्लामी ईरानियन माध्यम से आगत प्रतीत होती है। भङ्गा के औषधोपयोग ऐकान्तिकरूप से भारतीय रसचिकित्सकों के देन है। 'जया' 'विजया' नाम से भङ्गा का समावेश रसग्रंथों (रसरत्न समुच्चय/सूतप्रदीपिका, रसतरंगिणी आदि) में प्रसिद्ध 'उपविषवर्ग' में भी है। भङ्गा का औषधोपयोग अन्य उपविषों की भाँति शोधनोपरान्त किया जाता है। भङ्गापत्र, बीज, गञ्जा आदि अनेक रसयोगों में प्रमुख उपादानरूपेण व्यवहृत हैं। (लेखक)

भारङ्गी (भार्गी)

नाम। सं०–भार्ङ्गी, भार्ङ्गी, ब्राह्मणयष्टिका? हिं०–भारङ्गी। (जौनसार)–बनबाकरी। बं०–बामुनहाटी। म०–भारंग। गु०–भारंगी। संथा०–सरमलूतर। ले०–क्लेरोडेन्ड्रान सेर्राटुम **Clerodendron serratum** (*Linn.*) *Moon.*।

वानस्पतिक-कुल। निर्गुण्डी-कुल (वर्बेनासे : *Verbenaceae*)।

प्राप्तिस्थान–प्रायः समस्त भारतवर्ष में इसके क्षुप पाये जाते हैं। विशेषतः हिमालय की तराई–नेपाल, कुमायूं, गढ़वाल, देहरादून आदि, बंगाल तथा बिहार आदि स्थानों में प्रचुरता से पाया जाता है। दक्षिणभारत में भी मिलता है।

संक्षिप्त-परिचय–इसके बहुवर्षायु गुल्म होते हैं, जिनमें अनियमित क्रम से अनेक चौपहल शाखाएँ निकली रहती हैं। जिन स्थानों में दावाग्नि होती रहती है, वहाँ मूलस्तम्भ केवल बहुवर्षायु होता है। उक्त काष्ठीय मूलस्तम्भ से प्रतिवर्ष ०.९ मीटर से १.८ मीटर या ३.६ फुट ऊँचे किंचित् शाकीय सीधे काण्ड निकलते हैं। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० या ३ इंच से ८ इंच तक लम्बी तथा ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (१½ इञ्च से २½ इञ्च) चौड़ी लगभग अवृन्त, रेखाकार आयताकार, अण्डाकार, अभिलट्वाकार या अभिप्रासवत् तथा तीक्ष्णदन्तुर और चिकनी कुछ-कुछ मांसल, आमने-सामने या तीन-तीन पत्तियाँ प्रति चक्र में होती हैं। पुष्प व्यास में २.५ सें० मी० या १ इंच से अधिक, नीलाभ, हल्के गुलाबी या सफेद रंग के होते हैं, जो शाखाग्रों पर गुच्छों में निकलते हैं, और कुछ सुगंधित होते हैं। कोणपुष्पक स्थायी और बाह्य कोष कुछ-कुछ फलोपचयी होता है। अष्ठिफल (*drupe*), प्रायः १ से ३, परस्पर संयुक्त और मांसल खण्डफलों का होता है। पकने पर यह जामुनी कालेरंग के हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाते हैं। पुष्पागम ग्रीष्म में तथा फलागम वर्षान्त या जाड़ों के प्रारम्भ में होता है।

उपयोगी अंग—मूल।

मात्रा। १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—उपर्युक्त भार्गी के पर्यायों में ब्राह्मणयष्टिका (सं०) तथा वामनहाटी का भी उल्लेख है। वास्तव में 'वामनहाटी' नाम से क्लेरोडेन्ड्रान सीफोनान्थुस (Clerodendron siphonanthus *R.Br.*) नामक भार्गी की दूसरी जाति का ग्रहण होना चाहिए। पर्यायों की उक्त गड़बड़ी से भारङ्गी नाम से इसका भी संग्रह किया जाता है। अभावे यह भी असली भार्ङ्गी का प्रतिनिधित्व कर सकता है। वामनहाटी के गुल्मस्वभाव के शाकीय पौधे होते हैं, जिनमें काण्ड सीधा, लम्बा एवं ०.९ मीटर से १.८ मीटर या ३ फुट से ६ फुट ऊँचा एवं नालाकार होता है। पत्तियाँ ग्रन्थियों पर ३ या ५ के चक्रों में कभी-कभी अभिमुख) स्थित होती हैं। पुष्प सुन्दर, श्वेत या मलाई वर्ण के, पत्र-कोणीय गुच्छों में और बड़े तथा अग्र्यव्यूह में रहते हैं। परस्पर संयुक्त १ से ४ फल-खण्डों का बना हुआ अष्ठिफल होता है, जिसके साथ रक्तवर्ण का फलोपचयी बाह्यकोश लगा रहता है। बाजारों में इसकी जड़ को काट कर सुखाये टुकड़े मिलते हैं, जो १८.७५ मि० मी० से ३.१२५ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ इञ्च से $1\frac{1}{4}$ इञ्च) लम्बे होते हैं। रूपरेखा में यह बेलनाकार तथा चिकने और बाह्यतः लालिमा लिये भूरे रंग के होते हैं। अन्दर का भाग हल्के पीलेरंग का होता है। इसमें कोई विशेष गन्ध तथा स्वाद नहीं पाया जाता। (२) बंगाल में पीक्रास्मा क्वास्सिओइडेस **Picrasma quassioides** *Bennet.* (*Family* : *Simarubaceae*) की छाल भी-भारंगी के नाम से बिकती है। इसके बड़े क्षुप होते हैं, जो हिमालय प्रदेश में पश्चिम में चनाब से लेकर चम्बा, कुलु, बशहर तथा पूरब में उत्तरी गढ़वाल एवं नैपाल-भूटान में १४६३ मीटर से २४०८ मीटर या ४,८०० फुट से ८००० फुट की ऊँचाई पर) पाये जाते हैं। इसकी छाल स्वाद में अत्यन्त तीती होती है और गुण-कर्म की दृष्टि से 'विलायती क्वासिया' की उत्तम प्रतिनिधि समझी जाती है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में भार्ङ्गीमूल का संग्रह कर छाया-शुष्क कर लें और मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—इसके मूल में रालीय वसामय तथा क्षारोद स्वभाव के तत्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—६ महीने से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, कटु, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—कफवात-शामक, शोथहर, व्रणपाचन, दीपन-पाचन, अनुलोमन, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, कफघ्न, श्वासकासहर, रक्तशोधक आदि।

मुख्य योग। भारङ्गीगुड़, भार्ङ्गयादि-क्वाथ।

भिलावाँ (भल्लातक)

नाम। सं०—भल्लातक, अरुष्कर अग्निमुख। हिं०—भिलावाँ भेला। प०—भिलावाँ, भेला। म०—बिब्बा। गु०—भिलामां। को०, संथा०—सोसो। खर०—भेलवा। अ०—हब्बुल्क़ल्ब, इक़्क़ीदिया। फा०—ब (बि) लादुर। अ०—(१) (फल) मार्किंग नट (*Marking Nut*), धोबीज नट (*Dhobis' Nut*); (वृक्ष) मार्किंगनट-ट्री (*Marking-Nut Tree*), फायर-फेस ट्री (*Fire face Tree*)। ले०—सेमेकार्पुस आनाकार्डिउम (**Semecarpus anacardium** *Linn. f.*)। लेटिन नाम इसके वृक्ष का है।

वानस्पतिक-कुल। आम्रादि-कुल (आनाकार्डिआसे *Anacardiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय के निचले भाग में व्यास नदी से लेकर ४६६.८ मीटर या (३,५०० फुट की ऊँचाई तक)। पूरब में खसिया की पहाड़ियों तक तथा समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में विशेषतः बिहार, बंगाल, आसाम, मध्य भारत, गुजरात, कोंकण, दक्षिण महाराष्ट्र, कनाड़ा एवं मद्रास के जंगलों में इसके स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। इसके सुखाये हुए पक्वफल बाजारों में मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। भल्लातक के छोटे या मध्यमाकारी पतझड़

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने वाले वृक्ष होते हैं, किन्तु पत्तियाँ बहुत बड़ी तथा शाखाग्रों पर समूहबद्ध होती हैं। काण्डत्वक् गाढ़े भूरे रंग की या खाकस्तरी होती है, जिसमें चीरा लगाने से कालेरंग का दाहक एवं स्फोटजनक रस निकलता है। इसीसे लकड़ी आदि के लिए इसके वृक्षों को लोग भय से नहीं काटते। इसको कोमल-कोमल टहनियाँ, पत्तियों के अधःपृष्ठ एवं पुष्पव्यूह आदि मृदुरोमावृत होते हैं। पत्तियाँ अखण्डित तथा एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं, जो २२.५ सें० मी० से ६० सें० मी० या ९ इञ्च से १५ इञ्च चौड़ी, अभिलट्वाकार-आयताकार, चर्मिल, अग्र एवं आधार पर प्रायः गोलाकार (आधारपर कभी-कभी हृदयाकार), जिससे स्थूलतः देखने में वायोलीन (*Violin*) बाजे की रूपरेखा-सी मालूम होती हैं, तथा ऊर्ध्वपृष्ठ की अपेक्षा अधःपृष्ठ पर फीकेरंग की होती हैं। पत्र-शिराएं १६-२४ जोड़े (*pairs*) होती हैं, जो स्पष्ट और कठिन होती हैं। पुष्प हरिताभ पीतवर्ण के, छोटे-छोटे (१२.५ मि० मी० से ८.३ मि० मीटर ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $\frac{1}{3}$ इञ्च व्यास के) तथा अग्र्य लम्बे स्तबकों या लम्बी सगुच्छ-मञ्जरियों में (*in fascicles on long terminal panicles*) में निकलते हैं, जो एक लिंगी होते हैं और स्त्रीपुष्प एवं पुंपुष्प पृथक् पृथक् वृक्षों पर पाये जाते हैं। अष्ठिफल (*drupe*) २.५ सें० मी० या १ इञ्च तक लम्बा, चपटा, स्थूलतः आम की रूप रेखा का पकने पर काला, चमकदार एवं मांसल तथा चषकाकार नारंगवर्ण के मांसल दल्यक्ष या पुष्पधर (*fleshy receptacle*) में बैठा हुआ होता है। उक्त दल्यक्ष मधुर एवं स्वादिष्ट होता है। जंगली लोग या संग्रहकर्त्ता इनको खाते हैं। अतएव बाजारों में जो फल आते हैं, उनपर प्रायः उक्त मांसलपुष्पधर का अभाव होता है। इसकी फलभित्ति में भी उपर्युक्त दाहकरस (*acrid juice*) प्रचुरमात्रा में पायाजाता है, जिसका उपयोग धोबी लोग कपड़ों में निशान लगाने के लिए करते हैं। औषध्यर्थ इन्हीं फलों का व्यवहार होता है। पतझड़काल—वसन्त। पुष्पागम—ग्रीष्म-ऋतु। फलागम—शरद् और हेमन्त-ऋतु।

उपयोगी अंग। फलमज्जा एवं रस (*acrid juice*) या भिलावें का तेल।

मात्रा—फलमज्जा (मग्ज़े बलादुर)—१ ग्राम या १ माशा। फलरस—$\frac{1}{2}$ रत्ती से २ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—भिलावे का फल लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च लम्बा एवं हृदयाकृति होता है, जिसमें अलिंद का भाग वस्तुतः दल्यक्ष या पुष्पधर (*receptacle*) से बनता है, जो वास्तविक फल के ऊपर लाल टोपी की भाँति स्थित होता है। यह मधुर एवं स्वादिष्ट होता है। संग्रहकर्ता इसे पृथक् कर लेते हैं। बाजार में बिकनेवाला भिलावा वास्तविक 'फल' है। अपक्वावस्था में भिलावा हरितवर्ण का, किन्तु पकने पर चमकीले कालेरंग का हो जाता है। कच्चेफल के भीतर का रस दूध की तरह सफेदरंग का होता है, जो हवा लगने पर कालेरंग का हो जाता है। पकेफल का रस मधु के समान गाढ़ा और कृष्णवर्ण का (*brown oily acrid juice*) होता है। फल के भीतर बादाम की तरह मीठा एक बीज होता है। उक्त कड़वारस जिसे 'भिलावे का तेल' भी कह देते हैं, वास्तव में इसकी फलभित्ति में पाया जाता है। फलों को जलाने पर २.१४% भस्म प्राप्त होती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—भिलावे में प्रायः किसी चीज का मिलावट नहीं पाया जाता।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्वफलों को लेकर, उनका शोधनकर मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें और पात्र पर 'विष' का प्रपत्रक (लेबिल) लगा दें।

संगठन—फल के बाह्यत्वक् में काला दाहजनकतेल (३२%), तथा तिक्तसत्व, मज्ज में काजू की गिरी की भाँति पौष्टिकद्रव्य और अनुत्पत् मीठातेल पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। २ वर्ष।

स्वभाव। गुण-लघु, निस्नग्ध, तीक्ष्ण। रस—मधुर, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य-उष्ण। कर्म—कफवातशामक, पित्त संशोधन। बाह्यतः स्थानिकप्रयोग से (रस) स्फोटजनक, आभ्यन्तरसेवन से दीपन-पाचन, भेदन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, मेध्य, नाड़ीबल्य, कफनिस्सारक, श्वासहर, अर्शोघ्न, आमवातनाशक, वाजीकरण, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न, बृंहण, रसायन, हृदयोत्तेजक, यकृतोदर एवं प्लीहोदरनाशक आदि। यूनानीमतानुसार भल्लातक का 'फलरस' चौथे दर्जे में गरम और खुश्क तथा 'मज्जा' दूसरे दर्जे में गरम और पहले में खुश्क है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भल्लातक-चिकित्साक्रम में सेवनयोग्य पथ्य—भल्लातक सेवन करते समय पित्तवर्धक आहार-विहार यथा कटु-अम्ल-लवण रस एवं उष्णवीर्य द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए। आग के पास, या धूप में भी नहीं बैठना चाहिए। पित्तशामक द्रव्यों, यथा दूध, घी, चीनी और भात का सेवन लाभकर है। तिल, नारियल एवं काजू की गिरी का सेवन भी उत्तम है।

अनिष्ट लक्षण—'अशुद्ध भल्लातक' अथवा इसके 'मात्रातियोग' से अनेक अनिष्टकर उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। सर्वप्रथम गुदा एवं शिश्न के अग्रभाग पर कण्डू या दाह मालूम होता है। प्यास अधिक लगती है। मूत्रकृच्छ्र होता तथा पसीना अधिक आता है। त्वचा पर इसका रस अथवा शोधनादि में धूम लगजाने से उसस्थान में खुजली, जलन, शोथ एवं फफोले पड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में मौखिकसेवन बन्दकर देना चाहिए, तथा शामक-द्रव्यों का सेवन करें। स्थानिक उपद्रवों की शान्ति के लिए तिलतेल, गरीका तेल या शतधौत घृत लगावें।

भल्लातक सेवन के अयोग्य व्यक्ति—बाल, वृद्ध एवं पैत्तिक प्रकृति वालों को तथा गर्भवती स्त्रियों को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

मुख्य योग—अमृतभल्लातक, भल्लातक तैल।

विशेष—(१) मौखिकसेवन के लिए प्रायः शुद्ध भिलावें का व्यवहार किया जाता है। एतदर्थ भल्लातक के वृन्त-मुख को काटकर खरल में ईंट के चूर्ण में इसे खूब रगड़ें और गर्मजल से धोलें, फिर इसे दूध में उबालें। सावधानी—उबालते समय इसके धुँए से बचना चाहिए।

(२) कैन्सर में भिलावें का विशिष्ट प्रयोग—परीक्षण द्वारा भल्लातक का प्रयोग केन्सर (कर्कटार्बुद) रोग में बहुत उपयोगी बतलाया गया है।

(३) चरकोक्त (सू० अ० ४) दीपनीय, कुष्ठघ्न एवं मूत्रसंग्रहणीय महाकषायों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) न्यग्रोधादि एवं मुस्तादिगण के द्रव्यों में 'भल्लातक' भी है।

(४) रसशास्त्रीय परम्परा में भल्लातक का सविवेश 'उपविषवर्ग' में किया गया है। तथा शुद्ध भिलावाँ अनेक योगों में उपादानरूप से पड़ता है।

भुँई आँवला (भूम्यामलकी)

नाम। सं०—भूम्यामलकी, भूधात्री, तामलकी। हिं०—भूई आँवला, भुँई आँवला। म०—भुई आँवली। गु०—भोंय आँवली। बं०—भुँई आम्ला। ले०—(१) फ़ील्लांथुस ऊरीनारिआ (**Phyllanthus urinaria** *Linn*); (२) फ़ील्लांथुस् नीरूरी (**Phyllanthus niruri** *Linn.*)।

वाष्पतिक-कुल। एरण्ड-कुल (एउफॉर्बिआसे : *Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान। समस्त भारतवर्ष में 'भुँइ आँवले' के क्षुप बरसात में होते हैं, तथा फूलने-फलने के बाद गर्मियों में सूख जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। (१) फ़ील्लांथुस ऊरीनारिआ—इसके एक वर्षायु कोमलकाण्डीय, छोटे-छोटे (१५ सें० मी० से ३० सें० मी० या ½ फुट से १ फुट—कभी अनुकूल परिस्थिति में अपेक्षाकृत ऊँचे) पौधे होते हैं, जो वर्षा में खेतों में तथा परित्यक्त भूमि में उगते हैं। काण्ड पतले, सीधे-खड़े (*erect*), रक्ताभ, कुछ-कुछ चिपटे होते हैं। उनकी फैली हुई पर्णमय शाखाएँ सपत्रक पर्णसदृश होती हैं। पत्तियाँ सघन, द्विपंक्तिक (*distichously imbricate*), प्रायः विनाल ½ सें० मी० से ⅝ सें० मी० (¼ इञ्च से ½ इञ्च) तक लम्बी, ⅛ सें० मी० से ½ सें० मी० (⅛ इञ्च से ¼ इञ्च) चौड़ी, लट्वाकार, या आयताकार रेखाकार, अग्र गोल एवं तीक्ष्णाग्र (*apiculate*), तथा अधस्तल पर फीके रंग की होती हैं। पुष्प छोटे, एकल, पत्रकोणोद्भूत, प्रायः अवृन्त या सूक्ष्मवृन्तयुक्त, तथा पीताभ होते हैं। फल (*capsules*) आँवलेसदृश गोल; व्यास में ⅛ सें० मी० या ⅛ इञ्च, नतशीर्ष और शाखाओं के नीचे एक कतार में निकले हुए होते हैं। फलों में छोटे-छोटे बीज (⅛ इञ्च या १½ मि० मि० लम्बे) होते हैं। (२) फ़ील्लांथुस नीरूरी—इसमें काण्ड तथा पुष्पादि हरित या श्वेत होते हैं, और पत्तियाँ छोटी होती हैं, अन्यथा पौधा पहले प्रकार की ही भाँति होता है। भूम्यामलकी के पौधों में जाड़ों में फूल-फल लगते हैं और गर्मियों तक अपने आप सूख जाते हैं।

उपयोगी अंग। पंचाङ्ग।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्रा। स्वरस–१ तोला से २ तोला।
चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण–पुष्पागम के बाद जाड़ों में इसका संग्रह कर छायाशुष्क कर लें, और मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

संगठन–भूम्यामलकी की पत्तियों में फिलैन्थिन (*Phyllanthin*) नामक तिक्तसत्व पाया जाता है। सूखी पत्तियों में हाइपोफिलैन्थिन (*Hypophyllanthin* ०.०५%) तथा फिलैन्थिन (०.३५%) नामक तिक्त कार्यकारीतत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। ३-४ माह।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कषाय मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कफपित्तशामक, दीपन–पाचन, यकृदुत्तेजक, अनुलोमन, स्तम्भन, तृष्णानिग्रहण, रक्तशोधक रक्तपित्तहर, कास-श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न (विशेषतः नियतकालिक ज्वरहर), बल्य, विषघ्न, गर्भाशय शोथहर, कुष्ठघ्न। इसका लेप व्रणरोपण, शोथहर तथा कुष्ठघ्न होता है। चरकोक्त (सू० अ० ४) कासहर एवं श्वासहर महाकषाय के द्रव्यों में 'भूम्यामलकी' ('तामलकी' नाम से) भी है।

मुख्ययोग–च्यवनप्राश के क्वाथ्य-द्रव्यों का घटक।

मँगरैला (उपकुञ्चिका)

नाम। सं०–उपकुञ्ची, पृथ्वीका, कालिका, स्थूलजीरक। हिं०– कलौंजी, मँगरैला। गु०, म०–कलोंजी। बं०–कालजीरा। अ०–हब्बतुस्सौदा, हब्बे अस्वद। फा०–स्याहदानः, शोनिज। अं०–ब्लैक क्युमिन (*Black Cumin*), स्माल फेनेल (*Small Fennel*)। ले०–नीजेल्ला साटीव (Nigell sativa *Linn.*)। इसका लेटिन नाम पौधे का है।

वक्तव्य–इसके अरबी 'हब्बतुस्सौदा' एवं फारसी 'स्याहदानः' नामों के धात्वर्थ '(कृष्णबीज)' को दृष्टि में रखकर किसी-किसी लेखक ने इसका हिन्दी नाम 'कालादाना' लिखा है। किन्तु 'कालादाना' नाम से सर्वथा भिन्न एक पृथक् (रेचक) द्रव्य का ग्रहण किया जाता है। बंगीयपरम्परा एवं कलकत्ता बाजार में 'कालाजीरा (=स्याहजीरा)' नाम से मँगरेला ही समझा एवं बेचा जाता है। इस भ्रामकस्थिति को ध्यान में रखना चाहिए। (लेखक)

वानस्पतिक-कुल। वत्सनाभ-कुल (रानुनकुलासे *Ranunculaceae*)।

प्राप्तिस्थान–मँगरेला यूरोप के भूमध्यसागरतटीय प्रान्तों का आदिवासी पौधा है। सीरिया में भी स्वयंजात (*wild*) होता है। भारतवर्ष में विशेषतः बिहार, पंजाब आदि प्रान्तों में प्रचुरता से इसकी खेती की जाती है।

संक्षिप्त परिचय–दक्षिणभारत तथा नेपाल की तराई एवं बंगाल आदि में मँगरेले की काफी खेती की जाती है। एतदर्थ नदियों के किनारे बलुई या दोमट भूमि अधिक उपयुक्त होती है। अगहन-पूस में प्रायः बीज बोये जाते हैं। इसका पौधा १½ से २ हाथ ऊँचा होता है, और देखने में सौंफ के पौधे से मिलता-जुलता है। फूल सफेदी लिये पीले होते हैं। किसी-किसी में नीलेपन की भी झलक होती है। फूल झड़जाने पर फलियाँ लगती हैं, जो २½-३ अंगुल लम्बी होती हैं। इनमें छोटे-छोटे कालेरंग के तिकोनिया बीज भरे होते हैं। इन 'बीजों' का व्यवहार मसाले में तथा औषधि में भी किया जाता है। कलौंजी प्रायः सभी भारतीय बाजारों में सुलभ होती है। उत्तरभारत के बाजारों में यह, उत्तरभारत, बसरा और काबुल से आती है।

उपयोगी अंग–बीज।

मात्रा। अग्नि पर भुने बीजों का चूर्ण १ ग्राम से ३ ग्राम या (१ माशा से ३ माशा)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। मंगरैला के बीज तिनोने, गहरे भूरे वा कालेरंग के होते हैं। इनके ऊपर का छिलका खुरदरा होता है। लम्बाई में ये बीज २.५ मि० मी० से ३.५ मि० मी० लम्बे तथा २ मि० मी० मोटे होते हैं। बीज को काटने से उसमें तेल से भरा हुआ सफेद मज्ज निकलता है। बीजों को मसलने से नीबू-जैसी तीक्ष्ण सुगन्धि आती है। स्वाद में तीक्ष्ण एवं मसालेदार। नये, भारी, मोटे, तेज और चरपरे दाने की कलौंजी उत्तम होती है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य–अधिकतम २% प्राप्त होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–इसको सुखाकर अनार्द्र शीतल स्थान में अच्छी तरह डाटबन्द पात्रों में रखना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–स्थिर तैल (*Fixed Oil*) ३७.५% तक। उत्पत् तैल (*Essential Oil*) ०.५ से १.५। इसके अतिरिक्त एक ग्लुकोसाइड, एक सेपोजेनिन, किंचित् रेजिन, ऐल्ब्युमिन आदि। इनमें उत्पत् तैल ही इसका वीर्य भाग है।

वीर्यकालावधि। उत्तम प्रकार के बीजों में अच्छी तरह संरक्षण करने से ७ वर्ष तक वीर्य बना रहता है।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–दीपन-पाचन, गर्भाशयोत्तेजक, मूत्रल, वेदनास्थापन, वातनाशक।

मुख्य योग। कलौंजी 'चातुर्बीज' का एक उपादान है।

मण्डूकपर्णी–दे०, 'ब्राह्मी'।

मकोय (काकमाची)

नाम। सं०–काकमाची, काकमाता, वायसी। हिं०–मकोय, मको, कवैया। बं०–काइस्तला शाक, गुड़कामाई। पं०–काकमाच, मको। कालाचिरोब्यो–शेखावटी (राज०)। म०–कामोणी। गु०–पीलुडी। अ०–इनबुस्सालब। फा०–रूबाह। अं०–गार्डन नाइटशेड (*Garden Night-Shade*)। ले०–सोलानुम नीग्रुम (**Solanum nigrum** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। कण्टकारी-कुल (सोलानासे : *Solanaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में, बगीचों में तथा जोते हुए खेतों में; एवं गृह-उद्यानों में अपने आप उगी हुई मिलती है।

संक्षिप्त-परिचय। मकोय के एकवर्षायु या द्विवर्षायु कोमल-काण्डीय छोटे क्षुप ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ फुट से ३ फुट) ऊँचे होते हैं। काण्ड कोणाकार (*angled*) होता है, तथा अनेक शाखा-प्रशाखाएँ निकल कर चारों ओर को छत्राकार फैली रहती हैं। पत्र २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (१ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बे, रूपरेखा में लट्वाकार-आयताकार तथा सवृन्त, पत्रतट सरल या अखण्डित अथवा लहरदार कुछ दन्तुर से होते होते हैं। पुष्प छोटे तथा सफेदरंग के होते हैं, जो समशिख-गुच्छकों में निकलते हैं। फल (*berry*) छोटे-छोटे, गोल-गोल तथा कच्चा होने पर हरे किन्तु पकनेपर पीले, लाल या कालेरंग के हो जाते हैं, और खाने में कुछ खट्टापन लिये मीठे होते हैं।

उपयोगी अंग। पत्र, फल, पञ्चाङ्ग।

मात्रा। (सूखी मकोय) ५ ग्राम से ७ ग्राम या ५ माशे से ७ माशा।

मकोयकी पत्तीका फाड़ारस–४ तोला से ६ तोला।

अर्कमकोय–१ तोला से ५ तोला।

वस्तु संगठन–समस्त पौधे में विशेषतः फलों में काकमाचीन या सोलेनीन (*Solanine*) नामक क्षारोद (ऐल्केलॉइड) पाया जाता है।

स्वभाव। मकोय दूसरे दर्जे में सर्द एवं खुश्क होती है। यह संग्राही, दोषविलोमकर्ता, उपशोषण, सन्तापहर, मूत्रल और लेप तथा पानतः उष्णश्वयथुविलय है। कोषस्थ अङ्गों की सूजन विशेषतः यकृच्छोफ, आमाशयशोथ; जलोदर आदि में मकोय की पत्ती का फाड़ा हुआ रस या इसका अर्क देते हैं। सूजनों में बाह्यतः लेप के रूप में भी इसका व्यवहार होता है। मस्तिष्कावरणशोथ यथा सन्निपात) में मकोय के रस में सिरका मिला कर उसमें भिगोई हुई पट्टी शिरपर रखने से लाभ होता है।

मुख्ययोग–अर्कमकोय।

विशेष–चरकोक्त (वि० अ० ८) तिक्तस्कन्ध के द्रव्यों में 'काकमाची' का भी उल्लेख है।

मखाना (मखान्न)

नाम। सं०–मखान्न, पद्मबीजाभ, पानीयफल। हिं०–मखाना (रा)। बं०–मखाना (रा)। म०–मखान। पं०–जवेर। अं०–फॉक्सनट (*Fox-Nut*)। ले०–एउरिआले फ़रॉक्स (**Euryale ferox** *Salisb.*)। लेटिन नाम इसकी वनस्पति का है।

वानस्पतिक-कुल। कमल-कुल (नीम्फ़ीआसे : *Nymphaeaceae*)।

प्राप्तिस्थान–मखाना भी कमल की भाँति एक जलीय पौधा है, जो उत्तर, मध्य एवं पश्चिमी भारतवर्ष में जलाशयों में पाया जाता है। उत्तरी बिहार (मिथला, पूर्निया आदि) में तालाबों एवं जलाशयों में प्रचुरता से होता है। मखाने का 'लावा' बाजारों में बिकता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त-परिचय। मखाने का क्षुप भी कमल की भाँति जलाशयों में होता है, जिसकी पत्तियाँ वृत्ताकार, व्यास में ३० सें० मी० से १२० सें० मी या १ फुट से ४ फुट तक, वक्र कण्टकों से आवृत होती तथा जलपर तैरती रहती हैं। मखाने के पत्र, नाल एवं फल सर्वत्र काँटे होते हैं। पुष्प .५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बे, बाहर से बनफशई-नील एवं अन्दर से लालरंग के होते हैं। पुष्पदण्ड लम्बा होता है (और इसपर भी काँटे होते हैं) तथा जल के कुछ ऊपर उठा होता है। स्त्रीकेशर चक्राकार में स्थित तथा परस्पर पूर्णतः संयुक्त और कर्णिका में धँसे होते हैं। दलपत्र (*petals*) एवं पुंकेशर अनेक होते हैं। फल गोल या अण्डाकार (नारंगी की तरह) होते हैं, जिसमें ४-२० तक कमलगट्टे (कमलबीज) से मिलते-जुलते कृष्ण-वर्ण के बीज होते हैं। गुण-कर्म में भी कमलबीज एवं मखान्न-बीज बहुत-कुछ समान होते हैं। इसके बीजों को भूनकर हथौड़ी से कूटते हैं, और इस प्रकार इसका लावा प्राप्त होता है। इसका कच्चाफल भी खाया जाता है।

उपयोगी अंग—भुनाबीज लोग पंचमेवे में डालते तथा इसकी खीर बनाते हैं।

मात्रा। ६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—मखान्न बीजों एवं लाजा (लावा) को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन—मखाने के बीज में मुख्यतः कार्बोज (कार्बोहाइड्रेट) तथा प्रोटीन एवं खनिजतत्त्व तथा कैल्सियम्, लौह, फास्फोरस और केरोटीन आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

स्वभाव। गुण—गुरु, रूक्ष। रस—मधुर, कषाय, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—त्रिदोषनाशक, विशेषतः वातपित्तशामक, स्तम्भन, (अधिक मात्रा में विष्टम्भी), बल्य, बृंहण, शुक्रल, शुक्रस्तम्भन, हृद्य, शोणितस्थापन, कफनिःसारक, प्रमेहहर। यूनानीमतानुसार यह पहले दर्जे में गरम और तर है। अहितकर—शीतलप्रकृति को। निवारण—इसको भृष्ट करना।

ममीरा (पीतमूला)

नाम। सं०—पीतमूला, मिष्मीतिक्ता। हिं०—ममीरा, मुमीरा। म०—ममीरा। गु०—ममीरो। आसाम—मिष्मीतीता। अ०, फा०—मामीरान। अं०—कॉप्टिस (*Coptis*), गोल्डेन थ्रेड (*Golden-Thread*)। ले०—कॉप्टिडिस राडिक्स (*Coptidis Radix*)। (वानस्पतिका नाम)—कॉप्टिस टीटा (**Coptis teeta** *Wall.*)।

वानस्पतिक-कुल। वत्सनाभ-कुल (रानुनकुलासे *Ranunculaceae*)।

प्राप्तिस्थान—काबुल से आसाम तक समशीतोष्ण हिमालय के प्रदेशों में विशेषतः आसाम से पूर्व के देशों के पहाड़ी स्थानों में ममीरा के स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। चीन में इसकी खेती भी की जाती है। 'चीनीममीरा (ममीरान चीनी)' उत्कृष्ट समझा जाता है। 'भारतीयममीरा' आसाम की मिष्मी नाम की पर्वतमाला में अधिकतया होता है, जहाँ से मिष्मी नाम की जाति के लोग बेचने के लिए लाते हैं, तथा यह स्वाद में तीता होता है, इसीलिए आसाम में इसको 'मिष्मीतीता' कहते हैं। 'आसामी ममीरा' कलकत्ता से अन्य भारतीय बाजारों को भेजा जाता है। ममीरान चीनी सिंगापुर होकर कलकत्ता तथा बम्बई के बाजारों में आता है। कभी-कभी काबुली भी ममीरा बेचने को लाते हैं। मंहगी तथा कममात्रा में उपलब्ध होने वाली औषधि होने के कारण ममीरा में मिलावट की सम्भावना भी अधिक रहती है।

उपयोगी अंग—भौमिक काण्ड या पाताली-धड़ (राइज़ोम)।

मात्रा। १ से २ ग्राम या १ से २ माशा। (कटु पौष्टिक कर्म के लिए—½ से १ ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा, विषमज्वर प्रतिबन्धक मात्रा १.५ से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—ममीरा की जड़ें (राइज़ोम) प्रायः २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च लम्बी, गिरहदार, कुछ टेढ़ी-मेढ़ी, बाहर से कालिमा लिये पीलेरंग की, और अन्दर चमकीले पीलेरंग की होती हैं। बाहर की गिरहों (*annulations*) पर काण्ड-संसक्त पत्र-वृन्तों (*stem-clasping petioles*) एवं काण्ड पर स्थान-स्थान में टूटे हुए उपमूलों के नुकीले अवशेष-से भी लगे होते हैं। किसी-किसी राइज़ोम का अग्र सशाख होता है। उक्त मुण्डाकार शाखाएँ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(*heads*) पर्णवृन्तों से ढकी होती हैं। तोड़ने पर टूटे हुए तलपर तन्तु एवं कोशाओं की स्थिति अरवत् (*radiate structure*) मालूम होती है। ममीरे की जड़ों में प्रायः कोई गंध नहीं पायी जाती, किन्तु स्वाद में यह अत्यंततिक्त होती हैं, तथा मुख में चाबने पर लालास्राव का रंग पीला हो जाता है। भस्म–३.१% से ३.२%।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। कुछ दूसरे पौधों की जड़ें तथा भौमिककाण्ड भी जो इससे मिलते-जुलते हैं, ममीरे के नाम से बिकते हैं। इन्हें 'नकली ममीरा' कहते हैं। ऐसे द्रव्यों में कुटकी (**Picrorhiza kurroa**) एवं पियारांगा या ममीरी (**Thalictrum foliolosum** *DC.* (*Family* : *Ranunculaeeee*) विशेष महत्व के हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–ममीरे को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन–इसमें दारुहरिद्रा में पायाजानेवाला बर्बेरीन (*Berberine* : ७.१ से ८.६%) नामक पीलेरंग का तिक्तसत्व पाया जाता है, जो जल एवं ऐल्कोहल् में विलेय होता है।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–रूक्ष। रस–तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफपित्तशामक, लेखन, शोथहर, दृष्टि शक्तिवर्धक, दीपन-पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कटु-पौष्टिक, मूत्रल, ज्वरघ्न (विशेषतः विषमज्वर प्रतिबन्धक)। यूनानीमतानुसार ममीरा तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। इसको अकेला या उपयुक्त औषधद्रव्य के साथ खरल करके दृष्टिदौर्बल्य, जाला, फूली और धूम्रदर्शन (गुब्बार) प्रभृति-जैसे नेत्ररोगों के निवारण के लिए नेत्र में लगाते हैं। यह नेत्ररोगों में विशेष गुणदायक है।

मयूरशिखा

नाम। सं०–मयूरशिखा, मधुच्छदा। हिं०–मयूरशिखा। रांची, संथा०–मयूरजूटी। हो०–माराचूटा। लाटखर–मयूरचुटिया। मिर्जापुर–सहसमूली। ले०–एलेफ़ांटोपुस स्काबेर (**Elephantopus scaber** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजीटे : *Compositae*)

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में इसके क्षुप स्वयंजात होते हैं। भिन्न-भिन्न बाजारों में मयूरशिखा के नाम से अन्य औषधियाँ बिकती हैं, किन्तु मयूरशिखा से इसी का ग्रहण करना अधिक युक्तियुक्त है।

संक्षिप्त-परिचय। इसके स्वावलम्बी एवं दृढ़ क्षुप १५ सें० मी० से ४५ सें० मी० या ६ इञ्च से १८ इञ्च तक बड़े होते हैं, जिनकी शाखाएँ द्विविभक्त (*dichotomously-branched*), तथा तीक्ष्णाग्र रोमश या रूक्षरोमी (*strigose*) होती हैं। पत्तियाँ जड़ के पास पुञ्जरूप चारों ओर जमीन से लगी हुई, रूपरेखा में अभिलट्वाकार या अभि-प्रासवत्, १० सें० मी० से १५ सें० मी० या ४ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी, किनारे कुछ दन्तुर से तथा दोनों तलों पर रोमश, आधार की ओर क्रमशः कम चौड़ी होती हुई पर्णवृन्त में रूपान्तरित-सी मालूम होती हैं। काण्डीय (*cauline*) पत्र दूर-दूर, विनाल तथा काण्डसंसक्त होते हैं। मुण्डक सूक्ष्म और समूहबद्ध होकर निकलते हैं और पत्रवत् बड़े तथा हृद्वत् ३ कोण पुष्पकों या निपत्रों के बीच में रहते हैं। प्रत्येक मुण्डक में पुष्प संख्या प्रायः २-५ तक होती है, जो बैंगनी रंग के होते हैं। फल या एकीन (*Achenes*) ०.५ सें० मी० या ¼ इंच लम्बे होते हैं। मुण्डकगुच्छ कोणपुष्पकों के साथ मयूर की शिखा के सदृश दिखाई पड़ते हैं। अतएव इसके अनेक स्थानिक नाम इसी के द्योतक हैं।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग।

मात्रा–६ ग्राम से २३.६ ग्राम या ६ माशा से २ तोला।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट–बाजारों में तथा स्थानिक चिकित्सक समुदायों में अनेक अन्य औषधियाँ मयूरशिखा के नाम से प्रचलित हैं–(१) आक्टीनॉप्टेरिस राडिआटा **Actinopteris radiata** *Bedd.* (*Family* : *Polypodiaceae*)–यह सुन्दर, सीधी खड़ी, छोटी वनस्पति है, जो बरसात के दिनों में सूखी पहाड़ियों में पत्थरों के बीच-बीच में कहीं-कहीं मिल जाती है। इसकी पत्तियाँ तालपत्र की तह लम्बे पतले पत्रदण्ड पर रहती हैं और मयूरशिखा की तरह मालूम होती है :–(२) आक्टीनॉप्टेरिस डीकोटोमा **A. ditchotoma**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Bedd., (३) आडिआंटुम काउडाटुम **Adiantum caudatum** *Linn.* (*Family Polypodiaceae*)। (४) सेलोसिआ आर्गेन्टेआ प्र० क्रीस्टाटा **Celosia argentea** *L. var.* **cristata** *Voss.* (पर्याय–*C. cristata Linn.*)। नाम। सं०–शितिवार। हिं०–सिरियारी। गु०–लोखंडी, मोरशिखा। म०–मयूरशिखा इसके लिए मुर्गकेश, कलगा आदि स्थानिक नाम भी प्रचलित हैं।

संग्रह एवं संरक्षण। छायाशुष्क पंचाङ्ग को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंदपात्रों में रखें।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कषाय, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। कर्म–कफपित्तशामक, स्तम्भन. कृमिघ्न, रक्तपित्तहर, प्रमेहघ्न, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न आदि।

मरिच, काली

नाम। सं०–मरि (री) च, ऊषण। हिं०–कालीमिर्च, गोलमिर्च, मरिच। बं०–गोलमरिच। म०–मिरीं। गु०–मरी, कालामरी। अ०–अल्फ़िल्फ़िलुल् अस्वद। फा०–फ़िल्फ़िले स्याह (गिर्द), पिल्पिल्। अं०–ब्लैक पेपर (*Black Pepper*)। ले०–पीपेर नीग्रुम् (**Piper nigrum** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। पिप्पली-कुल (पीपेरासे *Piperaceae*)।

प्राप्तिस्थान–पूरबी भारतीयद्वीप, दक्षिणभारत, (कोंकण, मालाबार एवं ट्रावन्कोर आदि) मलाया-द्वीपसमूह में कालीमिर्च की खेती की जाती है।

संक्षिप्त-परिचय। 'कालीमिर्च' की आरोही लताएँ होती हैं, जिनका अधःभाग काष्ठीय (*woody*) होता है। काण्ड प्रायः रम्भाकार तथा पर्वों पर अधिक मोटा (*thickened at the nodes*) होता है। पत्तियाँ १० सें० मी० से १८.१ सें० मी० (४ इंच से ७½ इञ्च) तक लम्बी, ५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (२ इञ्च से ५ इञ्च) तक चौड़ी, चौड़ी-लट्वाकार या लट्वाकार आयताकार (कोई-कोई गोलाकार), आधार पर हृदयाकार, गोली या तिरछी, जिनपर ५-९ स्पष्ट शिराएँ होती हैं। पर्णवृन्त १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) तक लम्बे होते हैं। पुष्प ५ सें० मी० से १५ सें० मी० (२ इच से ६ इंच) लम्बी मञ्जरियों में निकलते हैं, जिनपर गोल-गोल, छोटे-छोटे (व्यास में ⅛ इञ्च या कम) फल लगते हैं, जो पकने पर लालरंग के हो जाते हैं।

उपयोगी अंग–सुखाये हुए अपक्व किन्तु प्रगल्भ फल।

मात्रा। १२५ मि० ग्रा० से ३७५ मि० ग्रा० (१½ ग्राम) या १ रत्ती से ३ रत्ती से १½ माशा तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–बाजार में मिलने वाली कालीमरिच इसके सुखाये हुए अपक्व फल होते हैं, जो प्रायः गोलाकार, व्यास में २ सें० मी० (¾ इंच) तक, तथा रंग में कालापन लिये भूरेरंग के अथवा खाकस्तरी कालेरंग के होते हैं। बाहरीतल बहुत झुर्रीदार होता है, तथा नसों का जाल-सा (*reticulately wrinkled*) मालूम होता है। फल के सिरे पर कुक्षि (*stigma*) के अवशेष लगे होते हैं। दूसरी तरफ भी वृन्त या डंठल का कुछ भाग लगा होता है। गंध सुगंधित एवं स्वाद में तीक्ष्ण होता है। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य–अधिकतम २%। भस्म–अधिकतम ६%। अम्ल में अनघुलनशील भस्म–अधिकतम १%। फलों में रेशामयभाग–अधिकतम १५%।

संग्रह एवं संरक्षण–मरिच का संग्रह जब फलों में लालिमा आने लगती है, उस समय करना चाहिए। इसके बाद चटाइयों पर फैला कर इनको धूप में सुखाया जाता है। इस क्रिया में फल लाली को छोड़ कर कालिमा लिये भूरेपन को ग्रहण करते हैं। मरिच का संग्रह शुष्क स्थान में अच्छी तरह डाटबंद पात्रों में करना चाहिए। चूर्ण को ठंडी जगह में तथा खूब अच्छी तरह मुखबन्द शीशियों या डिब्बों में रखें ताकि नमी न पहुँच सके।

संगठन। (१) पाइपरीन *Piperine* (पिप्पलीन या फ़िल्फ़िलीन) नामक रंगहीन अथवा हल्के पीले रंग का क्रिस्टली स्वरूप में प्राप्त होने वाला ऐल्केलाइड (क्षारोद) ५ से ९% तक, (२) रालमयतेल–जिसमें मरिचगंधी उत्पत् तैल होता है। इसके अतिरिक्त चविसीन (*Chavicine*), पाइपेरिडीन, स्टार्च (३०%) तथा अल्पमात्रा में स्थिरतेल आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं, (३) ईथर में घुलनशील अनुत्पत् भाग ६%।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष तक।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। (ताजा आर्द्रफल) गुरु, मधुरविपाक तथा अनुष्ण होता है। प्रधानकर्म–दीपन-पाचन, ज्वरनाशक, वातकफशामक, नाड़ीबल्य, प्रतिश्यायहर, कासनाशक।

मुख्य योग–मरिचादि गुटिका, मरिचादितैल, मरिचाद्यघृत, जुवारिशजालीनूस, जुवारिशकमूनी।

विशेष–चरकोक्त शिरोविरेचन द्रव्यों (सू० अ० २) में तथा (सू० अ० ४ में कहे) दीपनीय, कृमिघ्न एवं शूल प्रशमन महाकषायों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) पिप्पल्यादिगण तथा त्र्यूषण गण में 'मरिच' भी है।

वक्तव्य–शास्त्रों में श्वेतमरिच (च० चि० अ० २६; अ० हृ० उ० १६) तथा शुक्लमरिच (सु० उ० अ० ११, १२) का भी उल्लेख है, जिसे व्यवहार में 'सफेदमरिच' कहते हैं। टीकाकारों ने इसका विनिश्चय 'शिग्रुबीज' से किया है। उल्लेखनीय है, कि ईसा के लगभग ४०० वर्ष पूर्व यूनानी हकीम सावफरिस्तुस्ने ३ प्रकार के मरिच–अर्थात् फ़िल्फ़िल्दराज (= *Long Pepper* = पिप्पली), फ़िल्फ़िल्स्याह (= *Black Pepper* = कालीमरिच (मरिच), तथा फ़िल्फ़िल् सफ़ेद (शुक्ल = श्वेतमरिच / *White Pepper*)। बाजारों में जो सफेद मरिच चल रही है, वह वास्तव में छिलका उतारी काली मरिच ही होती है। इसमें तीक्ष्णता अपेक्षाकृत कम होती है। 'ढंढाई' आदि पेय कल्पों में सफेदमरिच अधिक उपयुक्त समझा जाता है। मेरी दृष्टि में सावफरिस्तुस् का फ़िल्फ़िल् सफ़ेद सम्प्रति, बाजारों में प्रचलित 'सफेदमरिच' हो है। 'सोंठ' एवं 'बैतरासोंठ' भी इसीप्रकार एक ही द्रव्य के दो व्यावसायिक एवं व्यवहारप्रचलित रूप हैं। बैतरा सोंठ में तेजी कम होती है, और यह खाद्यकल्पों में प्रयोग के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है। उल्लेखनीय है, कि मौर्यकाल एवं तत्परवर्ती प्रारम्भिक शताब्दियों में मिर्च आदि भारतीय मसाला द्रव्यों का निर्यात् एवं व्यापारविनिमय ग्रीको–रोमन जगत में प्रचुर परिमाण में होता था। (लेखक)

मरोड़फली (आवर्तनी)

नाम। सं०–आवर्तनी, आवर्तफला। हिं०–मरोड़फली, ऐंठनी, ऐंठोगोंयठी, ऐंठक, मरोरफली, मुर्रा, मुरेर, मुरेरुआ (मिर्जापूर)। बं०–आँतमोडा। म०–मुरुडशेंग। गु०–मरडासिंग, मरडासिंगी। मल०–ईश्वरमुरि। अं०–ईस्ट इंडिअन स्क्रू ट्री (*East Indian Screw-Tree*)। ले०–हेलीक्टेरेस ईसोरा (**Helicteres isora** *Linn.*)। लेटिन एवं अंग्रेजी नाम इसके गुल्म के हैं।

वानस्पतिक-कुल। मुचकुन्द-कुल (स्टेर्कुलिआसे : *Sterculiaceae*)।

प्राप्तिस्थान–दक्षिण, रश्चिम एवं मध्य भारत के शुष्क जंगलों (पूरब में बिहार तक) तथा हिमालय की तराई में शाल के जंगलों में मरोड़फली के क्षुप या गुल्म प्रचुरता से पाये जाते हैं। इसकी शुष्क फलियाँ (मरोड़फली) सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलती हैं।

संक्षिप्त परिचय–मरोड़फली के गुल्म या क्षुप (*shrub*) अथवा छोटेवृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ पतली और फैली हुई तथा त्वक् खाकस्तरी रंग की होती है। पत्तियाँ आपाततः देखने में फालसे की पत्तियों की तरह, ऊपरी पृष्ठ खुरखुरा किन्तु अधःपृष्ठ सूक्ष्म मृदुरोमावृत, मध्यनाड़ी के दोनों ओर के भाग असमान, यह ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इंच से ६ इंच लम्बी, ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच तक चौड़ी तथा रूपरेखा में चौड़ी अभिलट्वाकार या गोलाकार, कभी-कभी खण्ड युक्त (*lobed*) आधार की ओर गोलाकार और अग्र पर सहसा नुकीली होती हैं। पत्रतट अनियमित रूप से दन्तुर (*irregularly toothed*) होता है। पर्णवृन्त ०.५ सें० मी० से १ सें० मी० ($\frac{1}{5}$ इञ्च से $\frac{2}{5}$ इञ्च) तक लम्बा होता है। पुष्प २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बे तथा निपत्रकयुक्त (*bracteate*) होते हैं, और पत्रकोणों में २-२, ४-४ एकसाथ होते हैं। बाह्यकोश नलिकाकार, १.५ सें० मी० से २ सें०मी० ($\frac{3}{5}$ इञ्च से $\frac{4}{5}$ इञ्च) लम्बा तथा कुछ-कुछ द्वि-ओष्ठीय होता है। दल या पंखुडी संख्या में ५ तथा गाढ़े लालरंग के होते हैं, और बाह्यकोष की अपेक्षा दुगुने लम्बे होते हैं। प्रगल्भ पुंकेशर संख्या में १० तथा साथ ही ५ अप्रगल्भ या वन्ध्यपुंकेशर (*staminodes*) भी होते हैं, जो शल्कपत्र (*scales*) के रूप में होते हैं। डिम्बाशय पंचकोष्ठीय होता है, और जायांगवृन्त या गानोफोर (*gynophore*) पर स्थित होता है। फलियाँ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) लम्बी और बटी हुई रस्सी की भाँति पेचदार (*spirally twisted*) होती हैं। इन फलियों के गुच्छे लगते हैं। फल, मूल एवं त्वक् (छाल) का व्यवहार चिकित्सा में होता है। गर्मी एवं वर्षा-ऋतु में 'पुष्प' एवं जाड़ों में 'फलियाँ' होती हैं।

उपयोगी-अंग। फल (मरोड़फली), मूल एवं त्वक्।

मात्रा। फलचूर्ण—१.५ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा।

मूलत्वक् (क्वाथार्थ)—३ ग्राम से १४.६ ग्राम या ३ माशा से १½ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—मरोड़फली की फलियाँ ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १½ इञ्च से २ इञ्च लम्बी तथा पाँच स्त्रीकेशरों (*carpels*) की बनी होती हैं, जो बटी हुई रस्सी की तरह या कार्कस्क्रू (*corkscrew*) की भाँति कुन्तलक्रम से लिपटे हुए होते हैं। इस प्रकार रूपरेखा में उक्त फलियाँ बेलनाकार तथा कुछ शंक्वाकार होती हैं। बाह्यतः यह हरिताभ भूरेरंग की तथा अन्तस्तल हरी आभालिये हुए और चिकना होता है। स्वाद लबाबी होता है। फलियों के अन्दर एक कतार में छोटे-छोटे कोणाकार बीज (*angular seeds*) होते हैं. जो गाढ़े भूरेरंग के होते हैं। मूलत्वक्—मरोड़फली के जड़ की छाल गाढ़े भूरेरंग की होती है, और इस पर सर्वत्र छोटे-छोटे गोल-गोल उत्सेध (*small round warts*) होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलियों को तोड़कर संग्रहीत करें, और छायाशुष्ककर मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—फलियों में थोड़ीमात्रा मे एक स्नेहद्रव्य तथा अल्पतः टैनिन आदि तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—त्रिदोषघ्न, स्तम्भन, व्रणरोपण, शूलप्रशमन, रक्तस्तम्भक, मूत्रसंग्रहणीय आदि। यूनानी मतानुसार मरोड़फली पहले दर्जे में गरम और खुश्क तथा श्वयथुविलयन, तारल्यजनन, विरेचन (विशेषतः श्लेष्म विरेचन), लेखन संशमन तथा प्रवाहिकाहर होती है। मात्रातियोग से पुंसत्वोपघाति होती है।

विशेष—मरोड़फली का 'मूर्वानाम' से ग्रहण नहीं होना चाहिए।

मस्तगी, रूमी

नाम। हि०—रूमी मस्तगी। अ०—मस्तकी, मुस्तक्का, मस्तकीए रूमी। फा०—मस्तकी रूमी, कुंदुरे रूमी। म०, गु०—रूमी (मा) मस्तकी। अं०—मैस्टिक (*Mastic; Mastich*)। ले०—मास्टिके *Mastikhe*। (वृक्ष का नाम)—पीस्टासिआ लेंटिस्कुस (**Pistacia lentiscus** *Linn.*)। भूमध्यसागर (रूमसागर) के आसपास के प्रदेशों में अधिक होने के कारण इसको 'रूमीमस्तकी' कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। आम्रादि-कुल (आनाकार्डिआसे *Anacardiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिण यूरोप (पुर्तगाल से यूनान तक भूमध्यसागरतटवर्ती प्रदेश), सीरिया, इजराइल, रोम, उत्तरी अफ्रीका के भूमध्यसागरतटवर्ती प्रदेश (मोरक्को) ट्यूनिस आदि) में तथा भूमध्यसागरीय द्वीपों (सिसली आदि) में मस्तगी की झाड़ियाँ बहुतायत से पायी जाती हैं। भारतीय बाजारों में इसका आयात उक्त देशों से सीधे अथवा ईरान, अफगानिस्तान होकर होता है। मस्तगी उक्त वृक्ष का गोंद है, जो औषधि में तथा वार्निश में भी व्यवहृत होता है। अतएव यह पंसारियों के यहाँ एवं वनौषधि-विक्रेताओं के यहाँ तथा इमारती सामान एवं वार्निश आदि बेचने वालों के यहाँ भी मिलती है।

संक्षिप्त-परिचय—मस्तगी के झाड़ीदार गुल्म अथवा कभी-कभी छोटेवृक्ष होते हैं। उक्त जाति के अतिरिक्त अनेक मिश्रित जातियाँ भी साथ-साथ पायी जाती हैं, जिनसे गोंद का संग्रह किया जाता है। मस्तगी इन्हीं वृक्षों का 'रालीय' गोंद होता है। रालवहा-नालियाँ प्रायः काण्ड एवं शाखाओं की त्वचा में पायी जाती हैं। गोंद मौसम में अपने आप भी निकलता है, किन्तु संग्रहकर्ता अधिक मात्रा में एवं जल्दी गोंद प्राप्त करने के लिए वृक्ष में अनुलम्ब दिशा में छोटे-छोटे चीरा लगा देते हैं। उक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीरा प्रायः जून के महीनों में लगाये जाते हैं और २ महीने तक संग्रह किया जाता है। उत्तम वृक्ष से प्रायः ४ सेर से ५ सेर तक गोंद प्राप्त होता है। एक वृक्ष से लगातार ४ वर्ष तक गोंद संग्रह करने के बाद उसे छोड़ दिया जाता है। वृक्षों से सीधे पाछकर जो गोंद संग्रह किया जाता है, वह सर्वोत्तम होता है। जो गोंद नीचे जमीन पर गिर जाता है, उसमें बालू तथा मिट्टी आदि मिल जाने से 'निकृष्ट दर्जे' का होता है। मिट्टी एवं बालू आदि न मिलजाय इसके लिए वृक्षों के नीचे पत्थर आदि रख दिये जाते हैं, ताकि गोंद उसी पर गिरे। इस प्रकार शिलापट्टों से संग्रहीत गोंद 'मध्यम दर्जे' का होता है।

उपयोगी अंग। रालीय-गोंद।

मात्रा। १ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—मस्तगी के छोटे, गोल, लंबोतरे या अश्रुवत् दाने होते हैं, जिनका रंग पिङ्गाइलिये सफेद होता है। स्वाद किंचित् मधुर एवं सुगन्धित होता है। यह खरल मे रगड़ते समय चिपक जाती है। अतः इसको कपड़े की पोटली में बाँधकर पानी में भिगोते हैं, और फिर निकाल कर तुरन्त पोंछ देते हैं। इस प्रकार चूर्ण करने से आसानी मे चूर्णित हो जाती है।

संग्रह एवं संरक्षण—मस्तगी को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्दडिब्बों में रखना चाहिए।

संगठन—इसमें अल्प मात्रा में एक उड़नशील तेल, १०% मैस्टिकीन (*Mastichine*), ३०% ऐल्कोहल् में घुलनशील राल तथा मैस्टिकोनिक, मैस्टिकीनिक एवं मैस्टिकोलिक एसिड (एल्कोहल् में घुलनशील) पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—२० वर्षतक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—मधुर, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण (किंचित्)। कर्म—वातपित्तशामक, आमाशयान्त्रबल्य, यकृदुत्तेजक, ग्राही, कफनिस्सारक, मूत्रजनन, स्तम्भन, रक्तरोधक, वाजीकरण, आर्त्तवजनन, लेखन आदि। युनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर—गुर्दा के रोगों में अहितकर है, और रक्तमूत्रता उत्पन्न करता है। निवारण—सिरका।

मुख्य योग—जुवारिश मस्तगी, रोग़न मस्तगी।

महुआ (मधूक)

नाम। सं०—मधूक, गुडपुष्प। हिं०—महुआ (वा)। म०—मोहडा। गु०—महुडो। को०—मधुकम्। उरान—मदकी। फा०—गुलेचकाँ। अं०—महुआ-ट्री (*Mahua-Tree*), इण्डियन बटर-ट्री (*Indian Butter-Tree*)। ले०—माधूका ईण्डिका **Madhuca indica** *Gmel.* (पर्याय—*M. latifolia Roxb.*)। लेटिन एवं अंग्रेजी नाम इसके वृक्ष के हैं। फल या बीज को बंगला में 'कोचरा' तथा हिंदी, कोल एवं संथाल भाषा में 'कोइनी, 'कोइना' या 'टोइया' कहते हैं। बीजों के मग्ज या गिरी से प्राप्त तेल को 'डोरिया' या कोइना अथवा 'टोइया का तेल' कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। मधूकादि-कुल (सापोटासे : *Sapotaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में महुआ के जंगली एवं लगाये हुए वृक्ष पाये जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय—महुआ के ऊँचे-ऊँचे पर्णपाती अथवा पतझड़ी (*deciduous*) वृक्ष होते हैं, जिसकी पत्तियाँ शाखाग्रोंपर समूहबद्ध, १२.५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० या ५ इञ्च से ७ इञ्च लम्बी, ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० या ३ इञ्च से ४ इञ्च चौड़ी, रूपरेखा में अण्डाकार या आयताकार-अण्डाकार, अग्र नुकीला या कुण्ठित अर्थात् कुण्ठाग्र (*obtuse*) एवं चर्मिल (*coriaceous*) होती हैं, जो आधार की ओर क्रमशः कमचौड़ी अर्थात् स्फानाकार (*cuneate*) होती हैं। मध्यशिरा से १०—१२ जोड़े पार्श्वगामी नाड़ियाँ या शिराएँ निकलती हैं। कोमलपत्र अधःपृष्ठ पर सूक्ष्म सघन रोमावृत्त (*densely woolly*) होते हैं। पर्णवृन्त २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बे होते हैं। पत्तों से पत्तल बनाये जाते हैं। पुष्प श्वेत, मांसल और रसमय होते हैं, जो शाखाग्रों पर गुच्छकों में निकलते हैं। पुष्पवृन्त २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इंच से १½ इञ्च) लम्बे तथा सघन मृदुरोमावृत्त एवं नीचे को लटके (*drooping*) होते हैं। बाह्यकोश (*calyx*) ४-५ खण्डोंवाला तथा चर्मिल और सुरचईरंग के सघन रोमावृत्त (*densely rusty-tomentose*) होता है। आभ्यन्तर-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोष (*corolla*) १.५ सें०मी० से २ सें०मी० ($\frac{3}{4}$ इञ्च से $\frac{4}{5}$ इञ्च) तक लम्बा, पिलाईलिये सफेदरंग का एवं मांसल तथा रसदार और ७–१४ खण्डयुक्त होता है, जिससे एक मीठी-सी गन्ध आती है। आभ्यन्तरकोश-नलिका लम्बगोल होती है। पुंकेशर संख्या में २४ से २६ तक, जो आभ्यन्तर कोशनलिका में ३ चक्रों में स्थित (*inserted in 3 series in the corolla-tube*) होते हैं। पुष्प प्रायः शीघ्रपतनशील अर्थात् शीघ्रपाती या कैडुकस (*early caducous*) हो हैं। इनका स्वाद मीठा एवं हीकदार होता है। सूखने के उपरान्त यह मुनक्का की तरह हो जाता है। ताजे पुष्प कच्चे या दूध में उबालकर खाये जाते हैं। सूखे फूल भी उबाल-कर अथवा आटे के साथ मिला कर रोटी बनाकर खाये जाते हैं। सूखे फलों से देशीशराब (ठर्रा) बनायी जाती है। फल या बेरी (*berry*) लम्बगोल, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इञ्च से २ इञ्च) लम्बा तथा गूदेदार होता है, जो कच्ची अवस्था में हरेरंग का तथा कड़ा और पकने पर पीताभ एवं मुलायम तथा मीठा होता है। इसको लोग खाते हैं। फल के अन्दर १–४ तक गहरे लालरंग की गुठलियाँ निकलती हैं। इनकी गिरी या मग्ज को कोल्हू में पेरकर एक जमनेवाला गाढ़ा स्थिरतेल प्राप्त किया जाता है, जो जमने पर घी-जैसा मालूम होता है। इसको जलाने तथा खाने के काम में लाते हैं। महुआ में पुष्पागम ग्रीष्म-ऋतु में होता है, तथा फल वर्षा में पकते हैं।

उपयोगी अंग–फूल, फल, बीजों का तेल तथा त्वक् या छाल और पत्र।

मात्रा। पुष्प–२३ ग्राम से ५८ ग्राम या २ से ५ तोला। छालका क्वाथ–५ से १० तोला।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। त्वक् या छाल, बाहर से खुरदरी तथा भूरेरंग की किन्तु अन्दर लालरंग की होती है। स्वाद में यह कसैली होती है। शुष्कपुष्प (महुआ)–दूर से देखने में मुनक्की भाँति होता है, किन्तु करीब से देखने पर मांसल, चिपचिपा, पिचकाहुआ लगभग १.५ सें० मी० या $\frac{3}{4}$ इञ्च लम्बा और करीब इतना ही चौड़ा, ढोलक की भाँति अन्दर पोला तथा दोनों सिरों पर खुला हुआ होता है। जल में भिगोने पर फूलकर गोलाकार हो जाता है, और अन्दर कण्ठ पर लगे हुए परागकोश एवं केसरसूत्र स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। स्वाद में यह किंचित् खट्टे तथा मधुर होते हैं। व्याव-सायिकरूप से मुख्यतया इनकी खपत 'देशीशराब' बनाने में की जाती है। टोइया का तेल २५.३° सेंटीग्रेड तापक्रम पर ही पिघल जाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–महुए की एक दूसरी जाति दक्षिण-पश्चिम भारत में कोंकण से ट्रावनकोर (कनाडा मलाबार, मैसूर; अन्नामलाई एवं सरकारप्रान्त) तक प्रायः आर्द्र भूमि में प्रचुरता से पायी जाती है। इसका वानस्पतिक नाम 'मधूका लांगोफोलिया' (**Madhuka longifolia** (*Linn.*) *Mac Bride.* (पर्याय–*Bassia longifolia Linn.*) है। निघण्टुओं में इसके लिए 'जलमधूक' या 'मधूलक' नाम आया है। हिमालय की तराई में कुमायूँ से भूटान तक ३०४.८ मीटर से १५२३ मीटर या १,०००–५,००० फुट की ऊँचाई तक महुए की एक और जाति पायी जाती है, जिसे डीप्लोक्नेमा बुटीरासेआ **Diploknema butyracea** (*Roxb.*) *Lamb.* (पर्याय–*Madhuca butyracea Mac Bride*; *Bassia butyracea Roxb.*)–(ले०); फुलवा (हिं०), गोफल (बं०), चिउली (या०), चिउरा (देहरादून) कहते हैं। बिहार में उत्तरी चम्पारन में सोमेश्वर की पहाड़ियों पर तथा पूर्निया की सरहद के पार 'मोरंग' में भी इसके वृक्ष काफी मात्रा में पाये जाते हैं। इन दोनों वृक्षों के पुष्प एवं बीज तैल आदि भी महुए से स्वरूपतः एवं गुण-कर्म में बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इनका उपयोग भी महुआ के स्थानापन्न द्रव्य के रूप में किया जा सकता है। कुमायूँ में 'चिउर' के ताजे पुष्पों के रस से 'गुड़' भी बनाया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण–सुखाये हुए पुष्पों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखना चाहिए। तेल को मुखबंद पात्रों में शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन। बीजों में ५० से ५५ प्रतिशत तक गाढ़ा स्थिरतैल (*Semisolid Fixed-Oil*) पायाजाता है, जिसमें ४०% ओलीक एसिड, २६.५% पामिटिक एसिड, १३$\frac{1}{2}$% लिनोलिक एसिड, तथा १६% मिरिस्टिक एसिड पाये जाते हैं। खली (*cake*) में माउरिन (*Mourin*) नामक ग्लाइक्रोसाइडलसैपोनिन तत्त्व पाया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाता है, जो विषैला प्रभाववाला होता है। वायुशुष्क पुष्पों में ५२.६% इन्वर्ट शर्करा (*Invert sugar*), २.२% इक्षुशर्करा (*Cane-sugar*), २.२% मांसवर्धक-तत्त्व (*Albuminoids*), २.४% सेलूलोज, ४.८% राख या भस्म तथा १५% तक जलांश होता है। राख में सिलिसिक एसिड, फास्फोरिक एसिड, कैल्सियम, लोह, पोटास और अंशतः सोडा आदि तत्त्व पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त फूलों में काफीमात्रा में किण्व एवं खमीर (*enzymes and yeast*) पाये जाते हैं। फल में सैक्रोज (*Saccharose* ४.६% से १६.२%), माल्टोज (२.४%) तथा टैनिन एवं किण्व आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। शुष्कपुष्प—२ वर्ष। तैल—दीर्घकालतक।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत (शुष्कपुष्प उष्ण होते हैं)। कर्म—वातपित्तशामक, नाड़ीबल्य, कफनिस्सारक, वृष्य, बल्य, बृंहण, मूत्रल, दाहप्रशमन। (बीजमज्जा) आर्तवजनन। (तेल) वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न,। यूनानीमतानुसार महुआ दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर—शिरः शूलजनक है। निवारण—शीतल और स्निग्ध पदार्थ।

मुख्ययोग—मधूकासव, मधूकादि हिम।

मांसरोहिणी (रक्तरोहन)

नाम। सं०—मांसरोहिणी, रोहिणी? हिं०—रोहण, रक्त-रोहण। को०—रोहिनी। संथा०—रोहन; खर०—रोहिना। गु०—रोण, रोहणी। बं०—रोहण। अं०—इण्डियन रेड-वुड ट्री (*Indian Red-Wood Tree*)। ले०—सॉइमीडा फ़ेब्रीफ़ूजा (**Soymida febrifuga** *A. Juss.*)।

वानस्पतिक-कुल। निम्ब-कुल (मेलिआसे *Meliaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिणभारत में दकन के पश्चिमवर्ती शुष्क जंगल से लेकर मारवाड़, मध्यभारत, छोटानागपुर, बिहार एवं उत्तरभारत में मिर्जापुर के जंगलों में 'रक्त-रोहन' के वृक्ष पाये जाते हैं। काण्डत्वक् (छाल) का व्यवहार औषधि में होता है, किन्तु बाजारों में विक्रयार्थ प्रायः इसे नहीं रखते।

संक्षिप्त-परिचय। 'रोहण' के ऊँचे या मध्यमाकार वृक्ष होते हैं, जो जंगलों में पर्वतोंपर होते हैं। पत्तियाँ पक्ष-वत्, २२.५ सें०मी० से ४५ सें०मी० (९ इञ्च से १८ इञ्च) लम्बी होती हैं, जिनमें पत्रक ३—६ जोड़े, ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ से ४ इञ्च) लम्बे, लगभग अवृन्त, रूपरेखा में आयताकार या अण्डाकार, चिकने और तिर्यक् आधारवाले, और नवीन पत्तियाँ ग्रन्थियों से युक्त और लाल होती हैं। पत्रदण्ड एवं पत्रक-सिरा सर्वदा लाल बनीरहती है। पुष्प उभयलिंगी तथा हरिताभ-श्वेतवर्ण के होते हैं, जो अग्र्य मञ्जरियों में निकलते हैं। फल रूप-रेखा में मृदङ्गाकार, ७.५ सें० मी० × ५ सें०मी० (३ इञ्च × २ इञ्च) बड़े, बहुत कठोर, भूरे लालरंग के तथा विदारी होते हैं, जिनके अन्दर अनेक सपक्षबीज होते हैं। छाल रक्तवर्ण की तथा स्वाद में कड़वी (तिक्त) होती है, तथा इस पर क्षत-करने से लालरंग का स्राव निकलता है।

उपयोगी अंग—त्वक् (छाल)।

मात्रा। चूर्ण १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ मासा। क्वाथार्थ—६ ग्राम से १४.६ ग्राम या ६ माशा से १। तोला।

शुद्धशुद्धापरीक्षा—रक्तरोहन के छोटे वृक्षों से प्राप्त छाल प्रायः सीधे या कुछ टेढ़े-मेढ़े नलिकाकार टुकड़ों (*quills*) के रूप में प्राप्त होती है, अथवा कभी-कभी इसके चौड़े पट्टाकार तथा खातोदर टुकड़े होते हैं। इनका व्यास २.५ सें० मी० (१ इञ्च) तक तथा मोटाई ०.५ सें० मी० या ¼ इञ्च तक होती है। इनका बाह्यतल मुरचई खाकस्तरी अथवा भूरेरंग का होता है, और इसपर छोटे-छोटे अंडाकार चिह्न-से पाये जाते हैं। पुराने वृक्षों की छाल अपेक्षाकृत अधिक मोटी होती है, तथा इसपर अनुलम्ब दिशा में स्पष्ट तथा बड़ी दरारें पड़ी होती हैं। अन्तस्तल या भीतर से छाल लाल या मांसवर्ण की होती है। तोड़नेपर छालका बाह्यभाग तो मुलायम, किन्तु अन्तर्वस्तु रेशेदार टूटता है। छाल को कूटने पर मुरचई रंग की प्राप्ति होती है, किन्तु हवा में रखने पर या आर्द्रता के कारण गाढ़े लालरंग की हो जाती है। 'रक्तरोहनकी छाल' में कोई विशेष गंध तो नहीं पायी जाती, किन्तु स्वाद में यह कसैलापन लिये अत्यन्त तिक्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में छाल का संग्रहकर छायाशुष्क करलें, और इसे मुखबंद-पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–रक्तरोहन की छाल में एक 'तिक्तसत्व' तथा राल (रेजिन), स्टार्च एवं टैनिकएसिड आदि घटक पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रुक्ष। रस–कषाय, कटु, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। कर्म–कफपित्तशामक, स्तम्भन (ग्राही), कटुपौष्टिक, नियतकालिक ज्वर-प्रतिबन्धक, तथा सन्धानीय, अतिसार-प्रवाहिकानाशक, रक्तस्तम्भक आदि। इसका क्वाथ स्तम्भन एवं व्रण शोधक तथा रोपण होता है। मुख एवं दन्त रोगों में क्वाथ का गण्डूष किया जाता है, तथा प्रदर में उत्तर-वस्ति दी जाती है। अतिसार-प्रवाहिका एवं अमाशयान्त्र शैथिल्य में इसका चूर्ण बहुत उपयोगी होता है। जीर्णज्वर एवं विषमज्वर (मलेरिया) में भी इसका क्वाथ बहुत उपयोगी होता है। सन्धानीय एवं रक्तस्तम्भक होने से इसका व्यवहार अस्थिभग्न, उरःक्षत, एवं रक्तपित्त में भी बहुत उपयोगी होता है। अहितकर–मात्रातियोग से भ्रम, संज्ञानाश, तंद्रा आदि उपद्रव होते हैं। निवारण–एतदर्थ स्निग्ध, मधुर एवं वातशामक उपचार करने चाहिए।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) बल्य महाकषाय (?) एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) न्यग्रोधादिगण में 'रोहिणी (मांसरोहिणी)' भी है।

वक्तव्य–'रोहीणी' संज्ञा का प्रयोग संस्कृतकोषों (अमर०/काण्ड २/वैश्यवर्ग ९/६७) 'रक्तवर्णगो' के अर्थ में हुआ है। आयुर्वेदीय संहिताओं में भी यह बहुर्थक संज्ञा के रूप में अनेक अल्पकाय वनस्पतियों के रूप में ही व्यवहृतसी लगती है। यद्यपि मध्यकालीन आयुर्वेदीय निघण्टुओं (धन्वन्तरि निघ०. राजनिघण्टु आदि) में उक्त नाम का प्रयोग 'काश्मर्य', 'जम्बू' आदि वृक्षजातीय वनस्पतियों के लिए भी हुआ है, किन्तु इससे उक्त 'मांसरोहिणी' अभिप्रेत नहीं है। प्रसंगागत मांसरोहिणी/रक्तरोहन का 'रोहिणीतरु' नाम से स्पष्टोल्लेख राजाभोज (ईसा के पश्चात् १०वीं शताब्दी) के प्रसिद्ध ग्रंथ 'समराङ्गणसूत्रधार' में हुआ है, जहाँ इसका परिगणन गृहनिर्माणोपयुक्त इमारती लकड़ियों/वृक्षों (*Timber/Timber Trees*) में किया गया है, जो अपने प्रकार का विशिष्ट एवं मांसरोहिणी के पूर्व-कालिक इतिवृत्त की दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। इससे यह भी लक्षित होता है, कि उक्तकाल में मांसरोहिणी वृक्ष लोकप्रचलित एवं सुविज्ञात वृक्ष था। तदनु पश्चिम भारतीय मध्ययुगीन आयुर्वेदीय निघण्टुओं (धन्वन्तरि, सोढल, राजनिघण्टु, कैयदेव आदि) में उक्त 'रोहिणीतरु' का स्पष्टोल्लेख 'मांसरोहिणी' नाम से किया गया है, तथा इसके औषधीय गुणधर्मों का भी विवेचन किया गया है, और परवर्तीकाल में यह सुविज्ञात एवं सुपरिचित है। मांसरोहिणी की छाल गाढे लालरंग की होती है, इसीलिये इसे 'रक्तरोहन' आदि नामों से अभिधानित किया गया प्रतीत होता है। विन्ध्य की आदिम जनजातियों में आज भी उक्त नाम जीवित एवं व्यवहारप्रचलित है। जनजातियों में ऐसी धारणा है, कि ताजे शस्त्रक्षत पर रोहिणी-छाल का रस लगाने से यह शीघ्र क्षतपूर्ति करता है। सम्भवतः मांसरोहिणी संज्ञा का यही आधार है। चित्रकूट आदि अनेक क्षेत्रों में रोहिणी की छाल का संग्रह एवं व्यापार विनमय 'रोहितक छाल' के नाम पर किया जाता है, जो नितान्त भ्रामक एवं अस्वीकार्य है। आयुर्वेदीय औषधनिर्माताओं को यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए (मार्केट-ड्रग्स ऑफ इण्डिया–प्रोफे० आर० एस० सिंह)। (लेखक)

माजूफल (मायाफल)

नाम। सं०–मायाफल। हिं०—माजूफल। म०–मायफल। गु०–कांटालुं मायुं, मायुं, माजुफल। अ०–अफ़्स, अल्अफ़्स, अफ़्सुलबुलूत। फा०–माजू। अं०–गाल्स (*Galls, Aleppo Gall, Blue Galls*)। ले०–गाला (*Galla*)। (वृक्षका नाम)–क्वेर्कुस इन्फेक्टोरिआ (**Quercus infectoria**) *Oliv.*। डायर्स ओक (*Dyer's Oak*)। वक्तव्य–माजूफल के ऊपर कतिपय चिह्न कच्छूवत् होते हैं, इसीलिए इसको लेटिन और अंगरेजी में 'गॉला *Galla* या गाल्स *Gall's* कहते हैं। स्वाद में अत्यन्त कसैला होता है, अतएव अरबी में अफ़्स (= कषाय) कहते हैं।

वानस्पतिक-कुल। मायाफलादि-कुल (कूपूलीफेरी *Cupulifereae*।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान—यूनान, तुर्की, सीरिया और फारस। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्यतः तुर्की तथा फारस से होता है। तुर्की में काफी परिमाण में इसका संग्रह किया जाता है। इसीलिए व्यवसाय में इसे 'टर्की या लेवांट गाल' भी कहते हैं। माजूफल पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्तपरिचय—'माजूफल' वस्तुतः फल नहीं होता। यह उक्त क्वेर्कुस ईन्फेक्टोरिआ नामक बलूतजातीय वृक्ष की डालियों पर एक विशेष प्रकार के कृमि (सीनिप्स गाली-ईन्फेक्टोरी **Cynips gallae-infectoriae** *Olivier* (*Family* : *Cynipidae*) के छिद्र करने और उन छिद्रों में उसके अंडे रखने से, उन स्थानों पर एक प्रकार की गाँठें उत्पन्न हो जाती हैं। यही वृक्षव्रणज कीटगृह (Galls) 'माजू' या 'माजूफल' कहलाता है।

उपयोगी अंग—वृक्षव्रणज कीटगृह (गाल *Galls*) जिन्हें माजूफल कहते हैं।

मात्रा—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—औषधीय प्रयोग के लिए उत्तम माजूफल वह होता है, जिसमें से कीट बाहर नहीं निकले होते। माजूफल आकार में उन्नाव के बराबर और रंग में बाहर छोटे उभार (*studded with numerous tuberosities*) तथा अन्दर से पीला या सफेदी लिए भूरा, मध्य में किंचित् पोला, निर्गंध और स्वाद में अत्यन्त कसैला होता है। माजूफल को गोलाई में दो समानार्धों में काटने पर अन्दर एक छोटा-सा खात दिखाई देता है, जिसमें कीट का अवशेष पाया जाता है। उक्त उत्तम 'माजू' वजन में अपेक्षाकृत भारी होता है। किन्तु जिस माजूफल से कीट निकल गया होता है, वह वजन में हल्का तथा रंग में भी फीका (पीताभ-श्वेत) और कम कसैला होता है। ऐसे माजूफल के धरातल पर छिद्र होता है, जो कीट के निर्गम-द्वार का द्योतक होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—'सफेद सछिद्रमाजू' जिनमें से क्रीड़ा छेद कर निकल गया हो, निकृष्ट होता है। काकड़ासींगी फ्रैमिली के रुहुस चीनेन्सिस **Rhus chinensis** *Mill.* (*Syn. R. semialata Murr.*) के वृक्षों पर भी मेलाफिस चीनेन्सिस **Melaphis chinensis** *Bell* (*Family* : *Aphididae*) नामक कीट-द्वारा माजूसदृश कीटगृह बनते हैं (*Chinese or Japanese Galls*) जिनको असली माजू में मिलाया जाता है। उक्त वृक्ष हिमालय की बाहरी पर्वत-श्रेणियों में ९१४.४ मीटर से २१३३.६ मीटर या ३,०००–७,००० फुट की ऊँचाई तक सिन्ध नदी से लेकर पूरब में नागा की पहाड़ियों तक पाये जाते हैं। इसके माजूफल अपेक्षाकृत बड़े (२.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इंच सेलेकर ३ इंच तक लम्बे) रूपरेखा में ऊबड़-खाबड़ तथा उत्सेध भी बड़े और शंक्वाकार होते हैं। बाह्यतल पर खाकस्तरी रंग के सघन मखमली रोयें होते हैं। कभी इसके टूटे हुए टुकड़े भी मिले होते हैं। कभी असली माजूफल में ऐसे माजू भी मिले होते हैं, जिन पर उत्सेध केवल ऊपरी सिरे से चारों ओर (*Crown Galls*) होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—माजूफल का संग्रह कीटों के निकलने के पूर्व करना चाहिए। इनको अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—माजूफल में मुख्यतः (५% से ७%) टैनिक एसिड (*Gallo-Tannic Acid*), तथा अल्पमात्रा में मायाफलाम्ल (गैलिक एसिड *Gallic Acid*), शर्करा, स्टार्च आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। २–३ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—स्तम्भन, उपशोषण, रक्तस्तम्भन, व्रणरोपण, केशरंजन, मूत्रसंग्रहणीय तथा योनिस्राव को कमकरता है। इसके अतिरिक्त यह लेखन तथा विषघ्न है।

मुख्य योग। कण्ठशालूकहर—लेप, वज्रदंतमंजन, मायाफलादि मलहर, कोहलमाजू।

वक्तव्य—'माजूफल' का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं तथा तत्पूर्वसाहित्य या तत्परवर्ती आरम्भिक शताब्दिओं में नहीं मिलता। किन्तु प्राचीन यूनान और रोमवासियों तथा अरब और ईरानियों को इसका ज्ञान था तथा यह व्यवहार प्रचलित रहा। भारतीय साहित्य एवं परम्परा में इसका प्रचलन मध्ययुगीन इस्लामी सम्पर्क से हुआ प्रतीत होता है। परिणामतः पश्चिमभारतीय शोढल एवं राजनिघण्टु आदि में 'मायाफल' आदि नामों से इसका समावेश किया गया, और तत्परवर्ती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काल में अद्यावधि भारतीय बाजारों में माजूफल विज्ञात एवं प्रचलित है। उल्लेखनीय है कि सहस्रयोगनामक मलयालमभाषा के सुप्रसिद्ध एवं दक्षिणभारत में सर्वाधिक प्रचलित भेषजग्रन्थ के 'वलियङ्गाटिकषायम्' वामक योग में 'मायक्काय' नामक द्रव्य से 'माजूफल' ही अभिप्रेत प्रतीत होता है।

मानकन्द

नाम। सं०—मानकन्द, मानक, महापत्र। हिं०, हो०—मानसरु, मानकन्द। बं०, आसाम—मानकचू। ले०—आलोकासिआ इंडिका (**Alocasia indica** *Schott.*)।

वानस्पतिक-कुल। सूरण-कुल (आरासे *Araceae or Aroidae*)।

प्राप्तिस्थान—बंगाल, आसाम में गाँवों के आसपास मानकन्द के पौधे बहुतायत से उगे हुए मिलते हैं। जलाशयों के आसपास एवं आर्द्र-भूमि में इसके पौधे काफी बढ़ते तथा विकसित होते हैं। भारतवर्ष में अन्यत्र भी सौन्दर्य के लिए वाटिकाओं एवं गृह-उद्यानों में इसके लगाये हुए पौधे मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय। मानकन्द का क्षुप ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ फुट से ६ फुट ऊँचा होता है, और आपाततः देखने में अरुई या वंडा के क्षुप-जैसा मालूम होता है। काण्ड-स्कन्ध अपेक्षाकृत काफी मोटा (१० सें० मी० से २० सें० मी० या ४ इञ्च से ८ इञ्च व्यास का) होता है। पत्तियाँ गाढ़े हरेरंग की, ६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ फीट से ३ फीट लम्बी पुंखवत्-त्रिभुजाकार या बाणाकार (*triangular-sagittate*) होती हैं। शीर्षस्थखण्ड त्रिभुजाकार और पार्श्वीय खण्ड लट्वाकार होते हैं। पत्रदण्ड प्रायः पत्तियों के बराबर लम्बा या कभी अधिक लम्बा, गोल तथा कठिन होता है, जो अग्र की ओर क्रमशः कम मोटा होता है। पुष्पवाहक दण्ड अनेक, प्रायः १० सें० मी० से २० सें० मी० (४ इञ्च से ८ इञ्च) लम्बे, नर तथा नारी पुष्प-व्यूह पृथक्-पृथक् होते हैं, और हरिताभ पीतपत्रकों (*spathe*) से आवृत्त होते हैं। नरपुष्पव्यूह सफेद तथा नारीपुष्पव्यूह प्रायः पीतवर्ण का होता है। फल या बेरी (*berry*) गोल-गोल, ०.६२५ सें० मी० से १ सें० मी० या (¼ इञ्च से ⅜ इञ्च) व्यास के तथा पकने पर लाल हो जाते हैं। स्कन्ध से मूल निकले रहते हैं, और मूल-स्तम्भ से निकले मूलों के अग्र कन्दसदृश होते हैं। 'स्कन्ध' तथा 'कन्द' खाये जाते हैं।

उपयोगी अंग—मूलस्तम्भ (*Root-Stock*) अर्थात् कन्दाकार काण्ड एवं जड़, काण्डस्कन्ध एवं पत्र।

मात्रा। कन्दचूर्ण—०.५ ग्राम से ११.६ ग्राम या ½ तोला से १ तोला।

स्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—मानकन्द ३० सें० मी० या १ फुट या इससे भी अधिक लम्बा, मोटा एवं रम्भाकार होता है। बाह्यतल पर्णवृन्तों के अवशेष से ढका होता है, जो भूरे रंग का होता है। अन्दर सफेद रंग का पिष्टमय (*starchy*) गूदा निकलता है। ताजाकन्द सूरण की भाँति तीक्ष्ण होता है, किन्तु सूखने पर तीक्ष्णता जाती रहती है कन्दों में काफी मात्रा में सफेद रंग का स्टार्च निकलता है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़े के अन्त में कन्दों को निकाल कर छील कर, काट कर सुखालें। और मुखबन्द-पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—मानकन्द में काफी मात्रा में 'स्टार्च' पाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'कैल्सियम् ऑक्जलेट क्रिस्टल्स' तथा कुछ 'चूना' पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—वातनाशक, शोथहर, वेदनास्थापन, शूलप्रशमन, वातानुलोमन, मूत्रल, बल्य। इसका पत्र रक्तरोधक होता है।

मुख्य योग—मानकादिगुडिका, मानमण्ड।

विशेष—शोथ के रोगियों के लिए मानकन्द एक उत्तम पथ्य शाक है।

मालकँगनी (ज्योतिष्मती)

नाम। सं०—ज्योतिष्मती, कंगुणी। हिं०—मालकाँ(कँ)गनी (—काकनी), मींजनी, मि(मु)झनी। म०—मालकांगोणी। गु०—मालकांग(क)णी। कुमाँयू—मलकक्नी। पं०—संखू। ता०—वालुलवै। मल०—पालुर(ल)वम्। अ०—तीलाक्रियून। अं०—स्टाफ-ट्री (*Staff-Tree*)। ले०—सेलास्ट्रस पानीकुलाटस (**Celastrus paniculatus** *Willd.*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक-कुल । ज्योतिष्मत्यादि-कुल (सेलास्ट्रासे *Celastracae*) ।

प्राप्तिस्थान–हिमालय से लंका तक १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक मालकँगनी की स्वयंजात लताएँ पायी जाती हैं ।

संक्षिप्त-परिचय–मालकाँगनी की क्षुपस्वभाव की वृक्षारोही काष्ठमय तथा बड़ी लम्बी लता होती है । इसकी कोमल शाखाएँ वातरन्ध्रों के चिह्नों से बिन्दुकित (*marked with lenticels*) होती हैं । पत्तियों की लम्बाई, चौड़ाई एवं रूपरेखा में बड़ी भिन्नता पायी जाती है । सामान्यतः ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इञ्च से ४ इंच) लम्बी, १.७५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (१½ इञ्च से ३ इञ्च) चौड़ी, अभिलट्वाकार, गोलाकार, अण्डाकार अथवा आयताकार, अग्रपर यकायक नुकीली तथा पत्रतट दन्तुर, एवं पत्राधार की ओर चौड़ाई क्रमशः कम होतीजाती (*base : acute*) है । पत्रवृन्त या डंठल (*petiole*) लम्बा होता है । फूल छोटे-छोटे पीताभ-हरितवर्ण के तथा मधुरगन्धयुक्त एवं गुच्छे के गुच्छे नम्य मञ्जरियों (*drooping panicles*) में लगते हैं । पुष्पागम ग्रीष्म-ऋतु (अप्रैल–जून) में होता है । शरद-ऋतु में फल लगते एवं पकते हैं । फल (*capsule*) मटर की आकृति के, कच्चे नीले और पके लाल-पीले तथा तीन कोष्ठोंवाले, जिनमें प्रत्येक कोष्ठ में २-३ तिकोने बीज होते हैं, जो वस्तुतः कालेरंग के होते हैं, किन्तु लालरंग के बीजोपाँग (*red arillus*) से ढँके होने के कारण मुनक्के के बीजों की तरह मालूम होते हैं । पक्व फलों के गुच्छे आ जाने पर लता बहुत सुन्दर मालूम होती है ।

उपयोगी अंग– बीज एवं बीजों का तेल ।

मात्रा । बीज–०.५ ग्राम से २ ग्राम या ४ रत्ती से २ माशा । तेल–२ से १० बूँद (बाह्यप्रयोग के लिए आवश्यकतानुसार) ।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–मालकाँगनी के बीज ज्वार के दाने या मुनक्का के बीज के आकार के, तथा लालरंग के बीजोपांग (*red arillus*) से ढँके होते हैं । रूपरेखा में कुछ-कुछ तिकोनिए होते हैं, और बीजचोल (*testa*) अत्यन्त कड़ा होता है । बीजों के अन्दर सफेद मज्ज या गूदा होता है, जो स्वाद में कड़वा होता है । बीजों को कोल्हू में दबाकर लालिमालिये पीतवर्ण का गाढ़ा तेल प्राप्त किया जाता है, जिसे 'मालकाँगनी का तेल' कहते हैं । रखने पर कुछ समय के बाद तेल का कुछ अंश घनीभूत होकर नीचे बैठ जाता है । तेल स्वाद में तिक्त एवं एक विशिष्ट गन्धयुक्त होता है । भस्म–५.८ प्रतिशत ।

संग्रह एवं संरक्षण–बीजों को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए । मालकाँगनी के तेल को नीली शीशियों में अच्छी तरह मुखबन्द करके शीतल एवं अंधेरी जगह में रखना चाहिए ।

संगठन–(१) स्थिरतेल (मालकाँगनी का तेल) ३०% । (२) तिक्त रालीय पदार्थ । (३) टैनिन (अल्पमात्रा में) । (४) रंजकद्रव्य ।

वीर्यकालावधि । बीज–२ वर्ष । तेल–दीर्घकाल तक ।

स्वभाव । गुण–तीक्ष्ण, स्निग्ध, रस । रस-कटु, तिक्त । विपाक–कटु । वीर्य–उष्ण । प्रभाव–मेध्य । प्रधान कर्म–वातकफनाशक, वाजीकर, रक्तप्रसादन, दीपन-पाचन, कफनिस्सारक । मालकाँगनी का तेल अन्य उपयुक्त औषधियों के साथ श्वित्रादि चर्मरोगों में भी बहुत उपयोगी है । अहितकर–उष्णप्रकृति विशेषतः युवाओं के लिए बहुत अहितकर है । निवारण–गोदुग्ध एवं गोघृत ।

मुख्य योग । ज्योतिष्मतीतेल (मालकाँगनीका तेल) ।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० २) शिरोविरेचन द्रव्यों में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) अधोभागहर एवं शिरोविरेचनवर्ग में 'ज्योतिष्मती' है ।

वक्तव्य–'ज्योतिष्मती' का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं तथा परवर्ती साहित्य में अद्यावधि सर्वत्र मिलता है । उल्लेख बारंबारिता अपेक्षाकृत चरकसंहिता में अधिक होने से लक्षित होता है, कि प्राचीन उत्तरपश्चिमी भारतीयसीमाक्षेत्र में यह सुविज्ञात एवं व्यवहार प्रचलित थी । किन्तु उल्लेखनीय है, कि अद्यावधि इसके लोकप्रचलित कोई भी क्षेत्रीय नाम इस संज्ञा से व्युत्पन्न नहीं प्रतीत होता । इससे इङ्गित होता है, कि प्राचीनकालिक क्षेत्रीय जन-जातियों में यह औषधि विभिन्न नामों से स्वतंत्ररूप से प्रचलित थी, जो आज भी अवशेष रूप से जीवित हैं । यद्यपि सम्प्रति इसका सर्वमान्य वानस्पतिकविनिश्चय उक्त 'सिलास्ट्रुस' जातीय लता से किया जाता है, किन्तु बंगीय वैद्य इसके लिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'लाटाफटकी' (पर्यायरत्नमाला) या लतापुटकी' (च० वि० अ० ८ पर गंगाधर की जल्पकल्पतरुटीका) नाम भी देते हैं, जो वास्तव में कर्णस्फोटा नामक अन्य लताजातीय वनस्पति का है, जो इससे सर्वथा भिन्न है और जिसका लेटिन नाम कार्डियोस्पेर्मुम् हालीकाकेबुम् (**Cordio spermum halicacabum** *Linn.* (*Family ; Sapindaccae*) है। ज्योतिष्मती के परिपेक्ष्य में उक्त-विनिश्चय भ्रमपूर्ण एवं अग्राह्य है। इसीप्रकार आधुनिक ग्रंथकारों द्वारा उक्त **halicacabum** प्रजाति के लिए ज्योतिष्मती (सं०) संज्ञा का व्यवहार भी तदनुरूप ही भ्रामक है।

मध्ययुगीन आयुर्वेदीय निघण्टुओं तथा विशेषतः रसग्रंथों में ज्योतिष्मती के अतिरिक्त इसका उल्लेख 'कंगु', 'कंगुणी', 'कंगुणिका' आदि संज्ञाओं से तथा इसके तैल का कंगु (कगुणी)तैल नाम से भूरिशः तथा नानाविध प्रयोगों के लिए हुआ है (**On the Identity and Critical Appraisal of the Flora of the Rasa-Texts—*Prof. R. S. Singh***)। इससे लक्षित होता है, कि रसवैद्यों की परम्परा में प्राचीनकाल से ही उक्त संज्ञायें तथा 'कंगुणीतैल' के विभिन्न प्रयोग स्वतंत्ररूप से प्रचलित रहे होंगे। इसका प्राचीन साक्ष्य हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है, जहाँ 'कंगुतैल' का प्रयोग 'श्यामीकरणयोग' में हुआ है। उल्लेखनीय है, कि उक्त प्रयोग पश्चिमी क्षेत्रों के परम्परागत वैद्य-हकीमों के यहाँ अभी भी व्यवहारप्रचलित है। आयुर्वेदीय संहिताओं में 'ज्योतिष्मती बीज' के अर्थ में 'कंगु' संज्ञा का प्रयोग नहीं है। (लेखक)

माषपर्णी (बन-उड़द)

नाम। सं०—माषपर्णी, महासहा। हिं०—मषवन, बनमाष, बनउर्दी। बं०—माषानो। म०—रानउड़द। गु०—जंगली उड़द। ले०—टेरामनुस लाबिआलिस (**Teramous labialis** *Spreng.*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : प्रजापति-उपकुल (*Leguminosae : Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष। स्वयंजात लताओं का 'शुष्क पंचाङ्ग' पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त परिचय—'बन उड़द' की पतली और चक्रारोही लताएँ प्रायः झाड़ियों पर फैली हुई पायी जाती हैं। पत्तियाँ संयुक्त और त्रिपत्रक, पत्रक भिन्न-भिन्न कद के, रूपरेखा में यह अण्डाकार या लट्वाकार (अग्रपर स्थित तीसरा पत्रक कभी-कभी अभिलट्वाकार), १.५ सें० मी० से ३.३ सें० मी० या ⅔ इंच से १⅓ इंच लम्बे (कभी २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च तक) तथा अध.पृष्ठ पर रोमावृत होते हैं। पुष्प गुलाबी लिये बैंगनी (*pink-purple*) या कभी सफेद रंग के होते हैं, जो ३.७१ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (१½ इञ्च से ५ इञ्च) लम्बी किन्तु पतली मञ्जरियों में निकलते हैं। फली पतली, लम्बी, सीधी या कुछ टेढ़ी और रोमश होती है, जिसमें ८—१० बीज होते हैं, जो ताजी अवस्था में लाल, किन्तु, सूखने पर काले हो जाते हैं। बनमूँग की भाँति इसमें भी जाड़ों में फूल-फल आते हैं।

उपयोगी अङ्ग—पचांग।

मात्रा। १.५ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में फूल-फल आने के बाद 'पंचांग' का संग्रहकर, छायाशुष्क करके मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि। पंचांग—३ माह से ६ माह।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—मधुर, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—वातपित्तशामक, कफवर्धक, दीपन, स्वेहन, अनुलोमन, ग्राही, रक्तपित्तशामक, रक्त-शोधक, शोथहर, शुक्रजनन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन तथा जीवनीय आदि।

विशेष—माषपर्णी 'जीवनीय गण' की औषधि है। चरकोक्त (सू० अ० ४) जीवनीय एवं शुक्रजनन महाकषाय तथा मधुरस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) विदारिगन्धादि एवं काकोल्यादिगण के द्रव्यों में 'माषपर्णी' भी है।

मुचकुन्द

नाम। सं०—मुचकुन्द, छत्रवृक्ष। हिं०, म०, गु०—मुचकुन्द, मुचुकुन्द। बं०—मुचकुन्द चांपा। फा०—गुले मुचकुन। जोनसार—मायंग (*Mayeng*)। ले०—प्टेरोस्पेर्मुम

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आसेरीफोलियम (Pterospermum acerifolinm *Willd.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुचकुन्द-कुल (स्टेर्कूलिआसे *Sterculiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालय की तराई एवं बाहरी पर्वतश्रेणियों पर १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक, बंगाल, चटगाँव, खसिया, मनीपुर में मुचकुन्द के जंगली वृक्ष पाये जाते हैं। सुगन्धित पुष्पों एवं छाया के लिए बगीचों एवं सड़कों के किनारे इसके लगाये हुए वृक्ष सर्वत्र मिलते हैं। बम्बई प्रान्त में मुचकुन्द के लगाये हुए वृक्ष प्रचुरता से मिलते हैं। मुचकुन्द के 'शुष्कपुष्प' पंसारियों के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। मुचकुन्द के ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्ष होते हैं, जिनकी कोमल शाखाएँ मुरचई-रोमावृत (*ferruginous tomentum*) होती हैं। पत्तियाँ १५ सें० मी० से ३७.५ सें० मी० या ६ इञ्च से १५ इञ्च लम्बी, १२.५ सें० मी० से २५ सें० मी० या ५ इञ्च से १० इञ्च चौड़ी, रूपरेखा में गोलाकार या आयताकार, कोई-कोई पत्र खण्डित (*lobed*) तथा किन्हीं में पत्रतट सरल या अखण्ड अथवा दूर-दूर दन्तुर होते हैं। आधार की ओर फलक गम्भीर हृद्वत् होता है, अथवा किन्हीं पत्तियों में पर्णवृन्त पृष्ठतल पर लगा होता (*peltate*) है। बनावट में यह चर्मिल, चिकनी और गाढ़े हरेरंग की, पृष्ठतल श्वेताभ मृदु-रोमश, शिराविन्यास पाणिवत् तथा पृष्ठतल पर अधिक स्पष्ट होता है। पर्णवृन्त ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० (३ इञ्च से ६ इञ्च) लम्बा एवं रेखांकित (*striate*) होता है। पुष्प बड़े (व्यास में १२.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ५ इञ्च से ६ इञ्च तक) तथा अत्यन्त सुगन्धित होते हैं, जो पत्रकोणों में एकलक्रम से (*solitary*) अथवा छोटे-छोटे पुष्पव्यूहों में निकलते हैं, जिनमें २ पुष्प से ३ पुष्प होते हैं (*2-3 flowered cymes*)। पुष्पवृन्त १२.५ सें० मी० या ५ इंच तक लम्बा होता है। बाह्यकोश (*calyx*) ५ खण्डों में विभक्त होता है, जो ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ३ इंच से ५ इंच लम्बे, ०.८३ सें० मी० से १.२५ सें० मी० या ⅓ इंच से ½ इंच चौड़े काफी मोटे एवं मांसल तथा बाह्यतल पर भूरेरंग के सघनरोम से आवृत्त होते हैं। औषध्यर्थ व्यवहृत पुष्पों में मुख्य अंश बाह्यकोश का ही होता है। आभ्यन्तर कोष सफेद तथा पतला एवं बाह्यकोष की भाँति खण्डित होता है, जो आपस में लिपटे-से होते है, और पुष्पों के सूखने पर या मुरझाने पर गिर जाते हैं। पुंकेसर २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इंच से १½ इंच लम्बे तथा सूत्रकार और संख्या में १५ होते हैं, जो प्रत्येक बाह्य दलपत्र (*sepal*) के सामने ३—३ के समुदाय में स्थित होते हैं। फल (*capsule*) १० सें० मी० से १५ सें० मी० या ४ इंच से ६ इंच लम्बे, रूपरेखा में लम्बगोल किन्तु पंचकोणीय तथा अन्दर से पंचकोष्ठीय (*5-celled*) एवं कड़े (*woody*) होते हैं। बाह्यतः यह गाढ़े भूरेरंग के होते हैं। बीज चपटे तथा भूरे रंग के झिल्लीनुमा पक्षयुक्त होते हैं। पुष्पागम वसन्त-ऋतु में तथा फलागम जाड़ों में होता है।

उपयोगी अंग—ताजे एवं शुष्क पुष्प (विशेषतः बाह्यकोष या *Calyx*)।

मात्रा। ०.५ ग्राम से १.५ ग्राम या ४ रत्ती से १½ माशा। स्थानिक प्रयोग के लिए आवश्यकतानुसार।

संग्रह एवं संरक्षण—वसन्त-ऋतु तथा ग्रीष्म में पुष्पागम के बाद विकसित पुष्प स्वयं टूटकर गिरते रहते हैं। अतएव पुष्पों का संग्रह प्रायः भूमि से ही किया जाता है। सूखे फूलों में भी सुगन्धि बनी रहती है। फुलों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन—मुचकुन्द के पुष्पों में एक सुगन्धित उड़नशीलतेल पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—रूक्ष। रस—कषाय, किंचित् कटुतिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—बाह्यतः (स्थानिकप्रयोग) से यह वेदनास्थापन एवं रक्तस्तम्भन होता है। आभ्यन्तर प्रयोग से वेदनास्थापन, रक्तस्तम्भन (अतएव रक्त पित्तनाशक), कफघ्न, कण्ठ्य, विषघ्न तथा त्वग्रोगनाशक होता है। यूनानीमतानुसार 'मुचकुन्द' गरम एवं खुश्क होता है। शीतल शिरःशूल में जल के साथ पीसकर मस्तकपर लेप करते हैं। रक्तपित्त (विशेषतः अर्शोजात रक्तस्राव) में मुचकुन्द-पुष्प का चीनी, घी के साथ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनाया 'हलवा' बहुत उपयोगी होता है। शिरोभ्यंग के लिए प्रयुक्त औषधीयतैलों में भी यह पड़ता है।

मुख्य योग—हिमांशु तैल।

मुण्डी (गोरखमुण्डी)

नाम। सं०—मुण्डी, मुण्डिका, श्रावणी। हिं०—मुंडी, गोरखमुंडी। पं०—मुंडी। म०, गु०, मा०—गोरखमुंडी। बं०—मुरमुरिया। उड़ि०—मुरिसा, मुइकदम। संथा०—बेलौंजा। ले०—स्फ़ोरांथुस इण्डिकुस (**Sphaeranthus indicus** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोज़ीटे *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारत में विशेषतः हिमालय प्रदेश में कुमायूँ से सिक्किम तक ५,००० फुट की ऊँचाई तक मुण्डी के 'स्वयंजात' क्षुप पाये जाते हैं। 'शुष्क पंचांग' एवं पुष्पमुण्डक पंसारियों के यहाँ मिलते हैं। धान के खेतों में तथा नम-जगहों में इसके पौधे अधिक मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय—मुण्डी के प्रसरणशील एवं गन्धयुक्त क्षुप ३० सें० मी० या १ फुट तक ऊँचे होते हैं, जिनके काण्ड सपक्ष, पत्तियाँ अवृन्त या विवाल, अभिलट्वाकार अथवा अभिप्रासवत्, दन्तुर, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इञ्च लम्बी तथा काण्डसंसक्त होती हैं। मुण्डक (*capitula*) पत्राभिमुख, विषमलिंग, संयुक्त, १.२५ सें० मी० से १.८७ सें० मी० या ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $\frac{3}{4}$ इञ्च) लम्बे तथा अधःपत्रावलि के उपपत्र रेखाकार एवं तीक्ष्णाग्र होते हैं। शीतकाल में पुष्प एवं बाद में फल लगते हैं।

उपयोगी-अंग। पंचांग, मुण्डक (*Capitula*)।

मात्रा। चूर्ण—$\frac{1}{2}$ ग्राम से १ ग्राम या $\frac{1}{2}$ माशा से १ माशा।
स्वरस—$\frac{1}{2}$ तोला से २ तोला।
अर्क—२$\frac{1}{2}$ तोला से १० तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजारों में मुण्डी का पञ्चांग तथा मुण्डक पृथक् से भी बेचे जाते हैं। ताजी अवस्था में मुण्डक बैंगनीरंग के होते हैं, किन्तु सूखनेवर रंग उतर जाता है। ताजे मुण्डकों में एक विशिष्ट प्रकार की हल्की सुगन्धि भी पायी जाती है। स्वाद में मुण्डी हल्की तिक्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—मुण्डी का संग्रह जाड़ों में पुष्पागम के बाद करना चाहिए। अर्क निकालने के लिए ताजे पंचांग को व्यवहृत करना चाहिए। छायाशुष्क पंचांग अथवा मुण्डकों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—मुण्डी के ताजे पुष्पित पंचांग में एक 'उत्पत् तैल' पाया जाता है। इसमें स्फिरैन्थीन (*Sphaeranthine*) नामक ऐल्केलॉइड भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। ३ मास ४ मास।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, कटु, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, मूत्रल, रक्तशोधक, हृदयोत्तेजक, मेध्य, नाड़ीबल्य, कफघ्न, मूत्रल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, रसायन आदि। चरकसंहिता (चि० अ० १, पा० ४) में इन्द्रोक्त रसायन द्रव्यों में 'श्रावणी' एवं 'महाश्रावणी का भी उल्लेख है।

मुख्य योग—मुण्डीअर्क, अतरीफल मुंडी, माजून मुंडी, शर्बत मुण्डी, रोगन मुण्डी, चोआ मुंडी।

विशेष—मुण्ठी एक उत्तम रक्तशोधक द्रव्य है। रक्तविकारों में तथा रक्तविकारजन्य त्वग्रोगों में मुण्डीअर्क का प्रयोग उपयोगी है।

मुद्गपर्णी (बनमूंग)

नाम। सं०—मुद्गपर्णी, शूष्यपर्णी। हिं०—वनमूंग, मुगवन, जंगलीमूंग, मुगानी। बं०—मुगानी। म०—रानमुग। गु०—अडबाऊ मग, जंगली मग। ले०—फ़ासेओलुस ट्रीलोबुस (**Phaseolus trilobus** *Ait.*)।

वानस्पति-कुल। शिम्बी-कुल : प्रजापति-उपकुल (*Leguminosas ; Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष (लंका में एवं पूरब में वर्मा तक) के मैदानी भागों (पुराने बगीचों, खंडहरों तथा सड़कों के किनारे) में तथा जंगलों में छायादार जगहों में और हिमालय प्रदेश में ७,००० फुट की ऊँचाई तक बनमूंग की स्वयंजात लताएँ होती हैं। 'शुष्क पंचांग' बाजारों में पंसारी लोग भी विक्रयार्थ रखते हैं।

संक्षिप्त-परिचय—बनमूँग की छोटी (३० सें० मी० से ६० सें० मी० या १ फुट से २ फुट लम्बी) प्रसरी लताएँ होती हैं, जिनका काण्ड रोमश या चिकना होता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। पौधा आपाततः देखने में मूंग-जैसा मालूम होता है। पत्र संयुक्त तथा त्रिपत्रक (*3-foliolate*) होते हैं। पत्रक साधारणतया आयताकार या अंडाकार किन्तु कद में प्रायः बहुत परिवर्तनशील होते हैं, और प्रायः वृन्त से छोटे ही होते हैं। यह प्रायः सर्वदा खण्डित, तथा खण्ड तीन और गोल होते हैं। उपपत्र बहुत बड़े और पीठ से जुड़े हुए तथा उपपत्रक छोटे परन्तु पर्णवत् होते हैं। पुष्प पीलेरंग के तथा मञ्जरी के शीर्ष पर गुच्छबद्ध स्थित होते हैं, और पुष्पदण्ड बड़ा होता है। फली पतली, चपटी तथा लगभग ५ सें० मी० या २ इञ्च लम्बी और चिकनी होती है, जिसमें ६ से १२ तक श्वेताभ बीज होते हैं। इसके बीजों को कभी-कभी गरीब लोग खाने के लिए एकत्र करते हैं। जाड़े के दिनों में इसमें फूल-फल लगते हैं।

उपयोगी अंग। पचांग, मूल, बीज।

मात्रा। १.५ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में फल-फल आने के बाद पंचांग को ग्रहण कर छायाशुष्क कर लें और मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि। पंचांग—३ से ६ महीने।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—मधुर, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—त्रिदोषशामक, विशेषतः वातपित्तशामक, शोथहर, चक्षुष्य, दीपन, अनुलोमन, ग्राही, रक्तशोधक, रक्तपित्तशामक एवं रक्तस्तम्भक, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, जीवनीय, वृष्य, विषघ्न।

विशेष—मुद्गपर्णी 'जीवनीयगण' की औषधि है। चरकोक्त (सू० अ० ४) जीवनीय एवं शुक्रजनन महाकषाय तथा मधुरस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में, और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) विदारिगन्धादि एवं कोकोल्यादिगण में 'मुद्गपर्णी' भी है।

मुनक्का (द्राक्षा)

नाम। सं०—द्राक्षा, गोस्तनी, मृद्वीका, कपिशा, हारहूरा। क०—दच्छ। पं०—दाख, अंगूर। हिं०—मुनक्का, अगूर, दाख। म०—द्राक्ष। गु०—दराख, धराख। सिंध—द्राख। मा०—दाख, मिनका। फा०—अंगूर, रज, ताक, मवेका। अ०—इनब। लताका नाम—वीटिस वीनोफेरा (**Vitis vinifera** *Linn.*)। वानस्पतिक-कुल। द्राक्ष-कुल (वीटासे *Vitaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पश्चिमोत्तर हिमालयप्रदेश, पंजाब, कश्मीर तथा काबुल, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, कंधार, फारस एवं यूरोप के फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन आदि देश एवं भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में अंगूर लम्बे परिमाण में लगाया जाता है, और स्वयंजात भी होता है। इसके पके हरे फल मौसम में, एवं शुष्क पक्वफल (मुनक्का) पंसारियों एवं मेवा-फरोशों के यहाँ मिलते हैं। भारत में मुनक्का का आयात मुख्यतः अफगानिस्तान, फारस से होता है।

संक्षिप्त-परिचय। यह एक बहुवर्षायु सुदीर्घलता के प्रसिद्ध फल हैं। इसके मुख्य २ भेद होते हैं:—(१) दाखी या बड़ा (लंबोतरा या गोल) न्यूनाधिक बीजयुक्त इसके पके सूखेफल 'मुनक्का' या 'दाख' कहलाते हैं। जंगली एवं बागी (या कर्षित) भेद से, गोल, लंबा और छोटा-बड़ा आदि आकारभेद से तथा 'सफेद', 'लाल' एवं 'काला' आदि रंग भेद से इसके नाना प्रकार होते हैं। इनमें पूर्व-पूर्व अधिक श्रेष्ठ होता है। औषधीय कल्पों में प्रायः मुनक्का का ही व्यवहार किया जाता है। (२) प्रथम की अपेक्षा छोटा और बीजरहित होता है। इसके सूखे फलों को 'किशमिश' कहते हैं। यह स्वाद में खटमिट्ठा होता है। यह खाने के काम आता है।

उपयोगी अंग—ताजे पक्व या सुखाये फल (मुनक्का)।

मात्रा। मुनक्का ५ से ११ दाना (या जितना पचसके)।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—अंगूर रूपरेखामें, गोस्तनाकार रसदार फल होता है। रंगभेद से यह हरा, लाल या काला, कई प्रकार का आता है। सर्वोत्तम अंगूर वह है, जो गर्मी ऋतु का हो जिसका दाना बड़ा एवं परिपुष्ट हो और छिलका पतला तथा बीज छोटे हों। 'मुनक्का या दाख' सुखा हुआ अंगूर ही होता है। बड़ा, मोटा, मीठा तथा कम बीज वाला और जो बहुत सूखा न हो ऐसा मुनक्का उत्तम होता है। औषधीय प्रयोग के लिए कालामुनक्का अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है। पेशावरी एवं फारस का 'सुलतान मुनक्का' अपेक्षाकृत अधिक उत्तम होता है। अंगूर को चूना और सज्जीखार के साथ गरम पानी में डुबोकर आबजोश बनाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—अंगूर के फल पकने पर भी जल्दी गुच्छे से टूट कर पृथक् नहीं होते। पक्व गुच्छों को सर्दियों के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्व संग्रहीत कर धूप में विशिष्ट विधियों द्वारा सुखाया जाता है, अथवा आँच द्वारा भी सुखाते हैं। मुनक्का को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखना चाहिए और ध्यान रहे कि पात्र में नमी न पहुँचने पावे।

संगठन—ताजे फल में द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज), निर्यास, टैनिन, टारटेरिक एसिड (चिंचाम्ल), सीट्रिक एसिड, द्राक्षाम्ल (**Recemic Acid**) एवं सेवाम्ल या मौलिक एसिड (*Malic Acid*) एवं विविध क्षारद्रव्य यथा सोडियम् तथा पोटासियम् क्लोराइड, पोटासियम् सल्फेट एवं लौह आदि तत्त्व होते हैं। मुनक्का या सूखेफलों में शर्करा एवं निर्यास के अतिरिक्त सात्म्यीकृत होनेयोग्य स्वरूप में कैल्शियम्, मैग्नीसियम्, पोटासियम्, फास्फोरस एवं लौह होता है। फल के छिलके में टैनिन पायी जाती है।

वीर्यकालावधि। मुनक्का—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—स्निग्ध, गुरु, मृदु। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रधानकर्म—वातपित्तशामक, बृंहण, वृष्य, कण्ठ्य, स्नेहोपग, विरेचनोपग, संतर्पण तथा तृष्णा-दाह एवं ज्वरनाशक, मेध्य, सौमनस्यजनन, हृद्य, रक्तप्रसादन, रक्तपित्तशामक, फुफ्फुसबल्य, श्वास-कास-हर, उरःक्षत क्षयनाशक, सांद्रदोषपाचन, प्रमाथी, कोष्ठमृदुकर, आन्त्रामाशय लेखनीय, यकृद्बलदायक, वाजीकर तथा कामोत्तजक एवं मूत्रल आदि।

मुख्ययोग—द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, द्राक्षादिलेह।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) स्नेहोपग, विरेचनोपग, कासहर एवं ज्वरहर गण, तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) काकोल्यादि एवं परुषकादि गण के द्रव्यों में 'द्राक्षा' भी है।

मुलेठी (मधुयष्टी)

नाम। सं०—मधुक, यष्टीमधुक मधुयष्टी, क्लीतक। हिं०—मुलेठी, मुलहटी, जेठीमध। ब०—यष्टिमधु। म०—जेष्ठीमध। गु०—जेठीमध। सिंधी—मिठी काठो। ते०—यष्टीमधुकमु। अ०—अस्लुस्सूस, इकुस्सूस। फा०—बेख-महक, महकमतकी। यू०—मेयन (*Meyan*)। अं०—लिकोरिस (*Liquorice*), लिकोरिस रूट (*Liquorice Root*)। ले०—ग्लिसीर्हाइजा रैडिक्स (*Glycyrrhizae Radix*)। उक्त नाम मुलेठी के 'मूल' या जड़ के हैं।

वानस्पतिकनाम—ग्लिसीर्हीजा ग्लाब्रा (**Glycyrrhiza glabra** *Linn.*) तथा इसके विभिन्न भेद (**Varieties**)। सत्व या रसक्रिया (हिं०) सतमुलेठी, मुलेठीका सत। अ०—रुब्बुस्सूस। फा०—उसारए महक।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल (लेगूमिनोसे *Leguminosae*)।

प्राप्तिस्थान—दक्षिणयूरोप, स्पेन, सीरिया, रूस, मिस्र, अरब, ईरान (फारस), तुर्किस्तान, मध्य-एशिया, अफगानिस्तान, पेशावर की घाटी तथा हिमालय प्रदेश में चनाव से पूरब, समस्त ब्रह्मा एवं अंडमान टापुओं में भी उगती है। किन्तु उक्त प्रान्तों में व्यावसायिक रूप से इसका संग्रह कम होता है। अब पजाब, सिंध तथा कश्मीर में इसकी खेती का प्रयास किया जा रहा है। भारतवर्ष में मुलेठी का आयात प्रधानतः बाहर से ही फारस की खाड़ी, तुर्किस्तान, साइबेरिया एवं स्पेन आदि से होता है। मध्य-एशिया के कबीलों द्वारा भी कुछ मुलेठी देश में लायी जाती है। मुलेठी की 'जड़' एव 'सतमुलेठी' सर्वत्र बाजारों में पसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्तपरिचय। मुलेठी के कोमलकाण्डीय तथा ४५ सें० मी० से १.५ मीटर से १.८ मीटर (१½ फुट से ६ फुट) तक ऊँचे बहुवर्षायु शाकीयपौधे (*Herbaceous perennial*) होते हैं। पत्तियाँ, सपत्रक, विषमपक्षवत् (*imparipinnate*); पत्रक संख्या में ४—७ युग्म (*pairs*), रूपरेखा में आयताकार से अण्डाकार भालाकार होते हैं, जिनके अग्र नुकीले या कुण्ठित होते हैं। पुष्प हल्के गुलाबी से लेकर बैंगनीरंग के होते हैं, जो १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च से कुछ लम्बे होते तथा पत्रकोणोद्भूत शूकीवत् मंजरियों (*Axillary spikes*) में निकलते हैं। शिम्बी लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च तक लम्बी तथा चपटी होती है, जिसमें २—३ (या कभी अधिक) वृक्काकार बीज होते हैं। इसका मूल-स्तम्भ (**Root-stock**) जिसमें जड़ें तथा अन्तर्धावी काण्ड (*stolons*) होते हैं, व्यावसायिक मुलेठी होती है। बाजार में इसी के छोटे-बड़े टुकड़े मिलते हैं, जिनका

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कभी छिलका भी उतार दिया जाता है (*Peeled Liquorice*) अथवा कभी नहीं भी उतारते (*Unpeeled Liquorice*)। भेद (*Varieties*)—रूस (दक्षिणी रूस) से जो मुलेठी आती है, वह प्रायः उपर्युक्त वनस्पति के ग्लांडूलीफ़ेरा (G. glabra *var.* glandulifera *Waldst. & Kit.*) से प्राप्त की जाती है। इसमें प्रधानतः मूल ही होता है। स्पेनी मुलेठी (जो प्रधानतः स्पेन एवं सिसिली द्वीप से प्राप्त की जाती है), G. glabra *var.* typica *Regcl & Herd* की जड़ एवं भौमिक काण्ड से प्राप्त होती है। फारस से आने वाली मुलेठी (जो विशेषतः ईराक से आती है) G. glabra *var.* violacea *Boiss.* से प्राप्त की जाती है।

उपयोगी अंग। मूलस्तम्भ (जड़ एवं भौमिक काण्ड) के टुकड़े तथा इसका सत या रुब्ब (सतमुलेठी)।

मात्रा। मूल—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा। सतमुलेठी—½ ग्राम से १ ग्राम या ½ माशा से १ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में मुलेठी के छोटे-बड़े (२.५ सें० मी० से १०—१२.५ सें० मी० या १ इंच से ४—५ इंच-तक लम्बे) टुकड़े आते हैं। बिना छिलका उतारी हुई मुलेठी के टुकड़े बाह्यतः रक्ताभ-भूरे अथवा कालिमा लिये भूरेरंग के होते हैं, और उस पर लम्बाई के रुख झुर्रियाँ पड़ी होती (*longitudinally wrinkled*) हैं। इसपर जगह-जगह टूटी हुई पतली जड़ों के वृत्ताकार चिह्न (*rootscars*) तथा काण्ड के टुकड़ों पर शल्क-कलिकाओं के अवशेष अथवा चिह्न होते हैं। छिले हुए टुकड़े बाह्यतः पीले, चिकने और रेशेदार होते हैं। अन्दर का काष्ठीय भाग पीला और रेशेदार होता है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटे हुए तल (*transversely-cut surface*) पर एधाकी रेखा (*cambium ring*) स्पष्ट दिखाई देती है, जिसके बाहर की ओर पीताभ-भूरेरंग का वल्कल का भाग होता है, तथा अन्दर की ओर पीला काष्ठीय भाग होता है। काण्ड में केन्द्रस्थ मज्जक (*central pith*) भी होता है। ऊर्ध्ववाही (*xylem*) एवं अधोवाही (*phloem*) अरवत् (*radiate*) क्रमसे स्थित होते हैं। मुलेठी में एक विशिष्ट प्रकार की गंध होती है, तथा स्वाद में मधुर होती है। उत्तम मुलेठी में तिक्तता नहीं पायी जाती। भस्म—छिलके दार मुलेठी में अधिकतम १०% छिलका उतारी हुई में ६%। जल में विलेयसत्व—कम-से-कम २०%। अम्ल में अघुलनशील तत्व—बेछिलकेदार में अधिकतम १%, छिलकायुक्त में अधिकतम २½%। पहचान—गंधकाम्ल या सल्फ्यूरिक एसिड (८०% v/v) में भिगोनेपर वह क्षेत्र पीतवर्ण का हो जाता है। मुलेठी का चूर्ण पीले रंग का या मटमैले-पीलेरंग का होता है। भेद—स्पेन की मुलेठी में भौमिककाण्ड का भाग अधिक होता है। यह बहुत मीठी होती है, और इसमें तीतापन प्रायः नहीं होता। अतएव यह उत्तम मानी जाती है। रूसी मुलेठी प्रायः जंगली पौधों से प्राप्त की जाती है। इसमें अधिकांश मूल ही होता है। मधुरता के साथ इसमें कुछ तीतापन भी होता है। ईराक की मुलेठी के टुकड़े अपेक्षाकृत मोटे होते हैं। मिस्री, तुर्की एव अरबी मुलेठी में मिस्री उत्तम, अरबी मध्यम और तुर्की हीनकोटि की होती है। सतमुलेठी—'सतमुलेठी' के बाजार में कालेरंग के पेंसिल के आकार के बत्तीनुमा टुकड़े अथवा काले या लालरंग के चौकोर टुकड़े आते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—मंचूरियन मुलेठी जो ग्लिसरहीजा ऊरालेंसिस (G. uralensis *Fisch.*) नामक जाति से प्राप्त की जाती है, तथा ग्लिसीरहीजा की अन्य जातियों के मूल मिलावट के लिए प्रयुक्त होते हैं। गुञ्जा या घुँघची की जड़ों में भी मुलेठी में पाया जानेवाला 'ग्लिसरहाइजिन' नामक तत्त्व अल्पमात्रा में पाया जाता है। उक्त जड़ का स्वाद भी कुछ-कुछ मुलेठी से मिलता है। अतएव प्रमादवश लोग 'गुञ्जामूल' को ही मुलेठी मान लेते हैं। इसमें मिठास होने के कारण कीड़े आदि लगने की आशंका अधिक रहती है।

संग्रह एवं संरक्षण—कम-से-कम ३ वर्ष से ४ वर्ष पुराने पौधों की जड़ों एवं भौमिक काण्ड का संग्रह होना चाहिए। मुलेठी को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—मुलेठी में ५% से १०% तक ग्लिसिरहाइजिन (*Glycyrrhizin*) नामक मधुरसत्व तथा शर्करा (सुक्रोज एवं डेक्स्ट्रोज ५%—१०%), ३०% स्टार्च, प्रोटीन, वसा, रेजिन एवं १% ऐस्पेरिगिन आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। २ वर्ष।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–मधुर। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। कर्म–वातपित्तशामक, वातानुमोलन, मृदु-रेचन, शोणितस्थापन, मूत्रल, मूत्रकविरजनीय, एवं मूत्रमार्गस्नेहन, कफनिस्सारक एवं कण्ठ्य, चक्षुष्य, जीवनीय, सन्धानीय, रसायन एवं बल्य, शुक्रवर्धक, वर्ण्य, कण्डूघ्न, चर्मरोगनाशल, केश्य, शोथहर, ज्वर-नाशक आदि।

मुख्ययोग–मधुयष्ट्यादिचूर्ण, यष्ट्यादि क्वाथ, यष्टीमध्वादि तैल। मधुकसार (मुलेठीसत)–सन्निपातगजांकुश एवं बोलबद्धरस (रसरत्नसमुच्चय) में पड़ता है।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) जीवनीय, सन्धानीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, कण्डूघ्न, स्नेहोपग, वमनोपग, आस्थापनोपग, छर्दिनिग्रहण, मूत्रविरजनीय एवं शोणितास्थापन महा-कषायों में, तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) काकोल्यादि सारिवादि एवं अञ्जनादिगण में 'मधुक (मुलेठी)' भी है।

वक्तव्य–'मधुक–मुलेठी' का ज्ञान भारतीयशास्त्र एवं परम्परा, विशेषतः प्राचीन उत्तर-पश्चिम भारतीयसीमा क्षेत्र में अतिप्राचीन काल से है। अथर्ववेद (१.३४.४; १६.१०२.३) में मदुघ (*Madugha*) या मधुघ (*Madhugha*) नामसे जिस ओषधि का उल्लेख है, उससे उक्त मधुक (मुलेठी) ही अभिप्रेत है (*The Identity and Critical Appraisal of the Vedic Flora Brof A. S. Singh*)। आयुर्वेदीय संहिताओं में भी नानाविध औषधीय प्रयोगों के संदर्भ में 'मधुक' का बारंबार उल्लेख मिलता है। उल्लेख-बारंबारिता चरक संहिता में सबसे अधिक तदनु सुश्रुत एवं उसके बाद अष्टांगसंग्रह एवं अष्टांगहृदय में देखी जाती है। कौटिलीय-अर्थशास्त्र में भी मधुक के अपने प्रकार के विशिष्ट व्यवहारोपयोग के उल्लेख मिलते हैं। खनिज धातुओं के संस्कार के संदर्भ (आकरकर्मान्त-प्रवर्तननामक प्रकरण ३०) में 'धातुमार्दवकरणार्थ' निषेचन क्रिया के लिये, सुराध्यक्षप्रकरण में 'मेदक-प्रसन्नायोग'। 'सुराप्रसादन योग' एवं 'आसवसंभार योग' में तथा मूर्च्छित व्यक्ति को चेतना लाने के लिए संज्ञा-स्थापन योग' में भी 'मधुक' का उल्लेख है। हींग आदि की भाँति मुलेठी भी कतिपय उन द्रव्यों में है, जो समस्त भारतवर्ष में घर-घर में सुविज्ञात, व्यवहृत एवं उपलब्ध है। इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है, कि अद्यावधि मुलेठी सदैव आयातित (*imported*) ही रही। साथ ही इसकी उपलब्धि में न तो कभी कठिनाई रही और न ही इसके स्वरूपविनिश्चय में ही भ्रान्ति की स्थिति रही। इसके उत्तर एवं दक्षिण भारतीय समस्त क्षेत्रीय एवं बाजारू नाम 'मधुक' या 'यष्टीमधु' से व्युत्पन्न या इसके रूपान्तर मात्र हैं। फ़ारसी संज्ञा महक, मतक भी संस्कृत 'मधुक' या अथर्ववेदीय मधुघ से ही व्युत्पन्न प्रतीत होते हैं। यूनानीसंज्ञा 'मेयव *Meyam*' का अनुबन्ध भी उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तीय क्षेत्रविशेष से प्रतीत होता है जिससे उक्त प्राचीन भारतीय क्षेत्र से ही यूनान में इसका प्रसार हुआ लक्षित होता है। सावफरिस्तुस एवं दीसकूरीदूस आदि प्राचीन यूनानी हकीमों ने 'ग्लूकोर्रीज़ा' नाम से इसका उल्लेख किया है, जिसका शब्दार्थ 'मधुर या मीठी जड़' होता है। लेटिन 'Glycyrrhiza' इसी का लेटिनीरूपान्तर है। पश्चिमी देशों में शर्करा का काम मधु (*honey*), एवं विभिन्न वानस्पतिक मधुरस्राव तथा मुलेठी की जड़ के मधुरसत्व से लिया जाता था। मुलेठीसत्व का प्रचार भारतीय परम्परा में मध्ययुग में अरब एवं इरानियों द्वारा अथवा रसशास्त्रीय परम्परा से हुआ प्रतीत होता है। मधुकसार (मुलेठीसत्व) का स्पष्टोल्लेख एवं मान्यता रसग्रन्थों में मिलती है। (लेखक)

मुश्कदाना (लताकस्तूरी)

नाम। सं०–लताकस्तूरिका। हिं०, मार०, फा०–मुश्कदाना। बं०, गु०–मुश्कदाना, लताकस्तूरी। म०–कस्तूरीभेंड, मुस्कदाणा। अ०–हब्बुल् मि(मु)मुष्क। अं०–मस्कमैलो सीड्स (*Musk-Mallow Seeds*), मस्क सीड्स (*Musk Seeds*)। ले०–आबेल्मॉस्कुस मॉस्कातुस **Abelmoschus moschatus** *Medic* (पर्याय–हिबिस्कुस आबेल्मास्कुस *Hibiscus abelmoschus Linn.*) संस्कृत एवं लेटिन नाम इसके क्षुपके हैं। इसके बीजों से कस्तूरी की गन्ध आती है, अतएव विभिन्न नाम इसके विशेषण से रखे गये हैं। लेटिननाम का 'जातीयनाम (*Specific name*) '*abelmoschus*' इसके अरबी नाम(<हब्बुल्-मुष्क (जिसका अर्थ 'कस्तूरीघटितगोलियों के समानचोज अर्थात् बीज' होता है) से अथवा 'अबुलमुष्क (अर्थात् मुष्क या कस्तूरीकाजनक)' से व्युत्पन्न है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक-कुल । कार्पास-कुल (माल्वासे (*Malvaceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष के उष्णतर प्रदेश विशेषतः बंगाल और मद्रास ।

संक्षिप्त परिचय । 'लताकस्तूरी' का क्षुप भी देखने में भिण्डी की भाँति होता है, और बरसात में उगता तथा जाड़ों में फूलता-फलता है । पत्तियाँ बहुरूपिक, एवं खण्डयुक्त,नीचे के पत्ते अपेक्षाकृत अधिक चौड़े लट्वाकार या हृदयाकार तथा ऊपर के पत्ते अधिक कटे हुए (*hastate*) होते हैं । खण्ड आयताकार-भालाकार, छोटे या लम्बे नोंकवाले तथा दन्तुरधारयुक्त होते हैं । सभी पत्तियाँ सघन रोमावृत होती हैं । पुष्प ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० (३ इंच से ४ इंच) लम्बे व्यास पीतवर्ण के केन्द्र में नीलारुणवर्णयुक्त तथा शाखाग्रों पर लगते हैं । फल आपाततः देखने में भिण्डी के समान, किन्तु अपेक्षाकृत छोटे (२ इंच से ३ इंच लम्बे) रूपरेखा में लट्वाकार तथा छोटी नोकवाले होते हैं । बीज वृक्काकार चपटे एवं कृष्णवर्ण के होते हैं, जिनको मसलने पर कस्तूरी-जैसी सुगन्धि आती है ।

उपयोगी अंग । (१) बीज (मुश्कदाना), पत्र एवं मूल ।

मात्रा । बीजचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा ।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–'मुश्कदाना' के छोटे-छोटे एवं किंचित् चपटे तथा वृक्काकृति बीज होते हैं । बाह्यतल पर अनेक, सूक्ष्म एवं समानान्तरक्रम से स्थित रेखाएँ होती हैं । बीजों में नाभि अर्थात् वृन्तक या हाइलम् (*hilum*) का चिह्न स्पष्ट होता है । रंग में मुश्कदाना भिण्डी के बीजोंजैसा खाकी स्याहीमायल होता है, और इसके अन्दर चिकना सुगन्धितमज्ज (गूदा) निकलता है । बीज को मसलने से कस्तूरीवत् सुगन्धि आती है, और मुँह में रखकर चबाने से मुँह स्वच्छ और सुगन्धित होता है, तथा खाने पर रुचि उत्पन्न होती है । कहीं-कहीं इसमें बाकुची बीजों का मिलावट किया जाता है, किन्तु गन्ध से दोनों को पहचाना जासकता है ।

संग्रह एवं संरक्षण–शुष्क एवं पक्वबीजों को ग्रहण कर अच्छी तरह मुखबन्द शीशियों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए ।

संगठन–(१) स्थिरतैल (*Fixed Oil*) हरिताभ पीतवर्ण का जो हवा में खुला रहने से धीरे-धीरे जम जाता है, (२) क्रिस्टलीय स्वरूप का घनतत्व (*Solid crytalline matter*)–जो ऐल्कोहल् के गरम विलयन से प्राप्त होता है । ९५%फा० तापक्रम पर यह क्रिस्टल्स पुनः पिघल जाते हैं । (३) सुगन्धितत्त्व (*Odorous Matter*) जो हल्के हरेरंग के द्रव के रूप में प्राप्त होता है और उसमें कस्तूरी-जैसी तीव्र सुगन्धि पायी जाती है । यह उड़नशील नहीं होता । (४) गोंदीयतत्त्व (*Gum*), एल्ब्युमिन एवं रेजिन ।

वीर्यकालावधि । १–२ वर्ष तक ।

स्वभाव । गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण । रस–तिक्त, मधुर, कटु । विपाक–कटु । वीर्य–शीत । प्रधानकर्म–मुखदुर्गन्धनाशक, रोचन, दीपन, कफपित्तशामक, मूत्रल, वृष्य, मुक्रल एवं आक्षेपहर आदि ।

वक्तव्य–'लताकस्तूरिका' का उल्लेख चरकसंहिता एवं तत्पूर्वकालिक साहित्य में तो नहीं है, पर सुश्रुतसंहिता (सू० अ० ४६) एवं परवर्तीसाहित्य एवं मध्ययुगीन निघण्टुओं में सर्वत्र है । 'मुश्कदाना' आदि इसके 'बीजों' के लिए प्रयुक्त व्यावसायिक नामरूपान्तर हैं । 'लताकस्तूरिका' की शब्दसंरचना को देखने से शास्त्रीय-स्वरूप देने के लिए उक्त संज्ञा बनाई गयी प्रतीत होती है । अतः असम्भावित नहीं है, कि क्षेत्रीय साधारण जनता में अन्यपूर्वकालिक नाम भी प्रचलित रहे हों । इस दिशा में उल्लेखनीय है, कि उत्तरप्रदेश के पूर्वाञ्चल में गोरखपुर की तराई में ग्रामीण इसे 'दुल्ला' नाम से जानते हैं । पंजाब में भी इसे 'देवल **Deola**' या 'दुल **dula**' कहते हैं (**Field Notes** *of Prof. R. S. Singh*) । दोनों संज्ञायें एक ही अनुबन्ध की कड़ियों की भाँति प्रतीत होती हैं । बहुत सम्भव है उक्त वनस्पति तथा नाम का विसरण उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्तीय क्षेत्र से तत्सम्बन्धित आदिम जनजातियों के साथ पूर्वीक्षेत्र में हुआ हो । (लेखक)

मुसली, स्याह (तालमूली)

नाम । सं०–तालमूली । हिं०–कृष्णमुसली, कालीमुसली, सियामुसली, मुसलीकन्द । बं०–तालमूली । गु०–कालीमुसली । म०–कालीमुसली । ले०–कुर्कूलीगो ऑर्किओइडेस (**Curculig orchioides** *Gaertn.*) ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक-कुल । तालमूली-कुल (आमारिल्लीडासे : *Amarylliaceae*) ।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में (विशेषतः अनुष्णहिमालय प्रदेश में कुमायूँ से लेकर पूरब की ओर असम तक तथा पश्चिम हिमालय और दक्षिणभारत के पश्चिमी-घाट के जंगलीप्रदेशों में कोंकण से दक्षिण की ओर) इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। इसकी जड़ (मुसलीकन्द) के गोल-गोल काटे हुए टुकड़े बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय—'कालीमुसली' के तालवृक्षाकृति किन्तु अत्यन्त छोटे (३० सें० मी० से ४५ सें० मी० या १ फुट से १½ फुट ऊँचे) पौधे होते हैं, और चौमासे में उगते हैं। प्रत्येक पौधे में ३ से ४ पत्तियाँ होती हैं, जो १५ सें० मी० से ४५ सें०मी० या ६ इञ्च से १८ इञ्चतक लम्बी, १.२५ सें० मी० से २.५ सें०मी० (½ इञ्चसे १ इञ्च तक) चौड़ी, रूपरेखा में रेखाकार या रेखाकार-भालाकार होती हैं। पत्राधार प्रायः कोषमय होता है। बीच से छोटा पुष्पवाहकदण्ड या पुष्पध्वज (*scape*) निकलता है, जिसपर अत्यन्त छोटे-छोटे पीलेरंग के पुष्प निकलते हैं। फल १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च तक लम्बे होते हैं, जिनमें १ से ४ चमकीले कालेरंग के बीज निकलते हैं। मूल-स्तम्भ सीधा और मोटा होता है। पुरानी चक्राकार पत्र-सन्धियों के कारण यह तालवृक्ष के स्कन्ध जैसा मालूम होता है। इसकी सन्धियों से सूत्राकार परन्तु मांसल उपमूल निकले रहते हैं। औषधि में जड़ों का व्यवहार 'मुसलीकन्द' के नाम से होता है।

उपयोगी अंग—कंद (जड़)।

मात्रा। ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—'मुसलीस्याह' के गोल-गोल काटे हुए टुकड़े व्यास में १.२५ सें० मी० या आधे इञ्चतक होते हैं। बाहर से देखने में मूलत्वक् कृष्णाभ-भूरेरंग की होती है। अन्दर का भाग सफेद या मटमैलेरंग का होता है। किन्हीं-किन्हीं टुकड़ों पर टेढ़े-मेढ़े झुर्रीदार उपमूल भी लगे होते हैं। स्वाद फीका-सा लवाबदार होता है। मुख में चाबने पर एलुएकी-सी हल्कीगंध आती है, तथा स्वाद किंचित् तिक्त-सा होता है। ताजी जड़ का अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटातल ठोस तथा सफेदरंग का होता है, जिसमें अनेक सूक्ष्म छिद्र से होते हैं। इसका केन्द्रस्थ (*central portion*) एवं परिसरीय (*cortical*) दोनों ही भाग मुख्यतः तनुभित्तिक ऊति (*parenchymatous tissue*) के बने होते हैं, जिनमें स्टार्च के छोटे-छोटे कण भरे होते हैं। कहीं-कहीं बड़ी कोशाओं में सूच्याकार क्रिस्टलपुञ्ज भी पाये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—'कालीमुसली' को जाड़ों में संग्रहीत कर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए। संग्रह के लिए प्रायः दो वर्ष पुराने पौधों का कन्द अधिक उपयुक्त समझा जाता है। जड़ों को खोदकर मिट्टी आदि को जल से धोकर साफ कर दिया जाता है, और उपमूलों को काटकर पृथक् कर, दिया जाता है। अब इनके छोटे-छोटे गोल टुकड़े काट कर तागे में पिरोकर छाया में खूँटी पर टाँग देते हैं। सूखने पर यही बाजारों को प्रेषित किये जाते हैं।

संगठन—स्याहमुसली कंद में राल, लबाब, वसा, स्टार्च, किंचित् कषाय द्रव्य और सुखाये हुए कंद की राख में चूना होता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव—इसके गुण-कर्म तथा प्रयोग बहुत-कुछ सफेद मुसली की भाँति होते हैं। यह बाजीकर, शुक्रल और वीर्य पुष्टिकर होती है। कामावसाद और शुक्रमेह में इसके चूर्ण को बराबर चीनी मिलाकर खिलाते हैं। कालीमुसली बाजीकर एवं शुक्रमेहघ्न कल्पों (माजून, चूर्ण, पाक आदि) में पड़ती है।

मुसली, सफेद (मुशली)

नाम। सं०—मुशली। हिं०—स(सु) फेद मु(मू) सली। बं०—श्वेतमुषली। म०—सफेत (द) मुसली। गु०—सफेद मुसली, धोली मुसली। अ०, फा०, द०—शकाकुले हिन्दी। ले०—आस्पारागुस आडसेंडेंस (**Asparagus adscendens** *Roxb.*)।

वानस्पतिक-कुल। पलाण्डु-कुल (लीलिआसे : *Liliaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पश्चिमी हिमालय, पंजाब, गुजरात, मध्य-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत। उत्तम सफेदमुसली रतलाम में होती है। मुसली (सफेद भी) सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलती है।

संक्षिप्त परिचय—इसका क्षुप काँटेदार और स्वावलम्बी होता है, परन्तु शाखाएँ झुकी हुई और आरोहणशील होती हैं। प्रधान काण्ड, लम्बा, ऊँचा, मोटा, गोल और चिकना होता है। शाखाएँ भस्मवर्ण, नालीदार और कोणयुक्त होती है। काँटे १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $\frac{3}{4}$) इंच लम्बे, मोटे और सीधे होते हैं। पत्राभासकाण्ड या पर्णाभस्तम्भ (*cladode*) १.२५ सें० मी० या ($\frac{1}{2}$ इञ्च से २ इञ्च) लम्बे, पतले और ६ से २० की संख्या में एक साथ गुच्छबद्ध होते हैं। श्वेत, कन्द सदृश और लम्बगोल मूलों का गुच्छा मूलस्तम्भ से निकला रहता है। इन्हीं मूलों की छाल उतार कर सुखा लेते हैं, जो बाजारों में श्वेत (सफेद) मुसली के नाम से बिकती हैं। पुष्प सफेद तथा छोटे (२.५ मि० मी० से १.२५ मि० मी० या $\frac{1}{10}$ इञ्च से $\frac{1}{20}$ इञ्च व्यास के) तथा फल (*berries*) व्यास में ५ मि० मी० से ८ मि०मी०($\frac{1}{5}$ इञ्च से $\frac{1}{3}$ इञ्च) होते हैं, जिनमें १—१ बीज होता है।

उपयोगी अंग—कंदाकार जड़।

मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजारों में मिलनेवाली सफेद मुसली छिलका उतारकर सुखायी हुई कन्दाकार जड़ें होती हैं, जो ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (२ इंच से $2\frac{1}{2}$ इञ्च) लम्बी, ६.२५ मि० मी० या $\frac{1}{4}$ इंचतक (अधिकतम) मोटी, कड़ी हस्तिदन्तवत् स्वच्छ-श्वेत होती हैं। प्रायः उक्त जड़ें ऐंठी हुई-सी (*twisted*) और तोड़नेपर भंगुर होती हैं। किन्हीं-किन्हीं कन्दों पर पीताभवर्ण का छिलका का भी कुछ भाग लगा होता है। स्वाद में यह फीकी लबाबदार होती हैं, और जल में भिगोने पर फूलती हैं, जिससे देखने में शतावरी-सी मालूम होती हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—किन्हीं-किन्हीं बाजारों में इस कुल की अन्य वनस्पतियों की कन्दाकार जड़ें भी सफेद मुसली के नाम से बिकती हैं :—(१) क्लोरोफीटुम ब्रेविस्कापुम **Chlorohytum breviscapum** *Dalz.* (पर्याय-क्लोरोफी० आरुण्डीनासेउम *Chlorophytum arundinaceum Baker* (*Family*: *Lillaceae*)—इसकी जड़ भी शतावरी की तरह गुच्छाकार होती है, जो रंग में खाकस्तरी होती है, और अपेक्षाकृत सस्ती बिकती हैं। (२) मूसली—दक्खिनीणाला सार्मेन्टोसुस **Asparagus saramentosus** *Linn.* (*Family* : *Liliaceae*)।

संग्रह एवं संरक्षण—सफेद मुसली को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—कन्द में ऐस्पेरेगिन (*Asparagin*), ऐल्ब्युमिन युक्त पदार्थ, लबाब और सेलूलोज (*Cellulose*) और चूर्ण में जलीयसत्व, सेलूलोज, आर्द्रता और भस्म होती है।

वीर्यकालावधि। १ से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर, तिक्त। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। कर्म—वृष्य, शुक्रल, बल्य, बृंहण रसायन आदि। नपुंसकता, शुक्रमेह आदि में प्रयुक्त कल्पों में यह प्रधान उपादान होती है। इक्षुमेह के रोगियों को पथ्यरूप में भी दे सकते हैं।

मुख्ययोग—मुसलीपाक, मुशल्यादियोग, जवारिश-मुसलियैन।

मूर्वा

नाम। सं०—मूर्वा, अतिरसा, गोकर्णी, मोरट (ध०, रा०नि०)। हिं० (मिर्जापुर)—चिन्हारु, जरतोर; (देहरादून)—मरुआबेल। थारु—मारवी, मरुआबेल। खर०—चिटी, सिटी। संथा—कोंगा, सिटकी। अं०—दि राजमहल बो—स्ट्रिंग (*The RajMahal Bow—String*)। लै०—मार्सडेनिआ टेनासिस्सिमा (**Marsdenia tenacissima** *W. & A.*)।

वानस्पतिक-कुल। अर्क-कुल (आस्क्लेपिआडासे : *Asclepiadaceae*)।

प्राप्तिस्थान। हिमालय की तराई में (देहरादून में खैर के जंगलों में) तथा बिहार में चम्पारन, सोमेश्वर क पहाड़ी, राजमहल, पलामु, हजारीबाग आदि जिलोंमें प्रायः शुष्क पर्वतमालाओं में और झाड़ीदार जंगलों में इसकी लताएँ पायी जाती हैं। विन्ध्य के जंगलों में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतस्ततः यह मिलती है। बाजारों में मूर्वामूल के नाम से अन्य औषधियों की जड़ बेची जाती है।

संक्षिप्त-परिचय। 'मरुआबेल' की मोटी एवं मजबूत काण्ड की तथा दूधयुक्त एवं क्षुपस्वभाव की चक्रारोही (*twinning*) लताएँ होती हैं, जिनके शाखाग्र या नवीन भाग मृदुरोमश होते हैं। काण्डत्वक् धूसर, कार्कयुक्त एवं पुरानी शाखाओं पर नालीदार (*deeply furrowed*) होती है। पत्तियाँ १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च) तक लम्बी, ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (३ इंच से ५ इंच) तक चौड़ी, आधार पर फलक गहरा हृद्वत् तथा ताम्बूलाकार दो विच्छेदों वाला (*cordately lobed*), तथा यकायक लम्बाग्र या तीक्ष्णनोकवाली होती हैं। स्पर्श में यह दोनों तलों पर मखमली होती हैं। पर्णवृन्त ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इन्च लम्बा होता है। पुष्प छोटे-छोटे, पीताभहरित वर्ण के तथा हल्की अरुचिकर गंधयुक्त होते हैं, जो सशाख गुच्छकों (*corymbosely branched cymes*) में निकलते हैं। पुष्पागम गर्मियों में तथा फलागम जाड़ों में होता है। फलियाँ (*follicle*) १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च) लम्बी, व्यास में ३ सें० मी० से ३.५ सें० मी० (१.२ इञ्च से १.४ इञ्च), रोमश और आधार से एक तिहाई दूर सबसे अधिक मोटी होती हैं, जिनमें १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च तक लम्बे तथा रूपरेखा में लट्वाकार आयताकार (*ovate-oblong*) बीज होते हैं। फलत्वचा (*pericarp*) काफी मोटी होती है, और इसपर अनुलम्ब दिशा में झुर्रियाँ पड़ी होती (*longitudinally wrinkle*) हैं। मरुआबेल (मूर्वा) की नवीन शाखाओं की त्वचा से सफेद रेशमतुल्य मजबूत रेशे निकलते हैं, जिनसे गोरखा मछली मारने की रस्सियाँ और राजमहल के जंगली धनुष की डोर (मौर्वी) बनाते हैं।

उपयोगी अंग—मूल।

मात्रा। ६ ग्राम से २३ ग्राम या ६ माशा से २ तोला।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—इसी 'कुल' एवं 'प्रजाति' की कतिपय अन्य लताएँ भी स्वरूपतः एवं गुणतः कुछ-कुछ मूर्वा से मिलती-जुलती हैं, और अभावे प्रतिनिधित्व से ग्राह्य होने की पात्रता रखती हैं :—(१) मार्सडेनिआ रोइलियाइ (**Marsdenia roylei** *Wight.*)—इसको भी देहरादून में 'मरुआबेल' और जौनसार में 'खछु' कहते हैं। इसकी फलियाँ ३ इञ्चतक लम्बी तथा व्यास में १ इञ्च से १। इंच तक होती हैं। फलत्वचा पर अनुप्रस्थ दिशा में झुर्रियाँ (*transversely rugose*) पड़ी होती हैं, तथा फलियाँ अग्रपर चोंच की तरह कुछ वक्र होती हैं। इसके काण्डत्वक् से भी मूर्वा की भाँति रेशे निकलते हैं। (२) मोरम अड़ा (**M. hamiltonii** *Wight*)—इसका ऊपरी भाग प्रतिवर्ष सूख जाता है। इसमें भी पुष्प छोटे तथा आभ्यन्तरकोश बाहर से सफेद होता है। (३) लाखन—(ड्रेजेआ वोलूबिलिस **Dregea volubilis** *Benth.* (*Family* : *Asclepiadaceae*)—इसकी लताएँ बंगाल, आसाम तथा दक्षिण भारत में दकन एवं मद्रास में तथा इतस्ततः जंगलों में अन्यत्र भी पायी जाती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक द्रव्य भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मूर्वा के नाम से ग्रहण किये जाते हैं। किन्तु मूर्वा के स्थान में उनका व्यवहार करना उचित नहीं है :—(१) मेरुआ आरेनारिआ **Maerua arenaria** *Hook. f. & Th.* (*Family Capparidaceae*)। सं०—मधुरसा, पीलुपर्णी। (मीर्जापुर) मरहरी। उत्तरप्रदेश में (विशेषतः इटावा के चिकित्सक) इसको मूर्वा के स्थान में व्यवहृत करते हैं। (२) मोरवेल (म०, गु०)। स०—गोपवल्ली, त्रिपर्णी। उरान—गोलरंग। ले०—क्लेमाटिस गौरिआना एवं क्लेमाटिस ट्रीलोबा **Clematis gouriana** *Roxb.* एवं **C. triloba** *Heyne* (*Family* : *Ranunculaceae*)—महाराष्ट्र में मूर्वा के नाम से इन्हीं का व्यवहार होता है (महाराष्ट्रीय मूर्वा)। (३) बंगीय मूर्वा। नागदमन—उ० प्र०। सेंसेवीरिआ राक्सबुर्घिआना **Sansevieria roxburghiana** *Schult.* (*Family* : *Haemodoraceae*)—इसके क्षुप घृतकुमारी की भाँति लगते हैं और सौन्दर्य के लिए गमलों में लगाये जाते हैं। (४) **Chonemorpha macrophylla** *G. Don.* (*Family* : *Apocynaceae*)—इसकी गुल्म स्वभाव की लताएँ होती हैं, जिनकी शाखा-प्रशाखाएँ बहुदिक फैलती हैं तथा आश्रय को लपेटकर ऊपर चढ़ती हैं। शाखाओं को तोड़ने से दूध

CC-0, Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निकलता है। दक्षिण भारत में ट्रावन्कोर-कोचीन में यह बहुतायत से पायी जाती हैं, और वहाँ इसी की जड़ का व्यवहार 'मूर्वामूल' के नाम से किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में मूर्वामूल का संग्रह कर छाया-शुष्क कर लें और मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव—मूर्वा गुरु, सर, रस में तिक्त तथा रक्तविकार, प्रमेह, त्रिदोष, तृषा, हृद्रोग, कण्डू, कुष्ठ तथा ज्वर-नाशक है।

विशेष—मिर्जापुर के जंगली क्षेत्रों में चिन्हारू या जरतोर (**M. tenacissima** *W. & A.*) का प्रयोग विषम-ज्वर (मलेरिया) के लिए कियाजाता है। बिहार के आदिवासियों में इसकी जड़ के कुष्ठ में व्यवहार की परम्परा है।

वक्तव्य—मूर्वा के चिकित्सोपयोगों का भूरिशः उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में मिलता है, जो अपेक्षाकृत चरकसंहिता में अधिकतर है। इससे लक्षित होता है, कि प्राचीन उत्तरपश्चिमी भारतीयसीमाक्षेत्र में यह वनस्पति सुविज्ञात एवं व्यवहारप्रचलित थी। यद्यपि सम्प्रति बाजारों में असली मूर्वा के विनिश्चय एवं उपलब्धि में भ्रान्तिजाल-सा फैला है, किन्तु रज्जुसूत्र-जनक व्यवहारोपयोगी वनस्पति एवं वन्योत्पाद के रूपमें मूर्वा के ज्ञान एवं मान्यता की लेखगत एवं लोकव्यवहारगत अक्षुण्ण परम्परा देखी जाती है, जो आज भी बनवासी आदिम-जनजातियों के क्षेत्र में अवशेषरूप में जीवित है। मूर्वा के काण्ड से अत्यंत दृढ़रेशमी सूत्र प्राप्त होते हैं, जो बहुत दृढ़, चिमड़े एवं नम्य (*elastic*) होते हैं। प्राचीनकाल में जब आयुध के रूप में धनुष का प्रयोग बहुत अधिक किया जाता था, तो मूर्वासूत्रों से बटे रज्जु का प्रयोग धनुष की ज्या (डोरी *bow-string*) के लिये बहुत उपयुक्त समझा जाता तथा बहुशः प्रयुक्त होता था। सम्भवतः ज्या के लिये 'मौर्वी' संज्ञा के अभिधान का आधार भी यही था। कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र (अधिकरण २, अध्याय १७, प्रकरण ३५/७) में मूर्वा का स्पष्टोल्लेख वल्क-वर्ग (*bast-fibre*) में किया है, जिसका प्राचीनकाल के लिए विस्तृत परिमाण में संग्रह किया जाता था। सम्भवतः इसके रज्जु का मुख्य उपयोग धनुष की ज्या के लिए किया जाता था। मूर्वा के एतद्रूपिक ज्ञान एवं व्यवहार-प्रचलन का इतिहास अष्टाध्यायी में मिलनेवाले मूर्वा सम्बन्धी साक्ष्यों से प्राचीनतर हो जाता है। लगता है मूर्वा के सूत्रोपयोगी एवं चिकित्सोपयोगी मान्यताओं एवं व्यवहारप्रचलन की परम्परा भारत की उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्तीय आदिम-जनजातियों में अतिप्राचीनकाल से थी, जिसका अवशेष आज भी विन्ध्यस्थली के आदिमजनक्षेत्रों में मिलता है। आधुनिक काल में त्रिवृत् (निशोथ) के श्वेत/कृष्ण आदि रंगभेदों के भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं को लेकर 'मूर्वा' का संग्रह एवं व्यापार विनिमय निशोथ के नाम पर होने लगा है, जिसका परिणाम यह हुआ है, कि मूर्वा के ज्ञान एवं उपलब्धि का अभाव न होते हुए भी आज मूर्वा का विनिश्चय भ्रान्तिपूर्ण तथा बाजारों में इसकी उपलब्धि अभावग्रस्त हो गयी है। (लेखक)

मूली (मूलक)

नाम। सं०—मूलक। हिं०—मूली, मुरई, मूरा। ब०—मूला। म०—मुला। गु०—मूलो। पं०—मुरि। फा०—तुर्ब। अ०—फुज्ल, फुजल। अं०—रैडिस (*Radish*) ले०—राफानुस सातीवुस (**Raphanus sativus** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। सर्षप-कुल (क्रूसीफ़ेर : *Cruciferae*)।

प्राप्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष में मूली की खेती की जाती है। 'कच्ची मूली' सर्वत्र तरकारी बाजारों में बिकती है तथा इसके 'बीज' पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। मूली के क्षुप आपाततः देखने में सरसों जैसे होते हैं। यह दो प्रकार की होती है—एक देशी मूली (लघुमूलक या चाणक्यमूलक) दूसरी 'नेवार मूली' (नेपालमूलक)। छोटीमूली में भी एक में कुछ-कुछ शलगम से मिलते-जुलते रूपरेखा के तथा रक्ताभ कन्द लगते हैं। नेवारमूली में पतली मूली की अपेक्षा तीक्ष्णता बहुतकम पायी जाती है, और इसका कन्द भी हाँथी दाँत- जैसे काफी मोटे और लम्बे होते हैं। उत्तरप्रदेश में जौनपुर में वह काफी बोयी जाती है। इसका अचार-मुरब्बा भी बनाते हैं। औषधीय दृष्टि से

Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पतली मूली ही अधिक उपयोगी होती हैं। इनमें सरसों सदृश किन्तु उससे कुछ मोटी २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बी फलियाँ लगती हैं, जिनके पकने पर सरसों-जैसे, किन्तु बड़े और रक्ताभ बीज निकलते हैं। कोमल फलियों का भी शाक खाया जाता है। मूली को जला कर बनाया हुआ क्षार (मूलक क्षार) एवं बीजों का व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोग अंग—कद या मूल (मूली), पत्र, बीज एवं क्षार मूलक-क्षार या मूलीखार)।

मात्रा। बीजचूर्ण--१ ग्राम से ३ ग्राम (वमनार्थ ६ ग्राम) या १ माशा से ३ माशा (वमनार्थ ६ माशा)।

पत्रस्वरस--२ तोला से ४ तोला।

क्वाथार्थ शुष्कमूलक--६ ग्राम।

क्षार--०.५ ग्राम से १.५ ग्राम या ४ रत्ती से १॥ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण--शुष्क पक्व फलियों से बीजों को प्राप्त कर, मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखना चाहिए। प्रौढ़ कन्दों के गोल-गोल कतरेनुमा टुकड़े काट कर छायाशुष्क कर लें और मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

संगठन--मूली के 'बीज' एवं 'मूल' में एक अनुत्पत्तैल तथा एक उत्पत् या उड़नशीलतेल पाया जाता है, जो राई के तेल के समान होता है। यह रंगरहित तथा स्वाद में मूली के समान होता है। इसमें गंधक एवं फास्फोरिक एसिड पाया जाता है। कन्दों में ऐल्ब्युमिनायड्स, कार्बोहाइड्रेट तथा क्षार आदि तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि। बीज--१ वर्ष।

स्वभाव। गुण--लघु (लघुमूलक), गुरु (बृहत् मूलक), तीक्ष्ण। रस—कटु। विपाक--कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—लघु मूलक त्रिदोषहर, किन्तु बृहत् मूलक त्रिदोषकर होता है, रोचन, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, भेदन, यकृत्प्लीहा-शोथहर, कफनिःसारक, कण्ठ्य, काम-श्वसाहर, मूत्रल, अश्मरीभेदन, आर्त्तवजनन आदि। यूनानीमतानुसार मूली पहले दर्जे में उष्ण एवं दूसरे दर्जे में रूक्ष होती है। मूली में दो वीर्य (जौहर) एक दूसरे के विपरीत पाये जाते हैं। एक वीर्य पार्थिव है, जो सान्द्र (गलीज) और चिरपाकी होता है, और दूसरा उष्ण एवं प्रवाही (लतीफ) होता है। इसी वीर्य के आधार पर मूली तारल्यजनन, पाचन, वातानुलोमन, मूत्रल एवं प्लीहाशोथ विलयन है। जब इसको भोजन के बाद खाया जाता है, तब यह उसको शीघ्र पचाकर भूख लगाती है, किन्तु अपने पार्थिव वीर्य के कारण स्वयं देर में पचती है। यही कारण है, कि भोजन पचजाने पर भी पीछे तक डकारें आती रहती हैं, जिनमें मूली की गंध आती है। बीज-तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होते हैं। बहिः प्रयोग से मूली के बीज लेखन, और आन्तरिक प्रयोग से वामक, मूत्रल, वातानुलोमन, मूत्रार्तवजनन एवं वातविलयन होते हैं। अहितकर--आकुलता एवं वातविलयन होते हैं। अहितकर=आकुलता एवं उत्क्लेशकारक। निवारक—नमक, जोरा, मधु,। मूलक—क्षार पाचक एवं मूत्रल होता है।

मुख्य योग—शुष्कमूलाद्यघृत, शुष्कमूलाद्यतैल, रोग़न-तुर्ब, सफ़ूफ़तुर्ब।

मेथी (मेथिका)

नाम। सं०—मेथिका, पीतबीजा। हिं०, द०, म०, गु० बं०—मेथी। प०—मेथरी, मेथरे। अ०—हुल्बः। फा०—शम्लीत, शम्लीज। अं०—फेनुग्रीक (*Fenu Greek*)। ले०—ट्रीगोनेल्ला फ़ीनुम-ग्रीकुम (**Trigonella foenum-graecum** *Linn.*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (*Papilionacee*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तरी अफरीका और भारत। समस्तभारतवर्ष में मेथीबीजों के लिए कृषकलोग लम्बे परिमाण में इसकी खेती करते हैं, तथा 'पत्रशाक' (कोमल पौधों) के लिए तरकारी बोने वाले भी इसे लगाते हैं। कोमलपौधे तरकारीबाजार में तथा पक्वबीज बाजारों में बिकते हैं।

संक्षिप्त परिचय—मेथी के एकवर्षायु, छोटे, खड़ेक्षुप होते हैं। यह जाड़े की फसल के साथ बोई जाती है। पत्रक १.८७५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ¾ इंच से १ इंच लम्बे, अभिप्रासवत्-आयताकार (*oblanceolate-oblong*) होते हैं। पुष्प अवृन्त तथा पत्रकोणों में एक साथ १-१ या २-२ निकलते हैं। फली ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इंच से ३ इञ्च लम्बी अग्र पर कुछ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चोंचदार तथा कभी हसियानुमा टेढ़ी होती है, जिसमें १० से २० तक पीले बीज निकलते हैं। औषधि में इन्हीं बीजों का व्यवहार होता है। मेथी के ताजे पौधे को मसलकर सूंघने से इसकी बीज-जैसी सुगन्धि आती है।

उपयोगी अंग। बीज (औषध्यर्थ एवं मसाले में डालने के लिए) तथा पत्र (शाकार्थ)।

मात्रा। ३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—मेथी की फली हसिया के आकार की तथा ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० या ३ इञ्च से ४ इञ्च लम्बी होती है, जो कुछ चपटी होती है, तथा अग्र नुकीला होता है। प्रत्येक फली में १० से २० तक पीले या पीताभ-भूरेरंग के चतुष्कोणाकार (*rhomboidal*) बीज होते हैं। उक्त बीज ३.१२५ मि० मी० या $\frac{1}{8}$ इञ्च तक लम्बे और चपटे होते हैं। नुकीले किनारे पर नाभि (*hilum*) होती है। नाभि से एक खातोदर रेखा आती है, जो बीजपृष्ठ को दो असमान भागों में विभक्त करती है। बीज का पृष्ठतल कुछ ऊबड़-खाबड़ होता है। बीजत्वक् (*testa*) दो स्तरों का होता है, जिनमें अन्तःस्तर लुआबी होता है, तथा बीज द्विदल एवं मूलांकुर (*radicle*) को परिवेष्टित करता है। बीज-द्विदल तथा स्नेहमय होता है। मुख में चाबने पर मेथी के बीज स्वाद में तिक्त, तैलीय एवं सुगन्धित होते हैं। मेथिका-पत्र भी स्वाद में तिक्त होते हैं, किन्तु इनमें एक मनोरम गन्ध आती है।

संग्रह एवं संरक्षण—बीजों को मुखबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—बीजावरण के कोषों में कषाय-द्रव्य तथा द्विदलों में एक पीतरंजनद्रव्य, एक तिक्त एवं गन्धयुक्त वसामय तैल (६%), राल, लबाब तथा कोलीन एवं ट्रिगोनेलीन नामक दो क्षारोद पाये जाते हैं। बीजों के भस्म में काफी मात्रा में फास्फोरिक एसिड पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। मेथी कटुरसवाली, उष्णवीर्य तथा शोथ-विलयन, रोचन, दीपन, वात-कफनाशक, ज्वरघ्न, बल्य, स्निग्ध, नाड़ीबल्य, आर्तवजनन एवं आर्तवशूलहर होती है। प्रसूतास्त्रियों को मेथीके बीज के साथ सुगन्धि-द्रव्य मिलाकर उसके लड्डू बना कर खिलाते हैं। इससे भूख लगती तथा दस्त और आर्तव साथ होता है। मेथीकी पत्ती शीतल, पित्तशामक, पाचन, शोथघ्न और वातानुलोमन होती है। पित्तप्रकृति के लोगों के कब्ज में मेथी का साग खिलाने से विबन्ध दूर होता है। व्रणशोथ में मेथी की पत्ती अथवा बीज का लेप करने से शोथविलयन होता है।

विशेष—मेथिकाबीज 'चतुर्बीज (भावप्रकाश)' का एक उपादान है।

मुख्य योग—मदनमोदक, कामेश्वरमोदक (रसरत्न-समुच्चय)।

वक्तव्य—मेथी (मेथिका) का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में नहीं मिलता। वनस्पति के नाम के रूप में प्रत्यक्ष एवं स्पष्टोल्लेख तो पूर्ववर्ती साहित्य में भी नहीं है, तथापि 'मेथि' पद प्राचीन वैदिकसाहित्य काल (ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथब्राह्मण आदि) से मिलता है। वैदिक-साहित्य में उक्त पद से 'यज्ञमण्डप का स्तम्भ (*pole*)' अभिप्रेत है, जिसमें अश्व आदि यज्ञ के बध्यपशु बाँधे जाते थे। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, कि पाणिनि के अष्टाध्यायी में 'षिद्गौरादिगणपाठ (४.१.४१)' में 'मेथ' पद का भी परिगणन है। और सूत्र के आदेशानुसार 'मेथ' में ङीष् प्रत्यय' लगाने से (मेथ + ङीष्> मेथी) स्त्रीलिंगान्त 'मेथी' पद की निष्पत्ति की सिद्धि होती है। इससे लक्षित होता है कि 'मेथ, मेथि (वैदिक)' पद प्राचीन इण्डो-इरानियन समाज में प्रचलित थे। और असम्भावित नहीं है, कि उक्त पाणिनीय 'मेथी' का अभिप्रेत कोई वनस्पति रही हो (*On the Identity and Critical Appraisal of Rare Ancient Indian Plants—Ayurvedic Samhitas to-date—Dr. B. N. Singh*)। किन्तु वह प्राचीन ईरानी क्षेत्र में ही सीमित रही होगी, क्योंकि वनस्पति नाम के रूप में मेथी, मेथिका संहितापरवर्ती-साहित्य में 'अमर-कोश' तक उल्लिखित नहीं है। किन्तु मध्यकालीन आयुर्वेदीयनिघण्टु, रसग्रन्थ एवं तत्परवर्ती कालीन साहित्य एवं परम्परा में अद्यावधि 'मेथी' सर्वत्र सुविज्ञात एवं व्यवहार प्रचलित है। औषधीय प्रयोगों के अतिरिक्त इसके बीज एवं पत्रसर्वत्र भारतवर्ष में नानाविध दैनिक घरेलू व्यवहार में प्रचलित हैं। (लेखक)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेंहदी (मदयन्तिका)

नाम। सं०—मदयन्तिका। हिं०—मेंहदी, मेहँदी, मेहदी। बं०—मेंदी, मेउदी। म०, गु०—मेंदी। मा०—मेंहदी। अ०—हिन्ना। फा—हिना। अं०—दि हेना प्लॉट (*The Henna-Plant*)। ले०—लॉसोनिआ इनेर्मिस **Lawsonia inermis** *Linn.* (पर्याय—*L. alba Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। धातकी-कुल (*Lythraceae*)।

प्राप्तिस्थान—सर्वत्र भारतवर्ष में बगीचों, मैदानों तथा खेतों के किनारे झाड़ीके रूप में इसे लगाते हैं। वास्तव में मेंहदी ईरान का आदिवासी है। अब मिस्र, अफ्रीका, अरब तथा भारत का भी वासी हो गयी है। कारोमंडलतटीय-क्षेत्र में यह जंगली रूप से पायी जाती है।

संक्षिप्त-परिचय। मेंहदी के गुल्म होते हैं, जिनकी प्रशाखाएँ कभी-कभी नुकीले अग्रवाली (*spinescent*) होती हैं। पत्तियाँ आपाततः देखने में सनाय की पत्तियों की भाँति तथा अभिमुखक्रम से स्थित, १.७५ सें० मी० से २.५ सें० मी० ($\frac{7}{10}$ इञ्च से १ इञ्च) तक लम्बी, अण्डाकार अथवा आधार एवं अग्र की ओर क्रमशः कम चौड़ी (*acute*), परन्तु कोई-कोई कुण्ठिताग्र (*obtuse*), सरलधारवाली, चर्मिल एवं बहुत छोटे वृन्तयुक्त होती हैं। पुष्प छोटे (व्यास में ०.५ सें० मी० या $\frac{1}{5}$ इञ्च), हरिताभश्वेतवर्ण के तथा अत्यन्त सुगन्धित होते हैं, जो सशाख शाखाग्रच मञ्जरियों (*cymosely branched terminal panicles*) में निकलते हैं। बाह्यकोष ४ खण्डोंवाला होता है, जो २.५ मि० मी० या $\frac{1}{10}$ इंच लम्बे तथा रूपरेखा में लट्वाकार एवं स्थायी (*persistent*) होते हैं। बाह्यकोषनलिका (*calyx-tube*) बहुत छोटी होती है। दलपत्र संख्या में ४ तथा कुछ सिकुड़े हुए (*wrinkled*) होते हैं। पुंकेशर संख्या में ८ होते हैं, जो दलपत्रों के बीच-बीच में एक-एक साथ दो-दो करके चार युग्मों में होते हैं। कुक्षिवृन्त अपेक्षाकृत बड़ा तथा डिम्बाशय चार-कोष्ठीय होता है, जिसमें अनेक बीजीभव (*ovules*) होते हैं, जो अक्षलग्न (*axile*) होते हैं। फल (*capsule*) मटर की तरह गोलाकार (व्यास में ०.५ सें० मी० या $\frac{1}{5}$ इञ्च) होते हैं। बीज छोटे-छोटे तथा कोणाकार (*angular*) होते हैं। मेंहदी में प्रायः सालभर पुष्प-फल लगते रहते हैं। पुष्पों से 'इत्र' प्राप्त किया जाता है, जिसे 'हिना' कहते हैं। पत्तियों को जल में पीसकर स्त्रियाँ हाथ-पैर के तलवों में लगाती हैं, जिससे उनकी रंगत लाल हो जाती है। पत्र, छाल, पुष्प एवं बीज आदि का व्यवहार औषध में भी होता है।

उपयोगी अंग—पत्र, पुष्प, बीज।

मात्रा। बीजचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। स्वरस—६ ग्राम से ११.६ ग्राम या ६ माशा से १ तोला। पत्र—(केशरञ्जकके रूपमें) आवश्यकतानुसार।

संग्रह एवं संरक्षण—पत्र एवं पुष्प प्रायः ताजे प्राप्त किये जा सकते हैं। सूखीपत्तियों एवं बीजों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। बाजारों में मिलने वाली सूखी पत्तियों में समूची तथा टूटी दोनों प्रकार की पत्तियाँ होती हैं। तथा इनमें पतले काण्ड के छोटे-छोटे टुकड़े एवं शुष्क फल भी मिले होते हैं। पत्तियाँ भूरे या हरिताभ भूरे या मटमैले हरेरंग की होती हैं। रूपरेखा में यह भालाकार अथवा अंडाकार तथा अग्रपर लोमयुक्त और सरलधारवाली और १ इंच से २ इंच लम्बी, $\frac{3}{4}$ इञ्च से $\frac{3}{8}$ इञ्च तक चौड़ी होती हैं। इनमें चाय-जैसी हल्की गंध होती है तथा स्वाद में कुछ मधुर एवं लुआबी होती हैं। फल छोटे-छोटे गोल एवं भूरेरंग के होते हैं, जिनमें भूरेरंग के छोटे-छोटे त्रिकोणाकार बीज होते हैं। पत्तियों का जलीयक्वाथ नारंगभूरेरंग का होता हैं, जो क्षार के सम्पर्क से और भी गाढ़ा हो जाता है। पत्तियों से कम से कम २५% जलीयसत्व प्राप्त होता है, तथा अम्ल में अघुलनशील भस्म अधिकतम ४% तक मिलता है।

संगठन। पत्र में एक रंजकद्रव्य (१२% से १५%), टैनिक एसिड (हेन्नो-टैनिक एसिड *Henno-tannic Acid*) तथा एक जैतूनी हरेरंग का ईथर एवं ऐल्कोहल में विलेय राल (रेजिन) पाया जाता है। पुष्पों में एक सुगन्धिततेल (इत्र) पाया जाता है, जिसे रोग़न या

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'इत्र हिना' कहते हैं। बीजों में भी एक प्रकार का तेल पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। बीज–१ वर्ष। पत्र–३ माह से ६ माह।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। कर्म–कफपित्तशामक। पत्र–लेप रूप में स्थानिक प्रयोग से वेदनास्थापन, दाहप्रशमन, केश्य एवं केशरञ्जक, वर्ण्य, शोथहर, कुष्ठघ्न तथा व्रणशोधन एवं रोपण होते हैं और आभ्यन्तर प्रभाव से यकृदुत्तेजक होते हैं। पुष्प–मेध्य, निद्राजनन, हृद्य, रक्तप्रसादन, रक्तस्तम्भन, शोथहर, एवं ज्वरघ्न। बीज–स्तम्भक एवं अतिसार–प्रवाहिका नाशक हैं। यूनानीमतानुसार मेहदी शीत और उष्ण इन उभय वीर्यों का यौगिक है। इनमें उष्ण वीर्य प्रधान है। किन्तु शीतवीर्य की शक्ति बहुत शीघ्र प्रगट होती है, इसीलिए इसकी प्रकृति दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष वर्णन की जाती है।

वक्तव्य–मदयन्तिका/मदयन्ती का सम्बन्ध ईरानी क्षेत्र से अतिप्राचीनकाल से है, जहाँ मूलतः इस संज्ञा से मेंहदी जाति की 'अन्य सुगन्धित-प्रजाति' अभिप्रेत है। अथर्ववेदोक्त 'मदावती' (अथर्व० ६.१६, २) का विनिश्चय मैने उक्त वनस्पति से ही किया है (**On the Identity and Critical Appraisal of the Vedic Flora**)। आपाततः स्वरूप में मिलती-जुलती तथा पुष्पों के सुगंधित होने के कारण भारतीय परम्परा में 'मदयन्तिका' संज्ञा का प्रयोग मेंहदी के लिए होने लगा। किन्तु मेंहदी का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण अन्य उपयोग जो अतिप्राचीनकाल से आ रहा है, वह है इसके पत्रों का केशरञ्जन (खेजाब) तथा स्त्रियों में प्रसाधन हेतु नखरञ्जन एवं हस्त-पाद तलरञ्जन आदि के लिए उपयोग। भारत में मेंहदी का प्रसार भी उत्तर-पश्चिमी भारतीयसीमा तथा तत्संलग्नक्षेत्र से होकर ईरान से हुआ है। उल्लेखनीय है, कि उत्तरपश्चिमी भारतीय सीमा तथा तत्संलग्नक्षेत्र (अधुना अफगानिस्तान-पाकिस्तान) में मेंहदी के उक्त विशिष्ट उपयोगों की मान्यता अतिप्राचीन काल से है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'नखरजनी' का परिगणन 'हरीतक्यादिगण पाठ' में किया है, जो इसका अतिप्राचीनतम लेखबद्ध साक्ष्य है। मदयन्ती का उल्लेख, जिसमें 'मेंहदी' ही अभिप्रेत है, नावनीतक (अ० १०/२२) में 'केशरञ्जनयोग (द्वितीय त्रिफलाद्यतैल' में है। संहिताओं के मध्ययुगीन टीकाकारों ने मदयन्ती/मदयन्तिका का विनिश्चय विभिन्न सुगन्धितपुष्पवर्गीय वनस्पतियों से किया है। किन्तु सुश्रुतसंहिता के विद्वान टीकाकार एवं बनौषधि-विशेषज्ञ आचार्य 'डल्हण' का दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट है तथा तद्गत सूचना तत्कालीन भारत में मेंहदी के व्यवहार प्रचार का भी साक्ष्य देती है। 'मदयन्ती मेन्दिका नखरञ्जनी (ङ)।' मदयन्तिका 'मेंदी' इति ळोके, यस्याः पिष्टैः पत्रैर्नखानां रागं स्त्रिय उत्पादयन्ति' (सु० चि० २५।४३ पर डल्हण टीका)। केशरञ्जन तथा नखरञ्जन आदि के प्रचलन का प्रसार ईरानी इस्लामी नवागतों द्वारा हुआ। अतः उनके विसरणक्षेत्र का अनुगमन करते हुये आज भी राजस्थान, गुजरात, हैदराबाद आदि में मेंहदी के सूखेपत्तों के चूर्ण का पैकेट उक्त क्षेत्रों में सर्वत्र पंसारियों तथा प्रसाधन के दूकानदारों के यहाँ मिलते हैं। पत्तियों का उत्पादन–संग्रहादि भी व्यावसायिकस्तरपर किया जाता है। 'मदयन्तिका' के रञ्जकगुण की मान्यता रसशास्त्रीय परम्परा में भी देखी जाती है, जहाँ (रसार्णव, पटल ४।३९) इसका समावेश 'पीतवर्ग' में किया गया है। इस सन्दर्भ में मदयन्तिका से 'मेंहदी' ही अभिप्रेत है। (लेखक)

मैदा लकड़ी

नाम। हिं०–मैदालकड़ी, मेद (मिर्जापुर)। संथा०–चिउर। माल०–पोरजो, पोजो। (देहरादून)–चंदना। पं०–मेदासक। मा०–कर्कमेदा, मैदालकड़ी। गु०, म०–मेदा लकड़ी। अ०–मगासे हिंदी। फा०–किल्ज़ ? ले०–लीट्सेआ ग्लूटीनोसा **Litsea glutinosa** (*Lour.*) *Robins.* (पर्याय–*L. chinensis Lam.*; *L. sebifera Pers.*)।

वानस्पतिक-कुल। कर्पूर-कुल (लाउरा से। *Lauraceae*)।

प्राप्तिस्थान–प्रायः समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशीय जंगलों (विशेषतः बंगाल, बिहार, सहारनपुर, दून, मिर्जापुर, मध्यप्रदेश आदि) में मैदा लकड़ी के स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। इसके वृक्ष प्रायः घाटियों तथा छायादार नालों के पास मिलते हैं। इसका संग्रह

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुख्यतः मध्यभारत के जंगलों में किया जाता है, जहाँ से यह अन्य बाजारों को भेजा जाता है। मैदा लकड़ी की छाल (*Inner Bark*) बाजारों में सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलती है।

संक्षिप्त-परिचय। मैदा लकड़ी के मध्यमकद के सदाहरित वृक्ष होते हैं, जिसकी पत्तियाँ मसलकर सूँघने पर गंध युक्त होती हैं, और उनकी रूपरेखा तथा परिमाण में बड़ी भिन्नता पायी जाती है। साधारणतया यह अण्डाकार-प्रासवत् और लम्बाग्र, लगभग चिकनी तथा १.२५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $1\frac{1}{2}$ इञ्च) लम्बेपर्णवृन्तयुक्त होती है। पत्तियों का अधःपृष्ठ धूसरवर्ण का होता है। पुष्प सवृन्त मूर्धज गुच्छों में रहते हैं। फल लगभग गोला तथा व्यास में $\frac{1}{3}$ इञ्च होता है, जो गदाकारवृन्तपर स्थित होता है। ग्रीष्म-वर्षा में पुष्प तथा जाड़ों में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—अन्तस्त्वक् या अन्दर की छाल (*Inner Bark*)।

मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—मैदा लकड़ी की छाल २.५ मि० मी० से ७.५ मि० मी० ($\frac{1}{10}$ इञ्च से $\frac{3}{10}$ इञ्च) तक मोटी, मुलायम, कार्कयुक्त तथा कालेधूसर या गँदले लालरंग की होती है। छाल को जल में भिगोने से काफी चिकनी और पिच्छिल (लुआबी) हो जाती है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की हल्की सुगन्धि पायी जाती है। छाल में भी बल्साँ-जैसी गंध होती है। पुरानी छाल में प्रायः सुगंधि तो नष्ट हो जाती है, किन्तु लुआबी मात्रा ज्योंकी त्यों बनी रहती है। सूक्ष्मदर्शक से परीक्षण करने पर तनुभित्तिक-ऊति (*parenchyma*) में म्युसिलेज-कोशाएँ पायी जाती हैं, तथा इसमें काफीमात्रा में रक्ताभभूरे रंगका रंजक-तत्त्व पाया जाता है। छाल में अश्मकोशाओं (*stone-cells*) का भी स्तर पाया जाता है। भस्म—४.६%। ऐल्कोहल्विलेय सत्व—१४.२।

प्रतिनिधि-द्रव्य एवं मिलावट। मैदा की एक दूसरी जाति लिट्सिआ पॉलीऐन्था (**Litsea polyantha** *Juss.*) भी पायी जाती है, जिसकी छाल भी उपर्युक्त मैदा की ही भाँति प्रयुक्त की जाती है। नाम। मैदा लकड़ी—हिं०, कारका (देहरादून); पोरजो, पोजो (संथा०, को०); कुकुरचीता—(बं०)। वघलाल (माल०, प०), मोटवा (था०)। इसकी पत्तियाँ अध.पृष्ठ पर मुरचई-रंग की होती हैं। इसकी छाल तथा पत्तियों को मसलकर सूंघने से दालचीनी की कुछ गंध आती है। इसके वृक्ष हिमालय की तराई में आसाम तक (३,००० फुट की ऊँचाई तक) तथा बिहार, सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियों एवं कोरोमण्डल में अधिक मिलते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—मैदा की छाल को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—मैदा की छाल में लारोटेटानीन (*Laurotetanine*) नामक क्षारोद पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—स्निग्ध। रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, नाड़ीबल्य, आक्षेपहर, दीपन, ग्राही, कफनिःसारक, बाजीकरण आदि। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण तथा पहले में रूक्ष है। यह विलयन, संग्राही, नाड़ीबलदायक, दीपन, कामोत्तेजक और श्वयथुविलयन, नाड़ियों में बल पड़जाना और कड़ाई के लिए विलीन एवं मृदुकरणार्थ 'गिलअरमनी' या अन्य उपयुक्त द्रव्यों के साथ इसका लेप करते हैं। कटिशूल, आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, आक्षेप, कामावसाद और अस्थिभग्न आदि रोगों में शहद के साथ खिलाते हैं।

मैनफल (मदनफल)

नाम। सं०—मदनफल। हिं०—मैनफल, मदनफल। अ०—जौजुलक़ै। अं०—इमेटिक नट (*Emetic-Nut*)। ले०—रांडिया डूमेटोरुम (**Randia dumetorum** *Lam.*)।

वानस्पतिक-कुल। मंजिष्ठादिकुल (रूबिआसे : *Rubiaceae*)

प्राप्तिस्थान—भारत के पर्वतीयप्रदेश।

संक्षिप्त-परिचय। वृक्ष—गुल्मजातीय, कंटकयुक्त, ऊँचाई साधारण। तना—साधारण, दृढ़। शाखा—तीक्ष्ण, कंटकयुक्त। पत्र—मसृण, हरित, अपामार्ग पत्रों के समान। पुष्प—छोटे, हरिताभ श्वेत, पीताभ। पुष्पकाल—ज्येष्ठ। फल—छोटे, अमरूद के आकार के, पीत किंचित् रक्तिमा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युक्त, अन्तर्भाग चारभागों में विभक्त। बीज–प्रत्येक फल चारबीजयुक्त। बीजवर्ण–कृष्ण।

उपयोगी अंग–फल एवं बीज।

मात्रा। फलचूर्ण–१ ग्राम से २ ग्राम या १ से २ माशा।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–शुष्कमदनफल गोलाकार अथवा अण्डाकार तथा लालिमालिये भूरेरंग का होता है। मैनफल के ताजे फल में ताजे सिझाये हुए चमड़े की भाँति उग्र गंध पायी जाती है। फलकोष्ठ में खाकस्तरी गूदा होता है, जिसमें इतस्ततः बीज बिखरे होते हैं। गूदा स्वाद एवं गन्ध में उत्क्लेशकारी होता है। औसतन एक फल में लगभग १ माशा गूदा प्राप्त होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–पीतवर्ण के पके हुए बड़े फलों को शीत काल में ग्रहण कर कुशा से आवृत कर दें, और ऊपर से गोबर लगा कर धूप में सुखा लें। इसके पश्चात् मटर, उड़द या कुल्थी की राशि में ८ दिवस पर्यन्त रखा रहने दें। इससे फल कोमल और मधुगंधि हो जाते हैं। शुष्क होने पर फल और बीज को निकाल लें। इनको घृत, दधि, मधु अथवा तिल की पीठी में मसल कर सुखाकर धो डालें और पुनः सुखाकर एक स्वच्छ घड़े में मुखबन्द कर औषधिकार्यहेतु रखलें।

संगठन–सैपोनिन, वलेरिक एसिड, राल (रेजिन), मोम तथा कुछ रंजकपदार्थ।

वीर्यकालावधि। १-२ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–मधुर, तिक्त, कषाय, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–वमन।

मुख्ययोग–मदनादि लेप।

विशेष–(१) निघण्टुओं में भ्रम से 'करहाट' को मदनफल का पर्याय माना गया है। किन्तु यह भ्रमपूर्ण ही ज्ञात होता है। करहाट को मदन से भिन्न द्रव्य मानना चाहिए। राजनिघण्टुकार ने (प्रभद्रादि वर्ग में) इसका वर्णन 'महापिण्डी' के नाम से किया है। इसका लेटिन नाम गार्डेनिआ टूर्जिडा (**Gardenia turgida** *Roxb.*) है।

(२) प्राचीन अरबी हकीम रक़ब यमानी (**Trichilia emetica**) को 'जौजुलक़ै' कहते थे। मदनफल को 'जौजुलक़ै हिन्दी' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

(३) चरकोक्त (सू० अ० १) एकोनविंशतिफलिनी द्रव्यों में तथा (सू० अ० २) वमनद्रव्यों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) आरग्वधादि एवं मुष्ककादि तथा ऊर्ध्वभागहरगण के द्रव्यों में 'मदनफल' भी है।

मौलसिरी (बकुल)

नाम। सं०–बकुल, केसर। हिं०–मौलसरी, मौलसिरी। बं०, म०–बकुल। गु०–बोलसरी। पं०, मा०–मौस, बकुल। ले०–मीमूसॉप्स एलेंगी (**Mimusops elengi** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। मधूक-कुल (सापोटासे : *Sapotaceae*)।

प्राप्तिस्थान–पश्चिमीघाट के जंगलों में मौलसिरी के वृक्ष प्रचुरता से मिलते हैं। समस्त भारतवर्ष में बगीचों, सड़कों के किनारे तथा घरों के सामने इसके लगाये हुए वृक्ष इतस्ततः मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। मौलसिरी के सघन चिकने पत्रयुक्त, सदाहरित, एवं मध्यम कद के (कभी-कभी ऊँचे) वृक्ष होते हैं। काण्डस्कन्ध (*trunk*) अपेक्षाकृत छोटा तथा सीधा होता है, जिससे शाखा-प्रशाखाएँ निकलकर चारों ओर फैली रहती हैं, जो सघन पत्रों को धारण करती हैं। पत्तियाँ चिकनी तथा ६.२५ सें० मी० से १० सें० मी० (२½ इञ्च से ४ इञ्च) लम्बी, ३.१२५ सें० मी० से ५ से० मी० (१¼ इञ्च से २ इञ्च) तक चौड़ी एवं रूप-रेखा में अंडाकार तथा अग्रपर यकायक नुकीली, आधार की ओर फलक गोलाकार अथवा उत्तरोत्तर कमचौड़ा (*acute*) होता है। इसके पुष्प सफेदरंग के तथा अत्यंत सुगंधित होते हैं, जो अकेले या मञ्जरियों (*fascicles*) में निकलते हैं। पुष्पवृन्त ६.२५ मि० मी० से २० मि० मी० या ¼ इञ्च से ¾ इञ्च तक लम्बे होते हैं। बाह्यकोष ⅛ इञ्च लम्बा तथा ८ खण्डों से युक्त होता है, जो दो श्रेणियों (४ आभ्यन्तर और ४ बाह्य) में होते हैं। आभ्यन्तर कोष (*corolla*) बाह्यकोश से बड़ा होता है, और २४ खण्डों (*lobes*) से युक्त होता है, जिनमें ८ अन्दर की ओर, और १६ बाहर की पंक्ति में स्थित होते हैं। आभ्यन्तर कोष-नलिका ⅛ इञ्च तक लम्बी तथा खण्ड (*lobes*) ⅓ इंच

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लम्बे और रेखाकार-आयताकार तथा अग्रपर नुकीले होते हैं। पुंकेशर ८ तथा आभ्यन्तरकोष के अन्दर वाले ८ खण्डों के सामने स्थित होते हैं। क्लीबकेशर भी ८ होते हैं, जो प्रगल्भ पुंकेशरों के बीच-बीच में स्थित होते हैं। सूखनेपर भी पुष्पों में सुगंधि बनी रहती है। कुक्षिवृन्त आभ्यन्तरकोष से बड़ा तथा खातोदर (*grooved*) होता है। फल (*berry*) १ इञ्च तक लम्बा, अंडाकार कच्ची अवस्था में हरा, कसैला और दूधयुक्त, पकने पर पीत या नारंग-पीतवर्ण का हो जाता है, जो देखने में कुछ-कुछ खिरनी के फलों की तरह लगता है, और स्वाद में कसैलापन के साथ कुछ मीठा भी हो जाता है। प्रत्येक फल में एक बीज होता है, जो अंडाकार किन्तु चपटा तथा चमकीले भूरेरंग का होता है। ग्रीष्म से शरद्-ऋतु तक इसमें पुष्प रहते हैं, और बाद में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—त्वक्, पुष्प, फल।

मात्रा। छालचूर्ण—२ माशा से ४ माशा।
पुष्पचूर्ण—१ माशा से २ माशा।
छाल (क्वाथार्थ)—६ माशा से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—मौलसिरी की छाल बाहर से खाकस्तरी रंग की तथा अन्तस्तलपर लालरंग की और रेखांकित (*coarsely striated*) होती है। अन्तर्वस्तु (*substance of the bark*) लालरंग की होती है। ताजी छाल को तोड़ने पर खटसे टूटजाती है, तथा टूटेतल पर जगह-जगह सफेद बिन्दु से (*white specks*) पाये जाते हैं। स्वाद में यह तीती, कसैली एवं लुबावी होती है। छाल को जलानेपर ९.४% तक भस्म प्राप्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—मौलसिरी की छाल एवं पुष्पों को मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र—शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—मौलसिरी की छाल में टैनिन (कषाय द्रव्य), रंजक द्रव्य, मोमीय पदार्थ (*Wax*) स्टार्च एवं क्षार या भस्म पायी जाती है। पुष्पों में एक सुगन्धित 'उड़नशीलतेल' पाया जाता है। बीजों में एक स्थिरतैल (*fixed oil*) पाया जाता है। फलमज्जा में शर्करा तथा सैपोनिन पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। छाल एवं पुष्प— १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु। रस—कटु, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—अनुष्ण। कर्म—कफपित्तशामक, दन्तदार्ढ्यकर, ग्राही, रक्तस्तम्भक, स्रावस्तम्भक, शुक्रस्तम्भक, गर्भाशय शैथिल्यहर, ज्वरघ्न, विषघ्न। पुष्प—मस्तिष्कबल्य, सौमनस्यजनन, हृद्य। यूनानीमतानुसार मौलसिरी के पुष्प गरम और खुश्क (रूक्ष) तथा 'फल' एवं 'छाल' शीत एवं रूक्ष हैं। फूल अपने मनोरम सुगंध के कारण मनः प्रसादकर, हृद्य और मेध्य तथा फल और त्वक् संग्राही हैं। निवारण—स्नेह और मधु।

मुख्य योग—बकुलाद्यतैल, बकुलपुष्पार्क।

विशेष—दंतमंजनचूर्ण में डालने के लिए मौलसिरी की छाल एक उत्तमद्रव्य है।

यव—दे०, 'जौ'

यवास—दे०, 'जवासा'

युकेलिप्टस(तैलपर्णी ?)

नाम। सं०—तैलपर्णी ?। हिं०—युकेलिप्टस। ले०—एउकालीप्टुस ग्लोबूलुस (**Eucalyptus globulus** *Labill.*)।

वानस्पतिक-कुल। लवङ्ग-कुल (मीर्टासे : *Myrtaceae*)।

प्राप्तिस्थान—युकेलिप्टस आस्ट्रेलिया का आदिवासी वृक्ष है। दक्षिणभारत में नीलगिरी, अन्नामलाई एवं पालनी की पहाड़ियों पर इसके वृक्ष लगाये गये हैं। शिमला, एवं आसाम में शिलांग में भी काफीमात्रा में इसके वृक्ष लगाये गये हैं। अन्यत्र भी सौन्दर्य के लिए लगाये हुए इसके वृक्ष मिलते हैं। इसकी पत्तियों से आसवन द्वारा एक उड़नशील सुगंधिततैल पाया जाता है, जिसे 'यूकेलिप्टस का तेल' कहते हैं। यह बाजारों में बिकता है।

संक्षिप्त-परिचय। युकेलिप्टस के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष होते हैं, जिनका काण्डस्कन्ध काफी ऊँचा तथा सरल होता है। काण्डत्वक् लम्बे-लम्बे तथा कागज की तरह पतले पर्तों में उतरती है, जिसके बाद वृक्षकाण्ड सर्वत्र नीलाभ चमकीला एवं चिकना मालूम होता है। पत्तियाँ २० सें० मी० से २५ सें० मी० (८ इंच से १० इंच) लम्बी, रूपरेखा में हँसिया की भाँति, सवृन्त तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीलाभचमकीली हरी होती हैं। शाखाग्रों एवं छोटे पौधों की पत्तियाँ अपेक्षाकृत छोटी, रूपरेखा में कुछ हृदयाकार तथा अवृन्त (*sesstile*) होती हैं। पत्तियों में तैलबिंदु पायेजाते हैं, जिससे इनको मसलने पर युकेलिप्टस के तेल की भाँति उग्रसुगन्धि आती है। व्यावसायिक एवं औषधीय 'युकेलिप्टस आयल' इन्हीं पत्तियों से प्राप्त किया जाता है। पुष्प बड़े तथा पत्रकोणों में १–३ तक निकलते हैं, जो प्रायः अवृन्त या छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। फल (*capsule*) १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इंच से १ इञ्च) तक व्यास के, कोणाकार होते हैं, जिनका स्फुटन ढक्कन के रूप में होता है।

उपयोगी अंग। पत्र एवं युकेलिप्टसका तेल।

मात्रा। पत्रचूर्ण–½ ग्राम से ¼ ग्राम या ४ रत्ती से १० रत्ती।

तेल–१ बूँद से ५ बूँद।

बाह्यप्रयोगार्थ–आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–'युकेलिप्टसका तेल' रंगहीन अथवा पीताभवर्ण के द्रव के रूप में होता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की (कुछ-कुछ कर्पूर से मिलती-जुलती) उग्र सुगंधि पायी जाती है। स्वाद में यह तीक्ष्ण (*pungent*) तथा कर्पूरसम होता है, और बाद में मुँह में शैत्य का अनुभव होता है। विलेयता–जल में अत्यल्पमात्रा में घुलता है, किन्तु तेलों, वसा एवं डिहाइड्रेटेड ऐल्कोहल् में अच्छी तरह घुल जाता है। ऐल्कोहल् (८०%) की बराबर मात्रा में भी घुलनशील होता है। आपेक्षिक घनत्व (१५° पर)–०.९०६५ से ०.९१६५। अपवर्तनांक (*Refractive Index at* २०°)–१.४५८० से १.४७०० । आप्टिकल रोटेशन (*Optical Rotaton*)–५° से + १०° ;

संग्रह एवं संरक्षण–युकेलिप्टस तैल को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में तथा ठंढी एवं अंधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन। युकेलिप्टस तेल में मुख्यतः (लगभग ६२%तक) सिनिओल (*Cineol*) पाया जाता है। इसके अतिरिक्त (२४% तक) पाइनीन्स (*Pinenes*) (५% सेस्क्विटर्पीन ऐल्कोहल्स (*Sesquiterpene Alcohols*) तथा अल्पमात्रा में अन्य ऐल्डिहाइड् एवं ऐल्कोहल्स पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। तैल–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त, कषाय। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफवातशामक, जीवाणुवृद्धिरोधक, जीवाणुनाशक, उत्तेजक, वेदनास्थापन, कफघ्न, श्लेष्मपूतिहर, मूत्रजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न। मालिश के लिए प्रयुक्त वायुनाशक तैलों में युकेलिप्टस का तेल भी मिलाया जाता है। पार्श्वशूल, संधिशोथ आदि में सर्षपतैल के साथ युकेलिप्टसका तैल मिलाकर मालिश करने से गम्भीर शोथ का विलयन तथा वेदना का शमन होता है। प्रतिश्याय, जीर्णकास एवं दुर्गन्धित ष्ठीवन में रूमाल पर तैल छिड़ककर सूँघते हैं, अथवा युकेलिप्टस की पत्तियों का फाण्ट (पत्रचूर्ण–१ तोला २० गुने उबलते जल में डालकर, १० मिनट बाद उतार कर छान लें) देते हैं। व्रणशोधनकर्म के लिए इसे पंचगुणतैल आदि योगों में मिलाते हैं।

मुख्य योग–सप्तगुणतैल।

वक्तव्य–'युकेलिप्टस' का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है।

रतनजोत

नाम। हिं०, भा० बाजार–रतनजोत। अ०–शंगार, अबुखुल्सा। अं०–अल्कानेट (*Alkanet*)। अंग्रेजी 'अल्कानेट व्युत्पन्न है अरबी 'अल्खना' से जिसका प्रयोग 'अल्हिना' या मेंहदी (**Lawsonia alba** *Linn.*) के लिए किया जाता था। उक्त नाम इसके लालरंजकगुण के कारण रखा गया है।

वर्णन–'रतनजोत' कुछ औषधियों की जड़ है, जो गहरे लालरंग की होती है। इससे जल और तेल लाल हो जाते हैं। चिकित्सा में इसका प्रधान उपयोग भैषज्यकल्पना में तेलों को लालरंग लाने के लिए किया जाता है। ओनोस्मा हूकेरी (**Onosma hookeri** *Clarke*) तथा आरूएबिआ (**Aruebia**) की कतिपय जातियों की जड़ों का संग्रह अफगानिस्तान में 'रंगे बादशाह' के नाम से किया जाता है। उक्त जड़ भारतीय बाजारों में 'रतनजोत' के नाम से बिकती है। चीन से भी रतनजोत आती है, जो सम्भवतः आल्कान्ना टींक्टोरिया (**Alkanna tinctoria** *Tausch.*) की जड़ें होती हैं। रतनजोत से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्त लालविलयन क्षारों के सम्पर्क से नीलेरंग का हो जाता है। लालजड़ी (जेरानियम वालीचिआनुम **Geranium wallichianum** *Sweet.* (*Family* : *Geraniaceae*))—इसके ३० सें० मी० से १२० सें० मी० या (१ फुटसे ४ फुट) ऊँचे, रोमयुक्त तथा बहुवर्षायु क्षुप होते हैं, जिसका मूलस्तम्भ (*Root-stock*) काफी-स्थूल तथा लाल होता है। यह समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में (२१३३.६ मीटर से ३३३७.७ मीटर या ७,००० फुट से ११,००० फुट की ऊँचाई तक) विशेषतः कुर्रम की घाटी, कश्मीर, शिमला एवं कुमायूँ आदि क्षेत्रों में पायी जाती है। काण्ड स्थूल एवं स्वावलम्बी होता है। पत्तियाँ रूपरेखा में गोलाकार (*orbicular*), व्यास में ५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या २ इञ्च से ५ इञ्च, तथा करतलाकार खण्डित (३ खण्डों से ५ खण्डों युक्त) होती हैं। विच्छेद नुकीले, दन्तुरधार वाले तथा मेखाकार (*wedge-shaped*) होते हैं। अनुपत्र (*stipules*) आयताकार लट्वाकार तथा १.२५ सें०मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) लम्बे होते हैं। पुष्प व्यास में ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) तथा नीलेबैंगनी होते हैं। पुष्पागम जुलाई से सितम्बर तक होता है। इसकी जड़ों से भी लालरंग आजाता है। इसका संग्रह 'रतनजोत' के नाम से किया जाता है।

राई (राजिका)

नाम। सं०—राजिका, आसुरी, तीक्ष्णगन्धा। हिं०, गु०—राई। म०—मोहरी। पं०—ग्रोहर। बं०—राई, सरिषा। सिंध—अहुरि। अं०-इण्डियन मस्टर्ड (*Indian Mustard*)। ले०—ब्रास्सिका जुन्सेआ (**Brassica juncea** *Czern & Coss.*)।

वानस्पतिक-कुल। सर्षप-कुल (क्रूसीफ़ेरे : *Cruciferae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तरी एवं दक्षिणी भारत, विशेषतः मद्रास प्रान्त में इसकी प्रचुरता से खेती की जाती है। राई के बीज पंसारियों के यहाँ तथा गल्ला-बाजारों (*grain markets*) में मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय—राई के एकवर्षायु कोमल काण्डीय या शाकीय क्षुप होते हैं, जो आपाततः देखने में सरसों के पौधों की भाँति लगते हैं, किन्तु इसकी पत्तियाँ सरसों की भाँति काण्डसंसक्त नहीं होतीं। पत्रादि की रूपरेखा में बहुत भिन्नता पायी जाती है। इसके पुष्प हल्के पीले रंग के होते हैं, जो नम्र मञ्जरियों में निकलते हैं। फली सवृन्त तथा ३.१२५ सें० मी० से ५.६२५ सें० मी० (१¼ इञ्च से २¼ इञ्च) लम्बी कुछ-कुछ त्रिपार्श्विक होती है। जिसमें बैंगनी आभा लिये भूरेरंग के छोटे-छोटे बीज निकलते हैं।

उपयोगी-अंग। पक्व शुष्कबीज एवं उनसे प्राप्त तैल।

मात्रा। बीजचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। बाह्यप्रयोग के लिए—आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। राई के बीज भूरेरंग के अथवा कभी पीताभवर्ण के, देखने में सरसों के बीजों की भाँति किन्तु अपेक्षाकृत छोटे (२.०८३ मि० मी० या ¼ इञ्च) होते हैं। इसमें अन्य सेन्द्रिय—अपद्रव्य एवं बीजों का मिलावट अधिकतम ५% होता है, तथा एलिल आइसोथायोसायनेट की मात्रा कम से कम ०.६% होती है। तेल—राई का तेल भूरापन लिये पीलेरंग का अथवा सुनहले पीले रंग का द्रव होता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की गंध पायी जाती है, तथा स्वाद में अत्यन्त तीक्ष्ण (*pungent*) होता है। मिलावट—राई के बीजों में कभी-कभी स्वर्णक्षीरी या भड़भाड़ (**Argemone mexicana** *Linn.* (*Family* : *Papaveraceae*) के बीजों का तथा तेल में स्वर्णक्षीरीबीजों के तेल का मिलावट किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—बीजों को मुखबंद डिब्बों में तथा तेल को अच्छी तरह डाटबंद शीशियों में रखना चाहिए।

संगठन—बीजों में २०%—२५% स्थिरतैल तथा अल्प मात्रा में एक उड़नशील तेल प्राप्त होता है।

वीर्यकालावधि। बीज—२ वर्ष। तैल—कईवर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—शीतकफनाशक। बीजों का लेप शोथहर, लेखन, विदाही, स्फोटजनन एवं वेदना स्थापन, मौखिक सेवन से दीपन-पाचन, शूलहर, कृमिघ्न प्लीहावृद्धिनाशक, अधिक मात्रा में प्रयुक्त करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर वामक, रक्तपित्तकोपक, स्वेदजनन आदि। अहितकर–अधिक सेवन से तृष्णा, दाह आदि पैत्तिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। निवारण–इसके निवारण के लिए पैपित्तशामक मधुर-स्निग्ध द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

राल (शालनिर्यास)

नाम। (१) वृक्ष। सं–शाल, धूपवृक्ष। हिं०–साल, साखू, सखुआ। बं०–शाल। म०, गु०–शालवृक्ष। को०, संथा०–सर्जम्। था०, खर०–सखुवा। ता०–कुंगिलियम्। अं०–शाल ट्री (*Sal–Tree*)। ले०–शोरेआ रोबुस्टा (**Shorea robusta** *Gaertn. f.*)।

(२) शालनिर्यास (राल)। हिं०, द०, म०, गु०–राल। बं०–धुना। अ०–रातीनज, रातियानज, कैकहर। फा०–रतियानः, लाल मोअम्बरी (मग़रबी)। अं०–रेजिन (*Resin*), रोजिन (*Rosin*)। ले०–रेजिना (*Resina*)।

वानस्पतिक-कुल। शाल-कुल (डिप्टेरोकार्पासे : *Dipterocarpaceae*)।

प्राप्तिस्थान–हिमालय की तराई तथा बाहरी पर्वत-श्रेणियों में १५२३ मीटर या ५,००० फुट की ऊँचाई तक शाल के समूहबद्ध वन पाये जाते हैं। पंजाब में अम्बाला जिले से कलेसर के जंगलों से लेकर तराई के किनारे-किनारे पूरब में आसाम तक, संथाल परगना, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, विजिगापट्टम्, पंचमढ़ी एवं कोरोमण्डल आदि में इसके वन मिलते हैं। इसके तने पर चीरा लगाने से प्राप्त 'राल' बाजारों में बिकता है। राल का आयात सिंगापुर आदि से भी होता है।

संक्षिप्त-परिचय। साल के ऊँचे-ऊँचे, सीधे, पर्णपाती वृक्ष होते हैं, किन्तु वृक्ष बिल्कुल पत्ररहित या नग्न कभी नहीं होता। छोटे वृक्ष की छाल तो कालिमालिये भूरे रंग की एवं कोमल किन्तु बड़े और पुराने वृक्षों की काफी मोटी, खुरदरी और अनुलंब दिशा में फटी हुई या दरारयुक्त होती है। पत्तियाँ १० सें० मी० से ३० सें० मी० या ४ इंच से १२ इञ्च लम्बी, ५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० या २ इञ्च से ७ इञ्च चौड़ी, रूपरेखा में लट्वाकार-आयताकार, लम्बाग्र, मजबूत एवं चमड़े की चिकनी एवं चमकदार तथा सरलधार, एकान्तरक्रम से स्थित, आधार की ओर गोलाकार या हृदयाकार, डंठल बेलनाकार (*terete*) एवं १.२५ सें० मी० से २ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $\frac{3}{4}$ इञ्च) लम्बा होता है। पुष्प श्वेताभ–पीत, प्रायः विनाल या छोटे वृन्तवाले (*subsessile*), सफेद रोयें से आवृत, शाखाग्र-लग्न या पत्रकोणोद्भूत गुच्छेदार मञ्जरियों (*large lax terminal or axillary racemose panicle*) में निकलते हैं। फल लगभग १.२५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इंच) लम्बा, अण्डाकार तथा अग्रकी ओर नुकीला, पहले सफेद (*white pubescent*) तथा पकने पर धूसर वर्ण का किंचित् मांसल और अस्फोटी होता है, जिसमें ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इञ्च से ३ इञ्च लम्बे ५ चमसाकार (*spathulate*) पक्ष लगे होते हैं। इससे प्राप्त 'राल' का उपयोग धूपन के लिए तथा चिकित्सा में लेप या पलस्तर (*plasters*) एवं मलहम बनाने के लिए किया जाता है। गरीब लोग अकाल के समय बीजों का आटा बनाकर खाते हैं। इससे प्राप्त एक 'स्थिरतैल' जलाने के काम में लाते हैं। नवीन पत्तियाँ एवं पुष्पागमकाल–मार्च, अप्रैल। फलागम–मई, जून में होता है।

उपयोगी-अंग। निर्यास (राल) एवं छाल (त्वक्)।

मात्रा। त्वक् क्वाथ–२$\frac{1}{2}$ तो० ५ तो०।

रालचूर्ण–१ ग्राम से २ ग्राम या १ से २ माशा।

मलहम एवं लेप के लिए–आवश्यकतानुसार।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–ताजा शालनिर्यास या राल तो प्रायः रंगरहित होता है, परन्तु पुराना गाढ़े भूरेरंग से लेकर हल्के अम्बरीरंग का होता है। यह प्रायः गंध एवं स्वादरहित होता है, और जलानेपर धूप की तरह जलता है। ऐल्कोहल में तो यह अंशतः (१००० भाग में ८० भाग) घुलता है, किन्तु ईथर में प्रायः पूर्णतः घुल जाता है तथा तारपीन के तेल में और अन्य स्थिर तेलों (*fixed oils*) में खूब अच्छी तरह हल हो जाता है। सल्फूरिक एसिड (गंधकाम्ल) में घोलने पर लाल रंग का बिलयन प्राप्त होता है। राल का आपेक्षिक गुरुत्व १.०९७ से १.१२३ होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–राल को अच्छी तरह मुखबंद डिब्बों में रखना चाहिए।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन—इसकी छाल में कषाय द्रव्य होते हैं, जो जल में उबालने पर खदिरसार के समान प्राप्त होते हैं।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल पर्यन्त।

स्वभाव। राल। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय, मधुर, विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। इसकी छाल कषाय, कटु, तिक्तरस एवं शीतवीर्य होती है। यूनानीमतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। व्रणों में यह कोथप्रतिबन्धक और व्रणलेखन कर्म करती है। आन्तरिक उपयोग से फेफड़ों पर इसका कोथ प्रतिबन्धक और काफोत्सारि कर्म होता है। व्रणों एवं अनेक त्वक् रोगों में प्रयुक्त मलहरों में यह मुख्य आधार-द्रव्य के रूप में पड़ती है। हाथ-पैर का फटना या बिवाई में इसे मक्खन में मिला कर लगाते हैं।

मुख्य योग—सर्जरसादिमलहर, अतस्यादिलेप।

रास्ना

नाम। सं०—रास्ना। हिं०—रासन, रोशना। (इटावा)—वायसुरई। अलीगढ़—बनसरई। कानपुर—सोरही, सुरही। पं०—रसन। गु०—रासना, रोशन। बम्ब०—कुरास्ना। (आगरा)—छोटी कलिया। ले०—प्लूचेआ लांसिओलाटा (**Pluchea lanceolata** *Oliver & Hiern.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुण्डी-कुल (कॉम्पोजीटे: *Compositae*)।

प्राप्तिस्थान—उक्त रास्ना के स्वयंजात क्षुप पंजाब, सिंध एवं उत्तरप्रदेश में प्रचुरता से पाये जाते हैं। बाजारों में रास्ना नाम से इसी की जड़ अथवा पंचाङ्ग मिलता है। रास्ना के स्थान में इसी का व्यवहार होना चाहिए।

संक्षिप्त-परिचय। रास्ना या वायसुरई के एक वर्षायु, १.२ मीटर से १.५ मीटर या ४ फुट से ५ फुट तक ऊँचे, बहुशाखी गुल्मक होते हैं, जिसमें अनेक पतली-पतली शाखा-प्रशाखाएँ होती हैं, जो खाकस्तरी सूक्ष्म रोमावृत्त होती हैं। पत्तियाँ २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इञ्च से २ इञ्च) तक लम्बी, ६.२५ मि० मी० से १२.५० मि० मी० (¼ इञ्च से ½ इञ्च) चौड़ी प्रायः अवृन्त, चर्मिल (*coriaceous*), रूपरेखा में आयताकार या भालाकार, कुण्ठिताग्र, अग्रपर तीक्ष्णरोमयुक्त अर्थात् तीक्ष्णाग्र (*apiculate*), आधार की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़ी तथा दोनों पृष्ठों पर खाकस्तरी सूक्ष्म रोमावृत्त और सरलधार वाली होती हैं। पुष्प समशिख संयुक्त मुण्डकों (*heads in compound corymbs*) में निकलते हैं। अधःपत्रावली या निचक्र के बाह्यकोण पुष्पक या निपत्र आयताकार, कुण्ठिताग्र तथा मृदुरोमश होते हैं, तथा कभी-कभी रंग में बैंगनी आभालिये होते होते हैं। अन्दर के निपत्र रेखाकार (*linear*) तथा संख्या में कम होते हैं।

उपयोगी अंग—मूल, पत्र।

मात्रा। ३ ग्राम से ११.६ ग्राम या ३ माशा से १ तोला।

प्रतिनिधि-द्रव्य एवं मिलावट—रास्ना एक संदिग्ध-द्रव्य है। इस नाम से भिन्न-भिन्न द्रव्य भिन्न-भिन्न प्रान्तों में व्यवहृत होते हैं। किन्तु रास्ना के स्थान में उपर्युक्त वायसुरई नाम से प्रसिद्ध औषधि का ही ग्रहण होना चाहिए। (१) बंगाल, बिहार में रास्ना के स्थान में बाँदा (वांडा रॉक्सबुर्घिई **Vanda roxburghii** *R. Br.*) के मूल का व्यवहार होता है। इसके पौधे प्रायः आम और महुए आदि के वृक्षों की डालियों पर उगे हुए पाये जाते हैं। काण्ड ३० सें० मी० से ६० सें० मी० (१ फुट से २ फुट) लम्बा होता है, और उसकी ग्रंथियों से अनेक मोटे और माँसल वातलम्बी (*epiphytic*) मूल निकले रहते हैं। पत्तियाँ १५ सें० मी० से २० सें० मी० (६ इंच से ८ इञ्च) लम्बी, मध्यपर्शुक पर गहरी और दो कतारों में निकली हुई रहती हैं। सदण्डिक पुष्प-मञ्जरियाँ पत्तियों से लम्बी होती हैं। पुष्प व्यास में ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) और पंखुड़ियाँ प्रायः मिश्रितवर्ण की होती हैं। वे अधिकतर पीताभ और कभी-कभी नीलाभ होती हैं, और उनके कुछ भागों में बादामी और बैंगनी तथा सफेदरंग भी होते हैं। फल ७.५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० (३ इञ्च से ३½ इञ्च) लम्बा और सन्धियों पर रीढ़दार होता है। (२) बंगाल में कहीं-कहीं इसी कुल की दूसरी वनस्पति साक्कोलाबियम पाप्पिलोसुम (**Saccolabium pappilosum** *Lindl.*) का भी ग्रहण रास्ना नाम से कर लेते हैं। (३) बम्बई बाजार में टीलोफोरा आस्थमाटिका **Tylophora asthmatica** *W. &. A.* (*Syn.* : *T. indica Burm. f. Merr.* (*Family* : *Asclepiadaceae*) की जड़

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रास्ता के नाम से बिकती है। इसे पित्तमारी, अंतमल (बम्बई), खड़ की रास्ना (मरा०) कहते हैं। (४) मद्रास के वैद्य 'कुलंजन' को ही रास्ना, गन्धरास्ना या गन्धनाकुली कह देते हैं, और इसका व्यवहार रास्ना के नाम से करते हैं। (५) इन्युला हेलेनियम् (**Inula helenium** *Linn.*) को अरबी-फारसी में 'रासन' या 'कुस्तेशामी' कहते हैं। अतएव कोई-कोई रसाना से इसी का ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु रास्ना के स्थान में 'प्लूचेआ लांसेओलाटा' का ही व्यवहार होना अधिक युक्तियुक्त है।

संग्रह एवं संरक्षण—जड़ों में मूल निकालकर मिट्टी आदि को साफकर, छायाशुष्क करलें और इसे मुखबन्द डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु। रस—तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातनाशक, आमपाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक, वातोदर, श्लेष्मोदर एवं शोथनाशक, ज्वरघ्न, श्वास-कासहर, विषघ्न एवं समस्त वायु रोग नाशक होती है।

मुख्य योग—रास्नासप्तकक्वाथ, महारास्नादिक्वाथ, रास्ना गुग्गुलु, रास्नादि घृत एवं तेल।

विशेष—रास्ना के स्थान में उपर्युक्त वायसुरई (**Pluchea lanceolata**) नामक औषधि का ग्रहण करना चाहिए।

रीठा (<अरिष्टक)

नाम। सं०—अरिष्टक, फेनिल (फेनयुक्त)। हिं०—रीठा। पं०—रेठा। बं०—रिठे। गु०—अरीठा। अ०—बुन्दुक हिंदी। फा०—फुन्दुक़े फारसी। अं०—सोपनट (*Soap-nut*)। ले०—(१) सापींडुस ट्रीफ़ोलिआटुस (**Sapindus trifoliatus** *Linn.* (दक्षिण भारतीय रीठा या बड़ारीठा); (२) सापींडुस मुकुरोस्सी (**Sapindus mukurossi** *Gartn.* (उत्तरभारतीय रीठा या छोटारीठा)।

वानस्पतिक-कुल। अरिष्टक-कुल या (सापींडासे : *Sapindacae*)।

प्राप्तिस्थान—'सापींडुस मुकुरोस्सी' के हिमालयप्रदेश में १.२ किलो मीटर या ४००० फुट की ऊँचाई तक जंगली वृक्ष पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त उत्तरभारत, बंगाल, आसाम आदि में बाग़-बगीचों में तथा गाँवों के आस-पास इसके लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। दक्षिणभारत में 'सापींडुस ट्रीफोलिआटुस' के वृक्ष लगाये जाते हैं। बंगाल में भी इसके लगाये वृक्ष मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। उत्तरभारत में प्रायः सापींडुस मुकुरोस्सी (**Sapindus mukurossi**) के वृक्ष पाये जाते हैं, जो देखने में कुछ-कुछ तूणीवृक्ष से मिलते-जुलते हैं। वृक्ष ६ मीटर से ९ मीटर या २० फुट से ३० फुट ऊँचा, देखने में सुन्दर, पत्र—संयुक्त, एकान्तर, ३० सें० मी० से ५० सें० मी० या १२ इञ्च से २० इञ्च लम्बा तथा समपक्ष। पत्रक—५—१० युग्म, अभिमुख अथवा एकान्तरक्रम से स्थित, आकार में लम्बाग्र एवं भालाकार। पुष्प—सफेद या हल्के गुलाबी-रंग के। फल—गोलाकार, गूदेदार अष्ठिफल, जो व्यास में ०.७ इञ्च से १ इञ्च और प्रत्येक फल में एक बीज होता है। बीज—चिकना एवं कालेरंग का। (२) सापींडुस ट्रीफ़ोलिआटुस—के वृक्ष दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। इसके फल ३-३ एक साथ जुटे होते हैं। पकने पर मुलायम तथा पीताभहरे रंग के तजा किंचित् लालिमा लिये भूरेरंग के हो जाते हैं। फलों की बाह्याकृति किंचित् वृक्काकार होती है, और पृथक् होने पर जुटे हुए स्थान पर एक हृदयाकार चिह्न पाया जाता है। इनमें पुष्पागम शरद्-ऋतु में होता है, तथा फल वसन्त में पकते हैं।

उपयोगी अंग—फल (विशेषतः छिलका *pericarp*), गुठली का गूदा (मग्ज)।

मात्रा। ०.५ ग्राम से २ ग्राम या ४ रत्ती से २ माशा तक। वामक (*Emetic*) मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ से ६ माशा।

रेचक मात्रा—४ ग्राम से ८ ग्राम या ४ से ८ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—(१) दक्षिणी या बड़ारीठा—इसके तीन-तीन फल एक साथ जुटे होते हैं। ताजा पक्व फल पीताभ हरेरंग का तथा छालिया के बराबर, बाह्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपरेखा में किंचित् वृक्काकार (*somewhat reniform*) होता है। जिस जगह फल परस्पर जुटते हैं, वहाँ एक हृदयाकार चिह्न (*heart-shaped scar*) होता है। सूखनेपर फलों की रंगत काला‌ई लिये गंदलापीला तथा छिलका झुर्रीदार (*shrivelled*) हो जाता है। छिलके के अन्दर गूदा (*pulp*) झलकता (*translucent*) है। किन्तु जिसपार्श्व पर फल जुटते हैं, उसमें गूदा का अंश प्रायः नहीं के बराबर होता है। फल के अन्दर एक गुठली होती है, जिसको तोड़ने पर बड़ी मटर के बराबर कँवलगट्टे के सदृश कालाबीज (केवल नाभि *hilum* के भाग को छोड़कर जो तूलरोमावृत्त *tomentose* होता है) निकलता है। बीजों के अन्दर सफेद गूदा या मज्ज होता है। बीज के पृष्ठतल (*dorsun*) के ऊर्ध्वभाग में पृथक्-पृथक् दिशा को जाती हुई दो परिखाएँ (*diverging furrows*) होती हैं। बीजचोल (*testa*) का बाह्यावरण अपेक्षाकृत मोटा और कड़ा तथा अन्तरावरण पतला झिल्लीदार होता है। गिरी (*kernel*) पीताभ हरितवर्ण की तथा स्निग्ध (*oily*) होती है। बीजपत्रक (*cotyledons*) छोटे-बड़े तथा गूदेदार होते हैं। मूलांकुर (*radicle*) बीजों के आधार (*base*) की ओर होता है। बीज के गूदे (*pulp ofthe fruit*) से फल-जैसी सुगंधि (*fruity smell*) आती है। स्वाद में यह पहले किंचित् मधुर, किन्तुबाद में अत्यन्त तिक्त होता है। उत्तर-भारतीय रीठा के अष्ठिफल (*drupes*), अपेक्षाकृत कुछ छोटे, रूपरेखा में गोलाकार (*globose*) व्यास में ०.७ इञ्च से १ इञ्च तथा रंग आदिमें दक्षिणीरीठेके ही भाँति होते हैं।

जलविलेय सत्व—४०%।

ऐल्कोहॉलविलेय सत्व—१५%।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्व फलों को ग्रहण कर मुखबन्दपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—फल में साबुनीन या सैपोनिन (*Saponin*) लगभग ११½% (ताजे फलों में अपेक्षाकृत अधिक(१३.८%) तथा इसके अतिरिक्त १०% द्राक्ष-शर्करा और लबाब-सदृश पेक्टिन (*Pectin*) नामक कफघ्न पदार्थ पाया जाता है। बीज-द्विदल (*cotyledons*) मे ३०% सफेद चर्बी होती है। इस तैल का उपयोग साबुन बनाने के लिए किया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—वमन। प्रधान कर्म—वामक, रेचक, कृमिघ्न, कफनिस्सारक, गर्भाशय संकोचक, इसका नस्य अर्धावभेदक, मूर्च्छा एवं अपतंत्रक नाशक। विषघ्न (विशेषतः अफीम विषमयता में प्रयुक्त)। यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। बाह्यतः लेखन है। अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारण—तेल, विशेषतः बादाम का तेल।

मुख्ययोग—तिरियाक अफ़्यून।

रूमीमस्तगी—दे०, 'मस्तगी'।

रेवन्दचीनी

नाम। सं०—पीतमूला, अम्लपर्णी। हिं०—रेवंदचीनी, रेवंचीनी। बं०—रेउचिनि। पं०—रयोंदचीनी। गढ़वाल—आर्चा। कुमायूँ—डोलु। नेपाल—पद्म (द) मचाल। का०—पम्बचालन। गु०—रेवनचीनी। म०—रेवतचीनी। अ०—रावन्द। फा०—रेवन्द। अं०—रहुबार्ब *Rhubarb*, रहुबार्बरूट *Rhubarb-Root*। ले०—रहेउम *Rheum*, रहेइ-राइजोमा *Rhei Rhizoma*। (वनस्पति का नाम)—(१) रहेउम एमोडी (**Rheum emodi** *Wall.*); (२) रहेउम वेब्बिआनुम (**Rheum webbianum** *Royle*)।

वानस्पतिक-कुल। चुक्र-कुल (पोलीगोनासे *Polygonaceae*)।

प्राप्तिस्थान—'रहेउम एमोडी' नेपाल तथा सिक्कम में ३३३७.७ मीटर से ३६५७.६ मीटर या ११,००० फुट से १२,००० फुट की ऊँचाई पर पायी जाती है। इसके अतिरिक्त शिमला एवं कांगड़ा जिले में भी कहीं-कहीं मिलती है। 'रहेउम् बेब्बिआनुम' के पौधे मध्यवर्ती एवं पश्चिमीहिमालय प्रदेश में (नेपाल से लेकर पश्चिम में कश्मीर तक) पाये जाते हैं। उक्त वनस्पतियों के मूल एवं भौमिक काण्ड के टुकड़े रेवन्दचीनी के नाम से भारतीय बाजारों में मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। (१) रहेउम एमोडी—इसके मोटे काण्ड एवं मूलयुक्त १.५ मीटर से १.८ मीटर या ५ फुट से ६ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं, जिनका काण्ड सशाख एवं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्रमय होता है। मूल के पास की पत्तियाँ (*radical leaves*) अपेक्षाकृत बहुत बड़ी (व्यास में ६० सें० मी० या २ फुट तक), रूपरेखा में गोलाकार (*orbicular*) अथवा चौड़ी-लट्वाकार एवं अग्रकी ओर कुण्ठिताग्र होती हैं। पर्णवृन्त ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० (१२ इञ्च से १८ इञ्च) लम्बा तथा काफी मोटा होता है। पुष्प गाढ़े बैंगनीरंग के तथा व्यास में ३.१२५ मि० मी० या ⅛ इञ्च होते हैं। फल अण्डाकार-आयताकार लगभग १.२५ सें० मी० या ½ इञ्च लम्बे एवं बैंगनीरंग के होते हैं, जो आधार की ओर कुछ हृदयाकार होते हैं और शीर्षपर कटाव (*apex notched*) होता है। इसकी शाखाएँ और पत्तियाँ खट्टी होती हैं। वर्षा-ऋतु में इसमें पुष्प-फल लगते हैं। जड़ काफी मोटी तथा भूरे पीलेरंग की होती है। औषधि में इन्हीं जड़ों का व्यवहार होता है। (२) रूहेउम वेब्बिआनुम—इसके भी ०.३ मीटर से १.५ मीटर या १ फुट से ५ फुट ऊँचे कोमल काण्डीय, पत्रबहुल पौधे होते हैं। पत्तियाँ व्यास में १० सें० मी० से ६० सें० मी० या ४ इञ्च से २ फुट तक, रूपरेखा में गोलाकार-हृदयाकार या वृक्काकार होती है, जिनके आधार की ओर ५—७ स्पष्ट नाड़ियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं और लम्बे डण्ठलों पर धारण की जाती हैं। मञ्जरियाँ पत्रकोणों या शाखाग्रों पर निकलती हैं, जिनमें हल्के पीलेरंग के छोटे-छोटे पुष्प निकलते हैं, जो प्रथम जाति के पुष्पों की अपेक्षा छोटे होते हैं। फल—गोलाकार या लम्बगोल, व्यास में ८.३ मि० मी० या ⅓ इंच तथा दोनों सिरों पर कटावयुक्त (*notched*) होते हैं। भेद—भारतीय-रेवन्दचीनी मुख्यतः उपर्युक्त दोनों प्रजापतियों से ही प्राप्त होती है। किन्तु इसके अतिरिक्त हिमालयप्रदेश में कतिपय जातियाँ भी पायी जाती हैं, जो यद्यपि हीन-कोटि की हैं, किन्तु इनके मूलों को भी संग्रहकर्ता संग्रहीत कर रेवन्दचीनी में मिला देते हैं। इसी प्रकार कश्मीर में एक जाति पायी जाती है, जिसे 'रेवास' कहते हैं।

उपयोगी अंग—शुष्कमूल एवं भौमिककाण्ड।

मात्रा। रेचनार्थ—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। कटुपौष्टिक—१२५ मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० या १ रत्ती से ४ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। बाजार में रेवन्दचीनी के छोटे-बड़े टुकड़े (१.८७५ सें० मी० से २० सें० मी० या ¾ इंच से ८ इंच तक तथा व्यास में १.२५ सें० मी० से ८.१२५ सें० मी० या ½ इञ्च से ३⅓) मिलते हैं, जो रूपरेखा में घन, ठोस, बेलनाकार, पीपे के आकार के (*barrel-shaped*) शंक्वाकार या चपटे तथा एकतल पर उन्नतोदर (*plano-convex*) होते हैं। इसका वल्कल पीताभ भूरेरंग का भूरेरंग का होता है, जिसपर अनुलम्ब दिशा में झुर्रियाँ या उन्नत रेखाएँ होती हैं, अथवा मुद्रिकाकार रेखाएँ (*trasverse annulations*) होती हैं। अनुप्रस्थ—विच्छेद करने पर एधा-रेखा (*cambium ring*) स्पष्टया दिखाई देती है। रेवन्दचीनी में एक विशिष्ट प्रकार की सुगन्धि होती है तथा स्वाद में यह तिक्त एवं कषाय होती है। मुख में चाबने पर थूक पीला हो जाता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं। ऐल्कोहल् (४५%) में विलेयसत्व—कम से कम ३५%। अम्ल में अघुशनशील भस्म—अधिकतम १%।

परीक्षण—रेवन्दचीनी का परीक्षण इसमें बहुधा पायेजाने वाले सक्रिय घटकों की उपस्थिति के लिए किया जाता है। क्षारों (*alkalies*) के सम्पर्क से यह लालरंग की हो जाती है, जो 'ऐन्थ्राक्विनीन यौगिकों' की उपस्थिति का द्योतक होता है। एमोडीन एवं क्राइसोफैनिक एसिड की उपस्थिति का परीक्षण—१½ ग्रेन (०.१ ग्राम) रेवन्दचीनी का चूर्ण लेकर १० मि० लि० विलयन (१०० में १ बल का) में मिला कर उबाल कर ठंढा करें और इसे छान लें। इसमें हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर इसे अम्लीकृत करें और १ मि० लि० ईथर मिला कर विलयन को खूब हिला कर रख दें। इस प्रकार रखा रहने पर ईथर का स्तर पृथक् हो जाता है, जो पीलेरंग का होता है। अब इसमें ५ मि० लि० अमोनिया मिलाकर खूब हिलाकर रख दें। इस प्रकार ईथरवाला स्तर पीलेरंग का रहता है (जो क्राइसोफेनिक एसिड की रंग का रहता है) जो इमोडिन की उपस्थिति का द्योतक होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—चीन से आने वाली रेवन्द-चीनी रूहेउम् पाल्माटुम् (**Rheum palmatum**) की जड़ होती है। यह भी उत्कृष्ट रेवन्द होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण–संग्रह कम से कम ६ वर्ष से ७ वर्ष पुराने पौधों से करना चाहिए। संग्रह प्रायः पुष्पागम काल के पूर्व किया जाता है। इसको अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन–रेवन्दचीनी में 'एन्थ्राक्विनोन' से व्युत्पन्न यौगिक पाये जाते हैं, जो इसके प्रमुख सक्रिय घटक होते हैं। इसमें क्राइसोफेनिक एसिड, एमोडिन, टैनिक एसिड, राल, स्टार्च, कैल्सियम ऑक्जलेट तथा अनेक निर्निन्द्रिय लवण होते हैं। पत्तियों में ऑक्जैलिक एसिड होता है।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–कफपित्तहर, अल्प मात्रा में लालाप्रसेकजनक, दीपन, यकृदुत्तेजक, ग्राही, कटु पौष्टिक, बड़ी मात्रा में रेचन; कफनिस्सारक, मूत्रार्त्तवजनन आदि। इसके सेवन से ४ घण्टे से ८ घण्टे में मरोड़ के साथ पतले, पीले दस्त आते हैं। रेचन-क्रिया क्राइसोफेनिक एसिड एवं एमोडिन के प्रभाव से होती है। रेचन के बाद इसमें स्थित कषाय द्रव्यों की क्रिया से दस्त अपने आप रुक जाते हैं।

विशेष–मरोड़ को शान्त करने के लिए इसके साथ सुगन्धि द्रव्य और सज्जिक्षार मिलाने चाहिए। इसमें आक्जैलिक एसिड होने से इसका प्रयोग आमवात, अश्मरी आदि रोगों में नहीं करना चाहिए। बच्चों एवं वृद्धों में रेचन के लिए यह बहुत उपयुक्त है।

रोहीतक

नाम। सं०–रोहीतक, दाडिमपुष्प, दाडिमच्छद, प्लीहघ्न। हिं–अरुआर, रोहेड़ा। म०–रोहिड़ा। गु०–रोहिडो। ले०–टेकोमेल्ला उंडूलाटा **Tecomella undulata** *G. Don.*) *Seem.* (पर्याय–टेकोमा उंडूलाटा *Tecoma undulata G. Don.*)

वानस्पतिक-कुल। श्योनाक-कुल (बिग्नोनिआसे : *Bignoniaceae*)।

प्राप्तिस्थान–राजस्थान, पंजाब का राजस्थान से लगा हुआ प्रदेश (हिसार–रोहतक आदि), काठियावाड़, कच्छ एवं दकन में रोहीतक के स्वयंजात वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। अन्य प्रदेश में कहीं-कहीं इसके लगाये हुए अथवा स्वयउत्पन्न वृक्ष भी मिल जाते हैं। भिन्न-भिन्न भारतीय बाजारों में रोहीतक के नाम से अन्य वृक्षों की छालें भी बिकती हैं। किन्तु रोहीतक के स्थान में उपर्युक्त वृक्ष की ही छाल का व्यवहार होना चाहिए।

संक्षिप्त-परिचय। 'रोहीकक' या 'रोहेड़ा' के गुल्म या छोटे वृक्ष होते हैं, जिनकी शाखाएँ नीचे की ओर झुकी रहती हैं। पत्तियाँ खाकस्तरी हरितवर्ण की, ५ सें० मी० से १५ सें० मी० या २ इञ्च से ६ इंच तक लम्बी, १.८७५ सें० मी० से ३.१२५ सें० मी० (¾ इंच से १¼ इंच) चौड़ी, रूपरेखा में आयताकार किन्तु अपेक्षाकृत कम चौड़ी (*narrowly oblong*), अग्र कुण्ठित तथा पत्रतट लहरदार, पत्तियाँ सूक्ष्मरोमावृत्त, स्पर्श में किंचित् कर्कश तथा देखने में दाड़िमपत्रवत् लगती हैं। पर्णवृन्त २,५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बे होते हैं। पुष्प प्रायः फरवरी से अप्रैल के बीच निकलते हैं, जो बड़े, ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० (१½ इञ्च से २½ इंच तक लम्बे) रंग में पीले से लेकर नारंग-रक्तवर्ण के तथा निर्गन्ध होते हैं, और छोटी-छोटी शाखाओं के अग्रपर समस्थकाण्डजक्रम में रहते हैं। पुष्पागम के समय वृक्ष अत्यन्त प्रियदर्शन मालूम होता है, और इसीलिए बगीचों में भी लगाया हुआ मिलता है। पुष्प-वृन्त ६-२५ मि० मी० से १२.५ मि० मी० या ¼ इंच से ½ इंच लम्बे होते हैं। बाह्यकोश (*calyx*) कटोरीनुमा तथा ५ समान खण्डों से युक्त होता है। पुंकेशर संख्या में ४ होते हैं। कुक्षि अथवा वर्तिकाग्र या स्टिग्मा (*stigma*) प्रायः दो खण्डों में विभक्त (*two-lobed*) होती है। फली २० सें० मी० × १.८७५ सें० मी० (८ इञ्च × ¾ इञ्च) बड़ी, कुछ टेढ़ी और अग्रपर नुकीली होती है। बीज सपक्ष (*winged*) २.५ सें० मी० × ९.३७५ मि०मी० (१ इञ्च × ⅜ इञ्च), चिकने तथा अग्र-पर नुकीले होते हैं। पक्ष (*wing*) झिल्लीदार होता है, जो प्रायः बीज के अग्रकी ओर होता है, किन्तु आधार की ओर प्रायः इसका अभाव होता है।

उपयोगी अंग–त्वक् (तने की छाल)।

मात्रा। १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

गुणावगुणपरीक्षा–असली रोहीतक का वर्णन ऊपर किया

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया है। किन्तु रोहीतक के नाम से अन्य अनेक वृक्षों की छाल का भी व्यवहार होता है। (१) बंगीय रोहीतक—आफानामिक्सिस पॉलीस्टाकिया (**Aphanamixis polystac ahy**(*Wall.*) *Parker* (पर्याय—**Amoora rohituka** *Wt.& Arn.*)। इसे 'सोहागा' 'गीलाकुसुम' या 'पानीकुसुम' (पुरी) भी कहते हैं। बंगीय वैद्य बहुत दिनों से इसे रोहीतक मानते आये हैं। वैज्ञानिक जातीयनाम (*Specific name*) से भी मालूम होता है, कि बहुत दिनों से रोहीतक के प्रतिनिधि के रूप में इसका व्यवहार होता आया है। परन्तु प्राचीन शास्त्रकारोंका रोहीतक यह नहीं है। इसके छोटे-छोटे मध्यम ऊँचाई के सुन्दर वृक्ष होते हैं, जिसकी शाखाएँ नीचे की ओर झुकी फैलती हैं। उक्त वृक्ष हिमालय की तराई में अवध (उ० प्र०) से लेकर पूरब में सिक्किम, बंगाल, आसाम तथा छोटानागपुर एवं दक्षिणभारत में कोंकण और पश्चिमी—घाट के समीपवर्ती क्षेत्रों में (३,००० से ५००० फुट की ऊँचाई तक) पाये जाते हैं। छाल, चिकनी, काटने पर लाल किन्तु श्वेतरेखाओं से युक्त होती है। पत्तियाँ पक्षवत् ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ फुट से ३ फुट) लम्बी, पत्रक ४ जोड़े से ७ जोड़े, ७.५ सें० मी० से २२.५ सें० मी० × ३.७५ सें० मी० से १० सें० मी० (३ से ९ इंच × १½ से ४ इंच) एवं अखण्ड होते हैं, जिनका फलकमूल प्रायः तिरछा होता है। पुष्प छोटे, श्वेत, एकलिंगी, तथा फल ३ खण्डों का, पीला या मांसवर्ण का तथा व्यास में ३.७५ सें० मी० (१॥ इंच) तक होता है। (२) रक्तरोहिड़ा (बम्बई)—यह बदर-कुल की रहाम्नुस वीटीई **Rhamnus wightii** *W. & A.* (*Family* : *Rhamnaceae*) नामक वृक्ष की छाल होती है, जो लालरंग की होती है। उक्त लालछाल रक्तरोहिडा के नाम से बिकती है। (३) दक्षिणभारत (दकन) में एक और वृक्ष (**Chloroxylon swietenia** *D. C.*) पाया जाता है, इसकी छाल भी कहीं-कहीं 'रक्तरोहिड़ा' के नाम से बिकती है। (४) बम्बई बाजार में 'रक्तरोहिड़ा' नाम से **Polygonum glabrum** *Willd.* (*Family* : *Polygonaceae*) भी बिकता है। (५) चित्रकूट आदि विन्ध्य के कतिपय क्षेत्रों में 'मांसरोहिणी' की छाल का संग्रह एवं विनिमय 'रोहितक' के नाम से किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—रोहीतक की छाल को मुखबन्द डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—भेदन। प्रधानकर्म—रोचन, दीपन, अनुलोमन, भेदन, प्लीहा-यकृत् वृद्धि-नाशक, रक्तशोधक, मूत्रसंग्रहणीय, लेखन, विषघ्न आदि।

मुख्य योग—रोहितकारिष्ट, रोहीतकलोह।

विशेष—प्लीहोदर में 'रोहीतकारिष्ट' का प्रयोग बहुशः किया जाता है। साथ में यदि रक्ताल्पता भी हो (यथा मलेरिया एवं कालज्वर) तो 'रोहीतकलोह' दिया जाता जाता है।

वक्तव्य—प्राचीन सुदूर उत्तरपश्चिमी भारतीय सीमाक्षेत्र (अधुना अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा पजाब आदि भारतीय क्षेत्र) में रोहितक एक सुपरिचित वृक्ष रहा है। वैदिक साहित्य में भी रोहितक (मैत्रायणी संहिता ३. ९. ३) अथवा रोहीतक (आपस्तम्भ श्रौतसूत्र १. ५. ८) का उल्लेख वृक्षविशेष के नाम के रूप में मिलता है। पंचविंशब्राह्मण (१४. ३. १२) में 'रोहितककूल' नामक स्थान विशेष का भी उल्लेख है। लगता है मूलशब्द 'रोही / रोहीत' उसकाल में क्षेत्र विशेष का वाचक रहा है, और उसी के अनुबन्ध में उक्त रोहितक वृक्ष का भी अभिधान किया गया प्रतीत होता है। रोहितक आज भी (पूर्वकालिक) उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त (जो अधुना पाकिस्तान में है) के दक्षिण-पूर्व स्थित मैदानीक्षेत्र के फ्लोरा का एक प्रमुख सदस्य है। उत्तर की ओर कुर्रमघाटी आदि में भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं। पाणिनी के अष्टाध्यायी में भी रजतादिगणपाठ (४. ३. १५४) में राहीतक (रोहितक) का परिगणन है। वास्तव में रोहितक के विनिश्चय के सम्बन्ध में कोई भ्रामक स्थिति का कारण नहीं है, किन्तु क्षेत्र विशेष में ही सीमित होने के कारण औषधीय प्रयोग के लिए इसकी छाल सुलभ न होने के कारण परवर्तीकालीन साहित्य उनके टीकाकार एव परम्परा में अद्यावधि भ्रामकस्थिति बनीसी है। राजस्थान के शेखावाटी आदि मरुस्थलीक्षेत्र में आज भी 'शमी' एवं 'रोहितक' यह दो व्यवहारोपयोगी एवं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मान्य वृक्ष हैं। रोहितक के पेड खेतों में लगाये मिलते हैं। पुष्पितावस्था में यह अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक लगते हैं। नक्षत्र एवं तिथि विशेष में वहाँ इस वृक्ष के पूजन की भी लोकपरम्परा है। रोहितक का हृतत्काष्ठ कड़ा और उत्तमकोटि का मानाजाता है। इसके खिलौने तथा इमारती उपयोग की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। राजस्थान, पंजाब, काठियावाड आदि में आज भी रोहितक सुपरिचित है (*Field Notes of Prof. R. S. Singh*)। आधुनिक शोधपरीक्षणों से भी रोहितक के विशिष्ट औषधोपयोगी मान्यताओं की पुष्टि हुई है। उक्त क्षेत्रों में रोहितक के अधिकाधिक आरोपण एवं परिवर्धन का प्रयास किया जाना चाहिये। (लेखक)।

लवंग (>लौंग)

नाम। सं०—लवंग, देवकुसुम। हिं० लौंग, लवंग। म० गु०—लवंग। मा०—लौंग, लूंग। अ०—क़रन्फ(फ़ू)ल। फा०—मेखक। अं०—क्लोव्ज *Cloves*। ले०—कारिओफ़िल्लुम (*Carypohyllum*)। (वृक्षका नाम) एडजेनिआ कारिओफ़िल्लुस **Eugenia caryophyllus** (*Spr.*) *Bull & Harr.* (पर्याय—*E. aromaticus* (*L.*) *Baill.*; *Sygygium aromaticum* (*L.*) *Merr. et Perr.*)।

वानस्पतिक-कुल। लवंग-कुल (मीर्टासि *Myrtaceae*)।

प्राप्तिस्थान—लवंग मलक्का-द्वीपपुञ्ज का आदिवासी पौधा है। अब जंजिवार, पेम्बा, पेनांग और मेडागास्कर, सुमात्रा, बोर्नियो, मलाया, जावा आदि में लम्बे परिमाण में इसकी खेती की जाने लगी है। लौंग का अधिकांश आयात जंजिबार और पेम्बा के टापुओं से ही होता है। लौंग सर्वत्र भारतीय बाजारों में मिलती है।

संक्षिप्त-परिचय। व्यावसायिक लौंग वास्तव में उक्त वृक्ष की कलिका होती हैं, जिसको खिलने के पहिले तोड़कर सुखालिया जाता है। लौंग के छोटे कद के सदाहरित वृक्ष होते हैं, जो देखने में बहुत सुन्दर तथा सालभर फूलते रहते हैं। वृक्ष रूपरेखा में नीचे अधिक घेरे का होता है, जो चोटी की ओर उत्तरोत्तर कम होता जाता है। पत्तियाँ सवृन्त, अभिमुखक्रम से स्थित (*opposite*) लगभग १० सें० मी० या ४ इंच लम्बी ५ सें० मी० या २ इञ्च तक चौड़ी, रूपरेखा में लट्वाकार-आयताकार (किन्तु बीच में अधिक चौड़ी तथा आधार एवं शीर्ष की ओर उत्तरोत्तर कमचौड़ी) तथा सरल धारयुक्त तथा चमकीले हरेरंग की होती हैं, जिनको मलकर सूँघने पर अत्यन्त सुगन्धित मालूम होती हैं। पुष्प छोटे-छोटे हल्के बैंगनीरंग के तथा अत्यन्त सुगन्धित होते हैं, जो शाखाओं पर समस्थकाण्डज सगुच्छमञ्जरियों (*corymobose panicles*) में निकलते हैं। कलिकाएँ प्रारम्भ में सफेद किन्तु बाद में हरी और अन्ततः लाल (*crimson*) हो जाती हैं। इसीसमय इनका संग्रह किया जाता है। और इन्हें खुली हवा में सुखाया जाता है। अब कलिकाओं को तोड़कर पृथक् कर लिया जाता है, और डंठल का भाग अलग संग्रह कर लिया जाता है। यह व्यवसाय में 'लौंग के डंठल *Clove Stalks*' के नाम से अलग बिकता है।

उपयोगी अंग—सुखायी हुई अविकसित कलिकाएँ तथा लौंग से प्राप्त 'उत्पत्तैल'।

मात्रा। लौंग—०.५ ग्राम से १.५ ग्राम या ४ रत्ती से १½ माशा। तेल—½ बूँद से ३ बूँद तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—लौंग की शुष्क कलिका लगभग १ सें० मी० से १.७५ सें० मी० या ⅜ से ⅞ इंच (१० मि० मी० से १७½ मि० मी०) लम्बी तथा लालिमा लिये भूरे रंग की होती है। रूपरेखा में देखने में आपाततः मुग्दराकार मालूम होती है, जिसका नीचे का डंठलाकार भाग गोलाकार, चपटा एवं चतुष्कोणाकार होता है, जो वास्तव में दलपक्ष (*torus*) का ही बढ़ा हुआ भाग (*hypanthium*) होता है। उत्तम लौंग में इसपर नाखून गड़ाने से फौरन तैल निकलता है। हाइपेंथियम् के ऊर्ध्व भाग में दो गह्वर (*loculi*) होते हैं (जो अनुलम्ब विच्छेद *longitudinal section* करने पर दिखाई देते हैं), जिनमें अनेक अक्षलग्न बीजीभव (*ovules on axile placentae*) होते हैं। हाइपेंथियम् के शीर्षपर स्वस्तिककक्रम से स्थित चार कड़े पुटपत्र (*sepals*) होते हैं, जिनके अन्तरवकाश में मुण्डाकार रचना होती है, जो न खिलने के कारण (*unexpanded*) परस्पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिपटे दलपत्रों (*petals*—जो संख्या में ४ होते हैं) से बनती है। इसके अन्दर अनेक अन्तर्मुख पुंकेशर (*Incurved stamens*) तथा मध्य में एक कड़ा कुक्षिवृन्त होता है। लौंग में एक तीव्र मसालेदार सुगन्धि होती है, तथा स्वाद में तीक्ष्ण एवं सुगन्धित होता है। उत्तम पुष्ट लौंग शुतशीत जल में डालने पर डूबकर नीचे बैठ जाती है, किन्तु निर्वीर्य लौंग (जिससे उत्पत् तैल खींच लियागया होता है) जल पर तैरता रहता है। उत्तम लौंग में कम से कम १५% उत्पत्-तैल (लौंग का तेल) प्राप्त होता है। विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम १%। डंठल का भाग (*Clove-staks*) अधिकतम ५%। जलावेपर भस्म—अधिकतम ७% प्राप्त होती है। अम्ल में अघुलनशील-भस्म—अधिकतम १%।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—बाजारू-लौंग में प्रायः तैल निकालेहुए लौंग (*exhausted cloves*) अथवा पुराने संशुष्कस्नेह लौंग भी मिलाये हुए होते हैं। नं० २ या ३ के नाम से बिकनेवाले लौंग में अधिकांश ऐसे ही लौंग होते हैं। नाखून से दावने पर इनमें तेलांश नहीं निकलता, तथा जल में डालने पर डूबता नहीं, अपितु तैरता रहता है। इसके अतिरिक्त पुष्पवृन्तों (*clove stalks*) का भी मिलावट किया जाता है। चूर्णमें प्रायः इस प्रकार के मिलावट की सम्भावना अधिक रहती है। कभी जब संग्रह ठीकसमय पर नहीं किया जाता तो, पुष्प-कलिकाएँ खिल जाती हैं, और दलपत्र टूटकर पृथक् हो जाते हैं। यदि तबभी लौंग संग्रहीत न की गयी तो फल भी आ जाते हैं। इस प्रकार कभी विकसित कलिकाएँ (*Blown Cloves*) अथवा फल (*Mother Cloves*) तथा कभी टूटे पुंकेशर एवं दलपत्रादि के टुकड़े (*Clove Dust*) भी मिलाये जाते हैं। उक्त सभी प्रकार हीनवीर्य होते हैं। अतएव इनका ग्रहण नहीं होना चाहिए।

लवंगतैल—लौंग का ताजा तेल रंगहीन अथवा हल्के पीले रंग का द्रव होता है, जो कालान्तर से अथवा हवा में खुला रहनेपर रक्ताभ भूरेरंग का हो जाता है। इसमें लौंग की विशिष्ट गन्ध एवं स्वाद पाया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—लौंग को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में रखकर ठंडी जगह में रखना चाहिए। लौंग के तेल को अच्छी तरह मुखबंद शीशियों में ठंडी एवं अँधेरी जगह में रखना चाहिए।

संगठन—लौंग में १५% से २०% तक उत्पत्-तैल (लौंग का तेल) पाया जाता है, जिसमें मुख्यतः (८५% से ९२%) यूजिनोल (*Eugenol*) होता है। इसके अतिरिक्त टैनिक एसिड (१३% तक) तथा कुछ मात्रा स्थिर तैल एवं राल का भी होता है। लवंग में 'केरियोफाइलिन' (*Caryophyllin*) नामक फाइटोस्टेरोल (*Phytosterol*) तथा ६% से १०% तन्तुमय अंश (*Crude fibre*) भी होता है।

वीर्यकालावधि। लौंग—२ वर्ष। तेल—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य-शीत। कर्म—कफपित्तशामक, दीपन—पाचन, रुचिवर्धक, लालास्रावजनक, वातानुलोमन, शूल-प्रशमन, श्लेष्मनिस्सारक, श्लेष्मपूतिहर तथा श्वासहर, वाजीकरण, मूत्रजनन, आमपाचन, ज्वरघ्न आदि। इसका उत्सर्ग श्वास, पित्त, स्तन्य, स्नेद एवं मूत्र के साथ होता है। यूनानीमतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है।

मुख्य योग—लवंगादिवटी, लवंगादिचूर्ण, लवंगचतुःसम, लवंगोदक आदि।

लताकस्तूरी—दे०, मुश्कदाना'।

लहसुन (लशुन, रसोन)

नाम। सं०—रसोन, लशुन। हिं०—लहसुन। बं०—रशुन। म०—लसूण। गु०—लसण। अ०—सूम, फूम। फा०—सीर। यू०—स्कूर्दून (*Skordon*), अग्लिदियुन (*Aglidion*)। अं०—गार्लिक (*Garlic*)। ले०—आल्लिउम साटीवुम (**Allium sativum** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। पलाण्डु-कुल (लिलिआसे : *Liliaceae*)।

प्राप्तिस्थान—सारे भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है। हरे एवं शुष्क लहसुन का गरम मसाले में प्रचुरता से दैनिक व्यवहार किया जाता है।

संक्षिप्त परिचय—लहसुन की खेती भी प्याज की भाँति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती है, और इसको भी सिंचाई की आवश्यकता होती है। यह जाड़ों में बोया जाता है, तथा ग्रीष्म के प्रारम्भ में (लगभग ४ महीने में) फसल तैयार हो जाती है। जब पत्ते मुरझा कर पीले पड़ जाते हैं, कन्द खोदकर निकाल लिये जाते हैं। लहसुन के ३० सें० मी० से ६० सें० मी० (१ फुट से २ फुट) ऊँचे कोमलकाण्डीय पौधे होते हैं। पत्तियाँ चपटी, पतली और लम्बी होती हैं और इनको मसलने पर एक प्रकार की उग्र गंध आती है। पुष्प-दण्ड काण्ड के बीच से निकलता है, जिसके शीर्ष पर गुच्छेदार श्वेत पुष्प लगते हैं। कन्द श्वेत या हल्के गुलाबी रंग के आवरण से ढका होता है, जिसके अन्दर ५–१२ तक यवाकार छोटे कंद (*Bulbils or Cloves*) होते हैं। इन कन्दों को कुचलने पर एक तीव्र एवं अप्रिय गंध आती है, तथा स्वाद में यह कटु एवं तीक्ष्ण होते हैं।

उपयोगी अंग–कन्द (*Bulbils*) एवं पत्र।

मात्रा–कन्दकल्क १.५ ग्राम से ३ ग्राम (६ ग्राम तक) या १½ माशा से ३ माशा (६ माशा तक)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–लहसुन का सकन्दककंद (*Compound Bulb*) रूपरेखा में आधार की ओर कुछ गोलाकार, किन्तु अग्रकी ओर क्रमशः कम चौड़ा होकर नुकीलासा हो जाता है, जो बाह्यतः सफेद या हल्के गुलाबीरंग के शल्कपत्रावरण (*membranous scales*) से ढंका रहता हैं। प्रत्येक कंद में ५–१२ तक छोटे कन्द (*Bulbils or Bulblets*) होते हैं, जो आधार पर चारों ओर स्थित होते हैं। उक्त कन्दिकाओं रूपरेखा में यवाकार तथा दोनों पार्श्वों पर चपटी होती हैं, तथा शल्कपत्र से आवृत होती हैं। कन्द के बीच में वायव्यकाण्ड का अवशेष होता है। लहसुन में एक विशेषप्रकार की तीक्ष्ण अरुचिकारक गंध होती है, तथा मुख में चबाने पर तीक्ष्णता एवं जलन का अनुभव होता है। बड़े एवं पुष्ट तथा कृमि आदि से अभक्षित कन्दों का ग्रहण करना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण–अनार्द्र-शीतल स्थानों में संग्रह करें, जहाँ हवा का समुचित प्रवेश होता हो।

संगठन–लहसुन के कन्दों से आसवनद्वारा (०.०६ से ०.१%) तक एक पीतवर्ण का उड़नशील तैल प्राप्त होता है, जिसमें गंधक के सेन्द्रिय यौगिक होते हैं। इसके अतिरिक्त श्वेत सार, पिच्छिलद्रव्य, ऐल्ब्युमिन तथा (अल्प मात्रा में) कैल्सियम, लौह एवं विटामिन '*C*' आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–६ मास।

स्वभाव। गुण–स्निग्ध, तीक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु एवं सर। रस–अम्ल को छोड़ कर शेष मधुर, लवण, कटु, तिक्त, कषाय यह ५ रस। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–वात-कफनाशक, दीपन-पाचन, अनुलोमन, शूलप्रशमन, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, उत्तेजक, वेदनास्थापन, हृदयोत्तेजक, मेध्य, कफनिस्सारक, कफदुर्गन्धिहर, कण्ठ्य, मूत्र-आर्तवजनन तथा शुक्रल, कोथप्रशमन आदि। यूनानी मतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर–गर्भवती स्त्रियों को। निवारण–बादाम का तेल, सूखा धनिया तथा नमक और पानी में पकाने से भी इसके दोष नष्ट हो जाते हैं।

मुख्य योग–लशुनादि वटी, लशुनाद्य घृत, रसोनपिण्ड, रसोनाष्टक, माजूनसीर आदि। काश्यप-संहिता के 'कल्प स्थान' में लशुनकल्प नामक स्वतंत्र अध्याय है।

विशेष–श्लीपद एवं वात के रोगियों में आहार के साथ लहसुन का सेवन कुछ अधिक मात्रा में करने से बहुत लाभ होता है। रसशास्त्र में लशुन के रस का उपयोग पारद-संस्कार के लिए किया जाता है।

लाख (लाक्षा)

नाम। सं०–लाक्षा, कीटजा, वृक्षामय, जतु, रक्तमातृका। हिं०–लाख, लाह, लाही। म०–लाख। गु०–लाख। क०, ते०, मल०–लाक्षा। अ०–लुक्। फा०–लाक। अं०–लैक् (*Lac*)। ले०–लाविकफ़ेर लाक्का (Laccifer (*tachardia*) lacca *Kerr.*)। लेटिननाम लाख उत्पन्न करने वाले कीटका है।

जान्तव-कुल। जतुकादि-कुल (कॉक्सिडी : *Coccidae*)।

प्राप्तिस्थान–लाक्षा वास्तव में जान्तव रालीयनिर्यास है। किन्तु चूँकि लाक्षाजनककीट वृक्षों का आश्रय करके ही रहता है, अतएव आश्रयभूत वृक्ष के रस का भी इसके निर्माण में मुख्य हाथ होता है। लाक्षा अनेक वृक्षों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर लगती है, जिनमें मुख्य कुसुम (स्क्लीकेरा ओलेओसा **Schleichera oleosa** (*Lour.*) *Okera.* (पर्याय—*S. trijuga Willd.*), पीपल, बरगद, बेर, पलाश आदि हैं। उक्त वृक्षों से प्राप्त लाक्षा उत्तम समझी जाती है। इसी से चपड़ा (*Shellac*) भी बनाया जाता है। लाक्षा एवं चपड़ा भारत के मुख्य व्यावसायिक द्रव्य हैं। भारतवर्ष में लाक्षा का संग्रह न्यूनाधिक मात्रा में सर्वत्र, किन्तु विशेषतः बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बरार, मैसूर, उत्तर प्रदेश (विशेषतः मिर्जापुर), मध्य भारत, बम्बई आदि प्रान्तों में किया जाता है। औषधि में लाक्षा का व्यवहार होता है।

संक्षिप्त परिचय—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, लाख की उत्पत्ति वृक्षपराश्रयी विशिष्ट प्रकार के क्षुद्र कीटों द्वारा होता है। इनके लार्वा (*Larvae*) जो छोटे-छोटे (लगभग ½ मिलिमीटर) लालिमा लिये बैंगनी बिन्दुओं के रूप में होते हैं। उक्त वृक्षोंपर आश्रय एवं आहार के लिए उपयुक्त स्थान पर चिपक जाते हैं। वहीं वृक्ष-रस को ग्रहणकर यह अपना जीवन निर्वाह एवं शारीरिक वृद्धि करते हैं। इसी समय इनसे रालीयस्राव निकलकर टहनियों पर जमता जाता है। यही लाक्षा होती है। लगभग १ माह में नरकीट प्रगल्भ हो जाते हैं, और उस समय यह प्रायः पंखयुक्त हो जाते हैं। इसके बाद जब स्त्रीकीट का गर्भाधान हो जाता है, तो वह तेजी से भक्षण कार्य करती हैं, और इस समय लाक्षा भी अधिकाधिक मात्रा में उत्पन्न होती है। दो-तीन महीने बाद पुनः अंडे देती है। लार्वा-कीटों का प्रसार एक वृक्ष से दूसरे-दूसरे वृक्ष को हवा के द्वारा होता है। व्यवसायी क्षेत्रों में यह कार्य कृत्रिम उपायों द्वारा भी किया जाता है। इस प्रकार लाक्षोद्भवन वर्ष में दो बार होता है—एक जुलाई के महीने में (विशेषतः उत्तरभारत में) तथा दूसरे दिसम्बर—जनवरी में। उक्त लाक्षा को संग्रहीत कर बाजारों एवं कारखानों में भेजा जाता है।

उपयोगी अंग—रालीयस्राव (*Lac Resin*)।

मात्रा। ०.५ ग्राम से १.५ ग्राम या ४ रत्ती से १२ रत्ती (१½ माशा)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—पहले लाक्षा लगी पतली-पतली टहनियों (*Stick Lac*) को एकत्रित करते हैं। इससे लाक्षा (*Seed Lac*) को पृथक् कर लिया जाता है। इसी को विरंजित करके व्यावसायिक चपड़ा (*Shellac*) तैयार किया जाता है। पाश्चात्य भैषज्य-कल्पना में इसका उपयोग गुटिका एवं चक्रिकावगुण्ठन (*enteric coating for pills and tablets*) के लिए किया जाता है। यह अपद्रव्यों से शुद्ध होता है। आयुर्वेदीय भैषज्य-कल्पना में लाक्षा (*Seed Lac*) का ही व्यवहार होता है। इसके गुलाबी-धूसरित वर्ण के छोटे-बड़े दाने अथवा ढेलानुमा टुकड़े पंसारियों के यहाँ मिलते हैं। कल्पों में डालने के पूर्व इसका शोधन किया जाता है। इससे अपद्रव्य पृथक् होकर शुद्ध लाक्षा प्राप्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—लाक्षा को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन। लाक्षा में मुख्यतः रालीयघटक (*Resin*) तथा इसके अतिरिक्त कुछ मोमीयतत्त्व (*Wax*) एवं रंजक द्रव्य (*pigmentlaccin*) आदि उपादान होते हैं।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—कफ-पित्तशामक, स्तम्भन, वर्ण्य, सन्धानीय, शोणितस्थापन, कफघ्न, त्वग्दोषहर, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, कृमिघ्न, अतिसार-प्रवाहिका नाशक, रक्त-पित्तहर तथा हिक्का, श्वास एवं उरःक्षत में उपयोगी। यूनानीमतानुसार लाक्षा दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे में खुश्क होती है।

मुख्ययोग। लाक्षादितैल।

विशेष—'लाख' लेखन एवं विलयन है। यह शरीर का शोधन करती है और रक्त को बन्द करती तथा श्लेष्मनिःसारक एवं शरीर के द्रवों का अभिशोषण करने वाली है। यकृत् तथा आमाशय को शक्ति देती और विशेषतः रक्तष्ठीवन को बन्द करनेवाली है। रक्तष्ठीवन बन्द करने के लिए ०.५ ग्राम से १ ग्राम या आधा माशा से १ माशा तक धोयी हुई लाख (लुक् मस्सूल) बकरी के ताजे दूध के साथ खिलाते हैं। द्रवशोषणकर्ता होने से शरीर को कृश करने के लिए ०.५ ग्राम से २ ग्राम या आधा माशा से २ माशा तक खिलाते हैं। जीर्ण-ज्वरों में लाक्षादितैल की मालिश की जाती है।

लाल चन्दन—दे०, 'चन्दन लाल'।

लाल बहमन—दे०, 'बहमन लाल'।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिसोढा (श्लेष्मातक)

नाम। (१) बड़ा लिसोढ़ा। सं०–श्लेष्मातक, बहुवार, कर्बुदार, शेलु। हिं०–लसोढ़ा, लिसोढ़ा, ल(लि)टोरा, लफेड़ा(रा), व्योहार। बं०–बहुवार। म०–भोंकर। गु०–बड़ गूँदा, गूंदा। को०–हेमरम। संथा०–कुच। खर०–बहुवार, बेलोजाँ। अ०–सफ़िस्ताँ। फा०–सपिस्ताने कलाँ, सपिस्ताँ। अं०–लार्ज सेबेस्टन-प्लम (*Large Sebesten-Plum*)। ले०–कॉर्डिआ ऑब्लीक्वा **Cordia obliqua** *Willd.* (*Syn. C. dichotoma Forst. f.*)।

(२) छोटा लिसोढ़ा। सं०–श्लेष्मातक, भूकर्बुदार, भूशेलु। हिं०–छोटा लिसोढ़ा, लटोरा, गोंदनी, गोंदी। गु०–गूँदी। द०–गोदनी। अं०–स्माल सेबेस्टन प्लम् (*Small Sebesten-Plum.*)। ले०–कॉर्डिआ मीक्सा (**Cordia myxa** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। श्लेष्मातक-कुल (बोराजीनासे : *Boraginaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में इसके लगाये हुए एवं जंगली दोनों प्रकार के वृक्ष मिलते हैं। सुखाये हुए फल पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। बड़े लिसोढ़ा के मध्यम ऊँचाई के पतझड़ करनेवाले या पर्णपाती वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० (३ इञ्च से ६ इञ्च) लम्बी, ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इञ्च से ४ इञ्च) चौड़ी, चौड़ी-लटवाकार होती हैं, किन्तु रूपरेखा में नानारूपिता पायीजाती है। किनारे गोलदन्तुर (*crenate*) या लहरदार (*wavy*) होते हैं। बनावट में चर्मिल (*coriaceous*), आधार गोलाकार या उत्तरोत्तर कमचौड़ा होकर स्फानाकार (*cuneate*), शिराएँ ४ युग्म से ६ युग्म तथा नयी पत्तियाँ अधःपृष्ठ पर मृदुरोमावृत होती हैं। पर्णवृन्त १.२५ सें० मी० से ५ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च से २ इंच) लम्बे होते हैं। पुष्प श्वेत, प्रायः पंचभागी (*pentamerous*) होते हैं, जो समशिख मञ्जरियों (*corymbose cymes*) में निकलते हैं। प्रायः एक ही वृक्ष पर एकलिंगी एवं उभयलिंगी दोनों प्रकार के ही पुष्प पाये जाते हैं। बाह्यकोष २.५ मि० मी० से ३.७५ मि० मी० ($\frac{1}{10}$ इञ्च से $\frac{3}{10}$ इञ्च) लम्बा, दाँतदारकटावयुक्त तथा फलों के साथ भी लगा होता (*accrescent in fruit*) है। आभ्यन्तर–कोषनलिका अन्दरकी ओर रोमश तथा खण्ड (*corolla lobes*) २.५ मि० मी० से ३ मि० मी० ($\frac{1}{10}$ इञ्च से $\frac{3}{10}$ इञ्च) लम्बे होते हैं। अष्ठिफल (*drupes*) कच्ची अवस्था में हरे, किन्तु पकनेपर पीलापन लिये सफेद हो जाते हैं, जिसमें गाढ़ा, चिपचिपा और मीठा गूदा होता है। 'कच्चेफल' का अचार और 'पकेफल' का शाक बनाया जाता है।

उपयोगी अंग–फल, पत्र एवं छाल।

मात्रा। बड़ा लसोढ़ा–५ से १५ दाना।

छोटा लसोढ़ा या सूखी गोंदनी का चूर्ण–६ माशा से १ तोला।

शर्बत लसोढ़ा–१ से २ तोला।

त्वक् क्वाथ–२$\frac{1}{2}$ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–(१) बड़ेलिसोढ़े का अष्ठिलफल (*Drupe*) प्रायः गोलाकार, व्यास में २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १$\frac{1}{2}$ इञ्च) किन्तु दोनोंसिरों पर अन्दर को धँसा हुआ या खातोदर होता है, जिसमें निचले सिरे का खात अपेक्षाकृत अधिक गहरा होता है। कच्ची अवस्था मे हरेरंग का तथा पकनेपर पीताभ श्वेत तथा सूखने पर मटमैले रंग का तथा झुर्रीदार (*shrivelled*) होता है। गुठली (*nut*) प्रायः गोलाकार तथा चिपटी (*laterally compressed*), बाह्यतल पर झुर्रीदार (*rugose*) एवं दोनों सिरों पर खातोदर होती है। गुठली के चारों ओर स्वच्छ, गाढ़ा एवं चिपचिपा मीठा गूदा काफी मात्रा में होता है, जो आसानी से पृथक् किया जा सकता है। गुठली अन्दर ४–कोष्ठोंवाली होती है, परन्तु प्रत्येक फल में प्रायः १ बीज निकलता है, जो रूपरेखा में लट्वाकार-आयताकार होता है। गुठली को काटने पर इसमें से एक अरुचिकारक गन्ध निकलती है। (२) गोंदनी या छोटे लिसोढ़े का अष्ठिलफल (*Drupe*)–गोलाकार, पकने पर पीला होता है। आधार की ओर स्थायी पुटचक्र की चोटी-सी लगी होती है। गुठली हृदयाकार (*cordate*) होती है, जिसके चारों ओर चिमड़ा, चिपचिपा गूदा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता है। सूखने पर दोनों ही के फलों का बाह्यतल झुर्रीदार (*shrivelled*) होता है। बड़े लिसोढ़े का गूदा गुठली से आसानी से पृथक् किया जा सकता है। गुठली को यदि काटा जाय, तो एक तीव्र अरुचिकारक गन्ध निकलती है।

संग्रह एवं संरक्षण—कच्चे या पक्व फलों को सुखाकर मुखबन्द डब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—फल के गूदे में शर्करा, निर्यास और भस्म तथा छाल में टैनिन पायी जाती है।

वीर्यकालावधि। १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल। रस—मधुर। (छाल—कषाय और तिक्त)। विपाक—(फलका) मधुर तथा छालका कटु। वीर्य—शीत। प्रभाव—विषघ्न। कर्म (फल)—वातपित्तशामक, कफवर्धक, विषघ्न, व्रणशोधन—रोपण, कुष्ठघ्न, स्नेहन, तृष्णानिग्रहण, रक्तपित्तशामक, कफनिस्सारक, श्वासनलिकामार्दवकर, मूत्रजनन, वृष्य। (छाल) कफपित्तशामक, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, त्वग्रोगहर, ग्राही आदि। यूनानीमतानुसार यह समशीतोष्ण तथा प्रथम कक्षा में स्निग्ध होता है। अहितकर—यकृदामाशय—दौर्बल्यजनक। निवारण—उन्नाव एवं गुलाबपत्र।

मुख्ययोग—शर्बतलसोढ़ा, लऊकसपिस्ताँ। इसे वनप्सादि क्वाथ में भी मिलाते हैं।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) विषघ्न महाकषाय में 'श्लेष्मातक' भी है।

पठानीलोध (लोध्र)

नाम। सं०—लोध्र, रोध्र, शावर, स्थूलवल्कल, पट्टिकालोध्र। हिं०—लोध, पठानीलोध। पं०—पठानीलोध। बं०—लोध। म०—लोध्र। गु०—लोधर। मा०—लोद। कु०—लोधिया। था०—लोध। को०—लुदम्। संथा०—लोदम्। ले०—सीम्प्लोकॉस रासेमोसा (**Symplocos racemosa** *Roxb.*)। लेटिन नाम वृक्ष का है।

वानस्पतिक-कुल। लोध्र-कुल (सीम्प्लोकॉसे *Symplecaceaae* या स्टीरासे *Styraceae*)।

प्राप्तिस्थान। उत्तर-पूरब भारतवर्ष में (हिमालय की तराई में कुमायूँ से लेकर आसाम तक) एवं बंगाल (बर्दवान, मिदनापुर), बिहार, छोटानागपुर तथा दक्षिण में (मलाबार के जंगलों में) ७६१.५ मीटर या २.५०० फुट की ऊँचाई तक लोध के जंगली वृक्ष पाये जाते हैं। काण्डत्वक् (छाल) का व्यवहार औषधि में होता है, जो बाजारों में 'पठानीलोध' के नाम से बिकती है।

संक्षिप्त-परिचय। सीम्प्लोकॉस रासेमोसा के ३.६५ मीटर से ६—७.६ मीटर (१२ फुट से लेकर २० फुट से २५ फुट) ऊँचे छोटे-छोटे, सदाहरित वृक्ष होते हैं। काण्डस्कन्ध की मोटाई का व्यास साधारणतः १५ सें० मी० से ३० सें० मी० ($\frac{1}{2}$ फुट से १ फुट) होता है। छाल खुरदरी तथा खाकस्तरी या गाढ़े खाकस्तरीरंग की होती है, जिसका बाह्यस्तर कार्कयुक्त (*corky*) एवं पतले छिलकेदार होती है। काट (*blaze*) ८.३ मि० मी० से १२.५ मि० मी० ($\frac{1}{3}$ इञ्च से $\frac{1}{2}$ इञ्च) तक तथा रेशेदार पीतवर्ण का होता है, जिसपर लालिमालिये भूरे-रंग की रेखाएँ या बिन्दु होती हैं। पत्तियाँ साधारण (*simple*), अननुपत्र या अनुपपत्र (*exstipulate*), छोटे वृन्तयुक्त, १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च तक (कभी-कभी अधिक) लम्बी, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इञ्च से २ इञ्च) चौड़ी, अण्डाकार—आयताकार रूपरेखा लिये लट्वाकार-सी अथवा चौड़ी भालाकार, नुकीले अग्रवाली अथवा अग्र लम्बा किन्तु कुण्ठित अथवा कुण्ठिताग्र और सूक्ष्म गोलदन्तुर या आरावत् दन्तुरधारवाली (कोई-कोई सरलधारयुक्त) होती हैं, तथा एकान्तरक्रम से स्थिर होती हैं। कोमल पत्तियों का ऊर्ध्वपृष्ठ चिकना किन्तु अधःपृष्ठ मृदुरोमश होता है, किन्तु बड़ी होने पर प्रायः दोनों ही पृष्ठ चिकने हो जाते हैं। मध्यशिरा से प्रायः ९ जोड़े पार्श्व—शिराएँ निकली होती हैं, जो हरी पत्तियों में तो बहुत स्पष्ट नहीं मालूम होतीं, किन्तु पत्तियों के सूखने पर अधिक स्पष्ट होती हैं। पुष्प पीताभ-श्वेत, सवृन्त तथा व्यास में १ सें० मी० से १.२५ सें० मी० ($\frac{3}{8}$ इञ्च से $\frac{1}{2}$ इञ्च) होते हैं, जो २.४ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च लम्बी कोणोद्भूत या शाखाग्र-मञ्जरियों में निकलते हैं। मञ्जरियाँ मृदुरोमावृत होती हैं। बाह्य कोश ५ खंडोंवाला तथा स्थायी (*persistent*) होता है। आभ्यन्तरकोश बाह्यकोश से तिगुना बड़ा तथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह भी ५-खण्डोंवाला होता है। पुंकेशर संख्या में अनेक होते हैं, जो कई-कई पंक्तियों में स्थित होते हैं। अष्ठिफल (*Drupe*) आयताकार या कुछ गोलाकार-सा, मांसल, बाह्यतल पर चिकना, ८.३ मि० मी० से १२.५ मि० मी० ($\frac{1}{3}$ इच से $\frac{1}{2}$ इच) लम्बा, कृष्णाभ बैंगनीरंग का तथा शीर्षपर स्थायी बाह्यकोष से युक्त होता है। गुठली (*endocarp*) कड़ी एवं उन्नत रेखाओं से युक्त होती है। प्रत्येक फल में १-३ बीज होते हैं, जो आयताकार तथा प्रचुर भ्रूणपोष या एंडोस्पर्म (*endosperm*) युक्त होते हैं। रंगने के लिए अथवा रंग पक्का करने के लिए काष्ठक्षार मिलाया जाता है। काण्ड्वक् (छाल) आयुर्वेद की प्रसिद्ध संग्राही औषध-द्रव्य है।

उपयोगी अंग—छाल (ताजी या सुखाई हुई)।

मात्रा। चूर्ण —१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

क्वाथ—२$\frac{1}{2}$ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। लोध के खातोदर या नालीदार (*channelled*) या अन्दर को किंचित् मुड़ेहुए (*curved*) छोटे-बड़े टुकड़े होते हैं, जिसके बाह्यतल पर अनुप्रस्थ दिशा में दरारें पड़ी रहती हैं। बाहर से छाल सफेदी लिये लाल या खाकस्तरीरंग की और खुरदरी, अन्तस्तल पर पीताभरंग की होती है, और अन्तर्वस्तु लाल रंग का होता है। तोड़ने पर बाह्यभाग खटसे तथा दानेदार टूटता (*short and granular fracture*) है, और अन्दर का भाग रेशेदार (*fibrous*) होता है। स्वाद में लोध की छाल कसैली और सुगन्धित होती है। अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में रखने से सुगन्धि और भी स्पष्ट होती है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक होते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—लोध की उपर्युक्त जाति के अतिरिक्त इसकी अन्य दो जातियों की छाल का भी व्यवहार लोध्र के नाम से ही होता है। (१) सीम्प्लोकॉस क्राटीगोइडेस **Symplocos crataegoides** *Buch. Ham.* (पर्याय—*S. paniculata*)। (२) सीम्प्लोकॉस स्पीकाटा (**Symplocos spicata** *Roxb.*)। सीम्प्लोकॉस क्राटीगोइडेस के बड़े गुल्म या मध्यमकद के वृक्ष होते हैं, जो हिमालय प्रदेश मे (सिंध नदी की घाटी से लेकर पूरब में आसाम तक २८६५.५ मीटर या ९,००० फुट की ऊँचाई तक) तथा खसिया की पहाड़ियों पर पाये जाते हैं। इसकी कोमल शाखाएं सूक्ष्ममृदुरोमावृत होती हैं। पत्तियाँ ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इञ्च ४ इञ्च) लम्बी, अंडाकार, या लट्वाकार-अंडाकार, अग्रपर सहसा नुकीली अथवा लम्बे नुकीले अग्रवाली, आधारपर गोलाकार या मुण्डित अर्थात् स्फानाकार (*cuneate*) तथा पृष्ठतल चिकना या मृदुरोमावृत होता है। पर्णवृन्त छोटे होते हैं। पुष्प सवृन्त, प्रायः सफेद रंग के (कभी पीले) तथा सुगंधित होते हैं, जो कोणोद्भूत या शाखाग्रय समशिख गुच्छाकारमञ्जरियों में निकलते है। अष्ठिलफल प्रायः गोलाकार यास में ८.३ मि० मी० या $\frac{1}{3}$ इञ्च तक तथा शीर्षपर स्थायी पुटचक्र युक्त और पकने पर काले हो जाते हैं। इसकी छाल श्वेताभ तथा कार्कयुक्त होती है, जिसपर खड़ी दरारें पड़ी होती हैं। सीम्प्लोकॉस स्पीकाटा—यह जाति प्रायः भारतवर्ष के अधिकांश भागों (कुमायूँ से भूटान, आसाम, मर्तबान, पूर्वी बंगाल, सिंहभूमि, पूर्वी घाट, विजिगापट्टम्, कर्नाटक, शेवरी एवं कालीमलाइ की पहाड़ियाँ, पश्चिमीघाट तथा ट्रावन्कोर-कोचीन के मैदानी भाग) में पाई जाती है। केरलप्रान्त में लोध्र के नाम से इसी के छाल का व्यवहार होता है। सिंहभूमि में भी इसके गुल्म पाये जाते हैं। कोलभाषा में इसे मारंग (बड़ा) लुदम कहते हैं। इसके भी साधारणतया बड़े गुल्म या मध्यमाकारी वृक्ष होते हैं, किन्तु अनुकूल परिस्थिति में कभी-कभी काफी ऊँचे (१८.३ मीटर या ६० फुट तक) एवं मोटे काण्ड-स्कन्ध युक्त (१.८ मीटर या ६ फुट व्यास के) वृक्ष भी मिलते हैं। पत्तियाँ साधारण, एकान्तरक्रम से स्थित, अननुपत्र या अनुपपत्र, प्रायः विनाल या बहुत छोटे वृन्तयुक्त तथा १७.५ सें० मी० या ७ इञ्च तक लम्बी और ६.२५ सें० मी० या २$\frac{1}{2}$ इञ्च तक चौड़ी होती हैं। पुष्प छोटे अवृन्त (*sessile*), श्वेत या पीताभ-श्वेत तथा सुगंधित होते हैं, जो कोणोद्भूत सघन गुच्छाकार मञ्जरियों में निकलते हैं। इसका भी अष्ठिफल गोलाकार या कुछ शंक्वाकार (*ampuliform*), व्यास में ६.२५ मि० मी० या $\frac{1}{4}$ इंच तथा १२ हल्की पशुकाओं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से युक्त होता है। पुष्पागम दिसम्बर से मई तक, एवं फल अप्रैल से जून तक होते हैं। कभी-कभी वृक्ष में साल में दो बार पुष्पागम होता है। इसकी पतली शाखाओं की छाल २.५ मि० मी० या $\frac{1}{10}$ इंच तक मोटी और खाकस्तरी हरिताभ से सलेटी-खाकस्तरी रंग की होती है। काण्डस्कन्ध एवं मोटी शाखाओं की छाल अपेक्षाकृत मोटी (१.२५ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इंच तक) और खाकस्तरी या सलेटी खाकस्तरी रंग की होती हैं। बाह्यत्वक् काफी पतली होती है, जो ताजी छाल में तो आसानी से पृथक् हो जाती है, किन्तु सूखने पर छाल से मजबूती के साथ चिपकी होती है। छाल का मध्य एवं अन्तर्भाग हल्के भूरेरंग का तथा कुछ दानेदार होता है। औषधीय दृष्टि से यही सक्रिय अंश होता है।

वक्तव्य—बाजार में जो लोध की छाल मिलती है, वह इन वृक्षों की सामान्य छाल से बहुत भिन्न-सी मालूम पड़ती है। सम्भवतः पश्चिमी पहाड़ी देशों में जहाँ से यह छाल आती है, ये ही वृक्ष ऊँचाई, मोटाई आदि में कुछ भिन्नता रखते हों। कुछ विद्वानों ने डेस्मोडियम् पुलच्चेल्लुम **Desmodium pulchellum** *Benth.* (*Leguminoseae*) को भी लोध का नाम दे दिया है। किन्तु भारतवर्ष में कहीं भी इसके लिए लोध के नाम का व्यवहार नहीं होता और न होना ही चाहिए।

(लेखक)

संग्रह एवं संरक्षण—लोध की छाल को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—छाल में ०.३२% तक इसके ऐल्केलॉइड्स पाये जाते हैं, जिनमें ३ मुख्य हैं—(१) लोटूरीन (*Loturine* ०.२४%), लोटूरिडीन (*Loturidine* ०.०६%) तथा कॉल्यूटूरीन (*Colluturine* ०.०२%)। इनमें प्रथम तथा तृतीय क्रिस्टलाइनस्वरूप के तथा द्वितीय अक्रिस्टली रूप (*amorphous*) होता है। इन क्षारोदों के डायल्यूट एसिड सॉल्यूशन में गाढ़े नीलबैंगनीरंग की आभा (*Fluorescence*) पायी जाती है। इनके अतिरिक्त छाल में काफी मात्रा में लालरंजक द्रव्य भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। प्रधानकर्म—(बाह्यप्रयोग से) संकोचक, रक्तस्तम्भन, व्रणरोपन, शोथहर तथा आभ्यन्तरसेवन से स्तम्भन, रक्तशोधक एवं रक्तस्तम्भक, शोथहर, गर्भाशय शोथ एवं स्रावनाशक तथा कुष्ठघ्न एवं ज्वरघ्न आदि। गर्भाशयशोथ, गर्भस्राव एवं रक्त तथा श्वेतप्रदर में लोध्र के क्वाथ की उत्तरवस्ति देने तथा 'लोध्रासव' के मौखिक सेवन से बहुत लाभ होता है।

मुख्य योग—लोध्रासव, लोध्रादि क्वाथ।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय एवं शोणितस्थापन महाकषाय तथा कषायस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में 'लोध्र' की भी गणना है। सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) लोध्रादि, अम्बष्ठादि तथा न्यग्रोधादि गण में भी 'रोध्र' तथा 'सा (शा) बर रोध्र' का उल्लेख है।

लोबान

लोबान एक सुगन्धित राल (*Balsamic Resin*) होता है, जो स्टीरक्स बेंजोइन (**Styrax benzoin** *Dryand.*), स्टीराक्स पाराल्लेलोनेउरम (**S. parallelo-neurum** *Perkins*) एवं स्टीराक्स टोंकिनेन्सिस (**Styrax tonkinensis** *Craib*) एवं उसी जाति के विभिन्न वृक्षों के काण्डपर चीरा लगाने से प्राप्त होता है, और वायु लगने से जम जाता है। स्टीराक्स बेंजोइन को अरबी में 'ज़िर्ब' और फारसी में 'कमकाम' कहते हैं। व्यवसाय में प्रथम दो वृक्षों से प्राप्त लोबान को 'कौड़ियालोबान' या 'सुमात्रालोबान (*Sumatra Benzoin*)' तथा तीसरे वृक्ष के लोबान को 'स्याम लोबान' (*Siam Benzoin*) कहते हैं।

नाम। हिं०—लोबान, लोहबान। बं०—लोबान। म०, क०, द०—ऊद। गु०—लोबान। ता०—साम्ब्राणी। ब्रह्मा—लोबाँ। अ०—अल्जावी, हसीलु(लो)बान। फा०—हस्तलुब। ले०—बेंज़ोइनुम (*Benzoinum*)। अं०—बेन्जोइन (*Benzoin*), गम-बेन्जमिन (*Gum-Benjamin*)।

वानस्पतिक-कुल। लोध्र-कुल (स्टीरासे : *Styraceae*)।

प्राप्तिस्थान—जावा, सुमात्रा और स्याम। भारतवर्ष में लोबान का आयात मुख्यतः पेनांग (सुमात्रा) से होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपयोगी अंग–सुगन्धित रालीय निर्यास (लोबान)।

मात्रा। लोबान–२५० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक २ रत्ती से ८ रत्ती तक। लोबानका सत—१२५ मि० ग्रा० या १ रत्ती तक।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–(१) कौड़िया लोबान या सुमात्रा लोबान–इसकी कड़ी एवं भंगुर डलियाँ होती हैं, जिनका रंग सफेद या ललाईलिये भूरा, दागदार या चितकबरा होता है। यह स्वाद में किंचित् कड़वा होता है, तथा इसमें एक रुचिकारक सुगन्धि पायी जाती है। (२) इसके चपटें अश्रुवत् दाने (*tears*) होते हैं, जो ३.१२५ मि० मी० से १० मि० मी०, २० मि० मी० से ५ सें० मी० (⅛ इञ्च से ⅜ इञ्च, ⅛ इञ्च से २ इञ्च) तक चौड़े तथा १ सें० मी० या ⅜ इञ्च मोटे, रूपरेखा में त्रिपार्श्विक, तक्वाकार, लम्बगोल या त्रिपार्श्विक या चतुष्कोणाकार होते हैं। बाहर से यह भूरापन लिये लालरंग के तथा चमकदार (राल की भाँति) और तोड़ने पर अन्दर से सफेद होते हैं। डलियाँ या ढेले (*Blocks*) छोटे-बड़े व्यास में ६.२५ सें० मी० से १० सें० मी० (२½ से ४ इञ्च) तक होते हैं, जिनमें अश्रुवत् दाने एक रालदार पदार्थ के द्वारा परस्पर चिपके होते हैं। तोड़वे पर यह सहज में टूट जाता है। उत्ताप से यह पहले नरम हो जाता और फिर जलने लगता है। सुगन्धि मनोरम, एवं स्वाद में किंचित् कड़वा होता है। लोबान में ३०% से ६०% तक बाल्सेमिक एसिड्स (सिनेमिक एसिड्स) पाये जाते हैं। भस्म अधिकतम २% तक प्राप्त होती है। निर्वीर्य लोबान में बाल्सेमिक ईस्टर्स नहीं पाये जाते।

संग्रह एवं संरक्षण–लोबान को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों मे रख कर ठंढी जगह में संरक्षण करना चाहिए।

संगठन–इसमें लोबानाम्ल या बेंजोइक एसिड (*Benzoic Acid*), सिन्नेमिक एसिड (*Cinnamic Acid*) एवं वैनिल्लिन (*Vanillin*) ये तीन राल और उत्पत् तेल प्रभृति तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–रूक्ष, लघु। रस–मधु। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–कफवातशामक, पित्तवर्धक; पूतिहर, जन्तुघ्न, दुर्गन्धनाशक, वेदनाहर, व्रणरोपण एवं उत्तेजक, वेदनास्थापन, कफनिस्सारक एवं कफ-दुर्गन्धनाशक, मूत्रजनन (एवं मूत्रगताम्लताजनक), गर्भाशयशोथहर, बाजीकरण, स्वेदजनन एवं ज्वरघ्न आदि। इसका उत्सर्ग फुफ्फुस, वृक्क एवं त्वचा से होता है। यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में उष्ण एवं पहले में खुश्क है। अहितकर–उष्ण प्रकृति को। निवारण–रोगन बनफशा एवं काहू।

वंशलोचन

नाम। सं०–त्रंशरोचना, वंशरोचन, तुगाक्षीरी, वंशकर्पूर, त्वक्क्षीरा। हिं०–वंशलोचन। गु०–वंशलोचन, वांसकपूर। अ०, फा०–तवाशीर। अं०–बैम्बू मन्ना (*Bamboo Manna*)। (वनस्पति) सं०–वंश, वेणु, त्वक्सार, कीचक, तृणध्वज, शतपर्वा, यवफल। हिं०–बाँस। बं०–बाँश। गु०–वाँस। म०–बाँबू। अ०–क़सब। अं०–बैम्बू (*Bamboo*)। ले०–बांबूसा आरुंडीनासेआ **Bambusa arundinacea** *Retz.* (पर्याय–*B. bombos Druce.*)।

वानस्पतिक-कुल। तृण-कुल (ग्रामीने : *Gramineae*)।

प्राप्तिस्थान–बाँस प्रायः सर्वत्र भारतवर्ष में (विशेषतः दक्षिणभारत में पश्चिमी-घाट की तराई) उड़ीसा, आसाम, पूर्वी बंगाल, हिमालय की तराई, गंगा एवं सिंध के कछार में) पाया जाता है। इसके अतिरिक्त मलाया, सिंगापुर एवं पूर्वी-द्वीपसमूह में भी प्रचुरता से होता है। मादा बाँस के खोखले भाग से वंशलोचन प्राप्त होता है। यह पहले पतले द्रव के रूप में खोखले भाग में संचित होता है, और उसके बाद जमकर सूख जाता है। भारतवर्ष में वंशलोचन का अधिक आयात सिंगापूर से होता है. जो प्रायः पूर्वी-द्वीपसमूह का संग्रहीत तवाशीर होता है। यह प्रथम बम्बई एव कलकत्ता बाजार में आता है, और व्यवसायी इसको सस्कारित (पाक) कर अन्य बाजारों में भेजते हैं। पिछले महायुद्ध में बाहरी आयात बन्द हो जाने पर तथा द्रव्यों की मँहगाई बढ़ जाने से 'नकली वंशलोचन' का भी निर्माण होने लगा है। सम्प्रति सस्ते मूल्य पर मिलने वाले होनकोटि के वंशलोचन में नकली का मिलावट बहुत अधिक होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त-परिचय। बाँस तृण-कुल में होनेवाला बहुत ऊँचा पौधा होता है, जिसका काण्ड २१.९५ मीटर से २७ मीटर या ७२ फुट से ९० फुट तक ऊँचा होता है। मोटाई का व्यास १५ सें० मी० से २० सें० मी० या ६ इञ्च से ८ इञ्च तक होता है। मूलस्तम्भ काफी मोटा होता है, तथा इसीसे यह शीघ्रतापूर्वक अपनी संख्यावृद्धि करता है। इसकी ग्रन्थियाँ (*nodes*) अत्यन्त स्पष्ट होती है, और निचली ग्रथियों से आगन्तुक मूल निकलकर वृक्ष को सहारा देते हैं। काण्ड प्रायः सीधा खड़ा होता है, किन्तु अधिक ऊँचा होने पर ऊर्ध्व भाग नीचे को झुक जाता है। ग्रन्थियों पर छोटी-छोटी नुकीली शाखाएँ होने से बाँस का वृक्ष कंटकित-सा प्रतीत होता है। अन्दर से बाँस का काण्ड पोला होता है। समस्त काण्ड चर्मिल पत्रकोषों से आवृत होता है। पत्तियाँ १७.५ सें० मी० से २० सें० मी० या ७ इञ्च से ८ इंच तक लम्बी तथा २.५ सें० मी० या १ इंच तक चौड़ी, रूपरेखा में रेखाकार-भालाकार तथा अग्र नुकीला एवं कड़ा होता है। काफी पुराना होने पर बाँस में पुष्प-फल लगते हैं। पुष्पागम गर्मियों के दिनों में होता है, और उस समय समस्तकाण्ड सशाख पुष्पदण्डों से आवृत होता है। फल (*Grain*) रूपरेखा में आयताकार लम्बगोल तथा ५ मि० मी० से ८.३ मि० मी० ($\frac{1}{5}$ इंच से $\frac{1}{3}$ इंच) लम्बे, एक पार्श्व पर खातोदर और शीर्ष पर कुक्षिवृन्त के अवशेष के लगे रहने से चोंचदार मालूम होता है। आपाततः देखने में यह यवाकार होता है, जिससे इनको 'वंशयव' कहते हैं। बाँस की अनेकों जातियाँ पायी जाती हैं। यह एक प्रसिद्ध व्यावसायिक द्रव्य है।

उपयोगी अंग। वंशलोचन, मूल, पत्र, पत्रांकुर, बीज।

मात्रा। वंशलोचन—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। वंशलोचन के सफेदरंग के अथवा अपारदर्शक नीली आभालिये सफेदरंग के तथा पारभासी एवं अनियमित रूपरेखा के छोटे-बड़े टुकड़े होते हैं। बड़े टुकड़े २.५ सें० मी० या १ इञ्च व्यास तक भी होते हैं, जिनका एक पृष्ठ उन्नत तथा दूसरा तल कुछ नतोदर (*concavo-convex*) होता है। उक्त रूप बाँस के पोर या गाँठ (जिससे प्राप्त हुआ होता है) के अनुरूप बनने के कारण होते हैं। बाँस से प्राप्त नैसर्गिक वंशलोचन तो कुछ काली आभालिये तथा मटमैला होता है। इसे विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा पकाकर साफ किया जाता है, जिससे व्यवसाय में व्यवहृत करने के योग्य हो जाता है, जो वजन में हल्का, रंग में हल्की नीली आभा लिये सफेद सीप के समान होता है, उसे 'तबाशीर सद्फ़ी' या 'तबाशीर कबूद' कहते हैं। यह उत्तम समझा जाता है। असली वंशलोचन श्वेतवर्ण का एवं उसमें किंचित् नीली झांई दिखाई देती है, जो नकली वंशलोचन में भी पायी जाती है। यह साधारण कड़ा होता है और हाथ की अंगुलियों से दबाने पर शीघ्र टूट नहीं जाता। यह पानी को सोख लेता है, किन्तु शीघ्र नहीं घुलता। इसपर पानी डालने से यह पारदर्शक हो जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—वंशलोचन को वायु-धूलरहित अनार्द्र-शीतल स्थान में बन्द डिब्बों में रखें।

संगठन—वंशलोचन में ९०% तक सिलिका तथा मंडूर, सुधा (*Lime*) ऐलुमिनियम् एवं पोटास प्रभृति तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। रस—कषाय, मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—वातपित्तशामक, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, हृद्य, रक्तस्तम्भक, कफनिस्सारक, श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, बल्य, बृंहण आदि। यूनानी मतानुसार वंशलोचन शीत एवं रूक्ष है।

मुख्य योग—सितोपलादि चूर्ण, तालीशादि चूर्ण, क़ुर्स तबाशीर।

विशेष—आजकल वंशलोचन का मूल्य बहुत बढ़ जाने से 'नकली वंशलोचन' या तदनुरूप द्रव्य भी मिलाये जाते हैं।

वचा (बच) घोड़बच

नाम। (१) घोड़बच (सं०)वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमी, रक्षोघ्नी, शतपर्विका। हिं०—बच, बछ, घोड़बच। बं०—बच। गु०—घोड़ावज। म०—वेखंड।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फा०—अगरेतुर्की, कारूनक। अ०—(मखज़न एवं मुहीत आज़म) वज (वज्ज), ऊदुल्वज्ज। अं०—स्वीट-फ्लैग (*Sweet-Flag*), कैलेमस-रूट (*Calamus-Root*)। ले०—कालामुस *Calamus*। (वनस्पतिका नाम)—आकोरुस कालामुस **Acorus calamus** *Linn.* (२) बालवच—इसका वर्णन आगे स्वतंत्र शीर्षक में किया जायगा।

वानस्पतिक-कुल। सूरण-कुल (आरासे *Araceae*)।

प्राप्तिस्थान—यह पूर्वी यूरोप एवं मध्य-एशिया का आदिवासी पौधा है। भारतवर्ष में सर्वत्र (हिमालय प्रदेश में १८२८.८ मीटर या ६,००० फुट की ऊँचाई तक) घोड़बच के स्वयंजात एवं लगाये हुए दोनों प्रकार के पौधे मिलते हैं। मणिपुर और नागा की पहाड़ियों में तथा कश्मीर में झीलों और सोतों के किनारे यह पुष्कल होता है। इसके सूखाये हुए मूलस्तम्भ या भौमिककाण्ड (*rhizome*) बाजारों में 'घोड़बचनाम' से बिकता है।

संक्षिप्त परिचय। घोड़बच के ६० सें० मी० से १.५ मीटर या २ फुट से ५ फुट ऊँचे कोमल क्षुप होते हैं, जो जलाशयों के पास तथा दलदली भूमि में पुष्कल होते हैं। पत्तियाँ ईरसा (*Iris*) की पत्तियों की भाँति असिवत् या तलवार की तरह अर्थात् खड्गाकार (*ensiform*) तथा ०.६ मीटर या २ फुट से ४ फुट तक लम्बी और १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इञ्च से १ इञ्च) तक चौड़ी और हरेरंग की, और किनारे किंचित् लहरदार होते हैं। पुष्पव्यूह बालीकी भाँति (*spadix*) होता है, जो ५ सें० मी० से १० सें० मी० (२ इञ्च से ४ इञ्च) लम्बा, अवृन्त (*sessile*) तथा बेलनाकार (व्यास में १२.५ मि० मी० से १८.७५ मि० मी० या ½ इञ्च से ¾ इञ्च) तथा अग्रपर स्थित होता है। इसमें पीताभ-श्वेत पुष्प सघन (ठसाठस) स्थित होते हैं। पत्रकोष (*spathe*) १५ सें० मी० से ७५ सें० मी० (६ इञ्च से ३० इञ्च) तक लम्बा होता है। फल छोटे-छोटे मांसल बेरी (*berries*) होते हैं, जिनमें अनेक बीज होते हैं। इसका मूलस्तम्भ या भौमिककाण्ड अदरख की भाँति भूमि में फैलता है, और मध्यमांगुली के समान स्थूल, ५–६ पर्ववाला, खुरदरा, झुर्रीदार, रोमश, भूरेरंग का और सुगंधित होता है। इसकी पत्तियाँ भी सुगन्धित होती हैं। विदेशों में इससे एक इत्र भी निकाला जाता है।

उपयोगी अंग। मूलस्तम्भ (भौमिककाण्ड या पाताली घड़ (*Rhizome*)।

मात्रा। १२५ मि० ग्रा० से ६२५ मि० ग्रा० या १ रत्ती से ५ रत्ती। वमनार्थ—६२५ मि० ग्रा० से लगभग २ ग्राम या ५ रत्ती से १५ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—वचा की उक्त जड़ें अधस्तल पर चपटी तथा ऊर्ध्वतल बेलनाकार रूपरेखा (*sub-cylindrical*) का होता है। यह प्रायः २० सें० मी० या ८ इंच तक लम्बी और १.८७५ सें० मी० या ¾ इञ्च तक मोटी तथा टेढ़ी-मेढ़ी-सी होती हैं। ताजे भौमिककाण्ड पर सूत्राकार जड़ों की एक माला-सी होती है। इन्हें तोड़ने पर छोटे-छोटे बिन्दुओं के रूप में इनके चिह्न बने होते हैं। बाजार में इनके काटकर सुखाये हुए छोटे-बड़े टुकड़े मिलते हैं, जो बिना छिलका-उतारे (*unpeeled*) होने पर बाहर से हल्के भूरेरंग के होते हैं, तथा ऊर्ध्वतल पर पर्व की भाँति गाढ़े उन्नत चिह्न (*annulate*) पाये जाते हैं, जहाँ शल्कपत्रों के अवशेष (*remnants of circular bud-scales*) तथा बाल की भाँति भूरे तन्तु लगे होते हैं। पार्श्वों में कहीं-कहीं टूटी हुई शाखाओं के गोलाकार बड़े चिह्न तथा अधस्तल एवं किनारों पर टूटी हुई सूत्राकार जड़ों के चिह्न विशेष होते हैं। सूखने पर ऊर्ध्वतल कुछ सिकुड़ा-सा (*shrunken*) होता है, तथा अनुलम्ब दिशा में पतली-पतली दरारें भी पायी जाती हैं। तोड़ने पर यह टुकड़े खट से टूटते हैं, और अन्दर का भाग श्वेत एवं स्पंजी (*spongy*) मालूम होता है। सूँघने में बचा की जड़ों में एक मनोरम सुगन्धि पायी जाती है, तथा स्वाद में यह कड़वी एवं चरपरी या तीती और तीक्ष्ण होती हैं। बचा का चूर्ण हल्के पीताभनारङ्गवर्ण (*weak yellowish-orange*) का होता है। ईरानी बच कुछ कालाई लिये और अधिक सुगन्धित होती है। बचा में विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम १%, कुलभस्म अधिकतम ६%, अम्ल में घुलनशील भस्म अधिकतम ½०% तथा ऐल्कोहॉल् (७०%) में घुलनशीलसत्व कम से कम २०% होता है। **शक्तिप्रमापन** (*Assay*)—बचा की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्तिप्रमापन के लिए इसके प्रतिशतक उत्पत्-तैल का प्रमापन किया जाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–बाजार में व्यापारी कभी-कभी बच के नाम पर देशीकुञ्जन (*Alpinia galanga*) की जड़ें दे देते हैं। "अकोट बच *AKot Bach*" के नाम पर वत्सनाभ की कतिपय जातियों की जड़ दे दी जाती है। अतएव 'बच' नाम के भ्रम से घोड़बच में उक्त द्रव्यों के मिलावट की सम्भावना रहती है। दालों का पिसान (*cereal flours*) एवं खत्मी (*Althoea*) आदि के चूर्ण मिलाये जाते हैं। वचाचूर्ण में स्टार्च के कण अधिकतम १० म्यू (μ) के बराबर होते हैं। बिना छिलका उतारे बचा के चूर्ण में स्क्लेरेन्काइमा (*schlerenchyma*) एवं क्रिस्टलतन्तु (*crystal fibres*) अधिक नहीं पाये जाते।

संग्रह एवं संरक्षण–बचा के टुकड़ों को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र (*dry*) स्थानों में रखना चाहिए। चूर्ण को अच्छी तरह डाटबन्द पात्रों में रखें ताकि अन्दर नमी न पहुँचे।

संगठन–इसमें १½% से ३½% तक एक उत्पत्तैल (*volatile oil*) पाया जाता है, जिसमें पाइनीन (*x-pinene*) एवं कैम्फीन (*Camphene* ०.२%) आदि होते हैं। इसके अतिरिक्त कैलेमेन (*Calamen* ४%), कैलेमेनोल (*Calamenol* ५%), कैलामेनोन (*Calamenon* १%), एसेरोन (*Asaron*) तथा एकोरिन (*Acorin*) नामक एक चिपचिपा या गाढ़ा तथा ग्लाइकोसाइड स्वरूपका तिक्तसत्व एवं कैलामीन (*Calamine*) नामक भास्मिक तत्त्व, २½% एक रेजिन एवं टैनिन, म्यूसिलेज, स्टार्च तथा कैल्सियम ऑक्जलेट आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण, सर। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–मेध्य। प्रधान कर्म–वाततः वेदनास्थापन एवं शोषहर, वातकफ शामक, पित्तवर्धक, मेध्य, संज्ञास्थापन एवं वेदनास्थापन, दीपन, (अल्पमात्रा में) कटुपौष्टिक, शूलप्रशमन, अनुलोमन, (अधिकमात्रा में) वामक, हृदयोत्तेजक, श्वास-कासहर, कण्ठ्य, मूत्रजनन, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन, ज्वरघ्न (सन्निपातज्वर में विशेष उपयोगी)। यूनानीमतानुसार गरम एवं खुश्क है। अहितकर–उष्ण प्रकृति (पित्त प्रकृति) के लिए। निवारण–सौंफ, सिकंजबीन या नीबू का शरबत। प्रतिनिधि–जीरा, रेवन्दचीनी।

मुख्ययोग–वचाब्राह्मीयोग, वचादिचूर्ण, सारस्वतचूर्ण, मेध्यरसायन।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) लेखनीय, अर्शोघ्न, तृष्णिघ्न, आस्थापनोपग, शीतप्रशमन एवं संज्ञास्थापन महाकषाय तथा विरेचन (सू० अ० ८) और तिक्तस्कन्ध (वि० अ० ८) और शिरोविरेचन द्रव्यों में 'वचा' भी है। सुश्रुतोक्त पिप्पल्यादि, वचादि, मुस्तादि एवं ऊर्ध्वभागहर वर्ग में भी 'वचा' है। वचा की ओर आधुनिक शोधकर्ताओं का ध्यान पुनः आकृष्ट हुआ है, और इसके रासायनिक संगठन, सक्रियघटक तथा उनके भेषज गुणकर्म की दिशा में पर्याप्त शोधकार्य हुए हैं। मनोविकारों (*Psychic disorders*) में यह उपयोगी सिद्ध हुई है।

वक्तव्य–आयुर्वेदीय संहिताओं में 'वचा' के भूरिशः उल्लेख मिलते हैं, जो चरकसंहिता में अपेक्षाकृत कुछ अधिक हैं। इससे लक्षित होता है, कि संहिताकाल में उत्तर-पश्चिम भारत में 'वचा' एक सुविज्ञात एवं सुव्यवहृत ओषधि थी। संहितापरवर्तीकाल में अद्यावधि वचा सर्वत्र विज्ञात एवं प्रचलित है। मध्ययुगीन आयुर्वेदीय-निघण्टुओं में स्वरूप, भौतिक एवं औषधीयगुणकर्म तथा प्राचीन धार्मिक मान्यताओं पर आधारित इसके अनेक परिचायक पर्याय भी दिये हैं, किन्तु आद्योपान्त 'वचा' संज्ञा की मान्यता अक्षुण्ण एवं व्यापक है। अथर्ववेद में 'वज (बज)' नाम से किसी व्याधि के राक्षस के लिये प्रयुक्त औषधिविशेष का उल्लेख है। पाश्चात्य विद्वानों ने गलती से सर्षप के प्राचीन व्यवहारपरम्परागत 'रक्षोघ्न' मान्यता को आधारितकर अथर्ववेदीय 'वज' का विनिश्चय 'सर्षप' से किया है, जो भ्रमपूर्ण होने के साथ-साथ अस्वीकार्य भी है। सम्भवतः इन विद्वानों ने इस तथ्यपर ध्यान दिया कि वचा का एक पर्याय 'रक्षोघ्नी' भी है, तथा वज का अथर्ववेदोक्त प्रयोग भी तद्रूपिक ही है। अतः मैंने वैदिक 'वज' का विनिश्चय परवर्ती 'वचा' से किया है (देखो—*On the Identity*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

and Critical Appraisal of the Vedic-Flora)। मध्ययुगीन प्रसिद्ध अरबी निघण्टुकार इब्नुल्बैतार (ई० ११९७-१२४८ ई०) ने, जो ग्रीकभाषा के भी विद्वान थे और साथ ही दक्षिण यूरोप तथा उत्तरी अफरीका की वनस्पतियों का भी अच्छा परिचय रखते थे **Acorus calamus** का अरबी नाम 'अल्वज्ज' दिया है। अतः अथर्ववेद का बज, एवं अरबी 'वज्ज' तथा वैदिकोत्तरकालिक (सं०) वचा—यह सभी संज्ञायें एक ही वनस्पति की वाचक प्रतीत होती हैं, और एक ही संज्ञा के रूपान्तरमात्र हैं। वचा के पूर्वकालिक इतिवृत्त की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय तथ्य जो सम्भवतः प्रथमतः प्रकाश में लाया जा रहा है, वह यह है, कि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में 'कटुवर्ग' (मसालावर्ग *Group of Spices*) में जिस 'किराततिक्त' का उल्लेख किया है, उसका अभिप्रेत वास्तव में 'वचा' ही है (*Indo-Greek Relation as reflected in Indian Plant-Names with Particular Reference to 'Kiratatikta' of Katu-Varga of Arthasastra—Prof. R. S. Singh and A. N. Singh* (*Ph. D. Scholar*). *Paper presented at the Vth. World Sanskrit Conference and published in the 'Indian Journal of History of Science'*)। यूनानी हकीम दीसकूरीदूस ने भी काकामुस आरोमाटीकुस (**Calamus aromaticus**) के लिये, जो वचा के वर्तमान वानस्पतिक नाम आकोरुस कालामुस (**Acorus calamus**) का ही पूर्ववर्ती नाम है, 'चिरायता' नाम दिया है जो सम्भवतः 'वचा' का ही क्षेत्रविशेष में व्यावसायिक नाम रहा होगा। पश्चिमी देशों में उस समय 'वचा' का प्रमुख व्यवहारोपयोग 'मसाले' के रूप में किया जाता था। इसका साक्ष्य बाइबिल (*Bible*) में भी मिलता है। (लेखक)

(२) बालवच

नाम। सं०—श्वेतवचा, हैमवती, पारसीकवचा। हिं०—बालबच, सफेदबच, खुरासानी बच, दुधबच, दुधिया बच, मोठी बच, सतुआ (नेपाली)। बं०—खोरासानी बच, शादा बच। म०—पांढरें वेखंड। गु०—खुरासानी बच, बालबच। फा०—सोसन ज़र्द, वज्जे खुरासानी। ले०—पारिस पॉलीफ़िल्ला (**Paris polyphylla** *Smith.*)।

वानस्पतिक-कुल। पलाण्डु-कुल (लीलिआसे *Liliaceae*)।

प्राप्तिस्थान। उत्तर-पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालयप्रदेश (*Temperate Himalayas*) में छायादार जगहों में इसके पौधे पाये जाते हैं। शिमला में १८२८.८ मीटर या ६,००० फुट की ऊँचाई पर छायादार जगहों में इसके पौधे काफी मात्रा में पाये जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। इसके छोटे-छोटे चिकने शाकीय पौधे (*herbs*) होते हैं, जिसके विभिन्न अंगों के आकार-प्रकार में बड़ी नानारूपता पायी जाती है। इसका भौमिककाण्ड भी जमीन में फैलता (*Root-stock creeping*) है। काण्ड (*stem*) ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० या १२ इञ्च से १८ इञ्च ऊँचा प्रायः शाखारहित होता है। पत्तियाँ संख्या में ४—९, रूप-रेखा में भालाकार तथा लम्बे नुकीले अग्रोंवाली होती हैं, जो ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी होती हैं, और काण्ड के सिरे पर छत्रक की भाँति स्थित होती हैं, जिनके बीच से एकल पुष्प-वाहक दण्ड निकलता है। पर्णवृन्त छोटे (*shortly stalked*) होते हैं। सवर्णकोश या परिदलपुंज (*perianth*) में १२ खण्ड होते हैं, जो स्थायी तथा २ असमान चक्रों (*2-dissimilar series*) में स्थित होते हैं। बाहरीचक्र के पत्र २.५ सें० मी० से १० सें० मी० या १ इञ्च से ४ इञ्च लम्बे तथा पत्तियों की भाँति हरे और आभ्यन्तरचक्र के पत्र प्रायः बाहरीचक्र की पत्तियों की अपेक्षा छोटे (कभी-कभी बड़े), रेखाकार (*linear*) तथा हरिताभ-पीत या पीतवर्ण के होते हैं। पुंकेशर (*stamens*) संख्या में सवर्णकोश खण्डों (८—१२) के बराबर। कुक्षिवृन्त (*style*) प्रायः ४—५ शाखाओं में विभक्त होता है, जो ऊपरी सिरे पर नीचे को मुड़े होते (*curved tips*) हैं। फल (*capsule*) गोलाकार सुराहीनुमा, व्यास में २.५ सें० मी० या १ इंच तथा पकने पर पीताभ-भूरेरंग का होता है, जिसके अन्दर लालरंग के अनेक छोटे-छोटे लम्बगोल बीज होते हैं। इसकी जड़ के काटकर सुखाये हुए टुकड़े बाजार में 'बालवच' के नाम से बेचे जाते हैं।

उपयोगी-अंग। मूलस्तम्भ या भौमिककाण्ड।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—कहीं-कहीं इस नाम से आयरिस (*Iris*) जाति की विभिन्न औषधियों की जड मिलती है।

विशेष—(१) व्यवहार में प्रायः चिकित्सक बाह्यप्रयोग के लिए व्यवहृत योगों में 'घोड़वच' एवं आभ्यन्तरसेवन के लिए 'बालवच' का प्रयोग करते हैं।

(२) भावप्रकाशकार ने विशेषणसे वचा के ४ प्रकारोंका उल्लेख किया है—(१) वचा (घोड़ बच)। इसका वर्णन पहले किया गया है। (२) पारसीक-वचा, हैमवती, शुक्ला) बालवच या दुधवच)—इसका वर्णन भी किया गया है। (३) महाभरीवचा या मलय-वचा—इससे चीनी एवं देशी कुलजंन का ग्रहण होता है। इनका वर्णन यथास्थान किया जा चुका है। (४) द्वीपान्तरवचा (चोबचीनी)—इसका भी वर्णन पहले किया जा चुका हैं। ध्यान रहे कि उक्त विभिन्न वचा भिन्न-भिन्न वानस्पतिक कुलों की वनस्पतियाँ हैं।

वत्सनाभ—दे०, 'वछनाग'।

वरुण—दे०, 'बरना'।

विदारीकन्द (पतालकोंहड़ा)

नाम। सं०—विदारी, कन्दपलाश, भूमिकूष्माण्ड। जम्मू-सियालिया। हिं०—विदारीकन्द, बिलाईकन्द, पताल-कोंहड़ा। म०—बेंदर, बेंदरिया बेल। गु०—खाखरबेल, विदारीकन्द। (देहरादून, सहारनपुर) सुराल, सराल। खर०—पतालकोंहड़ा। संथा०—जनक्षीरा, चिर्रा। ऊ०—हाँडी फुटा, भूँई का कर्कारू। ले०—पुएरारिआ टूबे-रोसा (**Pueraria tuberosa** *DC.*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (*Leguminoseae ; Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालयप्रदेश की निचली पहाड़ियों के क्षेत्रों (४,००० फुटतक), पंजाब, कुमायूँ देहरादून एवं सहारनपुर के जंगल, नेपाल, आसाम, बंगाल, आबू की पहाड़ियाँ, बिहार, उड़ीसा एवं दक्षिणभारत के जंगलों में बिदारी की लताएँ प्रचुरता से पायी जाती हैं। ये लताएँ प्रायः नदी-नालों के करारों में अधिक पायी जाती हैं। इसके छोटे-छोटे मुलायम और नवीन कन्द हरद्वार आदि की सब्जीमण्डियों में 'सराल' नाम से बिकते हैं। कन्द के गोलाकार काटेहुए कतरों की सुखाई हुई पपड़ियाँ बाजारों में 'विदारीकन्द' या 'बिलाईकन्द' (<विडालिका <विदारिका) के नाम से बिकती हैं।

संक्षिप्त-परिचय। विदारी की चक्रारोही एवं मोटी, सुविस्तृत लताएँ होती हैं, जिनका काण्ड छिद्रल (*porous*) होता है। पत्तियाँ पलाशकी भाँति त्रिपत्रक होती हैं, जिनमें अग्रग्र-पत्रक तिर्यगायताकार (*rhomboid*) और पार्श्व के दोनों पत्रक तिरछे-लट्वाकार होते हैं। उक्त पत्रक प्रायः १० सें०मी० से १५ सें०मी० (४ इञ्च से ६ इंच) लम्बे और ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० (३ इञ्च से ४ इंच) चौड़े, एवं लम्बीनोक वाले होते हैं। इनके अधः पृष्ठ पर सघन रोम होते हैं। विदारी की लताएँ पत्रकों के गिरने पर फूलती हैं। पुष्पमञ्जरी १५ सें० मी० से ४५ सें० मी० (६ इञ्च से १८ इञ्च) तक लम्बी होती है, और पुष्प नीले या नीलरक्त (*purple*) तथा फलियाँ ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (२ इञ्च से ३ इंच) लम्बी और रोमश होती हैं। जमीन के नीचे इसमें प्रायः कई कन्द रहते हैं, जो काण्ड से दृढ़ मूल शाखा के द्वारा जुड़े रहते हैं, और नीचे भी मूल शाखा के द्वारा जुड़े रहते हैं। नीचे भी मूलशाखा पुनः निकली रहती है। बड़ेकन्द प्रायः गोलाकार (*globose*) होते हैं। कभी-कभी कन्द २ फुटतक लम्बे एवं मोटाई में ७५ सें० मी० या २½ फुट घेरातक पाये जाते हैं। कंदों में कुछ-कुछ मुलेठी का स्वाद आता है, इसलिए विदारी को 'स्वादुकंद' या 'इक्षुविदारी' आदि नाम दिया गया है। ये लताएँ घोड़ों को बहुत प्रिय होती हैं। इसीलिए इसे 'गजवाजिप्रिया' नाम दिया गया हैं। मारवाड़ में इसे 'घोड़बेल' कहते भी हैं। ताजे कन्दों को काटकर—उबालकर स्थानिकलोग खाते भी हैं। पतझड़ काल—नवम्बर-दिसम्बर।

उपयोगी अंग—कन्द।

मात्रा। ३ ग्राम से ११.६ ग्राम या ३ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—विदारी के कन्द (**Tubers**) आकार-प्रकार एवं लम्बाई-मोटाई में अनेक प्रकार के होते हैं। छोटेकन्द प्रायः सेव के आकार के या शंक्वाकार अथवा शलगमाकार तथा बड़ेकन्द गोलाकार या शंक्वाकार (*spindle-shaped*) होते हैं। बाह्यतः यह हल्के भूरेरंग के होते हैं। कतरे की तरह काटने पर अन्दर का भाग सफेद तथा गूदेदार मालूम होता है। इस प्रकार कटे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तल पर अनेक एक-केन्द्रिक वृत्ताकार रेखाएँ (*concentric rings*) दिखाई पड़ती हैं, तथा मज्जकिरण (*medullary rays*) भी स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती हैं। स्वाद में यह किंचित् मधुर, लुआबी एवं तीक्ष्ण तथा तिक्त होता है। कटेहुए तल पर आयोडीन या फेरिक क्लोराइड सॉल्यूशन डालने पर कोई रंग परिवर्तन नहीं होता। बाजार में इसके गोल-गोल कतरे काटकर सुखाये हुए विभिन्न आकार-प्रकार के पतले-चपटे सफेद टुकड़े मिलते हैं। भस्म–१८.१% प्राप्त होती है।

स्थानापन्न द्रव्य एवं मिलावट–बंगाल में विदारी या भूमि कुम्हड़ा के नाम से प्रायः इपोमेआ डीजीटाटा (**Ipomoea digitata** *R. Br.* (*Syn. I. digitata Linn.* (*Family Convolvulaceae*) कन्द बिकते हैं। यह बाहर से भूरेरंग का और कतरे की भाँति काटने पर अन्दर मटमैले सफेदरंग का होता है। कन्द काटने पर प्रचुर क्षीर (*viscid milky fluid*) निकलता है। यह शास्त्रकारों की 'क्षीरविदारी' हो सकती है। गुण-कर्म की दृष्टि से दोनों कन्द एक दूसरे के प्रतिनिधि द्रव्य हो सकते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–इसके कन्द काफी गहराई तक होते हैं। नदियों या नालों के करारों पर स्थित लताओं के कन्द आसानी से खोदे जा सकते हैं। उत्तम कन्दों को लेकर गोल-गोल पतले कतरे काटकर उन्हें सुखा लें, और मुखबन्द (ढक्कनदार) पात्रों में सुरक्षित करें।

संघटन–कन्द में रालीय तत्त्व, शर्करा, एवं स्टार्च पाया जाता है। क्षीरविदारी (बंगीय विदारी) में स्टार्च की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–मधुर, (तिक्त)। विपाक–मधुर। वीर्य-शीत। प्रधानकर्म–बल्य, बृंहण, रसायन, स्तन्यजनन, वाजीकर, मूत्रल, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन। श्वयथुविलयन के लिए इसे जल में पीस कर लेप करते हैं। यूनानीमतानुसार गरम एवं खुश्क होता है।

मुख्य योग–विदारीकन्द का प्रयोग एकौषधि के रूप में भी करते हैं, और योगों में भी पड़ती है।

वक्तव्य–प्राचीन उत्तरपश्चिमी भारतीय सीमाप्रान्तीय क्षेत्र में 'विदारीकन्द' अतिप्राचीन काल से सुविज्ञात एवं व्यवहारप्रचलित प्रतीत होता है। लगता है, मूलतः 'विदारी' संज्ञा सामान्यरूप से इसकी लता एवं कन्द दोनों के लिए व्यवहृत थी, जैसा कि अष्टाध्यायी के साक्ष्य से भी लक्षित होता है। पाणिनिसूत्र (४. ३. १६६) के अनुसार विदारीमूल के लिये भी नपुंसकलिङ्गान्त शब्द की सिद्धि न कर विदारीपद से ही इसके मूलकी भी वाचकता (विदार्यामूलं विदारी) मान्य की गयी है। आयुर्वेदीय संहिताओं में भी विदारी का भूरिशः उल्लेख है, जो चरकसंहिता में अपेक्षाकृत अत्यधिक है। संहिताओं में विदारी का समावेश 'कन्दशाकों' में भी है, जिससे लक्षित होता है कि विदारी औषधोपयोगी होने के अतिरिक्त सामान्य व्यवहारप्रचलित खाद्य थी। आज भी अनेक जगहों में तरकारी बाजारों में इसके कोमलकन्द अन्य कन्दशाकों की भाँति बिकते हैं। विदारी का उल्लेख 'सियाली' (<शृगालिका (सं०) नाम से आईने-अकबरी (आईन २८) में भी है। पंजाब में विदारीलता एवं कन्द टाँगे के टट्टुओं को पौष्टिकचारा के रूप में देने का प्रचलन आज भी है (*Flora of the Panjab, p. 161*)। अद्यावधि विदारी, शास्त्र एवं व्यवहारपरम्परा में सर्वत्र सुविज्ञात एवं व्यवहृत है। रसग्रन्थों में भी विदारी महत्त्वपूर्ण वनौषधि है। पौष्टिककर्म के लिए अकेले (एकौषधरूप में) या पौष्टिककल्पों में उपादान-रूपेण सर्वत्र व्यवहृत हो रही है। आद्योपान्त व्यापक संज्ञा विदारी के अतिरिक्त आयुर्वेदीय निघण्टुओं में इसके लिए अनेक अन्य अन्वर्थक संज्ञायें भी दी गयी हैं। अष्टांगसंग्रह (उ० अ० ४९–रसायनाध्याय) में भी इसके लिए 'वल्लीपलाश' संज्ञा दी गई है, जो इसके पत्रकों को देखते हुये पूर्णतः अन्वर्थक है। (लेखक)।

विधारा, बंगीय

नाम। सं०–वृद्धदारु। हिं०–धावपत्ता, समुन्दरशोख? विधारा? बं०–बिज्ताड़क, बिद्धताड़क। म०–समुद्र-शोक। गु०–समन्दरशोष, बरधारो। मा०–समन्दरसोख। अं०–दि एलिफेन्ट क्रीपर (*The Elephant Creeper*) ले०–आर्जिरेआ स्पेसिओजा (**Argyreia speciosa** *Sweet.*)।

वानस्पतिक-कुल। त्रिवृत्-कुल (कॉन्वाल्वुलासे : *Convolvulaceae*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान—पश्चिमभारत के शुष्क प्रदेशों को छोड़ कर प्रायः समस्त भारतवर्ष में १५४.६ मीटर या १००० फुट की ऊँचाई तक इसकी काष्ठीय लता स्वयंजात पायी जाती है। घरों के सामने एवं वाटिकाओं में सौंदर्य के लिए इसकी लगायी हुई लताएँ भी प्रायः सभी जगह मिलती हैं। इसके काष्ठीयकाण्ड एवं जड़ के टुकड़े बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं, जो 'विधारा' के नाम से बेचे जाते हैं। बंगीय वैद्य शास्त्रीय 'वृद्ध-दारुक' इसी को मानते हैं। वक्तव्य—बाजारों 'समुन्दर सोख' या 'कम्मरकस' नाम से जो बीज बिकते हैं, वह विधारा के बीज न होकर, तुलसी जातीय वनस्पति साल्विआ प्लेबीआ (**Salvia plebeia** *R. Br.*) के बीज होते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। धावपत्ता (विधारा ?) की वृक्षों के ऊपर फैली हुई मोटी-मोटी लताएँ (*woody climber*) होती हैं। नवीन शाखाओं पर श्वेताभ या तूलरोमश सघन आवरण होता है। पत्तियाँ व्यास में १५ सें० मी० से १० सें० मी० (६ इंच से १२ इंच) और ऊपरी पृष्ठ पर चिकनी, किन्तु अधस्तल पर श्वेताभ, और मखमली रोमावरण से युक्त होती हैं। रूपरेखा में यह लट्वाकार हृद्वत् और सवृन्त, अग्रपर कुण्ठित या तीक्ष्ण तथा पर्ण-वृन्त ७.· सें० मी० से २२.५ सें० मी० (३ इंच से ९ इंच) लम्बा होता है। पुष्प व्यास में ५ सें० मी० से ७.५ सें०मी० (२ इञ्च ३ इंच)से रूपरेखा में नलिकाकार-घंटिकाकृति, बाहर से सफेद एवं तूलरोमश, किन्तु अन्दर गुलाबी या जामुनीरंग के होते हैं। फल व्यास ¾ इञ्च, रूपरेखा में गोलाकार होते हैं, जिनके शीर्ष पर एक रोम (*apiculate*) होता है। कच्चे फल हरेरंग के तथा पकने पर पीताभ-धूसर होते हैं। पकने पर यह स्वयं फटते हैं, जिसमें तीनधार वाले, सफेद भूरे बीज निकलते हैं। वर्षा से शीतकाल तक पुष्प तथा बाद में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग—मूल एवं काण्ड तथा बीज।

मात्रा। मूल (तथा काण्ड)—१.५ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा।

बीज—०.५ ग्राम से १ ग्राम या ४ रत्ती से ८ रत्ती।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—धावपत्ते की जड़ लम्बी, काष्ठीय (*woody*) तथा चिमड़ी (*tough*) होती है, जिसकी छाल गाढ़े भूरेरंग की होती है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर मध्य में सुषिर काष्ठीय-ऊति (*central porous woody-column*) होती है, जिसके चारों एक-केन्द्रक वृत्तों में काष्ठीय-तन्तु स्थित होते हैं। इन वृत्तों के बीच-बीच में तनुभित्तिक ऊति या पैरेंकाइमा (*parenchyma*) पायी जाती है। केन्द्रस्थ काष्ठीय भित्ति में आक्षीर-वाहिनियाँ (*lactiferous vessels*) होती हैं, जिनमें पीलेरंग का दूध (*yellowish latex*) मिलता है। तनुभित्तिक ऊति में रेफाइडस-पुंज (*Conglomerate raphides*) होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—विधारा के मूल एवं बीजों को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद-पात्रों में रखना चाहिए।

संगठन—उक्त विधारा की जड़ों में अम्लीय राल तथा टैनिन की भाँति तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—कफवात-शामक, व्रणपाचन, दारण, शोधन, रोपण, मेध्य, नाड़ी-बल्य, दीपन, आमपाचन, अनुलोमन, रेचन, शोथहर, प्रमेहघ्न, बल्य, रसायन, शुक्रजनन आदि।

विशेष—विधारा एक संदिग्ध द्रव्य है। बंगीय वैद्य 'वृद्ध-दारुक' नाम से उपर्युक्त लता का ग्रहण करते हैं। इसीलिए विधारा नाम इसके लिए प्रचलित हो गया है। दक्षिणभारत में मरियाद बेल (**Ipomoea biloba** *Forsk.* (*Family* : *Convolvulaceae*) का ग्रहण विधारा के स्थान में किया जाता है। इलाहाबाद एव कानपुर के बाजारों में चित्रकूट के जंगलों से बिधारा नाम से जो ओषधि आती है, वह ईपोमेआ पेटालोइ-डेआ (**Ipomoea petaloidea** *Chois.*) नामक त्रिवृत्-जातीय लता की जड़ होती है। इसके असली विधारा होने को सम्भावना अधिक है। यह निशोथ की जाति की एक लता की प्रसिद्ध जड़ है, जो खाकी या भूरी, हलकी और मुलेठी के बराबर मोटी होती है। किन्हीं-किन्हीं बाजारों में इसी के विभिन्न आकार-प्रकार के काट कर सुखाये हुए टुकड़े मिलते हैं। इसके कटे हुए तल पर गोंद की तरह एक चीज (जमा हुआ दूध) लगा होता है। स्वाद में यह कुछ कड़ुआहट लिये

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फीका होता है इसका ६ माशा चूर्ण फांकने से बिना कष्ट के ५–६ दस्त आ जाते हैं।

व्याघ्रनखी–दे०, 'करेरुआ'। (लेखक)

शंखपुष्पी (शंखाहुली)

नाम। सं०–शंखपुष्पी, क्षीरपुष्पी। हि०–शंखाहुली, शंखपुष्पी। ले०–कॉन्वाल्वुलस प्लूरीकाउलिस (**Convolvulus pluricaulis** *Chois.*)।

वानस्पतिक-कुल। त्रिवृत्-कुल (कॉन्वाल्वुलासे *Convolvulaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में पथरीले एवं परती भूमि में इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। शंखपुष्पी के प्रसरणशील छोटे-छोटे घास के समान पौधे होते हैं। मूलस्तम्भ प्रायः बहुवर्षायु होता है, जिससे १० सें० मी० से ३० सें० मी० (४ इंच से १२ इंच) लम्बी, रोमश, कुछ-कुछ उत्थित या प्रसरी शाखाएं निकलकर फैली रहती हैं। पत्तियाँ १.२५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (½ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बी, रेखाकार, नीचे की ओर कुछ-कुछ अभिप्रासवत् या प्रतिभालाकार (*oblanceolate*), अवृन्त तथा सूक्ष्मरोमश और तीन-तीन शिराओं से युक्त होती हैं। पुष्प हल्के गुलाबीरंग के अथवा सफेद होते हैं। बाह्यदल रोमश और रेखाकार प्रासवत् और आभ्यन्तरकोश कुप्पी के आकार का और बाहर से रोमश होता है। इसमें २ कुक्षियां होती हैं। मूल १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इंच से ६ इञ्च) लम्बा (कभी ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० या १ फुट से १½ फुट तक लम्बा), पतला, किंचित् रोमश तथा हरिताभ श्वेत होता है। फल छोटे-छोटे तथा शाखाग्रों पर अथवा पार्श्वदेश में लगते हैं।

उपयोगी अंग–पंचाङ्ग।

मात्रा। स्वरस–२ तोला से ४ तोला।

चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

क्वाथ–२ तोला से ५ तोला।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा एवं प्रतिनिधि-द्रव्य। पुष्प के रंगभेद से इसकी तीन जातियाँ बतलायी गयी हैं, यथा––(१) श्वेत, (२) रक्त एवं (३) नील। शंखपुष्पी नाम से वस्तुतः श्वेतपुष्पीका ही ग्रहण होना चाहिए, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। कतिपय अन्य औषधियों का भी ग्रहण शंखपुष्पी के नाम से किया जाता है: (१) कॉन्वाल्वुलस आल्सीनोइडेस (**Convolvulus alsinoides** *Linn.* (*Family* : *Convolvulaceae*)–इसको 'विष्णुक्रान्ता' या 'नीलपुष्पी' कहते हैं। इसके छोटे-छोटे सुन्दर प्रसरशील क्षुप होते हैं। मूल के ऊपर से १० सें० मी० से ३७.५ सें० मी० या ४ इञ्च से १५ इञ्च लम्बी अनेक शाखाएँ निकल कर चारों ओर फैली रहती हैं। पत्तियाँ ६.२५ मि० मी० से १२.५ मि० मी० या २.५ सें० मी० तथा रेशमतुल्य मुलायम रोमों से युक्त होती हैं। पुष्प भड़कीले नीलेरंग के होते हैं और दो या तीन की संख्या में पतले पुष्पदण्डों के अग्रपर स्थिर होते हैं। कुक्षि वृन्त दो और पुनः द्विविभक्त होते हैं। फल में २–४ फांक होते हैं। (२) कांस्कोरा डेकुस्साटा (**Canscora decussata** *Schult.*), (जेंटिआनासे : *Gentianaceae*)–इसको कालमेघ (को०), संखाहुली (हि०), दानकुनी–(बं०) कहते हैं। कान्सकोरा डेकुस्साटा के १५ सें० मी० से ३७.५ सें० मी० या ६ इंच से १५ इञ्च ऊँचे और त्रिविभक्त एवं चौकोन और सपक्ष काण्डवाले क्षुप होते हैं, जो सामान्यतया सर्वत्र भारतवर्ष में (विशेषतः नम स्थानों में, १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक) पाये जाते हैं, किन्तु बंगाल, बिहार में विशेष रूपसे होते हैं। बंगाल के वैद्य 'शंखपुष्पी' नाम से प्रायः इसी का ग्रहण करते हैं। अतः भ्रम से इसका हिन्दी नाम 'संखाहुली' लिख दियागया है। इसी प्रकार कोलभाषीय 'कामभेव' नाम भी भ्रमपूर्ण ही प्रतीत होता है। दानकुनी की पत्तियाँ अवृन्त, अभिमुखक्रम से स्थित, प्रासवत् (भालाकार) या आयताकार-प्रासवत् तथा तीन-तीन शिराओं वाली होती हैं। नीचे की पत्तियां २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बी, किन्तु ऊपर की क्रमशः छोटी होती हैं। पुष्प श्वेत, अनियताकार और कुछ-कुछ द्वि-ओष्ठ, पुंकेसर ४, जिनमें एक अपेक्षाकृत बहुत बड़ा होता है। कुल-धर्म के अनुसार इसमें भी शंखपुष्पी के कुछ गुण-कर्म पाये जाते हैं। कहीं-कहीं शंखपुष्पी को 'कौड़ेना' नाम भी दिया जाता है। किन्तु कौड़ेना वास्तव में (**Ipomoea muricata** *Jacq.*) को कहते हैं, जिसके बीज 'कालादाना' के स्थान में प्रयुक्त किये जाते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रह एवं संरक्षण। छायाशुष्क पंचांग को मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि। ६ माह से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, सर। रस–कषाय, कटु, तिक्त। विपाक–मधुर। वीर्य–शीत। प्रभाव–मेध्य। कर्म–त्रिदोषहर, विशेषतः, वातपित्तसंशमन, मेध्य, मस्तिष्कशामक एवं नाड़ीबल्य, दीपन-पाचन, अनुलोमन, सारक, हृद्य, रक्तस्तम्भन, स्वयं एवं कफ-निस्सारक, मूत्रविरेचन, प्रजास्थापन, कुष्ठघ्न, त्वग्रोग-शामक, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, रसायन, एवं बल्य।

मुख्य योग। शंखपुष्पीपानक, अमृतादि रसायन।

विशेष–शंखपुष्पी उत्तम मेध्य-द्रव्य है। ताजे पंचाङ्ग का सेवन ठंढई के साथ पीसकर कर सकते हैं। चरक संहिता (चि० अ० १) में भी मेध्यकर्म के लिए शंख-पुष्पी के प्रयोग का निर्देश है। आजकी बदलती सामाजिक परिस्थितियों में तनाव (*stress*) जनक वातावरण के कारण होने वाले मनःकायिक विकारों, यथा अनिद्रा, चिन्ता, रक्तदाबवृद्धि (*Hypertension*) आदि में 'शंखपुष्पी' बहुत लाभदायक है।

शतपुष्पा–दे०, 'सोआ'।

शतावरी–दे०, 'सतावर'।

शर–दे०, 'सरपत'।

शरपुंखा–दे०, 'सरफोंका'।

शिलारस (सिल्हक)

नाम। सं०–सिल्हक, तुरुष्क। हिं०, म०, बं०–शिलारस, गु०–शेलारस, शिलारस। अ०–मीआसाइला, लब्नी। फा०–अंबर माइअ। अं०–लिक्विड स्टोरैक्स (*Liquid Storax*)। (वृक्ष का नाम) (१) विदेशी–'लिक्विडअंबर ओरिएन्टालिस (**Liquidambar orientalis** *Mill.*); (२) देशी–आल्टींजिआ एक्सेल्सा (**Altingia excelsa** *Noronba*)।

वानस्पतिक-कुल। सिल्हक-कुल (हामामेलीडासे (*Hamamelidaceae*)

प्राप्तिस्थान–'लिक्विडअंबर ओरिएन्टालिस' के वृक्ष दक्षिण-पश्चिमी टर्की में प्रचुरता से पाये जाते हैं। 'आल्टींजिआ एक्सेल्सा' के वृक्ष, पूर्वीबंगाल, आसाम, भूटान तथा ब्रह्मा, पेगू, चीन, मलाया एवं जावा आदि में होते हैं। शिलारस का आयात बम्बई बाजार में प्रधानतः टर्की से ही होता है। यह सर्वत्र पंसारियों के यहाँ मिलता। देशीशिलारस विदेशीशिलारस का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। और यह भी बाजारों में उपलब्ध होता है।

संक्षिप्त-परिचय। शिलारस उक्त वृक्षों का तैलयुक्त रालीयनिर्यास (*Oleo-Resin*) होता है, जो काण्डत्वक् को क्षत करने से प्राप्त किया जाता है। लिक्विडअंबर ओरिएन्टालिस के मध्यम कद के वृक्ष होते हैं। टर्की के दक्षिण-पश्चिम भाग में इसके जंगल पाये जाते हैं। ग्रीष्म के प्रारम्भ में वृक्ष की त्वचा को स्थान-स्थान पर पीट कर क्षतयुक्त कर दिया जाता है। इन्हीं स्थानों में निर्यास एकत्रित होता रहता है। शरद् के प्रारम्भ में छाल सहित निर्यास को खुरचकर निकाल लिया जाता है, और इसे पानी में उबाल कर बल्सम (*Balsam*) या शिलारस को पृथक् कर लेते हैं। अब शिलारस को इसीरूप में (*Crude Storax*) अथवा विशोधनकर (*Purified Storax*) बाजारों में भेजते हैं। आल्टींजिया एक्सेल्सा के ऊँचे-ऊँचे पतझड़ करने वाले या पर्णपाती वृक्ष होते हैं, जिनका काण्डस्कन्ध १८ मीटर से २४ मीटर या ६० फुट से ८० फुटतक ऊँचा, सीधा एवं मोटाई का व्यास (*girth*) ३ मीटर या १० फुट तक होता है। इसका उपयोग इमारती लड़की एवं रेल की पटरियाँ बनाने में करते हैं। इसकी त्वचा पर क्षत करने से भी शिलारस प्राप्त होता है, जो विदेशी की अपेक्षा हीनकोटि का होता है, किन्तु उसके स्थान में व्यवहृत किया जा सकता है। इसका व्यावसायिक नाम 'बर्मीज स्टोरैक्स (**Burmese Storax**)' है।

उपयोगी अंग–तैलयुक्त रालीयनिर्यास (*Oleo-Resin*) या बल्सम (*Balsam*) जिसे 'शिलारस' कहते हैं।

मात्रा। ५०० मि० ग्रा० से १.२५ ग्राम या ४ रत्ती से १० रत्ती (मुलेठी के चूर्ण के साथ)।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। नया शिलारस मधु के समान गाढ़े अर्ध-घन स्वरूप का, जल से भारी, अपारदर्शक तथा खाकस्तरी भूरेरंग का होता है। इसमें जल (२०-३०%), छाल के टुकड़े तथा अन्य अपद्रव्य भी मिले होते हैं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतएव ऐल्कोहल् में विलीनकर इन अपद्रव्यों को पृथक् किया जाता है। शिलारस में जलीयांश भी मिला होने से यदि इसको रखदिया जाय, तो कुछ समय के बाद जलीयांश ऊपर आजाता है, और पीले या गाढ़े भूरेरंग का रेजिन-अंश नीचे बैठ जाता है। इसको गरम करने पर जलीयांश के नष्ट हो जाने से शिलारस गाढ़े भूरेरंग का प्राप्त होता है। नये शिलारस में तो मिट्टी के तेल या नेफ्थालीन-जैसी गन्ध आती है, किन्तु पुराना होने पर बल्सॉवत् रुचिकारक गन्ध एवं स्वाद पाया जाता है। विलेयता—जलरहित शिलारस ऐल्कोहल् (९०%), कार्बन-डाइ-सल्फाइड, क्लोरोफॉर्म एवं ग्लेशियल एसेटिक एसिड में घुलनशील होता है।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट—भारतीय शिलारस उक्त विदेशी शिलारस का उत्तम प्रतिनिधिद्रव्य है।

संग्रह एवं संरक्षण—शिलारस को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—इसमें एक उड़नशील तेल, सिन्नेमिक एसिड, बेंजोइक एसिड, राल-प्रभृति द्रव्य, वेनिलिन, स्टाइ-रोल एवं स्टाइरेसिन प्रभृति द्रव्य होते हैं।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल पर्यन्त।

स्वभाव। गुण—स्निग्ध, लघु। रस—तिक्त, कटु, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधान कर्म—कफवातशामक, पूतिहर, जन्तुघ्न, व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, वेदनास्थापन, मूत्रार्तवजनन, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, उत्तेजक, एवं श्लेष्म-हर तथा पूतिहर। यूनानीमतानुसार तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है।

मुख्य योग—पञ्चगुण तैल।

विशेष—सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) एलादिगण में 'सिल्हक' (तुरुष्क नाम से) का पाठ है।

शीशम (शिंशपा)

नाम। सं०—शिंशपा, कृष्णसारा। हिं०—शीशम, सीसम, सीसो। बं०—शिशुगाछ। पं०—शरई। म०—शिसव। गु०—सीसम। अ०—सासम। फा०—शीशम। अं०—सीसु (*Sisso*)। ले०—डाल्बेर्गिआ सिस्सू (**Dalbergia sisoo** *Roxb.*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (*Leguminosae* : *Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में शीशम के लगाये हुए अथवा स्वयंजात वृक्ष मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। शीशम के ऊँचे-ऊँचे पतझड़ करनेवाले या पर्णपाती वृक्ष होते हैं, जिसकी छाल मोटी, खाकस्तरी रंग की, तथा लम्बाई के रुख कुछ विदीर्ण होती है। नयी शाखाएँ कोमल एवं अवनत होती हैं। पत्र एका-न्तर, सपत्रक, पत्रक संख्या में ३—५, एकान्तरक्रम से स्थित, २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इंच से ३ इंच लम्बे रूपरेखा में चौड़े-लट्वाकार होते हैं। पुष्प पीताभश्वेत होते हैं, जो पत्रकोणोद्भूत मञ्जरियों में निकलते हैं। फली लम्बी, चपटी, ३.७५ सें० मी० से १० सें० मी० (१½ इंच से ४ इंच) लम्बी तथा २ बीज से ४ बीजयुक्त होती है। इसका सारकाष्ठ (*heart-wood*) पीताभ भूरेरंग का (कपिलसार) होता है। इसकी एक दूसरी प्रजाति का सारकाष्ठ कृष्णाभ भूरेरंग का (कृष्णसार) होता है। इसे डाल्बेर्गिआ लाटीफ़ोलिआ (**Dalbergia latifolia** *Roxb.*) कहते हैं। इसके वृक्ष अपेक्षाकृत छोटे तथा पुष्प श्वेताभ एवं सुगन्धित होते हैं।

उपयोगी अंग—सारकाष्ठ (बुरादा), छाल, पत्र एवं बीज-तैल।

मात्रा। चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।
स्वरस—१ तोला से २ तोला।
क्वाथ—२½ तोला से १० तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—संग्राह्य अङ्गों को मुखबन्द पात्रों में उपयुक्त स्थान में संरक्षित करें।

वस्तु-संगठन। काष्ठ में एक 'तैल' पाया जाता है, और फलियों में टैनिन (२%) पाया जाता है। बीजों में भी स्थिरतैल पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—कईवर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय, कटु, तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषशामक (काष्ठ) कुष्ठघ्न, कृमिघ्न, व्रणशोधन, रक्तशोधक, शोथहर, गर्भा-शयसंकोचक, आर्त्तवप्रवर्त्तक, लेखन एवं (पत्र) रक्त-स्तम्भन, मूत्रल, मूत्रमार्गस्नेहन, चक्षुष्य, पाण्डुहर। (तैल) विभिन्न चर्मरोगों में तथा दुष्ट-व्रणों पर लगाया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाता है। त्वक् (छाल) गृध्रसी आदि वातविकारों में प्रयुक्त होती है। यूनानीमतानुसार शीशम पहले दर्जे में गरम और खुश्क है।

विशेष—चरकोक्त आसवयोनि सारवृक्षों (सू० अ० २५) में तथा कषायस्कन्ध (वि० अ० ८) के द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त सालसारादि एवं मुष्ककादिगण के द्रव्यों में 'शिंशपा (शीशम)' का भी उल्लेख है।

शृंगीविष (मोहरी)

नाम। सं०—शृङ्गीविष। हिं—सींगियाविष, मोहरोलिया। अ०—खानेकुल नमर। अं०—एकोनाइट रूट (*Aconite Root*)। ले०—आकोनीटुम चस्मा·थुम (**Aconitum chasmanthum** *Stapf. ex. Holmes.*)।

वानस्पतिक-कुल। वत्सनाभ-कुल (रानुन्कुलासे *Ranunculaceae*)।

प्राप्तिस्थान—पश्चिमी हिमालय में चित्राल से हजारा और कश्मीर तक २१३३.६ मीटर से ३६५७.६ मीटर या ७००० फुट से १२००० फुट की ऊँचाई के प्रदेशों में।

संक्षिप्त-परिचय। क्षुप—द्विवर्षायु। मूल—युग्म. कन्दयुक्त, ५ सें० मी० या २ इंच लम्बा, १.२ सें० मी० या आध इंच मोटा। त्वचावर्ण—काला-भूरा, अन्तर्वर्ण श्वेत। सूखने पर झुर्रीयुक्त, भार में वत्सनाभ की अपेक्षा हलका। काण्ड—सीधा, साधारण, लगभग ०.६ मीटर से १.२ मीटर या २ फुट से ४ फुट ऊँचा। पत्र—बहुसंख्यक, निम्न भाग के पत्र अधिक लम्बे पर्णवृन्तयुक्त। पुष्प—बाह्यकोषदल नीलश्वेत, पुष्प-आभ्यन्तर-कोष दल संख्या में ५। बीज—आकार में असमान, त्रिकोणाकार।

उपयुक्त अंग—शुष्क मूल।

मात्रा—शोधित विष ½ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में इसके मिलनेवाले मूलों में बहुधा वत्सनाभ की अन्य जातियों के मूलों का मिश्रण मिलता है। इसकी दोनों वर्षों की पुरानी और नयी जड़ें परस्पर जुटी रहती हैं। पहले वर्षवाली जड़ प्रायः नयी जड़ की अपेक्षा छोटी और बहुत सिकुड़ी हुई होती है। बाजार में मिलने वाली जड़ों में वायव्य काण्ड का भी कुछ भाग जुटा रहता है। जड़ें बाहर से रंग में भूरी अथवा कालिमा लिये भूरी होती हैं, जो प्रायः २.५ सें० मी० से ४.३७५ सें० मी० या १ इंच से १¾ इंच लम्बी और १.२५ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० या ½ इञ्च से ¾ इञ्च चौड़ी होती हैं। इसमें विजातीज सेन्द्रिय द्रव्य अधिकतम २ प्रतिशत और अम्ल में अघुलनशील भस्म अधिकतम १ प्रतिशत प्राप्त होती है। इसके ९० प्रतिशत शक्ति के ऐल्कोहलिक एक्सट्रक्ट को गाढ़े गन्धकाम्ल में मिलाने पर गहरा बैंगनी वर्ण उत्पन्न होता है। ९ प्रतिशत शक्ति के शोरकाम्ल (नाइट्रिक एसिड) में मिलाने पर एक श्वेत पदार्थ बन कर तल में बैठ जाता है। इसी प्रकार पिक्रिक अम्ल के पूर्ण विलयन से मिलने पर पीलेरंग का अवक्षेप बन जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—पुराने क्षुपों के मूलों का संग्रह करके छोटे-छोटे टुकड़े करके सुखा कर भलीभाँति मुखबन्द किये हुए जारों में शुष्क निर्वात स्थल पर रखें।

संगठन—शुष्क मूलों में इन्डेकोनीतीत ४.३ प्रतिशत, एकोनाइटिक एसिड और श्वेतसार आदि।

वीर्यकालावधि। २ वर्ष।

स्वभाव। रस—कटु। गुण—लघु, उष्ण, तीक्ष्ण। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु।

मुख्ययोग। विदेशीय एकोनाइट (*Aconitum napellns*) की भाँति।

विशेष—मोहरी या (आकोनीटुम चास्मान्थुम)—विलायती एकोनाइट (आकोनीटुम नेपेल्लुस) का उत्तम प्रतिनिधि-द्रव्य है। चरकोक्त (चि० अ० २३) मूलविषों में तथा सुश्रुतोक्त (कल्प० अ० २) कन्दविषों में 'शृङ्गीविष' का भी उल्लेख है।

वक्तव्य—'शृंगीविष' का समावेश वास्तव में वत्सनाभ भेदों में ही समझना चाहिए। आजकल वत्सनाभ की जो जड़ें भारतीय बाजारों में मिलती हैं, उनमें शृङ्गीविष की जड़ें मिलीजुली रहती हैं। वत्सनाभ जैसी भयावह विषैली एवं मारक ओषधि को औषधोपयोगी रूप देना रसचिकित्सा की अपनी विशेषता तथा चिकित्साविज्ञान को विशिष्ट देन है। लगभग ६००-७०० वत्सनाभघटितयोगों के उल्लेख आयुर्वेदीय रसग्रंथों एवं भेषजसंहिताओं में मिलते हैं, जिनमें वत्सनाभ की प्रतिशतक मात्रा ०.५% से ७०% तक है। कितने आयुर्वेदीय चिकित्सक केवल वत्सनाभ को ही बरतते हैं। कोई न कोई वत्सनाभघटित योग सभी आयुर्वेदीय चिकित्सक व्यवहृत करते हैं। मेरे निर्देशन में डा०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एल० बी० सिंह ने अपने एम० डी० एवं पी० एच० डी० (रसशास्त्र) शोधकार्य में वत्सनाभ पर सभी दृष्टिकोणों से विचार एवं शोध-परीक्षण कार्य किया है। इस कार्य में आधुनिक मान्य परीक्षणविधियों से भी वत्सनाभ सम्बन्धी आयुर्वेदीय मान्यताओं की पुष्टि हुई है, तथा इसके औषधोपयोगी तथ्यों पर इस कार्य से नया प्रकाश पड़ा है। विदेशी वैज्ञानिकों का भी ध्यानाकर्षण वत्सनाभ के भेषजोपयोगी गुणों की ओर हुआ है। (लेखक)

श्योनाक–दे०, 'सोनापाठा'।

इलप्मातक–दे०, 'लिसोढ़ा'।

सतावर (शतावरी)

नाम। सं०–शतावरी, शतमूली, अतिरसा। हिं०–सतावर। बं०–शतमूली। पं०–सतावर। जौनसार–शरनोई। देहरादून–शत्रावल (सतावर)। म०–शतावर। गु०–शतावरी। या०–शतावर। संथा०–केदारनारी। रांची–गंगतरंग। अं०–वाइल्ड ऐस्पेरेगस (*Wild Asparagus*)। ले०–आस्पारगुस रासेमोसुस (**Asparagus racemosus** *Willd.*)।

वानस्पतिक-कुल। पलाण्डु-कुल (लीलिआसे *Liliaceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष के समस्त उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रान्तों में तथा हिमालयप्रदेश में ४,००० फुट की ऊँचाई तक शतावरी की जंगली लताएँ प्रचुरता से पायी जाती हैं। बगीचों में तथा बंगलों के सामने सौन्दर्य के लिए भी यदा-कदा लगायी हुई मिलती है। इसकी सुखायी हुई जड़ बाजारों में बिकती है।

संक्षिप्त-परिचय। शतावरी के काँटेदार एवं आरोहणशील झाड़ीनुमा क्षुप (*scandent shrub*) होते हैं, जो अनेक शाखाओं द्वारा चारों ओर फैले रहते हैं। प्रशाखाएँ त्रिकोणाकार, चिकनी किन्तु रेखान्वित होती हैं। काँटे (*spines*) कुछ-कुछ टेढ़े (*recurved*) तथा ६.२५ मि० मी० से १२.५ मि० मी० (¼ इंच से ½ इंच) लम्बे होते हैं। पत्राभासकाण्ड या पर्णाभ-काण्ड (*cladodes*) १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० (½ इंच से १ इंच) लम्बे, नोकदार (*subulate*) हँसिया के आकार के या दात्राकार (*falcate*) तथा अधःपृष्ठ पर नालीदार (*channelled beneath*) होते हैं, जो २–६ एक साथ गुच्छबद्ध निकलते हैं। पुष्प सफेद और सुगंधयुक्त तथा व्यास में २.५ मि० मी० से ३.७५ मि० मी० ($\frac{1}{10}$ इञ्च से $\frac{3}{20}$ इञ्च) होते हैं, जो २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इञ्च से २ इञ्च) लम्बी सशाखमंजरियों (*racemes*) में निकलते हैं। फल गोलाकार, व्यासमें ३.७५ मि० मी० से ६.२५ मि० मी० ($\frac{3}{20}$ इञ्च से ¼ इञ्च) तक तथा पकने पर लालरंग के हो जाते हैं। मूलस्तम्भ से कन्दसदृश, लम्बगोल परन्तु दोनों सिरों पर क्रमशः पतले (तर्क्वाकार *fusiform*) श्वेतमूलों का गुच्छा निकला रहता है, जिनका चिकित्सा में उपयोग होता है। यही सुखाकर बाजार में सतावर के नाम से बिकते हैं। वर्षा के आरम्भ में इसके मूल से नवीन शाखाएँ निकलती हैं, और फिर पुष्पों का आविर्भाव होता है। जाड़े में फल लगते हैं।

उपयोगी अंग। मूल (*Tuberous Roots*)।

मात्रा। मूलस्वरस–१ तोला से २ तोला।

चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–'शतावरीकन्द' ५ सें० मी० से २० सें० मी० (२ इंच से ८ इञ्च) तक लम्बे तथा व्यास में १.२५ सें० मी० या ½ इंच तक, रूपरेखा में तर्क्वाकार (*fusiform*) अर्थात् दोनों सिरों की ओर क्रमशः कम चौड़े होते हैं। बाह्यत्वक् हल्के भूरेरंग की होती है, जिसको छील कर पृथक् कर दिया जाता है। ताजे कन्द का अन्तर्वस्तु सफेद तथा गुलाबी, लवाबी (*mucilagnous*), पारभासी (*translucent*) एवं स्वाद में विरस (*insipid*) सा होता है। सूखे कन्दों का बाह्यतल कुछ अधिक भूरेरंग का तथा सिकुड़ा होता है, जिस पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक अनुलम्ब रेखाएँ-सी मालूम होती हैं, और बीच का तल कुछ खातोदर-सा मालूम होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–शतावरी की जड़ों को सुखाकर, मुखबंद डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन–शतावरी की जड़ों में म्युसिलेज (पिच्छिलद्रव्य) एवं शर्करा आदि घटक पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। १ वर्ष।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–मधुर, तिक्त। विपाक–

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मधुर। वीर्य–शीत। प्रधानकर्म–वातपित्तशामक, बल्य, रसायन, मूत्रल, गर्भपोषक, स्तन्यजनन, शुक्रल, मध्य, नाड़ीबल्य, हृद्य, रक्तपित्तशामक, चक्षुष्य, आदि। यूनानीमतानुसार यह पहले दर्जे में शीत एवं स्निग्ध है। अहितकर–आनाहकारक। निवारण–मिश्री।

मुख्य योग–शतावरीघृत, फलघृत, नारायणतैल, शतमूल्यादि लौह, शतावरीपानक, सफ़ूफ़े सैलान।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) बल्य, एवं वयःस्थापन महाकषाय (में 'अतिरसा' नाम से) एव मधुररसस्कन्ध (च० वि० अ० ८) तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) विदारिगन्धादि, कण्टकपञ्चमूल गण और पित्तसंशमन वर्ग (सू० अ० २९) में 'शतावरी' नाम से इसका भी उल्लेख है।

सनाय (स्वर्णपत्री ?)

नाम। सं०–मार्कण्डी, मार्कण्डिका (अभिनव) ?। हिं०–सनाय, सनायमक्की, सोनामकी (मुखी)। बं०–सोनामूखी। म०–सोनामुखी। गु०–मींढी आवल, सोनामुखी। म०–सोनामुखी। गु०–मींढी आवल, सोनामुखी। कों०–सोनामक्की। अ०–सनाऽ,सनाऽपक्की। अं०–इंडियन या तिन्नेवेली सेन्ना (*Indian or Tinnevelly Senna*)। ले०–कास्सिआ आन्गुस्टीफ़ोलिआ (**Cassia angustifolia** *Vahl.*)। लेटिन नाम इसके क्षुप का है।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : अम्लिका-उपकुल (*Leguminoseae : Caesalpiniaceae*)।

प्राप्तिस्थान–अरब एवं हजाज आदि में कास्सिआ आन्गुस्टीफ़ोलिआ के क्षुप जंगलीरूप से होते हैं। भारतीय बाजारों में यह 'सनाय मक्की' के नाम से आती है। अधुना दक्षिणभारत के तिनेवली, मदुरा एवं त्रिचनापली आदि स्थानों में लम्बे परिमाण में इसकी खेती की जाती है। तिनेवली में होने वाली सनाय अरबी की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है। सर्वत्र बाजारों में सनाय की पत्ती पंसारियों के यहाँ मिलती है। भारतीयसनाय उत्तम एवं सस्ती होने के कारण अब 'अरबीसनाय' की खपत कम होने लगी है।

संक्षिप्त-परिचय। सनाय के सीधे (०.९ मीटर या ३ फुट तक ऊँचे) क्षुप (*shrub*) या गुल्मक (*undershrub*) होते हैं। शाखाएँ पाण्डुरवर्णप्रायः गोलाकार या कभी कोणाकार-सी (*obtusely-angled*) होती हैं। पत्तियाँ सपत्रक तथा समपक्षवत् (*paripinnate*) होती हैं, जिनमें १–८ जोड़े पत्रक (*leaflets*) होते हैं। पत्रक अंडाकार-भालाकार, सवृन्तक (*petiolulate*) तथा चिकने होते हैं। पुष्प अमलतासदृश पीतवर्ण के होते हैं, जो पत्र कोणोद्भूत खड़ी मञ्जरियों (*erect axillary racemes*) में निकलते हैं। फली चपटी होती है, जो पकने पर कुछ कृष्णाभवर्ण की हो जाती है। औषधि में सनाय की पत्तियों एवं फलियों का व्यवहार होता है।

उपयोगी अंग–पत्र एवं फली (*Senna Pods*)।

मात्रा। पत्रचूर्ण–(१) अनुलोमनार्थ (कोष्ठ मृदुकरने के लिए) १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा, (२) स्रंसनार्थ (रेचनार्थ) ६ ग्राम से ९ ग्राम या ६ माशा से ९ माशा तक। फली–१० से २० (रेचनार्थ)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–तिनेवली सनाय (भारतीय सनाय) की पत्तियाँ (वास्तव में पत्रक) २.५ सें० मी० से ५ सें०मी० या १ इंच से २ इंच तक लम्बी, १.८७५ सें० मी० या ¾ इंच तक चौड़ी, रूपरेखा में अण्डाकार-भालाकार, सरलतट या किनारेवाली, पीताभ हरितवर्ण की तथा आधारपर मध्यनाड़ी के दोनों पार्श्वभाग कुछ विषमाकार (*asymmetrical base*) होते हैं। बंडलों में भरी जाने पर ऊपर के पत्रकों के दबाव से नीचे के पत्रकों पर ऊपर के पत्रकों की मध्यशिरा के चिह्न पड़ पड़ जाते हैं। पत्र वयनमें कड़े (*firmer in texture*) होने से टूटे पत्रक कम होते हैं। सनाय की पत्तियों में एक विशिष्टप्रकार की हल्की गंध होती है, तथा स्वाद में लुआबी तथा तीतापन लिये अरुचिकारक होती है। पत्तियों में काण्ड एवं डंठलों की मात्रा अधिकतम ८% तक होती है। भस्म—अधिकतम १२%। अम्ल में अवघुलनशील भस्म–अधिकतम ३%। जलविलेयसत्व–अधिकतम ३०%। विजातीयसेन्द्रिय अपद्रव्य–अधिकतम २% तक। सनाय की पत्ती का चूर्ण धूम वर्ण लिये पीताभहरित या हल्के जैतूनी भूरेरंग का होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। (१) सनायमक्की (*Mecca,*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Arabian or Bombay Senna) भी कास्सिआ आन्गुस्टीफ़ोलिआ से ही प्राप्त होती है, किन्तु इनका संग्रह जंगली पौधों से किया जाता। यह अपेक्षाकृत अधिक लम्बी, कम चौड़ी तथा भूरेरंग की अथवा भूरापन लिये हरेरंग की होती है। गुण-कर्म में यह बहुत-कुछ भारतीय सनाय की ही भाँति होती है। (२) मिस्री-सनाय (*Alexandrian Senna*)-कास्सिआ आकूटीफ़ोलिआ (**Cassia acutifolia** *Delile*) नामक जाति के जंगली एवं कर्षित दोनों ही प्रकार के क्षुपों से संग्रहीत की जाती है। यह अफ्रीका के विभिन्न प्रान्तों में बोयीजाती है, तथा स्वयंजात भी होती है। चूँकि यह 'एलिक्जेंड्रिया' बन्दरगाह से विदेशों को भेजी जाती है, अतएव इसका व्यावसायिक नाम ऐलिक्जेंड्रिअन सेन्ना' पड़ गया है। यह भी गुण-कर्म में बिल्कुल भारतीय सनाय की ही भाँति होती है। भारतीय सनाय में प्रायः दूसरी औषधियों का मिलावट नहीं कियाजाता।

संग्रह एवं संरक्षण—फसल में सनाय की पत्तियाँ भी चाय की पत्तियों की भाँति हाथ से तोड़ीजाती हैं। चुनने के बाद शीघ्र ही इन्हें धूप में सुखालिया जाता है। शुष्कपत्तियों एवं फलियों को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—सनाय की पत्तियों में एलो-एमोडिन (*Aloe-Emodin* $C_{14}H_5O_2\ (OH)_2\ CH_2OH$) नामक रेचकसत्व पाया जाता है, जो स्वतंत्ररूप से तथा ग्लाइकोसाइड के रूप में, दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त रहीन (*Rhein*), कम्फेरिन (*Kaempferin*) एवं आइसो-रह्मनेटिन (*Isorhamnetin*), म्युसिलेज, कैल्सियम ऑक्जलेट एवं राल आदि सत्व भी पाये जाते हैं। पत्तियों में मेथिल एन्थ्राक्विनोन व्युत्पन्न योगिकों की सकलमात्रा १% से ४% तक होती है। सनाय की फलियों में भी प्रायः यही सब उपादान होते हैं।

वीर्यकालावधि—५ वर्षतक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—वामक, अनुलोमन, स्रंसन, रक्तशोधक, कृमिनाशन। यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क तथा कफपित्तसौदा विरेचनीय एवं अवरोधोद्घाटक है। यह अन्त्र में मरोड़ उत्पन्न करती एवं वमनोत्तेजक भी है। साधारण मात्राओं में सनाय का प्रयोग करने से कोष्ठ मृदु होता है, तथा पचन क्रिया सुधरकर दस्त साफ होता है। यकृत् पर भी यह थोड़ा-बहुत उत्तेजक प्रभाव करती है। अधिक मात्रा में देने से पेट में मरोड़ आकर तीव्र विरेचन होता है। इसको सेवन करने के उपरान्त ६ घण्टे से १० घण्टे के अन्दर रेचन क्रिया पूर्णतः हो जाती है। आदतीकब्ज के रोगियों में कोष्ठशुद्धि के लिए सनाय उपयुक्त औषधि है। विकृत दोषों के निर्हरण के लिए यह एक उत्कृष्ट औषधि है। इसी कारण तृतीयक, चातुर्थिक आदि पर्यायज्वर, पित्तज एवं सौदाजन्य आमवात एवं कटिशूल, गृध्रसी, वातरक्त एवं कुपचन के कारण मल शुद्धि न होने से शरीर में मलसंचय होने पर अमलतास आदि अन्य उपयुक्त औषधियों के साथ इसका प्रयोग करने से दूषित पित्त आदि तथा व्याधिजनक विषों का शरीर से निर्हरण होता है तथा नवीन शुद्ध पित्तादि उत्पन्न होते हैं और औषधि अपना कार्य भली प्रकार करती है। शोषणोपरान्त सनाय का शरीर से निस्सरण मूत्र, स्तन्य आदि सभी शारीरिक स्रावों से होता है। अतएव स्तन्यपान करानेवाली स्त्रियों में सनाय का प्रयोग करते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि माता के सनायसेवन करनेपर स्तनन्धय-शिशु पर भी उसका प्रभाव पड़ सकता है। ऐसे शिशुओं में रेचन कराने के लिए सनाय के इस गुण का उपयोग भी किया जाता है। अहितकर—सनाय के उपयोग से मिचली आने लगती है, और पेट में मरोड़ उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त तृष्णा एवं आकुलता भी पैदा होती है। फलियों के सेवन में प्रायः उक्त दोष नहीं पाये जाते। निवारण—सनाय के उक्त दोषों के परिहार के लिए इसके साथ सुगन्धितद्रव्य (सौंफ, सोंठ, गुलकन्द, गुलाब के फूल आदि) या लवणविरेचन (सोडा० सल्फ०, मैग० सल्फ० आदि) तथा सेंधानमक अथवा मिश्री आदि मिलाना चाहिए। यदि चूर्ण के रूप में उपयोग करना हो तो इसे बादाम के तेल से स्नेहाक्त कर लेना अधिक अच्छा है। मुलेठी एवं मिश्री आदि मिलाने से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके कुस्वाद का निवारण हो जाता है। विशेष-बृहदन्त्रप्रदाह (*Colitis*) एवं स्तम्भिकबिबन्ध (*Spastic Constipation*) में सनाय का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मुख्ययोग—पंचसकारचूर्ण, षट्सकारचूर्ण एवं यष्ट्यादिचूर्ण तथा अतरीफलसनाई, माजूनसनाय आदि।

सप्तपर्ण (छितवन)

नाम। सं०—सप्तपर्ण, शारद (शरद्-ऋतु में पुष्पित होने के कारण), विशालत्वक् विषमच्छद। हिं०—छतिवन, सतौना। पं०—सतौना। संथा०—छतनी। को०—कुनुर्युग। बं०—छातिम। म०—सातवीण। गु०—सातवण। लै०—आल्सटोनिआ स्कोलारिस (**Alstonia scholaris** *R. Br.*)।

वानस्पतिक-कुल। करवीर-कुल (आपोसीनासे : *Apocynaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के उष्ण एवं नम प्रदेशों (विशेषतः दक्षिण भारत के पश्चिमीतटप्रदेशीय जंगल तथा बंगाल) में इसके जंगली एवं सड़कों के किनारे तथा पुराने बगीचों में लगाये हुए, दोनों ही प्रकार के वृक्ष मिलते हैं। सप्तपर्ण की छाल (काण्डत्वक्) पंसारियों के यहाँ बिकती है।

संक्षिप्त-परिचय। सप्तपर्ण के सदाहरित, ऊँचे-ऊँचे और सीधे तथा सुन्दर वृक्ष होते हैं। काण्ड-स्कन्ध (प्रायः पुराने और ऊँचे वृक्षों में) अधःभाग में अपेक्षाकृत मोटा या फूला हुआ अर्थात् पुश्ताजड़ (*Fluted or butteressed*) होता है, और शाखाएँ तथा पत्तियाँ चक्रिक-क्रम (*verticillate*) में निकली होती हैं। प्रत्येक चक्र में पत्तियाँ ३ से ७ होती हैं, जो १० सें० मी० से २० सें० मी० × २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (४ इञ्च से ८ इञ्च × १ इञ्च से १½ इञ्च), रूपरेखा में अभिलट्वाकार, अण्डाकार-आयताकार या आयताकार-भालाकार चिकनी, चर्मिल, ऊर्ध्वतल पर चमकीले हरेरंग की तथा अधस्तल पर श्वेताभ और छोटे वृन्तयुक्त (६.२५ मि० मी० से १२.५ मि० मी० या ¼ इञ्च से ½ इञ्च) होती हैं। काण्डत्वक् पर चीरा लगाने से अथवा पत्तियों को तोड़ने पर सफेद दूध (आक्षीर *latex*) निकलता है। शरद-ऋतु में पुष्प लगते हैं, जो अत्यन्त उग्र-सुगन्धित तथा हरिताभ-श्वेतवर्ण के होते हैं, और सघन छत्राकार गुच्छों में (*compact umbellately corymbose cymes*) में निकलते हैं। पुष्पवाहकदण्ड (*peduncles*) २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इञ्च से २ इञ्च) लम्बे होते हैं, और यह भी चक्रिकक्रम से निकले होते (*whorled*) हैं। बाह्यकोश छोटा तथा पाँच-खण्डयुक्त होता है। आभ्यन्तरकोश व्यास में ८.३ मि० मी० से १२.५ मि० मी० (⅓ इञ्च से ½ इञ्च) तक होता है। खण्ड प्रायः गोलाकार और फैले हुए (*spreading*) होते हैं। फलियाँ (*follicles*) दो-दो एक-एक साथ, नीचे लटकी हुई, प्रायः ३० सें० मी० या १ फुट तक लम्बी किन्तु पतली (व्यास में ५ मि० मी० या ⅕ इञ्च) होती हैं, जिसमें ८.३ मि० मी० या ⅓ इञ्च तक लम्बे, पतले तथा चपटे बीज होते हैं, जिनके चारों ओर रूई-सी लगी होती है। पकने पर फल स्वयं फट जाते हैं, और बीज हवा में उड़कर बिखर जाते हैं। फलागम जाड़ों में होता है। पुष्पागम के समय वृक्ष फूलों के गुच्छों से लदा होता है, और इसके पास से गुजरने पर धीमी मनोरम सुगन्धि आती है। फलागम होने पर फलियों के गुच्छे-के-गुच्छे लटके हुए होते हैं। सप्तपर्णत्वक् या छाल का व्यवहार चिकित्सा में विषमज्वरनाशक औषधि के रूप में किया जाता है।

उपयोगी अंग। काण्डत्वक् (छाल)।

मात्रा। काण्डत्वक् (क्वाथार्थ या फाण्टनिर्माणार्थ)—१ तोला से २ तोला। घनसत्व—२ ग्राम से ४ ग्राम या २ माशा से ४ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—छतिवन की छाल के खातोदर अथवा नालिकाकार टुकड़े (*channelled quilled pieces*) होते हैं। टूटे टुकड़े कभी-कभी टेढ़े-मेढ़े या चपटे होते हैं। सप्तपर्ण की छाल काफी मोटी (शाखाओं से प्राप्त छाल प्रायः ३.१२५ मि० मी० से ४.१६ मि० मी० (⅛ इञ्च से ⅙ इञ्च) तथा काण्डस्कन्ध की छाल अपेक्षाकृत अधिक मोटी ६.२५ मि० मी० या ¼ इञ्च तक या कुछ अधिक) होती है। बाह्यतः यह खाकस्तरी या कृष्णाभ और अन्तस्तल पर पीताभ-भूरेरंग या खाकस्तरी भूरेरंग की होती है। पुराने वृक्षों की छाल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाह्यतल पर काफी खुरदरी एवं ऊबड़-खाबड़ होती है, और लम्बाई तथा बेड़ी, दोनों दिशाओं में, फटी हुई या दरारयुक्त (*fissured*) होती हैं। छाल के तोड़ने पर खट से टूटजाती (*fracture short*) है, और टूटा तल कोमल मालूम होता है। ध्यानपूर्वक देखने से छाल का बाह्यभाग स्पंजी (*spongy*) मालूम होता है, और अन्तर्भाग में मज्जक-किरणें (*medullary rays*) मालूम होती हैं। छाल के बाह्यतल पर सर्वत्र खाकस्तरी या श्वेताभ भूरेरंग के गोल-गोल अथवा अंडाकार वात-रन्ध्र के चिह्न (*lenticels*) पाये जाते हैं। सप्तपर्ण की छाल में कोई गंध तो नहीं होती, किन्तु स्वादमें यह स्थायी रूप से अत्यन्त तिक्त होती है। उत्तम नमूने में विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% तक हो सकते हैं, और छालगत ऐल्केलायड्स की मात्रा कम-से-कम ०.२५% अवश्य रहती है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में सप्तपर्ण के पुराने वृक्षों से छाल ग्रहणकर छायाशुष्क कर लें, और उसे मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें। विषम ज्वर में प्रयुक्त करने के लिए इसका 'घनसत्व' अधिक उपयुक्त होता है। एतदर्थ ताजीछाल से रसक्रिया की पद्धति से घनसत्व बनावें और इसे चौड़े मुंह की शीशियों में ठंढो एवं अंधेरी जगह में रखें।

संगठन—सप्तपर्ण की छाल में डिटामीन (*Ditamine* $C_{16}N_{19}O^2N$), एकिटेनीन (*Echitenine* $C_{20}H_2O_4N$), एकिटामीन (*Echitamine* : $C_{22}N_{28}O_4N_2$) तथा एकिटामिडीन आदि ऐल्केलायड्स पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त एकिसेरिन, एकिटिन, एकेटीन तथा एकिरेटिन आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। छाल—२ वर्ष। सत्व—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। कर्म—कफवातशामक, व्रणशोधन—रोपण, दीपन, स्तम्भन, अनुलोमन, (अल्पमात्रा में) कटुपौष्टिक, नियतकालिकज्वर-प्रतिबन्धक, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, कफघ्न, स्तन्यजनन, रक्तशोधक एवं हृद्य आदि। सप्तपर्ण की छाल एक उत्तम विषमज्वर नाशक औषधि है। इस रूप में इसकी क्रिया 'कुनैन' की तरह होती है। साथ उसके कुप्रभाव भी नहीं होते। एतदर्थ इसका फाण्ट, क्वाथ, अथवा टिंक्चर या घनसत्व का उपयोग किया जा सकता है। जीर्णज्वर, चिरकालीन विषमज्वर एवं ज्वरोत्तरकालिक-दौर्बल्य, अग्निमांद्य आदि में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। प्रसूतावस्था में इसे सुगन्धित द्रव्यों (वचा, अदरख, कचूर आदि) के साथ देने से ज्वर नहीं आता, अन्न ठीक पचता है, और दूध बढ़ता है। चिरकालीन अतिसार एवं प्रवाहिका एवं वृहदन्त्र की चिरकालज श्लैष्मिक कलाशोथ (*Colitis*) में भी इसकी छाल बहुत उपयोगी होती है। त्वचापर सप्तपर्ण की उत्तेजक क्रिया होती है, तथा यह रक्तशोधक भी है। अतएव त्वचा के रोगों में भी इसका प्रयोग बहुत लाभप्रद है।

मुख्य योग। सप्तपर्णसत्त्वादिवटी, सप्तच्छदादि क्वाथ।

विशेष—सप्तपर्ण के निम्नयोग भी बाजारों में (अंग्रेजी दवाखानों में) मिलते हैं :—(१) सप्तपर्ण का प्रवाही घनसत्व (लिक्विड एक्स्ट्रक्ट ऑफ ऐक्सटोनिआ)। मात्रा। ६० बूंद से १२० बूंद (१ ड्राम से २ ड्राम)। (२) टिंक्चर ऑफ ऐक्सटोनिआ। मात्रा—१० बूंद से ६० बूंद (½ ड्राम से १ ड्राम।

समुन्दरसोख (समुद्रशोष)

नाम। सं०—समुद्रशोष। हिं०, भा० बाजार—समुन्दरसोख, कम्मरकस। पं, सि०—साठी, समुन्दरसोख। गु०, बम्ब०—कम्मरकस। ले०—साल्विआ प्लेबीआ (**Salvia plebeia** *R. Br.*)।

वानस्पतिक-कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटे : *Lablatae*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष (विशेषतः पंजाब) के मैदान और पहाड़ों पर (१५२४ मीटर या ५,००० फुट की ऊँचाई तक) इसके क्षुप पाये जाते हैं। बीज पंसारियों के यहाँ बिकने हैं।

संक्षिप्त-परिचय। समुन्दरसोख के एकवर्षायु शाकीय-पौधे (*annual herb*) होते हैं, जिनका काण्ड काफी मोटा तथा कुछ मखमली होता है। पत्तियाँ साधारण (*simple*), अननुपत्र (*exstipulate*), २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (१ इञ्च से ३ इञ्च) तक लम्बी, रूपरेखा में लट्वाकार से आयताकार, सवृन्त, कुण्ठिताग्र एवं दन्तुरधारवाली और अभिमुखक्रम से स्थित होती हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुष्प सवृन्त, ६.२५ मि० मी० या ¼ इञ्च तक लम्बे, सफेद या गुलाबी आभा लिये होते हैं, जो सशाख मञ्जरियों पर स्थान-स्थान में चक्राभव्यूहक्रम से स्थित होते हैं। बाह्यकोश ३.१२५ मि० मी० या ⅛ इञ्च तथा द्वि-ओष्ठीय होता है, किन्तु ऊर्ध्वोष्ठ की धार दन्तुर नहीं होती। आभ्यान्तरकोश (*corolla*) भी द्वि-ओष्ठीय होता है। पुंकेशर संख्या में २ तथा फल चतुर्वेश्म (*nutlets*) होते हैं। बीजों का व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोगी अंग—बीज।

मात्रा। ३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजारों में मिलने वाले समुन्दरसोख के बीज, राई के दानों से बहुत छोटे, लम्बगोल, चिकने और काले या कृष्णाभ भूरेरंग के होते हैं।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—कहीं-कहीं घावपत्ते (**Argyreia speciosa** *Sweet,*) के बीजों को भी 'समुन्दरसोख' कहते हैं। परन्तु यह बाजारों में मिलनेवाला समुन्दरसोख नहीं है।

संग्रह एवं संरक्षण—समुन्दरसोख को मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतलस्थान में रखना चाहिए।

संगठन—इसमें १८% स्थिर तैल, ११¾% तक प्रोटीन तत्व, ४४% गोंद तथा तन्तु एवं १५% भस्म एवं २% नाइट्रोजन पाया जाता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। पहले दर्जे में सर्द एवं तर। उक्त बीज वीर्य-पुष्टिकर तथा संशमन होते हैं। शुक्रमेह, शुक्रतारल्य एवं मूत्र की जलन तथा शीघ्रपतन में इसे माजूनों तथा चूर्णों में डाल कर अथवा एकौषधि के रूप में दूध के साथ व्यवहृत करते हैं। अहितकर—गुरु, विष्टम्भी एवं चिरपाकी। निवारण—मधु और शर्करा।

समुद्रफल (हिज्जल)

नाम। सं०—हिज्जल, निचुल। हिं०—समुन्दरफल, इंजर, समुद्रफल। बं०—हिजल। म०—समद्रफल, सत्फल। गु०—समुदरफल, समुद्रफल। ले०—बारींग्टोनिआ आकूटांगुला (**Barringtonia acutangula** *Gaertn.*)। लेटिन-नाम इसके वृक्ष का है।

वानस्पतिक-कुल। कुम्भीर-कुल (लेसीथिडासे : *Lecythidaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के अनेक भागों में, विशेषतः यमुना के पूरब हिमालय के तराई के प्रदेशों में, तथा बिहार; उड़ीसा, बंगाल, आसाम, मध्यप्रदेश एवं दक्षिण भारत। नदियों के किनारे तथा जलमग्न भूमि में इसके वृक्ष अधिक मिलते हैं। बीज पंसारियों के यहाँ तथा बनौषधि-विक्रेताओं के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। समुद्रफल के छोटे-छोटे या मध्यम ऊँचाई के (९ मीटर से १२ मीटर या ३० फुट से ४० फुटतक वृक्ष होते हैं, जिनका काण्डत्वक् धूसर तथा काण्डसार श्वेत और कोमल होता है। पत्तियाँ सामान्यतः १२.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ५ इंच से ६ इञ्च लम्बी, तथा ५ सें० मी० से ७.५ सें०मी० या २ इञ्च से ३ इंच चौड़ी (९ × ४ इञ्चतक) तथा लम्बगोल, अभिलट्वाकार, जिनके किनारे आरावत् सूक्ष्मदन्तुर (*serrulate*) होते हैं। पुष्प लालरंग के तथा सुन्दर होते हैं। पुंकेशर भी लाल होते हैं। मञ्जरी प्रायः ३० सें० मी से ६० सें० मी० या १ फुट से २ फुट लम्बी, सवृन्त काण्डज और नीचे को लटकी हुई रहती (*pendulus racemes*) है। सौन्दर्य के लिए भी इसके वृक्ष जगह-जगह बगीचों में लगाये जाते हैं। फल लम्बगोल, चतुष्कोणाकार (चौपहल) २.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बा, एक बीज वाला और पकने पर कठोर हो जाता है। समुद्र-फल देखने में आपाततः बड़ीइलायची की रूपरेखा का होता है। इसके अग्रपर स्थायी बाह्यकोश का अवशेष लगा होता है।

उपयोगी अंग। फल (बीज) तथा (मूल एव पत्र)।

मात्रा। फलचूर्ण (वमनार्थ) ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा, अन्य कर्मों के लिए ५०० मि० ग्राम से १००० मि० ग्राम (४ रत्ती से १ माशा)। मूल—५०० मि० ग्रा० से १००० मि० ग्राम या ४ रत्ती से १ माशा। पत्रस्वरस—६ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। बाजारों में मिलनेवाला शुष्क समुद्र-फल प्रायः जायफल बराबर एवं रूपरेखा का होता है। बाह्यतः यह किंचित् खुरदरे तथा भूरेरंग के और अनु-लम्ब उन्नत रेखाओं (*longitudinally striate*) से युक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते हैं। शुष्कफल अन्दर से कड़े एवं भंगुर होते हैं, किन्तु थोड़ा जल में भिगोने पर आसानी से मुलायम हो जाते हैं। इसका ताजाफल रक्ताभवर्ण और पुराना होने पर कृष्णाभ हो जाता है। फलत्वक् अत्यन्त पतला होता है। मुख में चाबने पर स्वाद में यह पहले किंचित् मधुर, बाद में तिक्त एवं उत्क्लेशकारी (*nauseous*) होता है। इसके जलीय विलयन को हिलाने से झाग उत्पन्न होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। दक्षिणभारत में पश्चिमी समुद्र तटवर्तीय प्रदेशों में तथा बंगाल (सुन्दरबन) एवं आसाम आदि में इसकी एक दूसरी जाति बारींगटोनिआ रासेमोसा (**Barringtonia racemosa** *Blume*) भी प्रचुरता से पायी जाती है। इसके बीज भी बहुत-कुछ समुद्रफल के ही समान होते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—पक्वफल एवं बीजों को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्द पात्रों में रखें।

संगठन—इसमें सैपोनिन (*Saponin*) की भाँति एक सत्व बैरिंगटोनिन (*Barringtonin*) पाया जाता है, जो इसका मुख्य सक्रियघटक होता है। इसमें अधिकांश भाग श्वेतसार (स्टार्च) तथा प्रोटीड (*Proteid*), वसा, रबड़ और क्षार, लवण प्रभृति उपादान होते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कटु, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—वमन। प्रधान कर्म—वामक, रेचन, कफनिस्सारक, कफपित्त-संशोषक, शिरोविरेचन, रक्तशोधक, ज्वरघ्न आदि। कासश्वास में इसका प्रयोग करने से वमन और विरेचन से कफ निकल जाता है, और रोग की शान्ति होती है। यूनानीमतानुसार यह गरम और खुश्क है।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० २) विरेचनद्रव्यों में ('निचुल' नाम से), वमनोपग महाकषाय (सू० अ० ४) में ('विदुल' नाम से) तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) ऊर्ध्वभागहरगण में 'हिज्जल' भी है।

सरपत (शर)

नाम। सं०—शर, बाण, मुञ्ज। हिं०—मूंज, सरपत, काण्डा। ले०—साक्कारुम मुंजा **Saccharum munja** *Roxb.* (पर्याय—*S. ciliare Anders*)।

वानस्पतिक-कुल। तृण-कुल (ग्रामीने *Gramineae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः उत्तरप्रदेश, पंजाब। नदी-नालों के कछारों में गुच्छों में उगती है। यह एक प्रसिद्ध व्यवहारोपयोगी घास है।

संक्षिप्त-परिचय। मूंज एक ऊँची घास होती है, जिसके पौधे गुच्छों (जूटों में) उगते हैं। नालकाण्ड या कल्म (*culms*) ७.१ मीटर से ७.२ मीटर या २३-२४ फुट तक ऊँचे बढ़ जाते हैं, और यह अन्दर से ठोस तथा बाहर से चिकने, चमकदार एवं रेखांकित से (*striate*) होते हैं। पत्तियाँ चमकदार, अग्रकी ओर क्रमशः कम चौड़ी होकर नुकीली तथा कर्कश धारवाली होती हैं। काण्ड के अधः भाग की पत्तियाँ १.५ से १.८ मीटर या ५ फुट से ६ फुट तक लम्बी तथा २ सें० मी० या ¾ इञ्च तक चौड़ी होती है। ऊपर की पत्तियाँ अपेक्षाकृत कम लम्बी एवं चौड़ी होती हैं। इसका भी घूआ (**Plumose panicle**) निकलता है, जो ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट तक लम्बा तथा पीताभ या रक्ताभ जामुनीरंग का होता है। इसके काण्ड, पत्र तथा पत्रकोषों (*sheaths*) से निकाले रेशों की रस्सी बनायी जाती है। पत्तियों के छप्पर बनाये जाते हैं, तथा कागज बनाने के लिए भी प्रयुक्त होती हैं। मूल का ग्रहण 'तृण-पंचमूल' में किया जाता है।

उपयोगी अंग—मूल।

मात्रा। क्वाथ—५ तोला से १० तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—जड़ों में 'जड़ों' का संग्रहकर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

वीर्यकालावधि। कुछ मास से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध। रस—मधुर, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म-त्रिदोषहर; तृष्णानिग्रहण एवं दाहप्रशमन, रक्तशोधक, रक्तपित्तहर, मूत्रल, स्तन्यजनन, वृष्य, चक्षुष्य आदि।

मुख्य योग—तृणपञ्चमूलक्वाथ।

सरफोंका (शरपुंखा)

नाम। सं०—शरपुंखा, प्लीहशत्रु, नीलवृक्षाकृति। हिं०—सरफो (फों) का, सरपोंखा। बं०—बननील, शरपुंख। म०—शीरपंखा, उटाटी, उन्हाली। गु०—शरपंखों। फा०—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बर्गसूफ़ार। अं०—पर्पल टेफ्रोसिआ (*Purple Tephrosia*)। ले०—टेफ्रोसिआ पुर्पूरेआ (**Tephrosia purpurea** (*Linn*). *Pers.*)। उक्त लेटिन नाम लाल-फूलवाले सरफोंका के हैं।

वानस्पति-कुल। शिम्बी-कुल : अपराजितादि-उपकुल (*Leguminoseae* : *Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में (तथा हिमालयप्रदेश में १८२८.८ मीटर या ६,००० फुट की ऊँचाई तक) इसके स्वयंजात पौधे होते हैं। ऊसर तथा बलुई भूमि में प्रायः इसके पौधे अधिक मिलते हैं। गाँवों एवं शहरों के आसपास की परती-भूमि तथा पुराने बगीचों आदि में सर्वत्र इसके पौधे सुलभ होने से चिकित्सक जरूरत पड़ने पर ताजी औषधि का संग्रह कर लेते हैं। अतएव बाजारों में प्रायः यह नहीं बिकता।

संक्षिप्त-परिचय। सरफोंका के प्रायः सीधे (*erect*), छोटे (३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट ऊँचे), बहुशाखी क्षुप होते हैं, जिनके काण्ड बेलनाकार, चिकने या किंचित् रोमश होते हैं। पत्तियाँ सपत्रक, जिनमें पत्रक ५-९ जोड़े होते हैं, तथा एक पत्रक सिरे पर (*odd-pinnated*) होता है। पत्रक १.५ सें० मी० या १ इंच तक लम्बे तथा १.५ सें० मी० या $\frac{3}{10}$ इंच तक चौड़े, आयताकार—प्रतिभालाकार (*oblong-oblanceolate*) तथा नताग्र या रोमशाग्र (*bristle-tipped*) होते हैं। सरपुंखा का क्षुप देखने में नील के क्षुप के समान दीखता है। इसीलिए बंगाल में इसे 'बननील' कहते भी हैं। पत्रकों को तोड़ने पर बाण के अग्र भाग के समान नुकीले टूटते हैं। इसीलिए इसे 'शरपुंख' या 'शरपुंखा' कहते हैं। परन्तु नील के पत्रक इस तरह नहीं टूटते। पुष्प (६.२५ मि० मी० से ८ मि० मी० या $\frac{1}{4}$ इंच से $\frac{5}{16}$ इंच लम्बे), लाल या जामुनी (*purple*) रंग के होते हैं, जो पत्तियों के अभिमुखस्थित मञ्जरियों (*leaf-opposed racemes*) में निकलते हैं, जो ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी (३ इञ्च से ६ इञ्च) तक लम्बी होती हैं। फली २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च लम्बी, सीधी, किंचित् चिपटी एवं रोमश होती है, जो अग्रपर कुण्ठिताग्र होती है, किन्तु एक चोंच-जैसी नोक (*recurved at the tip*) होती है। प्रत्येक फली में ४-१० छोटे-छोटे वृक्काकार बीज होते हैं, जिनका बाहरी छिलका (*testa*) चितकबरा (*mottled*) होता है। बीज द्विदल पीलेरंग के होते हैं। सरपुंखा के सभी अंग स्वाद में किंचित् तिक्त होते हैं। इसमें पुष्पागम वर्षा में तथा फलागम शरद्-ऋतु में होता है।

उपयुक्त अंग—पंचाङ्ग (विशेषतः मूल) एवं पंचाङ्ग से प्राप्त क्षार।

मात्रा। चूर्ण—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।
स्वरस—१ तोला से २ तोला।
क्षार—१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

प्रतिनिधि-द्रव्य एवं भेद। पुष्पभेद से शरपुंखा के २ भेद होते हैं—(१) लाल फूलवाला, (२) सफेद फूलवाला। लालफूलवाले शरपुंखा का ऊपर वर्णन किया गया है। प्रायः शरपुंखा नाम से इसी का ग्रहण एवं प्रयोग किया जाता है। श्वेतशरपुंखा को टेफ्रोसिआ विल्लोसा (**Tephrosia villosa** *Pers.*) कहते हैं। इसका पौधा जमीन पर फैलता है। और रोंयेदार होता है। समस्त भारतवर्ष के मैदानी भागों में इतस्ततः इसके पौधे पाये जाते हैं। श्वेतजाति रसायन में प्रशस्त मानी गयी है। राजनिघण्टुकार ने 'कण्टपुंखा' या कंटक-शरपुंखा' का भी वर्णन किया है। इसे 'टेफ्रोसिआ पेट्रोसा **Tephrosia petrosa** *Blatter & Halb.*' कहते हैं। पश्चिमी राजस्थान एवं जोधपुर तथा जैसलमेर आदि में इसके पौधे अधिक पाये जाते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—छायाशुष्क पंचांग को अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबंद पात्रों में रखें। शरपुंखाक्षार को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए, ताकि अन्दर आर्द्रता न प्रवेश करे।

संगठन—भस्म ६% प्राप्त होती है, जिसमें अल्पमात्रा में मैंगेनीज, क्लोरोफिल, भूरेरंग का रालीयपदार्थ, मोम, किंचित् ऐल्ब्युमिन, रंजक-द्रव्य एवं क्वेर्सेटीन या क्वेर-साइट्रीन के सदृश एक सत्व होता है।

वीर्यकालावधि। १ वर्ष। क्षार—कईवर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—भेदन। प्रधान कर्म—कफवातशामक, प्लीहोदरनाशक, (क्षार) रक्तरोधक, रक्तपित्तशामक, रक्तशोधक, मूत्रल, कफनिस्सारक, ज्व-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रघ्न, विषघ्न। 'श्वेतसरपुंखा' रसायन होती है। यूनानीमतानुसार गरम एवं तर होती तथा रक्तार्श में विशेष उपयोगी मानी जाती है।

सरसों (सर्षप)

नाम। सं०–सर्षप, सिद्धार्थ (गौरसर्षप), कटुस्नेह, भूतनाशन। हिं०–सरसों। पं०–सरेयाँ। बं०–सरिषा। गु०–सरसव। म०–शिरसी। सिंध– सियांचिटी। अं०–रेप (*Rape*)। ले०–ब्रास्सिका काम्पेस्ट्रिस (*Brassica campestris L.*) तथा इसके अन्य मिश्रित भेद।

वानस्पतिक-कुल। सर्षप-कुल (क्रूसीफ़ेरे *Crucifereae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष।

संक्षिप्त-परिचय। सरसों एक प्रसिद्ध तेलहन है। समस्त भारतवर्ष में काफी परिमाण में इसकी खेती की जाती है। यह जाड़ों में गेहूं, चने आदि के साथ बोया जाता है। सरसों का तेल एक प्रसिद्ध व्यावसायिक द्रव्य है। घरेलू कार्य में इसकी काफी खपत होती है। यह खाने एवं लगाने के काम में लाया जाता है। पर-सेचन द्वारा ब्रास्सिका के 'मिश्रित भेद' अधिक पाये जाते हैं, और मिलनेवाले बीजों में जातिविशेष की शुद्धता प्रायः नहीं रह पाती। बाजारों में प्रायः लाल या काली और पीली सरसों करके २ प्रकार का सरसों मुख्यरूप से पाया जाता है। भारतवर्ष में होने वाले सर्षप में दो-तीन भेद विशेष महत्त्व के हैं—(१) **Brassica campestris** *Var.* **dichotoma** *Watt.*। (२) **Brassica campestris** *Var.* **glauca** तथा (३) **B. campestris** *Var.* **toria**। इनमें तीसरा भेद तराई के जिलों में अधिक बोया जाता है। प्रथम भेद के बीज काली या लाल सरसों के नाम से तथा इनसे प्राप्त तैल व्यवसाय में 'कोल्जा ऑयल (*Colza Oil*)' के नाम से, तथा दूसरे भेद से प्राप्त बीज पीलीसरसों या सफेद सरसों के नाम से तथा इनसे प्राप्त तेल "रेप ऑयल (*Rape Oil*)' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सरसों के बीज साबूदाना की तरह गोल-गोल दानों के रूप में (तथा राई से बड़े) होते हैं। लालसर्षप के दाने कुछ कालिमा लिये भूरेरंग के तथा स्पर्श में चिकने या कुछ कर्कश होते हैं। पीली या सफेद सरसों के बीज पीले या सफेद रंग के होते हैं। सरसों के कोमल पौधों का 'शाक' खाया जाता है, तथा बीज एवं तैल का औषध्यर्थ व्यवहार भी होता है।

उपयोगी अङ्ग–बीज एवं तेल (कटुतेल या कड़वा तेल)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–सरसों का तेल हल्का भूरापन लिये पीलेरंग का या सुनहले पीलेरंग के द्रव के रूप में पाया जाता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की गंध पायी जाती है, तथा स्वाद में यह तीक्ष्ण होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–बीजों में प्रायः जान-बूझकर मिलावट की सम्भावना कम होती है। इसमें तीसी, कुसुम्भ (बर्र) तथा भड़भाड़ (स्वर्णक्षीरी) एवं कुसुम (*Schleichera trijuga Linn.* (*Family : Sapindaceae*) के तेल का भी मिलावट किया जाता है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है।

संगठन–सरसों के बीजों में २६% से ३५% तक स्थिर तैल (कटुतैल या कड़वातेल) तथा (२८% तक) प्रोटीन एवं म्यूसिलेज आदि घटक पाये जाते हैं। तैल में मुख्यतः स्टियरिक एसिड एवं ओलिईक एसिड आदि के ग्लिसराइड्स पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त बिना उबाले हुए बीजों से अल्पमात्रा में एक उत्पत् तैल भी पाया जाता है।

स्वभाव। गुण–(बीज एवं तेल) स्निग्ध, रूक्ष, (शाक)–तीक्ष्ण, रूक्ष। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–कफवातनाशक, पित्तवर्धक, लेखन, कुष्ठघ्न, वर्ण्य, वेदनास्थापन, शोणितोत्क्लेशक, दीपन, विदाही, हृदयोत्तेजक, मूत्रजनन, वाजीकरण, गर्भाषयोत्तेजक आदि। यूनानीमतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है। प्रलेप के रूप में प्रयुक्त करने से इसकी क्रिया राई की तरह होती है। सन्धिवात, कमर के दर्द एवं अन्य पीड़ाओं को शान्त करने के लिए अन्य वेदनास्थापन औषधियाँ मिला कर इसके तेल की मालिश की जाती है। वर्ण्य एवं बल्य क्रिया के लिए बीजों का उबटन तथा तेल की मालिश की जाती है। सेंधानमक मिलाकर गण्डूष धारण करने से तथा मसूढ़ों पर मालिश करने से बहुत लाभ होता है। अनेक त्वग् रोगों में बीज कल्क एवं तैल का प्रलेप तथा मर्दन किया जाता है। प्लीहावृद्धि में सरसों का तेल बहुत उपयोगी होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरिवन (शालपर्णी)

नाम। सं०—शालपर्णी, स्थिरा, विदारिगन्धा, त्रिपर्णी। हिं०—सरिवन। बं०—शालपानी। म०—सालवण, रानभाल। गु०—सालवण, पांदडियो। ले०—डेस्मोडडम गांजेटिकुम (**Desmodium gangeticum** *DC.*)।

वानस्पतिक-कुल। शिम्बी-कुल : प्रजापति-उपकुल (*Leguminosea* : *Papilionaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में (सड़कों के किनारे, बगीचों में तथा ऊसर जमीन में और जंगलों में छायादार जगहों में) और बाहरीहिमालय पर्वत-श्रेणियों में (१५२३ मीटर या ५००० फुट की ऊँचाई तक) शालपर्णी के स्वयंजात क्षुप पाये जाते हैं। शालवनों में यह प्रचुरता से पायी जाती है। शुष्क पंचाङ्ग पंसारी लोग विक्रयार्थ रखते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। शालपर्णी के स्वावलम्बी (*erect*) या भूमि की ओर झुके हुए या फैले हुए (*sub-erect*) शाकीय या काष्ठीय गुल्मक (०.६ मीटर से १.५ मीटर या २ फुट से ५ फुट ऊँचे) होते हैं। काण्ड किंचित् कोणदार होता है। पत्तियाँ एकपत्रक (*1-foliolate*), प्रासवत् आयताकार या कमचौड़ी और लट्वाकार, अग्र की ओर क्रमशः तीक्ष्णाग्र होती हैं। पत्र की लम्बाई में भिन्नरूपता पायी जाती है। अल्पवृद्धि वाले पौधों में पत्तियाँ केवल १.२५ सें० मी० से ३.७ सें० मी० ($\frac{1}{2}$ इञ्च से $1\frac{1}{2}$ इञ्च) लम्बी और अतिवृद्धि वाले पौधों में ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३"-६" लम्बी होती हैं। रूपरेखा में आपाततः शाल की पत्तियों की भाँति मालूम होती हैं। पुष्प छोटे तथा श्वेताभ गुलाबीरंग के होते हैं, जो १५ सें० मी० से ३० सें० मी० (६ इञ्च से १२ इञ्च) लम्बी विरल पतली शाखाग्र्य एवं पत्रकोणोद्भूत मञ्जरियों में रहते हैं। फली कुछ टेढ़ी या दात्राकार (*falcate*), ६ संधियों से ८ संधियों से युक्त होती है, जो टेढ़े सूक्ष्म रोमों से युक्त होने के कारण कपड़ों में चिपक जानेवाली होती है। 'पुष्पागम' वर्षा में तथा 'फलागम' जाड़ों में होता है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग।

मात्रा। ६ ग्राम से १२ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—शालपर्णी के नाम से उक्त वनस्पति का ही ग्रहण करना चाहिए। शालपर्णी के मूल-संहति (*Root-System*) में प्रायः अधिमूल (*Tap-root*) का विकास अधिक नहीं होता। उसके स्थान में मूल के आधार के पास से पतली रस्सी की भाँति लम्बी-लम्बी (२ फुट से ३ फुट या अधिक) अनेक (५ फुट से १५ फुट तक या अधिक) शाखाएँ निकलकर काफी गहराई तक फैल जाती हैं। यह प्रायः प्रारम्भ से अन्ततक रूपरेखा में बेलनाकार (*cylindrical*), $\frac{1}{4}$ इंच तक मोटे, हल्के पीताभवर्ण के अथवा पीताभ-श्वेतरंग के तथा प्रायः चिकने होते हैं। इनके अग्रपर सूत्राकार अनेक उपमूल (*rootlets*) होते हैं, जिनके अग्रों पर कुल-स्वभाव के अनुसार अनेक दण्डाणुयुक्त सूक्ष्म ग्रन्थिकाएँ (*Bacterial nodules*) पायी जाती हैं। केन्द्रस्थ काष्ठीयभाग अपेक्षाकृत अधिक तथा तृणवर्ण का होता है। मूलत्वक् (छाल) अपेक्षाकृत पतली किन्तु चिमड़ी (*tough*) होती है। उक्त छाल न तो काफी मोटी और न तो मांसल ही होती है, किन्तु रचना में चर्मिल या चिमड़ी होती है, और आसानी से पृथक् की जा सकती है। रंग में यह पीताभ श्वेतवर्ण की होती है। इसमें कोई विशेष गन्ध नहीं पायी जाती, किन्तु स्वाद में लबावी तथा कुछ मिठास लिये होती है। बाजारों में जो शालपर्णी बिकने को आती है, वह प्रायः एक-एक पौधे का अलग-अलग अथवा कई-कई पौधों का पचाङ्ग होती है, जिसके उसी के तने या सूत्राकार जड़ों से बाँधे हुए बंडल होते हैं। कभी-कभी पृथक् रूप से मूल भी बेचने को लाते हैं, जिसमें पत्रयुक्त काण्ड का भी कुछ भाग लगा होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—इस 'जाति' तथा 'कुल' की कतिपय अन्य वनस्पतियों का ग्रहण भी शालपर्णी के नाम से किया जाता है :—(१) **Desmodium polycarpum** *DC.*—इसके पत्र त्रि-पत्रक (*3-foliolate*—त्रिपर्णी) तथा रूपरेखा में गोलांडाकार होते हैं। फलियाँ १.२५ सें० मी० से २ सें० मी० या $\frac{1}{2}$ इंच से $\frac{3}{4}$ इंच लम्बी तथा अवृन्त होती हैं। (२) **Desmodium pulchellum** *Benth. ex Baker*—इसे गढ़वाल में 'जलसालपान' कहते हैं। (३) **D. tiliaefolium** *G. Don.*। (४) फ्लेमिंजिआ चप्पर **Flemingia chappar** *Ham.* तथा (५) **F. semia.**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

lata *Roxb.*—इनको देहरादून के जंगलों में 'सालपान' तथा 'बड़ा सालपान' कहते हैं। इनके पौधे भी कुछ-कुछ शालपर्णी से मिलते-जुलते हैं, अतएव कभी शालपर्णी के नाम से इनका भी संग्रह करलिया जाता है।

वक्तव्य—केरल प्रान्त में (१) प्सेडआर्थ्रिया विस्सिडा **Pseudarthria viscida** *W. & A.* तथा (२) ऊरारिया हामोसा **Uraria hamosa** *Wall.* (मूविला *Muvila* मल०; नीरमल्लि *Neermalli*—ता०)—इन दो वनस्पतियों का ग्रहण शालपर्णी के नाम से तथा डेस्मोडियम गांजेटिकुम (और इसके स्थान में प्रयोग में आनेवाली अन्य जातियों) का ग्रहण 'पृश्निपर्णी' के नाम से किया जाता है। इसी प्रकार की परम्परा ('डेस्मोडियम' जातियों का ग्रहण पृश्निपर्णी नाम से तथा 'ऊरारिया' जातियों का प्रयोग शालपर्णी के नाम से अन्यत्र भी है। किन्तु वास्तव में शालपर्णी नाम से डेस्मोडियम जातियों को, तथा ऊरारिया जाति को पृश्निपर्णी के नाम से ही ग्रहण करना उचित है।

संग्रह एवं संरक्षण—जाड़ों में पंचाङ्ग को संग्रहकर, छाया-शुष्क करके मुखबन्द डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें।

संगठन—शालपर्णी के मूल में एक पीत राल्यतत्त्व, तैल, क्षारतत्त्व तथा ६% भस्म होती है।

वीर्यकालावधि—३ महीना से ६ महीना।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर, तिक्त। विपाक मधुर। वीर्य—उष्ण। कर्म—त्रिदोषशामक; ज्वरघ्न, मूत्रल, बल्य, बृंहण, रसायन, अङ्गमर्दप्रशमन, वृष्य, कफनिःसारक, शोथहर, दीपन, स्नेहन, स्तम्भन आदि।

मुख्ययोग—लघुपञ्चमूल।

विशेष—चरकोक्त स्नेहोपग, श्वयथुहर, अंगमर्दप्रशमन महाकषायों, एवं मधुरस्कन्ध तथा सुश्रुतोक्त विदारिगन्धादि गण में 'शालपर्णी' भी है।

सर्पगन्धा

नाम। सं०—सर्पगन्धा ?। हिं०—धवलबरुआ (उ० प्र०)। बिहार—घनमरवा, चंदमरवा, इसरगज। रांची—झाड़मानिक थोल्कोवाद—अडाटारेड या नजमरेड। उरिया—पतालगरुड। बं०—चांदड़, चादर, छोटा चांद। म०—अडकई। ले०—राउवॉल्फिआ सेर्पेन्टीना (**Rauwolfia serpentina** (*Benth. ex Kurz.*)।

वानस्पतिक-कुल। करवीर-कुल (*Apocynaceae*)।

प्राप्तिस्थान। भारत, पाकिस्तान, अण्डमान, लंका, बर्मा, फोचीन, मलाया, चीन, जापान, फिलिपाइन आदि। भारतवर्ष में यह आर्द्र एवं उष्णप्रदेशीय हिमालय की तराई में पंजाब से पूरब में आसाम के खासीपर्वत तक फैला है। यह विशेष कर शिवालिक पर्वतमाला, रुहेलखण्ड, अवध और गोरखपुर के इलाकों में १२०४ मीटर या ४,००० फुट की ऊँचाई तक तथा कोंकण, उत्तरी कनाडा, दक्षिण महाराष्ट्र, मद्रास राज्य के पूर्वी-पश्चिमी घाट के प्रदेशों में ३,००० फुट तक तथा बिहार एवं उत्तरी एवं मध्य बंगाल में प्रचुरता से पाया जाता है। औषधि-निर्माण शालाओं में इसकी अत्यधिक माँग होने से जंगली पौधों से काम नहीं चलता। अतएव अब अनेक स्थलों में लम्बे परिमाण में इसकी खेती की जा रही है। भारतीय बाजारों में सर्पगन्धामूल का आयात मुख्यतः देहरादून, बिहार, बंगाल, आसाम तथा लंका आदि से होता है। बिहारी-मूल में अपेक्षाकृत सर्पेन्टीन समुदाय के ऐल्केलाइड्स अधिक, तथा देहरादून की सर्पगन्धा में अपेक्षाकृत 'अजमलीन समुदाय' के ऐल्केलाइड्स अधिक पाये जाते हैं।

संक्षिप्तपरिचय—सर्पगन्धा के सुन्दर, चिकने, २.५ सें० मी० से ५-६.२५ सें०-मी० या १ फुट से २-२॥ फुट तक ऊँचे गुल्मक होते हैं। काण्ड बेलनाकार, पीली छालयुक्त होता है, जिसको तोडने पर पाण्डुरवर्ण का चिपचिपा दूध-जैसा रस निकलता है। पत्तियाँ चमकीली, ५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० (२ इञ्च से ७ इञ्च) तक लम्बी, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इञ्च से २ इञ्च) चौड़ी, रूपरेखा में भालाकार, अभिलट्वाकार अथवा आयताकार और नुकीले अग्रवाली होती हैं। आधार की ओर मध्यशिरा के दोनों ओर का भाग असमान होता है, और उत्तरोत्तर कमचौड़ा होकर एक छोटे पर्णवृन्त में अन्त होता है। प्रत्येक ग्रन्थि पर ३-५ पत्र होते हैं, जो आमने-सामने अथवा चक्रितक्रम से स्थित होते हैं। पुष्प छोटे, श्वेत और आकर्षक होते हैं। नाल प्रायः टेढ़ा और आधार और कण्ठ में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रायः घनरोमश तथा अष्ठिफल (*drupes*) व्यास में ६.२५ मि० मी० से १२.५ मि० मी० ($\frac{1}{4}$ इञ्च से $\frac{1}{2}$ इञ्च) तक, एकी या द्विखण्डी (*didymous*), रक्ताभ किन्तु अन्ततः कालेवर्ण के हो जाते हैं। औषधि में इसकी छालयुक्त जड़ का व्यवहार होता है। जड की मांग अत्यधिक होने से जंगली पौधों से काम नहीं चलता। अतएव अनेक उपयुक्त जगहों में इसकी खेती की जा रही है। सर्पगन्धा की कृषि लगभग सर्वत्र मैदानों में, सदाहरित जंगलों (आनूप) में और हिमालय की तराई के प्रदेशों में की जा सकती है। इसके पौधे बीज से भी उगाये जाते हैं, अथवा जड़ के टुकड़े काट कर लगाने से भी लग जाता है। इसके लिए आर्द्र छायादार भूमि अधिक उपयुक्त होती है।

उपयोगी अंग—छालयुक्त मूल।

मात्रा। रक्तभार को कमकरने के लिए ३१२.५ मि० ग्रा० से ६२५ मि० ग्रा० ($2\frac{1}{2}$ रत्ती से ५ रत्ती)। निद्रा-लाने के लिए—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा। उन्माद में १.५ ग्राम से ३ ग्राम या $1\frac{1}{2}$ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। सर्पगन्धामूल ४० सें० मी० या १६ इञ्च तक लम्बा, काफी मोटा (मोटाई का व्यास २ सें० मी० या $\frac{3}{4}$ इञ्च तक) तथा टेढ़ा-मेढ़ा होता है। किन्हीं-किन्हीं जड़ों में शाखाएँ भी होती हैं। बाह्य तल खुरखुरा, कुछ झुर्रीदार होता है और लम्बाई के रुख रेखाएँ या चिह्न होते हैं। तोड़नेपर यह खट स टूटती है, किन्तु टूटातल अनियमित या टेढ़े-मेढ़े रूप-रेखा में टूटा प्रतीत होता है। मूलत्वक् खाकस्तरी पीले से लेकर भूरापन लिये रंग का होता है। अन्दर का काष्ठीय भाग फीके या श्वेताभवर्ण का होता है। सर्पगन्धा की जड़ों में कोई विशेष गन्ध नहीं होती, किन्तु स्वाद में यह अत्यन्त तिक्त होती है। उत्तम जड़ में ऐल्केलाइड्स की मात्रा कम-से-कम ०.८% अवश्य होती है, तथा इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य २% से अधिक नहीं होते। परीक्षा—१ भाग नाइट्रिक एसिड तथा १ भाग जल का विलयन तैयार रख लें। जड़ को तोड़कर टूटे हुए तलपर दो बूंद उक्त विलयन डालने से मज्जक किरणों (*medullary rays*) पर गाढ़ारंग पैदा होता है। कॉर्टेक्स (*cortex*) के भाग में उक्त परिवर्तन विशेषरूप से लक्षित होता है।

प्रतिनिधि-द्रव्य एवं मिलावट। सर्पगन्धा की जड़ों में इसके मूलस्तम्भ तथा काण्ड के टुकड़ों का भी मिलावटकर देते हैं। मूलस्तम्भ में तो क्षारोदों की उपस्थिति पायी जाती है, (किन्तु मूल की अपेक्षा बहुत कम)। लेकिन तने में ऐल्केलाइड्स बहुत कम मिलते हैं। कीट आदि भक्षित पुरानी जड़ों में भी ऐल्केलाइड्स कम हो जाते हैं। सर्पगन्धा की मांग अत्यधिक होते के कारण संग्रहकर्ता कभी-कभी जान-बूझ कर इसकी अन्य प्रजातियों की जड़ें भी संग्रहीतकर असली सर्पगन्धा में मिला देते हैं। सर्पगन्धा की अनेकों अन्य जातियाँ भी स्थान-स्थानमें पायी जाती हैं। इनमें निम्न विशेष महत्त्व की हैं—(१) राउवॉल्फ़िआ कानेसेंस (**Rauwolfia canascence** *Linn.*)—यह फैलनेवाला युग्म-शाखी शाखा-युक्त क्षुप है। शाखाएँ लोमश (रोयेंदार) और और १.८ मीटर या ६ फुट तक लम्बी होती हैं। प्रत्येक ग्रंथि पर ३-३ पत्तियाँ चक्रिक्रम से निकलती हैं। यह जाति बंगाल में में प्रचुरता से पायी जाती है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के अन्य उष्ण एवं आर्द्र प्रदेशों में भी न्यूनाधिक मात्रा में पायी जाती है। (२) राउवॉल्फ़िआ डेन्सिफ्लोरा (**R. densiflora** *Benth.*)—यह जाति खासी पर्वत, पश्चिमी घाट तथा कोंकण के दक्षिण प्रदेश में अधिक मिलती है। (३) राउवॉल्फ़िआ मीक्रान्था (**R. micrantha**)—यह मलाबार के समुद्रतटीय मैदानों में अधिक पाया जाता है। दक्षिणभारत में इसकी जड़ भी बाजारों में बिकती है।

संग्रह एवं संरक्षण—सर्पगन्धामूल का संग्रह जाड़ों में करना चाहिए। एतदर्थ ३ वर्ष से ४ वर्ष आयु के पौधे ही चुनने चाहिए। जड़ों को मिट्टी आदि से साफ करके, छायाशुष्क करलें और मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन—सर्पगन्धा की जड़ में (कम-से-कम ०.८%) इसके क्षारोद पाये जाते हैं, जिनमें अजमलीन (*Ajmaline*), अजमलिनीन (*Ajmalinine*), अजमलिसीन (*Ajmallicine*), सर्पेन्टीन (*Serpentine*), सर्पेन्टिनीन (*Serpe-*

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ntinine) एवं रॉवोल्फीन (*Rauwolfine*) आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त इसमें एक राल (*Resin*—जो इसका एक मुख्य सक्रिय घटक होता है) एवं स्टार्च, गोंद तथा लवण पाये जाते हैं। अधुना मूल का रासायनिक विश्लेषण चरमकोटि तक किया गया है।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। सर्पगन्धामूल रस में तिक्त एवं कटुविपाक वाला होता है। इसमें निद्रल प्रभाव होता है। यह मस्तिष्क पर संशामक एवं निद्रल क्रिया करता है। इसके अतिरिक्त रक्तभार को कम करने के लिए सर्पगन्धामूल अबतक ज्ञात औषधियों में सर्वोत्तम एवं निरापद माना जाता है। तिक्त रसयुक्त होने से अल्प मात्रा में यह कटुपौष्टिक तथा पित्तसारक और पर्याप्त मात्राओं में ज्वरघ्न होता है। विषघ्न के रूप में यह प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। आजकल इसके घनसत्व से बने अथवा ऐल्केलायड्स के पृथक्-पृथक् अनेकों व्यावसायिकयोग बाजारों में उपलब्ध हैं। उन्माद (*Mania*) या पागलपन, जिसमें रक्तभार बढ़ा होता है तथा रोगी बहुत बक-झक करता है, यह रामबाण औषधि है। एतदर्थ इसका चूर्ण दूध एव शर्करा के साथ मौखिकरूप से अथवा घनसत्व की बनी गोलियाँ या टिकियाँ दी जाती हैं। अन्य व्यावसायिकयोग भी व्यहृत किये जा सकते हैं।

मुख्य योग—सर्पगंधादि चूर्ण, सर्पगंधा वटी, सर्पगंधा योग।

विशेष—आयुर्वेद के प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में केवल सुश्रुत के (उ० तं० अ० ६०) अमानुषोपसर्गाध्याय में मानस रोगहर 'अपराजितादिगण' में सर्पगंधा का उल्लेख है। लोकव्यवहार में यह अति प्राचीनकाल से उन्माद, अनिद्रा एवं सर्पदष्ट आदि में व्यवहृत होता आ रहा है।

सलई (शल्लकी)

नाम। (वृक्ष) सं०—शल्लकी, गजभक्ष्या, सल्लकी, सुल्लवा। हिं०—सालई, सलई, सालय। को०, संथा०—संलगा। मा०—सालई। गु०—शालेडो, धूपडो। ले०—बॉसवेल्लिआ सेर्राटा **Boswellia serrata** *Roxb. ex. Boleber.* (शल्लकीनिर्यास)। सं०—कुन्दुरु। हिं०, द०—कुन्दुर। फा०—कुन्दुर। बं०—कुन्द्रो। अं०—इण्डियन ओलिबेनम (*Indian Olibanum*)।

वानस्पतिक-कुल। गुग्गुल-कुल (*Burseraceae*)।

प्राप्तिस्थान—मध्यप्रदेश, दकन, राजस्थान, बिहार एवं उड़ीसा तथा हिमालय की तराई में (कहीं-कहीं) सलई के समूहबद्ध जंगली वृक्ष पाये जाते हैं। बाजारों में जो 'कुन्दुर गोंद' मिलता है, वह प्रायः अरब, सोकोतरा एवं अफ्रीका आदि पश्चिमी देशों से आता है, और बॉसवेल्लिआ फ्लोरीबुंडा (**B. floribunda**) नामक जाति से प्राप्त किया जाता है। इसे अरबी में लबान, फारसी में कुन्दुर तथा अंग्रेजी में ओलिबेनम् (*Olibanum*) या फ्रेन्किन्सेन्स (**Frankincense**) कहते हैं। सलई के वृक्षों को भी चीरा लगाने से इसी प्रकार का गोंद प्राप्त होता है। अतएव इसे 'भारतीयलबान' कह सकते हैं। व्यावसायिक रूप से इसका अधिक संग्रह नहीं किया जाता।

संक्षिप्त-परिचय। सलई के ऊँचे-ऊँचे या मध्यमकद के सुन्दर वृक्ष होते हैं, जो जंगलों में शुष्क एवं बालुकामय पहाड़ियों के ढालों पर प्रायः समूहबद्ध पाये जाते हैं। काण्डस्कन्ध ३.६ मीटर से ४.५ मीटर या १२ फुट से १५ फुटतक ऊँचा और व्यास में ०.९ मीटर से १.५ मीटर या ३ फुट से ५ फुट तक मोटा होता है। काण्डत्वक् रक्ताभपीत या हरितश्वेत और चिकनी होती है, जो कागज की तरह पतले-पतले परतों में छूटती है। सदलपर्ण ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० (१ फुट से १½ फुट) लम्बे शाखाओं पर समूहबद्ध पाये जाते हैं। पत्रक प्रायः ८ जोड़े से १६ जोड़े, प्रायः अवृन्त या बहुत छोटे वृन्तक युक्त, ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या २ इञ्च से ३ इञ्च तक लम्बे ८.३ मि० मी० से १५ मि० मी० (⅓ इञ्च से ⅔ इञ्च) तक चौड़े, रूपरेखा में प्रासवत् या भालाकार (*lanceolate*) या लट्वाकार भालाकार होते हैं, और लगभग अभिमुखक्रम से स्थित (*sub-apposite*) होते हैं। पत्रकों का किनारा आरावत् दंतुर होता है, जिससे आपाततः देखने में सलई की पत्तियाँ भी नीम की पत्तियों-जैसी मालूम होती हैं। पत्रक अग्र पर कभी-कभी लोमयुक्त (*mucronate*) होते हैं। इसकी छोटी टहनियों एवं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्तियों को मसलकर सूंघने पर एक विशिष्ट प्रकार की मनोरम सुगंधि मालूम होती है। वसन्त-ऋतु एवं गर्मियों में पतझड़ होता है और इसके बाद छोटे-छोटे श्वेताभ-पुष्प निकलते हैं, सुगन्धित होते हैं और पत्र-कोणोद्भूत मञ्जरियों में लगते हैं। गर्भाशय (*ovary*) त्रिगह्वरक (*3-celled*) होता है। अष्ठिफल (*drupe*) अंडाकार आयताकार, १.२५ सें० मी० से १.७५ सें० मी० या ($\frac{1}{2}$ से $\frac{7}{10}$ इञ्च) लम्बा तथा चिकना होता है, और पकनेपर हरिताभ पीतवर्ण का हो जाता है। सलई की डालियों को तोड़कर गाड़ देने से उनसे पत्तियां निकल आती हैं, और वृक्ष लग जाते हैं। इसके काण्डस्कंध पर चीरालगाने से एक गोंद निकलता है, जिसे 'कुंदुरु' या 'सलई का गोंद' कहते हैं। इसकी लकड़ी काफी हल्की एवं चिकनी होती है। अतएव पैकिंग के बक्से के लिए बहुत उपयुक्त होती हैं। काण्ड-त्वक् एवं गोंद का व्यवहार चिकित्सा में होता है। इसके २ भेद उपलब्ध होते हैं। एक में पत्रकों के किनारे दंतुर होते हैं (*var.* **serrata**) तथा पृष्ठ कुछ रोमश होता है। दूसरे भेद के पत्रक चिकने तथा तट सरल (*var*-**glabra**) होते हैं।

उपयोगी अंग। काण्डत्वक् एवं गोंद (कुंदुरु)।

मात्रा। गोंद—१ से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।

काण्डत्वक्—६ ग्राम से २३.६ ग्राम या ६ माशा से २ तोला।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा—'कुंदुरु' अर्थात् शल्लकीनिर्यास या सलई का गोंद (*Indian Olibanum*)—शल्लकीनिर्यास उत्पत् तैलयुक्त रालीयगोंद (*Oleo-Gum-Resin*) होता है, जो ताजी अवस्थावा में मुलायम होता है, किन्तु बाद में सूखने पर कड़ा एवं सुनहले रंग का तथा कुछ पारदर्शक होता है। इसमें तारपीन के तेल-जैसी सुगंधि पायी जाती हैं। आग में डालने पर तुरन्त जलने लगता है, जिससे सुगन्धित धुंआ निकलता है। जल के साथ आसवन करने से उत्पत् तैल पृथक् प्राप्त होता है, जो बहुत-कुछ तारपीन के तेल-जैसा होता है। उत्तम गोंद में कम-से-कम ५०% जलविलेय सत्व प्राप्त होता है। विदेशी कुंदुरु—भारतीय बाजारों में जो कुंदुरु गोंद मिलता है, वह प्रायः सोकोतरा, अरब एवं अफ्रीका आदि पश्चिमी देशों से आता है। यह बासवेल्लिया फ्लोरीबुण्डा से प्राप्त किया जाता है। इसके छोटे-छोटे कँटीले वृक्ष होते हैं। ताजा, नरम, शुद्ध (अमिश्र), नर जो ऊपर से सफेद और भीतर से लेसदार, सुनहला और टूटा न हो ऐसा कुंदुर उत्तम समझा जाता है। शुद्ध कुंदुर अग्नि पर डालने से शीघ्र जल उठता है। कुंदुर में मस्तगी की-सी सुगन्धि आती है। यह स्वाद में कड़ुआ होता है। जल में घोंटने पर इमल्सन बन जाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—आकृति एवं रंगभेद से यूनानी निघण्टुओं में कुंदुर के निम्न भेदों का उल्लेख मिलता है।—(१) नरकुंदुरु (कुंदुर ज़कर)—इसके दाने ललाई लिये गोल, छोटे और कड़े, या ललाई लिये पीले अथवा भूरे या गहरे पीलेरंग के होते हैं। (२) मादाकुंदुरु (कुन्दुर उन्सा)—इसके दाने उससे बड़े, सफेद (या पाडुश्वेत अथवा पांडुपीत) और अर्ध-स्वच्छ होते हैं। 'इसे आंवला' या 'अब्बल कुंदुर' भी कहते हैं। (३) गोल कुंदुरु (कुंदुर मुदहरज)—यह कुंदुर का ताजा निकला हुआ गोद है, जिसे थैलियों में हिलाकर अश्रुवत् गोल बना लिया जाता है। (४) किशार कुंदुरु (पपड़ी-दार गोंद)—यह आपस में रगड़ खाने से पृथक् हुए निर्यास की पतली एवं चौड़ी पपड़ी या पत्तर अथवा स्रावित निर्यास द्वारा आच्छादित वृक्ष वल्कल के टुकड़े होते हैं। कुंदुर के वे कण जो आपस में रगड़ खाने से अलग होकर कुंदुर की थैलियों में गिरते हैं, बम्बई के बाजार में यह 'धूप' के नाम से पृथक् बिकते हैं। (५) कुंदुर का चूरा (दुक़ाक़ कुंदुर)—यह शुद्ध, नरम और पिसा हुआ उत्तम होता है।

शल्लकी वृक्ष के साथ-साथ आपाततः देखने में इसी की भांति एक दूसरा वृक्ष भी पाया जाता है, जिसे गारुगा पीन्नाटा (**Caruga pinnata** *Roxb.*: *Family Burseraceae*) तथा अरमू, केकड़, जिगा, घोघर या खरपत कहते हैं। कुल धर्म के अनुसार इसमें भी कुछ गोंद निकलता है। किन्तु शल्लकी निर्यास के नाम से इसका संग्रह नहीं होना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण—कुंदुरु को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए। सलई के गोंद (भारतीय कुन्दुरु) का संग्रह प्रायः नवम्बर से जून-जुलाई के महीनों में करना चाहिए। अप्रगल्भ तथा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कमजोर एवं बहुत पुराने वृक्षों से अपेक्षाकृत कम निर्यास प्राप्त होता है। अतः प्रगल्भ तरुण वृक्ष एतदर्थ अधिक उपयुक्त होते हैं। संग्रह के लिए जड़ के पास काण्डस्कन्ध में ६० से ७५ सें० मी० या २ से २½ फुट लम्बा एवं १५ सें० मी० या ६ इंच चौड़ा क्षत करके छाल हटा दी जाती है। इसके बाद ४-५ दिन के अन्तर से क्षत को ताजा करते रहते हैं। इस प्रकार एक वृक्ष से लगभग १ सेर तक गोंद प्राप्त किया जाता है। वृक्षों पर क्षत करने से कोई कुप्रभाव नहीं होता।

संगठन। कुंदुरु के गोंद में (१) उत्पत्तैल, (२) राल (*Resin or Rosin*) तथा गोंद (*Gum*) का अंश पाया जाता है। भारतीय कुंदुरु (शल्लकी निर्यास) में उत्पत् तैल ८% से ९% तक, रोजिन ५५% से ५७%, गोंद २०% से २३% आर्द्रता १०% से ११% तथा अविलेय-सत्व ४% से ५% तक होते हैं।

वीर्यकालावधि—अच्छी प्रकार संरक्षित उत्तम एवं शुद्ध कुंदुरु में चिरकाल (१० से २० वर्ष तक) वीर्य बना रहता है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—कषाय, तिक्त, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कुन्दुरु-तीक्ष्ण, कटु, मधुर, तिक्त एवं अनुष्ण वीर्य होता है। कर्म—स्थानिक प्रयोग से यह शोथहर, वेदनास्थापन, दुर्गन्धनाशक, जन्तुघ्न, व्रणशोधन एव रोपण तथा चक्षुष्य है। मौखिकसेवन से कुन्दुरु दीपन-पाचन, ग्राही कटुपौष्टिक (अल्प मात्रा में) वातानुलोमन, पुरीषविरजनीय, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, हृद्य, रक्तस्तम्भन, कफनिस्सारक, श्लेष्मपूतिहर, मेध्य एवं वृष्य है। यूनानीमतानुसार कुन्दुरु दूसरे दर्जे के आदि में उष्ण एवं रूक्ष तथा कुन्दुरु का चूरा अपेक्षाकृत अधिक रूक्ष एवं सूक्ष्म होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारण—सिकंजबीन, शर्करा। वमन, संग्रहणी एवं अतिसार में इसका उपयोग करते हैं। गुदा, अर्शांकुर एवं गर्भाशय इनमें से किसी में रक्तस्राव हो तथा बाह्य-अंगों एवं मस्तिष्कावरणजात रक्तस्राव तथा रक्तष्ठीवन में इसके प्रयोग से बहुत उपकार होता है। दिल की धड़कन, बुद्धि एवं स्मृतिदौर्बल्य में भी इसका प्रयोग उपकारी है। वृष्य एवं वाजीकरण कर्म के लिए भी इसे अंडा अथवा जायफल, जावित्री आदि के साथ देते हैं। वस्ति एवं गवीनी को बलप्रद होने के कारण हस्तिमेह एवं बहुमूत्र रोग में भी इसका उपयोग किया जाता है। यह रक्त एवं श्वेत प्रदर में भी प्रयुक्त होता है तथा श्वासकास में भी लाभकारी है। कुन्दुरु की सुगंधि एवं उत्तेजक है। इसकी उक्त क्रिया विशेषतः श्वासमार्ग की श्लेष्मल कला पर लक्षित होती है। अतएव श्वासनलिका के जीर्णशोथ तथा जब काफी गाढ़ा एवं दुर्गन्धित कफ निकलता है तो कुन्दुरु को अन्य औषधियों के साथ खाने को देते हैं अथवा इसका धूमपान कराते हैं। गुणकर्म में कुन्दरु बहुत कुछ हिराबोल तथा गुग्गुल के समान है। कुन्दुरु का बाह्यप्रयोग मरहम एवं प्रलेप के रूप में अनेक अवस्थाओं में किया जाता है। संधिवात; गंडमाला, लसीका ग्रंथिशोथ एवं अस्थिशोथ आदि में इसका लेप किया जाता है। जीर्णव्रण, प्रमेहपिड़िका आदि में अन्य औषधियों के साथ इसका मरहम प्रयुक्त किया जाता है।

मुख्य योग—चरकोक्त (सू० अ० ४) पुरीषविरजनीय महा कषाय तथा कषायस्कन्ध (वि० अ० ८), एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) रोध्रादिगण और कषायस्कन्ध (सू० अ० ४२) में 'शल्लकी' भी है। इसके अतिरिक्त चरकोक्त शिरोविरेचन द्रव्यों में शल्लकी-निर्यास तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) एलादिगण के द्रव्यों में 'कुन्दुरु' का भी उल्लेख है।

सहदेवी

नाम। सं०—सहदेवी। हिं०—उहदेई, सहदेइया। गु०—सेदरडो, सहदेवी। म०—उहदेवी। बं०—कुकसीम। संथाल—झुरझुरी, वरनगोमा। अं०—ऐश—कलर्ड फ्लीबेन (*Ash-coloured Fleabane*)। ले०—वेर्नोनिआ सिनेरेआ (**Vernonia cinerea** *Less.*)।

वानस्पतिक-कुल। सेवती-कुल (कॉम्पोजीटे : *Compositaae*)।

प्राप्तिस्थान—प्रायः समस्त भारतवर्ष में सहदेई के क्षुप (पहाड़ों पर भी २४०८.३६ मीटर या ८,००० फुट की ऊँचाई तक) स्वयंजात पाये जाते हैं। वर्षा ऋतु में ज्वार, मकाई तथा ईख के खेतों में विपुलता से पायी जाती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्त परिचय–सहदेई के क्षुप स्वावलम्बी अथवा प्रसरणशील, सशाख तथा २२.५ सें० मी० से ००.९ मीटर या ¾ फुट से ३ फुट तक ऊँचे होते हैं। काण्ड पतले, रेखायुक्त, रोमश और शाखाएँ प्रायः श्वेताभ-रोमश होती हैं। पत्तियाँ बहुरूपिक अर्थात् रेखाकार, अण्डाकार, लट्वाकार या अभिलट्वाकार, अखण्ड या दन्तुर, अवृन्त अथवा क्रमशः संकुचित होकर सूक्ष्म वृन्त से लगी हुई होती हैं। मुण्डक ६.२५ मि० मी० या ¼ इञ्च लम्बा और आयताकार तथा पुष्प हल्के जामुनीरंग के होते हैं। अधःपत्रावलि (इन्वोल्यूकर या निचक्र *Involucre*) घंटिकाकार, ०.५ स० मी० या ⅕ इञ्च लम्बी और उसके पत्रक प्रायः रेखाकार, लम्बाग्र और अग्र कण्टकसदृश तीक्ष्ण होते हैं। बीज कालीजीरी से मिलते-जुलते किन्तु छोटे होते हैं।

उपयोगी अंग। पंचाङ्ग, मूल।

मात्रा। स्वरस– १ तोला से २ तोला।

क्वाथ–२ तोला से ४ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण–सहदेई प्रायः सर्वत्र सुलभ होने से ताजा ही व्यवहार करना चाहिए। संग्रह के लिए छायाशुष्क पंचाङ्ग को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल से संग्रहीत करें।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–ज्वरघ्न। कर्म–शोथहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, अनुलोमन, कृमिघ्न, रक्तशोधक एवं रक्तस्तम्भक, अश्मरीभेदन, मूत्रल, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न आदि। यूनानी मतानुसार यह सर्द एवं तर है। अहितकर–शीत प्रकृति को। निवारण–कालीमिर्च एवं शहद।

मुख्ययोग–अर्कहुम्मा नं० १ (यह योग राजकीय आयुर्वेदीय एवं यूनानी निर्माणशाला उ० प्र०, लखनऊ में बनता है)।

सहिजन (शिग्रु)

मात्रा। सं०–शोभाञ्जन, शिग्रु, मुरङ्गी, मुरुङ्गी। हिं०–सहिजन, सहजन, सैजन, मुनगा, सजना, संगन, सोहाजन। बं०–शजिना। पं०–सु (सो) हांजना। म०–शेवगा, सेगटा। गु०–सरगवो, सरघवो, सेकटो। सिंध–सुहांजिड़ो। मा०–सहजणो। उड़ि०–मुनगा। ते०–मुनगा। अं०–ड्रमस्टिक ट्री *Drum-stick Tree*, हॉर्स-रेडिश ट्री *Horse-Radish Tree, Indian Horse-Radish Tree*। ले०–(१) मधुशिग्रु या मीठा सहिजन–मोरिंगा प्टेरीगोस्पेर्मा (**Moringa pterygosperma** *Gaertn.* (पर्याय–मोरिंगा ओलीईफेरा *M. oleifera Lam.*। (२) कटुशिग्रु या कड़वा सहिजन–**Moringa concancnsis** *Nimmo.*।

वानस्पतिक-कुल। शिग्रु-कुल (मोरिंगासे : *Moringaceae*)।

प्राप्तिस्थान–'मोरिंगा प्टेरीगोस्पेर्मा' के वृक्ष हिमालय की तराई में चनाब से लेकर अवध तक जंगली रूप से प्रचुरता से पाये जाते हैं। जंगली वृक्षों के फूल-फल आदि कड़वे होते हैं, किन्तु लगाये हुए वृक्षों की फलियाँ मीठी होती हैं, और शाकार्थ व्यवहृत होती हैं। अतएव समस्त भारतवर्ष में बगीचों तथा घरों के सामने इसके लगाये वृक्ष भी मिलते हैं। मोरिंगा कॉन्कानेंसिस के वृक्ष सिंध, राजस्थान, बिलोचिस्तान एवं दक्षिणभारत में मिलते हैं। सहिजन की छाल एवं बीज पंसारियों के यहाँ तथा कोमल, कच्ची फलियाँ तरकारी बेचनेवालों के यहाँ मिलती हैं।

संक्षिप्त-परिचय–सहिजन के छोटे-छोटे या मध्यमकद के वृक्ष होते हैं। कार्कयुक्त छाल मोटी तथा मुलायम होती है। इसका काष्ठ भी कोमल होता है, जिससे जब वृक्ष फलियों से लदजाते है, तो डालियाँ अक्सर टूट जाती हैं। सहिजन के लिए कहावत मशहूर है 'सहिजन अति फूले फले डार-पात की हानि।' पत्र संयुक्त प्रायः त्रिपक्षवत् (*3-pinnate*), ३० सें० मी० से ७५ सें० मी० या १ फुट से २½ फुट लम्बे, पक्षक (*pinnae*) ४-६ युग्म, अभिमुखक्रम से स्थित, पक्षकी या पिन्यूल (*pinnulae*) ६–९ युग्म तथा अभिमुखक्रम से स्थित होते हैं। पत्रवृन्त (*petiole*) आधार की ओर कुछ कोषमय (*sheathing*) होते हैं। पुष्प व्यास में २.५ सें० मी० या १ इंच, सुगंधित, सफेदरंग के (आधार पर पीतबिन्दुचित) तथा गुच्छों में निकलते हैं। जाड़े के अन्त (एवं गर्मियों के प्रारम्भ में) पुष्पागम होता है तथा गर्मियों में फलियाँ (*capsules*) लगती हैं, जो १७.५ सें०मी० में ५० सें०मी० या ६ इंच से २० इंच तक लम्बे, १.४ सें० मी० से २ सें० मी० या ¾ इञ्च से ⅝ इञ्च तक मोटे, कुछ त्रिकोणाकार से (*3-gonous*), अनुलम्ब दिशा में ५-६ धारियों से युक्त होती हैं, और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बीजों के बीच-बीच में पतली होती हैं। सहिजन की फलियाँ भी अमलतास की भाँति अधोलम्बि होती हैं, और पकनेपर हल्के भूरेरंग को होती हैं। कोमल फलियों का शाक खाया जाता है। बीज त्रिकोण (*3-cornered*), सपक्ष *winged at the angles*; तथा २.५ सें० मी० या १ इञ्च तक लम्बे एवं रंग में कुछ भूरे होते हैं। सहिजन के बीजों को भ्रमवश कभी-कभी 'श्वेतमिर्च' कह देते हैं। सहिजन के काण्ड पर चीरा लगाने से एक गोंद निकलता है।

उपयोगी अंग। मूल एवं काण्डत्वक् (छाल), बीज, पत्र एवं तैल।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—सहिजन की फलियाँ पकने पर हल्के भूरेरंग की हो जाती हैं। अन्दर रूई-जैसा मुलायम मज्जक (*pith*) होता है, जिसमें ऊपर से नीचे तक एक कतार में १२-१८ तक कालिमा लिये भूरेरंग के, मटर के बराबर लम्बगोल से बीज होते हैं, जो तीन धाराओं पर पक्षयुक्त (*three membranous wings*)। होते हैं। बीज-मज्जा—सफेद, स्नेहमय (*oily*) एवं स्वाद में तिक्त होती है। मूलत्वक्—बाहर से हल्के भूरेरंग की जालमय-रेखांकित (*reticulated*), काफी मोटी और मुलायम होती है, जिसमें तीक्ष्णगंध एवं स्वाद होता है। अन्तस्तल सफेद होता है। काष्ठीय भाग मुलायम एवं पीताभ होता है, तथा छाल की ही भाँति इसमें भी कुछ-कुछ तीक्ष्णता होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—छाल एवं बीजों को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

संगठन—मूल में टेरिगोस्पर्मिन (*pterygospermin*) नामक जीवाणुनाशक तत्त्व (*Antibiotic substance*) पाया जाता है। बीजों में एक अनुत्पत् तैल (*Ben Oil*) ३६% तक पाया जाता है, जिसमें ६०% तक प्रवाही तेल तथा ४०% ठोस वसा होती है। छाल में एक सफेद क्रिष्टली ऐल्केलॉइड, राल एवं लबाब आदि तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, सर। रस—कटु। विपाक-कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—कफवात-शामक, रोचन, दीपन-पाचन, विदाही, ग्राही, शूलप्रशमन, (मधु शिग्रु)—सारक, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, कफघ्न, मूत्रल, मूत्र की प्रतिक्रिया क्षारीय करनेवाला, आर्त्तवजनन (अधिक मात्रामें गर्भपातक), स्वेदजनन, ज्वरघ्न, विषघ्न। बीजों के चूर्ण का नस्य शिरोविरेचन, लेखन, चक्षुष्य, बीजों का तेल वेदनास्थापन तथा शोथहर है। छाल एवं पत्र का लेप, विदाही, शोथहर एवं विद्रधिपाचन होता है। यूनानीमतानुसार शिग्रु तीसरे दर्ज में गरम और खुश्क होता है। अहितकर—यह रक्तपित्तकर और विदाही होता है। अतएव उष्ण प्रकृति (पित्त प्रकृति) वालों के लिए अहितकर होता है। निवारण—सिरका तथा दुग्ध आदि पित्तशामक द्रव्य।

मुख्य योग—शोभाञ्जनादि लेप।

विशेष—आमवात कटिशूल, श्वास-कास, एवं प्लीहाशोथ में इसकी फलियों एवं फूलों का सालन तथा फलियों को सिरका में डालकर उपयोग कराया जाता है। कच्ची फलियों को पानी में उबालने के बाद थोड़ा कड़वा तेल, नमक, और राई मिलाकर ३-४ दिन तक धूप में रख छोड़ते हैं। इसे पक्षवध, अर्दित, आमवात, कटिशूल अरुचि एवं उदरशूल आदि में खिलाते हैं। श्वयथुविलयन एवं वेदनास्थापन के लिए इसके पत्तों का बाह्य उपयोग करते हैं।

(२) चरकोक्त (सू० अ०४) कृमिघ्न, स्वेदोपग एवं शिरोविरेचनीपग महाकषाय में तथा कटुक-स्कन्ध (वि० अ० ८) में ('शिग्रुक' तथा 'मधुशिग्रुक') एवं सुश्रुतोक्त सू० अ० ३८) वरुणादिगण ('शिग्रु' एवं 'मधुशिग्रुक') एवं शिरोविरेचनवर्ग में 'शिग्रु' की भी गणना है।

सारिवा (अनन्तमूल)

नाम। सं०—अनन्ता, सारिवा, गोपी, गोपकन्या। हिं०—अनन्तमूल, कपूरी। बं०—अनन्तमूल। म०—उपरसाल, उपलसरी। गु०—उपलसरी, कागडियो कुंडेर, कपूरी-मधुरी। अं०—हेमीडेस्मस् (*Hemidesmus*), इन्डियन सारसापेरिला (*Indian Sarsaparilla*)। ले०—हेमीडेस्मुस *Hemidesmus* (*Hemides.*), हेमीडेस्मी राडिक्स (*Hemidesmi Radix*)। (लताका नाम) हेमीडे-मुस इंडिकुस (**Hemidesmus indicus** *R. Br.*)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वानस्पतिक-कुल। अर्क-कुल (आस्क्लापिआडासे *Asclepiadaceae*)।

प्राप्तिस्थान—गंगा के उत्तरी मैदानी भाग से लेकर पूरब में बंगाल तक तथा दक्षिण में मध्यप्रदेश से रकले लंका तक इसकी स्वयंजात लताएँ प्रचुरता से पायी जाती हैं। बम्बईप्रान्त में पश्चिमी घाट के जांगल प्रदेशों भी इसकी लताएँ पायी जाती हैं। किन्तु चट्टानी भूमि में होने के कारण, जड़ों को खोदने में कठिनाई होने के कारण बम्बई बाजार में भी इसकी जड़ें प्रायः बाहर से ही आती हैं।

संक्षिप्त-परिचय। सारिवा की बहुवर्षायु तथा गुल्मस्वभाव की बहुशाखी लता होती है, जो जमीन पर फैलती है (*prostrate*) अथवा समीपवर्ती पौधे को लपेट कर (*twinning*) चढ़ती है। शाखाएँ गोल, चिकनी अथवा मृदुरोमावृत्त अथवा अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्म धारियों से युक्त होती हैं, जो पर्वों पर अपेक्षाकृत अधिक मोटी (*thickened at the nodes*) होती हैं। पत्तियाँ अभिमुखक्रम से स्थित रूपरेखा में अण्डाकार-आयताकार (*elliptic-oblong*) से लेकर रेखाकार-भालाकार (*linear-lanceolate*) तक विभिन्न रूपरेखा की ओर ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इञ्च से ४ इञ्च लम्बी एवं ½ सें० मी० से २½ सें० मी० (⅓ इञ्च से १¼ इञ्च) तक चौड़ी होती हैं। चौड़ाई में बड़ी भिन्नता पायी जाती है। चौड़ी पत्तियाँ कुण्ठिताग्र (*obtuse*), तथा छोटी पत्तियाँ अग्रपर नुकीली (*acute*) तथा अग्रपर एक लोम-जैसी रचना से युक्त या तीक्ष्णाग्र, गाढ़े हरेरंग की एवं ऊर्ध्वपृष्ठ पर श्वेतचित्रित, अधःपृष्ठ पर जालमय शिराओं में युक्त (*reticulated veins*) होती हैं। पर्णवृन्त ⅛ सें० मी० से ½ सें० मी० या ⅛ इंच से ¼ इंच लम्बा होता है। पुष्प बाहर से हरिताभ एवं अन्दर से नीलारुण (*purple*) तथा पत्रकोणों के अभिमुख, बिनाल या सूक्ष्म पुष्पवृन्तयुक्त गुच्छकों में (*crowded in the sub-sesslie cymes in the opposite axils*) निकलते हैं। पुटिका या फॉलिकिल (*follicles*) शृंगाकार, दो-दो एक साथ किन्तु अपसारी (*divergent*), १० सें० मी० से १५ सें० मी० या ४ इञ्च से ६ इञ्च लम्बे, बेलनाकार (*cylindric*), व्यास में ⅛ सें० मी०, किन्तु अग्रकी ओर क्रमशः पतला होकर नुकीला हो जाता है। बीज ६ मि० मी० से ८ मि० मी०, चपटे, लट्वाकार कालेरंग के तथा सफेद लोमगुच्छों (*coma silvery-white*) से युक्त होते हैं। पुष्पागमकाल—अषाढ़-सावन। फल शरद् में पकते हैं। ताजी जड़ से कपूर जैसी गन्ध आती है।

उपयोगी अंग—मूल (जड़)।

मात्रा। मूलकन्द—३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

फाण्ट—१ छटाँक से २ छटाँक।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। संग्रहकर्ता बाजारों में जो जड़ें लाते हैं, वह प्रायः कई पौधों की जड़ें होती हैं, जो छोटे-छोटे बण्डलों में बँधी होती हैं। बण्डलों को बाँधने के लिए लता के काण्ड काम में लाये जाते हैं। बाजारों में मिलनेवाली जड़ों के लम्बे-लम्बे टुकड़े (३० सें० मी० या १ फुट तक) होते हैं, जो ⅛ सें० मी० से ½ सें० मी० या ⅓ इञ्च से ¼ इञ्च तक मोटे होते हैं। उक्त जड़ें बेलनाकार (*cylindrical*), टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं, जिनपर इतस्ततः मूलशाखाएँ लगी होती हैं। मूलत्वक् (छिलका) खाकस्तरी आभालिये गाढ़े भूरेरंग की वृत्ती है। इस पर अनुप्रस्थ दिशा में फटी त्वचा के चिटकने से रेखाएँ तथा अनुलम्ब दिशा में लम्बी दरारें (*transversely cracked & fissured longitudinally*) होती हैं। अन्दर का भाग पीताभवर्ण का तथा कड़ा (*yellow & woody*) होता है। बाह्यवल्कल एवं मध्यस्थ काष्ठीयभाग के अन्तर्मध्य का भाग श्वेताभ एवं कोमल (*mealy white cortical layer*) होता है। बल्कल मध्यस्थ कड़े भाग से आसानी से पृथक् हो जाता है। इसमें एक हल्की सुगन्धि होती है, तथा स्वाद में किंचित् मधुर एवं सुगन्धित होता है। सारिवामूल के चूर्ण में बाह्यवल्कल के गाढ़े भूरेरंग के छोटे-छोटे कण होते हैं, तथा श्वेतकोमलभाग (*cortical tissues*) के छोटे-छोटे कणाकार टुकड़े होते हैं, जिनमें स्टार्च के सूक्ष्म दाने तथा कैल्सियम ऑक्जलेट के क्रिस्टल्स पाये जाते हैं। विजातीय सेन्द्रिय—अपद्रव्य अधिकतम २%। भस्म—अधिकतम ४%।

संग्रह एवं संरक्षण—मध्यम कद की जड़ों से त्वचा को पृथक् कर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन—अनन्तमूल की ताजी जड़ में अल्पमात्रा (०·२२५%) में एक उड़नशीलतैल तथा हेमिडेस्टेरोल (*Hemidesterol*) एवं हेमिडेस्मोल (*Hemidesmol*) नामक दो स्टेरोल तथा रेज़िन, टैनिन्स, शर्करा, सैपोनिन तथा अल्पमात्रा में एक ग्लाइकोसाइड आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। सारिवा का प्रयोग ताजी अवस्था में करना अधिक अच्छा है। संग्रह से इसकी सुगन्धि नष्ट हो जाती है, तथा २-३ माह में भी औषधि विकृत हो जाती है।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर, तिक्त। विपाक-मधुर। वीर्य—शीत। प्रधान कर्म—त्रिदोषशामक दाह-प्रशमन, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, दीपन-पाचन, मूत्रजनन, स्तन्यशोधन, चर्मरोगनाशक।

मुख्य योग। सारिवादिक्वाथ, सारिवाद्यवलेह, सारिवाद्यासव।

विशेष—'सारिवाद्वय' से श्वेतसारिवा (जिसका वर्णन यहाँ किया गया है। तथा कृष्णसारिवा (जिसका वर्णन आगे किया जायगा) का ग्रहण होता है। चरकोक्त (सू० अ० ४) स्तन्यशोधन, पुरीषसंग्रहणीय, ज्वरहर एवं दाहप्रशमन महाकषायों तथा मधुरस्कन्ध (विमानस्थान) के द्रव्यों में और सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) विदारिगन्धादि, सारिवादि एवं वल्लीपञ्चमूल गण में 'सारिवा' भी है।

सारिवा, कृष्ण (श्यामालता)

नाम। सं०—कृष्णसारिवा, जम्बूपत्रा सारिवा। बं०—श्यामालता। हिं०—श्यामालता, करण्टा। संथा०—उतरीदूधी। खर०—दुधलालर। देहरादून—दूधी। ले०—क्रिप्टोलेपिस बुकानानी (**Cryptolepis buchanani** *Roem. & Schult.*)।

वानस्पतिक-कुल। अर्क-कुल (आस्क्लेपिआडासे : *Asclepiadaseae*)।

प्राप्तिस्थान—इसकी गुल्मस्वभाव की लताएँ होती हैं, जो समस्त भारतवर्ष में पायी जाती हैं। उत्तरभारत के बाजारों में प्रायः इसके काण्ड एवं मूल ताजी तथा सूखी और कटे हुए टुकड़ों के रूप में अथवा समूचा 'कृष्ण सारिवा' के नाम से बिकते हैं।

संक्षिप्त-परिचय—इसकी दुग्धयुक्त विस्तृत काष्ठीय लताएँ होती हैं, जिनका काण्डत्वक् बैंगनी आभा लिये भूरी होती है, और पतले पर्त के रूप में छूटती है। टहनियों पर स्पष्ट दाने होते हैं। पत्तियाँ आपाततः देखने में जम्बूपत्रसदृश, ८.७५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० या ३½ इंच से ७ इंच तक लम्बी एवं ३.१२५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १¼ इञ्च से ३ इंच चौड़ी रूप-रेखा में अण्डकार, आयताकार, अग्र प्रायः यकायक छोटे नोंकवाला तथा ऊपरी पृष्ठ चमकीलाहरा किन्तु अधःपृष्ठ श्वेताभ होता है। आधार की ओर फलक उत्तरोत्तर कमचौड़ा तथा पर्णवृन्त ८.३ मि० मी० से १२.५ मि० मी० या ⅓ इञ्च से ½ इञ्च लम्बा होता है। आड़ी शिराएँ (*veins honizontal*), पत्रक के समीप परस्पर मिली होती हैं। पुष्प पाण्डुर-पीत (*pale-white*) वर्ण के होते हैं, जो द्विधा-विभक्त छोटी-छोटी नम्य मञ्जरियों (*lax dichotomous cymes*) में निकलते हैं। फलियाँ (*follicles*) दो-दो एक साथ निकलती हैं, किन्तु इनके अग्र एक दूसरे से दूर (*divaricate*) होते हैं। यह ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच लम्बी तथा व्यास में १२.५ मि० मी० से १७.५ मि० मी० या ½ इञ्च से ७/१० इञ्च तक होती हैं। बीज चपटे तथा आयताकार-लट्वाकार होते हैं, जिनकी नाभि पर तूलसदृश रोम लगे होते हैं। पुष्पागम गर्मियों में तथा फलागम जाड़ों में होता है। उपर्युक्त कृष्णसारिवा के मूल में कोई गन्ध नहीं होती।

उपयोगी अंग—काण्ड एवं मूल (विशेषतः मूलत्वक्)।

मात्रा। ३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

प्रतिनिधि-द्रव्य एवं मिलावट—दक्षिणभारत में तथा भारत में अन्यत्र भी कृष्ण सारिवा के नाम से उक्त लता की जड़ों का ग्रहण न करके कवीर-कुल की ईक्नोकार्पुस फ्रूटेसेंस (**Ichnocarpus frutesceus** *R Br.*) की जड़ों का ग्रहण किया जाता है। इसे दुधलत (संथा०), अनलसिग (को०), सोयमनोई (उड़ि०) तथा तामिल में 'परवल्लि' और मलयालम् भाषा में 'पालवल्लि' कहते हैं। इसकी लताएँ प्रायः छोटे वृक्षों या गुल्मों के ऊपर फैली होती हैं, और शाखाएँ भुरचई रंग की होती हैं, तथा इनको तोड़ने पर भी दूध निकलता है। पत्तियाँ अण्डाकार या चौड़ाई लिये हुयी आयता-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार, तीक्ष्णाग्र या कुछ-कुछ लम्बाग्र, चिकनी, १½ इञ्च से ४½ इञ्च × १.२ इञ्च बड़ी होती हैं। छोटे-छोटे सफेद पुष्पों की पतली मञ्जरियाँ होती हैं, जो द्विधा-त्रिधा विभक्त शाखाओं से युक्त होती हैं। आभ्यन्तर दलों के खण्ड रोमश और मरोड़े हुए होते हैं। फलियाँ पतली, लम्बी, दो-दो एक साथ और बीज नालीदार और रोमगुच्छ से युक्त होते हैं। कृषक लोग तथा चरवाहे इसके काण्ड का उपयोग बोझा बाँधने के लिए करते हैं। जड़ या मूल—इसकी जड़ें लम्बी, काष्ठीय, प्रायः टेढ़ी-मेढ़ी तथा मुरचई रंग की अथवा जामुनी आभा लिये भूरेरंग की होती हैं। बाह्यतल कुछ चिकना होता है। ताजी जड़ों में बाह्यत्वक् काफी पतली होती है और आसानी से पृथक् हो जाती है। किन्तु सूखने पर यह पृथक् नहीं होती। मूलत्वक् हल्की गुलाबी-आभा लिये होती है, और इस पर जामुनीरंग लिये हुए भूरे रंग के अनेक छोटे-छोटे दाग होते हैं। स्वाद में यह हल्का कसैलापन लिये कुछ मधुर तथा गोंदीय मालूम होती है। किन्तु जड़ की छाल अथवा अन्दर के काष्ठीय भाग में भी कोई गन्ध नहीं पायी जाती।

संग्रह एवं संरक्षण—संग्रह के लिए मध्यम मोटाई की जड़ें ठीक होती हैं। बाह्यत्वक् को छील कर साफ करके शेष भाग औषध्यर्थ ग्रहण किया जाता है। इसका प्रयोग ताजी अवस्था में करना अधिक श्रेयस्कर है।

संगठन—कृष्णसारिवा की जड़ में एक राळीयतत्व पाया जाता है, जो इसका सक्रियघटक समझा जाता है।

वीर्यकालावधि। २ मास से ३ मास।

सालममिश्री

नाम। सं०—मुञ्जातक (च० सू० अ० २७)। हिं०—सालम मिश्री। पं०—सालिबमिश्रि। अफ०—सालब, सालप। अ०—सालबमिस्री। फा०, द०—सालबमिस्री। बं०—सालम् मिछरि। गु०—सालम। म०—सालममिश्री। अं०—सैलेप (*Salep*)। ले०—(अ) देशी। (१) एडलोफ़िआ कॉम्पेस्ट्रिस (**Eulophia campestris** *Wall.*) (२) एड० नूडा (**E. nuda** *Lind.*)। (ब) विदेशी या फारसी (१) ऑर्किस लाटीफ़ोलिआ (**Orchis latifolia** *Linn.*); (२) आ० लाक्सीफ्लोरा (**O. laxiflora** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। मुञ्जातक-कुल (ऑर्किडासे *Orchidaceae*)।

प्राप्तिस्थान—बाजारों में प्रायः दो प्रकार की सालममिश्री मिलती है:—(१) पञ्जासालम तथा (२) लहसुनी सालम। भारतवर्ष में सालम का आयात (बम्बई बाजार में) फारस से भी काफी परिमाण में होता रहा है। फारसी पंजा एवं लहसुनी सालम प्रधानतः आ० लाटीफ़ोलिआ एवं ऑ० लाक्सीफ्लोरा के कन्द होते हैं। ऑ० लाटीफ़ोलिआ (पञ्जासालम) समशीतोष्ण हिमालय प्रदेश में कश्मीर से भूटानतक तथा पश्चिमी तिब्बत एवं अफगानिस्तान, फारस आदि में होता है। ऑ० लाक्सीफ्लोरा टर्की, काकेशस, फारस, अफगानिस्तान में प्रचुरता से पाया जाता है। एड० कॉम्पेस्ट्रिस (पंजासालम) हिमालय की तराई एवं समीपवर्ती मैदानी भागों में सर्वत्र (उत्तरी अवध, नेपाल, सिक्कम, बंगाल), तथा बलूचिस्तान, अफगानिस्तान में मिलता है। एड० नूडा समशीतोष्ण हिमालयप्रदेश में नेपाल से खसिया तक तथा दक्षिणभारत में पश्चिमी-घाट के समीपवर्ती प्रदेशों में और नीलगिरि आदि में काफी होता है। दक्षिणभारत के बाजारों में सालम प्रायः नीलगिरि आदि से संग्रहीतकर आता है। लाहौर एवं उत्तरभारतीय बाजारों में सालम हिमालय-प्रदेश से आता है। पंजासालम, लहसुनिया की अपेक्षा अधिक मूल्य पर बिकता है।

संक्षिप्त-परिचय। एडलोफ़िआ काम्पेस्ट्रिस—इसके १५ सें० मी० से ३० सें०मी० (६ इञ्च से १२ इञ्च) ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्तियाँ केवल २, जो काण्ड के शीर्ष के पास होती हैं, तथा २५ सें० मी० से ४० सें० मी० (१० इञ्च से १६ इञ्च) तक लम्बी एवं रेखाकार होती हैं और पुष्पागम के काफी दिनों बाद निकलती हैं। पुष्पध्वज मूल से निकलता है, जिसपर नीले या बैंगनीरंग के पुष्प नम्र मञ्जरियों में निकलते हैं। फल २.५ सें० मी० या १ इंचतक लम्बे एवं अण्डाकार होते हैं। कन्द कुछ पञ्जाकार (आयताकार तथा सखण्ड) तथा खाने में स्वादिष्ट होता है। एड० नूडा—के कन्द छोटे आलू की भाँति गोलाकार होते हैं, जिनके पार्श्वों से पत्तियाँ निकली होती हैं। पत्राधारों से एक मिथ्याकाण्ड (*pseudostem*) सा बनजाता है। पुष्पध्वज ३७.५ सें०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मी० से ५० सें० मी० (१½ फुट से २ फुट) ऊँचा, सीधा एवं कड़ा होता है। पुष्प बड़े, सफेद या पीले तथा गुलाबी एवं बैंगनी रंग मिश्रित होते हैं, जो नम्र मञ्जरियों में निकलते हैं। ऑ० लाटीफ़ोलिआ—इसके कन्द भी पञ्जाकार (अंगुलियों के समान २—३ खण्ड युक्त) होते हैं। पुष्पवाहक दण्ड ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ फुट से ३ फुट) ऊँचा, मोटा, अन्दर से खोखला तथा बाहर शल्कपत्रों से आवृत होता है। पत्तियाँ, खड़ी, ५ सें० मी० से १५ सें० मी० या २ इञ्च से ६ इञ्च लम्बी, आयताकार-भालाकार, कुण्ठिताग्र तथा आधारपर काण्ड को आवृत किये रहती हैं। पुष्प ⅓ इञ्च लम्बे, मटमैले बैंगनीरंग के तथा मञ्जरियों पर समूहबद्ध निकलते हैं।

उपयोगी अंग—कन्द (सालममिश्री)।

मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में सालममिश्री—पंजासालम एवं लहसुनीसालम भेद से २ प्रकार की आती हैं, जिसमें पहली गोली-चपटी एवं करतलाकार होती है तथा महँगी बिकती है। दूसरी शतावरी जैसे लम्बगोल तथा आपाततः देखने में छिले हुए लहसुन के जवों की भाँति होती है। लहसुनीसालम प्रायः २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १½ इञ्च लम्बी होती है। उत्तम सालम मलाई की भाँति पीली आभा लिये सफेद रंग की तथा कुछ पारभाषी होती है और इसको तोड़ने पर टूटा हुआ तल वत्सनाभ के टूटे तलों की भाँति चमकीले (*horny texture*) होते हैं। यह यह गूदेदार होनी चाहिए। झुर्रीदार या सिकुड़ी हुई सालम उत्तम नहीं होती। सालम में कोई विशेष गन्ध नहीं होती तथा स्वाद में फीकापन लिये लुआबी होती है। सूक्ष्मदर्शक से परीक्षण करने पर कन्द का अधिकांश भाग तनुभित्ति-ऊति या पैरेंकाइमा (*parenchyma*) का बना होता है, जिसकी कोषाओं में म्युसिलेज या स्टार्च होता है इतस्ततः वाहिनी-पूल (*fibro-vascular bundles*) भी दिखाई देते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—कंदों को छायाशुष्ककर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

संगठन—सालम मिश्री के कन्दों में काफी मात्रा में म्युसिलेज तथा १.६% भस्म पायी जाती है। भस्म में फ़ॉस्फेट्स, क्लोराइड आव पोटासियम् एवं चूना होते हैं।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—मस्तिष्क एवं नाड़ीबल्य, बल्य, वृष्य; बृंहण, ग्राही। यूनानीमतानुसार पहले दर्जे में गरम और तर है।

मुख्य योग—सालममिश्री का प्रयोग एकौषधि के रूप में करते हैं, तथा यह पौष्टिक कल्पों में भी पड़ती है। 'माजूनसालब' एवं 'सफ़ूफ़सालब' इसके यूनानी योग हैं।

विशेष—सालममिश्री वाजीकरमाजूनों में पड़ती है। उपयुक्त औषधियों के साथ इसका हरीरा बना कर भी पिलाते हैं। एकौषधि के रूप में भी इसका चूर्ण दूध के साथ दिया जाता है।

सिंघाड़ा (शृंगाटक)

नाम। सं०—शृंगाटक, जलफल, त्रिकोणफल। हिं०—सिंघाड़ा, सिंगाड़ा। बं०—पानीफल। म०—शिंगाडा। गु०—शींघोड़ा। का०, पं०—गौनरी। अं०—वाटर कैल्ट्राप (*Water-Caltrop*), इण्डियन वाटर-चेस्टनट (*Indian Water-Chestnut*)। ले०—ट्रापा नाटांस प्र० बीस्पीनोसा (**Trāpa natans** *L.* **Var. bispinosa** (*Roxb.*) *Makino.* (पर्याय—*T. bispinosa Roxb.*)।

वानस्पतिक-कुल। शृंगाटक-कुल (ओनाग्रासे *Onagraceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में तालाबों तथा जलाशयों में इसके पौधे लगाये जाते हैं। ताजा कोमल फल मौसम में बाजारों में बिकता है। पके फलों को छीलकर अन्दर का सुखाया गूदेदार भाग हमेशा पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त-परिचय—सिंघाड़ा के जलीय पौधे पानीपर तैरते रहते हैं। पत्तियाँ काण्ड के ऊर्ध्वभाग में एकान्तरक्रम से स्थित होती हैं, जो ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) लम्बी और प्रायः इतनी ही चौड़ी एवं रूपरेखा में चतुष्कोणाकार (*rhomboid*) होती हैं। अग्र की ओर पत्र-तट सूक्ष्मदन्तुर होता है। ऊर्ध्वतल हरा किन्तु लाल शिराओं से युक्त और अधःपृष्ठ लालिमा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिये बैंगनीरंग का तथा सघन रोमावृत होता है। पत्रवृन्त पहले छोटा किन्तु बढ़कर १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च) तक लम्बा हो जाता है, तथा रक्ताभवर्ण का, ऊर्ध्वपृष्ठ पर रोमावृत अधःपृष्ठ पर चिकना, और अग्रकी ओर फूला होता है। पुष्प श्वेतरंग के होते हैं, जो पत्रकोणों से निकलते हैं, और छोटे किन्तु मोटे वृन्तों पर धारण किये जाते हैं। फल लगने पर वृन्त नीचे को मुड़कर जल में लटकते हैं। फल चपटे, तिकोने, २.५ सें० मी० या १ इञ्च लम्बे चौड़े होते हैं। फल का छिलका कड़ा, कच्चे का हरा किन्तु पकने पर काला हो जाता है। इसके दोनों कोनों पर कांटे होते हैं। फल के मध्य में शीर्षकी ओर एक चोंचदार नुकीला उत्सध होता है, जिसके नीचे आदिमूल या मूलांकुर (*radicle*) होता है। छिलका हटाने पर नीचे मज्जा निकलती है, जो कच्चे फलों में सफेद, मुलायम एवं रसदार होती है, तथा सुखाये हुए पक्व फलों में कड़ी रक्ताभवर्ण की तथा आपाततः देखने में सूरंजान-जैसी मालूम होती है। कच्चे फलों को कच्चा ही या उबाल कर खाया जाता है। शुष्क पक्वफलों की गिरी (*nuts*) का आटा बनाया जाता है; और इसका सेवन विविध कल्पों तथा हलवा, रोटी आदि, के रूप में करते हैं।

उपयोगी-अंग—फल-मज्जा या गिरी (गंगाधरचूर्ण में पत्रों का भी व्यवहार होता है)।

मात्रा—चूर्ण ६ ग्राम से २३.६ ग्राम ६ माशा से २ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—सिंघाड़े को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन—गिरी में मुख्यतः स्टार्च तथा मैंगनीज भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। १ वर्ष से २ वर्ष।

स्वभाव। गुण—रूक्ष, लघु। रस—मधुर, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। कर्म—पित्तशामक, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रह, (अधिकमात्रा में) विष्टम्भी, रक्तपित्त-शामक, बल्य, वृष्य, प्रजास्थापन, मूत्रल आदि। यूनानी मतानुसार ताजा सिंघाड़ा सर्द एवं तर और सूखा सर्द एवं खुश्क होता है। अहितकर प्रभाव—वायुकारक, धारक एवं संग्राही होने के कारण यह गुरु, विष्टम्भी, दीर्घपाकी, अवरोधजनक एवं अश्मरीजनक है। कभी मात्राधिक्य से शूल एवं मूत्रावरोध होता है। निवारण—नमक, कालीमिर्च एवं चीनी।

मुख्य योग—माजून आर्द्र खुर्मा।

विशेष—सिंघाड़े के आटे की रोटियाँ बनती हैं, तथा इसका हलवा खाया जाता है। कोमल कच्चे फलों की मज्जा की तरकारी बनायी जाती है। कच्चे फलों को उबाल-कर खाते हैं। यह फलाहार माना जाता है। यह पौष्टिक खाद्य है।

सिरस (शिरीष)

नाम। सं०—शिरीष। हिं०—सिरीस, सिरस। बं०—शिरीष। म०—शिरस। गु०—कालीयो सरस, सरसडो। पं०—सरींह, शरीं। सिंध—सिरिंह। ले०—आल्बीज़िआ लेब्बेक (**Albizzia lebbeck** (*L.*) *Benth.*)।

वानस्पतिक कुल। शिम्बी-कुल : बब्बूल-उपकुल (*Leguminosae* : *Mimosaceae.*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में (१२०४ मीटर ४,००० फुट तक) शिरीष के लगाये हुए तथा जंगली वृक्ष मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय—शिरीष के मध्यम कद से लेकर ऊँचे-ऊँचे, पतझड़ करने वाले या पर्णपाती वृक्ष होते हैं, जिनकी शाखाएँ चारों ओर को फैली होती हैं। अतः यह छाया-वृक्ष है, और सड़कों के किनारे भी लगाया जाता है। पत्तियाँ द्विपापक्षवत् (*twice-pinnate*), देखने में इमली के पत्तों-जैसी लगती हैं। शीतकाल में पत्ते झड़ जाते हैं। पुष्प अवृन्त तथा पीताभश्वेत, चँवर-जैसे (*globose umbellate heads*), सुकुमार एवं सुगंधित होते हैं। शिम्बी लम्बी (१० सें० मी० से १० सें० मी० या ४ इञ्च से १२ इञ्च), चपटी और पतली होती है, जिसमें ६—१२ बीज होते हैं। वर्षाकाल में पुष्प और जाड़ों में फल लगते हैं, जो पीछे तक पेड़ों पर लगे रहते हैं।

उपयोगी अंग—त्वक् (छाल), बीज, पुष्प एवं पत्र।

मात्रा। त्वक्चूर्ण—२ ग्राम से ६ ग्राम या २ से ६ माशा।
बीजचूर्ण—१ से २ ग्राम या १ से २ माशा।
पुष्प या पत्रस्वरस—१ से २ तोला।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। शिरीष की छाल का बाह्यतल भूरे रंग का, खुरदरा और विदीर्ण (*fissured*) होता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाह्यस्तर लम्बे-लम्बे चप्पड़ों (*large flakes*) में पृथक् हो जाता है, जिसके नीचे का तल लालरंग का होता है। छिलके का अन्तर्वस्तु (*substance of the bark*) हल्के रक्तवर्ण का, कड़ा एवं खुरदरा होता है। छाल का अन्यस्तल सफेद होता है। लाल को जलाने पर भस्म ९०% प्राप्त होती है। बीज–शिरीष के बीज अमलतास के बीजों की भाँति, किन्तु उनकी अपेक्षा छोटे होते हैं। यह ६.२५ मि० मी० से ८.३ मि० मी० या ¼ इंच से ⅓ इञ्च लम्बे, रूपरेखा में लट्वाकार या गोलाकार, चपटे तथा पीताभ भूरेरंग के होते हैं। बीजत्वक् अत्यन्त कड़ा होता है, तथा किनारे पर नाल की रूपरेखा का एक चिह्न होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–शिरीष की कई जातियाँ पायी जाती हैं। उपर्युक्त जाति एवं आल्बीज़िआ ओडोरातिस्सिमा (**A. odoratissima** *Benth.*) के वृक्ष आपाततः देखने में बहुत कुछ समान प्रतीत होते हैं। इस जाति को कोई-कोई कृष्ण शिरीष करते हैं। आल्बीज़िया प्रोसेरा (**A. procera** *Benth.*) के बहुत ऊँचे वृक्ष होते हैं और इसकी छाल श्वेत या हरित-श्वेत होती है। इसे सफेद सिरस कह सकते हैं। यह प्राचीनों की 'कटभी' या 'किणिही' हो सकती है। आल्बीजिआ आमरा (**A. amara** *Boir.*) को लोग लाल शिरीष कहते हैं। ट्रावन्कोर-कोचीन में शिरीष से आल्बीज़िआ मार्जिनाटा (**A. marginata** *Merr.*) नामक जाति का ग्रहण करते हैं, क्योंकि वहाँ यही अधिक पायी जाती है। इन जातियों के छाल के रंग में साधारण अन्तर होता है, अन्यथा रचना बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

संग्रह एवं संरक्षण–उपयुक्त अंगों को मुखबंद-पात्रों में उपयुक्त स्थान में रखें।

संगठन–छाल में सैपोनिन, टैनिन एवं रालीय तत्त्व होते हैं।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष एवं तीक्ष्ण। रस–कषाय, तिक्त, मधुर। विपाक–कटु। वीर्य–ईषद् उष्ण। कर्म–त्रिदोषशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, वर्ण्य, विषघ्न, चक्षुष्य, रक्तशोधक, शिरोविरेचन, कफघ्न, वृष्य, कुष्ठघ्न आदि। यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर–रूक्ष प्रकृति को। निवारण–गो घृत।

चरकोक्त (सू० अ० ४) विषघ्न तथा वेदनास्थापन महाकषाय एवं कषायस्कन्ध (वि० अ० ८) और (सू० अ० २ में कहे) शिरोविरेचन द्रव्यों में (शिरीषबीज) तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) साल्वसारादिगण में 'शिरीष' का पाठ है।

सुगंधबाला (तगर)

नाम। सं०–तगर। हिं०–तगर, सुगन्धबाला। क०–मुष्कबाला। पं०, भारतीय बाजार–सुगन्धबाला। म०–तगरमूल। गु०–तगर गंठोडा। अं०–इन्डियन वैलेरिअन (*Indian Valerian*), इन्डियन वैलेरिअन राइजोम (*Indian Valerian-Rhizome*)। ले०–वालेरिआना ईंडिका *Valeriana Indica* (*Valerian. Ind.*). वालेरिआनी ईंडिकी राइजोमा (*Valerianae Indicae Rhizoma*)। (वनस्पति का नाम) वालेरिआना जटामांसी **Valeriana jatamansi** *Jone* (पर्याय–**V. wallichii** *DC.*)।

वानस्पतिक-कुल। जटामांसी-कुल (वालेरिआनासे : *Valerianaceae*)।

प्राप्तिस्थान–अनुष्णशीत हिमालयप्रदेश (*Temperate Himalayas*) में कश्मीर से भूटान तक २१३३½ से ३०४६ मीटर या ७,०००; १०,००० फुट की ऊँचाई पर तथा खसिया की पहाड़ियों पर १२०४ से १८२८ मीटर या ४,०००–६,००० फुट की ऊँचाई पर इसके स्वयंजात पौधे पाये जाते हैं। अफगानिस्तान में भी पाया जाता है। इसके सुखाये हुए गाँठदार प्रायः टेढ़े-मेढ़े मूलस्तम्भ बाजारों में 'सुगन्धबाला' के नाम से बिकते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। इसके बहुवर्षायु शाकीय रोमशपौधे (*pubescent perennial herb*) होते हैं, जिसका मूलस्तम्भ (*rootstock*) मोटा और जमीन में दिगन्तसम (अनुप्रस्थदिशा में) फैला रहता है। काण्ड १५ सें०मी० से ४५ सें० मी० (६ इंच से १८ इञ्च) ऊँचा तथा प्रायः गुच्छेदार (*tufted*) होता है। मूल या आधार के पास के पत्र (*radical leaves*) स्थायी, सवृन्त तथा रूपरेखा में हृदयाकार-लट्वाकार, २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ३ इञ्च लम्बे तथा, २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० १ इञ्च से २½ इञ्च चौड़े

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते हैं जिनके किनारे या तट दन्तुर (*toothed*) लहरदार (*sinuate*) होते हैं। काण्डीयपत्र (*stem leaves*), संख्या में थोड़े और छोटे होते हैं। पुष्प श्वेत या कुछ-कुछ गुलाबी होते हैं, जो अग्रपर समशिखपुष्पव्यूह के रूप में (*terminal corymb*) पाये जाते हैं। पुष्प प्रायः एकलिंगी होते हैं। नरपुष्प तथा स्त्रीपुष्प पृथक्-पृथक् पौधों पर पाये जाते हैं। फल पर भी प्रायः रोम पाये जाते हैं।

उपयोगी अंग—मूलस्तम्भ या गाँठदार जड़ (*Root-stock : Rhizome and Roots*)।

मात्रा। १ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा। भौमिक काण्ड या राइजोम *rhizome*) मटमैले पीताभ-भूरेरंग का (*dull yellowish-brown*), टेढ़ा मेढ़ा तथा गाँठदार और रूपरेखा में बेलनाकार (*sub-cylindrical*) किन्तु पृष्ठ एवं अधस्तल चपटा (*dorsiventrally somewhat flattened*) होता है। अधस्तल पर टूटी हुई जड़ों के अनेक गोल चिह्न (*circular root-scars*) पाये जाते हैं। कही-कहीं जड़ें लगी भी होती हैं। तोड़ने पर यह खट से टूटता है और टूटा हुआ तल, वत्सनाभ के टूटे हुए तल की भाँति लगता (*fracture short and horny*) है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटे हुए तलपर बाहर की ओर छाल का भाग गाढ़ेरंग का (*dark cortex*) तथा अन्दर मज्जक (*pith*) होता है। एधा-रेखा (*cambium-line*) भी स्पष्ट मालूम पड़ती है। पहिये के अरों की भाँति दारुरसवाहिनियों या जाइलम (ऊर्ध्ववाहिनियों) के १२-१५ बंडल या पुंज (*xylem-bundles*) मालूम होते हैं, जिनके बीच-बीच में मज्जक-किरण होते हैं। जड़ों का प्रायः अभाव होता है। यह ६ से ७ मि० मी० लम्बी १ से २ मि० मी० मोटी होती हैं, जिनकी छाल गाढ़ेरंग की तथा अन्दर का काष्ठीय भाग फीकेरंग का होता है। तगर में 'विलायती वैलेरिअन की भाँति स्वाद एवं गंध पाया जाता है, किन्तु उसकी अपेक्षा अतीव उग्र होता है। स्वाद में तिक्त एवं कर्पूर-जैसा सुगंधित होता है। इसमें विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम २% होते हैं, और जलाने पर भस्म अधिकतम १२% तक प्राप्त होती है। ऐल्कोहॉल (६०%) में विलेयसत्व अधिकतम (३०%) प्राप्त होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—समशीतोष्ण हिमालय में कश्मीर से भूटान तक १२०४ मीटर से ४६५५ मीटर या (४,००० मीटर से १२००० फुट) तथा खसिया की पहाड़ियों पर (१२०४ मीटर से १८२८ मीटर या ४,००० फुट से ६,००० फुट) इसकी एक और जाति पाई जाती है, जिसे वालेरिआना हार्डवेक्की आई (**Valeriana hardwickii** *Wall.*) कहते हैं। इसकी जड़ें भी सुगन्धि होती हैं। किन्तु इनका उपयोग केवल तैल आदि को सुगन्धित करने के लिए किया जाता है। इसके पौधे तगर (**V. wallichii**) की अपेक्षा छोटे होते हैं। पत्तियाँ खण्डित तथा पुष्पगुच्छक पत्रकोणों से निकलते हैं। तगर या देशी वैलेरियन, विलायती वैलेरियन (वालेरिआना अफ़ीसिनालिस **Valeriane officinalis** *Linn.*) का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है। यूनानीवैद्यक में इसे 'सुंबुलुत्तीब' कहते हैं। कश्मीर में कहीं-कहीं इसके पौधे मिल जाते हैं। कहीं-कहीं बाजारों में तगर नाम से श्यामवर्ण की चमक-जैसी वजनदार लकड़ी बिकती है। यह तगर नहीं है।

संग्रह एवं संरक्षण—तगर का संग्रह वसन्त-ऋतु (*spring*) में करना चाहिए, क्योंकि इस समय इसमें उड़नशील तेल अधिकतम मात्रा मे पाया जाता है। यथासम्भव ताजी अवस्था में इनका प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है। तगर को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। इसके चूर्ण को विशेष रूप से शीतल स्थान मे तथा बन्दपात्रों में रखें, ताकि नमी अन्दर न पहुँचने पावे।

संगठन—सुगन्धबाला में (०.५ प्रतिशत से २.१२ प्रतिशत तक) एक उड़नशील तेल पाया जाता है, जो इसका मुख्य सक्रियतत्त्व होता है। इसमें (तैल में) सेस्क्विटर्पीन (*Sesquiterpenes*, वैलेरिकएसिड (*Valeric Acid*) तथा टर्पीनऐल्कोहॉल् आदि तत्त्व पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त एरेकिडिक एसिड तथा फैटी एसिड्स (*Fatty Acids*) भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—६ माह से १ वर्ष।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध, सर। रस—तिक्त, कटु, मधुर, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—निद्रोपहर, वेदनास्थापन, आक्षेपहर, मेध्य, दीपन, शूक-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रशमन, सारक, यकृदुत्तेजक, कफघ्न, श्वासहर, हृदयोत्तेजक, मूत्रजनन, चक्षुष्य, कुष्ठघ्न आदि।

तगर, विलायती वैलरिअन (V. officinalis *Linn.*) का उत्तम प्रतिनिधि-द्रव्य है। यह केन्द्रिक नाड़ी संस्थान पर संशामक या अवसादक (*depressant effect on the central nervous system*) प्रभाव करता है। योषापस्मार (*hysteria*) एवं हाइपोकाण्ड्रिएसिस (*hypochondriasis*) आदि विकृतियों में यह उत्तम औषधि है। स्त्रियों में उदरगतवायु एवं मासिकधर्म की विकृति से होनेवाले नाड़ीसंक्षोभ की अवस्था में इसका प्रयोग बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। बाजार में इसका टिंचर एवं लिक्विड एक्स्ट्रक्ट भी उपलब्ध होता है।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) शीतप्रशमन महाकषाय एवं तिक्तस्कन्ध तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) एलादिगण में 'तगर' भी है।

(२) कुछ समय पहले तक इसका प्रयोग सुगन्धबाला नाम से शास्त्रीय द्रव्य 'बालक' या 'ह्रीवेर' के स्थान में किया जाता था। परन्तु अब यह निर्विवाद रूप से 'तगर' सिद्ध हुआ है। पहले तगर के नाम से जो द्रव्य चलता था, वह कोई निर्गन्धकाष्ठ होता था, जिसको किसी सुगन्धित द्रव्य के साथ रखकर गन्धयुक्त बना जाता था।

(३) सुगंधितद्रव्य के रूप में उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्तीय क्षेत्र (अधुना अफगानिस्तान, पाकिस्तान में स्थित) में तगर का ज्ञान एवं प्रचलन अतिप्राचीन काल से है। इसका प्राचीनतम लेखबद्धसाक्ष्य पाणिनि के अष्टाध्यायी में मिलता है, जहाँ किशरादिगणपाठ (४. ४. ५३) में तत्कालीन व्यवहार प्रचलित 'पण्यसुगंधिद्रव्यों' में 'तगर' का भी परिगणन है। वास्तव में उक्त सूत्र उन पण्यद्रव्यों के विक्रेता/व्यावसायिक के लिये वाचकशब्दसिद्धि का नियम बताता है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी (घरेलू) चिकित्साव्यवहार में तगर का उल्लेख 'रज्जूदक-विषप्रहारजन्यानःसंज्ञता' में संज्ञास्थापनार्थ 'निर्दिष्ट प्रियङ्ग्वादि योग' के घटकद्रव्यों में हुआ है (अधिकरण १४, अध्याय ४, प्रकरण १७९।९)। आयुर्वेदीय संहिताओं में भी 'तगर' का भूरिशः उल्लेख है, जो अपेक्षाकृत चरक में अधिक है। इनसाक्ष्यों से 'तगर' का उस क्षेत्र में उद्भव एवं व्यवहार प्रचलित होना स्पष्टतया लक्षित होता है। संहितापरवर्तीकाल में भी अद्यावधि शास्त्र परम्परामें तगर 'निरवच्छिन्न' व्यापक है। मध्यकालीन एवं तत्परवर्ती परम्परा में बाजारों में इसके परवर्ती बाजारूनाम सुगन्धबाला द्वारा 'ह्रीवेर' या 'बालक' का स्थान ले लेने के कारण इसके स्वयं का अस्तित्व भ्रामकस्थिति में तिरोहित अवश्य हो गया था। किन्तु अब 'ह्रीवेर' के तिरोहित स्थिति का पुनः स्पष्टीकरण हो जाने से जिस प्रकार सुगन्धबाला पहले तगर का वाचक था, उपभोक्ताओं को तदनुसार ही तगर प्राप्त करना तथा यथानिर्दिष्ट व्यवहृत करना चाहिए (*Market Drugs of India–Prof. R. S. Singh*)।

रसग्रन्थों मे भी 'तगर' विज्ञात है, जहाँ इसका समावेश श्वेतवर्ग (रसरत्नसमुच्चय) में है। उक्त 'श्वेतवर्गोक्ततगर' का विवेचन मैंने तद्गत प्रसंग में पृथक् रूप से किया है। (लेखक)

सुदाब (सिताब)

नाम। हि०—सिताब (व), सुदाब, सॉवत, सातरी। सं०—पीतपुष्पा, सर्पदष्ट्रा—(नवीन)। बं०—इस्पन्द। म०—सताप। गु०—सीताब। पं०—सुदाब। अ०—सुज़ाब, फ़ैजन। फा०—सदाब, सद्दाब, सुदाब, सद्दाब। अं०—गार्डेन रू (*Garden Rue*)। ले०—रूटा ग्रावेओलेन्स (**Ruta graveolens** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। जम्बीर-कुल (रूटासे : *Rutaceae*)।

प्राप्तिस्थान—फारस आदि विदेश। भारतवर्ष के बगीचों में भी इसके पौधे लगाये जाते हैं। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्यतः फारस से होता रहा है। स्थानिक बाजारों में आस-पास के कृषक भी लाते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। सुदाब के फलपाकान्ती छोटे-छोटे शाकीय पौधे होते हैं। काण्ड बेलनाकार, अनेक शाखा-प्रशाखायुक्त तथा स्पर्श में मुलायम होता है। पत्तियाँ धूमवर्ण और एकान्तक्रम से स्थित तथा द्विविभक्त होती हैं। खण्ड अभिप्रासवत् होते हैं। पत्तियों पर सर्वत्र छोटे-छोटे बिन्दुवत् तैलग्रन्थियाँ पायी जाती हैं, जिससे इनको मसलकर सूँघने पर एक उग्रगन्ध आती है। स्वाद में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह तिक्त एवं उत्क्लेशकारक होती हैं। पुष्प छोटे तथा पीलेरंग के होते हैं, जिनमें ५ लहरदार, अग्रपर अन्दर को मुड़े दलपत्र होते हैं। फल छोटे तथा त्रिकोष्ठीय होते हैं, जिनमें प्रत्येक में एक-एक त्रिकोणाकार एवं कत्थई रंग के बीज होते हैं। जंगली एवं कर्षित या बाग़ी भेद से यह २ प्रकार का होता है। औषधीय प्रयोग के लिए प्रायः बोये हुए पौधों का संग्रह किया जाता है। बाजारों में इसका शुष्क पंचाङ्ग मिलता है, जो टूटकर टुकड़े-टुकड़े होता है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग तथा इससे प्राप्त सुगन्धित तैल (रोग़न सुदाब)।

मात्रा। पंचाङ्ग—२ ग्राम से ५ ग्राम या २ माशा से ५ माशा।
तैल—१ बूँद से ५ बूँद।

संग्रह एवं संरक्षण—फल परिपक्व होने पर जड़ के पास से लुप को काट कर, छायाशुष्क कर और इसके टुकड़े काट कर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरी जगह में रखें। तैल को अम्बरी शीशियों में शीतल तथा अँधेरी जगह में रखें।

संगठन—सुदाब में एक उड़नशील तैल तथा रूटिन (*Rutin*) नामक ग्लूकोसाइड पाया जाता है। तैल में ९०% मेथिलनानिलकीटोन पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। पंचाङ्ग—६ माह से १ वर्ष।
तैल—दीर्घकालतक।

स्वभाव। सुदाब स्वभावतः उष्ण एवं रूक्ष होता है। यह छेदन, विलयन, प्रमाथी, दीपन, वायुनाशक, वातानुलोमन स्वेदजनन, आक्षेपहर, नाड़ियों को उत्तेजक, मूत्रल एवं आर्तवजनन तथा अगदगुणसहित संग्राही होता है।

अहितकर—शिरःशूलकारक एवं दृष्टिदौर्बल्यकारक।

निवारण—सिकंजबीन तथा अनीसून।

मुख्ययोग—यूनानी चिकित्सापद्धति में सुदाब एवं रोग़न सुदाब के अनेकानेक जवारिश, माजून, जिमाद, सफ़ूफ़ एवं रोग़नकल्प प्रसिद्ध एवं व्यवहार-प्रचलित हैं (यूनानी सिद्धयोगसंग्रह)।

विशेष—भारतीय भाषाओं के नाम या तो इसके फारसी नाम 'सदाब' या सुदाब' के रूपान्तरमात्र हैं, अथवा इसके प्रजातिक नाम (*Generic name*) 'रूटा' पर आधारित हैं, जो सुदाब के मध्यकालीन भारत के इस्लामीकाल में ईरानी चिकित्सकों के माध्यम से बाह्यागत होने के साक्ष्य हैं। किन्तु इस काल में अन्य अनेक बाह्यगत-द्रव्यों की भाँति आयुर्वेदीय निघण्टुओं में इसका समावेश या उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि कतिपय आधुनिक लेखकों ने इसके लिये 'सोमलता' अथवा उपर्युक्त 'सर्पदंष्ट्रा' या 'पीतपुष्पा' आदि संस्कृत नाम करके दिये हैं। चिकित्साव्यवहार में भी यह यूनानी चिकित्सक में ही सीमित है। रूटा ग्रावेओलेन्स भारत का वासी पौधा भी नहीं हो सका है। अतः यहाँ केवल इसके लगाये हुए ही पौधे मिलते हैं। भारतीय बाजारों में भी पहले इसका आयात मुख्यतः फ़ारस से ही होता था। इसके पौधे यहाँ भी लगाये जाते हैं (विशेषतः दक्षिण में), और स्थानिक बाजारों में इसकी आपूर्ति इन लगाये देशी पौधों से भी की जाती रही है। मख़्ज़नुल् अदविआ एवं मुहीत आज़म आदि भारतीय यूनानी निघण्टुओं में सुदाब के परिचयात्मक वर्णन में तो रूटा ग्रावेओलेन्स का वर्णन किया गया है, किन्तु इसका एक देशी नाम 'तितली' भी लिख दिया है, जो वास्तव में तथ्यरहित एवं मात्र भ्रामक है। क्योंकि वास्तव में उक्त 'तितली संज्ञा' विशेषतः उत्तरभारतीय क्षेत्रों में एउफॉर्बिआ ड्राकुन्कुलोइडेज (**Euphorbia dracunculoides** *Linn.* (*Family* : *Euphorbiaceae*) नाम क्षुद्र वनस्पति के लिये व्यवहारप्रचलित है, जो गेहूँ-चने के खेतों में घास (*weed*) की तरह उगती है। यद्यपि आगततः देखने में यह कुछ-कुछ सुदाब की तरह लगती है, किन्तु यह सुदाब से सर्वथा भिन्न और उसके स्थानापन्न रूप में ग्राह्य नहीं है। आजकल उत्तर भारत के बाजारों में सुदाब नाम से उक्त 'तितली' ही बिकने लगी है। इसका स्पष्टीकरण मैंने अपने प्रकाशित शोध-लेख (**Identity of Sudab and its Adulterants**—*Journal of Pharmacy*) में कर दिया है। इसके भैषजिक गुणकर्मों का परीक्षणात्मक अध्ययन किया गया है, जो **Indian Journal of Medical Research** में प्रकाशित हो चुका है। यूनानी-औषध निर्माताओं एवं फार्मेसियों को सुदाब के क्रय-विक्रय एवं भेषजनिर्माण में उक्त तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए। (लेखक)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुनिषण्णक (>सुषुनीशाक)

नाम। (सं०) सुनिषण्णक, सुनिषिस्मो, स्वस्तिक, चतुष्पर्णी। हिं०—सुनसुनिया (साग), चौपतिया। बं०—सुषुनि (नी), सुष्नी शाक। कश्मीर—पफ्लू। पं०—त्रिपत्र, गोधी। ता०—आरैक्कीरै (*Aaraikkerai*)। ते०—मुदुगुकुरा (*Mudugukura*)। ले० (१) मार्सिलिआ क्वाड्रिफोलिआ (**Marsilea quadrifolia** *Linn.*); (२) अ—मार्सिलिआ माइनूटा प्रभेद माइनूटा प्रापर **Marsilea minuta** *Linn. Var.* **minuta proper** (*Syn. M. erosa Willd.*)। (ब) मार्सिलिआ माइनूटा प्रभेद मेजर **Marsilea minuta** *L. Var.* **major** (*Syn. M. quadrifoltata of Bengal—Plants non Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। मार्सिलिआसी (*Marsileaceae*)।

प्राप्तिस्थान—'सुनिषण्णक (*Marsilea*)' के फर्न-स्वरूपी एवं आनूपस्वभावी (*sub-aquatic*), पत्रकाय, क्षुद्र कोमल पौधे विशेषतः आनूपक्षेत्रों में तथा अन्यत्र भी तालाबों, झीलों तथा जलाशयों के तटवर्ती दलदल (*marshy*) भूमि में समूहबद्ध एवं स्वयंजात होते हैं। उक्त प्रजातियों में **M. quadrifolia** *Linn.* केवल कश्मीर में, विशेषतः श्रीनगर में पायी जाती है। स्थानिक संज्ञा 'पफ्लु (*Puflu*)' भी इसी के लिए अभिप्रेत है। मार्सिलिआ माइनूटा (के प्रभेद) पूरब में असम, बंगाल, बिहार से लेकर पश्चिम की ओर पंजाब तक तथा पर्वती क्षेत्र में १.५०० मीटर (५,००० फुट) की ऊँचाई तक, एवं न्यूनाधिक मात्रा में अन्यत्र भारतवर्ष में सर्वत्र पाये जाते हैं। बंगाल में सुषुनी सर्वत्र प्रचलित लोकप्रिय पत्र-शाक है, और यह सर्वत्र तरकारी बाजारों में लगातार मिलती है। अन्यत्र भी बंगीय समाज से संलग्न तरकारी बाजारो में बराबर बिकती देखी जाती है।

संक्षिप्त-परिचय। सुनिषण्णक के पौधे छोटे, कोमल एवं फर्नस्वरूपी होते हैं, जो जलाशयों के तटवर्ती जल अथवा दलदली भूमि में उगते हैं, और अनुप्रस्थ सूत्राकार काण्ड (*horizontal thready stem*) द्वारा भूमिलग्न होते हैं। इन्हीं से लम्बे पर्णवृन्त (*petiole*) निकलकर इसके स्वस्तिकाकार सपत्रक-पत्तों को धारण करते हैं। इन्हीं कोमल वृन्तयुक्त पत्तियों का व्यवहार शाकार्थ किया जाता है। मार्सिलिआ माइनूटा प्रभेद माइनूटा प्रापर के पौधे, पत्र एवं पत्रवृन्त आदि सभी प्रभेद मेजर की अपेक्षा बहुत छोटे होते हैं। माइनूटा प्रापर के पत्रक (*leaflets*) कभी-कभी तो केवल ०.१२ इञ्च से ०.२ इञ्च या ०.३५ इञ्च तक, तथा रूपरेखा में स्फानानुकारि-अभिलट्वाकार (*cuneately-obovate*) होते हैं, तो १ इञ्च से २ इञ्च लम्बे वृन्तों पर धारण किये जाते हैं। किन्तु प्रभेद मेजर (**Marsilea minuta** *Linn. Var.* **major** (=*Marsilea quadrifoltata of Bengal-Plants non Linn.*) के पौधे उसकी अपेक्षा बड़े (*robust form*) स्वरूप के तथा पत्रक भी १ इञ्च (२.५ सें० मी०) तक लम्बे और चौड़े एवं पर्णवृन्त (*apetiole*) भी ६ इंच से ११ इञ्च (१५ सें० मी० से २७.५ सें० मी०) तक लम्बा होता है। यह जलवासी (*aquatic*) स्वभाव का भी होता है, और बहतेपानी में भी पाया जाता है। यह मुख्यतः बंगाल में बहुतायत से मिलता है, और बंगाल में जो 'सुषुनीशाक' व्यवहारप्रचलित है, वह इसी प्रभेद से प्राप्त किया जाता है। आपाततः देखने में 'सुनिषण्णक' के पौधे 'चाङ्गेरी' के पौधों—जैसे लगते हैं, किन्तु इसमें पत्रक संख्या में ४ होते हैं, जो स्वस्तिकाकार स्थित होते हैं। इसी आधार पर इसे चतुष्पर्णी (डल्हण—सु० उ० अ० १७/५०; भावप्रकाश> चौपतिया (हिं०) तथा स्वस्तिक (अ० हृ०, चि० अ० ९) आदि संस्कृत नाम दिये गये हैं।

उपयोगीअङ्ग—कोमल पत्रवृन्त एवं पत्र (मुख्यतःपत्र)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—जहाँ सुषनीशाक व्यवहार-प्रचलित है, उपभोक्ता एवं विक्रेता तथा संग्रहकर्ता इसे पहचानते हैं, और संग्रह भी स्वयंजात पौधों से किया जाता है। अतः इसमें मिलावट की सम्भावना नहीं है। केवल जहाँ बंगीय जाति का सुनिषण्णक उपलब्ध नहीं है, वहाँ छोटी जाति ही उपलब्ध होती है।

वक्तव्य—'सुनिषण्णाक' का ज्ञान एवं व्यवहार-परम्परा अतिप्राचीनकाल से है, जहाँ इसका व्यक्तिपरक स्वरूप निर्विवाद एवं सुनिश्चित प्रतीत होता है। किन्तु मध्ययुगीन ग्रन्थ एवं परम्परा में इसका अनुबन्ध एक सर्वथा भिन्न वनस्पति शितिवार (>सिरवालिका> सिरियारी)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से होने के कारण कतिपय निघण्टुकारों ने भ्रामक स्थिति पैदा कर दी है। इसका स्पष्टीकरण लेखकद्वारा अन्यत्र किया जाचुका है। सुनिषण्णाक के विशेष गुणकर्मों को देखते हुए, 'शितिवार' को इसका प्रतिनिधि या स्थानापन्न मानना उचित नहीं है। (लेखक)।

स्वभाव। गुण–गुरु। रस–कषाय, तिक्त। वीर्य–शीत। प्रभाव–मेध्य। प्रधानकर्म–त्रिदोषनाशक। इसके अतिरिक्त रुचिकारक, अग्निवर्धक, निद्राजनक, ज्वरहर, मेहनाशक, रसायन, वृष्य, विषघ्न, वातशोणितशामक, श्वासकासहर। हानिकारक–उदावर्तजनक (काश्यप० चि०–उदावर्त चि०)।

मुख्ययोग–चाङ्गेरीघृत (च०, चि० अ० १४ अर्श चि०)।

विशेष–चरक (सू० अ० २७), सुश्रुत (सू० अ० ४६), अष्टांगसंग्रह (सू० अ० ७), अष्टांगहृदय (सू० अ० ६) आदि आयुर्वेदीय संहिताओं में शाकवर्ग में तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ४३) कषायवर्ग में 'सुनिषण्णक' का भी परिगणन है। अष्टांगहृदय में तो इसकी मान्यता 'सात्म्यशाकों' में की गयी है। औषधोपयोग के अतिरिक्त संहिताओं में अर्श, वातरक्त, कास, विषार्त, शस्त्रकर्म आदि के रोगियों के लिये इसका अनुमोदन 'पथ्यशाक' के रूप में भी किया गया है। आयुर्वेदीयनिघण्टुओं में 'सुनिषण्णक' का समावेश धन्वन्तरिनिघण्टु तथा सोढलनिघण्टु (सुनिषिस्मो–गुणसंग्रह) में 'गुडुच्यादिवर्ग' में, राजनिघण्टु में 'शताह्वादि वर्ग में किन्तु मदनपाल (सुनिषण्ण, सुषेण) एवं तदनुवर्ती भावप्रकाश में 'शाकवर्ग' में ही किया गया है।

वक्तव्य–आधुनिक तनाव (*Stress*) जनक परिस्थितियों में होनेवाले मनःकायिक विकारों (*Psycho-Somatic disorders*), विशेषतः निद्रानाश आदि में सुनिषण्णक का प्रयोग बहुत उपयोगी पाया गया है। अनेक शोधकर्ताओं द्वारा एतद्विषयक शोध-परीक्षण कार्य भी हो रहा है। वैद्यसमाज को भी इससे लाभ उठाना चाहिए। (लेखक)

सुपारी (पूग)

नाम। सं०–पूग, गुवाक, क्रमुक ? हिं०–सु(सो)पारी, छालिया, कसैली। बं०–सुपारि। मं०–सुपारी, पोफल, (लो)। गु०–सोपारी। अं०–एरीका-नट (*Areca nut*), बीटल-नट (*Betle-nut*)। ले०–आरेका काटेचू (**Areca catechu** *Linn,*)। लेटिन नाम इसके वृक्ष का है।

वानस्पतिक-कुल–ताड़ कुल (पाल्मासे *Palmaceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष में दक्षिण बम्बई, मैसूर, मद्रास एवं बंगाल में समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में तथा आसाम में सोपारी की प्रचुर मात्रा में खेती की जाती है। सुपारी मलाया का आदिवासी पौधा है, और मलाया द्वीपपुञ्जों एवं पूर्वी तथा फिलिपाइन द्वीपसमूह में तथा मेडागास्कर एवं पूर्वी अफ्रीका के समुद्रतट पर भी यह प्रचुरता से होता है। पक्व फलों के सुखाये हुए बीज बाजारों में बिकते हैं। कच्चे फलों को जल में उबालने से लाल सुपारी प्राप्त होती है; जो साधारण सुपारी की अपेक्षा काफी मुलायम होती है। यह चिकनी सुपारी के नाम से बाजारों में मिलती है। भारतवर्ष में सुपारी की काफी खपत होती है। अतएव यहाँ की उपज से काम नहीं चलता।

संक्षिप्त-परिचय। सुपारी के वृक्ष भी नारियल की भाँति होते हैं, जो साधारणतया ०.९ मीटर से १२.१९ मीटर या ३ फुट से ४० फुट ऊँचे (कभी-कभी इससे भी अधिक) होते हैं। पत्तियाँ १२० सें० मी० से १८० सें० मी० या ४ फुट से ६ फुट लम्बी होती हैं, जिनमें अनेक पत्रक होते हैं, जो ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट तक लम्बे और सूक्ष्म रोमश होते हैं। ऊपर की पत्तियों के पत्रक प्रायः परस्पर जुटे हुए (*confluent*) होते हैं। पुष्पव्यूह अवृन्तकाण्डज तथा रंगीन पत्रकोष से आवृत होता है। पुष्पदण्ड कठिन तथा अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त होता है। स्त्रीपुष्प आधार की ओर तथा संख्या में कम होते हैं। शेष दण्ड पर नर पुष्प होते हैं, जो विनाल (*sessile*) होते हैं। फल एकसाथ अनेक लगते हैं. जो लम्बगोल, २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इञ्च से २ इंच लम्बे, चिकने तथा कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर नारंगी रंगके अथवा रक्तवर्ण हो जाते हैं। इनका बाहरी आवरण नारियल की भाँति सूत्रमय होता है। इनको हटाने पर अन्दर सुपारी के बीज मिलते हैं। ताजी सुपारी नशा करती है और इसको खाने से शिर में चक्कर आने लगते हैं। अग्नि के प्रभाव से इसकी विषाक्तता नष्ट हो जाती है। इसीलिए चिकनी सुपारी खाने के लिए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिक पसन्द की जाती है। सुपारी के खेतों में कुछ ऐसे भी वृक्ष आ जाते हैं, जिनके फलों में यह विषैला प्रभाव स्थायी बना रहता है। इन वृक्षों की पहचान साधारण वृक्षों से नहीं हो पाती। अतएव बाजारू सोपारी में कभी विषैली सुपारी भी आ जाती है।

उपयोगी अंग—पकेहुए फलों के शुष्क बीज।

मात्रा। १ से ३ ग्राम (५ ग्रामतक) या १ से ३ माशा (५ माशे तक)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। सुपारी के बीज रूपरेखा में गोलाकार शंकु (*rounded cone*) की भाँति होते हैं, जो १.२५ सें० मी० से ३.११५ सें० मी० (½ इञ्च से १¼ इंच) तक लम्बे एवं १८.७ मि० मी० से ३१ मि० मी० या ¾ इञ्च से १¼ इञ्च तक चौड़े होते हैं। बाह्यतः हल्की लालिमालिये भूरेरंग के अथवा पीताभ-भूरेरंग के होते हैं। बाह्यतल पर सूक्ष्म रेखाओं का जाल-सा फैला होता है, जो प्रायः नाभि (*hilum*) से प्रारम्भ होती है। इससे यह आपाततः देखने में जायफल-सा मालूम होता है (किन्तु जायफल प्रायः रूपरेखा में लम्बगोल होता है)। उक्त सुपारी के बीज आधार के मध्यभाग में किंचित् खातोदर या अन्दर को धँसे (*depresced*) होते हैं। आधारपर मध्यभित्ति (*mesocarp*), जो तन्तुमय या रेशेदार होती है, तथा अन्तर्भित्ति (*endocarp*) जो सफेद पतले पर्त के रूपमें होती है, का कुछ अंश लगा होता है। चुटकी से मलने पर यह भंगुर भूसी की भाँति आसानी से पृथक् हो जाते हैं। बीजों को तोड़ने पर अन्दर का भाग हल्के भूरेरंग का होता है, जिसके बीच-बीच का भाग सफेद होता है। सुपारी या छालिया को काटने पर यदि उसके अन्दर श्वेत रेखाएँ अधिक हों तो वह अच्छी होती है। स्वाद में यह कसैले एवं किंचित् तिक्त होते हैं, किन्तु कोई विशेष गंध नहीं पायी जाती। सुपारी का चूर्ण हल्की लालिमा लिये भूरेरंग का अथवा हल्के भूरेरंग का होता है, जो स्वाद में बीजों की भाँति कसैला तथा किंचित् तीता होता है। इसमें एक हल्की गंध भी पायी जाती है। बाजारू सुपारी में बीजों के के साथ संसक्त फलावरण की मध्यभित्ति एवं अन्तर्भित्ति का भाग अधिकतम २% तक होता है। अन्य विजातीय सेन्द्रिय अपद्रव्य अधिकतम १% तथा भस्म २½% तक प्राप्त होती है।

स्थानापन्न द्रव्य एवं मिलावट—सुपारी (एरिका) की कतिपय अन्य प्रजातियों के फल एवं बीज भी असली सुपारी से कुछ मिलते-जुलते होने के कारण इसमें मिलाये जाते हैं, अथवा सुपारी के नाम से इनका व्यवहार किया जाता है। इनमें नागा की पहाड़ियों पर एक जाति होती है, जिसको आरेका नागेन्सिस् (**Areca nagensis** *Griff.*) कहते हैं। इसी प्रकार लंका में पायी जानेवाली आरेका कॉन्सिन्ना (**Areca concinna** *DC.*) एवं अंडमान-द्वीपसमूह तथा सुमात्रा में होनेवाली आरेका ट्रीआन्ड्रा (**A. triandra** *Roxb.*) जातियाँ महत्त्व की हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—सुपारी को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन—सुपारी में कषाय तत्त्व (टैनिक एवं गैलिक एसिड), एक स्थिरतेल, गोंदीय पदार्थ, अल्प मात्रा में एक उड़नशीलतेल, काष्ठीयतत्व (लिग्निन *Lignin*), १५% तक एक लालरंजकतत्त्व (एरिका रेड *Areca Read*) तथा अनेक क्षारोद (ऐल्केलाइड्स) पाये जाते हैं। क्षारोदों में एरिकोलीन (*Arecoline* $C_8H_{13}O_2N$) ०.०७ से १% तक, गुवाकीन (*Guvacine*), गुवाकोलीन (*Guvacoline*), एरिकेडीन या एरीकेन (*Arecaine*) ०.१%, एवं एरीकोलिडीन (*Arecolidine*) आदि महत्त्व के हैं। पानी में उबालने से इसके तत्त्व एवं कषायघटक जल में आ जाते हैं।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—गुरु, रूक्ष। रस—कषाय, मधुर। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—कफपित्तशामक, (स्वेदन करने पर त्रिदोषशामक), स्तम्भन, व्रणरोपण, नाड़ीबल्य, लालास्रावजनक, रोचन, दीपन, शुक्रस्तम्भन, गर्भाशय-शोथहर, मूत्रसंग्रहणीय, स्वेदजनन। अहितकर-प्रभाव—सुपारी ओजोनाशक, विकासी तथा धातुओं में शैथिल्य पैदा करता है। अधिक खाने से भ्रम पैदा करता है, जिससे नशा-सा आता है और चक्कर आते हैं। इसके अतिरिक्त यह उरःक्षतत्वकारक एवं अश्मरी-जनक भी है। अतएव इसका सेवन दूध, घी आदि स्निग्ध पदार्थों के साथ करना चाहिए। उरःक्षतत्वादि अहितकर प्रभावों के निवारण के लिए, कतीरा एवं इलायची का सेवन करना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुख्ययोग–सुपारीपाक, हलवाए सुपारीपाक, माजून सुपारी पाक, सफ़ूफ़ सुपारी।

विशेष–सुपारी को बालू में भूनने से अथवा स्वेदन कर सुखा लेने से, यह शुद्ध हो जाती है। इससे गुण में भी वृद्धि होती है, तथा अहितकर प्रभावों की सम्भावना भी कम हो जाती है।

सुरंजान (कड़वा एवं मीठा)

नाम। हिं०, म०, गु०–सुरंजान। भा० वा०–सूरंजान, सूरिंजान। फा०–सूरिंजान। अं०, ले०–कॉल्चिकम् (*Colchicum*)। (१) कड़वा सुरिंजान। हिं०, भा०, बा०– सुरंजान कड़ुआ। फा०–सूरिंजाने तल्ख। का०–सूरिंजान। अं०–कश्मीर मा बिटर हर्मोडैक्टिल (*Kashmir or Bitter Hermodactyl*)। ले०–कॉल्चीकुम लूटेउम **Colchicum luteum** *Baker* (वनस्पति)। (२) मीठा सुरिंजान। हिं०–मा०, वा०–सुरंजान मीठा। फा०–सूरिंजाने शीरीं। अं०–स्वीट हर्मोडैक्टिल (*Sweet Hermodactyl*)।

वानस्पतिक-कुल। पलाण्डु-कुल (लीलिआसे : *Liliaceae*)।

प्राप्तिस्थान–'सुरंजान कड़वा (कॉल्चीकुम लूटेउम)' अफगानिस्तान, तुर्किस्तान एवं भारतवर्ष में पश्चिमी हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में (६०२ मीटर से २७८३ मीटर या २,००० से ९,००० फुट की ऊँचाई पर) पहाड़ों की ढाल पर घासों के बीच तथा मुरी की पहाड़ियों से कश्मीर और चंबा तक तथा पंजाब में इसके पौधे उगते हैं। श्रीनगर के आसपास तथा गढ़ी से बारामुला तक सड़कों के किनारे इसके पौधे बहुतायत से मिलते हैं। मीठा सुरंजान फारस में होता है, और भारतवर्ष में इसका आयात वहीं से होता है। कड़वे एवं मीठे दोनों प्रकार के सूरंजान के सुखाये हुए समूचे कंद (Corms) अथवा इसके गोल-गोल कतरेनुमा काट कर सुखाये टुकड़े बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं। इसके अतिरिक्त बाजारों में इससे बनायी हुई गहरे भूरेरंग की रसक्रिया भी 'हरनतूतिया' के नाम से मिलती है। अफगानिस्तान एवं उत्तरभारत में यह एक बहुत प्रसिद्ध औषधि है। आधुनिक चिकित्सा में केवल 'कड़वे सूरंजान' का ही व्यवहार होता है। 'लिक्विड एक्स्ट्रक्ट' एवं 'टिंक्चर' आदि के निर्माण में सुरंजान के 'कन्द' एवं बीज दोनों से इसका ऐल्केलायड् 'कोल्चिसीन' भी पृथक् रूप से प्राप्त किया जाता तथा औषध्यर्थ व्यवहृत होता है। काल्चिसीन एवं बीज तथा कन्दों से बने टिंक्चर आदि योग सर्वत्र अंग्रेजी दवाखानों में मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। 'कॉल्चीकुम लूटेउम' के एकवर्षायु तथा कोमलकाण्डीय छोटे पौधे होते हैं। पत्तियाँ संख्या में कम, रूपरेखा में स्फीताकार, रेखाकार-आयताकार अथवा प्रति-भालाकार (*oblanceolate*) एवं कुण्ठिताग्र तथा पुष्पागम के साथ निकलती हैं, जो पहले छोटी होती हैं, किन्तु उत्तरोत्तर बढ़कर फल लगने तक १५ सें० मी से ३० सें० मी० (६ से १२ इञ्च) तक लम्बी हो जाती हैं। पुष्प प्रत्येक पौधे पर केवल १-२ लगते हैं, जो प्रायः बसन्त-ऋतु में निकलते हैं, और पूर्ण विकसित होने पर व्यास में २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) तक होते हैं। सवर्णकोश या परिदलपुंज (*perianth*) सुनहले पीलेरंग का होता है, जिसके खण्ड आयताकार, अथवा प्रतिभालाकार एवं कुण्ठिताग्र होते हैं। कोशनलिका ७.५ सें० मी० से १० सें० मी० या ३ इञ्च से ४ इञ्च तक लम्बी होती है। पुंकेशर संख्या में ६ होते हैं, जो लम्बाई में सवर्णकोश से छोटे होते हैं। परागकोश (*anthers*) पीलेरंग के तथा केशरसूत्रों से भी बड़े होते हैं। कुक्षिवृन्त (*style*) सूत्राकार होती है, किन्तु लम्बाई में सवर्णकोश से बड़ी होती है। फल (*capsule*) २.५ सें० मी० से ३.७ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बे एवं स्फोटी होते हैं, जिनमें भूरापन लिये सफेदरंग के छोटे-छोटे बीज भरे होते हैं।

उपयोगी अंग–कन्द (*Corms*) तथा बीज एवं कन्द तथा बीजों से प्राप्त सत्व (कॉल्चिसीन)।

मात्रा। कड़वा सुरंजानकन्द–१२५ मि० ग्रा० से ३७५ मि० ग्रा० या १ से ३ रत्ती।

मीठासुरंजान–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

हरनतूतिया–६.२५ मि० ग्रा० से ६२.५ मि० ग्रा० या ⅛ से ½ रत्ती।

कड़वे सुरंजान का सत्व (कोल्चिसीन)–⅙ से ⅓ रत्ती।

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—कड़वे सूरंजान के ताजे कन्द प्रायः १.५ सें० मी० से ३.५ सें० मी० ($\frac{3}{4}$ से $1\frac{3}{4}$ इंच) तक लम्बे एवं व्यास में १ सें० मी० से २ सें० मी० ($\frac{3}{8}$ से $\frac{3}{4}$ इंच) तक और आपाततः देखने में सिंघाड़े-जैसे तथा कुछ शंक्वाकार होते हैं, जिनका एक पृष्ठ उन्नतोदर किन्तु दूसरा तल चपटा होता है। चपटे तल के मध्य में ऊपर से नीचे तक एक परिखा-सी होती है, जहाँ से दूसरे वर्ष का कंद (*daughter corm*) लगता है। कंदों का बाहरी छिलकेदार पर्त (*membranous coat*) प्राय. नहीं पाया जाता। कंद प्रायः पारभासी (*translucent*) अथवा अपारदर्शक होते हैं तथा इनके बाह्यतल एवं अन्तर्वस्तु भी अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्म रेखांकित-सा होते हैं, जो तन्तुवाहिनी-पूलों (*fibro-vascular bundles*) के द्योतक होते हैं। सुखाया हुआ कन्द काफी कड़ा होता है, और इसका बाह्यतल चिकना एवं हल्के या गाढ़े भूरेरंग का अथवा भूरापन लिये खाकस्तरी होता है। तोड़ने पर यह खट से तथा मुलायम टूटते (*short mealy fracture*) हैं। टूटाहुआ तल सफेद एवं पिष्टमय मालूम होता है, जिसपर खाकस्तरी रंग के सूक्ष्म बिन्दुओं के रूप में टूटे हुए वाहिनीपूलों की चिह्न पाये जाते हैं। सुरंजान के कंदों में प्रायः कोई गंध नहीं पायी जाती, किन्तु स्वाद में यह तिक्त एवं कड़वे (*acrid*) होते हैं। सुखाये हुए उत्तम कन्दों में कम से कम ०.२% कॉल्चिसीन पाया जाता है। विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य अधिकतम २%। अम्ल में घुलनशील भस्म—अधिकतम $\frac{1}{2}$% प्राप्त होती है। मीठा सुरंजान कड़वे की अपेक्षा बड़ा, रंग में हल्का तथा स्वाद में तीता एवं कड़वा नहीं होता। बाजारों में सुरंजान का छिलका उतारकर सुखाये हुए गोल-गोल कतरेनुमा काटे हुए टुकड़े भी मिलते हैं। बीज—सुरंजान (कड़वे) बीज रूपरेखा में अण्डाकार अथवा अनियमित रूप से गोलाकार, छोटे (व्यास में २–३ मिलिमीटर) तथा हल्का भूरापन लिए सफेदरंग के होते हैं। नाभि या वृन्तक अर्थात् हाइलम (*hilum*) के पास बीज उत्तरोत्तर कम चौड़े होकर नुकीले से मालूम पड़ते हैं, और इसके सामने दूसरे सिरेपर एक सूक्ष्म चोंच-सी (*beak*) अथवा एरंडबीज की भाँति किन्तु अत्यन्त सूक्ष्म घुंडीसी (कैरंकल *caruncle*) होती है। ताजे बीज प्रायः कई-कई परस्पर संसक्त से होते हैं। उबालने पर बीजों का बाह्यचोल (*testa*) प्रायः पृथक् हो जाता है, किन्तु अन्तःचोल रक्ताभ भूरेरंगका लगा होता है। अतः उबाले हुए बीज गाढ़े भूरेरंग के होते हैं। कन्दों की भाँति बीजों में भी कोई गन्ध नहीं पायी जाती। स्वाद में यह तिक्त होते हैं। उत्तम बीजों में कम से कम ५% तक कॉल्चिसीन पाया जाता है। बीजों को जलाने पर भस्म अधिकतम ५% तक तथा अम्ल में अविलेय भस्म अधिकतम १% प्राप्त होती हैं। बीजों में विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य अधिकतम २% तक हो सकते हैं। कॉल्चिसीन-कॉल्चिसीन के हल्के पीलेरंग के अक्रिस्टली (*amorphous*) छोटे-छोटे पपड़ीदार टुकड़े या चूर्ण होता है, जो हवा में खुला रहने से गाढ़े रंग का हो जाता है। यह प्रायः गंधहीन तथा स्वाद में तिक्त होता है। कॉल्चिसीन अत्यन्त विषैली औषधि है। विलेयता—कॉल्चिसीन जल में घुल जाता है। ऐल्कोहल् (९५%) तथा क्लोरोफार्म में सुविलेय होता है; किन्तु ईथर में बहुत कम घुलता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—विदेशीय कड़वासुरंजान भी गुणकर्म में बिल्कुल भारतीय कड़वेसुरंजान की ही भाँति होता है। इसका वानस्पतिक नाम कॉल्चीकुम आउटम्नाले (**Colchicum autumnale** *Linn.*) है। यह मध्य एवं दक्षिण यूरोपीय देशों तथा इंग्लैण्ड आदि में चरागाहों में होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—सुरंजान का संग्रह जून-जुलाई के महीनों में पुष्पागम के पूर्व करना चाहिए। औषधीय प्रयोग के लिए दोवर्ष आयुवाले पौधों का कन्द अधिक उपयुक्त होता है। कन्दों पर से छिलकेदार शल्कपत्रों को साफकर समूचे अथवा गोल-गोल कतरेनुमा टुकड़े काट छायाशुष्क कर, अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में विषैली औषधियों के साथ पृथक् रूप से रखना चाहिए। बीजों को पक्व फलों से प्राप्तकर उपर्युक्त विधि से रखें। 'सुरंजान कन्द' एवं 'बीजचूर्ण', 'हरनतूतिया' एवं 'कॉल्चिसीन' को अम्बरी रंग की शीशियों में अच्छी तरह मुखबंद करके (ताकि अन्दर वायु एवं आर्द्रता न प्रविष्ट हो सके) अनार्द्र-शीतल एवं अँधेरी जगह में रखें। 'हरनतूतिया' को चौड़े मुँह की शीशियों में रखना अधिक उपयुक्त होगा।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–भारतीय कड़वेसुरंजान के (शुष्क) कंदों में (०.२०% से ०.३५% तक) कॉल्चिसीन (*Colchicine*) नामक ऐल्केलायड, जो इसका प्रधान कार्यकर वीर्य या सक्रिय घटक होता है, तथा स्टार्च शर्करा, गोंद, टैनिन एवं रंजक तत्त्व आदि उपादान पाये जाते हैं। इसके बीजों (विशेषतः बीजत्वक्) में भी काल्चिसीन पाया जाता है, किन्तु कन्दों की अपेक्षा बीजों में अधिक मात्रा (०.३०% से ०.४३% तक) में मिलता है। इसके अतिरिक्त बीजों में कुछ शर्करा तथा स्थिरतैल भी पाया जाता है।

वीर्यकालावधि–कंदों को अच्छी तरह संरक्षित करने से इनमें ३ वर्ष से ४ वर्ष तक वीर्य बना रहता है।

स्वभाव–गुण–लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफवातशामक, बाह्यतः स्थानिक प्रयोग से शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणशोधन एवं रोपण। मौखिकसेवन से दीपन, पित्तसारक, वामक एवं रेचक (अधिकमात्रा में), वातशामक, (अधिक मात्रा में) अवसादक एवं मादक, रक्तसोधक, वातरक्त-नाशक, मूत्रल, कुष्ठघ्न आदि। 'मीठा सुरंजान' बल्य एव वाजीकरण होता है। यूनानीमतानुसार सुरिंजाने तल्ख़ (सुरंजान कड़वा) तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क तथा वेदनास्थापन, श्वयथुविलयन एवं आमवात एवं बवासीर में विशेष गुणदायक होता है। इसका प्रयोग प्रायः बाह्य रूप से किया जाता है। सुरिंजाने शीरीं (सुरंजान मीठा) मलमूत्र द्रवसहित गरम और खुश्क तथा प्रमाथी, श्लेष्मविरेचनीय, संशमन, विलयन, वाजीकर एवं आमवातनाशन होता है। आमवात, वातरक्त और गृध्रसी तथा नपुंसकता में इसका आन्तरिक रूप से उपयोग किया जाता है। श्वयथुविलयन एवं वेदनाशमन के लिए केसर के साथ इसका लेप भी करते हैं।

वक्तव्य–सुरजान वातरक्त के लिए विशिष्ट औषधि समझा जाता है। उग्र वातरक्त व्याधि में यद्यपि इसके प्रयोग से यूरिकाम्ल या यूरिक एसिड (*Uric Acid*) के निस्सरण में वृद्धि नहीं होती, तथापि इसके प्रयोग से चमत्कारी लाक्षणिक लाभ होता है। इसके मौखिक सेवन में आमाशयान्त्र में क्षोभ होने से हृल्लास, वमन एवं अतिसार आदि उपद्रवों के पैदा होने की सम्भावना अधिक रहती है। एतदर्थ सुरंजान के साथ सुरासानी अजवायन' एवं बेलाडोना आदि मिलाकर देने से इनका निवारण हो जाता है। अधिक समयतक निरन्तर कड़वे सुरंजान का मौखिकसेवन करने से यह केन्द्रिक नाड़ी संस्थान पर अवसादक प्रभाव करता है।

विषाक्त प्रभाव। विषाक्तता की अवस्था में कॉल्चिसीन के आमाशयान्त्रप्रदाहजन्य उपद्रवों के निवारण के लिए 'एट्रोपीन' का सूचिकाभरण करना चाहिए। केन्द्रिक नाड़ी संस्थान के अवसाद के निवारण के लिए हृद्य औषधियों का व्यवहार करना चाहिए।

मुख्ययोग–खुलासा सुरंजान शीरीं, माजूने सूरिंजान (मीठे सुरंजान का योग है), सफूफ सुरंजान एवं हब्ब सुरंजान। सुरंजान कन्द एवं बीज के आधुनिक योग—(अ) कंद–(१) सुरंजान घनसत्व (*Dry Extract of Colchicum*)। मात्रा–८.३ मि० ग्राम० से १.५ मि० ग्रा० या ⅛ से १ रत्ती। (ब) बीज–(१) सुरजान का प्रवाही-घनसत्व (*Liquid Extract of Colchicum*)। मात्रा–३ से ५ बूँद। (२) टिंक्चर कॉल्चिकम् (*Tincture of Colchicum*)। मात्रा–५ से १५ बूँद।

विशेष–यूनानी चिकित्सा में सूरिंजान का व्यवहार पहले से होता आ रहा है। मसीही एवं अन्य अरबी हकीमों ने रंगभेद से (१) सफेद, (२) पीला और (३) काला, इन तीन प्रकार के सूरिंजान का उल्लेख किया है। इनमें सफेद को निर्विषैला माना जाता है, और यह खाने की दवा में काम आता है। इसी को 'सूरिंजाने शीरीं' कहते हैं। पीला एवं विशेषकर काले को विषैला माना जाता है। इनको 'सूरिंजाने तल्ख़' कहते हैं। यूनानी हकीम इनका खाने की दवा में उपयोग नहीं करते; अपितु तेल आदि में मिलाकर मालिश के काम में लेते हैं। किन्तु जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है, सुरंजान कड़वा (सूरिंजाने तल्ख़), सुरंजानमीठा (सूरिंजाने शीरीं) की अपेक्षा अधिक वीर्यवान् होता है, क्योंकि इसमें कॉल्चिसीन नामक सक्रिय ऐल्केलायड पाया जाता है। अतएव वातरक्त आदि में प्रयुक्त योगों में कड़वा सुरंजान का ही उपयोग अधिक श्रेयस्कर है। इसकी मात्रा अपेक्षाकृत अवश्य कम होगी तथा सेवन-काल में विषाक्त प्रभावों की ओर भी ध्यान रखना चाहिए। वाजीकर आदि योगों में अवश्य 'मीठेसुरंजान' का व्यवहार करना चाहिए।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूरन (<शूरण)

नाम। सं०–सू(शू)रण, अर्शोघ्न, ओल, कन्दनायक। हिं०–सूरन, जमीकन्द, ओल। बं०–ओल। म०, गु०–सूरण। अं०–एलीफैन्ट्स फूट (*Elephant's-Foot*)। लै०–(१) बोईहुई जाति–आमॉर्फोफ़ाल्लुस काम्पानुलाटुस (**Amorphophallus campanulatus** (*Roxb.*) *Blume ex Decne.*। (२) वन्य या जंगली प्रजाति—आमॉर्फोफ़ालुस सील्वाटिकुस (**A. sylvaticus** *Schott.*)।

वानस्पतिक-कुल। सूरणादि कुल (आरासे *Araceae* या आरोईडे *Aroideae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्तभारतवर्ष। खेतों में अथवा बगीचो या बाड़ों में सूरण के छोटेकन्द (*tuberous outgrowths*) बो दिए जाते हैं, और पुराने कन्दों को खोदकर निकाल लिया जाता है। इसका प्रयोग शाक बनाने के लिए तथा अचार आदि के लिए किया जाता है। जाड़े में तरकारी बेचने वालों के यहाँ यह बाजारों में मिलता है। 'जंगली सूरण' का उपयोग औषधीय योगों में डालने के लिए किया जाता है, और इसके कन्द के सुखाये हुए कतरे पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। सूरण के बहुवर्षायु पौधे होते हैं, जिसका काण्ड मोटा किन्तु कोमल होता है। इसका भौमिक कन्दाकारकाण्ड (*Corm*) जमीन के नीचे बना रहता है। वायव्य-भाग वर्षा में उगता, वर्षभर बढ़ता, तथा जाड़ों में फूल-फल कर सूख जाता है। पत्तियाँ ३० सें० मी० से ९० सें० मी० (१ फुट से ३ फुट) व्यास की तथा संयुक्त होती हैं, और लम्बे पर्णवृन्त (६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ फुट से ३ फुट लम्बे) पर धारण की जाती हैं, जो मोटे तथा गाढ़े हरे-रंग के होते हैं। उनपर इतस्ततः अनेक सफेद चकत्ते या दाग (*paler blotche*) होते हैं। पत्रक २.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (२ इञ्च से ५ इञ्च) लम्बे, अभिलट्वाकार, आयताकार या नुकीले अग्रवाले होते हैं, जिनपर अनेक स्पष्ट शिराएँ होती हैं। पुष्प उभयलिंगी होते हैं, जो पत्रावृत अवृन्तकाण्डज स्थूल मञ्जरियों (*spadix*) में निकलते हैं, और हरिताभ गुलाबी पत्रों (*spathe*) से आवृत रहते हैं। नर पुष्पव्यूह ७.५ सें० मी० (३ इञ्च) लम्बा तथा २.५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१ इञ्च से २ इञ्च) व्यास का और स्त्री-पुष्पव्यूह व्यास में अधिक होता है। कुक्षिवृन्त बैंगनीरंग के होते हैं। फल (*berries*) लम्बगोल तथा रक्तवर्ण होते हैं, जिनमें २–३ बीज होते हैं। शूरण का कन्द अर्ध-गोलाकार, १५ सें० मी० से २५ सें० मी० (६ इञ्च १० इञ्च) व्यासवाला और ऊपरी भाग में अंदर को धँसा हुआ होता है। प्रायः एक वर्ष पुराना कन्द भी प्रयोग के योग्य हो जाता है, किन्तु उसको बढ़ने दिया जाता है, और ३ वर्ष में कन्द काफी बड़ा हो जाता है। कन्द के नीचे से अनेक सूत्राकार जड़ें निकली होती हैं, तथा प्रधानकन्द के साथ अनेक आलु के आकार के छोटे-छोटे कन्द लगे होते हैं। इनका उपयोग बीज डालने के लिए किया जाता है। रंगभेद से लाल और सफेद दो प्रकार का सूरण उपलब्ध होता है। शाकार्थ सफेदसूरण उत्तम माना जाता है, क्योंकि लाल की अपेक्षा यह कम चरपरा (*acrid*) होता है। शूरण जंगलीरूप से भी पाया जाता है। औषध्यर्थ यही प्रयुक्त होता है। 'वन्यसूरण' में कैल्सियम-ऑक्जलेट क्रिस्टल्स ग्राम्य की अपेक्षा अधिक प्रचुरता से पाये जाते हैं, जिससे यह बहुत चरपरा एवं तीक्ष्ण होता है। इसके कन्द भी छोटे होते हैं।

उपयोगी अंग। कन्दाकार भौमिककाण्ड (*Corm*)।

मात्रा। वन्यशूरणचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा (शाकार्थ ग्राम्यसूरण आवश्यकतानुसार)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–बाजार में 'जंगली सूरण' के कन्द को छीलकर इसके कतरेनुमा टुकड़े काटकर सुखाकर रखे जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं बाजारों में यह 'मदनमस्त' के नाम से बेचे जाते हैं। उक्त टुकड़े रक्ताभ भूरेरंग के सिकुड़े हुए तथा झुर्रीदार (*shrunken and wrinkled*) होते हैं। जल में भिगोने पर फूल जाते तथा मुलायम हो जाते हैं, और एक हीकदार गंध मालूम होती है। स्वाद में यह लबाबी एवं किंचित् तिक्तता लिये हुए चरपरा तथा तीक्ष्ण होता है।

संग्रह एवं संरक्षण–जब फूल-फल आने के बाद पौधे सूखने लगें, तो कन्दों को खोदकर निकाल लें। इन्हें पानी से धोकर, छीलकर कतरेनुमा टुकड़े काट लें। इन टुकड़ों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को छायाशुष्क करके, एक सूत में पिरो कर हवादार कमरे या स्थान में रखें।

संगठन—सूरण में मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट (७६.२८% तक) पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐल्ब्युमिनाइड्स (*Albuminoids*) १२.१८%, रेशेदार तन्तु (४%) तथा कैल्सियम ऑक्जलेट क्रिस्टल्स पाये जाते हैं। इसकी तीक्ष्णता एवं चरपराहट इन्हीं क्रिस्टल्स के कारण होती है। इसीलिए जंगलीसूरण, ग्राम्य की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण होता है। ताजे कन्द में आर्द्रता का भाग अधिक रहता है।

वीर्यकालावधि—अच्छी तरह सुरक्षित रखने से २ वर्ष तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—अर्शोघ्न। कर्म—कफवातशामक, रुचिवर्धक, दीपन-पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, बल्य, रसायन, आर्त्तवजनन, तथा वेदनास्थापन आदि।

मुख्य योग—वृहत् एवं स्वल्प सूरणमोदक।

विशेष—शाकार्थ व्यवहार करने के लिए इसकी तीक्ष्णता को कम करने के लिए, पहले सूरण को नीबू, इमली आदि खट्टे पदार्थ अथवा फिटकरी के साथ जल में उबाल लेना चाहिए।

तीक्ष्ण एवं उष्ण होने से यह रक्तपित्तप्रकोपक होता है, अतएव चर्मरोग वाले तथा रक्तपित्त के रोगियों को सूरण का प्रयोग यथासम्भव नहीं करना चाहिए।

सेमल (शाल्मली)

नाम। (वृक्ष) सं०—शाल्मली, मोचा, कंटकाढ्या, तूलिनी, स्थिरायु। हिं०—सेमल, सेमर, सेंबर, सेंबल, लाल सेमल। बं०—शिमुलगाछ। म०—लाल सांवर, कांटे सामर। गु०—शीमलो। पं०—सिंबल। अं०—रेड सिल्क-कॉटन ट्री (*Red Silk-Cotton Tree*)। ले०—बॉम्बाक्स सेइबा **Bombax ceiba** *L.* (पर्याय—*B. malabaricum DC.*) *Salmalia malabaricum* (*DC.*) *Schott. and Eendl.*)। (जड़) हिं०—सेमलमूसला, सेमलघुशली, सेमलकंद (यह १ वर्ष से २ वर्ष आयु के वृक्षों की जड़ होती है)। (गोंद या निर्यास—) सं०—शाल्मलीवेष्ट, मोचाक्षाव। हिं०—मोचरस, सुपारी का फूल। गु०, म०, क०, ता०, ते०, बम्बई—मोचरस। फा०—गुलसुपारी, गुले फ़ोफ़ल।

वानस्पतिक-कुल। शाल्मली-कुल (बॉम्बाकासे *Bombacaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के समस्त उष्णतर जंगलों में इसके स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। गाँवों के आस-पास सड़कों के किनारे एवं बगीचों में इसके वृक्ष लगाये भी जाते हैं। सेमलमूसला एवं मोचरस बाजारों में पंसारियों के यहाँ अथवा बनौषधि-विक्रेताओं के यहाँ बिकते हैं।

संक्षिप्त-परिचय। सेमल के ऊँचे-ऊँचे, कँटीले तथा पतझड़ करनेवाले या पर्णपातीवृक्ष होते हैं, जो प्रायः दीर्घ जीवी होते हैं। काण्डस्कन्ध सीधा, काफी मोटा तथा पुराने वृक्षों में आधार की ओर (जड़ के पास) काफी फूला या मोटा अर्थात् पुश्ताजड़ (*buttressed*) होता है। शाखाओं पर सर्वत्र शंक्वाकार कण्टक (*conical prickles*) पाये जाते हैं। पत्र करतलाकार-खण्डित (*digitate*) होते हैं, जो १५ सें० मी० से ३० सें० मी० (६ इञ्च से १२ इञ्च) डंठल पर धारण किये जाते हैं। पत्रखण्ड या (पत्रक प्रत्येक पत्ती में *leaflets*) संख्या में ५—७ होते हैं, जो १५ सें० मी० से २२.५ सें० मी० या ६ इञ्च से ९ इञ्च लम्बे, ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० या ३ इञ्च से ५ इञ्च चौड़े, भालाकार, अभिलट्वाकार या प्रतिभालाकार (*oblanceolate*), लम्बाग्र एवं सरलतटवाले होते हैं, जो २.५ सें० मी० या १ इञ्च तक लम्बे वृन्तकों (*petiolules*) पर धारण किये जाते हैं। इसमें बड़े आकार के तथा मोटे दलों के लालपुष्प लगते हैं। बाह्यकोष कटोरीनुमा तथा काफी मोटा या गूदेदार होता है, जिसकी लोग तरकारी बनाते हैं। दलपत्र (*petals*) नारंगवर्ण के अथवा गाढ़े लालरंग के होते हैं, जो ७.५ सें० मी० से १५ सें० मी० या ३ इञ्च लम्बे, रूपरेखा में आयताकार, तथा बाह्यतल पर श्वेतरोमावृत (*white tomentose*) होते हैं। फल (*capsule*) १२.५ सें० मी० से १७.५ सें० मी० या ५ इञ्च से ७ इञ्च लम्बा, लम्बगोल या अंडाकार तथा पंचकोणीय (*5-angled*) होते हैं, जिनके फटने पर अन्दर अभिलट्वाकार, चिकने तथा काले बीज निकलते हैं, जिनके चारों ओर सफेद रेशमी रूई लगी होती है। सेमल की रूई तकिया एवं गद्दों में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भरने के लिए बहुत अच्छी समझी जाती है। बिनौलों (बीजों) से तेल भी प्राप्त किया जाता है। जाड़े के अन्त में फूल आते हैं, और गर्मी के दिनों में फल पकते हैं। पुराने वृक्षों की त्वचा में एक प्रकार के कृमि लगने से छोटे-छोटे कोटर से बन जाते हैं, जिसमें जेली की भाँति गाढ़ास्राव जमा होता रहता है। स्राव अधिक हो जाने पर उसके दबाव से वहाँ की त्वचा फट जाती है, और स्राव बाहर निकलकर जम जाता है। यही 'मोचरस' होता है।

उपयोगी अंग। निर्यास (मोचरस) एवं सेमलमूसला (१ वर्ष से २ वर्ष आयु के पौधों की जड़)।

मात्रा। मोचरस—१.५ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा। सेमल मुशली—६ ग्राम से १२ ग्राम या ६ माशा से १ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। (१) मोचरस—ताजा मोचरस प्रायः श्वेताभ होता है, जो धीरे-धीरे लालरंग का हो जाता है, और अन्ततः सूखकर लालरंग के अश्रुवत् टुकड़ों के रूप में हो जाता है, जो भंगुर (*brittle*) होते हैं। बड़े टुकड़े प्रायः अन्दर से खोखले हो जाते हैं। सूखे मोचरस को जल में भिगाने से यह फूलकर पूर्ववत् आकार-प्रकार को धारण करलेता है। स्वाद में मोचरस अत्यंत कसैला होता है। (२) सेमल का मूसला—छाल उतारा हुआ सेमल का मूसला पीताभ-श्वेतवर्ण का, कोमल तथा लुआबी (*mucilagtnous*) होता है। पानी में भिगोने से काफीमात्रा में स्वच्छ लुआब निकलता है।

प्रतिनिधि-द्रव्य एवं मिलावट। श्वेत शाल्मली या 'कूट-शाल्मली' (सेईबा पेंटांड्रा **Ceiba pentandra** (*L.*) *Gaertn.* (पर्याय—*Eriodendron anfractuosum DC.*) रक्तशाल्मली का उत्तम प्रतिनिधि-द्रव्य है। इसका निर्यास भी गाढ़े लालरंग का होता है। जिन प्रान्तों में रक्तशाल्मली कम होती है, तथा वहाँ कूट शाल्मली के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं, वहाँ इसके उन सभी अंगों का व्यवहार रक्तशाल्मली की ही भाँति किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण। 'मोचरस' एवं 'सेमलमूसला' को अच्छी तरह डाटबंदपात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन। मोचरस में प्रधानतः टैनिक-एसिड (कषायाम्ल) एवं गैलिक-एसिड (मायाफलाम्ल) पाया जाता है। सेमलमूसले में काफीमात्रा में लुआबी-तत्त्व पाया जाता है।

वीर्यकालावधि। सेमलमूसला—१ वर्ष। मोचरस—दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध पिच्छिल। रस—मधुर (मोचरस—कषाय)। विपाक—मधुर (मोचरस—कटु)। वीर्य—शीत। कर्म। (मोचरस)—स्तम्भन, व्रणरोपण, रक्त-स्तम्भन, शुक्रस्तम्भन। (सेमलमूसली)—बल्य, वृष्य, बृंहण। (कच्चे फल)—कासहर, मूत्रल। (पुष्प)—रक्त-स्तम्भन। यूनानीमतानुसार 'सेमलमूसली' पहले दर्जे में शीत एवं रूक्ष है।

मुख्ययोग। शाल्मली घृत, पुष्यानुगचूर्ण, बृहद्गंगाधरचूर्ण।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) पुरीषविरजनीय महाकषाय में 'शाल्मलि' एवं शोणितस्थापन, वेदनास्थापन गण तथा कषायस्कन्ध (वि० अ० ८) और सुश्रुतोक्त प्रियङ्ग्वादिगण में मोचरस' का उल्लेख है।

सेव (सिम्बितिका)

नाम। सं०—सिम्बितिका, सेव। हिं०—सेव, सेब। गु०, म०—सरफचंद। सिंध—सूफ़। अ०—तुफ़्फ़ाह : अं०—एपल (*Apple*)। ले०—पीरुस मालुस (**Pyrus malus** *Linn.*)। लेटिन नाम वृक्ष का है।

वानस्पतिक-कुल। तरुणी-कुल (*Rosaceae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष में (विशेषत कश्मीर कुमाऊँ, गढ़वाल, कांगड़ा, पंजाब आदि) इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। अब यह सिंध, मध्यभारत और दक्षिण भारत तक फैल गया है। कश्मीर एवं उत्तर-पश्चिम हिमालय में सेव कहीं-कहीं (लगभग २७४३ मीटर या ९,००० फुट की ऊँचाई तक) जंगली भी मिलता है। यह सर्वत्र बाजारों में मेवाफरोशों के यहाँ मिलता है। फसल के समय में अधिक और अपेक्षाकृत सस्ता मिलता है। प्रशीतक संग्रहालयों (*Cold Storage*) में भी सेव का संरक्षण किया जाता है, जिससे बड़े शहरों में वर्षभर फल बेचने वालों के यहाँ यह उपलब्ध होता है।

संक्षिप्त परिचय—सेव के छोटे कद के वृक्ष (कभी ९ मीटर या ३० फुट तक) होते हैं। कोमल शाखाएँ, पत्तियों के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधस्तल तथा पुष्पव्यूह श्वेत मृदुरोमावृत होते हैं। पत्तियाँ ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० (२ इञ्च से ३ इञ्च) लम्बी, रूपरेखा में लट्वाकार, नुकीले अग्र तथा दन्तुरधारवाली होती हैं। पुष्प ३.७५ सें० मी० से ५ सें० मी० (१½ इञ्च से २ इञ्च) लम्बे तथा गुलाबी रंग के होते हैं। बाह्यकोश सघन रोमावृत होता है। फल गोलाकार, छोटे-बड़े तथा दोनों सिरों पर धँसा हुआ तथा एक छोटे डंठल से युक्त होता है। स्थान एवं स्वाद भेद से यह खट्टा, खटमिट्ठा तथा मीठा कई तरह का होता है। कश्मीरी सेव अधिक अच्छे होते हैं।

उपयोगी अंग—पक्व फल।

मात्रा। सेवका मुरब्बा—१ से २ तोला।
शर्बत (पानक)—२ से ४ तोला।
रुब्बसेव—१ से १½ तोला।

संग्रह एवं संरक्षण—फसल के समय पके फलों को लेकर मुरब्बा आदि बनाकर शीशे के पात्रों में संरक्षित करना चाहिए।

संगठन—सेव में ८०% तक जलांश, तथा इसके अतिरिक्त ऐल्ब्युमिन, शर्करा, निर्यास, हरितरंजन द्रव्य, सेवाम्ल (मेलिक एसिड), सुधा (कैल्सियम) एवं विपुल प्रमाण में फॉस्फोरस प्रभृति उपादान होते हैं।

वीर्यकालावधि। मुरब्बे आदि कल्पों के रूप में दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण—गुरु, स्निग्ध। रस—मधुर, कषाय। विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। प्रभाव—हृद्य। कर्म—वात-पित्त शामक, रोचन, दीपन, यकृद्बल्य, अल्पमात्रा में ग्राही और अधिक मात्रा में मृदुरेचन। (आमाशय की अम्लता को भी कम करता है), हृद्य, रक्तशोधक, मस्तिष्कबल्य, बृंहण, बल्य, वर्ण्य, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, मूत्रल, अश्मरी-नाशन। यूनानीमतानुसार 'मीठा सेव' पहले दर्जे में गरम और तर तथा खट्टा पहले दर्जे में सर्द और खुश्क हैं।

मुख्य योग—सेव का मुरब्बा, शर्बतसेव एवं रुब्बसेव।

सेहुण्ड (स्नुही)

नाम। सं०—स्नुक्, स्नुही, गुडा, सुधा, सेहुण्ड, वज्री, महावृक्ष। हिं०—थूहर, थूहड़, सेंड, सेहुण्ड,। पं०, मा०, गु०—थोर। काठियावाड़—कंटालो थोर। म०—निवडुंग, कांटे निवडुंग। बं०—मनसासिज, मनसा गाछ। अ०—ज़कूम। ले०—(१) एउफ़ॉर्बिआ नेरिईफोलिआ **Euphorbia neriifolia** *Linn.*। (२) एउफॉर्बिआ निवूलिआ **Euphorbia nivulia** *Buch. Ham.*।

वानस्पतिक-कुल। एरण्ड-कुल (एउफ़ॉर्बिआसे *Euphorbiaceae*)।

प्राप्तिस्थान—दकन का पठार, राजस्थान, गुजरात, उत्तर-प्रदेश एवं उड़ीसा आदि में इसके (**E. neriiolia** *L.*) जंगली क्षुप प्रचुरता से पाये जाते हैं। समस्त भारतवर्ष में लगाया भीजाता हैं। बलूचिस्तान एवं मलयाद्वीपसमूह आदि में भी मिलता है। गाँवों के आसपास बाड़ों पर लगाये हुए इसके वृक्ष अधिक मिलते हैं। **E. nivulia** *Buch. Ham.* शुष्क और नग्न पहाड़ियों पर अधिक होता हैं। इसके लगाये हुए क्षुप भी मिलते हैं।

संक्षिप्त परिचय। (१) **E. neriifolia** *L.*—इसके सशाख बड़े गुल्म या छोटे वृक्ष (१.८ मीटर से ७.५ मीटर या ६ से १५ फुट ऊँचे) होते हैं। कंटकीभूत अनुपत्रों (*stipular spines*) के जोड़े उपशाखाओं (*branchlets*) की ऊँची बाह्यवृद्धियों (*tubercles or swellings*) पर स्थित रहते हैं, जो परस्पर मिलकर काण्ड को पंच-कोणीय-सा बना देती हैं। पत्तियाँ रूपरेखा में अभि-लट्वाकार होतीं तथा बहुत-कुछ **E. nivulia** की पत्तियों से स्वरूपतः मिलती-जुलती हैं। अधःपत्रावलि या निचक्र (*involucres*) पीताभ होता है। फल त्रिकोष्ठीय (*tri-coccous*) होते है। कोष्ठ पृथक्-पृथक् होने से तीनों फल पृथक्-से (*three radiating follicles*) मालूम पड़ते हैं। बीज छोटे-छोटे सरसों के दानों की भाँति तथा खाकस्तरी भूरेरंग के होते हैं। शीतकाल में पत्तियाँ झड़ जाती हैं, और वसन्त में पुष्प और फल लगते हैं। (२) **E. nivulia**—इसके वृक्ष ३ से ९ मीटर (१० से ३० फुट) तक ऊँचे होते हैं, जिसकी शाखाएँ सीधी, रूपरेखा में गोल (*terete*), खण्डमय (*jointed*) तथा चक्राकारक्रमसे (*whorled branches*) निकली होती है, जो दो-दो एक साथ कंटकीभूत उपपत्रों से युक्त होती हैं। पत्तियाँ अस्थायी, मांसल २२.५ सें० मी० या ९ इञ्च तक लम्बी, ६.२५ सें० मी० या २½ इञ्च तक चौड़ी रूपरेखा में रेखाकार प्रतिभालाकार (*linear-oblanceolate*), या स्रुवाकार (*spathulata*), कुण्ठि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ताम्र तथा अग्रपर लोमयुक्त (*apiculate*) एवं अवृन्त होती हैं। एकाभ-व्यूह में अधःपत्रावलि प्रायः पीताभ होती है। फल, त्रिखण्डीय (*3-lobed*) तथा खण्ड किंचित् चपटे (*compressed*) होते हैं।

उपयोगी-अंग। मूल, पत्र एवं क्षीर।

मात्रा। काण्डस्वरस (बाल मात्रा) १½ माशा से ३ माशा,
युवक मात्रा–१½ तोला से २ तोला।
पत्रस्वरस–२ बूँद से ५ बूँद।
क्षीर (दूध)–६२.५ मि० ग्रा० से १२५ मि० ग्रा० या ½ रत्ती से १ रत्ती।
मूलचूर्ण–२५० मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० या २ रत्ती से ४ रत्ती।

संग्रह एवं संरक्षण। २-३ वर्ष पुराने सेहुण्ड से चीरा लगा कर शिशिर-ऋतु में दुग्ध का संचय करें। मुखबन्द शीशियों में इसे अनार्द्र शीतल स्थान में रखें।

संगठन–इसमें युफॉर्बीन (*Euphorbine*), राल, निर्यास, रवड़, (काउचूक) एवं कैल्सियम आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। मूल–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। कर्म–कफवातहर, लेखन, तीव्ररेचन। शोथहर, वेदनास्थापन, कफनिस्सारक, त्वग्दोषहर, विषघ्न आदि। यूनानीमतानुसार सेहुण्ड दूसरे दर्जे में उष्ण और तीसरे दर्जे में रूक्ष तथा दूध चौथे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष हैं। अहितकर–उष्ण प्रकृति के लिए। निवारण–दूध।

मुख्य योग। स्नुह्यादि वर्ति, स्नुह्यादितैल, वज्रक्षार।

विशेष–अधोभागहरद्रव्यों में 'थूहर' या 'स्नुही' एक उत्तम ओषधि है। इसका दूध (आक्षीर) तीव्ररेचक होता है। किन्तु मात्रा कम होने से प्रयोग की सुविधा के लिए बारीक किये हुए निशोथ या चने के आटे को थूहरदूध से भावित कर चने के बराबर गोलियाँ बनालें, और रोगी के बलाबल अनुसार प्रयुक्त करें। इसीप्रकार कालीमिर्च के चूर्ण को थूहर के दूध से भावितकर अथवा दूध में सेंधानमक मिलाकर भी गोलियाँ बनायी जा सकती हैं। कफजव्याधियों में विरेचनार्थ यह उत्तम ओषधि है।

सोंठ (शुण्ठी)

नाम। सं०–शुण्ठी, शृंगवेर, नागर, विश्वभेषज। हिं०–सोंठ। म०–सुंठी। गु०–सुंठ। अ०–जंजबीलयाबिस। फा०–जंजबीलेखुश्क। (ग्रीक) ज़िजिबेरोस (*Jigiberos*)। अं०–ड्राई जिंजर (*Dry Ginger*)। (वनस्पति का नाम) ज़ींज़ीबेर ऑफ़ीसिनाले (**Zingiber officinal** *Rose.*)।

वानस्पतिक-कुल। हरिद्राकुल (स्किटामिनासे : *Scitaminaceae*)।

संक्षिप्त-परिचय। (क्षुप)–वार्षिक। मूल–ताजेमूल का नाम अदरक (<आर्द्रक) तथा शुष्कमूल का नाम शुण्ठी (>सोंठ)। काण्ड–०.६ मीटर से १.२ मीटर या २ फुट से ४ फुट ऊँचा। शाखा–लगभग ४५ सें० मी० या १.५ फुट। पत्र–बाँस के पत्तों के समान तथा स्निग्ध, ३० सें० मी० से ६० सें० मी० या १ से २ फुट लम्बे और लगभग १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इञ्च से १ चौड़े। पुष्प–हरिताभ, बैंगनी, ओष्ठयुक्त। पुष्पवृन्त–१५ सें० मी० से २० सें० मी० या ६ इंच से १२ इंच लम्बा।

उपयोगी अंग। कन्द (भौमिककाण्ड)।

मात्रा। अर्क–१ तोला से ३ तोला।
स्वरस–१ तोला से २ तोला।
चूर्ण–१ ग्राम से २ ग्राम या १ माशा से २ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–बाजारों में जो सोंठ मिलती है, वह ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इञ्च से ४ इंच लम्बी, चपटी तथा सशाख एवं मटमैले पीताभ या हल्के भूरेरंग का कन्दाकार भौमिककाण्ड होती है। बाह्यतल अनुलम्ब दिशा में रेखांकित तथा कुछ झुर्रीदार होता है। तोड़ने पर सूखेहुए कन्द खट से टूटते हैं, तथा टूटा हुआ तल स्टार्ची मालूम होता है, और उस पर अनेक रेशे निकले होते हैं। इसमें एक मनोरम सुगंधि पायी-जाती है, तथा स्वाद में तीक्ष्ण होती है। उत्पत्तिस्थान भेद से सोंठ के कन्दों में रंग एवं गंधादि में थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। भस्म–अधिकतम ६ प्रतिशत। जलमें घुलनशीलभस्म न्यूनतम १.७ प्रतिशत। ९० प्रतिशत के ऐल्कोहल में घुलनशीलसत्व–न्यूनतम ४.५ प्रतिशत। जलमें घुलनशीलसत्व–न्यूनतम १० प्रतिशत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छिलका उतारा हुआ और विशेष रूप से बनाये हुए तन्तुरहित सोंठ को हिन्दी में 'सतुआसोंठ,' मैदासोंठ या 'बैतरासोंठ' तथा अरबी में 'जंजबील सतवा' कहते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण–शुष्ककन्द को वायु एवं धूलरहित अनार्द्र और शीतल स्थान में भलीभाँति मुखबन्द किये हुए डिब्बों में या शीशियों में रखें।

संगठन। उड़नशीलतैल २ प्रतिशत, वसा, ओलियोरेजिन (जिन्जरीन) तथा म्यूसिलेज एवं श्वेतसार (२ प्रतिशत) आदि।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, स्निग्ध (शुण्ठी)। गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण (आर्द्रक)। रस–कटु। विपाक–। वीर्य–मधुरउष्ण।

मुख्य योग–तालीशादिचूर्ण, लवंगादिचूर्ण, जवारिशजन्जबील, हिंग्वष्टकचूर्ण आदि।

विशेष–शुण्ठी या सोंठ 'त्रिकटु' या 'त्र्यूषण' तथा 'पंचकोल' का एक द्रव्य है, जो आयुर्वेदीय योगों में प्रचुरता से पड़ते हैं। चरकोक्त (सू० अ० ४) दीपनीय एवं शूलप्रशमन महाकषाय में ('शृंगवेर' नाम से) तथा सुश्रुतोक्त पिप्पल्यादिगण एवं त्रिकटुगण के द्रव्यों में 'शुण्ठी' भी है।

वक्तव्य–आहारव्यञ्जन में मसाले के रूप में 'सोंठ' के व्यवहार की भारतीयपरम्परा यहाँ की अतिप्राचीन आदिम जनजातियों के समय से है। परवर्ती काल में पश्चिमी देशों में इसकी माँग बराबर रही। अतः यह भारत के निर्यातित व्यावसायिक द्रव्यों में रहा। उत्तरभारत में 'सोंठ' संज्ञा सर्वाधिक व्यवहारप्रचलित नाम है। सोंठ की बाह्य एवं आभ्यन्तर-आपूर्ति मुख्यतः दक्षिणभारत से होती रही है, और आज भी उसी क्षेत्र से आती है। सोंठ की अरबी, फ़ारसी, ग्रीक एवं लेटिन संज्ञायें इसके द्रविणभाषीय प्राचीन नाम 'इंजिवेर *injiver*' से व्युत्पन्न प्रतीत होती हैं उल्लेखनीय है। कि द्रविणभाषाओं में 'वेर' पद सामान्यतः 'मूल (*root*)' के लिए व्यवहृत है। संस्कृत 'शृंगवेर (शृंग + वेर)' में भी उत्तरपद 'वेर' यही द्रविणभाषा का 'वेर' है। 'शृंगवेर' का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी है, जहाँ इसका परिगणन 'कटुकवर्ग (मसालावर्ग)' में पाचनद्रव्य के रूप में इसके व्यवहृत होने का उल्लेख है। आयुर्वेदीय संहिताओं तथा परवर्ती साहित्य एवं परम्परा में अद्यावधि यह एक सुविज्ञात एवं सुव्यवहृत द्रव्य है। आज भी घर-घर में 'आर्द्रक' एवं 'सोंठ' आहारव्यंजन एवं घरेलू चिकित्सा में दैनिक व्यवहार में प्रचलित हैं। आर्द्रकस्वरस का उपयोग कफजव्याधियों में अनुपानरूप में किया जाता है। (लेखक)

सोआ (शतपुष्पा)

नाम। सं०–शतपुष्पा। हिं०–सोआ, सोया। बं०–शुल्फा, शलुफा। म०–शेपु। गु०, पं०–सुवा। सिंध–सूआ। मा०–सोवा। ते०–सोयीकुरा (*Soyikura*)। अ०–शिबित्त, शिब्बित। फा०–शूद(त)। अं०–इण्डियन डिल–फ्रूट (*Indian Dill–Fruit* (फल)। इण्डियन डिल (*Indian Dill*) (वनस्पति) ले०–आनेथुम फ्रुक्टुस *Anethum Fructus* (*Aneth. Fruct.*) (फल)। (वनस्पति)–आनेथुम सोवा **Anethum sowa** *Kurz.* (पर्याय–*Peucedanum sowa Kurz,*)।

वानस्पतिक-कुल। छत्रक-कुल (ऊम्बेल्लीफ़ेरे (*Umbelliferae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष में जाड़े के दिनों में अन्य पत्रशाकों के साथ सोआ बोयाजाता है। इसके सुखाये हुए पक्वफल (बीज के नाम से) बाजारों में बिकते हैं। भूमध्यसागरतटवर्ती प्रदेशों में तथा फ्रांस एवं रूस आदि में भी होता है।

संक्षिप्त-परिचय। सोआ के पौधे ३० सें० मी० से ९० सें० मी० या १ फुट से ३ फुट तक ऊँचे तथा कोमल होते हैं। पत्तियाँ द्वित्रि–विभक्त (२-३ *pinnate*) होती हैं, जिनके अन्तिम खण्ड १.२५ सें० मी० से २.५ सें० मी० या ½ इञ्च से १ इञ्च लम्बे तथा रेखाकार (*linear*) होते हैं। इसप्रकार स्थूलतः पत्तियाँ सौंफकी पत्तियों के समान, किन्तु अपेक्षाकृत छोटी तथा सुगन्धित होती हैं। पुष्प पीले तथा सौंफ की तरह छत्रयुक्त होते हैं। हरे धनिये की तरह सौंफ के पत्तों को सुगन्ध के लिए तरकारी में डालते हैं। फल (जिनको बीज कहते हैं) सौंफ के बीज के समान किन्तु उनसे छोटे तथा चपटे होते हैं।

उपयोगी अंग। पत्र, बीज (फल) एवं बीजोत्थ तैल।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्रा । फल–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा । बीजोत्थतेल–१ से ३ बूँद ।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा । (१) बीज (फल)–सोआके बीज लगभग ½ इञ्च (४ मि० मि०) लम्बे तथा $\frac{1}{12}$ इंच (२ मि० मि०) तक चौड़े होते है, और चौड़ाई में दोनों ओर एक परजैसी बारीक झिल्ली लगी होती (*narrowly winged*) है । पृष्ठतल पर रेखाएँ अधिक उन्नत एवं स्पष्ट (*dorsal intermediate ridges distinct*) होती हैं । दोनों एकस्फोटीफलार्ध-खण्ड (*mericarps*) जुटे हुए होते हैं, तथा एक वृन्त (*pedicel*) से लगे होते हैं । प्रत्येक हलखत (*furrow*) में एक-एक बड़ी तेलनलिका (*vitta*) होती है । सन्धिक-तल (*commissure*) पर दो तेल-नलिकाएँ (*vittae*) होती हैं । सोआ के बीजों में एक सुगन्धि पायीजाती है, तथा स्वाद में किंचित् तिक्त, तीक्ष्ण एवं सुगंधित होते हैं । ग्राह्यबीजों में कम-से-कम २% उड़नशील-तेल होना चाहिए । सेन्द्रिय अपद्रव्य—अधिकतम २% होते हैं ।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट । विलायती सोआ (पेड-सेडानुम ग्रावेओलेन्स **Peucedanum graveolens** *Benth.*) के बीज भी गुण-कर्म की दृष्टि से 'देशीसोआ' की ही भाँति होते हैं । अब भारतवर्ष में भी यह बोया जाता है । देशीसोआ के बीज विलायती सोआ के बीजों (*Europeam Dill*) की अपेक्षा कम चौड़े तथा अधिक मोटे होते हैं । पृष्ठतल की रेखाएँ कुछ फीकेरंग की होने के कारण अधिक स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती हैं । पक्ष भी अपेक्षाकृत कम चौड़े (*border less winged*) होते हैं । अन्यथा स्वरूप में और कोई विशेष अन्तर नहीं होता । (२) तेल–सोआका तेल, रंगहीन अथवा हल्के पीलेरंग का द्रव होता है, जो इसके फलों से आसवनद्वारा प्राप्त किया जाता है । इसमें कालेजीरे के तेल की भाँति सुगंधित पायी जाती है, तथा स्वाद में यह पहले मधुर एवं सुगंधित किन्तु बाद में तीक्ष्ण (*pungent*) मालूम होता । १५° तापक्रम पर इसका आपेक्षिक-गुरुत्व ०.९४४८–०.०९८९६ होता है । इसमें १९% से २२% तक कारवोन (*Carvone*) होता है । विलेयता–बराबर आयतन के ऐल्कोहल (९०%) से घुलजाता है । ऑप्टिकल रोटेशन (*Optical Rotation*)– + ४१° से + ४८° । अपवर्तनांक-तालिका *Refractive-Index at* २०°)–१.४९१ से १.४९९ ।

संग्रह एवं संरक्षण–पक्वबीजों (फलों) को सुखाकर मुखबन्द डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखें । इसके चूर्ण को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में शीतल स्थान में रखना चाहिए, अन्यथा उड़नशील तेल के उड़ जाने से औषधि निर्वीर्य हो जाती है । सोआ के तेल को अच्छी तरह मुखबन्द शीशियों में शीतल एवं अँधेरे स्थान में रखना चाहिए ।

संगठन–सोआ के बीजों में ३% से ४% एक उड़नशील-तेल पायाजाता है, जिसपर इसकी सुगंधि तथा कर्म निर्भर करता है । तेल में एपिओल (*Dill-Apiole ; $C^{12}H^{14}O^4$*), एनीथीन (*Anethene ; $C^{10}H^{16}$*) नामक द्रव-हाइड्रोकार्बन तथा कारवोन (*Carvone* से मिलता-जुलता तत्त्व पाया जाता है ।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष ।

स्वभाव । गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण । रस–कटु, तिक्त । विपाक–कटु । वीर्य–उष्ण । कर्म–कफवातशामक, वेदना-स्थापन, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, शोथहर, हृदयोत्तेजक, कफघ्न, मूत्रल, आर्त्तवजनन, स्तन्यजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, शुक्रनाशन । यूनानी-मतानुसार सोआ पत्र दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क तथा बीज एवं तेल तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं । अहितकर (बीज एवं तैल)—मस्तिष्क एवं दृष्टि को तथा कामावसादक । निवारण–सिकंजबीन और अम्ल द्रव्य ।

मुख्ययोग । अर्कसोआ ।

वक्तव्य–'शतपुष्पा' संज्ञा वास्तव में सामान्यरूप से उम्बे-ल्लीफ़ेरीकुल की वनस्पतियों के छत्राकार पुष्पव्यूह का ज्ञापक है । 'सोआ' से ही मिलती-जुलती तथा समानगुणधर्मी दूसरी वनस्पति 'सौंफ' भी चिकित्सा एवं लोकव्यवहार प्रचलित है । इसका वानस्पतिकनाम फीनीकुलुम् वुल्गारे (**Foeniculum vulgare** *Mill.* (*Family : Umbelliferae*) हैं, तथा आयु-र्वेदीय साहित्य में इसके लिए मिश्रेया, शताह्वा, मधुरिका तथा मिसि (शि) आदि संज्ञायें दी गई हैं । 'शतपुष्पा' का उल्लेख पाणिनिगणपाठ में भी है, जहाँ 'अजादिगणपाठ' (पाणिनि ४. १. ४) में 'शतपुष्प' भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पठित है, और इसमें 'टाप्' प्रत्यय लगाने से (शतपुष्प + टाप् =) स्त्रीलिङ्गांत 'शतपुष्पा' शब्द की सिद्धि का निर्देश है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि इससे 'सोआ' या 'सौंफ' अभिप्रेत है। तत्परवर्ती कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी शतपुष्पा के व्यवहारोपयोग का साक्ष्य 'सुराप्रसादन कल्क' के द्रव्यों में इसके उल्लेख द्वारा मिलता है। आयुर्वेदीय संहिताओं एवं परवर्ती साहित्य में भी 'शताह्वे', 'शतपुष्पे' आदि द्विवचनान्तपदों का प्रयोग सम्भवतः उक्त दोनों वनस्पतियों को लक्ष्य करके किया गया है। वास्तव में यह दोनों प्रजातियाँ बाह्यागत हैं, और भारत में इनका प्रसार भी अति-प्राचीनकाल में इनके आदिवासी क्षेत्र से हुआ प्रतीत होता है। 'सौंफ' भूमध्यसागरीय क्षेत्र का आदिवासी है, और दक्षिण यूरोप में आज भी इसके पौधे जंगली-रूप से पाये जाते हैं। 'सोआ' भी यूरेशिया का आदि-वासी है। अपेक्षाकृत 'सोआ' का सम्बन्ध एशियाई क्षेत्र से निकटतर है। भारतवर्ष में यद्यपि दोनों ही 'कर्षित अवस्था' में ही पाई जाती हैं, किन्तु सोआ में अपेक्षाकृत भूमिसहृता अधिक देखी जाती है। यह ऊबड़-खाबड़ भूमि में भी होती है और जहाँ एक बार बोई जाती है, दूसरे वर्ष में वहाँ इसके स्वयंजात पौधे फलते फूलते हैं। सौंफ की खेती मुख्यतः इसके पक्वफलों (जिनको व्यवहार में बीज कह देते हैं) के लिए तथा सोआ हरी सब्जी के लिए बोई जाती है। इसके फलों (बीजों) का व्यवहार औषध्यर्थ होता है। सौंफ का व्यवहार मसाले के रूप में तथा औषध में भी प्रचुरता से किया जाता है। अतः औषध योगों में प्रयुक्त संस्कृत संज्ञाओं से संदर्भ को देखकर, उनसे अभिप्रेत 'सोआ' या 'सौंफ' के व्यवहार का निर्णय करना चाहिए। वैसे मैंने दोनों लिये शास्त्रोक्त संस्कृत संज्ञाओं का विश्लेष-णात्मक विवेचन भी अन्यत्र किया है। (लेखक)

सोनापाठा (श्योनाक)

नाम। सं०—श्योनाक, स्योनाक (आयु० निघण्टु), शुकनास, टिण्टुक, (अरलु, ?), दीर्घवृन्त, पृथुशिम्ब। हिं०—सोना-पाठा। देहरादून—तारलू। गढ़वाल—टंटिआ। कु०—फरकट, डोलदगडों। खर०—सोनपत्ता। था०—सोना। को०—रेंगेवनम्। संथा०—वनहाटक, वनहटा। ओंड—जयमंगल। राँची—कनसुपती, भालूसुपली। लाट—खड़धार। बं०—शोणा। म०—टेंटू। मिर्जापुर एवं विन्ध्य के जंगल—डगडौआ। ले०—ओरोक्सीलुम ईंडिकुम (**Oroxylum indicum** *Vent.*)।

वानस्पतिक-कुल। श्योनाक-कुल (बिग्नोनिआसे : *Bignoniaceae*)।

प्राप्तिस्थान—भारतवर्ष के पश्चिमी शुष्कप्रदेशों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र श्योनाक के जंगलीवृक्ष पाये जाते हैं। इसकी मूलत्वक् (जड़ की छाल) 'बृहत् पंचमूल' में पड़ती है, और पंसारियों के यहाँ बिकती है।

संक्षिप्त-परिचय। श्योनाक के छोटे-छोटे (४.५ मीटर से ७.५ मीटर या १५ फुट से २५ फुटतक ऊँचे, कभी-कभी उपयुक्त परिस्थिति में ५० फुट या १५.२३ मीटर तक) वृक्ष होते हैं, जिसमें शाखाएँ थोड़ी होती हैं, तथा पत्तियाँ शाखाग्रों पर समूहबद्धहोकर स्थित होती हैं। पत्तियाँ ०.६ मीटर से १.२ मीटर (२ फीट से ४ फीट) लम्बी, द्वि-या त्रिपक्षाकार तथा अभिमुखक्रम से स्थित होती हैं। नीचे की पत्तियाँ प्रायः त्रि-पक्षाकार (*3-pinnate*), मध्य की द्विपक्षाकार (*bi-pinnate*) और शीर्षके पास की संकृत्पक्षवत् (*simply pinnate*) होती हैं। उपपक्ष या पक्षक (*pinnae*) ३-४ युग्म, पक्षकी या पिन्यूल (*pinnules*) ३-५ पत्रक होते हैं। पत्रक ७.५ सें० मी० से १२.५ सें० मी० (३.५ इञ्च से ५ इञ्च) तक लम्बे, ५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० (२ इञ्च से ३½ इञ्च) तक चौड़े, रूपरेखा में चौड़े-लट्वाकार, लम्बाग्र तथा अखण्ड और चिक्कण तथा पत्रनाल और पत्रदण्ड पर दाने पड़े होते हैं। पुष्पवाहकदण्ड (*peduncle*) बहुत लम्बा (६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ फीट से ३ फीट तक) होता है। पुष्प बहुत बड़े, मांसल और जामुनीरंग के तथा दुर्गन्धित होते हैं, जो अग्र्य-नम्रमञ्जरियों (*lax terminal racemes*) में सवृन्तकाण्डजक्रम से निकले होते हैं। पुष्पवृन्त २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बे होते हैं। पुटचक्र (बाह्यकोश) २.५ सें० मी० या १ इंच लम्बा, १.५ सें० मी० या ⅔ इंच चौड़ा, चर्मिल तथा रूपरेखा में कुछ-कुछ अंगुस्ताना (*thimble*) के आकार का होता है। दलचक्र (आभ्यन्तरकोश) घंटिकाकार का होता है, जिसमें नलिका बाहरसे हरिताभ किन्तु पत्र लालरंग के

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते हैं। पुंकेशर संख्या में ५ और प्रायः सभी प्रगल्भ होते हैं। फली (*capsule*) तलवार-जैसी टेढी, चिकनी, कठोर, ३० सें० मी० से ७५ सें० मी० (१ फीट से २½ फीट) लम्बी, ५ सें० मी० से ८.७५ सें० मी० या २ इंच से १½ इंच चौड़ी होती है। बीज चपटे और आधार के अतिरिक्त चारों ओर सफेद झिल्लीदार पंखयुक्त होते हैं। वसन्त (मार्च-अप्रैल) में प्रायः वृक्ष पत्रहीन हो जाता है, जिसमें केवल तलवार-जैसी फलियाँ लटकी रहती हैं। इसके बाद नये पत्ते आते हैं। ग्रीष्म एवं वर्षा के प्रारम्भ में पुष्पागम तथा जाड़ों में फलागम होता है।

उपयोगी अंग—मूलत्वक्।

मात्रा। मूलत्वक्चूर्ण—१.२५ ग्राम से २.५० ग्राम या १० से २० रत्ती।

स्वरस—१ तोला से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—श्योनाक के जड़ की छाल मोटी, बाहर से भूरेरंग की और अन्तस्तल पर पीलेरंग की होती है। तोड़ने से यह खट से टूटती (*fracture short*) है। इसमें कोई गंध नहीं होती, तथा स्वाद में कुछ कड़ु-आहट लिये हल्कीतीती होती है। श्योनाक की ताजीजड़ बाह्यतः खाकस्तरी या हल्के भूरेरंग की होती है, जो कुछ गुलाबी या बैंगनी आभा लिये होती है। रूपरेखा में बेलनाकार तथा मोटी और कड़ी (*woody*) होती है, और बाह्यतल चिकना तो होता है, किन्तु इसपर सूक्ष्म दरारें (*faintly fissured*) भी होती हैं। सूखी हुई जड़ सिकुड़ी हुई होती है, तथा त्वचा अनुलम्ब दिशा में झुर्रीदार (*longitudinally wrinkled*) होती है। छाल का बाह्य तल चिकना, पतला और अत्यंत मुलायम होता है, और जरा-सी खरोंच से छिल जाता है। ताजी जड़ों में छाल देखने में मोटी ६.२५ मि० मी० से १.२५ मि० मी० (¼ इंच से ½ इंच), रसदार और कुछ फूली हुई-सी (*turgid*) तथा मटमैले सफेदरंग की या पीताभवर्ण की होती है, किन्तु हवा में खुली रहने से यह हरिताभवर्ण की हो जाती है। ताजीजड़ का अनुप्रस्थ-विच्छेद (*T. S.*) करने पर उक्त परिवर्तन छाल के अन्दर के भाग से प्रारम्भ होकर बाहर की ओर फैलता है। जड़ के सूखने पर छाल सिकुड़ती तथा काष्ठीयभाग से मजबूती से चिपकी होती है, और कठिनाई से पृथक् होती है। ताजीछाल स्वाद में प्रथम मधुरता लिये लुआबी और बाद में कुछ तीखी मालूम होती है, किन्तु सूखीछाल में तिक्तता अपेक्षाकृत बहुत कम हो जाती है। तोड़ने पर छाल का अधिकांश बाहरी भाग खट से टूटता है, किन्तु अन्दर का कुछ भाग रेशेदार (*fibrous*) होता है। काण्डत्वक्-मूलत्वक् की अपेक्षा यह कम रसादार तथा मधुर होती है, किन्तु रचना में उसकी अपेक्षा अधिक चर्मिल या चिमड़ी (*more leathery or tough*) होती है। ताजीछाल को काटनेपर इसमें भी मूलत्वक् की भाँति रंगपरिवर्तन (हरिताभ) लक्षित होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—वास्तव में जिन क्षेत्रों में श्योनाक होता है, यह सुपरिचित एवं सुविज्ञात है। अतः इसके संग्रह के सम्बन्ध में कोई भ्रामकस्थिति नहीं है। किन्तु उत्तर-पश्चिमी रेगिस्तानी क्षेत्रों (राजस्थान, सिंध आदि) में असली श्योनाक (**O. indicum**) के वृक्ष नहीं पाये जाते। अतः राजस्थान के वैद्य एवं औषधिनिर्माता श्योनाकनाम से एक सर्वथाभिन्न वृक्ष को जानते तथा बरतते हैं, जिसका वानस्पतिक नाम आइलांथुस एक्सेल्सा **Ailanthus excelsa** *Roxb.* (*Family : Simarubaceae*) है। राजस्थान में उक्त वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। मैंने देखा है कि, राजस्थान में पंसारियों एवं वनौषधिविक्रेताओं के यहाँ श्योनाक या सोनापाठा नाम से जो 'छाल' मिलती है, वह ओरोक्जीलुम प्रजाति की न होकर इसी वृक्ष की होती है। पश्चिमभारतीय शास्त्रीय एवं व्यवहार परम्परा में उक्त वृक्ष (सं०) अरलुक, (>) अरलु तथा क्षेत्रीय अरलु (>) अरुआ, अरुअ नामों से प्राचीनकाल से सुविज्ञात एवं व्यवहार-प्रचलित प्रतीत होता है। अतः पश्चिम—भारत में श्योनाक के नाम से 'अरलु' के ग्रहण की परम्परा भी तद्वत् प्राचीन लगती है। आयुर्वेदीय संहिताओं में 'श्योनाक' का भूरिशः उल्लेख चरकसंहिता में मिलता है। सुश्रुत, अष्टांग-संग्रह एवं अष्टांग-हृदय आदि में निर्देशमात्र है। किन्तु प्रसिद्ध आयुर्वेदीयगण बृहत्पंचमूल (तथा 'दशमूल') में सर्वत्र इसका ग्रहण है। चरक, सुश्रुत, अष्टांग-संग्रह एवं अष्टांग-हृदय में 'अरलु' का भी, किन्तु अपेक्षाकृत कम, उल्लेख है। इससे लक्षित होता है, कि प्राचीन उत्तरपश्चिमी भारतीयक्षेत्र में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'श्योनाक' एवं 'अरलु' दोनों ही स्वतंत्ररूप से ज्ञात थे, किन्तु आयुर्वेदीय परम्परा में महत्पंचमूल / दशमूल के संदर्भ में 'श्योनाक' की ही मान्यता थी। किन्तु लगता है, व्यवहार में 'अरलु' वृक्ष अपने अन्य व्यवहारोपयोगों तथा सुलभता के कारण सुदूर उत्तरपश्चिमी सीमा प्रान्तीय क्षेत्र से पश्चिमभारतीय रेगिस्तानीखंड तक प्राचीनतरकाल से अद्यावधि अविच्छिन्न परम्परागत प्रसिद्ध है। उक्त संज्ञा एवं इसके अनुबन्ध के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष साक्ष्य 'वैदिक-साहित्य' से लेकर, अनुगामी अष्टाध्यायी, पतञ्जलि-महाभाष्य आदि प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, और आज भी उक्त संज्ञा 'अरुआ', 'अरुअ' रूपमें जीवित एवं लोक प्रचलित है। आयुर्वेदीय परम्परा में मध्ययुगीन पश्चिम भारतीय आयुर्वेदीय-निघण्टुओं एवं भेषजग्रंथों यथा धन्वन्तरि-निघण्टु, राज-निघण्टु, मदनपाल, कैयदेव, एवं शार्ङ्गधर-संहिता आदि सभी ने प्रतिनिधिद्रव्य ही नहीं अपितु दोनों को समानार्थक ही बना दिया। अष्टांग-संग्रह एवं अष्टांग-हृदय के मध्ययुगीन पश्चिम भारतीय टीकाकार इन्दु, अरुणदत्त तथा हेमाद्रि आदि एवं शार्ङ्गधर के विद्वान एवं चिकित्सक टीकाकार आढ़मल्ल तथा वैद्य काशीराम आदि सभी ने अपने टिप्पणों में 'अरलु' का विनिश्चय 'श्योनाक' से तथा 'श्योनाक' का 'अरलु' से किया है ('अरलु : श्योनाक : ' आदि)। शार्ङ्गधर (मध्यमखण्ड १२/७७) में तो 'दशमूलारिष्ट' में तथा 'श्योनाक पुटपाक' में श्योनाक के स्थान में पाठ भी अरलु का ही किया गया है। किन्तु इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, कि इनग्रन्थों एवं, टीकाकारों के पूर्वगामी प्रसिद्ध संस्कृतकोष 'अमरकोश, (वनौषधिवर्ग ४/५७) में भी यद्यपि 'स्योनाक' एवं 'अरलु' के पर्यायों का एकत्र पाठ है, किन्तु 'च' के द्वारा इनका परस्पर भिन्न-अस्तित्व भी इंगित होता है। आढमल्ल ने तो अरलू के परिचयात्मक टिप्पण में इसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है, यथा 'अरलूः वृक्ष-विशेषः प्रसिद्ध एव, तदभावे श्योनाकः' (शार्ङ्ग० म० खं०, २९)।

अतः 'अरलु' एवं 'श्योनाक' की पारस्परिक स्थिति दो प्रकार की है :—(१) एक दूसरे के पर्यायरूप (एकहीवृक्ष के वाचक) तथा (२) एक दूसरे के स्थानापन्न / प्रतिनिधिरूप (भिन्नसत्तायुक्त तथा २ भिन्न वानस्पतिक जातियों के बोधक)। अष्टांगनिघण्टु में 'श्योनाक' एवं 'अरलु' दोनों का पृथग् रूपसे वर्णन है। सोढलनिघण्टु में भी गुडूच्यादिवर्ग की नामावली में 'बृहत्पञ्चमूल' में 'भल्लूकण्टिटुकः प्रोक्तः' द्वारा बृहत्पञ्च-मूल में श्योनाकग्रहण का ही संकेत किया है, क्योंकि 'भल्लूक' एवं 'टिटुक' आदि संज्ञायें ऐकान्तिकरूपसे 'श्योनाक' के ही लिये प्रयुक्त होती हैं। किन्तु द्रव्यगुण वर्णन में 'अरलुः' एवं 'टिटुक (=श्योनाक)' के गुण-कर्म पृथक्-पृथक् वर्णन किये हैं :—

अरलुः कफहृद्ग्राही दीपनः क्रिमिकुष्ठनुत्।
टिंटुको वातहृद्वृष्यः शोफहाग्निबलप्रदम्॥
(सोढ०, गुडूच्यादि वर्ग १)

इस संदर्भ में 'सुश्रुतसंहिता' के विद्वान् एवं वनस्पतिविशेषज्ञ टीकाकार आचार्य 'डल्हण' का टिप्पण भी उल्लेखनीय है :—'अरलुः श्योनाकभेदः तस्य त्वक्, अन्ये श्योनाकमरलु शब्देनाहुः' (ड०)।

सम्प्रति 'अरलु' एवं 'श्योनाक' की पारस्परिक स्थितिस्पष्ट है। दोनों संज्ञायें भिन्न वनस्पतियों के वाचक हैं। अतिसार-प्रवाहिकादि व्याधियों में दोनों का काण्ड-त्वक् (*stem-bark*) समानरूप से उपयोगी होता है। तथापि बृहत्पञ्चमूल में श्योनाक (**O. indicum**) ही शास्त्रसम्मत एवं ग्राह्य है। राजस्थान के पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्रों में श्योनाक का आरोपण एवं परिवर्धन सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। (लेखक)

संग्रह एवं संरक्षण—श्योनाक के मूलत्वक् का संग्रह जाड़ों में करना चाहिए, और इसे छायाशुष्क करके अनार्द्र-शीतल स्थान में मुखबन्दपात्रों में रखना चाहिए। ताजीजड़ से ही छाल को पृथक् करलेना चाहिए, क्योंकि सूखने पर जड़ से छाल आसानी से पृथक् नहीं होती। कालान्तर से इसके कृमिभक्षित होने की आशंका अधिक रहती है। संरक्षण में इसका ध्यान रखना चाहिए।

संगठन—इसके मूलत्वक् में ओरोक्सीलिन (**Oroxylin**) नामक क्रिस्टलाइन स्वरूप का तिक्तग्लुकोसाइड, एक कटुतत्त्व, पेक्टिन, वसा, मोम, क्लोरोफिल एवं अल्पतः सीट्रिक एसिड प्रभृति तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि। कुछ महीनों तक।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रस—तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—शीत। कर्म—त्रिदोषशामक, शोथहर, वेदना-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थापन, व्रणरोपण, दीपन-पाचन (तथा आमपाचन); स्तम्भन, कफघ्न, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, अल्पमात्रा में कटुपौष्टिक।

मुख्ययोग। बृहत्/पंचमूल, श्योनाक-पुटपाक।

विशेष—चरकोक्त अनुवासनोपग, पुरीषसंग्रहणीय, शोथहर तथा शीतप्रशमन महाकषायोक्त (च० सू० अ० ४) द्रव्यों में, और कषायस्कन्धोक्त (च० वि० अ० ८) में 'श्योनाक' का भी उल्लेख है। सुश्रुतोक्त अम्बष्ठादिगण एवं बृहत्पञ्चमूल में भी 'श्योनाक' है।

सोम ? (एफिड्रा)

नाम। सं०—(सोम ?)। हि०—टूटगंठा, तूतगांठा (चकरौता)। पं०—असमानिया, चेवा। बं०—सोमकल्पलता। (सतलज की घाटी)—फोक। ईरान—होम। चीन—माहुअंग। जापान—माओह। ले०—(१) एफ़ेड्रा गेरार्डिआना **Ephedra gerardiana Wall.** (पर्याय—*E. vulgaris Hook. f. non Rich.*)। (२) एफ़ेड्रा नेब्रोडेन्सिस (**Ephedra nebrodensis** *Tineo.*)।

वानस्पतिक-कुल। सोम-कुल (*Gnetaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हिमालयप्रदेश में कश्मीर से सिक्कम तक २१३२.६ मीटर से ४८७६.८ मीटर या ७,०००-फुट से १६,००० फुट की ऊँचाई तक विभिन्न क्षेत्रों में इसके स्वयंजातक्षुप पाये जाते हैं। अतः चम्बा, कुलु, लाहुल, लदाख, बशहर तथा चकराता आदि में प्रायः इसके पौधे मिलजाते हैं। सीमाप्रान्त, वजीरिस्तान एवं ईरान में भी एफिड्रा पाया जाता है। इसका शुष्कपंचाङ्ग पसारियों के यहाँ बिकता है। इसके विशिष्ट व्यापारियों के यहाँ से सीधे भी मंगाया जासकता है।

संक्षिप्त-परिचय—एफेड्रा के छोटे (६ इञ्च से ३½ फुट तक ऊँचे) सर्पणशील झाड़ीनुमाक्षुप होते हैं। काण्ड पतला किन्तु कड़ा और पर्वों पर कुछ मोटा या ग्रंथिल-सा होता है। इसकी जड़ में से ही स्तम्भसमूह निकलते हैं, जिनमें से शाखाएँ फूटती हैं। प्रतिग्रंथि पर दो और अभिमुख, या अनेक और एकचक्र में शाखाएँ निकलती हैं। ये हरी और रेखांकित होती हैं। पुरानेकाण्ड की त्वचा, धूसर होती है। आपाततः देखने में एफिड्रा की शाखाएँ पत्र-रहित मालूम होती हैं। केवल ग्रंथियों पर शल्कसदृश पत्र होते हैं। इन शल्कपत्रों के मिलने से एक पीताभ या भूरा द्विविभक्त कोष बना होता है। नरपुष्पों की विदण्डिकमञ्जरियाँ (*male spikes*) अकेली या २-३ के गुच्छे में रहती हैं। इन पर ४-८ नरपुष्प होते हैं। नारीपुष्पों (*female cones*) की मञ्जरी अकेली और १-२ पुष्पों की होती है। फल लट्वाकार, लाल, मांसल और दो काले बीजों से युक्त होता है। स्थानिकलोग फलों को खाते हैं। पंचाङ्ग का संग्रह व्यावसायिक रूप से काफी परिमाण में किया जाता है। पहले अंग्रेजी औषधि निर्माण-शालाओं में इसकी काफी माँग होती रही है। इससे 'एफेड्रीन' नामक ऐल्केलायड पृथक् किया जाता है, जिसके यौगिक श्वास या दमा के दौरे को रोकने के लिए रामबाण औषधि के रूप में व्यवहृत होते हैं। यूरोपीय देशों को 'एफेड्रावनौषधि' की आपूर्ति मुख्यतः चीन तथा भारतवर्ष से ही किया जाता रहा है। किन्तु अब एफेड्रीन का निर्माण रासायनिकसंश्लेषण-प्रक्रियाद्वारा (*syn thetic*) किया जाने लगा है। अतः अब एफेड्रा की खपत देशी चिकित्सा में ही होती है।

उपयोगी अंग—पंचाङ्ग।

मात्रा। चूर्ण—६२५ मि० ग्रा० से १.२५ ग्राम या ५ रत्ती से १० रत्ती।

क्वाथ—२ तोला से ४ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजारों में एफेड्रा का शुष्ककाण्ड मिलता है, जो ग्रंथियों पर टूटकर टुकड़े-टुकड़े के रूप में होता है। इसमें चोड़ से मिलती-जुलती उग्रसुगन्धि पायीजाती है, और स्वाद में यह अतिकसैला होता है। 'एफेड्रा' की सक्रियता इसमें पायेजानेवाले एफेड्रीननामक ऐल्केलायड् पर निर्भर करती है। उत्पत्तिस्थान एवं संग्रह-काल आदि के भेद से इसकी मात्रा में भी न्यूनाधिक्य पाया जाता है। उत्तमनमूने में कम-से-कम १½% एफेड्रीन होती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—'एफेड्रा' का प्रयोग चीन में अतिप्राचीन काल से होता आरहा है। औषधीयदृष्टि से चीन में भी 'एफेड्रा' की दो महत्त्व की जातियाँ (*Species*) पायी जाती है—(१) एफेड्रा सिनिका (**Ephedra sinica** *Stapf.*) तथा (२) एफेड्रा एक्विसेटिना (**E. equisetina** *Bunge.*)। यूरोपीयदेशों में एफेड्रा का आयात मुख्यतः चीन से ही होता था। किन्तु अब अपने देश में भी इसकी अनेक महत्त्व की जातियों का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पता लगगया है। एफेड्रीन की दृष्टि से भारतीय जातियाँ कहीं उत्कृष्टतर होती हैं। उक्त सक्रिय प्रजातियों के अतिरिक्त 'एफेड्रा' की अन्य अनेक जातियाँ भी पायी जाती हैं, जो औषधीय दृष्टि से अग्राह्य हैं। भारत में नेपाल का एफेड्रा सर्वोत्तम होता है।

संग्रह एवं संरक्षण—'एफेड्रीन' की अधिकतम मात्रा हरी शाखाओं में पायीजाती है। जाड़ों में अन्य ऋतुओं की अपेक्षा एफेड्रीन अधिकतम पायीजाती है। अतएव हिमपात के पूर्व ही इसका संग्रहकर अच्छी तरह छायाशुष्क करलें और मुखबन्द डिब्बों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षण करना चाहिए और इसे प्रकाश से बचाना चाहिए।

संगठन—इसमें ०.२८ प्रतिशत से २.८ प्रतिशत तक एफेड्रीन नामक ऐल्केलायड पाया जाता है, जो इसका मुख्य सक्रियतत्त्व होता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

उपयोग—तमकश्वास का दौरा रोकने के लिए यह परमोपयोगी औषधि है।

मुख्ययोग—श्वासारिचूर्ण।

स्याहजीरा—दे०, 'जीरा, स्याह'।

वक्तव्य—'एफेड्रा प्रजातियों' के लिए उपर्युक्त संस्कृतसंज्ञा 'सोम' का अभिधान सीमित अर्थ में ही समझना चाहिए। यद्यपि 'सोम' की मान्यता एवं प्रसिद्धि वैदिककाल से ही चली आ रही है, किन्तु इसके सर्वमान्य वानस्पतिक विनिश्चय का 'विषय' अभी भी अन्वेषण का विषय बना हुआ है। सोमविनिश्चय को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी भी हो चुकी है, किन्तु सर्वमान्य समाधान नहीं हो सका है। चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदीय संहिताओं में भी सोमका उल्लेख तो है ही, स्वतंत्र अध्याय भी हैं। किन्तु भारतीय शास्त्र एवं परम्परा में सोम से एफेड्राप्रजातियों के अभिप्रेत होने का स्पष्ट एवं मान्य साक्ष्य नहीं मिलता। सोम के कतिपय जिज्ञासु अन्वेषक विद्वान् भाषाविज्ञान के आधार पर ईरानियन 'होम' को 'सोम' का समानार्थवाचक मानकर एफेड्रा-प्रजातियों को, जिन्हें उनके मत में कहीं-कहीं स्थानिक लोग 'होम' कहते हैं, 'सोम' संज्ञा की मान्यता के पक्षपाती हैं। अतः केवल कामचलाऊ दृष्टिकोण से यहाँ सोमसंज्ञा का व्यवहार प्रश्नवाचक चिन्ह के साथ किया गया है। वास्तव में वैदिकसाहित्य में भी 'सोम संज्ञा' प्रारम्भ में चाहे एक वनस्पति का वाचक भले ही रही हो, किन्तु परवर्ती साहित्य स्वयं परम्परा में यह जाति नाम की भाँति उन सभी वनस्पतियों का सामान्यरूप से वाचक हैं, जो भिन्न-भिन्न समयों में सोम के प्रतिनिधि (*substitute*) के रूप में प्रयुक्त होती थीं। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में 'उशना' को सोमकी मान्यता दी गयी है। तदनन्तर इस प्रकार की मान्यता का साक्ष्य भारतीय शास्त्र एवं परम्परा में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। मैंने इसके सर्वाधिक सम्भाव्य एवं मान्य वानस्पतिकविनिश्चय का प्रयास किया है, और एतत्सम्बन्धी शोधपत्र भी प्रकाशित हो चुका है। (*Contribuiion of Unani Materia Medicas to the Indentification of Vedic–Plants with Special Reference to UŚANĀ of the Śatapatha Brahmana–Indian Journal of History of Science, 16 (1), May, 1981, pp. 41-46*)।

एफेड्रा में प्रबल श्वासनलिकाविस्फारककर्म, (*broncho–dilator*) होने से यह दमा के दौरे में तुरन्त प्रभावी होता है। अतः इसका समावेश चिकित्सा व्यवहार में किया गया है। (लेखक)

स्वर्णक्षीरी (सत्यानासी) ?

नाम। सं०—(स्वर्णक्षीरी ?)। हिं०—सत्यानाशी(सी), भड़भाँड़। बं०—सियालकाँटा। म०—कांटेधोत्रा, पिंवला धोत्रा। गु०—दारुडी। सिं०—खरकां ढेरी। अं०—(*Yellow Poppy*)। ले०—आर्गेमोने मेक्सीकाना (**Argemone mexicana** *Linn,*)।

वानस्पतिक-कुल। अहिफेन-कुल (पापावेरासे : *Papaveraceae*)।

प्राप्तिस्थान—'भड़भाँड़' उत्तरी अमेरिका के मेक्सिकोप्रान्त तथा पश्चिमी-द्वीपसमूह का अदिवासी पौधा है। किन्तु अब सर्वत्र भारतवर्ष में (विशेषतः सड़कों के किनारे तथा ऊसर-परती भूमि में) नैसर्गिक रूप से पाया जाता है।

संक्षिप्त-परिचय। 'भड़भाड़' के ३० सें० मी० से १.२ मीटर या १ फुट से ४ ऊँचे, कोमलकाण्डीय, कँटीलेक्षुप होते हैं। इसके पत्र, काण्ड, पुष्प तथा फल प्रायः सभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवयव काँटेदार होते हैं, और उनके तोड़ने पर पीला-दूध निकलता है। पत्तियाँ ७.५ से १७.५ सें० मी० या १ इञ्च से ७ इञ्च लम्बी, अवृन्त, आधेदूर तक काण्ड-संसक्त (*amplexicaul*), किनारे लहरदार-खण्डित (*sinuate-pinnatifid*) होती हैं, जिनका पृष्ठ श्वेत-हरितचित्रित होता है। पुष्प २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० या (१ इञ्च से ३ इञ्च चौड़े) पीलेरंग के तथा फल सामान्यस्फोटी प्रकार का १८.७५ मि० मी० से ३.७५ सें० मी० ¾ इञ्च से (१½ इञ्च) लम्बा, रूपरेखा में अण्डाकार-आयताकार तथा कण्टकित होता है, जिसमें सरसोंकी भाँति किन्तु कुछ बड़े कालिमालिये भूरेरंग के गोल-गोल बीज होते हैं। भड़भाँड़ के बीजों एवं बीजों से प्राप्त तैल का उपयोग व्यवसायीलोग सरसों एवं सरसों के तेल में मिलावट के लिए करते हैं।

उपयोगी अंग। मूल, बीज एवं बीजोत्थतैल (तथा क्षीर, पंचाङ्ग)।

मात्रा। बीजचूर्ण–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

तैल–१५ बूँद से ३० बूँद (रेचनार्थ), बाह्य प्रयोग के लिए यथावश्यक।

मूल–१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–भड़भाड़ की फलियाँ १८.७५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (¾ इञ्च से १½ इञ्च) लम्बी, अण्डाकार-आयताकार होती हैं, जिनपर अनेक छोटे-छोटे काँटे होते हैं। सूखनेपर फल अपने-आप फट जाते हैं। फलों में गाढ़े भूरेरंग अथवा कालिमालिये भूरेरंग के गोल-गोल कालेसरसों की तरह, किन्तु उससे बड़े, अनेक बीज भरे होते हैं। बीजों से एक तैल निकलता है, जो रखने पर कुछ समय के बाद लालिमा लिये भूरेरंग का हो जाता है। आपेक्षिकगुरुत्व (२५° तापक्रमपर)—०.९२०९। *Saponification Value*—१९०। *Iodine Value*—१२०। *Acid Value*—१२.०।

संग्रह एवं संरक्षणतैल को अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अँधेरे रखना चाहिए।

संगठन–भड़भाड़ में बर्बेरीन (*Berberine*) एवं प्रोटोपीन (*Protopine*) नामक क्षारोद पाये जाते हैं बीजों में (२२-३६%) तक स्थिरतैल (भड़भाड़ का तैल) पाया जाता है, जिसमें प्रधानतः ओलिईक एवं लिनोलीक एसिड्स के ग्लिसराइड्स होते हैं।

वीर्यकालावधि–तैल में दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, रस–तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–शीत। प्रधान कर्म–कफपित्तर, व्रणशोधन, व्रण-रोपण, कुष्ठघ्न, रेचक, रक्तशोधक, ज्वरघ्न, मूत्रल।

मुख्ययोग–स्वर्णक्षीरीतैल।

विशेष–(१) स्वर्णक्षीरीतैल मिश्रित सर्षपतैल का सेवन करनेवालों में प्रायः बेरी-बेरी रोगोत्पत्ति की अनुकूलता अधिक देखी जाती है। इसमें संचायीस्वरूप की विषाक्तता होती है। क्योंकि इस प्रकार के तेल का सेवन छोड़ देने पर भी काफी दिनों के बाद लक्षण प्रगट होते देखे जाते हैं। छोटे जन्तुओं में 'भड़भाड़' बहुत विषैला प्रभाव करता है, और वमन-अतिसार होकर जन्तु की मृत्युतक हो जाती है।

(२) चरकोक्त (सू० अ० ४) भेदनीयगण एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) श्यामादिगण तथा व्रणशोधन द्रव्यों (चि० अ० ८) में एवं अधोभागहर (सू० अ० ३९) गण के द्रव्यों में 'स्वर्णक्षीरी' का भी उल्लेख है।

वक्तव्य–स्वर्णक्षीरी का उल्लेख चरक, सुश्रुत, अष्टांग हृदय आदि आयुर्वेदीय संहिताओं में स्पष्टरूप से मिलता है। उल्लेखबारंबारिता अपेक्षाकृत चरकसंहिता में अधिक मिलती है, जिससे लक्षित होता है, कि प्राचीन सुदूर उत्तरपश्चिमी भारतीयक्षेत्र में यह सुविज्ञात एवं व्यवहार प्रचलित थी। इस सम्बन्ध में डल्हण का परिचयज्ञापक टिप्पण 'अनन्तासदृशपत्रा 'हियावलि' इति लोके' (सु० सू० ३९।४–डल्हणटीका) उल्लेखनीय है। संहिताओं की 'स्वर्णक्षीरी' वास्तव में यही प्रतीत होती है। संस्मरणावशेषस्वरूप कश्मीर में आज भी 'हिरवी' संज्ञा के रूप में उक्त 'हियावली' आज भी संजीवित है। उक्तसंज्ञा से अभिप्रेत वनस्पति का विनिश्चय एउफ़ार्बिआ थाम्सोनिआना **Euphorbia thomsoniana** *Boiss.* (*Family*: *Euphorbiaceae*) से किया जाता है। इससे पीला-आक्षीर (*yellow latex*) निकलता है। लगता है, संहितापरवर्तीकाल से ही अनुपलब्धि के कारण शास्त्र एवं परम्परा में उभयतः यह भ्रामकस्थिति में पड़ी हुई है। परिणामतः पीलेदूध वाली अन्य वनस्पतियों का अनुमोदन एवं व्यवहार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रचलन चल पड़ा है 'भड़भाड़' भी एक बाह्यागत (*exotic*) वनस्पति है, जिसके वास्तविक स्वर्णक्षीरी होने की सम्भाव्यता प्रायः नहीं के बराबर है। इस आलेख में भी स्वर्णक्षीरी के जो गुण-कर्म एवं संहितोक्त उद्धरण दिये गये हैं, उन्हें भी 'भड़भाड़' से सम्बन्धित न समझकर उक्त प्राचीन स्वर्णक्षीरी के ही परिपेक्ष्य में समझना चाहिए। (लेखक)

हंसराज (हंसपदी)

नाम। सं०–हंसपदी। हि०–हंसराज, समलपुत्ती। भारतीय बाजार–मोबारक। बं०–गोयालियालता। म०, गु०–हंसराज। संथाल–ककना, दोधारी। अ०–वरसियावशाँ। फा०–परसियावशाँ। अं०–मेडेन हेयर (*Maiden-Hair*)। ले०–आडिआंटुम लूनाटुम (**Adiantum lunatum** *Burm.*)। (२) आडिआंटुम वेनुस्टुम (**Adiantum venustum** *Don.*)।

वानस्पतिक-कुल। हंसपद्यादि-कुल (फिलिसेज *Filices*)।

प्राप्तिस्थान। आडिआंटुम लूनाटुम उत्तरभारत में सर्वत्र जलाशयों के पास एवं आर्द्र-छायादार जगह में स्वयं-जात उगती है। दक्षिणभारत में भी पहाड़ी ढालुओं पर पायी जाती है। यूनानीवैद्यक में 'परसियावशाँ' के नाम से जो औषधि व्यवहृत होती है, वह फारस से बम्बई बाजार में आती है, और प्रधानतः 'आडिआंटुम' का पचांङ्ग होती है। यह हिमालयप्रदेश में ९१४.४ मीटर से ३०४६ मीटर या ३,०००-१०,००० फुट की ऊँचाई पर, तथा अफगानिस्तान एवं फारस में प्रचुरता से होती है। शिमला में यह काफी पायी जाती है। 'हंसराजपंचाङ्ग' पंसारियों के यहाँ मिलता है।

संक्षिप्त-परिचय। 'हंसराज' की सुन्दर तथा छोटी अपुष्प वनस्पतियाँ पहाड़ी जंगलों की छायादार जगहों में होती हैं। अपने समुदाय की वनस्पतियों की तरह इनका काण्ड अन्तर्भूमिशायी होता है। केवल पत्तियाँ बाहर निकली रहती हैं। इनमें चारों ओर ८ अंगुल से १० अंगुल के सूत के से पतले गोल चिकने चमकीले ललाई लिये कालेडंठल फैलते हैं। इन डंठलों के दोनों ओर बंद मुट्ठी के आकार की अथवा धनिये के पत्र जैसी छोटी-छोटी कटावदार पत्तियाँ गुच्छी होती हैं। यह बूटी शाखा और पत्र सहित काम में आती है।

उपयोगी अंग। पंचाङ्ग।

मात्रा। चूर्ण–२ ग्राम से ६ ग्राम या २ माशा से ६ माशा। पानक तथा शर्बत–½ तोला से १ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा। (१) आंडिआंटुम लूनाटुस—पत्रदण्ड १० सें० मी० से १५ सें० मी० (४ इञ्च से ६ इञ्च) लम्बा, चमकीला, लालिमा लिये कालेरंग का होता है। पत्तियाँ (*fronds*) १५ सें० मी० से ३० सें० मी या ६ इञ्च से १२ इञ्च लम्बी, ७.५ सें० मी० या ३ इञ्च तक चौड़ी, सकृत्पक्षवत् (*simple-pinnate*), पत्रक (*pinnae*) कुछ-कुछ वृत्ताकार या अण्डाकार-आयताकार, १.२५ सें० मी० से ३.२५ सें० मी० या ½ इञ्च से १.३ इञ्च लम्बे तथा उनके अग्रकी ओर का किनारा सरल और आधार की ओर का किनारा घुलावदार होता है। अधस्तल पर किनारे बीजाणुकोष (*sporogia*) होते हैं। (२) आडिआंटुम वेनुस्टुम–पत्तियाँ, ३-४–पक्षवत्, पक्षिका (*pinnules*) छोटे-छोटे वृन्तकयुक्त (*shortly petiolulate*), अभिलट्वाकार गोलाकार होती हैं। ऊर्ध्वधारा पर २-३ कटाव से होते हैं, जिनके नीचे सोरस (*sori*) होते हैं। पत्रदण्ड चिकना चमकीला आबनूसीरंग का होता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट–कहीं-कहीं आडिआंटुम कापीलुस-वेनेरिस (**Adiantum capillus-veneris** *Linn.*) जाति का भी प्रयोग 'हंसराज' के नाम से होता है। यह उत्तरीभारत तथा दक्षिण में मद्रास प्रान्त में पाया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण–छायाशुष्क पंचाङ्ग को मुखबंदपात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखना चाहिए।

वीर्यकालावधि। ६ मास में इसका वीर्यकम होने लगता है, और १ वर्ष में पूर्णतया नष्ट हो जाता है।

स्वभाव। गुण–गुरु, स्निग्ध। रस–मधुर, तिक्त, कषाय। विपाक–मधुर। वीर्य-शीत। प्रधान कर्म–वातपित्तशामक, व्रणरोपण, ग्राही, रक्तशोधक, रक्तपित्तशामक, कफ-निस्सारक, कण्ठ्य, कास-श्वासहर, मूत्रल, बल्य, दाह-प्रशमन आदि। यूनानीमतानुसार हंसराज (परसिया-वशाँ) अनुष्णाशीत, तथा सौदा–पित्त–श्लेष्म विरेचनीय, प्रमाथी, कफपाचन, एवं प्रसेकहर होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुख्य योग। हंसपदी-पानक (शर्बत परसियावशाँ)।

विशेष—चरकोक्त (सू० अ० ४) कण्ठ्य महाकषाय एवं मधुरस्कन्ध (वि० अ० ८) तथा सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३८) विदारिगन्धादिगण के द्रव्यों में 'हंसपदी' का भी पाठ है।

हड़जोड़ (अस्थिशृंखला)

नाम। सं०—अस्थिशृंखला, अस्थिसंहारी, वज्रवल्ली। हिं०—हड़जोड़। बं०—हाडजोडा, हाडभांगा। म०—कांडवेल। गु०—हाडसांकल। ले०—वीटिस क्वाड्रांगुलारिस Vitis quadrangularis *Wall.* (पर्याय—*Cissus quadrangularis L.*)।

वानस्पतिक-कुल। द्राक्षा-कुल (वीटासे : *Vitaceae ar Ampelidaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्तभारतवर्ष में उष्णप्रदेशों में 'हड़जोड़' की लताएँ की पायी जाती हैं। बगीचों एवं खेतों की मेड़ पर यह लगायी भी जाती है।

संक्षिप्त-परिचय। हड़जोड़ की लंबीलता होती है, जिसका काण्ड चिकना एवं हरेरंग का, मांसल तथा चतुष्कोणीय (चौपहल) और पर्वों पर संकुचित एवं संयुक्त-सा होता है। संधियों पर वितान (तन्तु) होते हैं, और नवीन काण्ड-संधियों पर तंतुओं के दूसरी ओर (एकान्तरक्रम से स्थित) २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० (१ इञ्च से २½ इञ्च) बड़ा और चौड़ी पत्तियाँ होती हैं, जो काफी मोटी तथा मांसल, प्रायः तीनखण्डयुक्त, रूपरेखा में हृद्वत्-लट्वाकार, सूक्ष्म दन्तुरधारवाली तथा छोटे पर्णवृन्त युक्त होती हैं। अनुपत्र (*stipules*) मोटे, अर्धचन्द्राकार तथा सरलधारवाले होते हैं। वर्षा के अन्त में पुष्प लगते हैं, जो हरित-श्वेतवर्ण के होते हैं। पुष्पवाहकदण्ड छोटा होता है, जिसपर पुष्प छत्रकवत् स्थित होते हैं। पुष्पों में दलपत्र एवं पुंकेशर संख्या में ४ होते हैं। फल गोल, बड़ी मटर के बराबर, बीज मांसल तथा रक्तवर्ण होते हैं। प्रत्येक फल में अभिलट्वाकार रूपरेखा का एक बीज होता है, जो बाह्यतः गाढ़े भूरेरंग का होता है।

उपयोगी अंग। ताजेकाण्ड एवं पत्र।

मात्रा। स्वरस (मौखिकसेवन के लिए)—१ तोला से २ तोला।

स्थानिकप्रयोग के लिए—आवश्यकतानुसार।

संगठन—हड़जोड़ में कैल्सियम् ऑक्जलेट, केरोटीन (*Carotene*) एवं काफीमात्रा में विटामिन 'सी' (*Ascorbic acid*) पायाजाता है।

स्वभाव। गुण—लघु, रूक्ष। रसलमधुर। विपाक-अम्ल। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—कफवातशामक, पित्तवर्धक; स्तम्भन एवं अस्थिसंधानीय, दीपन-पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, रक्तशोधक एवं रक्तस्तम्भक, अर्शनाशक; एवं वृष्य आदि। अस्थिभग्न एवं अभिघातजशोथ आदि में हड़जोड़ के काण्ड एवं पत्रकल्क का लेप करते हैं, अथवा इससे सिद्धतैल का अभ्यङ्ग करते हैं। स्थानिकप्रयोग के साथ-साथ उक्त अवस्थाओं में इसका स्वरस भी पिलाते हैं। अग्निमांद्य, अजीर्ण, अर्श, वातरक्त एवं उपदंश आदि में भी इसका मौखिकसेवन किया जाता है। नकसीर में इसके स्वरस का नस्य देते हैं, तथा कर्णस्राव में स्वरस कर्णबिंदु के रूप में प्रयुक्त होता है।

मुख्य योग—अस्थिसंहारतैल।

हरड़ (हरीतकी)

नाम। सं०—हरीतकी, अभया, पथ्या, शिवा, अव्यथा। हिं०—हड़, हरड़, हरें, हर्रे। बं०—हर्तकी। पं०—हर। म०—हरड़ा। गु०—हरड़े। ने०—हैरडो। ते०—करक्काय। ता०—कडुक्काय। अं०—चेबुलिक माइरोबेलन्स (*Chebulic Myrobalans*)। ले०—टेर्मिनालिआ चेबूला (**Terminalia chebula** *Retz.*)।

वानस्पतिक-कुल। हरीतकी-कुल (कॉम्ब्रेटासे *Combretaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्तभारत विशेषतः कांगड़ा, बम्बई और बंगाल में २५४.६ मीटर से ९१४.४ मीटर या १,००० फुट से ३,००० फुट की ऊँचाई के प्रदेशों में।

संक्षिप्त-परिचय—वृक्ष—ऊँचा। प्रकांड—लम्बा, सीधा, पुष्ट तथा शाखावान्। शाखा-कोमल, गोल। पत्र—आकार में वासकपत्र के समान, ७.५ सें० मी० से २० सें० मी० या ३ इञ्च से ८ इञ्च लम्बा, ३.७५ सें० मी० से ६.२५ सें० मी० या १½ इञ्च से २½ इञ्च चौड़ा, मसृण, हरित तथा लगभग अभिमुखक्रम से स्थित। पर्णवृन्त—लगभग २.५ सें० मी० या १ इञ्च तक। पुष्प श्वेताभ तथा लम्बी मञ्जरियों में। पुष्पागमकाल—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बसंत। फल–२.५ सें० मी० से ५ सें० मी० या १ इंच से २ इंच लम्बा तथा कठोर।

उपयोगी अंग–फल साधारणतया तीन रूपों में प्राप्त होते हैं–(१) पक्वफल या बड़ीहरड़–इसे 'अमृतसरी हरड़' भी कहते हैं। यह फल पूर्णतया प्रगल्भ एवं परिपक्व होता है। (२) अर्धपक्व फल–इसे 'पीलीहरड़' कहते हैं। इसका वर्ण भूरापीला, लम्बाई लगभग २.५ सें० मी० से ३.७५ सें० मी० या १ इञ्च से १½ इञ्च तक तथा चौड़ाई ½ इंच से १ इंच तक होती है। लम्बाई की दिशा में फल के बाह्यतल पर ५-६ उन्नत रेखाएँ या धारियाँ होती हैं, जो स्पर्श में कठोर होती हैं। इसका गूदा ३ मि० मी० से ४ मि० मी० या ⅛ इंच से ⅛ इंच मोटा, बीज से असंसक्त, गंधहीन तथा स्वाद में कसैला होता है। (३) अपक्वफल–इसे 'छोटी हरड़' या 'जंगी हरड़' कहते हैं। इसका वर्ण भूराकाला, तथा आकार में पीली हरड़ से छोटा होता है। दोनों सिरों पर दबा हुआ तथा एक सिरे पर वृन्तक का चिह्न होता है। लम्बाई में उन्नत रेखाएँ या धारियाँ होती हैं। छोटी हरड़ प्रायः गन्धहीन और स्वाद में कषाय तथा किंचित् तिक्त होती है।

मात्रा। छोटी हरड़ (घृत में भुनी हुई) चूर्ण १.५ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा ३ माशा।

बड़ी हरड़ (विरेचनार्थ) चूर्ण–३ ग्राम से ६ ग्राम या ३ माशा से ६ माशा।

बड़ी हरड़ (रसायनार्थ) चूर्ण–१.५ ग्राम से ३ ग्राम या १½ माशा से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–१½ तोले से अधिक वजन की, भरी हुई, छिद्ररहित, छोटी गुठली और बड़े वक्कलदलवाली हरड़ उत्तम मानी गयी है। औषधि कार्य के लिए ऐसी ही हरड़ का प्रयोग करना चाहिए।

संग्रह एवं संरक्षण–उत्तम फलों को चैत–बैसाख में ग्रहणकर सुखाकर अनार्द्र और शीतल स्थान में बन्दडिब्बों में रखना चाहिए।

संगठन। टैनिक अम्ल (२० प्रतिशत से ४० प्रतिशत तक), गैलिक अम्ल और राल आदि।

वीर्यकालावधि। १ वर्ष से ३ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष। रस–लवण रस को छोड़ कर शेष सभी पाँचो रस (किन्तु कषायप्रधान)। विपाक–मधुर। वीर्य–उष्ण। प्रभाव–त्रिदोषहर। प्रधानकर्म–दीपन, पाचन, मृदुरेचन (किन्तु स्विन्नहरीतकी ग्राही), रसायन, मेध्य आदि।

मुख्ययोग। अभयादिक्वाथ, अभयादिचूर्ण, अभयारिष्ट, इतरीफलसगीर एवं त्रिफला आदि।

विशेष। सुश्रुतोक्त परूषकादि, त्रिफला, आमलक्यादि एवं त्रिवृतादिगण के द्रव्यों में 'हरीतकी' भी है।

वक्तव्य–(१) 'हरीतकी' एवं 'त्रिफला' का भूरिशः उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं में मिलता है, जो अपेक्षाकृत चरक-संहिता में अधिक है। इससे लक्षित होता है, कि प्राचीन सुदूर उत्तरपश्चिमी भारतीय–सीमाक्षेत्र (जो अब अफगानिस्तान, पाकिस्तान आदि में सम्मिलित है) में हरीतकी सुविज्ञात एवं व्यवहार-प्रचलित थी। लगता है, चिकित्सा में समावेश के पूर्व भी यह लोक प्रचलित थी, जिसका साक्ष्य हमें पाणिनि के अष्टाध्यायी से मिलता है। अष्टाध्यायी में 'हरीतक्यादिभ्यश्च (४. ३. १६७)' करके स्वतंत्र सूत्र ही है। उक्त सूत्र के आदेशानुसार 'हरीतकी' संज्ञा का व्यवहार वृक्ष के साथ-साथ 'फल' के लिए भी मान्य किया गया है, जब कि संस्कृतव्याकरण की सामान्य मान्यता के अनुसार फलवाचक पद 'हरीतकं' होना चाहिये था। यही स्थिति 'त्रिफला' की भी है। पाणिनि के साक्ष्य से इनके एतावत् लोकव्यवहृत होने का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संकेत मिलता है।

(२) आयुर्वेदीय निघण्टुओं में फलों के आकार-प्रकार, रंग-रूप, छोटे-बड़े के आधार पर विशिष्ट गुणयुक्त अनेक भेदोपभेद बताये गये हैं। किन्तु तद्वत् वानस्पतिक प्रजातियाँ नहीं पायी जातीं। सम्भवतः यह भेद स्थानभेद तथा फलों की पक्वापक्व एवं अर्धपक्वावस्थाओं के कारण होते हैं। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है, कि विन्ध्य के जंगलों में हरीतकी के फल प्रायः अपेक्षाकृत छोटे तथा रंग में भी मटमैले या काले होते हैं। किन्तु हिमालय में हरीतकी के फल बहुत बड़े तथा रंग में भी पीले (ज़र्द) होते हैं। बाजारों में भी जो 'काबुलीहड़' के नाम से हरीतकी मिलती है, वह प्रायः इसी स्वरूप की होती है। आरोपितवृक्षों के पक्वफल भी बड़े एवं पीले होते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

(३) अभयारिष्ट के निर्माण में आरोपितवृक्षोंके बिना सुखाये प्रगल्भ (*mature*) बड़े फलों का प्रयोग श्रेयष्कर है। (लेखक)

हरमल

नाम। हिं०, बम्ब०, बं०—इस्बंद, हरमल। पं०—हुर्मुल। म०—हरमल। गु०—हरमर, हरमल, इस्पन्द, हर्मरो। अ०—ह (हु) रमल, हुर्मुल। फा०—इस्पंद,। अं०—सीरिअन रू (*Syrian Rue*)। ले०—पेगानुम हर्माला (**Peganum harmala** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। जम्बीर-कुल (रूटासे : *Rutaceae*)।

प्राप्तिस्थान—हरमल ईरान का आदिवासी पौधा है। सम्प्रति बलूचिस्तान, बजीरिस्तान, कुर्रमघाटी, सिंध, कच्छ, पंजाब, कश्मीर, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा दक्षिण के पठार एवं कोंकण आदि में भी होता है। इसके बीज पंसारियों के यहाँ बिकते हैं। देशी-उपज के अतिरिक्त इसका आयात फारस से भी होता है।

संक्षिप्त-परिचय। हरमल के ३० सें०मी० से ९० सें०मी० या १ फुट से ३ फुट ऊँचे गुल्म स्वभाव के बहुवर्षायु शाकीय-पौधे होते हैं। इसका भौमिकभाग तो बहुवर्षायु होता है, किन्तु वायव्यभाग फलपाकान्त होता है। शाखाएँ-प्रशाखाएँ द्वि-विभक्त होतीं तथा अन्ततः समशिख रूप से स्थित प्रतीत होती हैं। पुष्प सफेदरंग के तथा सवृन्त या अवृन्त होते हैं, और एकलक्रम से स्थित होते हैं। फल (*capsule*) गोलाकार, व्यास में ४.१६ मि० मी० से ८.३ मि० मी० या $\frac{1}{6}$ इञ्च से $\frac{1}{3}$ इञ्च, स्पष्टतः त्रिखण्डीय और त्रिकोष्ठीय होता है। प्रत्येक कोष्ठ में १-१ त्रिकोणाकार धूसरवर्ण बीज होता है। इन्हीं बीजों का व्यवहार औषधि में होता है।

उपयोगी अंग—बीज

मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—हरमल के बीज २.५ मि० मी० या $\frac{1}{10}$ इंच से लेकर ४.१६ मि० मी० या $\frac{1}{6}$ इञ्च तक लम्बे, तथा १.५ मि० मी० से ३.१ मि० मी० ($\frac{1}{16}$ इञ्च से $\frac{1}{8}$ इञ्च) तक चौड़े, रूपरेखा में नानारूप-कोणाकार (*irregularly angular*) तथा मटमैलापन लिये हल्के भूरेरंग के होते हैं। बाजरू बीजों में प्रायः वृन्त तथा बाह्यकोश एवं फलों के अवशेष भी मिले होते हैं। अनुलम्ब दिशा में बीजों को काटने पर अन्दर खाकस्तरी सफेद रंग का तैलीय भ्रूणपोष (*endosperm*) दिखाई देता है। हरमल के बीज स्वाद में तिक्त होते हैं, तथा इनको कुचलने पर तम्बाकू जैसी उग्र मदकारीगंध आती है। इसके बीजों को कुचल कर ऐल्कोहल् या जल में भिगोने पर विलयन में नीली आभा आती है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—दक्षिण भारत में कहीं-कहीं मेंहदी के बीजों को 'इस्पंद' नाम से बेचते हैं।

संग्रह एवं संरक्षण—बीजों को अन्य अपद्रव्यों से साफ कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में संरक्षित करें।

संगठन—हरमल के बीजों में हर्मलीन, हर्मीन, हर्मेलोल, हर्मेगागीन नामक ऐल्केलाइड्स पाये जाते हैं। मिलाकर बीजों में ४% तक एल्केलायड्स पाये जाते हैं, जिनमें ६६%हर्मलीन होता है। इनके अतिरिक्त रंजकतत्त्व युक्त एक राल भी मिलता है, जिसमें भांग जैसी मादक गंध होती है।

वीर्यकालावधि—१ से २ वर्ष।

स्वभाव। हरमल अति उष्ण एवं रूक्ष होता है। यह आक्षेपहर घादक, स्वापजनन, वेदनास्थापन, आर्तवजनन, स्तन्य, बाजीकर, कोष्ठवातप्रशमन, कृमिघ्न, तथा वातकफनाशक होता है।

हल्दी (हरिद्रा)

नाम। सं०—हरिद्रा, रजनी, निशा, गौरी। हिं०—हलदी, हल्दी, हरदी। बं०—हलुद। म०—हलद। गु०—हलदर। पं०—हरदल, हरधल। ते०—पसुपु। अ०—रूकुस्सफर। फा०—ज़र्दचोब (ब:), दारज़र्द। अं०—टर्मेरिक (*Turmeric*), टर्मेरिक राइजोम (*Turmeric Rhizome*), टर्मेरिक रूट (*Turmeric Root*)। (क्षुप)। ले०—कुर्कुमा डोमेस्टिका **Curcuma domestica** *Vahl.* (पर्याय—*C. longa L.*)।

वानस्पतिक-कुल। आर्द्रक-कुल (*Zingiberaceae*)।

प्राप्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष में बिहार, मद्रास, बंगाल एवं बम्बई प्रान्त में लम्बे परिमाण में इसकी खेती की जाती है। सर्वत्र हल्दी पंसारियों के यहाँ मिलती है। फसल में कच्चीहल्दी तरकारी बाजारों में बिकती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्तपरिचय—हल्दी के बहुवर्षायु (वर्षानुवर्षी) स्वभाव के कोमल-काण्डीय (*perennial herb*) ६० सें० मी० से ९० सें० मी० या २ फुट से ३ फुट ऊँचे पौधे होते हैं, जो आपाततः देखने में अदरक के पौधों की भाँति लगते हैं। वायव्यभाग में प्रधानतः पत्तियों का पुंजमात्र होता है, जो ३० सें० मी० से ४५ सें० मी० या १ फुट से १½ फुटतक लम्बी होती हैं। पत्रनाल भी प्रायः पत्र फलक के बराबर तथा कोशाकार-से (*sheathing*) होते हैं। पत्रफलक रूपरेखा में आयताकार-भालाकार अग्र एवं आधार दोनों तरफ उत्तरोत्तर कम चौड़े होते जाते हैं। पुष्पवाहकदण्ड १५ सें० मी० या ६ इंच तक लम्बा होता है, जो प्रायः कोशाकार पत्रनालों से आवृत होता है। पुष्प पीतवर्ण के सवृन्तकाण्डज मंजरियों में निकलते हैं। भौमिककाण्ड गाँठदार होता है, जिससे सूत्राकार जड़ें निकली होती हैं। प्रायः ९-१० महीने में फसल तैयार हो जाती है। जब नीचे की पत्तियाँ सूख कर पीली पड़ जाती हैं, तब कन्द खोदकर पृथक् कर लिये जाते हैं। बाजारों में भेजने के पूर्व रंग-रूप को ठीक करने के लिए इनको संस्कारित भी करते हैं। हल्दी का मुख्यकन्द प्रायः गोलाकार गाँठदार होता है, जिससे छोटी अंगुली की भाँति लम्बगोल शाखाएँ लगी होती हैं। व्यवसायी प्रायः इन दोनों प्रकार की गाँठों को पृथक्-पृथक् बेचते हैं। 'लम्बीहल्दी' गोल की अपेक्षा अधिक अच्छी समझी जाती है।

उपयोगी अंग—कन्दाकार भौमिक-काण्ड।

मात्रा। चूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ से ३ माशा।
स्वरस—१ से २ तोला।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में हल्दी की गाँठें दो प्रकार की मिलती हैं—(१) गोल (*Round Turmeric*) तथा (२) लम्बी (*Long Turmeric*)। गोलकन्द रूपरेखा में लट्वाकार-आयताकार या सेब के आकार के (*pyriform*) होते हैं। चौड़ाई प्रायः लम्बाई की आधी होती है। लम्बीहल्दी १८.७५ मि० मी० से ५ सें० मी० (¾ इंच से २ इंच) तक लम्बी १ सें० मी० से १.८७५ सें० मी० (¾ इञ्च से ¾ इञ्च) तक मोटी होती है। हल्दी की उक्त गाँठें बाहर से पीलेरंग की अथवा पीताभभूरे रंग की होती हैं। इस पर जगह-जगह टूटी हुई जड़ों के चिह्न होते हैं। गाँठों पर अनेक गोल-गोल वलयाकार या मुद्रिकाकार चिह्न (*annulations*) होते हैं। तोड़ने पर टूटेहुए तल वत्सनाभ की तरह टूटते हैं (*fracture horny*), तथा अन्दर का भाग गाढ़े पीले-रंग का अथवा रक्ताभ-पीतवर्ण का होता है। हल्दी में एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में यह तिक्त एवं सुगंधित होती है। मुखमें चाबने पर लालास्राव पीलेरंग का हो जाता है। हल्दी-चूर्ण रक्ताभ-पीतवर्ण का होता है। उत्तम हल्दी में उड़नशीलतेल—कम-से-कम ४% होता है। ऐल्कोहल में विलेयसत्व—कम-से-कम ८%। अम्ल में अघुलनशील भस्म—अधिकतम ५%। जलाने पर भस्म अधिकतम ९% तक प्राप्त होती है। औषधीय प्रयोग के लिए 'लम्बीहल्दी' अधिक उत्तम समझी जाती है।

परीक्षण। (१) संकेन्द्रित गंधकाम्ल (*Sulphuric Acid*) अथवा गंधकाम्ल एवं ऐल्कोहल (९०%) के मिश्रण में हल्दी डालने से यह गाढ़े लालरंग की हो जाती है। (२) अब इसमें टंकणाम्ल (बोरिक एसिड *Boric Acid*) डालने से रंग में परिवर्तन होकर रक्ताभभूरा (*reddish-brown*) हो जाता है। क्षार (*Alkalies*) डालने पर पुनः यह बदल कर हरिताभनीला (*greenish-blue*) हो जाता है। (३) फिल्टरपेपर का एक टुकड़ा लेकर हल्दी के सुरासार-तत्व (*Alcoholic Extract*) से तर कर सुखा लें। अब इसे पुनः बोरिकएसिड सॉल्यूशन से तर कर उसपर थोड़ा हाइड्रोक्लोरिकएसिड डालें और फिल्टर पेपर को फिर सुखा लें। इस प्रकार संस्कारित करने से फिल्टर पेपर का रंग गुलाबी या भूरापनलिये लाल हो जाता है। पुनः यह क्षारीयद्रव्य के सम्पर्क से गाढ़ानीला या हरिताभ-काला (*Greenish-black*) हो जाता है। शक्तिप्रमापन—एतदर्थ प्रतिशतक उत्पत्तैल की मात्रा का प्रमापन किया जाता है।

संग्रह एवं संरक्षण—हल्दी चूर्ण को अच्छी तरह मुखबन्द पात्रों में रखकर अँधेरी जगह में रखना चाहिए, और पात्र के अन्दर नमी या आर्द्रता (*moisture*) नहीं पहुँचनी चाहिए।

संगठन—हरिद्रा में कर्कुमिन ($C_{21}H_{20}O_4$) नामक स्फटिकीय स्वरूप का पीतरंजकतत्त्व पाया जाता है, जो ऐल्कोहल में घुल जाता है, और विलयन गाढ़े पीले-रंग का प्राप्त होता है। क्षारों के सम्पर्क से उक्त विलयन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रक्ताभ-भूरे रंग का हो जाता है। कन्दोंमें (४% से ६%) उत्पत्तैल पायजाता है, जिसमें कर्पूर-जैसी हल्की सुगन्धि आती है। तैल का मुख्य घटक कर्कुमेन (*Curcumen*) नामक टर्पीन (*Terpene*) होता है। इनके अतिरिक्त (२४% तक) स्टार्च एवं (१०%) तक ऐल्बुमिनजातीय तत्त्व (*Albuminoids*) भी पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि—१ वर्षतक।

स्वभाव। गुण—रुक्ष, लघु। रस—तिक्त, कटु। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। प्रधानकर्म—कफवातशामक, पित्तरेचक एवं पित्तशामक, वेदनास्थापन, रुचिवर्धक, पित्तरेचन, कटु पौष्टिक, आमपाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, रक्तप्रसादन, रक्तवर्धक एवं श्लेष्मनिःसारक, एवं रक्तस्तम्भक, कफघ्न, मूत्रसंग्रहणीय, प्रमेहघ्न, मूत्रविरजनीय, गर्भाशय, स्तन्य एवं शुक्र शोधन, कुष्ठघ्न, विषघ्न। बाह्यतः स्थानिक प्रयोगसे शोथहर, वेदनास्थापन, वर्ण्य, कुष्ठघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण एवं लेखन होता है। यूनानीमतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है। अहितकर-हृदय के लिए। निवारण—बिजौरा और नीबू का रस।

मुख्य योग—हरिद्राखण्ड।

विशेष—हरिद्राचूर्ण तथा स्वरस विभिन्न प्रमेहों में स्वतंत्र रूप से एकौषधि के रूप में, अथवा अनुपान के रूप में व्यवहृत होता है।

चरकोक्त (सू० अ० ४) लेखनीय, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न तथा विषघ्न महाकषाय एवं तिक्तस्कन्ध (वि० अ० ८) और शिरोविरेचन द्रव्यों (सू० अ० २) में तथा सुश्रुतोक्त हरिद्रादि, मुस्तादिगण (सू० अ० ३८) और श्लेष्म संशमनवर्ग (सू० अ० ३९) में 'हरिद्रा' की भी गणना है।

वक्तव्य। (१) हरिद्रा दक्षिण-एशियाईक्षेत्र का आदिवासी पौधा है। यद्यपि भारतवर्ष में जंगलीरूप से नहीं पायी जाती, किन्तु लगता है, इसका प्रसार पुराकाल में अस्त्रिक (*Austric*) जनजातियों द्वारा किया गया था। सम्भवतः प्रोटो-आस्ट्रलायड जाति को भी इसका ज्ञान था, और वह इसका व्यवहार मसाले के रूप में करती थी। यह संज्ञा भी सम्भवतः अस्त्रिक-स्रोतागत प्रतीत होती है। प्राचीन उत्तरपश्चिम भारतीयसीमा-प्रान्तीय क्षेत्र में यह विज्ञात एवं लोकप्रचलित थी। मूलतः इसकी मान्यता वस्त्ररंजन (*textile dyeing*) एवं प्रसाधन-द्रव्य के रूप में थी। 'हरिद्रा' का परिगणन अष्टाध्यायी के 'किशरादिगण (४, ४-५३) में भी है। तत्परवर्ती कौटिलीय-अर्थशास्त्र में विषोदक-आघातजन्य विसंज्ञता में निर्दिष्ट 'संज्ञा-स्थापन योग' में भी हरिद्रा का समावेश है। आयुर्वेदीय संहिताओं तथा तत्परवर्ती शास्त्रीय एवं लोकव्यवहार में अद्यावधि हल्दी (<हरिद्रा) एक सुविज्ञात एवं दैनिक व्यवहार में प्रचलित द्रव्य है। चिकित्साव्यवहार के अतिरिक्त घर-घर में आहार व्यञ्जन एवं घरेलू चिकित्सा में हरिद्रा दैनिकव्यवहार का द्रव्य है।

(२) आधुनिक शोध-अध्ययन में हरिद्रा में प्रबल ऐन्टी-एलर्जिक गुणकर्म पाया गया है। एतदर्थ 'हरिद्राखण्ड' इसका उपयुक्त योग है। 'हरिद्राखण्ड' के निर्माण में कच्ची हल्दी का प्रयोग अधिक श्रेयष्कर है।

(लेखक)

हाऊबेर (हपुषा)

नाम। सं०—हपुषा, हवुषा। हिं०—हाऊबेर, हूबेर। पं०—अबहल, हाऊबेर, पामा। द०, बम्ब०—अबहल। क०—यठुर। अ०—हब्बुल अरअर, समूरतुल् अरअर, अबहल्। फा०—समरसरोकोही, तुख्मरहल। अं०—जुनिपर बेरीज (*Juniper Berries*)। ले०—जूनिपेरुस फ्रूक्टुस (*Junipers Fructus*)। (वृक्षका नाम)—जूनिपेरुस कोम्मूनिस (**Juniperus communis** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। देवदार्वादि-कुल (कोनिफ़ेरे: *Coniferae*)।

प्राप्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम हिमालय में कुर्रम की घाटी तक १५२३ मीटर से ४२६७ मीटर या ५,००० फुट से १४,००० फुट की (सामान्यतः ३३१७.७ मीटर से ४२६७ मीटर या ११,००० से १४,००० फुट) ऊँचाई तक इसके जंगली वृक्ष पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त फारस यूरोप एवं उत्तरी अमरीका में भी यह प्रचुरता से होता है।

संक्षिप्त-परिचय। हपुषा की घनी झाड़ियाँ होती हैं, जिनमें चतुर्दिक् शाखाएँ फैलती हैं, जो ऊपर की ओर न बढ़कर प्रायः नम्य स्वरूप से बढ़ती हैं। पत्तियाँ ६.२५ मि० मी० से १८.७५ मि० मी० या ¼ इंच से ¾ इंच तक लम्बी, रेखाकार (*linear*), अग्रपर नुकीली (*sharply*

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

pointed), देखने में सरो की पत्तियों की तरह तथा १–३ के चक्र में (*in whorls of 3*) निकलती हैं। शाखा के साथ इनकी स्थिति समकोण पर होती है। ऊर्ध्वतल किंचित् खातोदर, चिकना तथा फीकेरंग का अथवा नीलाभ-श्वेतवर्ण का तथा अधःपृष्ठ या पृष्ठ तल (*dorsal surface*) गाढ़े हरेरंग का तथा उन्नतोदर (*convex*) होता है। पुष्प पत्रकोणोद्भूत नम्र अवृन्त-काण्डज (*catkins axillary*) पुष्पव्यूहों में निकलते हैं। पुष्प एकलिंगी जो पृथक्-पृथक् पौधों पर (*dioecious*) होते हैं। फल लगभग गोल (*subglobose*) १० मि० मी० या $\frac{2}{5}$ इंच तक लम्बा अर्थात् जंगलीबेर के बराबर तथा लालरंग का होता है, जिसके भीतर (१–३) तक बीज होते हैं। फल प्रायः अगस्त-सितम्बर के महीनों में पकते हैं, और पकने पर इनका छिलका नीलाभ काले (*bluish-black*) वर्णका हो जाता है। औषधि में इन्हीं का उपयोग होता है।

उपयोगी अंग। पक्वफल एवं फलों से प्राप्त उड़नशील तैल।

मात्रा। चूर्ण–३ ग्राम से ५ ग्राम या ३ माशा से ५ माशा।

क्वाथ–१ तोला से २ तोला।

तैल–दीपनार्थ १ बूंद से २ बूंद (४ बूंद से ६ बूंद)।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा–'हाऊबेर' का बेरी (*berry*) प्रायः गोलाकार-सा (*sub-spherical berry-like*), व्यास में ५ मि०मी० से १० मि० मी० या $\frac{1}{5}$ इञ्च से $\frac{2}{5}$ इंच, बैंगनीरंग लिये कालेरंग की (*purplish-black*) तथा खाकस्तरीरंग के मुलायम क्षोद (*greyish waxy-bloom*) से आवृत होती है। शीर्षपर तीन परिखाएँ-सी भिन्न दिशाओं में जाती दिखाई (*tri-radiate furrows*) देती हैं। फल-मूल के साथ एक छोटा डंठल लगा होता है, जहाँ कोमल पत्रों अर्थात् निपत्र (*bracts*) के १–२ या ३ चक्र पाये जाते हैं। फल में १–३ तक लट्वाकार (*ovate*) बीज पाये जाते हैं, जिस पर कतिपय (६–१०) तैल ग्रथियाँ पायी जाती हैं। फलों में भूरेरंग का गूदा पाया जाता है, जिसमें तैलकोषाएँ (*oil cells*) पायी जाती हैं। अवहल में बल्सां-जैसी एक सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में किंचित् मधुर एवं तारपीनवत् चरपरा होता है।

कच्चे या अपक्वफल (*immature*) एवं विकृत फल	—अधिकतम १०%
विजातीय सेन्द्रिय-अपद्रव्य	— ,, १%
अम्ल में अघुलनशील अम्ल	— ,, २%

शक्तिप्रमापन (*Assay*)–चूँकि हाऊबेर की क्रियाशीलता इसमें पाये जाने वाले उड़नशीलतैल के ऊपर है, अतएव इसकी उत्तमता एवं शक्तिप्रमापन के लिए इसमें पाये जाने वाले तैल की प्रतिशतकमात्रा का प्रमापन किया जाता है। देशी-हाऊबेर में विदेशी की अपेक्षा उडनशीलतैल कम पाया जाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट। हिमालय-प्रदेश में उक्त हाऊबेर के अतिरिक्त इसकी एक और जाति पायी जाती है, जिसे जूनीपेरुस माक्रोपोडा (**Juniperus macropoda** *Boiss.*) कहते हैं। इसके फल अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। रासायनिक संघटन की दृष्टि से यह प्रथम जाति से मिलते-जुलते हैं। अतएव उसके स्थान में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

रोगन अरअर (ओलेउम जूनीपेरी *Oleum Juniperi* (*Ol. Juniper*) -ले०। ऑयल ऑव जूनिपर–अं०। यह रंगहीन या हराभनलिये हल्के पीलेरंग के धुँधले द्रव के रूप में प्राप्त होता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की सुगंधि पायी जाती है, तथा स्वाद में जलनयुक्त तिक्त (*burning bitter taste*) होता है।

आपेक्षिक-घनत्व—जूनीपेरुस माक्रोपोडा का तेल १५° तापक्रम पर ०.८४०–०.८५०। जूनीपेरुस कोम्मूनिस २०° तापक्रम पर ०.८६२–०.८९२।

Optical Rotation ३° से १८° (जू० माक्रो०)।
१° से १५° (जू० कोम्म०)।

Refractive Index–१,४७० से १.४८४। (जूनिपेरुस काम्मूनिस)। विलेयता—ताजा ज्यूनियर का तेल ४ गुने आयतन के ऐल्कोहल् (९५%) में विलेय होता है, और स्वच्छ विलयन बनता है। रखने से यह धीरे-धीरे गाढ़ा हो जाता है और विलेयता भी अपेक्षाकृत कम हो जाती है। बेंजीन, कार्बन-डाइसल्फाइड तथा क्लोरोफार्म में किसी भी मात्रा में मिल जाता (*miscible*) है।

संग्रह एवं संरक्षण–पक्व फलों को संग्रह कर अच्छी तरह मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें। रोगन अरअर या ज्युनियर ऑयल को अच्छी तरह डाटबंद शीशियों में अंधेरे एवं शीतल स्थान में रखना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगठन–भारतीय हाऊबेर में डड्नशोक तेल (रोग़न अरअर या ज्युनियर ऑयल तथा लगभग १०% राल (*Resin*), ३३% तक शर्करा, एक तिक्तसत्व एवं ज्युनिपेरिन (*Juniperin*) आदि तत्त्व पाये जाते हैं। तेल में पाइनीन (*Pinene* $C_{10}H_{16}$), कैम्फीन (*Camphene* $C_{10}H_{16}$), केडिनीन (*Cadinene* $C_{15}H_{24}$), टर्पिनिओल (*Terpineol* $C_{10}H_{16}O$), तथा ज्युनियर कैम्फर आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

वीर्यकालावधि–हाऊबेर में १ वर्षतक तथा तेल में दीर्घकाल तक।

स्वभाव। गुण–गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु, तिक्त। विपाक–कटु। वीर्य–उष्ण। प्रधान कर्म–कफवात शामक, मूत्रल एवं मूत्रमार्गविशोधक, आर्त्तवप्रवर्त्तक, कफनिस्सारक, दीपन, अनुलोमन, नाड़ीउत्तेजक। यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर–गर्भशातक है। प्रतिनिधि–आर्तवजनन में सुद्दाब की पत्ती।

मुख्य योग–हपुषादि चूर्ण।

हिंस्रा (हँइसा)

नाम। सं०–हिंस्रा, कन्थारी। हिं०–हैंस, हँइसा। गु०–कन्थार। ले०–काप्पारिस सेपीआरिआ (**Capparis-sepiaria** *Linn.*)।

वानस्पतिक-कुल। वरुण-कुल (काप्पारीडासे : (*Capparidaceae*)।

प्राप्तिस्थान–समस्त भारतवर्ष (पश्चिम में सिंध, पंजाब से लेकर ब्रह्मा तक तथा दक्षिण में लंकातक) के शुष्क प्रदेशों में झाड़ीदार जंगलों में तथा पुराने बगीचों में इसके गुल्म पाये जाते हैं। हैंसा की जड़ का व्यवहार बाह्यतः शोथघ्न के रूप में किया जाता है, किन्तु बाजारों में विक्रयार्थ प्रायः इसका संग्रह नहीं किया जाता।

संक्षिप्त-परिचय। इसके गुल्म विस्तृत और खड़े परन्तु शाखाएँ पतली, लम्बी एवं प्रसरणशील स्वभाव की होती हैं। ग्रन्थियों पर टेढ़े तीक्ष्ण काँटों के जोड़े होते हैं, तथा शाखाएँ कभी-कभी तूलसम श्वेताभरोमावृत होती हैं। पत्तियाँ १२.५ मि० मी० से ४२.५ मि० मी० ($\frac{1}{2}$ इंच से $1\frac{7}{10}$ इञ्च) तक लम्बी, १२.५ मि० मी० से १८.७५ मि० मी० या $\frac{1}{2}$ इञ्च से $\frac{3}{4}$ इञ्च चौड़ी, रूपरेखा में लट्वाकार आयताकार, अथवा अभिलट्वाकार या आयताकार अभिप्रासवत् होती हैं। अग्र कुछ नुकीला या कुण्ठित तथा पर्णवृन्त २ मि० मी० या $\frac{1}{12}$ इंच लम्बा होता है। पुष्प सफेदरंग के तथा व्यास में ८ मि० मी० से १२.५ मि० मी० ($\frac{1}{3}$ इञ्च से $\frac{1}{2}$ इञ्च) होते हैं, जो छोटे पुष्पवाहकदण्ड (कभी-कभी इसका अभाव होता है) पर छत्रक की भाँति स्थित होते हैं। पुष्पवृन्त (*pedicels*) पतले, कोमल तथा ६.२५ मि० मी० से १२.५ मि० मी० या $\frac{1}{4}$ इञ्च से $\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बे होते हैं। फल मटर की भाँति तथा पकने पर काले हो जाते हैं। आयुर्वेदीय साहित्य में इसका वर्णन 'हिंस्रा एवं 'कन्थारी' आदि नामों से किया गया हैं। 'हैंसा' एवं 'कन्थार आदि स्थानिक नाम इसी के पोषक हैं।

उपयोगी अंग–मूल।

मात्रा। (बाह्यप्रयोग के लिए) आवश्यकतानुसार।

संग्रह एवं संरक्षण–प्रायः सर्वत्र सुलभ होने से आवश्यकता पड़ने पर ताजी जड़ प्राप्त की जा सकती है। जाड़ों में मूल का संग्रह कर मुखबन्द पात्रों में अनार्द्र–शीतल स्थान में रखें तथा इसे पृथक् विषैली औषधियों के साथ रखें।

वीर्यकालावधि–१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–कर्म एवं प्रयोग की दृष्टि से हैंसा को भी बहुत कुछ 'करेरूआ' की ही भाँति समझना चाहिए। इसके मूलकन्द का व्यवहार उग्र शोथों को बैठाने एवं पकाने के लिए किया जाता है।

हींग (हिंगु)

नाम। सं०–हिंगु, रामठ, वाह्लीक। हिं०–हींग, हिंग। बं०–हिंगु, हिङ्। गु०–हींग, वघारणी,। अ०–हिल्तीत। फा०–अंगोज़, अंगज़द। अं०, ले०–एसेफीटिडा (*Asafoetida*)। (वनस्पतिक का नाम)। (१) फ़ेरुला नार्थेक्स (**Ferula narthex** *Boiss.*); (२) फ़ेरुला फीटिडा (**Ferula foetida** *Bunge Regel.*)।

वानस्पतिक-कुल। छत्रक-कुल (अम्बेल्लीफेरी *Umbelliferae*)।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्तिस्थान—'फ़ेरुला नार्थेक्स' के पौधे कश्मीर, बालटिस्तान एवं आस्तोर (*Astor*) में प्रचुरता से पाये जाते हैं। 'फेरुला फीटिडा' फारस, कन्धार, एवं अफगानिस्तान आदि में होता है। व्यावसायिक उत्तम हींग इन्हीं वनस्पतियों से प्राप्त की जाती है। क्वेटा, डेरा इस्माइलखाँ, मुल्तान, एवं पेशावर में हींग की बड़ी मंडियाँ हैं। भारतवर्ष में हींग का आयात मुख्यतः अफगानिस्तान तथा फारस से और उक्त बाजारों से होता रहा है। बाह्यागत (*imported*) होने के कारण, वर्तमान परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियों में हींग के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। हींग सर्वत्र बाजारों में मिलती है।

संक्षिप्त-परिचय। हींग एक तैल एवं रालयुक्त गोंद (*Oleo-Gum-Resin*) है, जो उक्त वनस्पतियों की जड़ एवं प्रकाण्ड पर चीरा लगाने से प्राप्त होती है। 'फेरुला नार्थेक्स' के १.५ से ३ मीटर या ५ फुट ऊँचे, बहुवर्षायु स्वभाव के गंधयुक्त एवं कोमलकाण्डीय पौधे होते हैं। पत्तियाँ कोमल, रोमश, संयुक्त, २ पक्षयुक्त से ४ पक्षयुक्त होती हैं। अन्तिम खण्डों के पत्रकों के किनारे मुड़े हुए, सरल अथवा सूक्ष्मदन्तुर होते हैं। पत्राधार काण्ड-संसक्त होता है। पुष्प छोटे-छोटे तथा पीलेरंग के होते हैं, जो संयुक्त छत्रकों (*compounds umbels*) में निकलते हैं। फल ३ मि० मी० से ५ मि० मी० या $\frac{1}{8}$ इञ्च से $\frac{1}{6}$ इञ्च लम्बे, $\frac{1}{6}$ इंच चौड़े होते हैं। इसकी जड़ मोटी एवं सशाख होती है। 'फ़ेरुला फ़ीटिडा' के क्षुप भी पूर्ववत् होते हैं, किन्तु इसकी जड़ कन्दाकार (गाजर की तरह) होती है। इसके फलों पर प्रायः तैल-नलिकाएँ या तैलिकाएँ(*vittae*) नहीं पायी जातीं। हींग के फलों को 'अस्तुदान' कहते हैं। यूनानीवैद्यक में इसका भी औषधीय व्यवहार किया जाता है। पत्तियों का स्थानिक लोग शाक बनाते हैं. हींग का संग्रह—'फारसीहींग' के पौधों की जड़ें गाजर की भाँति कन्दवत् एवं काफ़ी मोटीं होती हैं। ४ वर्ष से ५ वर्ष आयु के होने पर पौधे हींग के संग्रह के योग्य हो जाते हैं। मार्च-अप्रैल के महीनों में पुष्पागम के पूर्व जड़ के पास की मिट्टी खुरचकर हटा दी जाती है, जिससे जड़ों का ऊपरी भाग दिखाई देने लगता है। अब जड़ के कुछ ऊपर तने से पौधा बिल्कुल काट दिया जाता है। कटे तल से दूध-जैसा गाढ़ा-स्राव निकलने लगता है। धूल-मिट्टी आदि अपद्रव्यों को मिलने से बचाने के लिए कटेतल को उपयुक्त पात्रों से ढँक देते हैं। कुछ दिनों के बाद स्राव को खुरच कर पृथक् कर लेते हैं, और दूसरा ताजा क्षत कर देते हैं। इस प्रकार ३ महीने तक हींग का संग्रह किया जाता है, जबतक कि स्राव निकलना बिल्कुल बंद नहीं हो जाता। कश्मीर आदि में हींग का संग्रह तने एवं जड़ दोनों से किया जाता है। तने से हींग का संग्रह प्रायः जून के महीने में किया जाता है, जब कि फल अभी अपक्व ही होते हैं। जड़ से संग्रह जुलाई-अगस्त के महीने में किया जाता है जब कि पत्तियाँ सूखकर गिर जाती हैं।

उपयोगीअंग—गोंद (*Oleo-Gum-Resin*)

मात्रा। शुद्धहींग—१२५ मि० ग्राम० से ५०० मि० ग्राम या १ रत्ती से ४ रत्ती।

शुद्धाशुद्धपरीक्षा—बाजार में हींग प्रायः दो रूपों में मिलती है—(१) अश्रुवत् गोल-गोल या चपटे दानों (जो व्यास में ५ मि० मी से ३१.२५ मि० मी० ($\frac{1}{5}$ इंच से $1\frac{1}{4}$ इंच तक होते हैं) के रूप में (*tears*) जो खाकस्तरी या मटमैले पीताभवर्ण के होते हैं। (२) ढेलों के रूप में, जिसमें अनेक अश्रुवत् दाने परस्पर चिपके होते हैं। 'बाजारुहींग' प्रायः इसी रूपमें मिलती है। कभी-कभी हींग राल की तरह जमेहुए पेस्ट (*paste*) के रूप में भी मिलती है। हींग का ताजा कटा हुआ तल पीताभवर्ण का तथा पारभासी अथवा सफेद या अपारदर्शक होता है, जो उत्तरोत्तर गुलाबी तथा लाल और अन्ततः लालिमा लिये भूरेरंग का हो जाता है। फारस से हींग चमड़े के थैलों में बाँधकर भेजी जाती है। जब यह थैले खोले जाते हैं, तो बीच में ढेलों के दबाव से शुद्ध हींग अर्धघन-द्रव के रूप में मिलती है। इसको पृथक् 'हीराहींग' के नाम से अधिक मूल्यपर बेचते हैं। हींग में लहसुन-जैसी उग्र स्थायीगन्ध होती है, तथा स्वाद में यह कटु एवं तिक्त होती है। उत्तम हींग को जल में घोलने पर धीरे-धीरे पूर्णतः घुलजाती है, और विलयन दुधिया घोल-जैसा होजाता है। पात्रतल में प्रायः कोई अवशेष प्रक्षिप्त नहीं होता। दियासलाई लगाने पर उत्तम हींग प्रायः पूरी-की-पूरी जल जाती है। इसको जलाने पर ३% से ५% तक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भस्म प्राप्त होती है। उत्तमहींग में अम्ल में अनघुलनशील भस्म—अधिकतम १५% तथा (२) ऐल्कोहल में अविलेयसत्व अधिकतम ५०% प्राप्त होते हैं।

परीक्षण—सल्फ्यूरिक एसिड के सम्पर्क से इसका रंग गाढ़े लालरंग का या लालिमा लिये भूरेरंग का हो जाता है। पुनः जल से एसिड का प्रक्षालन करदेने से बैंगनी रंग का हो जाता है। हींग के ताजे कटे हुए तलपर नाइट्रिक एसिड (५०% *V/V*) डालने से उसका रंग हरा हो जाता है।

प्रतिनिधिद्रव्य एवं मिलावट—बाजारों में अश्रुवत् दानों के रूप में जो हींग आती है, वह सबसे अच्छी होती है। शेष पिण्ड एवं पेस्ट के रूप में हींग में बालू-कंकड़, मिट्टी एवं हींग के पौधों के काण्ड-मूल तथा पत्रादि के टुकड़े मिले होते हैं। कभी-कभी इसमें बबूल का गोंद एवं आटा आदि अपद्रव्य जान-बूझ कर मिलादिया जाता हैं। 'कन्धारी हींग' प्रायः रक्ताभवर्ण की होती है। इसमें तत्स्थानीय लालमिट्टी का मिलावट होता है। कभी-कभी (विशेषतः फारसीहींग में) जवाशीर (*Galbanum*) एवं रोजिन आदि अन्य निर्यासों का मिलावट भी होता है। (प्रतिनिधिद्रव्य) उक्त जातियों के अतिरिक्त फारस में हींग की कतिपय अन्य जातियाँ यथा फ़ेरुल्ला आल्लिआसेउस(*F. alliaceous Boiss.*) आदि भी पायी जाती हैं, जिनसे हींग का संग्रह किया जाता है। यह हीनकोटि की होती है।

संग्रह एवं संरक्षण—हींग को मुखबंद पात्रों में अनार्द्र-शीतल स्थान में रखना चाहिए। पात्र के अन्दर आर्द्रता या नमी नहीं पहुँचनी चाहिए।

संगठन—हींग में ४०%से ६४% तक रालीय अंश, २५% गोंद एवं ६% से १७% उत्पत् तैल पाया जाता है। हींग की अपनी विशिष्ट गन्ध एवं क्रियाशीलता इसी उत्पत् तैल के कारण होती है। उक्त तैल ताजी अवस्था में रंगहीन द्रव के रूप में होता है, जो कालान्तर से पीलेरंग का हो जाता है। इसमें टर्पीन्स (*Terpenes*) एवं डाइसल्फाइड्स आदि तत्व होते हैं। रालीय अंश का आसवन करने से अम्बेलिफेरोन (*Umbelliferone*) नामक तत्व प्राप्त होता है।

वीर्यकालावधि—दीर्घकालतक।

स्वभाव। गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर। रस—कटु। विपाक—कटु। वीर्य-उष्ण। प्रधान कर्म—कफवातशामक, पित्तवर्धक, उत्तेजक, वेदनास्थापन, आपेक्षहर, रोचन, दीपन-पाचन, अनुलोमन, शूलप्रशमन, कृमिघ्न, कफनिस्सारक, श्वासहर, आर्तवजनन, कटुपौष्टिक, बल्य, ज्वरघ्न, शीतप्रशमन, आदि। हींग का शरीर से निस्सरण श्वासनलिका, त्वचा एवं वृक्कों द्वारा होता है।

यूनानीमतानुसार हींग चौथे दर्जे में गरम एवं दूसरे दर्जे में रूक्ष तथा इसके फल (जिनको बीज कहते हैं) अर्थात् 'अंजुदान' दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। अहितकर—यकृत्, मस्तिष्क एवं उष्ण प्रकृति वालों के लिए। निवारण—अनार, कतीरा, सेव, चन्दन, अनीसूँ। बीज—बस्ति के लिए अहितकर है। निवारण—खरबूजे के बीज।

मुख्य योग। हिंग्वादिवटी, हिंग्वष्टकचूर्ण, रजःप्रवर्त्तनी वटी, हिंगुकर्पूरवटिका।

विशेष—मौखिकसेवन के लिए हींग का शोधनकर व्यवहृत करते हैं। एतदर्थ इसको (१) आठगुने जल में घोल लेते हैं, और उक्त घोलको मन्द आँच पर पकाकर पुनः जलहीन कर लेते हैं, अथवा (२) गाय के घी में भूनते हैं (भृष्टहिंगु)। जब शुष्क और खर हो जाता है, तो उतार लेते हैं। प्रथम प्रकार 'शोधितहिंगु' फुफ्फुस रोगों में तथा द्वितीय प्रकार उदर रोगों के लिए अधिक उपयुक्त होता है।

चरकोक्त (सू० अ० ४) दीपनीय एवं संज्ञास्थापन महाकषाय एवं कटुस्कन्ध तथा सुश्रुतोक्त पिप्पल्यादि और ऊषकादिगण के द्रव्यों में 'हिंगु' का भी उल्लेख है।

हुरहुर

नाम। सं०—अजगंधा, उग्रगंधा, सुवर्चला? आदित्यभक्ता?। हिं०—हुलहुल, हुरहुर। को०—चमनी। संथा०—श्वेत काटा अड़ा (सफेद हुर-हुर)। बं०—हुरहुरिया। पं०—बुगरा। म०—तिलवण?। गु०—तलवणी, तलवणा?। सिंघ०—किनीबुटी। ले०—(१) श्वेतपुष्पा—गोनांड्रोप्सिस गोनांड्रा **Gynandropsis gynandra** (*L.*) *Briq.* (पर्याय—*G. pentaphylla DC.*)। (२) पीतपुष्पा—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्लेओम विस्कोसा (Cleome viscosa *Linn.*) / (१) बैंगनी–क्लेओम मोनोफ़िल्ला (Cleome monophylla)।

वानस्पतिक-कुल। वरुण-कुल (काप्पारीडासे *Capparidaceae*)।

प्राप्तिस्थान–भारतवर्ष के समस्त उष्णप्रदेशों में चौमासे में उक्त हुरहुर के पौधे घास की तरह उगते हैं। गाँवों के आस-पास परित्यक्त भूमि में, बगीचों, सड़कों के किनारे तथा जोते हुए खेतों में इसके पौधे मिलते हैं। बैंगनी पुष्प का हुरहुर विशेषतः बिहार-उड़ीसा से लेकर गुजरात तथा दक्षिणभारत में (कोंकण, महाराष्ट्र आदि) में पाया जाता है। हुरहुर के बीज कभी-कभी बाजारों में पंसारियों के यहाँ मिलते हैं।

परिचय–'श्वेत हुरहुर' के उग्र दुर्गन्धयुक्त १ फुट से ३ फुट ऊँचे पौधे होते हैं। पत्तियाँ सपत्रक, पाणिवत्, पत्रक संख्या में ५ तथा रूपरेखा में अभिलट्वार तथा ग्रंथिल रोमश होते हैं। पुष्प सफेद या बैंगनीरंग के होते हैं। मञ्जरियाँ स्पर्श में चिपचिपी (*glutenous*) होती हैं। निपत्र (*bracts*) भी त्रि-पत्रक होते हैं। पुंकेशर लम्बा तथा बैंगनीरंग का होता है। फलियाँ (*capsules*) ५ सें० मी० से १० सें० मी० या २ इंच से ४ इंच लम्बी, अग्रकी ओर क्रमशः पतली होती हैं। सिरेपर कुक्षिवृन्त का अवशेष लगा होता है। बाह्यतल रेखांकित तथा चिकना होता है। फलियों में सरसों के बराबर कालेरंग के तथा रूपरेखा में कुछ-कुछ वृक्काकार बीज होते हैं, जिनको मुख में चाबने पर कुछ सरसों-जैसा स्वाद होता है। पत्तियों को मसलकर सूँघने पर एक उग्र दुर्गन्धि आती है तथा स्वाद में यह तीक्ष्ण (*pungent*) होती हैं। कहीं-कहीं आदिवासी लोग पत्तियों का शाक बनाते हैं। (२) 'पीलेहुरहुर' के पौधे भी कुछ पहले की ही तरह होते हैं, किन्तु इसमें नीचे की पत्तियाँ तो ५–पत्रकों वाली किन्तु ऊपर के पत्र त्रिपत्रक होते हैं। बीज सफेद हुरहुर की तरह किन्तु गाढ़े भूरेरंग के होते हैं। गुण-कर्म की दृष्टि से तीनों ही प्रकार के हुरहुर प्रायः मिलते-जुलते तथा एक दूसरे के प्रतिनिधि रूप से ग्राह्य हैं।

उपयोगी अंग। बीज, पत्र, मूल।

मात्रा। बीजचूर्ण—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

पत्रस्वरस—३ माशा से १ तोला।

मूल—१ ग्राम से ३ ग्राम या १ माशा से ३ माशा।

संग्रह एवं संरक्षण–जाड़ों के अन्त में पक्व फलियों से बीजों को प्राप्त कर मुखबंद पात्रों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखें तथा पात्र पर इसके नाम का प्रपत्रक (लेबिल) लगा दें।

संगठन–हुरहुर के ताजे पौधों को कूचने से एक उत्पत् तैल पाया जाता है, जिसमें लहसुन तथा सरसों के समान गुणकर्म होते हैं। परन्तु शुष्क पौधों में यह नहीं पाया जाता : बीजों से एक स्थिर-तैल प्राप्त होता है।

वीर्यकालावधि। बीज—१ वर्ष।

स्वभाव। गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस–कटु। विपाक–कटु। वीर्य-उष्ण। प्रधान कर्म–कफवातशामक। स्वेदजनन, ज्वरघ्न, दीपन-पाचन, अनुलोमन, कोष्ठवातप्रशमन, शूलहर, कृमिघ्न (विशेषतः केंचुआ नाशक)। तीनों प्रकार के हुरहुर के बीज स्थानिक प्रयोग से राई के समान क्रिया करते, और दाहजनन, उत्तेजक, पूतिहर, वेदनास्थापन तथा रक्तिमाजनक होते हैं। कर्णशूल एवं पूतिकर्ण में पत्रकल्क एवं स्वरससिद्ध तैल कान में डालने से उपकार होता है। १ माशा से ३ माशा हुरहुरबीज का चूर्ण खिलाने से उदरगत केंचुआ कृमि का निर्हरण होता है।

वक्तव्य–**हुरहुर बनाम सुवर्चला ?**—आधुनिक अधिकांश लेखक आयुर्वेदीय संहिताओं एवं तदनुवर्ती निघण्टुओं की 'सुवर्चला' का विनिश्चय उपरोक्त 'हुरहुर' से करते हैं। किन्तु संहिताओं में 'शाकवर्ग' में जिस सुवर्चला का वर्णन है, उसका विनिश्चय 'हुरहुर' से करने की कोई युक्तियुक्तता नहीं प्रतीत होती। वास्तव में शाकवर्ग की 'सुवर्चला' से हुरहुरसे सर्वथाभिन्न वनस्पतियाँ अभिप्रेत हैं। शाकवर्ग में भी सुश्रुतसंहिता में 'सुवर्चला' से वास्तव में दो भिन्न शाकोपयोगी वनस्पतियाँ अभिप्रेत हैं। इनमें से एक का विनिश्चय मैंने चरक के शाकवर्गोक्त 'तिलपर्णी' से किया है। सुवर्चला का उल्लेख कौटिलीय–अर्थशास्त्र में भी मिलता है, जहाँ इसके मूलको अत्यधिक ज्वलनशील

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वभाव का बताया गया है। अतः सुवर्चला प्राचीन उत्तरपश्चिमभारत में लोकप्रचलित एवं विज्ञात, तथा हुरहुर से सर्वथाभिन्न कोई लघु एवं कोमलकाय वनस्पति लक्षित होती है। मैंने सुवर्चला के वानस्पतिक विनिश्चय का निर्णयात्मकविवेचन 'जर्नलऑफ दि रायल एशियाटिक-सोसाइटी, बाम्बे' के 'Indian Textiles' शीर्षक विशिष्टसंस्करण (*Special Issue*) में प्रकाशित अपने विशिष्ट आमंत्रितलेख "*Linen and Linen-Plant in the Indian Texts and Tradition*" में किया है। (लेखक)

ह्रीवेर (सुगन्धबाला ?)

नाम। (सं०) ह्रीवेर, उदीच्य, बालक, अम्बु, तोय (एवं जल के अन्य पर्यायवाची शब्द)। हिं०, भा० बाजार–?। ता०– कुरुवेर, वेट्टिवेर। ले०–कोलेउस वेट्टिवेरोइडीस (**Coleus vettiveroides** *K. C. Jacob.*)।

वानस्पतिक-कुल। तुलसी-कुल (लाबिआटी : *Labiateae*)।

प्राप्तिस्थान–चरक, सुश्रुत एवं तदाधारित अष्टांग-संग्रह एवं अष्टांगहृदय आदि आयुर्वेदीय संहिताओं (विशेषतः 'चरक') में 'ह्रीवेर' सुपरिचितरूपेण स्पष्टोल्लिखित मिलता है, तथा इसके लिए उदीच्य (= *that af the Northern Country*), अम्बु एवं बालक आदि पर्याय भी दिये गये हैं। उल्लेखनीय है, कि कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में (अधिकरण २, प्रकरण ४१, अध्याय २४/२२) में गन्धभैषज्यवर्ग की कर्षितवनस्पतियों के सामान्योल्लेख के साथ 'उशीर' 'ह्रीवेर' एवं 'पिण्डालुक' का व्यक्तिपरक परिगणन एवं पृथकोल्लेख किया गया है, जिनको (नदियों के तटवर्ती) कंगारों तथा भीटों पर बोने या लगाने का अनुमोदन किया गया है। इनके उत्पाद भी कटुआ फसलों की भाँति एक ही पौधे से अनेक बार प्राप्त किये जाते थे। इससे स्पष्टतया लक्षित होता है, कि प्राचीन काल में 'ह्रीवेर' उक्त नाम से प्राचीन उत्तरपश्चिमी भारतीय सीमाक्षेत्र में व्यवहारप्रचलित सुगन्धिवनस्पति था। दूसरे मौर्यकालीन अन्तः भारतीय क्षेत्र में उक्त वनस्पति स्वयंजात या जंगली नहीं होती थी या इतनी मात्रा में नहीं होती थी, जिससे आवश्यकतापूर्ति हो सके। इसीलिये सम्भवतः इसका उत्पादन कर्षितरूप से किया जाता था। संहिताओं में तथा परवर्ती ग्रन्थों में 'ह्रीवेर' शब्द की मान्यता अष्टाध्यायी के 'अर्धर्चादिगणपाठ' के शब्दों की भाँति 'पुल्लिङ्ग' एवं 'नपुंसक' इन दोनों लिङ्गों में मिलता है। उक्त तथ्य 'ह्रीवेर' के मौलिक व्यवहारप्रचलन एवं अनुबंध के पूर्वतः बसी आर्येतर जनजातियों से सम्बन्धित होने को लक्षित करता है। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है, कि उक्त संस्कृत संज्ञा 'ह्रीवेर' की शब्द-संरचना में भी उत्तरपद 'वेर', जिसका अर्थ मूल / जड़ / *root* होता है, स्वयं द्रविड़भाषा का शब्द है, जो आज भी (दक्षिणभारत में) द्रविड़-भाषाकुल में जीवित एवं सुप्रचलित है। परवर्ती आयुर्वेदीय साहित्य, निघण्टु एवं रसग्रन्थों में यद्यपि 'ह्रीवेर' का सर्वत्र उल्लेख है, तथा अनेक प्रचलित योगों एवं कल्पों में उपादानरूपेण दृष्टिगोचर है, किन्तु बाजारों एवं वास्तविक व्यवहारोपयोग में 'असली ह्रीवेर' पूर्णतः लुप्त है। लेखक ने अपनी दक्षिणभारत की यात्राओं में मद्रास में मन्दिरों के पास पुष्पविक्रेताओं के पास 'कुरुवेर' के उशीरवत् सुगंधित सूत्राकारमूलपुञ्जों को देखा, जिनका उपयोग मूर्तियों पर चढ़ाने के लिए किया जाता है। उक्त 'कुरुवेर' का विनिश्चय प्राचीन ह्रीवेर से किया गया है, जिसकी मान्यता को आयुर्वेदिक फार्माकोपिआकमेटी ने भी स्वीकार करलिया है। उक्त वनस्पति भारतीय क्षेत्र में न तो स्वयंजात होती है, न ही इसका आवासी हो सकी है। मद्रासराज्य (आधुनिक तामिलनाड राज्य) में मद्रास, तञ्जौर एवं तिन्नेवली जनपदों में अन्य पूजनोपयुक्त पुष्पों एवं सुगंधित वनस्पतियों की भाँति इसका भी उत्पादन किया जाता है। और वहीं से मद्रास आदि में मन्दिरों के पास विक्रयार्थ लाया जाता है। अतः ह्रीवेर उक्त स्थानों से प्राप्त किया जा सकता है। (लेखक)

संक्षिप्त-परिचय–ह्रीवेर (**Coleus vettiveroides**) के छोटे, मांसल (रसदार *succulent*) शाकजातीय पौधे (*herb*) होते हैं, जिनका काण्ड ४५ सें० मी० से ५२ सें० मी०, कभी खड़ा (*erect*) कभी नीचे को झुका हुआ (*procumbent*), तथा पत्तियाँ मोटी, एवं नीलारुण रोमश (*purplish pubescent*) होती हैं। इसकी जड़ें लम्बी, रेशेदार, तृण-रंगी एवं ताजी अवस्था में अत्यंत सुगंधित होती हैं। इन कर्षित पौधों में पुष्पागम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं देखा गया। इससे लक्षित होता है, कि उक्त पौधा एतद्देशीय भी नहीं है, और न यहाँ का आवासी हो सका है।

उपयोगी अंग–(सूत्राकार सुगंधित) मूल।

संग्रह एवं संरक्षण–ह्रीवेर को सुगंधित जड़ों का संग्रह ४ मास का पौधा हो जाने पर किया जाता है। ताजी अवस्था में जड़ें अत्यंत सुगंधित होती है। ताजी जड़ें ही विक्रयार्थ आती हैं। उशीर (खस) की भाँति सूखी जड़ों का न तो संग्रह किया जाता है, न यह विक्रयार्थ उपलब्ध होती हैं।

शुद्धाशुद्ध-परीक्षा–सीमित क्षेत्र एवं व्यवहार में ही इसका उत्पादन एवं आपणन (*marketing*) होने के कारण अभी इसमें मिलावट या इस नाम से अन्य द्रव्य के प्रचारित होने का प्रश्न नहीं है। किन्तु बाजारों में ह्रीवेर के लिए 'सुगन्धवाला' नाम से यदि कोई द्रव्य प्रचारित है, वह अग्राह्य है। उल्लेखनीय है कि आयुर्वेदीय निघण्टुओं में जो 'उशीरद्वय' का उल्लेख है, इसमें दूसरे सदस्य से सम्भवतः 'ह्रीवेर' ही अभिप्रेत है। अतः दोनों के बहुत कुछ समानधर्मी होने से उक्त वास्तविक ह्रीवेर के अभाव में 'उशीर' को ही ग्रहण करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। (लेखक)

स्वभाव। रस–तिक्त। वीर्य–शीत। प्रधानकर्म–पित्तशामक दीपन-पाचन, ज्वरघ्न, अतिसारशामक, श्वास–कास–छर्दिनाशक, ग्रहशामक तथा तृष्णा–दाहनाशक, विषघ्न, उन्मादहर, शिरोविरेचन एवं स्थानिक प्रयोग से नेत्राभिष्यदहर (आश्च्योतन), श्वित्रविसर्प–किलासनाशक।

मुख्ययोग–अणुतैल (च० सू० अ० ५/ह्रीवेर), षडंगपानीय (में 'उदीच्य'), चन्दनादितैल (च० चि० अ० ३), खदिरादिगुटिका (अ० हृ०–उदीच्य) आदि।

विशेष–चरकोक्त (सू० अ० ४) तृष्णानिग्रहण एवं दाहप्रशमन महाकषायों में 'ह्रीवेर', तथा तिक्तस्कन्ध (अ० चि० अ० ८) के द्रव्यों में 'वालक', एवं सुश्रुतोक्त (सू० अ० ३९) पित्तसंशमन वर्ग के द्रव्यों में 'ह्रीवेर' और अष्टाङ्गहृदय (सू० अ० १५) के 'एलादिगण' में भी इसका परिगणन है।

□

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुक्रमणिका

इस ग्रन्थ वनौषधि-निर्दशिका में आये हुए द्रव्यों के विविध भाषानामों की हिन्दी वर्णानुक्रमणिका

नाम	पृष्ठ
[अ]	
अंकोट (सं०)	१
अंकोल (सं०, को०)	१
अंगज़द (फा०)	४०५
अंगूर (पं०, हिं०, फा०)	३०८
अंगोज (फा०)	४०५
अंजबार (अ०)	२
अंजबार रूमी (अं०)	२
अंजरूत (फा०)	३
अंजिबार (अं०)	२
अंजीर (सं०, फा०, हिं०)	४
अंजीरे अहमक (फा०)	१३६
अंजीरे आदम (फा०)	१३६
अंजुबार (अ०)	२
अंजुबारे रूमी (अ०, भा०, बा०)	२
अंझाझार (हिं०)	१५०
अंतमल (बम्बई)	३२८
अंब (क०, पं०)	३४
अंबज (अ०)	३४
अंबः (फा०)	३४
अंबरमाहअ (फा०)	३५०
अंबुटी (म०)	१४८
अंभ (क)	३४
अअर (क०)	३७
अक (क०, सिं०, पं०)	३२
अकरकरा (हिं०)	५
अकौआ (हिं०)	३२
अक्ष (सं०)	२६७
अक्षोट (सं०)	६
अखरोट (हिं०)	६
अखरोड (म०, गु०)	६
अगर (हिं०, म०, गु०)	७
अगरु (बं०)	७
अगरेतुर्की (फा०)	३४२
अगुरु (स०)	७
अगुरुकाष्ठ (सं)	७
अगेथू (हिं०)	९
अग्नि (सं०)	१४८
अग्निमन्थ (सं०)	९; १०
अग्निमुख (सं०)	२८८
अग्निशिखा (स०)	८६
अग्नो (कु०)	९
अग्लिदियून (यू०)	३३४
अघाडा (म०)	१५०
अघेडो (गु०)	१५०
अङ्कूल (हिं०, द०)	१
अङ्कोट (सं०)	१
अङ्कोटीन (सं)	२
अङ्कोल (सं०)	१
अजंड (का०)	६४
अजगन्धा (सं०)	४०७
अजमलीन (अं*)	३६४
अजमलिनीन (अं०)	३६४
अजमलिसीन (अं०)	३६४
अजमा (गु०)	११
अजमोद (हिं०, गु०)	१०; ८२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
अजमोदा (सं०, म०)	१०
अजमोदो (मा०)	१०
अज(ज्ञा)राकी (अ०)	१०८
अजवायन (हिं०)	११
अजवान का पत्ता (द०)	२४२
अजवायन (हिं०)	११
अजवायन का फूल (हिं०)	११
अजवायन का सत (हिं०)	११
अजवायन खुरासानी	१२
अजाजी (स०)	१६४
अज्ञा (ज्ञ) राकी (अ०)	१०८
अजूरी (अ०)	९३
अजोवान (बं०)	११
अञ्जुदान	४०६
अटरूषक (सं०)	१३
अडकई (म०)	३६३
अडवाऊमग (गु०)	१०७
अडविवादामु (ते०)	१८१
अडाटारेड (थोल्कोवाद)	३६३
अडाशनि (ता०)	१४८
अडुलसा (म०)	१३
अडूसा (हिं०)	१३
अतसी (सं०)	२७
अतिबला (सं०)	५६
अतिरसा (सं०)	३१४, १५३
अतिविदयम् (त०)	१४
अतिविष (म०, गु०)	१४
अतिविषा (सं०)	१४
अतिसीन (बं०)	१४
अतीस (हिं०)	१४
अतीसीव (अ०)	२७४
अत्ति (मल०, ता०)	१३६
अदरक (हिं०)	२८९
अधकपारी (हिं०)	३३६
अनन्तमूल (हिं०, बं०)	१५, ३६९
अनन्ता (सं०)	३६९
अनन्नास (हिं०, गु०)	१५
अनलसिंग (को०)	३३८
अनानाश (ब०)	१५
अनानाम (हिं०)	१५
अनार (फा०, हिं०)	१६
अनारका छिलका	१६
अनारका फूल	१६
अनार की जड़की छाल	१६
अनार, खटमिट्ठा	१६
अनार, खट्टा	१६
अनारगली (फा०)	१६
अनार, चाशनीदार (फा०)	१६
अनार, तुर्श (फा०)	१६
अनारदाना (हिं०)	१६
अनार मीठा (हिं०)	१६
अनार मैखाश (फा०)	१६
अनार, शीरीं (फा०)	१६
अनारस (बं०)	१५
अनार्यतिक्त (सं०)	१५१
अनासी (अम०)	१५
अनेब्सिन्थिन (अ०)	२०
अन्नास (म०)	१५
अपत्र (सं०)	८३
अपराजिता (सं०)	१८
अपलात (तून) (अ०)	१३४
अपविषा (सं०)	१५७
अपाङ् (बं०)	१५०
अपामार्ग (सं०)	१५०
अपामार्ग क्षार (स०)	१५१
अपामार्ग बीज (सं०)	१५१
अफसंतीन (अ०)	१९
अफसंतीन, विलायती (हिं०)	१९
अफसन्तीनुल् बहर (अ०)	९१
अफाण (गु०)	२०
अफीम (हिं०)	२०, २१, २३
अफीम का डोंगा (बोंडी) (हिं०)	२०
अफू (म०)	२०
अफ्तीमून (अ०)	२४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
अफ्तीमून विलायती (अ०)	२४
अफ्तीमून हिंदी (फा०)	२३
अफ़्स (अ०)	३०१
अफ़्यून (अ०)	२०
अफ्लातून (अ०)	१३४
अफ़्मुल्बुलूत (अ०)	३०१
अबहल (पं०, द०, बम्ब०, अ०)	४०३
अबेरनिन (अ०)	१३०
अबुखल्सा (अ०)	२९६
अभया (सं०)	३९९
अमचुर (हिं०)	२७१
अमड़ा (हिं०)	३६
अमरबेल (हिं०)	२३
अमरवल्ली (सं०)	२३
अमरूद (अफ०, फा०)	२११
अमरूत (अफ०)	२११
अमलतास (हिं०)	२४
अमलवेत (हिं०)	२५
अमूरा रोहितक (ले०)	२१२
अमृतफल (सं०)	२११
अमृतसरी हरड़	४००
अमृत	२५८
अमृता (सं०)	१२६
अमेरिकन कपास (हिं०)	७०
अमोनियाकोन (यू०)	५२
अम्ब (सिं०)	३४
अम्बष्ठकी (स०)	२३४
अम्बष्ठा (सं०)	२३४
अम्बरबारीस (अ०)	१९०
अम्बेलिफेरोन (अं०)	५
अम्ब्रेला-ट्री (अं०)	१०३
अम्लपत्रिका (सं०)	१४८
अम्लपर्णी (सं०)	३२९
अम्लवेतस (सं०)	२५
अम्लिका (सं०)	४०
अम्लोनी (हिं०)	१४८
अयापान (हिं०, बं०, गु०)	२६
अयापानिन (अं०)	२६
अयापिन (अं०)	२६
अरड (हिं०)	५५
अरंडककडी (खरबूजा) (हिं०)	२२४
अरडुसी (सो, (गु०)	१३
अरणी (सं०)	९, २६, ७९
अरण्यकार्पास (सी) (सं०)	५२, ७०
अरण्यकुलत्थिका (सं०)	१४७
अरण्यजीरक (सं०)	७९
अरनी (हिं०)	९
अरण्ड (न्डी) हिं०)	५५
अरबी मुलेठी	३१०
अरबीरसवत/हुजुजमक्की	१९१
अरयाल् (मल०)	२४६
अरलु (सं०)	२५७, ३९२
अरलू (सहारनपुर)	६५
अरविन्द (सं०)	७७
अरसुमरम् (ता०)	२४६
अरसु (ता०)	२४६
अरिया कास्मर	१२६
अरिष्टक (सं०)	३२८
अरीठा (गु०)	३२८
अरुअ (आ)	३९३
अरुआर (हिं०)	३२१
अरुष्कर (सं०)	२८८
अरूसा (हिं०)	१३
अरेबियन लेवेंडर (अं०)	५१
अरेबियन मेस्ता-प्लांट (अं०)	१६२
अर्क (सं०)	३
अर्क केवड़ा	१०८
,, क्षार	३४
अर्क खींचे हुए फल	४४
अर्क गुलाब	१३४
अर्क बेदमुश्क	२७८
अर्क लवण (सं०)	३४
अर्क शर्करा (सं०)	३३
अर्जुन (सं०, हिं०, बं०)	३६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
अर्जुनसादड़ा (म०)	२६
अर्जुनीन (अं०)	२७
अर्जुनेटीन (क्षं)	२७
अर्शोघ्न (सं०)	३८५
अलजजरी (खर०)	२३
अलसी (हिं०, म०, गु०)	२७
अलिश (क०)	२७
अल्अफ़्स (अ०)	३०१
अल्कम (अ०)	३९
अल्कानेट (अं०)	३२३
अल्कन (द०)	३४
अल्खना (अ०)	३२४
अल्जावी (अ०)	३४०
अल्फाजन (बम्ब०)	५३
अल्फिल्फिलुल् अस्वद (अ०)	२९५
अल्हिना	३२४
अविद्धकर्णी (सं०)	२३४
अविषा (सं०)	१५७
अव्यथा (सं०)	३९९
अव्वलकुंदूर (अ०)	३६६
अशेलियो (गु०)	१४६
अश्मघ्न (सं०)	२७१
अश्वकर्ण (सं०) ?	४५
अश्वकर्णबीज (सं०) ?	४५
अश्वगंधा (सं०)	३०
अश्वघ्न (सं०)	६९
अश्वत्थ (सं०)	२४६
अश्वमारक (सं०)	६९
असकन (हिं०)	३०
असगंध (हिं०)	३०
असमानिया (पं०)	३९५
असली गोंदकतीरा	६६
असली रोहीतक	३३१
असली नागकेशर	२०६
असालियो (मार०)	१४६
अस्ट्रागालुस सार्कोकोला (ले०)	३
अस्थिशृंखला (सं०)	३९९
अस्थिसंहारी (सं०)	३९९
अस्पगोल (फा०)	४५
अस्लक़ (अ०)	२१२
अस्ल बलादुर (अ०)	२८९
अस्लुल्ल खित्मी (अं०)	११९
अस्लुल् हिंदुबाएल् बरी (अ०)	१९५
अस्लुल्हाज (अ०)	१६२
अस्लुस्सीनी	१९४
अस्लुस्सूस (अ०)	३०९
अहालींव (म०)	१४६
अहिफेन (सं०)	२०
अहिफेन क्षुप (सं०)	२०
अहुरि (सिंध)	३२५
[आ]	
आंक (कु०)	१२
आंकुल (म०)	१
आंकोड़ (बं०)	१
आंड्रोग्राफिस पानीकुलाटा (ले०)	९४, १५२
आंब (हिं०)	३४
आंबटी (म०)	१४८
आंबली (गु०)	४०
आंबा (म०)	३६
आंबाडा (म०)	३६
आंबाहल्दी (हिं०)	३१
आंबिलम् (ता०)	४०
आंबो (गु०)	३४
आंवल	३६६
आंवला (हिं०)	३१
आंवला, कलमी	३२
आंवला, स्वयंजात (जंगली या बीजू)	३२
आइलान्थुस एक्सेल्सा (ले०)	२५७, ३९३
आकंद (बं०)	३२
आक (हिं०, बं०)	३२
आक का गोंद	३३
आक की मिश्री	३३
आक की शक्कर	३३
आकडो (गु०)	३२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
आकनादि (बं)	२३४	आढाटोडा वासिका (ले०)	१३
आकसन (हिं०)	३०	आतईच (बं०)	१४
आकारकरभ (सं०)	४	आत्मगुप्ता (सं०)	१०१
आकाशवल्ली (सं०)	२३	आदित्यभक्ता (सं०)	४०७
आकासवेल (हिं०)	२३	आनाकार्डिउम् ऑक्सीडेंटाले (ले०)	९२
आकासिआ आराबिका (ले०)	२६०	अनानास कोमोसुस	१५
आकासिया काटेकू (ले०)	६७	आनासीक्लुस पीरेथ्रुम् (ले०)	५
आकासिया सेनेगल	२६१	आनिथुम् सोवा (ले०)	३९०
आकिरकिर्हा (अं०)	४	ऑनियन (अं०)	२५२
आकीरांथेस आस्पेरा (ले०)	१५०	आनिसुल् अखाह (अ०)	५३
आकोनीटुम चस्मान्थुम (ले०)	२५८	आपिउम प्राविओलेन्स (ले०)	१०, ८२
आकोनीटुम चस्मान्थुम	३५२	आपी-फ्रुक्टुस (ले०)	८१
आकोनीटुम नापिलुस्	२५८	आफानामिक्सिस पॉलिस्टाकिआ (ले०)	२३२
आकोनीटुम पाल्माटुम (ले०)	२७३	आफिम (बं०)	२०
आकोनीटुम फ़ेरोक्स (ले०)	२५८	आबेलीमूं	२१६
आकोनीटुम् हेटेरोफिल्लुम (ले०)	१४	आबीएस वेब्बिआना (ले०)	१७७
आकोरुस कालामुस (ले०)	३४२	आबूटिलॉन इंडिकुम (ले०)	५६
ऑक्जैलिक एसिड (अं०)	३३१	आबूटिलॉन हिर्टुम् (ले०)	५७
आक्टीनॉप्टेरिस डीकोटोमा (ले०)	२९४	आबेल्म स्कुस मास्काटुस (ले०)	३११
ऑक्टीनॉप्टेरिस राडिआटा (ले०)	२९४	आब्रुस पेकाटेरिउस (ले०)	१२९
ऑक्वील्लारिआ ऑगाल्लोचा (ले०)	७	आब्रोमा आउगुस्टा (ले०)	५१
ऑक्सालिस कॉर्नीकुलाटा (ले०)	१४८	आम (हिं०, बं०)	३४
ऑक्सालिस अ सेटोसेल्ला (ले०)	१४८	आम कलमी	३४
आख (हिं०)	३२	आम का गोंद	३६
आखरोट (बं०)	६	आम की गुठली	३५
आखोर (जौनसार)	६	आम की छाल	३६
आग्लाइआ राक्सबुर्घियाना	२५४	आमडा (हिं०, बं०)	३६
आघाडा (म०)	१५०	आमड़े (हिं०)	३६
आर्चा (गढ़०)	३२९	आम बीजू	३४
आजाद दरख्त (फा०)	२५७	आमलः (फा०)	३१
आजादरख्त (फा०)	२५७	आमलकी (सं०)	३१
आजादरख्ते हिन्दी (फा०)	२१७	आमलज (अ०)	३१
आज़ाडीराक्टा इंडिका (ले०)	२१७	आमीग्डाला डुल्सिस् (ले०)	३६९
आडिआंटुम काउडाटुम (ले०)	२९४	आमोमुम आरोमाटिकुम (ले०)	४५
आडिआंटुय लूनाटुम	३९८	आमोमुम केपुलागा (ले०)	४४
आडिआंटुम वेनिस्टुम	३९८	आमोमुम सूबुलाटुम (ले०)	४४
आडेनान्थेरा पावोनिआ (ले०)	१४३	आम्र (सं०)	३४, ३६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
आम्रहरिद्रा (सं०)	३१	आलुक (सं०)	३७
आम्रातक (सं०)	३६, ३७	आलुबुखारा (पं०, म०, गु०)	३७
आम्ररुल शाक (बं०)	१४०	आलुबुखारो (मा०)	३७
आयर्न-वुड ट्री (अं०)	२०६	आलुबोखारा (फा०)	३७
आयल ऑफ क्युबेब्स (अ०)	७६	आलू (फा०)	३७
आयल आफ जूनीपेरी	३६४	आलूबुखारा (फा०)	३७
आयल ऑफ सिन्नेमन	१८१	आलूबोखारा (हिं० फा०)	३७
आँयल आफ हिस्सोप	१७१	आलोए एबिसीनिका (ले०)	१४१
आयापान (हिं०, बं०, गु०)	२६	आलोए परेई (ले०)	१४१
आयापान-टी (अं०)	२६	आलोए फेरोक्स (ले०)	१४१
आयरिस	३४६	आलोए बार्बाडेन्सिस (ले०)	१४०
आरग्वध (सं०)	२४	आलोए वेरा (ले०)	१४०
ऑरिस रूट (अं०)	२५२	आलोए वेरा प्रभेद चीनेंसिस (ले०)	१४१
आरीस्टोलोकिया इंडिका (ले०)	४७	आलोए वेरा प्रभेद लिट्टोरालिस (ले०)	१४१
आरीस्टोलोकिया टागाला (ले०)	४८	आलोकासिआ इंडिका	३०३
आरीस्टोलोकिया ब्राक्टेआटा (ले०)	४८	आलोस बार्बाडेंसिस (ले०)	१३४
आरूएबिआ	१२४	आल्टीजिआ एक्सेल्सा (ले०)	३५०
आरुक (सं०)	३७	आल्थेआ ऑफ्फीसिनालिस (ले०)	१४४
आरुंडो डोनाक्स	२०६	आल्वीजिआ आमारा (ले०)	३७५
ऑरेन्ज (अं०)	३०९	आल्वीजिआ ओडोराटिस्सिमा (ले०)	३७५
आर्टेमीसिआ एब्सिन्थियम (ले०)	१९	आल्वीजिआ प्रोसेरा (ले०)	३७५
ऑर्किस लाक्सीफ्लोरा (ले०)	३७२	आल्वीजिआ मार्जिनाटा	३७५
आर्किस लाटीफोलिआ	३७२	आल्वीजिआ लेब्बेक (ले०)	३७४
आर्गेमोने मेक्सिकाना (ले०)	३९६	आल्पीनिया आफ्फीसिनारुम (ले०)	११३
आर्चा	३२९	आल्पीनिया गा (गं) लंगा (ले०)	११३, ११४
आरैक्कीरै (ता०)	३७९	आल्लिअम् सेपा (ले०)	२५
आर्चिरिआ स्पेसिओजा (ले०)	३४७	आल्सटोनिया स्कोलारिस (ले०)	३५६
आर्टेमीसिआ मारिटिमा (ले०)	९९	आल्हागी केमेलोरम् (ले०)	१६२
आर्टेमीसिआ रूबीकाउल (ले०)	९९	आल्हागी माउरोरम् (ले०)	१६२
आर्टेमीसिआ सीना (ले०)	९९	आल्हागी सेउडाल्हागी (ले०)	१६२
आर्तगल (सं०)	२४५	आवर्तनी (सं०)	२९६
आल (मल०)	२६२	आवर्तफला (सं०)	२९६
आलकुशी (बं०)	१०२	आशुद्गाछ (बं०)	२४६
आलबोखारा (फा०)	३७	आसंध (म०, गु०)	३०
आलमरम् (ता०)	२६२	आसीमुम् कानुम् (ले०)	१८१
आलांजिअम् लामार्किआई (ले०)	१	आसीमुम् प्राटीस्सिमुम् (ले०)	१८१
आलांजिअम् साल्वीफोलिअम् (ले०)	१	आसीमुम् बासीलिकुम् (ले०)	१८१, २४१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
आसीमुम् सांक्टुम् (ले०)	१८१
आसुरी (सं०)	३२५
आस्पारागुस आडसेंडेंस (ले०)	३१३
आस्पारागुस रासेमोसुस (ले०)	३५३
आस्पारागुस सार्मेन्टोसुस	३१४
आस्टरकान्था (ले०)	१७५
आस्टरकान्था लांगीफोलिआ (ले०)	१७५
आस्ट्रागालस (ले०)	६६
आहियों (सिंध०)	१४६
[इ]	
इंगन (खर०)	३८
इंगुआ (हिं०)	३८
इंगोरिया (गु०)	३८
इंडिगो (अं०)	२१९
इंडिगो-प्लान्ट (अं०)	२१९
इंडिगोफेरा टींक्टोरिआ	२१९
इंडियन ओलीबेवम् (अं०)	३६५
इंडिमन काइनो (अं०)	२७४
इंडियन जेन्शन (अं०)	१८७
इंडियन पेनी-वर्ट (अं०)	२६७
इंडियन पोडोफिलम् (अं०)	२३०
इंडियन वर्थ-वर्ट (अं०)	४७
इंडियन बीच (अं०)	८१
इंडियन मस्टर्ड (अं०)	३२५
इंडियन रेडवुड-ट्री (अं०)	३००
इंडियन या वाइल्ड लिकरिस (अं०)	२२९
इंडियन वाटरचेस्ट-नट (अं०)	३७३
इंडियन वैलेरियन (अं०)	३७५
इंडियन सारसापेरिल्ला (अं०)	३६९
इंडियन सारेल (अं०)	१४०
इंडियन सिन्नेमन (अं०)	१८४
इंडियन सेन्ना (अं०)	३५४
इंडियन स्क्विल (अं०)	८९
इंडियन स्पाइक-नार्ड (अं०)	६५६
इंडियन हेम्प (अ०)	२८४
इक्षु (सं०, बं०)	४८
इक्षुविदारी	१४६
इक्षुरक (सं०)	१७५
इक्षुशर्करा (सं०)	४९, १६२
इक्ष्वाकु (सं०)	१७७
इक्ष्वालिका (सं०)	९६
इख (पं०	४८
इंगुदी (सं०)	३८
इंजर (हिं०)	३५८
इजा (ज्जा)स (अ०)	३७
इजिप्शन लोटस (अं०)	७६
इटसिट (पं०)	२५०
इण्डिटविन (अं०)	९८
इत्रगुल (गुलाब)	१३४
इत्रहिना	३२०
इत्र विलायती	२६४
इनब (अ०)	३०८
इनबुस्सालब (अं०)	२९२
इनारून (हिं०)	३९
इनूला रॉयलेआना (ले०)	१११
इनूला हेलेनियम्	३२८
इन्क़र्दिया (अं०)	२६६
इन्द्रजव (जौ) (हिं०)	१११
इन्द्रजवे तल्ख (फा०)	१११
इन्द्रजवे शीरीं (फा०)	१११
इन्द्रयव (सं०)	१११, ११२
इन्द्रवारुणी (सं०)	३९
इन्द्रायण (न) (हिं०)	३९
इन्द्रावण (म०, गु०)	३९
इन्युलिन (अं०)	९५, १८४
इमली (हिं०)	४०-४२
इमली का पन्ना	४२
इमली का शर्बत	४२
इमली के बीज (चिआँ)	४२
इमेटिक-नट (अ०)	३२१
इमेटिन (अ)	११२
इमोडिन (अ०)	८९
इर्कुल् काफूर (अ०)	६२
इर्कुस्सूस (अ०)	३९०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
इलाची (हिं०)	४४
इलाची पूर्वी (हिं०)	४४
इलायची खुर्द (फा०)	४२
इलायची, छोटी (हिं०)	४२–४४
इलायची, बड़ी (हिं०)	४४–४५
इलायची का तेल	४३, ४५
इशरोल (ड) (हिं०)	४७–४८
इसपगोल (पं०)	४५
इसबगोल (हिं०)	४५–४७
इसबगोल की भूसी	४६, ४७
इसरगोल (हिं०)	४५–४७
इसरगज (वि०)	३६३
इसरमूल (हिं०)	४७–४८
इसरौल (हिं०)	४७–४८
इस्क़ोले हिंदी (अ०)	८९
इस्पंद (फा०, बं०, गु०)	३७७, ४०१
इस्पगोल (अ०)	४५
इस्पागुला (ले०)	४५
इस्बंद (हिं०, बम्ब, बं०)	४०१
[ई]	
ईक्नोकार्पुस फ्रूटेसेंस (ले०)	३७१
ईख (हिं०)	४८–५०
ईगल-वुड (अं०)	७
ईण्डिगोफेरा आर्जेन्टेआ	२२४
ईण्डिगोफेरा आर्टीकुलाटा	२२०
ईण्डिगोफेरा आरेंक्टा	२१९
ईण्डिगोफेरा इन्निआफिला	२२०
ईण्डिगोफेरा टींक्टोरिआ	२१९
ईनूला रासेमोस्न (ले०)	२५१, २५२
ईण्डिगोफेरा सुमात्राना	२२०
ईनुला हेलेनियम (ले०)	२५२
ईपोमेआ पेटाकोइडेआ	३४८
ईपोमेआ मूरीकाटा (ले०)	९४
ईपोमेआ हेडेरासेआ (ले०)	९३
ईराक की मुलेठी	३१०
ईरसा	१११, २५१, २५२
ईरिस जर्मेनिका	२५२
ईरिस प्सेउडोआकोरस (ले०)	३४३
ईशलाङ्गल (बं०)	८४
ईश्वरमुरि (मल०)	२९६
ईश्वरमूल (सं०, हिं०)	४७
ईश्वरी सं०)	४७, २७३
ईषद्गोल (सं०)	४५
ईसबगोल की भूसी (हिं०)	४६
ईस्ट-इण्डियन काइनो (अ०)	२७४
ईस्ट-इंडियन रूट (अ०)	११३
ईस्ट-इंडियन स्क्रू-ट्री (अ०)	२९६
[उ]	
उंवरो (गु०)	१३६
उंमर (म०)	१३६
उक (नेपा०)	४८
उग्रगंधा	११, ११४, ३२२, ३६७
उच्छे (बं०)	८४
उटंगन (हिं०, म०)	५०
उटाटी (म०)	३५९
उटींगण (गु०)	५०
उट्टंगन (प०, बम्ब०)	५०
उतंजन (हिं०, भा० बा०)	५०
उत्तरीदूधी (संथा०)	३७१
उत्पल (सं०)	७७
उदुम्बर (सं०)	१३७
उदुम्बरपर्णी (सं०)	१८८
उदुम्बरसार (सं०)	१३८
उद्दाल (सं०)	६१
उन्नाव (हिं०, अ०, बम्ब०)	५०–५१
उन्नावाम्ल (हिं०)	५१
उन्मत्तक (सं०)	१९९
उन्मुले हिंदी (अ०)	८९
उन्हाली (म०)	३५९
उपकुञ्चिका, उपकुञ्ची (सं०)	२९१
उपकुल्या (सं०)	२४३
उपरसाल (म०)	३६९
उपलसारी (म०, गु०)	३६९
उपलेट (गु०)	११५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
उभी रिंगणी (गु०)	६४
उमरडो (गु०)	१३६
उरूकुल्काफूर (अ०)	६२
उरूकुस्सफर (अ०)	४०१
उर्वारु (सं०)	५९
उलटकंबल (हिं०)	५१–५२
उशबा (अ०)	१५५
उशबा जंगली (देशी)	१५५
उशर	३२–३३
उशीर (सं०)	१२०
उश्नः (अ०, फा०)	१५५
उश्ब (अ०)	१९७
उषक (अ०, हिं०)	५२–५३
उषः (फा०)	५२
उषर, उषार, उष्षर (अ०)	३२
उसारए भंग (फा०)	२८५
उसारए महक (फा०)	३०९
उसारए दारहलद	१९२
उस्तखुद्दूस (भा० बा०)	५३
उस्तुखु (खू) दूस	५३
उस्तू (ख) खूदूस (भा० बा०)	५३
उस्तू खूदूस कश्मीरी	५४
उस्तू खूदूस भारतीय	५३
उस्तू खूदूस विदेशी	५४
[ऊ]	
ऊंस (म०)	४८
ऊख (हिं०)	४८, ४९
ऊद (अ०, द०)	७, ३४०
ऊद, गर्की (अ०)	७
ऊद, नीमगर्की (अ०)	७
ऊदसलीब (अ०)	५४–५५
ऊदसालप (हिं०, भा०, बा०)	५४–५५
ऊदुल्क़र्ह (अ०)	५
ऊदुल्बर्क (अ०)	९१
ऊदुल्वज्ज (अ०)	३४२
ऊदुल् सलीब (अ०)	५४–५५
ऊभा गोखरू (गु०)	३३
ऊमर (हिं०)	१३६
ऊर्जीनेआ इंडिका (ले०)	८९
ऊर्जीनेआ कारोमंडेलिआना (ले०)	९०
ऊर्जीनेआ मारीटिमा (ले०)	९०
ऊश्मः (अ०)	१५५
ऊश्न	१९७
ऊषः (फा०)	५२
ऊषज (अ०)	५२
ऊषण (सं०)	२९५
ऊषणा (सं०)	२४३
[ऋ]	
ऋक्ष द्राक्षा (सं०)	५७
ऋषभी (सं०)	१०२, १०३
ऋषिपित्ता (सं०)	२३०
ऋष्यप्रोक्ता (सं०)	५६, १०२, १०३
[ए]	
एउकालीप्टुस ग्लोबुलुस	३२३
एउजेनिआ आरोमाटिकुस	३३३
एउजेनिआ कारिओफिल्लुस (ले०)	३३१
एउपाटोरिउम् अयापाना (ले०)	२६
एउफर्बिआ थाम्सिआना (ले०)	३९७
एउफार्बिआ थीमिफोलिआ	१९६
एउफार्बिआ निबूलिआ (ले०)	३८८
एउफार्बिआ नेरिईफोलिआ (ले०)	३८८
एउफार्बिआ मिक्रोफिल्ला	१९६
एउफार्बिआ हिपेरीसीफोलिआ	१९७
एउफार्बिआ हिर्टा	१९७
एउरिआले फेरॉक्स (ले०)	२९२
एउलोफिआ काम्पेस्ट्रिस	३७२
एउलोफिआ नूडा (ले०)	,,
एकोरिन (अं०)	३१४
एकोनाइट (अं०)	२५८, ३५२
एकोनाइट विलायती	३५२
एकोनाइटिन (अ०)	२५९, ३५२
एकोनीटिक एसिड (अं०)	१४
एक्लिप्टा आल्बा (ले०)	२८२
एक्लिप्टीन (अं०)	२८३

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
एखरो (गु०)	१७५
एग्ले मार्मेलॉस (ले०)	२७८
एडगज (सं०)	१३८
एडाटोडा (अं०)	१३
एडाटोडिक एसिड (अं०)	१३
एण्डिह्व (अं०)	९७
एदअ (अ०)	१२२
एनाकार्डिक एसिड (अं०)	१३
एनानास (यू०, फ्रां०, अम०,पुर्त०)	१५
एन्ड्रोग्रेफाइड (अं०)	९५
एन्ड्रोग्रेफिस (अं०)	९४
एन्ड्रो ग्रेफोलिड (अं०)	९५
एपल (अं०)	३८७
एपिओल (अं०)	८३
एपोकोडीन (अं०)	२३
एपोमार्फीन (अं०)	२३
एफेड्रा	३९५
एफेड्रा गेरार्डिआना (ले०)	३९५
एफेड्रा वुल्गारिस (ले०)	३९५
एफेड्रा नेब्रोडेन्सिस (ले०)	३९५
एब्सिन्थिन (अं०)	२०
ए (ऐ) ब्रिन (अं०)	१२९
एब्रेलिन (अं०)	१३०
एमिग्डेलिन (अं०)	२२३
एम्बलिक माइरोबलन्स (अं०)	३१
एम्ब्लिका ऑफीसिनालिस (ले०)	३१–३२
एम्बेलिया रसजेरिआम कोट्टाम (ले०)	२७०, २७१
एम्बेलिया रीबेज (ले०)	२७०, २७१
एम्बेलिक एसिड (अं०)	२७२–२५३
एरंड (सं०)	५५–५६
एरंड (अरंड) ककड़ी (हिं०)	२२४
एरण्ड (सं०)	५५–५६
एरण्डकर्कटी (सं० ?)	२२४
एरण्डखरबूजा (हिं०)	३२४
एरण्ड (म०)	५५–५५
एरण्डी (गु०)	५५–५६
एरिथ्रीन (अं०)	२२४

नाम	पृष्ठ
एरीका कातेकू (ले०)	३८०
एरीकानट (अं०)	३८०
एरीथ्रीना ईण्डिका	२४०
एरीथ्रीना वारिएगाटा प्र० ओरिएन्टालिस (ले०)	२४०
एरीथ्रीना सुबेरोसा (ले०)	२४
एर्वारु (सं०)	५९
ए र्वा लानाट (ले०)	२४२
एलक	१४०
एलचा (गु०)	४४
एला (सं०)	४२
एलची (गु०)	
एलम (ता०)	४२
एलिया (म०)	१४०
एलियो (गु०)	१४०
एलीओ (गु०)	१४०
एलीफैन्ट्स-फूट (अं०)	३८५
एलुआ (वा) (हिं०, द०)	१४०
एलुमिनियम	३१२
एलेट्टारिआ कार्डामोमुम् (ले०)	४२
,, प्रभेद मिनिस्कुला (ले०)	४८
,, प्रभेद मेजर (ले०)	४३
एलेन्जीन (अं०)	२
इलोफांटोपुस स्काबेर (ले०)	२९४
एलो (अं०)	१४०
एलोइन (अं०)	१४२
एलोज (अं०)	
एलोज, अदन (अं०)	१४०–१४१
,, केप (अं०)	१४१
,, जंजीरवार (अं०)	१४१
,, परेई (ले०)	१४१
,, फेरॉक्स (ले०)	१४१
,, बारबेडोज (ले०)	१४१
,, स्कोत्रीन (अं०)	१४१
एलो-वुड (अं०)	७
एलो-वेरा (अं०)	१४१
एल्पिनिन (अं०)	१०९
एसिड पोटासियम् आक्जलेट (अं०)	१४१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
एसेफ़ीटिडा (अं०, ले०)	४०५
[ऐ]	
ऐकेशिआ आराविका (ले०)	२६०
ऐकैशिया-ट्री (अं०)	२६०
ऐकैशिया सेनेगल (ले०)	२६१
ऐंठक (हि०)	२९६
ऐंठनी (हि०)	२९६
ऐंड्रोपोगोन स्कीनांथुस	१५६
ऐरावत	२२६
ऐरावती (सं०)	२४२
ऐल्पाइन नाट-वीड (अं०)	२
ऐश-कलर्डफ्लीवेन (अं०)	३६७
ऐस्पेरिगिन	२८५
[ओ]	
ओंका (पं०)	१६
ओंक्ला (गु०)	१
ओंगा (हि०)	१५०
ओंवा (म०)	११
ओंवा (बम्ब०)	२४२
ओकोकार्पुस लांगीफोलिउस	२०७
ओनोस्मा ब्राक्टेआटुम् (ले०)	१२८
ओनोस्मा हूकेरी	३२४
ओपियम्	२०
ओपियम् पॉपी (अं०)	२०
ओपेरक्यूलिना टर्पेथुम् (ले०)	२१४
ओफेलिक एसिड (अं०)	१५२
ओरिस रूट (अं०)	२५१
ओल (सं०)	३८५
ओलिवेनम् (अ०)	३६५
ओलियम् लीनी (ले०)	२८
ओलेउम् कूबेबी (ले०)	७६
ओलेउम् गॉस्सोपी सेमिनिस (ले०)	६९
ओलेउम् मिरीस्टिका (ले०)	१६४
ओलेउम् सेसामी (ले०)	१७९
ओलेउम् हिड्नोकार्पी (ले०)	१८२
ओलोटकंबल (बं०)	५१
ओल्डेन्लांडिया कोरीम्बासा (ले०)	२२९
ओसद कूफी (आ०)	२०७
ओसिमुम् किलिमान-ऑस्कारिकुम (ले०)	७२
ओहर (पं०)	३२५
ओहेक अड़ा (संथा०)	२५०
[औ]	
औस्तखदूस (पं०)	५४
[अं]	
अंगजद (फा०)	४०५
अंगोज (फा०)	४०५
[क]	
कंकतिका (सं०)	५६
कंकोल (ल्ल) (सं०)	७५
कंगुणी (सं०)	३०३
कंघी (हि०)	५६
कंजा (हि०)	५७
कटकशरपुंखा (सं०)	३६०
कंटकारी (सं०)	६३
कंटकाढ्या (सं०)	३८६
कंटकीपलास (सं०)	२४०
कंटपुंखा	३६०
कंटालोयोर (काठियावाड़)	३८८
कंटोला (गु०)	६
कंडियारी (हि०)	५१, ६३
कंदल (अफगा०)	५२
कंदुरी (पं०)	१०१
कंबील (अ०)	७८
कंबीला (फा०)	७८
कंबठ (म०)	१०६
कंवल (हि०)	७६
कंवलगट्टा (हि०)	७६–७७
कंवाच (हि०)	१०२
ककड़सिंगी (पं०)	९१
ककड़ी (हि०)	५९
ककड़ी फूट	५९
ककड़ी बड़ी	५९
ककना (संथाल)	३९८
ककरोंदा (हि०)	१०७, २०४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
ककहिया (बि०)	५६	कट्की (बं०)	११०
ककही (हिं०)	५६	कठ (गु०)	११५
ककुभ (सं०)	२६	कठबेल (बं०)	१०६, १४५
ककोडा (हिं०)	६०	कठभिलावाँ (देहरा०)	१५३
कङ्कोलक (सं०)	७५	कठमहुली	६१
कच (अ०)	६७	कड़वा इन्द्रजव (गु०)	१११
कचनार (ल) (हिं०, पं०)	६०	कड़वा कुटज (कुडा)	१११
कचनार पीला	६१	कड़वा गोखरू (गु०)	१३६
कचनार लाल	६१	कड़वा सुरिंजाव	३८२
कचनार श्वेत	६१	कडवां तुरीयाँ (गु०)	१८६
कचरा (म०, बम्ब)	८५	कडवीं घीसोंडी (काठि०)	१८६
कचूर (हिं०, बम्ब०)	८५	कड़वी तुंबडी (गु०)	१७७
कचूरी (गु०)	६२	कड़वी तुरई (हिं०)	१८६
कचोर (म०)	६२	कड़वी तोरई	१८६
कच्छुरा (सं०)	१०३	कड़वी नारंगी	१८६
कजखबीन (अ०)	१६२	कड़वी लौकी	१७७
कटङ्कटेरी (सं०)	१९०	कड़वे बादाम का तेल	२५०
कटतुरइया (हिं०)	१७५	कड़ूआ इन्द्रजौ (हिं०)	१११
कटभी (सं०)	३७५	कडुक वठी (म०)	१८१
कटसरैया (हिं०)	२४५	कड़ुकवीठ (म०)	१८१
कटहल (हिं०)	१५	कडुक्काय (ता०)	३९
कटहल सफरी	१५	कडु तुरई, कठु दोड़के (म०)	१८०
कटाइ (कटेरी) छोटी (हिं)	६३	कडू (गु०)	११०
कटाइ कलाँ (फा०)	६४	कडू (सोलन, शिमला)	१८७
कटाइ खुर्द (फा०)	६३	कडू इन्दर जौ (म०)	१०७
कटाइ बड़ी (हिं०)	६४	कडूजिरें (म०)	७९
कटुकपित्थ (सं०)	१८१	कडू निंब (म०)	२१७
कटुकवठी (म०)	२६५	कडो (गु०)	१११
कटुका (की) (सं०)	११०	कणगूगल (सं०)	१३५
कटुतुम्बी	१७७	कणा (सं०)	२४३
कटुरोहिणी (सं०)	१०७	कणेर (गु०)	६९
कटुशिग्रु (सं०)	३६८	कण्ठकारी (सं०)	६३, ६४
कटुस्नेह (सं०)	३६१	कण्टकिकरञ्ज (सं०)	५७
कटेक्यू (अं०)	६७	कण्टिकारी (बं०)	६३
कटेरी (हिं०)	५७	कण्डा (हिं०)	३५९
कट्तुरइआ (हिं०)	१८६	कण्डुरा (सं०)	१०१
कट्फल (सं० बं०)	९१	कण्टपुंखा	१६०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
कण्हेर (म०)	६९
कत (हिं०, बं०)	६७
कतक (सं०)	२१३
कतरा (थारू)	१२०
कतीरा (भा० बा०)	६५
कतीराए हिंदी (हिं०)	६५
कतीरा देशी	६५
कत्तान (अ०, फा०)	२७
कत्थ (द०)	६७
कत्था (हिं०)	६७
कत्थाकाला	६७
कथ (हिं०)	६७
कदिर (अ०)	१०२
कदीमुल्बित (स०)	२८२
कदूए तल्ख़	१७७
कद्दूए रूमी (फा०)	११७
क(कि)नब (फा०)	३८४
कनइल (हिं०)	६९
कनक (सं०)	१९९
कनब (फा०)	२८३
कनरी (हिं०)	८९
कनसुपती (रांची)	३९२
कनेर (हिं०)	६९
कनेर पीला पीत	६९
कनेर लाल (रक्त)	६९
कनेर सफेद (श्वेत)	६९
कनसुपती (रांची०)	३९२
कन्ट्री बोरेज (अं०)	२२२
कन्ट्री-मैलो (अं०)	५६, २६४
कन्ट्री-सॉरेल (अ०)	१५४
कण्डा (हिं०)	३५९
कन्थार (गु०)	४०५
कन्थारी (सं०)	४०५
कन्दनायक (सं०)	३८५
कन्दपलाश (सं०)	३४६
कन्दोद्भवा गुडूची (सं०)	१३२
कन्धारी हींग	४०७
कॅपरिस (यू०)	७५
कपास (हिं०)	७०
कपास अमेरिका, बर्बदी, ब्राजीलीय	७१
कपास उद्यान	७१
कपास का डोंडा	७०
कपास ढोंढ़	७०, ७१
कपास की छाल	७०
कपास की जड़	७०
कपास की ढेंढ़	७०
कपास के पिंडे (द०)	७०
कपास देशी	७१
कपास बन	७१
कपास विदेशी	७१
कपासेर बीज (बं०)	७०
कपिकच्छु (सं०)	१०२
कपित्थ (सं०)	१०६
कपिल: (म०)	७०
कपिशा (सं०)	१०८
कपीलो (गु०)	७८
कपूर (हिं०, म०, गु०)	७३
कपूर, कैसूरी	७३
कपूर, चीनिया	७३
कपूर, फारमूसा	७३
कपूर, भीमसेनी	७३
कपूरकचरी (हिं०, बं०)	७४
कपूरकचरी, असली	७४
कपूरकचरी, चीनी	७४
कपूरकचरी, देशी	७४
कपूरकचरी भारतीय	७४
कपूरकाचरी (म०, गु०)	७४
कपूरका फूल	७३
कपूरतुलसी (हिं०)	७२
कपूरी (हिं०)	३६९
कपूरी मधुरी (गु०)	३६९
कबर (हिं०, बम्ब०, अ०, फा०)	७५
कबाबचीनी (फा०, हिं०, बम्ब०)	७५
कबाबचीनी का तेल	७६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
कबाबेसीनी (अं०)	७६
कबाबः (फा०)	७६
कबाबा (पं०)	२०२
कबाब्रेहेखंदां (फा०)	२०२
कबार (पं०)	७४
कबीरुल् अश्जार (अ०)	२६२
कबीला (हिं०)	७८, ७९
कबूतर का झाड़ (द०)	२४१
कब्र (हिं०, अ०)	७५
कमकाम	३४०
ककमरस (हिं०)	२३२
कमल (सं०, हिं०, बं०, म०, गु०)	७७
कमल की जड़	७७
कमलगट्टा (हिं०)	७७
कमलागुंडि (द०)	७८
कमलिनी (सं०)	७७
कमाला (ले०)	७८
कमीला (हिं०)	७८
कमूनबर्री (अ०)	७९
कमूनुल्मुलूकी (अ०)	७१
कमूने अरमनी, कमूने रूमी (अ०)	१६७
कमेला (ले०)	७८
कमुकुम (बं०)	१०४
कम्पिल्ल (क) (सं०)	७८
कम्मरकस (हिं०, गु०, बम्ब०, भा० बाजार)	३४७
मम्मून अब्यज (नब्ती) (अ०)	१६६
कम्मून-एल-मुलूकी (अ०)	११
क़रउल्मुर्र	१७७
करक्काय (ते०)	३९९
करंजुवा (आ) (हिं०)	५७
करंडियुं (गु०)	२३४
करकीमास (फा०)	१०४
करकुमिन (अ०)	६२
करक्काय (ले०)	३९९
करजनी (हिं०)	१२९
करजीरी (हिं०)	७९
करंज (सं०)	८१
करंजतैल (सं०)	८१
करटीलो (म०)	६०
करण्टा (हिं०)	३७१
करपस (भा० बा०)	१०, ८२
क़रन्फ (फू) ल (अ०)	३३३
करफस (अ०, भा० बा०)	८२
करफसे हिंदी (फा०, अ०)	१०
करवी (बं०)	६९
करवीर (सं०)	६९
करवीरीन (अ०)	६९
कराइगोंद (गु०)	६५
कराया	६५
करियातु (गु०)	१५१
करियारी (हिं०)	८४
करी (पं०)	८३
करीर (सं०)	८३
करील (हिं०)	८३
करील सफेद फूल	७५
करुइनी (हिं०)	८१
करेण (गु०)	६९
करेरुआ (हिं०)	८४
करेलां (हिं०)	८४
करेला उद्यानज	८५
करेला छोटा	८५
करेला जंगली	८५
करेला बड़ा	८५
करेला बरसाती	८५
करेला बैसाखी	८५
करेला सफेद	८५
करेली (हिं)	८४
करैला (हिं०)	८४
करोया (अ०, फा०)	१६७
कर्कटशृङ्गी (सं०)	९१
कर्कटी (सं०)	५९
कर्कभेदा (मा०)	३२०
कर्कशच्छद (सं०)	२२६
कर्का (कुमायूं)	२०५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
कर्कोटक (की) (सं०)	६०, २२८
कर्चूर (सं०)	६२
कर्णफूल (सं०)	१५९
कर्पास (सं०)	७०
कर्पासमूलत्वक् (सं)	७०
कर्पूर (सं०)	७२
कर्पूरवल्ली (ता०)	२४२
कर्पूरहरिद्रा (सं०)	३१
कर्बुदार (सं०)	३३७
कर्षफल (सं०)	२६७
करहाट	३२२
करावी (सुरयानी)	१६७
कलगा	२९५
कलथी (गु०)	११४
कललावी (म०)	८६
कलिद्रुम (सं०)	२६७
कलियारी (हिं०)	८६
कलिहारी (हिं०)	८६
कलोंजी (गु०, म०)	२९१
कलौंजी (हिं०)	२९१
कल्पनाथ (हिं०)	९४
कवच (गु०)	१०२
कवचा (हिं०)	२९२
कवाका तेल	१८२
कवीत (हिं०)	१०६
कशेरु (क) (सं०)	८७
कशेरु डिला (पं०)	८७
कश्नीज़ (फा०)	२००
कश्नीज़ रतब (अ०)	२००
कश्नीज़ ख़ुश्क (अ०)	२००
कश्मीरज (सं०)	११५
कश्मीर बिटरहर्मोडेक्टिल	३८२
कश्मीरी नाशपाती (हिं०)	२७६
कश्रुरुम्मान (अ०)	२६
कष्मल (ने०)	१९०
कसनाज (फा०)	९७
क़सब (अ०)	३४१

नाम	पृष्ठ
क़सबुज़्ज़रीरा (अ०)	१५१
कसबुस्सुक्कर (अ०)	४८
कसीरुल्मुन्फ़ेअत (अ०)	११९
कसेरु (क) (सं०)	८७
कसेरू (हिं०)	८७
कसेलान (गु०)	८०
कसैली (हिं०)	३८०
कसौंजी (हिं०)	८८
कसौंदी (हिं०)	८८
कसौंदी काली (हिं०)	८८
कस्कूटा एउरोपेआ (ले०)	२४
कस्कूटा रिफ्लेक्सा (ले०)	२३
कस्कूटीन (अं०)	२४
कस्तूरभेंड (म०)	३११
कहआ (हिं०)	२६
कांकड़ी (बं०, म०, गु०)	५९
कांकच (गु०)	५७
कांकड़े (मा०)	७०
कांकरोल (बं०)	६०
कागडियो (गु०)	३६९
कागणाकेरो (गु०)	२६३
कांचका (गु०)	६९
कांचन (म०)	६०
कांटाकरंज (हिं०)	५७
कांटाजाती (बं०)	२४५
कांटालंमायु (गु०)	३०१
कांटासेरियो (गु०)	२४५
कांटेगोखरू (म०)	१३२
कांटेघोत्रा (म०)	३९६
कांठे निवडुंग (म०)	३८८
कांटोपलाश (उड़ि०)	६५
कांटोला (मा०)	६०
कांडवेल (म०)	३९९
कांडेक्षु (सं०)	९४
कांडेरी (सिंध)	६३
कांदर (हिं०)	५२
काँदा (हिं०)	८९, २५२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
काँबो (गु०)	२५२	काचूर (गु०)	६२
कांवल (म०)	७६	काजरा (म०)	१०८
कांस, कांसा (हिं०)	९६	काजी (अ०)	१०२
कांसकी (गु०)	५६	काजू (हिं०, म०, गु०)	९२
काइस्तला शाक (बं०)	२९२	काजूकुली (मेवाड़)	९२
काउ-इच (अं०)	१०२	काजूग्ली (मार०)	९२
काउ-हेज (अं०)	१०२	काञ्चन (बं०)	६१
काओन-लिअंग-किअंग (चीनी)	११३	काजूगुली (मार०)	९२
काकड़ (देश०)	९१	काजूत (क) (सं०)	९२
काकड़शिंगी (म०)	९१	काञ्चनार (सं०)	६१
काकड़ (डा) सिंगी (पं०)	९१	काजूफल (सं० ?)	९२
काकड़ाश्रृङ्गी (बं०)	९१	कॉटन (अं०)	७०
काकड़ासींगी (हिं०)	९१	कॉटन-प्लांट (अं०)	७०
काकणन्ती (सं०)	१२९	कॉटनरूट-बार्क (अं०)	७०
काकतिन्दुक (सं०)	१०८	कॉटन-वूल (अं०)	७०
काकपीलु (सं०)	१०८	कॉटनसीड-ऑयल (अं०)	७०
काकमाच (पं०)	२९२	कॉटन सीड्स (अं०)	७०
काकमाची (सं०)	२९२	काँटाजाती (बं०)	२४५
काकमाचीन (अं०)	२९२	कांटासेरियो	२४५
काकमाता (सं०)	२९२	काटेकू नीग्रुम (ले०)	६७
काकर (ते०)	८४	कांटेघोत्रा (म०)	३९६
काकुलः कुबार (अ०)	४४	कांठे सामर (म०)	३८६
काकुलः सिगार (अ०)	४२	कांठगिदरो (सिंध)	२२४
काकुले जकर (अ०)	४४	कांडवेल (म०)	३९९
काकुले जंजी (अ०)	४४	काण्डा (सं०)	३५९
कॉक्लुस हीर्सुटुस (ले०)	२३७	काण्डेक्षु (सं०)	९७
कॉक्लोस्पेर्मुम गॉस्सीपिउम (ले०)	६५	कात (बं०, फा०)	६७
कॉक्लोस्पेर्मुम रेलिजिओसुम् (ले०)	६५	कात (द) (अ०)	६७
कॉक्सीनिआ इंडिका (ले०)	१०१	कातिरुद्दम (अ०)	१२२
कॉक्सीनिआ कॉर्डीफोलिआ (ले०)	१०१	काथी (गु०)	६७
कागजी नीबू (हिं०)	२१६	कादी (अ०)	१०३
काँगजी लेबू (बं०)	२१६	कानफूल (हिं०)	१९५
कागड (बं०)	९६	कान्नाबिस इंडिका (ले०)	२८३
कागडाकेरी (गु०)	२६१	कान्नाबिस साटिवा (ले०)	२८३, २८४
कागडियो कुडेर (गु०)	३६९	कॉन्वाल्वुलस आल्सीनोईडेस	३४९
कागदी लिंबु (म०)	२१६	कॉन्वाल्वुलस प्लूरिकाउलिस	३४९
कागफल (बं०)	१०८	कॉन्वाल्वुलस [illegible]	३४९

CC-0, Panini Kanya Maha[illegible]

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
कापलूस (यू०)	२२८
कापसी (म०)	७०
कापासगाछ (बं०)	७०
कापूर (फा०)	७२
कापूस (म०)	७०
कापोक-ऑयल (अं०)	७२
कॉप्टिडिस राडिक्स (ले०)	२९३
कॉप्टिस (अं०)	२९३
कॉप्टिस टीटा (तीता) (ले०)	१८८, २९३
काप्पारिस अफील्ला (ले०)	८३
काप्पारिस डेसिडुवा (ले०)	८३
काप्पारिस ज़ीलेनिका (ले०)	८४
काप्पारिस सेपीआरिआ (ले०)	४०५
काप्पारिस स्पीनोसा (ले०)	७५
काप्पारिस होरिडा (ले०)	८४
काफल (कुमा०, गढ़०, नेपाल)	९३
काफ़ूर (अ०)	७२
काबाबचिनि (बं०)	७६
कॉमन क्रेस (अं०)	१४६
कॉमन फ्युमिटरी (अं०)	२२८
कामोणी (म०)	२९२
काम्फोरा (ले०)	७२
काम्बोजी (सं०)	१२९
कायछाल (बं०)	९३
कायफल (हिं०, म०, गु०)	९३
कारका (देह०)	३२१
कारले (म०)	८४
कारवल्ली (सं०)	८४
कारवी (सं०)	१६७
कारवेल्लक (सं०)	८४, ८५
कारस्कर (सं०)	१०८
कारिओफ़िलसुम (ले०)	३३३
कारूनक (फा०)	३४२
कारुम कार्वी (ले०)	१६८
कारुम बल्बोकास्टानुम् (ले०)	१६८
कारुम रॉक्सबुर्घिआनुम (ले०)	१०
कारुम स्ट्रिक्टोकार्पुस (ले०)	१०
कारेला (गु०)	८४
कार्डामोमी फ्रुक्टुस (ले०)	४२
कार्डिआ आब्लीकुआ	३३७
कार्डिआ मीक्सा	३३७
कार्डिआ रॉथीआइ (ले०)	२५४
कार्डिओस्पेर्मुम् हालीकाकेबुम (ले०)	१०५
कार्थेमुस टिंक्टोरिउस् (ले०)	१०५
कार्पास (सं०)	७०
कार्पासबीज (सं०)	७०
कार्पासी (सं०)	७०
कार्बन-बाइ-सल्फाइड (अं०)	३६
कार्वेक्रोल (अं०)	२२२
कार्वोन (अं०)	१६९
कालजाम (बं०)	१५४
कालजीरा (ब०)	२९१
कालमेघ (बं०, हिं०, (को०)	९४, ३४९
कालमेघिन (अं०)	९५
कालहिंस (देहरा०)	८४
कालांकोए पीन्नाटा (ले०)	२४२
कालाचिरपोट्यो (शेखावाडी)	२९२
कालाजीरा (हिं०)	१६८
कालाजीरे का तेल	१६८
कालादाणा (गु०, म०)	९५
कालादाना (हिं०, बं०)	९५, ३४९
कालानागकेशर	२०७
कालाबोल (म०)	१४०
कालामरी (गु०)	२९५
कालामुनक्का	३०८
कालामुस (ले०)	३४२
कालामुस आरोमाटिकुस (ले०)	३४५
कालामुस ड्राको	१२२
कालिका (सं०)	२९१
कालीकुटकी (म०)	११०
काली खुरासानी-अजवायन	१३
कालीजीरी (हिं०)	७९
कालीजीरी (कुमा०, द०, गु०, मा०, बम्ब)	७९
कालीपाठ (गु०)	२३४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
कालोमकोय	२९२
कालीमरिच (हिं०)	२९५
कालीमिर्च (हिं०)	२९५
कालीमूसली (हिं०)	३१२
कालीयो सरस (गु०)	३७४
कालीहलद (बं०)	६३
कालीहलदी (हिं०, गु०)	६३
कालेंडुला ऑफ्फीसिनालिस (ले०)	१०५
कालोकुपो (गु०)	९५
कॉलोट्रॉपिस जीगांटेआ (ले०)	३२, ३३
कॉलोट्रॉपिस प्रोसेरा	३२, ३३
कॉलोसिथिन (अं०)	१८६
काल्चीकुम लूटेउम् (ले०)	३८२
काल्लीकार्पा माक्रोफिल्ला (ले०)	२५३
कॉल्यूटूरीन	३४०
काश(स) (सं०, हिं०)	९६
काशमाल (जौन०)	१९०
काशमोइ (जौनसार)	१९०
काश्मरी (सं०)	१२५
काश्मरीफल (सं०)	१२५
काश्मर्यफल (सं०)	१२५
काश्मीरज (सं०)	१०४, २५०
काश्मीरजीरक (सं०)	१६७
काश्मीरी सेव	३८८
काष्ठ	१७८
कासंदा (बं०)	८८
कास (सा) (हिं०)	९६
कासनी (फा०, हिं०) / उद्यानज, वन्य	९७
कासनी के बीज (हिं०, पं०, गु०)	९७
कासनी दश्ती (फा०)	१९५
कासनी सहराई (फा०)	१९५
कासमर (को०), (संथा०)	१२५
कासमर्द (सं०)	८८
कासविंदा (म०)	८८
कासिंद (बेपा०)	८८
कासोंदरो (गु०)	८८
कॉस्टस (अं०)	११५

नाम	पृष्ठ
कॉस्टुस स्पेसिओसुम (ले०)	८७
कास्सिआ ऑक्सीडेंटालिस (ले०)	८८
कास्सिआ आंगुस्टीफोलिआ	३५४
कास्सिआ आब्सुस (ले०)	१४७
कास्सिआ फिस्टुला (ले०)	२४
कास्सिआ टोरा (ले०)	१४५
काही (पं०)	९६
काहू	९८
काहू उद्यानज	९८
काहू की अफीम (हिं०)	९८
काहू के बीज (हिं०)	९८
काहू जंगली (हिं०)	९८
काहू बर्री (फा०)	९८
काहू सहराई (फा०)	९८
किंगोरा (गढ़०)	१९०
किम्स क्युमिन (अं०)	११
किंवाच (हिं०)	१०२
किंशुक (सं०)	२३२
किक्कर (पं०)	२६०
किणिही (सं०)	१५०
किनब (फा०)	२८३
किनीबुटी (सिंध)	४०७
किन्नः (अ०)	१२३
किन्नब (फा०)	२८३
किन्नव (अ०)	२८३
किरमणि ओंवा (म०)	९९
किरमाणी अजमो (गु०)	९९
किरमाणि यवानी (सं०)	९९
किरमान (फा०)	९९
किरमानी अजवायन (हिं०)	९९
किरमाल (हिं०)	८१
किरमाला (हिं०)	९९
किरयात (ट) (अं०)	९४
किराईत (म०)	१५१
किराततिक्त (सं०)	१५१
किरिड (सिंध)	८३
किलिंच (हिं०)	९७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
किलिम (सं०)	१९९	कुङ्कुम (सं०)	१०४
किल्ज (फा०)	३२०	कुच (संथा०)	३१७
किवांच (मा०)	१०२	कुचन्दन (सं०)	१४४, २२०
किशमिश	३०८	कुचला (हिं०)	१०८
क़िश्रुल् खशख़ाश (अ०)	२०	कुचिला (हिं०)	१०८
क़िस्साऽ (अ०)	५९	कुचूला (फा०)	१०४
कीकर (हिं०)	२६०	कुचेला (सं०)	२३४
कीचक (सं०)	३४१	कुज्ब (अं०)	२००
कीटजा (सं०)	३३५	कुज्बुर (अ०)	२००
कीटमारी (सं०)	४८	कुज्बुरतुल् हिमार	२२८
कीड़ामारी (गु०, म०)	४८	कुझि (हिं०)	१२१
कुकसीम (बं०)	३६७	कुट (ठ) (हिं०)	११५
कुँचो (बं०)	१२९	कुटकी (हिं०)	११०, १८८, २९४
कुंचिला (बं०)	१०८	कुटज (सं०)	१११
कुंची (मल०)	१२९	कुटजकड़वा (सित)	११२
कुंजद (फा०)	१८९	कुटजत्वक्	१११, ११२
कुंझि (हिं०)	१२१	कुटजफल	१११
कुंदरु (हिं०)	१०१	कुटजबीज	१११, ११२
कुंदुरु (हिं०)	१०१	कुटज मीठा (असित)	११२
कुंदुरेरूमी (फा०)	२९७	कुटीर (को०)	१९०
कुंभा (म०)	१३५	कुटुमा	६४
कुंभी (सं०)	९३५	कुठ (पं०)	११५
कुकटी (हिं०)	७०	कुड़ (बं०)	११५
कुकरछदी (हिं०)	१०७	कुड़चिगाछ (बं०)	१११
कुकरौंधा (हिं०)	१०७	कुड़ा (हिं०)	१११
कुकसीम (बं०)	३६७	कुत्न (अ०)	७०
कुकुंबर मोमोर्डिका (अ०)	५९	कुतुम्बक (सं०)	१३६
कुकुडवेल (बम्ब०)	२५५	कुनरू (हिं०)	१०१
कुकुडवेला (गु०)	२५५	कुनरू जंगली (हिं०)/मीठा	१०१
कुकुन्दर (सं०)	१०७	कुनुयुंग (को०)	३५६
कुकुरचीता (बं०)	३२१	कुन्दुरू (सं०)	३६५
कुकुरछदी (हिं०)	१०७	कुन्दुर (हिं०, द०, (फा०)	३६५
कुकुरवेंदा (म०)	१०७	कुन्दुरगोंद	३६५
कुकुरविचा (हिं०)	१३२	कुन्दुरज़कर	३६६
कुकुरशोंका (बं०)	१०७	कुन्दुर उन्सा	३६६
कुकुरांड (हिं०)	१३२	कुम्भो (बं०)	३६५
कुंकुम	१०४	कुप्तब (अं०)	२८४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
कुपीलु (सं०)	१०८	कुलञ्ज (सं०)	११२
कुबेराक्ष (सं०)	५८	कुलञ्जन	११२
कुमडा (बं०)	११७	कुलत्थ (सं०, बं०)	११४
कुम्मस्ना (अ०)	२११	कुलत्थिका (सं०)	११४
कुमार (उड़ि०)	१२५	कुलथी (हिं०)	११४
कुमारी (सं०)	१४०	कुलाइ (पं०)	६०
कुमारीसार (सं०)	१४०	कुलामारसल (माल०)	२२५
कुमिज (मल०)	१२६	कुलंजन (सं०)	११२
कुमिल (र) (केरल)	१२५	कुलिंजन (हिं०, म०, सिंध)	११२
कुमिल (मल०, ता०)	१२५	कुलीथ (म०)	११४
कुमीनुम सीमीनुम (ले०)	१६६	कुलेखाड़ा (बं०)	१७५
कुम्पिल	१२५	कुल्ब (अ०)	१४५
कुम्बिल (मल०)	१२५	कुल्ली (हिं०)	६५, ६६
कुम्भिका (सं०)	१६१	कुल्लीका लासा (हिं०)	६६
कुम्भी (हिं०)	१६१	कुल्लू	६६
कुम्भी तैल	१६१	कुवाडियो (गु०)	१४५
कुम्मस्ना (अ०)	२११	कुवार (गु०)	१४०
कुरची	११२	कुवारगंदल (पं०)	१४०
कुरचीन	११२	कुश्तेशामी (अ०)	२५२, ३२८
कुरचीसीन	११२	कुष्ठ (सं०)	११५
कुरण्टक (सं०)	२४५	कुष्ठघ्नी (सं०)	२६८
कुरथी (हिं०)	११४	कुष्ठ भेद (सं०)	२५१
कुरथा, कुरैया (हिं०)	१११	कुष्ठवैरी (सं०)	१८१
कुरास्ना (बाम्ब०)	३२७	कुष्ठीन (अ०)	११६
कुरुंजो (संथा०)	८१	कुसुम (सं०)	३१६
कुरूया (अ०)	१६७	कुस् - कुस् (अ०)	१२०
कुरो (पं०)	१११	कुस्तुम्बुरू (सं०)	२००
कुर्कूमा आरोमाटिका (ले०)	३१	कुस्तुलमुर (अ०)	११५
कुर्कूमा डोमेस्टिका (ले०)	४०१	क़ुस्ते तल्ख़ या स्याह (फा०)	११५
कुर्कूमा लांगा (ले०)	४०१	क़ुस्ते हिंन्दी (अ०)	११५
कुर्कूलीगो ऑर्किओइडेज	३१२	कूकुरबिटीन	११७
कुर्चीवार्क (अं०)	११२	कूकूमिस ऊटीलीस्सिमुस (ले०)	५९
कुर्तुम हिंदी (अ०)	९५	कूकूमिस मोमोर्डिका (ले०)	५९
कुर्फुस (अ०)	६९	कूट, कूठ (हिं०)	११५
कुर्सूफ (अ०)	६९	,, कड़व (कड़ुआ), हिन्दी, स्याह	११५
कुलंजन (सं०, म०)	११२, ११३	कूट शाल्मली	३८७
कुलंजन देशी (हिं०)	११४	कूबेवी फ्रुक्टुस (ले०)	७५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
कूबो (गु०)	१३५	केर, केरंडा (गु०)	८३
कूरी (देहरा०)	२२५	केरियोफाइलिन	३३४
कूर्कुमा जेडोआरिआ (ले०)	६२	केलामीन	३४४
कूर्कुमा सेसिआ (ले०)	६३	केलामेनोन	३४४
कूष्माण्ड (सं०)	११७	केंवाच (हिं०)	१०२
कृतमाल (सं०)	२५	केलोन (जौनसार)	१९७
कृतवेधन (सं०)	१८६	केवडा (हिं०, म०)	१०३
कृत्रिम कपूर	७८	केवडे का अर्क	१०४
कृमिघ्न (सं०)	२७०	केवड़े का इत्र	१०४
कृमिजग्ध (सं०)	७	केवड़े का फूल	१०४
कृष्णकान्ता (सं०)	१८	केवड़े का शर्बत	१०४
कृष्णजीरक (सं०)	१६७	केवडो (गु०)	१०३
कृष्णधत्तूर	१९९	केंवाच (केवाँच) (हिं०)	१०२
कृष्णफला (सं०)	२६८	केशराज (सं०)	२२८
कृष्णबीज (सं०)	९५	केशुत्ते बं०)	२८२
कृष्णमुसली (हिं०)	३१३	केशुर (बं०)	८५
कृष्णशिरीष	३७५	केश्यु-नट (अं०)	९२
कृष्णसारा (सं०)	३५१	केस (श र (सं०, हिं०, म०, गु०)	१०४
कृष्णसारिवा (सं०)	३७१	केसर (सं०)	३२२
कृष्णा (सं०)	२४३	केसरडा (उ०)	२८२
केउआँ	११६	केसरिन (अं०)	१०२
केऊ	८७	केसरी (बं०)	२८२
केतक (सं०)	१०३	केसिया फ्रुक्टुस (ले०)	२४
केतकपानक	१०४	केसिया फ्रुट (अं०)	२४
केतकार्क (सं०)	१०४	केसूटी (बं०)	२८२
केतकी (सं०)	१०३	केस्टीन	२१३
केथार्टिक एसिड (अं०)	१०७	कैक्सोनिआ ग्लाउका (ले०)	१२७
केथार्टिन (अं०)	८७	कैकहर (अं०)	३२६
केदारनारी (संथा०)	३५३	कैटेकू टैनिक-एसिड (अं०)	६८
केनेबिनोन (अं०)	२८६	कैटेकोल (अं०)	६८
केप एलोज (अं०)	१४१	कैटेक्यू (अं०)	६७
केप मुसब्बर	१४१	कैथार्डीन (अं०)	१४६
केपर	७५	कैत (हिं०)	१०६
केपर प्लांट (अं०)	७५	कैथ (हिं०)	१०६
केप्रिक एसिड (अं०)	८२	कैफेर (हिं०)	७२
केमुक (सं०)	८७, ११६	कैफर (हिं० म०, गु०)	९३
केया (बं०)	१०३	कैम्फीन	३४४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
कैर (मा०)	८३
कैरावे फ्रुट (अं०)	१६७
कैरावे सीड (अं०)	१६७
कैरीका पपाया (ले०)	२२४
कैल (शिमला)	१९७
कैलेमस रूट (अं०)	३४२
कैलेमेन	३४४
कैलेमेनोल	१९७
कैलो (शिमला)	१९७
कैल्ट्रेप्स (अं०)	१३८
कैल्ट्रोप्प (अं०)	१३८
कैल्ट्रोप्स (अं०)	१३८
कैसूरी कपूर	७२
कैस्टर-सीड (अं०)	५५
कोइनर (हिं०)	२९८
कोइनार (खर०)	६१
कोइनी (हिं०)	२९८
कोइलार (था०)	६१
कोकनार (फा०)	२०
कोकम (हिं०, म०, गु०)	११८
कोकमबटर ट्री (अं०)	११८
कोकमका घी या तेल (हिं०)	११८
कोकरोंदा (गु०)	१०७
कोकिलाक्ष (सं०)	१७५
कोकोनट-ट्री (अं०)	२०९
कोकोनट-फ्रूट (अं०)	२०९
कोकोस नूसीफ़ेरा	२०९
कोंगा (संथा०)	३१४
कोचरा (बं०)	२९८
कोचिन-काइनो (अं०)	२७४
कोचूर (बं०)	६२
कोट्याली (हरद्वार)	२८०
कोठुं (गु०)	१०६
कोडि (मल०)	१८१
कोडीईन (अं०)	२२, २३
कोत्तुंबरि (क०)	२००
कोथमीर (गु०)	२००

नाम	पृष्ठ
कोथिन्या (म०)	२००
कोनीबीह (असम)	१५८
कोनेसिमाइन (अं०)	११२
कोनेसीन (अं०)	११२
कोबराज सैफ्रन (अं०)	२०६
कोम्मीफोरा मीर्रहा (ले०)	२८०
कोम्मीफोरा मोल्मोल (ले०)	२८०
कोम्मीफोरा राक्सबर्गी (ले०)	१३५
कोम्मीफोरा वाइटिई (ले०)	१३४
कोयतङ् (को०)	२७१
कोयल (हिं०)	१८
कोरकांड, कोरफड (म०)	१४०
कोरण्ट (म०)	२४५
कोरल (म०)	६०
कोरल-ट्री (अं०)	२४०
कोरिआंड्रम साटीवुम	२००
कोरिएण्ड्रोल	२०२
कोलकन्द (सं०)	८९
कोलकांदा (म०)	८९
कोलपुलि (मल०)	४०
कोलसुंदा (म०)	१७५
कोला (म०)	११७
कोला (सं०)	२४३
कोलाकांदा (म०)	८९
कोलीन	३१८
कोलेउस आंबोइनिकुस (ले०)	२२२, २४२
कोलेउस आरोमाटिकुस (ले०)	२२२, २४२
कोलोसिन्थ (अं०)	३९
कोलोसिन्थिन (अ०)	४०
कोलोसिंथेटिन (अ०)	४०
कोविदार (स०)	६०
कोशा(षा)तकी (सं०)	१८६
कोश्त (फा०)	११५
कोषातकी	१८६
कोस्तम् (ते०)	११५
कोह (हिं०)	२६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
कोहल फारसी (अ०)	३
कोहल रूमी (अ०)	३
कोहला (म०, मा०)	११७
कौंच (हिं०)	१०२
कौंच बीज (हिं०)	१०२
कौंह (हिं०)	२६
कौंचा (गु०)	१०२
कौड़ (पं०)	११०
कौडतुंबा, कौडतुम्भा (पं०)	३९
कौड़िया लोबान	३४१
कौडेना (हिं०)	९६, ३४९
कौशिक (सं०)	१३४
क्युबेब्स (अ०)	७६
क्युमिन-सीड (अ०)	१६६
क्युमैल्डिहाइड (अ०)	१६७
क्रकच (च्छद) (सं०)	१०३
क्रकर (सं०)	८३
क्रमुक (सं०)	३८०
क्रश्ड-लिनसीड (अ०)	२८
क्राइसेरोबिन (अ०)	८९
क्राइसोफैनिक एसिड (अ०)	१४६, १५५, २४१, ३३१
क्राटेवा नुर्वाला (ले०)	२६१
क्राटेवा रेलीजिओसा (ले०)	२६३
क्रिप्टोलेपिस बुकानानी (ले०)	३७१
क्रियेट (त) (अं०)	९४
क्रिस्टेम्वीन (अं०)	२७२
क्रीपिंग डाग्स-टूथ ग्रास (अं०)	१९७
क्रैब्स क्लॉ (अ०)	९१
क्रोकिन (अ०)	१०६
क्रोकुस साटीवुन्सु (ले०)	१०४
क्रोटन-रेजिन (अ०)	१५८
क्रोटन-सीड्स (अं०)	१५८
क्रोटॉन आब्लांगीफोलियम	१९०
क्रोटोन टीग्लिउम (ले०)	१५८
क्रोटोनिस सेमेन (ले०)	१५८
क्लियरिंग-नट (अं०)	२१३
क्लीटोरिया टेरनाटेआ	१८
क्लीतक (सं०)	३०९
क्लेमेटिस गौरिआना	३१५
क्लेमेटिस ट्रीलोबा	३१५
क्लेरोडेन्ड्रानज फ्लोमिडे (ले०)	९
क्लरोडेन्ड्रोन सेर्राटुम (ले०)	२८७
,, सीफोनान्थुस (ले०)	२८८
क्लोव्ज (अं०)	३३३
क्लोरोफीटुम् बेविस्कापुम्	३१४
क्वर्सिटिन (अं०)	६८
क्वर्सेटीन (अं०)	२४
क्विन्स (अं०)	२७६
क्विन्स-सीड (अं०)	२७६
क्वेर्कुस ईन्फेक्टोरिआ	३०१
क्षारश्रेष्ठ (सं०)	२३२
क्षीरपुष्पी (सं०)	३४९
क्षीरी (सं०)	२६२
क्षुद्र भटाकी (सं०)	६४
क्षुद्रा (स०)	६३
क्षुद्राग्निमन्थ (सं०)	९
क्षुमा (सं०)	२७
क्षेत्रपर्पट (सं०)	२२८, २२९
क्षेत्रपर्पट पारस्य (सं०)	२१८
क्षौमवस्त्र (सं०)	२७
[ख]	
खजूर	१७५
खटकळ (पं०)	१४८
खटमिटठा अनार (हिं०)	१६
खट्टेमसर (पं०)	१७८
खडधार (लाट)	३९२
खडसलीयापित्तपापड़ा (गु०)	२२९
खड्यानाग (म०)	८६
खड़की रास्ना (म०)	३२८
खतमी (फा० हिं०)	११९
खत्मी (फा०)	५७, ११९
खदाउरंजाल (अ०)	१२
खदिर (सं०)	६७
खदिरनिर्यास (सं०)	६७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
खदिरलता	६८
खदिरसार (सं०)	६७
खपाट (गु०)	५६
खबल (पं०)	१९७
खबाजी (सिंध)	१२१
खम्हारि (हिं०)	१२५
खरक (फा०)	३२
खरकांढेरी (सिं०)	३९६
ख़रजहरा (फा०)	६९
खटणेर (गु०)	१६९
ख़रबके हिंदी (अ०, फा०)	११०
खरमञ्जरी (सं०)	१५०
खरयटी (पं०)	२६४
खरहर (हिं०)	३२२
खरेटी (गु०)	२६४
खरैटी	२६४
खर्छू (जौन०)	३१५
ख़र्पुजे तल्ख़ (फा०)	३९
खश (बं०)	१२०
खशखश मन्सूर व स्याह (फा०)	२२
ख़श्ख़ाश (फा०)	२०, २१, २२
ख़शबुल् अह्मर (अ०)	२२०
ख़शबुस्सीनी (अ०)	१४६
खस (हिं०)	१२०
खस (खस्स) (अ०)	९८
खसखसीचे बोंड (म०)	२०
खसखसना डोडा (गु०)	२०
खसखास (हिं०)	२०
खसतिल (सं०)	२०
खसफल (सं०)	२०
खस्सबर्री (अ०)	९८
खांखण का तेल	२४८
खांड (हिं०)	४९
खाकची (फा०)	१२०
खाकसी (हिं०)	१२०
खाखयडो (गु०)	२२३
खागड (अवध)	९६

नाम	पृष्ठ
खाखरनो गोंद (गु०)	२३२
खाखरवेल (गु०)	३४६
खाखरो (गु०)	२३२
खाखस (सं०)	२०
खाज कुहिली (म०)	१०२
खाटीभाजी (गु०)	१५४
खादिर (सं०)	६७
खानदोडकी (म०)	१६९
ख़ानिकुल् कल्ब (अ०)	१०८
खानेकुलनमर (अ०)	३५२
खापरा (म०)	२५०
ख़ायेइब्लीस (फा०)	५७
खारख़सक (फा०)	१३८
खारीजाल (गु०)	२४८
खारेखसके कलाँ (फा०)	१३९
खारेशुतुर (बुज०, फा०)	१६२
खित्मी (फा०)	११९
खिरना (मीरजापुर)	१११
खिरेटी (हिं०)	२६४
खिलाफ़ुलबलख़ी (अ०)	२७७
खीखाओ (पं०, सिंध)	९६
खुबाजी (अ०, हिं०)	१२१
खुब्बाजी (अ०)	५७, १२१
खुब्बः (अ०)	१२०
खुरथी (हिं०)	११४
खुरासानी अजवायन (हिं०)	१२
खुरासानी वच	३४६
खुर्माए हिंदी (फा०)	४०
खूलं (लि) जान (अ०, द०)	११२
खूलिंजान अकारबी (अ०)	११२
ख़ुशबुस्सीनी (अ०)	१२०
खुसखुस (अ०)	१२०
खूबकलाँ (फा०, हिं०)	१२०
खूनखराबा (हिं०)	११२, २७९
खूनसियावशाँ (फा०)	१२२
खेकसा (हिं०)	६०, २२८
खेतपापड़ा (हिं०)	२२८, २२९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
खेतपापड़ी (बं०)	२२९
खैर (हिं०)	६७
खोपड़ा	२१०
खोपा (पं०)	२१०
खोरासानीबच (बं०)	३४६
खोरासानी बेर (बम्ब०)	५०
खौलिंजान (अ०)	११२
ख्यारचंबर (फा०)	२४
ख्वगबल (पश्तो०, अफ०)	२७७
ख्वाजा (फा०)	१३
[ग]	
गंगतरंग (रांची)	३५३
गंगेरन (हिं०)	१३२
गंजा (सं०)	२८३
गंडदूर्वा	१९७
गंडा (पं०)	२५२
गंधक	२९०
गंधनाकुली	२९९
गंधप्रियंगु (सं०)	२५३, २५४
गंधबोल (बं०)	२८०
गंधरस (सं०, बं०)	२८०
गंधरास्ना (सं०)	२९९
गंधबिरोज (पं०)	१२३
गंधाबिरोजा (हिं०)	१२३
गंधाबिरोजे का तेल (हिं०)	१२३
गंभार (हि०)	१२५
गंभारी (पं०)	१२५
गज (फा०)	१७२
गजकरण (गु०)	२४१
गजकर्णी (म०)	२४१
गजङ्गवीन (फा०)	१७२
गजपिप्पली (सं०)	१२६
गजपीपल (हिं०)	१२६
गजपीपर (हि०)	१२६
गजभक्ष्या	३४६
गजवाजिप्रिया	३६५
गठेगनी	६५
गणिकारिका (सं०)	९
गणियारी (बं०)	९
गण्डारि (सं०)	६०
गद (सं०)	११५
गदहपुरना (हिं०)	२५०
गदापुण्या (बं०)	२५०
गनियारी	९, १२६
गन्धप्रसारनी (हिं०)	२५३
गन्धप्रसारिणी (सं०)	२५३
गन्धभादुलिया (बं०)	२५३
गन्धभादुली (खर०)	२५३
गन्धर्वहस्त (सं०)	५५
गन्धाली (खर०)	२५३
गन्धौना (उड़ि०)	९
गन्ना (हिं०)	४८, ४९
गम–अरेबिक (अं०)	२६०
,, आकासिआ (अं०)	२६०
,, ट्रागाकन्था (अं०)	६५
गमबेन्जमिन (अं०)	३४०
गम्भारी (सं०)	१२५
गम्हार (हिं०), गम्हारी	१२५
गरणी (गु०)	१८
गरागरी (सं०)	२५५
गरी का तेल	२१०
गरुडफल (का०)	१८१
गलगल (मीरजापुर)	६५
गली (गु०)	२१९
गवाक्षी (सं०)	४०
गहुला (म०)	२५४
गांजा ((हिं०, पं०, म०)	२८३, २८४
गांडर (हिं०)	१२०
गाइनोकार्डिआ ओडोराटा	१७२
गाङ्गेरुकी (सं०)	१३२
गाफिस	१८७
गाफिस, देशी	१८७
गाभार (बं०)	१२५
गारगा पीन्नाटा (ले०)	३६६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
गार्डन नाइट-शेड (अं०)	२९३
गार्डेन क्रेस (अं०)	१४६
गार्डेन-रू (अं०)	३७७
गार्डेनिआ टूर्जिडा	३२
गार्लिक (अं०)	३३४
गार्सीनिआ इंडिका (ले०)	११८
गार्सीनिआ पेडन्कुलाटा (ले०)	२५
गार्सीनिआ मांगोस्टाना (ले०)	२७९
गाला (ले०)	३०१
गाल्स (अं०)	३०१
गावजबाँ (फा०, हिं०)	१२७
गावजबान (फा०, हिं०)	१२७
गास्सीपियम् सेमिना (ले०)	७०
गास्सीपियम् हेर्बासेउम्	७०
गास्सीपी कार्टेक्स (ले०)	७०
गास्सीपी रेडिसिस (ले०)	७०
गिनेरी (हिं०, नेपा०)	९
गिरिकर्णिका (सं०)	१८
गिरिपर्पट	१२८, १९६, २३०
गिरिपर्पट विदेशी	२३१
गिरिसानुजा (सं०)	१८७
गिरी	२१०
गिरी का तेल	२१०
गिर्दगाँ (फा०)	६
गिर्दसुमाक	१७९
गिर्दसुमाक घनसत्व	१७९
गिर्दसुमाक सत्व	१७९
गिलो (फा०)	१३१
गिलोय (हिं०)	१३१
गीलाकुसुम	३३२
गुंची (हिं०)	१२९
गुंज (म०)	१२९
गुंजा (हिं०)	१२९
गुंडतिगागड्डि (ले०)	८७
गुंडतुंगगड्डि (ता०)	८७
गुडफल (सं०)	२४८
गुंडा (सं०)	१८८

नाम	पृष्ठ
गुगरू (सिं०)	१३४
गुगल (म०, गु०, बं०)	१३४
गुग्गुल (हिं०)	१३४
गुग्गुलु (सं०)	१३४
गुच्छपुष्पक (सं०)	८१
गुजराती इलायची (हिं०)	४२
गुञ्जा (सं०)	१२९
गुञ्जा (मूल)	१२९, ३१०
गुठैगन	६५
गुड़ (हिं०)	१४८
गुड़कामाई (सं०)	२९२
गुड़ची	१३१
गुड़त्वक् (सं०)	१९३
गुड़पुष्प (सं०)	२९८
गुड़फल (सं०)	२४८
गुड़मार (हिं०)	१३०
गुड़शर्करा (सं०)	१३२
गुण्डारोचना (सं०)	७८
गुरन्द्रा (जौन०)	१८४
गुरिगिज (ते०)	१२९
गुर्च (हिं०)	१३१
गुलअनार (फा०)	१६
गुलकन्द (फा०)	१३४
गुलकेरी (फा०)	१०३
गुलखुर (हिं०)	१३८
गुलखैरु	११९
गुलगंजि (फा०)	१२९
गुलजलील (बम्ब०)	१८८
गुलटेसू	२३३
गुलनए (फा०)	१२८
गुलबगला (फा०)	२४१
गुलबनफशा (फा०)	२५९
गुलरोगन (फा०)	१३४
गुलशकरी (हिं०)	१३२
गुलसुपारी (फा०)	३८६
गुलाब (हिं०, म०, गु०)	१३३
,, जीरा	१३४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
गुली (म०)	२१९
गुलु	६६
गुल्	६६
गुलेकाफूर	७२
गुलेगावजबाव (फा०)	१२८
गुलेचका (फा०)	२९८
गुलेघावा (फा०)	२०४
गुलेबनफ़शा	२५९
गुलेफ़ोफल (फा०)	३८६
गुलेमुचक्कुन (फा०)	३०५
गुलेसंग (फा०)	१५५
गुलेसुर्ख (फा०)	१३३
गुल्लर (हिं०)	१३६
गुवाक (सं०)	३८०
गुंचज (हिं०)	१२९
गूंदा (गु०)	३३७
गूगल (हिं०, द०)	१३४
गूजद (फा०)	३
गूजर (बम्ब०)	३
गूमा (हिं०)	१३५
गूलर (हिं०)	१३६
गृहकन्या (सं०)	१४०
गेजरा (सहा०)	६५
गैया (देहरा०)	२७१
गैलंगा कार्डेमम (ले०)	११४
गैलिक एसिड	३६
गैलेन्गिन (अं०)	११३
गैलेन्गोल (अं०)	११३
गोंडपट्ठा (हिं०)	१४०
गोंद कतीरा	६५
गोंदनी (हिं०, द०)	२५४, ३३७
गोंदो (हिं०)	३३७
गोकर्ण (म०)	१८
गोकर्णी (सं०)	३१४
गोक्षुर (सं०)	१३८
गोखरी (बं०)	१३८
गोखरू (हिं०)	११८
गोखरू छोटा (हिं०)	१३८
,, बड़ा	१३९
,, कलां (पं०)	१३९
गोखुरेकलां (हिं०)	१३९
गोखुला-जनम (संथा०, जोनसार)	६०, १७५
गोजिह्वा (सं०)	१२७
गोट्स-सैल्लो (अं०)	२७७
गोडबदाम (म०)	२६९
गोडा इन्द्रजव (म०)	१११
गोडा तेल (म०)	७१९
गोंदनी	२५४
गोद पटेर (हिं०)	८७
गोदला (हिं०)	२४७
गोदा (हिं०)	२४७
गोधी (पं०)	३७९
गोपकन्या (सं०)	३६९
गोपवल्ली (सं०)	३१५
गोपी (सं०)	३६९
गोफल (बं०)	२९९
गोम (हिं०)	१३५
गोपालियालता (बं०)	३५८
गोयण्टा (को०)	२७१
गोयालियालता	३९२
गोरखगांजा	२४२
गोरखमुंडी (हिं०, गु०, म०, मा०)	३०७
गोलमरिच (हिं०)	२९५
गोलमिर्च (बं०)	२९५
गोलाप (बं०)	१३३
गोलरंग	३१५
गोलालरंग (खर०)	२५३
गोलोमो० (सं०)	१९७, ३४२
गोल्डेन ग्रेड (अं०)	२९३
,, सिल्ककाटन ट्री (अं०)	२९३
गोल्हा	१०२
गोस्तनी (सं०)	३०८
गौनरी (का०, पं०)	३७३
गौरसर्षप (सं०)	३६१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
गौरी (सं०)	४०१
गौरीनीम (द०)	२५७
ग्राफ्टेड मैंगो (अ०)	३४
ग्रूइआ एशिआटिका	२५५
ग्रूइआ टीलीफोलिआ	१३३
ग्रूइआ पापूलीफोलिआ	१३३
ग्रूइआ सब-इनेक्वालिस	२५५
ग्रूइआ हिरसुटा	१३२
ग्रेटर गैलंगल (अं०)	११४
ग्लांडुली रॉटलेरी (ले०)	७७
ग्लास्सोकार्डिआ बोस्वाल्लिआ	२२९
ग्लास्सोकार्डिआ लिनेआरीफोलिआ	२२९
ग्लिसीरहाइजा ऊरालेंसिस	३१०
ग्लिसीरहाइजा ग्लाब्रा	३०९
ग्लिसीरहाइजा ग्लाब्रा प्रभेद ग्लांडूलीफ़ेरा	३१०
ग्लिसीरहाइजा ग्लाब्रा प्रभेद टिपिका	११०
ग्लिसरहाइजिन (अं०)	१२९, ३१०
ग्लोरिओसा सुपर्बा (ले०)	८७
ग्लोरिओसीन	८६
ग्वानीन (अं०)	४९
ग्वारपाठा (हिं०)	१४०
[घ]	
घउला (बम्ब०)	२५४
घऊंला (गु०)	२५४
घंगडवेल (पं०)	२५५
घघरवेल (हिं०)	२५५
घणसर (म०)	१८९
घनसार (सं०)	७१
(घ) घरेझपक (संथा०)	१२७
घलघसे (बं०)	१३५
घाटीपित्तपापड़ा (बम्ब०, म०)	२२९
घावपत्ता (हिं०)	३४७
घीकुआर (हिं०)	१४०
घुंगची (हिं०)	१२९
घुंघची (हिं०)	१२९
घुमची (हिं०)	१२९
घुणवल्लभा (सं०)	[illegible]

नाम	पृष्ठ
घूंची (हिं०)	१२९
घृतकुमारिका (सं०)	१४०
घृतकुमारी ,,	१४०
,, रससार	१४०
घृतपूर (सं०)	८१
घेटुली (म०)	२५०
घोड़बेल	३४६
घोड़बच (हिं०)	३४२
घोड़ा आकुन (गु०)	३०
घोड़ा आहन ,,	३०
घोड़ाकरज	३९३
घोड़ानिम् (बं)	२५७
घोड़ानिम्ब	२५७, ३९३
घोड़ाबच (गु०)	३४२
घोला (गु०)	१०१
घोली ,,	१०१
[च]	
चंगेर (हिं०)	१२१
चंगेल (हिं०)	१२१
चंदन ((हिं०, म०)	१४३, १४४
चंदना (देहरादून)	३२०
चंदमरवा (बिहार)	३६३
चंपाकाटी (गु०)	६०
चंसुर (हिं०)	१४६
चई (बं०)	१४७
चकवड़ (हिं०)	१४५
चकसू (हिं०)	१४७
चकोत्रा नीबु (हिं०)	२५
चक्रमर्द (सं०)	१४५
चक्षुष्या (सं०)	१४७
चक्सूर (पं०)	१४७
चणकबाव (म०)	७६
चणद्रुम (सं०)	१६८
चणोठी (गु०)	१२९
चतरोई (जौन०)	१८०
चतुष्पर्णी (सं०)	३७९
चतुष्फला (सं०)	१३२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
चनसुर	१४६
चन्दन का बुरादा	१४५
,, तेल	१४५
चन्दन (सं०)	१४३
चन्दन लाल (हिं०)	१४३
,, सफेद (हिं०)	१४४
चन्दनसार	१४४
चन्द्र (सं०)	७१
चन्द्रशूर (सं०)	१४६
चपड़ा	३०६
चबका फल (हिं०)	१२६
चब (हिं०)	१४७
चमनी (को०)	४०७
चमसुर (हिं०)	१४६
चमेड़, चिमेड़ (गु०)	१४७
चवक (गु०)	१४७
चविका (सं०)	१४७
चविसीन	२४४, २९५
चरस (हिं०)	२८३, २८४
चलपत्र (सं०)	२४६
चश्मक (फा०)	१४७
चश्मखरोश (फा०)	१२९
चश्मीजज (फा०)	१४७
चबर (सिं०)	१४७
चव्य (सं०)	१४७
चाइना-रूट (अं०)	१५४
चाकवत (म०)	१५४
चाकसू (हिं०)	१४७
चाक्षुस् (हिं०)	१४७
चाङ्गेरी (सं०)	१४८
,, बड़ी	१४८
चाकुंदा (बं०)	१४५
चादड़ (बं०)	३६३
चादर (बं०)	३६३
चाणक्यमूलक	३१६
चार (सं०)	१५३
चारबीज (सं०)	१५३

नाम	पृष्ठ
चारमग्ज (फा०)	६
चारोली (म०, गु०)	१५३
चालमुगरा	१८१
,, का तेल	१८२
चालमूग्रिक एसिड (अं०)	१८२
चालता (हिं०)	२८३
चालता (बं०)	२८३
चावलीरानू (बिहार)	२३४
चिआँ (हिं०)	४१
चिउर (संथाल)	२९९, ३२०
चिउंरा (देह०)	२९९
चिउली (था०)	२९९
चिकणा (म०)	२६४
चिकनी सुपारी	३८०
चिकोरी (अ०)	९७
चिंच (म०)	४०
चिचड़ा (हिं०)	१५०
चिचिण्डा	२२७
चिंचोट (क०, सं०)	८७
चिंचोटं (सं०)	८७
चिंचोड़ (द्र) ,,	८७
चिञ्चा (सं०)	४०
चिटी (खर०)	३१४
चिट्टा जीरा (पं०)	१६६
चिता (बं०)	१४८
चित्ता (हिं०)	१४८
चित्रक (सं०, म०)	१४८
,, सफेद	१४१, १४२
चित्रतण्डुल (सं०)	२५२
चित्रा (हिं०, प०)	१४८
चित्रा (बे०)	१९०
,, (हिं०)	१४१
चित्रो (गु०)	१४८
चिन्त (ते०)	४०
चिन्हारु (मिर्जा०)	३१४
चिरचिटा (हिं०)	१५०
चिरचिरा ,,	१५०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
चिरमी (फा०)	१२९
चिरमिटी (हिं०)	१२९
चिराटा (अ०)	१५१
चिरायटा ,,	१५१
चिरायता (हिं०)	१५१
चिरेटिन (अं०)	१५१
चिरेता (बं०)	१५१
चिरैना (हिं०)	१५१
चिरोंगी (बं०)	१५३
चिरोली (पं०)	१५३
चिरौंजी (हिं०)	१५३
चिरौंज (हिं०, प०)	१५३
चिर्मिटी (मा०)	१२९
चिर्री (संथा०)	३४६
चीड़ (हिं०)	१२३
चीता (हिं०)	१४८
चीनिया कपूर	७२
चीनी (हिं०)	४९
चीरकम्	१६६
चील	१२३
चुण्टली (हिं०)	१२९
चुका (म०)	१५४
चुका पालङ (बं०)	१५४
चुको (गु०)	१५४
चुनियांगोंद (हिं०)	२३३
चुन्नीगोंद ,,	२३३
चुक्र (सं०)	१५४
चुक्रबीज (स०)	१५४
चुक्रिया (सं०)	१५४
चुक (पं०)	१५४
चूका (हिं०)	१५४
चूका का साग	१५४
चूका के बीज	१५४
चेबुलिक माइरोबेलन (अं०)	३९९
चेवा पं०)	३९५
चोपचीनी (हिं०, म०, गु०)	१५४
चोपचीनी खताई	१५५
चोपचीनी देशी	१५५
चोपचीनी बड़ी	१५५
चोबचीनी (फा०, हिं०)	१५४
चोपतिया (हिं०)	३७९
चौहार (सं०)	९९
चंदना (देहरादून)	३६३
चंदमरवा (वि०)	३६३
[छ]	
छड़	१५६
छड़ीला (हिं०)	१५५
छड़ीलो (गु०)	१५५
छरीला (हिं०)	१५५
छारछरीला (हिं०)	१५५
छैलछबीला (हिं०)	१५५
छतनी (सं०)	३५६
छतिवन (हिं०)	३५६
छत्रवृक्ष (सं०)	३०५
छब्बर (सिंध)	१९७
छातिम (बं०)	३५६
छाल	१९३, १९४
छालिया (हिं०,)	३८०
छितवन (हिं०)	२३७
छिरेटा	२३७
छिलहिण्ट (सं०)	२३७
छिलहिण्ड	२३७
छुहार अजवाइन (हिं०)	९९
छोटा कसेरू (हिं०)	८७
छोटाचांद (बं०)	३६३
छोटा लिसोढ़ा (हिं०)	३३७
छोटी इलायची (हिं०)	४२
छोटी कलिया (आगरा)	३२७
छोटी माई	१७३
छोटी हरड़	४००
[ज]	
जकई (को०)	२०५
जंगली अड़द (गु०)	३०५
जंगली आंबो (गु०)	३६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
जंगली कासनी (हिं०)	१९५
जंगली कासनी की जड़	१९५
जंगली कांदो (गु०)	८९
जंगली काहू (हिं०)	९८
जंगली जायफल	१६५
जंगली पुदीना (हिं०)	१२
जंगली प्याज (हिं०)	८९
जंगली बैंगन (हिं०)	६५
जंगलीमग (गु०)	३०७
जंगलीमूँग (हिं०)	३०७
जंगली लवंडर (अं०)	५४
जंगली सरसों (सिंध)	१२०
जंगीगुलु (सिंधी)	६९
जंगीहरड़ (हिं०)	४००
जंजबील याबिस (अ०)	३८९
जंजबील सतबा (अ०)	३८९
जंजबीले खुश्क (फा०)	३८९
जंजबीले शामी (अ०)	२५२
जकूम (अ०)	३८८
जटामांसी (सं०, ते०, अं०, द०, बं०, म०, गु०)	१५६
जटामासी (हिं०)	१५६
जतु (सं०)	३३५
जद्वार (अ०, फा०)	१५७
जनखीरा (संथा०)	३४६
जनपा (हो०)	१२७
जन्तुफल (सं०)	१३६
जन्मनरूट (अं०)	१११
जपो (बो) लोटा (पं०)	१५८
जमालगोटा (हिं०, म०, उर्दू)	१५८
जमीकन्द (हिं०)	३८५
जमी (हिं०)	२३९
जम्बीरी निबू	२१७
जम्बू (सं०)	१६३
जम्बूपत्रासारिवा (सं०)	३७१
जम्मैज (अ०)	१३६
जयन्ती (सं०)	१६०
जयपाल (सं०)	१५८
जयफल (पं०)	१६४
जयमंगल (गोंड)	३९२
जया (सं०)	१६०
जरंबाद (अ०)	६२
जरण (सं०)	१६६
जरतोर (हिं०)	३१४
जरम (अ०)	५३
जराबंदेहिंदी (फा०)	४७
जरिश्क (हिं०)	१९०
जरिश्क (फा०)	१९०
जरीर (फा०)	१८८
जर्दचोब (फा०)	४०१
जलकुम्भी (हिं०)	१६१
जलजमनी (हिं०)	२३७
जलनीम	२८१
जलफल (सं०)	३७३
जलमधूक	२९९
जलसालपान (गढ़०)	३६२
जलापारेजिन	९६
जव (गु०, बं०)	१७१
जवस (म०)	२७
जवाइन (हिं०)	११
जवाशा (बं०)	१६१
जवाशीर (हिं०)	५३, ४०७
जवासा (बं०, हिं०, म०)	१६१, २०४
जवासो (गु०)	१६१
जवेर (पं०)	२९२
जवैप (पं०)	११
जश्मीजज (अ०)	१४७
जहूक (फा०)	३२
जहरूलजरम (अ०)	५३
जांथोक्सीलुम अकांथोपोडियम (ले०)	२०३
जांथोक्सीलुम आक्सीफिल्लुम (ले०)	२०३
जांथोक्सीलुम आलाटुम (ले०)	२०२
जांथोक्सीलुम ओवालीफोलियम (ले०)	२०३
जांथोक्सीलुम रहेदसा (ले०)	२०३
जांथोक्सीलुम हामिल्टोनिआनुम (ले०)	२०३

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
जांबु (गु०)	१६३
जांबू (गु०)	१६३
जांमूल (म०)	१६३
जाट्रोफा कुर्कास	१५९
जातिपत्री (सं०)	१६४
जातीतैल (सं०)	१६४
जातीफल (सं०)	१६४
जाती (बं०)	२४५
जातुज्जवानिब (अ०)	२६२
जाफ़राब (अ०)	१०४
जामलु (पं०)	१६३
जामुन (हिं०)	१६३
जामुन का रूब	१६३
जायपत्री (म०)	१६४
जायफल जंगली	१६५
जायफल तेल (हिं०)	१६४
जायफल (हिं०, बं०, म०, गु०)	१६४
जायफल, देशी	१६५
जायफल, नकली	१६६
जायफल, मकासर	१६६
जायफल, सुवासंस्कारित (लाइम्ड)	१६५
जाल (सं०)	२४८
जालिनी (सं०)	१८६
जावत्री (गु०)	१६४
जावित्री (हिं०)	१६४
जिंजली ऑयल (अं०)	१७९
जिंजली (अं०)	१७९
जिंजिबेरोस (यू०)	३८९
जिनादराद	२४१
जिरिस्क (फा०)	१४०
जिरे (म०)	१६६
जिर्ब	३४०
जींजीबेर ऑफीसिनाले (ले०)	३८९
जीजिफुस जुजुबा (ले०)	५०
जीजिफुस साटीवा (ले०)	५०
जीमूतक (सं०)	२५५
जीम्नेमा सील्वेस्ट्रे (ले०)	[illegible]

नाम	पृष्ठ
जीरए अरमनी, रूमी (फा०)	१६७
जीरए सफ़ेद (फा०)	१६६
जीरए सहराई (फा०)	७९
जीरकम् (मल०)	१६६
जीरक (सं०)	१६६
जीरा सफेद	१६६
जीरासुफ़ेद	१६६
जीरास्याह	१५८
जीरे (बं०)	१६६
जीरो अच्छो (सिंध)	१६६
जीरो (मा०)	१६६
जीलकरी (ते०)	१६६
जीवन्ती (हिं० सं०)	१६९
जुईपान	४१
जुस्टीसिआ प्रोकम्बेंस	२२९
जूईपानी (हिं०)	२४१
जूनिपर बेरीज (अं०)	४०३
जूनिपेरुस फ्रटुक्स (ले०)	४०३
जूनिपेरुस कोम्यूनिस (ले०)	४०३
जूनिपेरुस माक्रोपोडा (ले०)	४०४
जूफा	१७१
जूफाए खुश्क	१७१
जूफाए याविस	१७१
जेक्विरिटी (अं०)	१२९
जेंटिआना ओलीविएरी (ले०)	१८७
जेंटिआना कुरु (ले०)	१८७
जेंटिआना टेनेल्ला (ले०)	१८८
जेंटिआना डाहूरिका (ले०)	१८७
जेंटिआना डेकुम्बेन्स (ले०)	१८८
जेंटिआना लूटेआ (ले०)	१८८
जेठीमध (म०, गु०)	३०९
जेठुई ककड़ी (हिं०)	५९
जेडोएरी (अं०)	६२
जेष्ठीमध (म०)	३०९
जैजोहिन्दी (अ०)	२०९
जैंत (हिं०)	१६०
जैत्री (बं०)	१६४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
जैन्थोक्सिलिन (अं०)	२०३
जैपाल (हिं०)	१५८
जैम्बोल (अं०)	१६३
जैलेपीन (अं०)	२१५
जोईपाणी (बं०)	२४१
जोंगली पेयाज (बं०)	८९
जोपान (बं)	११
जौ (हिं०, फा०)	१७१
जौज़बब्बा (अ०)	१६४
जौज़बुबा (अ०)	१६४
जौज़बूया (फा०)	१६४
जौजुलक़ै (अ०)	३२१
जौजुलक़ै (हिं०)	३२१
जौज़ुल् मासेल (अ०)	१९९
ज्योतिष्मती (सं०)	३०३
[झ]	
झउवा (बिहा०)	१७२
झरिष्क	१९०
झाउ (हिं०)	१७२
झाड़चीमड़ुं (गु०)	२२४
झाड़मानिक (रांची)	३६३
झाव (हिं०, ट०)	१७२
झावुक (सं०)	१७२
झावुकशर्करा	१७३
झांसडी (मा०)	८३
झिजिर (संथा०)	६०
झिण्टी (सं०)	२४५
झुरझुरी (संथा०)	३६७
झेरकोचला (गु०)	१०८
झोलो (कु०)	१५५
[ट]	
टंक (सं०)	२११
टंटिआ (गढ़०)	३९२
टर्पीनीन (अं०)	४४
टर्पीनिओल (अं०)	४४
टर्पेथ (अं०)	२१४
टर्पेथिन (अं०)	२१५
टमेरिक (अं०)	४०१
टमेरिक राइज़ोम (अं०)	४०१
टमेरिक रूट (अं०)	४०१
टाकला (म०)	१४५
टाक्सुस बक्काटा (ले०)	१७६
टामारिक्स अफिल्ला	१७३
टामारिक्स आर्टिकुलाटा (ले०)	१७३
टामारिक्स गालिका (ले०)	१६२
टामारिक्स ट्रूपिआई (ले०)	१७२
टामारिक्स डाइओइका (ले०)	१७३
टामारीडुन्स ईण्डिकुस (ले०)	४०
टारटेरिक एसिड (अं०)	३६, ४२
टाराक्टोजेनोस कुजिई (ले०)	१८२
टाराक्सीकुम ऑफीसिनाले (ले०)	१९५
टिंक्चर कार्ड० को०	४४
टिलिकएसिड (अं०)	१५१
टिंडोरा (गु०)	१०१
टिण्टुक (सं०)	३९८
टीनोस्पोरा कार्डिफोलिआ (ले०)	१३१
टीनोस्पोरा मालाबारिका (ले०)	१३२
टीलोफोरा आस्थमाटिका	३२७
टूटगंठा (हिं०)	३९५
टूथ-एक ट्री (अं०)	२०२
टूथ-ब्रश ट्री (अं०)	२४८
टेकार (हिं०)	९
टेकोमेल्ला उंडूलाटा (ले०)	३३१
टेंट (ब्रज०)	८३
टेंटी (ब्रज०)	८३
टेंटू (म०)	३९२
टेल्ड-पेपर (अं०)	७७
टेफ्रोसिआ पुर्पूरेआ (ले०)	३६०
टेफ्रोसिआ पेट्रोसा (ले०)	३६०
टेफ्रोसिआ विल्लोसा (ले०)	३६०
टेराम्नुस लाविआलिस (ले०)	३०५
टेर्मिनालिआ चेबूला (ले०)	३९९
टेर्मिनालिआ बेलेरिका	२६७
टैक्सीन (अं०)	१७७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
टैक्सिनीन (अं०)	१७७
टैनिक एसिड	३०२
टैनिन (अं०)	३६
टैमेरिक्स (अं०)	१७२
टैमेरिक्स मेन्ना (अ०)	१७२
टैरेक्सेसिन	१९५
टोह्या (हिं०)	२९८
टोकापाना (बं०)	१६१
टोको	६५
ट्राकीस्पेर्मुम आम्मी (ले०)	१७
ट्राकीस्पेर्मुम रॉक्सबुर्घिआनुम (ले०)	१०
ट्रागाकान्थ (ले०)	६६
ट्रापा नाटांस प्र० बीस्पीनोसा (ले०)	३७३
ट्रापा बीस्पीनोसा (ले०)	३७३
ट्रिआन्थेमा पोर्टुलाकास्ट्रम (ले०)	२५०
ट्रिआन्थेमा मोनोगायना (ले०)	२५०
ट्रिबोनेलीन (अं०)	३१८
ट्रिबुलुस फ्रुक्टुस (ले०)	१३८
ट्रिबुलुस टेरेस्ट्रिस (ले०)	१३८
ट्रिबुलुस आलाटुस् (ले०)	१३८
ट्रीकोजान्थेस बांगोइना	२२७
ट्रीकोजांथेस कुकुमेरिना (ले०)	२२७
ट्रीकोजांथेस डीओइका (ले०)	२२६
ट्रीगोनेल्ला फेनुम-ग्रीकुम (ले०)	३१७
ट्रीच (सिंध)	२१४
[ठ]	
ठीकरी (हिं०)	२५०
[ड]	
डॅटूरा (अं०)	१९९
डॅडेलियन (अं०)	१९५
डइया (देहरा०, गढ़०)	२५३
डगडीआ (मिर्जापूर)	३९२
डटूरा (अं०,	१९९
डबरा (कच्छ)	८३
डम्बरे (पश्तो)	२०२
डहरकरंज (बं०)	८१
डाउनी बिजलेआ (अं०)	२०४
डॉग-प्वाइजन (अं०)	१०८
डाटूरा ईन्नाक्सिआ (ले०)	१९९
डाटूरा मेटल (ले०)	१९९
डाटूरा स्ट्रामोनियम (ले०)	१९९
डाबली (गु०)	५६
डाम	२१०
डार्लिब (म०)	१६
डालीकॉस बीफ्लोरस (ले०)	११४
डाल्बेर्गिआ सिस्सू (ले०)	१५१
डाल्बेर्गिआ लाटीफोलिआ (ले०)	३५१
डांसरा (पं०)	१७८
डांसरिया (मा०)	१७८
डिठोरी (उ० प्र०)	८१
डिल्लेनिआ इंडिका (ले०)	२८१
डीप्लोक्नेमा बूटीरासेआ (ले०)	२९९
डुंगरी (लो) (गु०)	२५२
डेक (देहरा०)	२५७
डेकवोई (जौनसार)	२५७
डेन्ड्रोबियम मैकेई (ले०)	१७०
डेमोनोरॉप्स ड्राको (ले०)	१२२
डेलिचम् (अं०)	१२८
डेल्फिनीन (अं०)	१५८
डेल्फीनियम डेनुडाटुम् (ले०)	१५७
डेल्फीनियम जलील (ले०)	१८८
डेल्फोक्युरारीन (अं०)	१५८
डेविल्स-कॉटन (म०)	५१
डेस्मोडियम गांजेटिकुम (ले०)	३६२
डेस्मोडियम टिलीफोलियम् (ले०)	३६१
डेस्मोडियम पालीकार्पुम (ले०)	३६२
डेस्मोडियम पुलचेल्लुम	३४०, ३६२
डोडर (अं०)	२३
डोडी (गु०)	१६९
डोडीशक (हिं०)	१६९
डोरगुंज (म०)	३०
डोरली (म०)	६४
डोरलें (म०)	६४
डोरिया	२९८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
डोरेमा आम्मोनिआकुम (लै०)	५१
डोलीकोस बीलफोरस्	११४
डोलु (कुमायूँ)	३२९
डूमस्टिक ट्री (अं०)	३६८
ड्राइओबालोनाप्स आरोमारिकुस (ले०)	७३
ड्राई जिंजर (अं०)	३८९
ड्राकेना सिन्नाबारी (ले०)	१२२
ड्राख (सिंध)	३०८
ड्रेकोसेफालुस राइब्रेआनुम् (ले०)	१८४
ड्रेजेआ वोलूबिलिस	३१५
ड्रैगन्स-ब्लड (अं०)	१२२
[ढ]	
ढकपन्ना (हिं०)	२३२
ढाँख (हिं०)	२३२
ढाक	२३२
ढाक की कनी (हिं)	२३२
ढाक का गोंद (हिं०)	२३२
ढाक के बीज	२३२
ढाकपापड़ा	२३२
ढेरा (हिं०, द०)	१
ढेला (संथा०)	१
ढोको	६५
ढोलदगड़ों (कु०)	३९२
[त]	
तंबुल (ब०)	२०२
तंबूल (फा०, ब०)	२३८
तकरमूल (म०)	३७५
तगर (सं०, हिं०)	३७५
तगरगंठोडा (गु०)	३७५
तज	१८५, १९३
तन्नक (जौन०)	१७८
तपस्विनी (सं०)	१५६
तबाशीर (ब०, फा०)	३४१
तबाशीर सदफ़ी	३४२
तबाशीर कबूद	३४२
तमरहिंदी (अं०)	४०
तमरेहिन्दी (अं०)	४०
तमालपत्र (सं०)	१८४
तम्बर (क०)	४०
तरकारी (सं०)	९
तरख्यकून (फा०)	१९५
तरंजबीन (ब०)	१६२
तरोटा (द०)	१४९
तरुणी (सं०)	१३३
तर्ख (परशु)	९९
तर्फा (अ०)	१७२
तल (गु०)	१७९
तलकनरा (हिं०)	८९
तलवमा (गु०)	४०७
तलवणी (गु०)	४०७
तवाशीर (अ०, फा०)	३४१
तांबूल (अ०)	२३८
तांम्बा (मुंगेर)	१८८
ताक (फा०)	१५७, ३०८
ताजेखोपरे	२१०
ताड़गुड़, चीनी, मिश्री (हिं०)	१७४
ताड़ (सं०, हिं०, म०, गु०)	१७४
ताड़ी (हिं०, फा०)	१७४
तातूर (फा०)	१९९
तापसद्रुम (सं०)	१८
तामलकी (सं०)	२९०
तामरे (ता०)	७७
ताम्बूल	२३८
ताम्बूलवल्ली	२३८
ताम्रचूड़ (सं०)	१०७
ताम्रपुष्पी (सं०)	२०४
तारपीन का तेल (हिं०)	१२४
तारलू (देहरा०)	१९२
ताल (सं०, हिं०)	१७४
तालगाछ (बं०)	१७४
तालमखाना (हिं०)	१७५
तालमखानू (गु०)	१७५
तालमखारा (हिं०)	१७५
तालमिश्री	१७५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
ताकमूली (सं०, बं०)	३१२
तालरस	१७४
तालिमखाना (म०)	१७५
तालीस	१७६
तालीसपतर (हिं०)	१७६
तालीसपत्र	१७६, १७७
तालीसपत्ता (हिं०)	१७६, १७७
तिकड़ा (द०)	२१४
तिक्त गोक्षुर (सं०)	१३९
तिक्ता (सं०)	११०
तिक्तालाबू (सं०)	१७७
तिखी (पं०)	२१४
तितम बेर (हिं०)	५०
तितलाऊ (बं०)	१७७
तितलौकी (हिं०)	१७७
तितिली	३७८
तिनपतिया (हिं०)	१४८
तिनेवली सनाय	३५४
तिन्तिड़ीक (सं०)	९०, १७८
तिन्तिडीकाम्ल	३६
तिन्नेवली सेन्ना	३५४
तिपत्ती (हिं०)	१४८
तिप्पिली (सिंध०)	२४३
तिरफल	२०३
तिर्याक (फा०)	२०
तिलमॉयल (अ०)	१७९
तिलका तेल (हिं०)	१७९
तिलकुट	१७९
तिलतैल (सं०)	१७९
तिलभेद (सं०)	२०
तिलवण (म०)	४०७
तिल (सं०, हिं०)	१७९
तिल्ली (हिं०)	१७०
तीक्ष्णगंधा (सं०)	३२५
तीक्ष्णतण्डुला (सं०)	२४३
तीता (क०)	१८७
तीता चिरायता	१५२
तीन (अं०)	४
तीनुल् अहमक़ (अं०)	१३६
तीमरु (पं०)	२०२
तीमूर	२०२
तीलाकियून (अं०)	३०३
तीसी (हिं०)	२७
तीसी का चूर्ण (हिं०)	२८
तीसी का तेल (हिं०)	२८
तीसी की खली का चूर्ण	२८
तुंगला (जौनसार, पं०)	१७८
तुंगा (पं०)	१७८
तुंबड़ी (हिं०)	१७७
तुंबरू (पं०)	२०२
तुंबा (म०)	१३५
तुंबी (हिं०)	१७७
तुंबुल (हिं०)	२०२
तुक्मे बालुंग	१८३
तुख्म अनार (फा०)	१६
तुख्म इस्पन्दान (फा०)	१४६
तुख्म काहू (फा०)	९८
तुख्म कौंच (फा०	१०२
तुख्म खियारैन (फा०)	५९
तुख्म तुर्श (फा०)	१५४
तुख्म पलः (फा०)	२३२
तुख्म बंग (फा०)	१२
तुख्म बालंगा (फा०)	१८४
तुख़्म बेद अञ्जीर खताई (फा०)	१५८
तुख्ममलंगा (पं०)	१८३
तुख्ममालंग	१८४
तुख़्मरहल (फा०)	४०१
तुख़्महब्बुसलातीन (अ०)	१५८
तुख़्मे कत्तान (फा०)	२७
तुख़्मे कबकू (फा०)	९५
तुख़्मे कासनी (फा०)	९७
तुख़्मे किन्नब (फा०)	२८४
तुख़्मे खश्खाश (फा०)	२०
तुख़्मे खित्मी (फा०)	११९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
तुख़्मे नील (फा०)	९५
तुख़्मे पियाज (फा०)	२५२
तुख़्मे बंग (फा०)	२८४
तुख़्मे बालंगू (फा०)	१८३
तुख़्मे लीमूं (फा०)	२१६
तुख़्मे शहूह (फा०)	१२०
तुगाक्षीरी (सं०)	३४१
तुण्डि (सं०)	१०१
तुण्डिकेरी (सं०)	१०१
तुनतुना (बं०)	५३
तुफ्फाह (अ०)	३८७
तुमरू (हिं०)	२०२
तुम्बरु (सं०)	२०२
तुम्बुरू	२०२
तुम्बुल (हिं०)	२०२
तुरंजबीन (अ०)	१६२
तुरुष्क (सं०)	३५०
तुर्बं (फा०)	३१६
तुर्बुद (अ०)	२१४
तुलस (म०)	१८१
तुलसी (सं०, हिं०, बं०)	१८१
तुलसीकपूर	१८१
तुलसी कृष्ण	१८१
तुलसी श्वेत	१८१
तुवरक (सं०)	१८१
तुवरक तैल	१८२
तुवरक बीज	१८२
तूतगांठा (चकरौता)	३९५
तूतमलंगा (हिं०)	१८३
तूबानज (अ०)	२४९
तूलिनी (सं०)	३८६
तृणध्वज (सं०)	३४१
तृणपंचमूल (सं०)	९७
तेउडी (बं०)	२१४
तेउरी (बं०)	२१४
तेजपत्ता (हिं०)	१८४
तेजपत्र (हिं०)	१८४
तेजपात (हिं०)	१८४
तेजफल (हिं०)	२०२
तेलबल (हिं०)	२०१
तेतुल (बं०)	४०
तेमरु (जौनसार)	२०२
तेल	१९१
तेलमछि (ते०)	२६
तेलाकुचा (पं०)	१०१
तेलियादेवदार (म०, गु०)	१२३
तैलपर्णी (सं०) ?	१२३
तैलीय राल	१९४
तोआर (संथा०)	१९१
तोकमलंगा (हिं०)	१८३
तोडलें (म०)	१०१
तोदरी (फा०, मा०, बा०, हिं०)	१८५
तोदरी लाल (सुर्ख़)	१८५
तोदरी पीला (ज़र्द)	१८५
तोदरी सफ़ेद	१८५
तोदरिन (अं०)	१८५
तोपचिनी (बं)	१५४
त्रामाण (कु०)	१८७
त्रायन्ती (सं०)	१८७
त्रायमाण (सं०)	१११, १८७
त्रायमाणा (सं०)	१८७
त्रायमाण बंगीय	१८८
त्रिकण्टक (सं०)	१३८
त्रिकोषफल (सं०)	३७३
त्रिपत्र (पं०)	३७९
त्रिपर्णी (सं०)	३१५, ३६१
त्रिपुटा (सं०)	२१४
त्रिभण्डी (सं०)	२१४
त्रिवृत्त (सं०)	२१४
त्रिवृत्ता (सं०)	२१४
त्वक् ((सं०)	१९३
त्वक्क्षीरा (सं०)	३४१
त्वक्क्षीरी (सं०)	३४१
त्वकसार (सं०)	३४१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
[ब]	
बाइ (फा०)	२०४
बाइबीन (अं०)	११
बाइमोल (अ०)	११, १२, ७२
बालीक्ट्रम फोलिओलोसुम् (ले०)	२४६
बीडास (यू०)	९८
बुनेर (जोनसार)	१७६
बुलकुडी (बं०)	२८०
बूजोन (अं०)	२०
बूहड़ (हिं०)	३८८
बूहर (हिं०)	३८८
बेबेटिआ नेरिफोलिआ (ले०)	६९
बेबेटिन (अं०)	६९
बैफल (बं०)	२५
बैच-ग्रास (अं०)	९६
बैल (हिं०, द०)	१
बोर (पं०, मा०, गु०)	३८८
[द]	
दंडकलस (बं०)	१३५
दन्ती (हिं०)	१८८
दंद (फा०)	१५८
दंदचीनी (फा०)	१५८
दंदुस्सीनी (अं०)	१५८
दगडफूल (म०)	१५५
दच्छ (क०)	३०८
दड़घल (मा०)	१३५
दद्रुघ्न (सं०)	१४५
दधित्थ (सं०)	१०६
दन्ती (सं०)	१८८
दन्तीबीज	१८९
दन्तीमूल	१८९
दम्मुल् अख्वैन (अ०)	१२२, २७५
दरख्त जहरनाक (फा०)	२२५
दरख्त ताडी	१७४
दरख्ते पंबः (फा०)	७०
दरख्ते पलः (फा०)	२३२
दरख्त बादाम शीरी (फा०)	२६९
दरख्त मिस्वाक (फा०)	२४८
दरख्तेरीशः	२६२
दरख्ते लरजा (फा०)	२४६
दराख (गु०)	३०८
दरियाई नारियल (हिं०, द०)	१९०, २११
दरिया का नारियल (द०)	२११
दरो (गु०)	१९७
दर्याचा नारल (म०)	२११
दर्यानुं नालीएर (गु०)	२११
दहनशिगाफ्ता	२०३
द्वीपान्तर (बचा)	३४६
दाख (हिं०, पं०, मा०)	३०८
दाखी	३०८
दाड़म (गु०)	१६
दाड़िम (सं०, बं०)	१६
दाड़िमच्छद (सं०)	३३१
दाड़िमपुष्प (सं०)	३३१
दाड़िममूलत्वक् (स०)	१६
दांती	११८
दानकुनी (बं०)	३४९
दारचीनी (फा०)	१९३
दारचोबा (फा०)	३१, १९०
दारजर्द (फा०)	४०१
दारफिल्फिल् (अ०)	२४३
दारशीशआन (फा०)	९३
दारसीनी (अ०)	१९३
दारहल्द (अ०)	१९०
दारुहरिद्रा (सं०, बं०)	१९०
दारूचीनि (बं०)	१९३
दारुडी (गु०)	३९६
दारूहलद (म०)	१९०
दारूहलदर (गु०)	१९०
दारूहल्दी (हिं०)	१९०
दार्वी (सं०)	१९०
दार्वी रसाञ्जन	३१
दालचीनी (हिं० म०)	१९३
दालचीनी का तेल (हिं०)	१९३
दालचीनी देशी	१९४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
दासकरण्टा (उडि०)	२४५
दासी (सं०, बं०)	२४५
दि एडिबल केपर (अं०)	७५
दि एलिफैण्ट-क्रीपर (अं०)	३४७
दि ऐश-गोर्ड (अं०)	११७
दि ओलिओ-रेजिन आफ पाइन (अं०)	१२३
दि कॉमन-मैलो (अं०)	१२१
दि कुड्डपा आमंड (अं०)	१५३
दि गार्डन एण्डिव्ह (अं०)	९७
दि गूलर-फिग (अं०)	१३६
दी ग्रेटर-कार्डेमम् (अं०)	४४
दि चिड़-पाइन (अं०)	१२३
दि बॉक्स-मर्टिल (अं०)	९३
दि मंकी-फ्लेसम ट्री (अं०)	७८
दि लेसर-गेलंगल (अं०)	११३
दि वाइल्ड-लेटिस (अं०)	९८
दि हेना-प्लांट (अं०)	३१९
दीर्घकील (सं०)	१
दीर्घवृन्त (सं०)	३९२
दीप्यक (सं०)	१०
दी बोखारा प्लम् (अं०)	३७
दीवारमूली (द०)	१०७
दुग्धफेनी का प्रवाही घनसत्व	१९६
दुग्धफेनी (सं०)	१९५
दुग्धफेनी-घनसत्व	१९६
दुग्धफेनी-मूल (सं०)	१९५
दुद्धी, छोटी	१९६
दुधबच (हिं०)	३४५
दुधल (हिं०)	१९५
दुधल की जड़	१९५
दुधलाल (खर०)	३७१
दुधली (पं०)	१९५
दुधलो (काठिया०)	१११
दुधिया (बं०)	१९६
दुधिया घास (हिं०)	१९६
दुधियाबच (हिं०)	३४५
दुब्रड़ा (पं०)	१९७
दुमकी मिर्चा (द०)	७६
दुमदारमिर्च (द०)	७६
दुरालभा (सं०, बं०)	२०४
दुवबालक (फा०)	१५५
दुःस्पर्श (सं०)	१६१
दुःस्पर्शा (सं०)	६३
दुहुनुल्हल (अ०)	१७९
दुहनुस्सिम्सिम् (अ०)	१७९
दूदल (पं०)	१९५
दूधवत्थल (प०)	१९५
दूधियाबछनाग (गु०)	८४
दूधीकलां	१९७
दूधा (देह०)	३७१
दूब (हिं०)	१९७
दूर्वा (सं०, म०)	१९७
दूर्वाघास (बं०)	१९७
देवकपास (हिं०)	७१
देवकाञ्चनमु (त०)	६०
देवकुसुम (स०)	३३३
देवडांगरी (म०)	२५२
देवताड (बं०)	२५५
देवताडक (सं०)	२५५
देवदार (हिं०, म०, गु०)	१९७
देवदारु (स०)	१९७
देवदाली	२५५
देवनल (सं०)	२०६
देशी असगन्ध	३१
देशी कतीरा	६५, ६६
देशी कपास	७०
देशी गाफिस	१८७
देशी जेन्शन	१८८
देशी मूली	३१६
देशी शक्कर (हिं०)	४९
देशीशाहतरा (हिं०)	२२८, २२९
देशी सोआ	३९१
दोड्डतगचे (का०)	८८
दोडी (गु०)	१६९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
दोधक (पं०)	१९६
दोधारी (संथा०)	३९८
द्रवन्ती (सं०)	१८९
द्राक्ष (म०)	३०८
द्राक्षशर्करा (सं०)	३०९
द्राक्षा (सं०)	३०८
द्राक्षाम्ल (हिं०)	३०९
द्राविडी (सं०)	४२
द्रेक (सं०)	२५७
द्वीपान्तरवचा (सं०)	१५४
[ध]	
धणे (म०)	२००
धतूरा (हिं०)	१९९
धत्तूर (सं०)	१९९
धत्तूरो (मा०, गु०)	१९९
धनमरवा (वि०)	३६३
धनियाँ (हिं०, द०)	२००
,, खुश्क	२००
धने (बं०)	२००
धन्वन (सं०)	१३३
धन्वयास (सं०)	२०४
धमगजरा (हिं०)	२२८, २२९
धमासा (हिं०, म०,)	२०४
धमासो (गु०)	२०४
धमाह (पं०)	२०४
धम्या (पं०)	२०४
धराख (गु०)	३०८
धरो (गु०)	१९७
धवई (हिं०)	२०४
धवलढाक (उ०, भा०)	२४०
धवलबरुआ (हिं०)	३६३
धाईफुल (बं०)	२०४
धाणा (गु०)	२००
धातकी (सं०)	२०४
धातुपुष्पी (सं०)	२०४
धात्रीपत्र (सं०)	१६७
धात्रीफल (सं०)	३१
धान्यक (सं०)	२००
धामिन (हिं०)	१३१
धाय के फूल (हिं०)	२०४
धायटी (म०)	२०४
धाय (हिं०)	२०४
धावड़ी (गु०)	२०४
धावस (म०)	२०४
धुना (बं०)	३२६
धुपसलसी (नेपा०)	१२३
धूतूरा (बं०)	१९९
धूपड़ो (गु०)	३६५
धूप (नेपा०)	१२३
धूपवृक्ष (सं०)	३२६
धूम्रपत्रा (सं०)	४८
धूर्त (सं०)	१९९
धोत्रा (म०)	१९९
धोली मुसली (गु०)	३१३
धोवीज-नट (अं०)	२८८
ध्रामामाऊ (कच्छ)	२०३
ध्रो (गु०)	१९७
[न]	
नकली कुटकी	१११
नकली जायफल	१६६
नकली ममीरा	२९४
नकली वंशलोचन	३४२
नक्तमाल (सं०)	८१
नक्स मॉस्केटा (ले०)	१६४
नक्स वॉमिका (अं०)	१०८
नखरजनी (अष्टाध्यायी)	३२०
नखरञ्जनी (सं०)	३२०
नगोड (गु०)	२१२
नजमरेड (थोल्को०)	३६३
नजमरेड (को०)	२४३
नटमेग (अं०)	१६४
नटमेग-ऑयल (अं०)	१६४
नत्तातिविदयम् (ता०)	१४
नत्तीव्रतिवस (ते०)	१४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
नन्हाँपूसी-तोआर ((संथा०)	१९६
नबातुलकुत्न (अ०)	७०
नबातुल् खशखाश (अ०)	२०
नबातुस्सिन्न (अ०)	१४०
नमेरु (सं०)	२०७
नरकचूर (हिं०, गु०)	६२
नरकट, नरकुट (हिं०)	२०५
नरकुंदुर	३३३
नरमा (हिं०)	७१
नरसल (हिं०)	२०५
नरियल (हिं०)	२०९
नरेल (पं०)	२०९
नल (सं०, बं०, म०)	२०५
नशपाती (हिं०)	२११
नसपाल (हिं०)	१६
नसोत्तर (गु०)	२१४
नाइट-जैस्मिन (अं०)	२२५
नाक ((पं०, अफ०)	२११
नाकपतर (हिं०)	२१४
नाकुली (सं०)	४७
नागकेशर (सं०)	१०६, २०६
नागकेशर (हिं०, म०, गु०)	२०६
नागचम्पा	१०७
नागदन्ती	१८९
नागदमन	३१५
नागदमनी (सं०)	३१५
नागपुष्पा (सं०)	२०६
नागरङ्ग (सं०)	२०८
नागर (सं०)	३८९
नागरबेलना (गु०)	२३८
नागरमुता (बं०)	२०७
नागरमुस्ता (सं०)	२०७
नागरमोथ (गु०)	२०७
नागरमोथा (हिं०, म०)	२०७
नागरवेल (म०)	२३८
नागरबेलना पान (गु०)	२३८
नागवल्लरी (सं०)	२३८

नाम	पृष्ठ
नागबल्ली (सं०)	२३८
नागवेल (म०, सं०)	२३८
नागार्जुनी (सं०)	१९६
नागोकपूर	१०४
नागेश्वर (बं०)	२०६
नागेसर (हिं०)	२०६
नागोरी असगंध	३१
नाट-वीड (अं०)	२
नाडिंग-रीड (अं०)	२०५
नानखाह (फा०)	११
नानीदुधेली (गु०)	१९६
नानेकुलाग (फा०)	१२१
नारंग (सं०, फा०)	२०८
नारंगी (हिं०, मु०)	२०८
नारगील (फा०)	२०९
नार (फा०)	१६
नारंज (अ०)	२०८
नारकेल (सं०)	२०९
नारजीले दरियाई (फा०)	२०९
नारजीले बहरी (अ०)	२०९
नारदीने हिंदी (फा०)	१५६
नारदे हिंदी (फा०)	१५६
नारल (म०)	२०९
नारिंग (मं०)	२०८
नारिकेल (सं०)	२०९
नारिकेलक्षार (सं०)	२१०
नारिकेलखण्ड	२११
नारिकेललवण	२११
नारिकेलामृत	२११
नारियल (हिं०, गु०)	२०९
नारियल, दरियाई	२११
नारेमुष्क (फा०)	२०३
नार्कोटीन (अं०)	२२, २३
नार्ड (अं०)	१५६
नार्ड्स-रूट	१५६
नार्डोस्टाकिस (ले०)	१५६
नार्डोस्टॉकिस जटामांसी (ले०)	१५६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
नार्डस्-रूट (अ०)	१५६	नीखेट्टि (मल०)	१८१
नालिकेर (सं०)	२०९	निजेला साटीवा (ले०)	२९१
नावल (ता०)	१६३	नीब	२१७
नाशपाती (हिं०)	२११	नीबू (हिं०)	२१६
नासपाती (हिं०, पं०)	२११	नीम (हिं०)	२१७
नासो (अमे०)	१५	नीरमल्लि (अ०)	३६३
निंढोत्रिकुंड (सिंध)	१३८	नीरा (हि०), स्वीट-ताडी (अं०)	१७४, १९७
निकुम्भा (सं०)	१८८	नीर्वाल (मल०)	२६३
निक्टांथेस आर्बोरट्रिस्टिस (ले०)	२२५	नीलकण्ठ (क०)	१८७
निक्टेयोन (अं०)	२११	नीलकुमिज (मल०)	१२६
निगाचूनी (हिं०)	१९६	नीलगिरि कर्णिका (सं०)	१८
निगुण्डी (उड़ि०)	२१२	नीलज (अ०)	२१९
निग्रो-कॉफी (अं०)	८८	नीलपुष्पी (सं०)	२७, ३४९
निचुल (सं०)	३५८	नीलमुकिज (ता०)	१२६
निदिग्धिका (सं०)	६३	नील (हिं०, बं०, म०, फा०)	२१९
निनावा (हिं०)	१७८	नीलवृक्षाकृति (सं०)	३५९
निनास (हिं०	१७८	नीलसैरेयक (सं०)	२४५
निब (पं०)	२१७	नीलापराजिता (सं०)	१८
निम (बं०)	२१७	नीलिनी (सं०)	२१९
निमू (सि०)	२१६	नीली (सं०)	२९९
निम्ब (सं०)	२१७	नीली कोयल (हिं०)	१८
निम्बूक (सं०)	२०२, २१६	नीब	२१७
निम्बूकाम्ल	३६	नुग (सि०)	२६२
निरडिमुटटु (ता०)	१८१	नुर्वाल (मल०)	९६३
निर्गुण्डी (सं०, म०)	२१२	नेचुरल कैम्फर (अं०)	७२
निर्मली	१०९	नेबेजा डेलू (सिंध)	२५५
निर्मली (हिं०, पं०, बं०)	२१३	नेपाल (सं०)	२५८
निर्विषी (सं०)	१५७	नेपालमूलक	२८९
निर्विषी (हिं०)	१५७	नेपाली एलाच (बं०)	४४
निलोविल (नेपा०)	१५७	,, धनियाँ (हिं०, ब०)	२०२
निवुडुंग (म०)	३८८	,, धने (बं०)	२०२
निशा (सं०)	४०१	नेपाली (गु०)	१५८
निशिदा (सं०)	२१४	नेवती (म०)	८३
निशोत (हिं०)	२१४	नेरिईन (अ०)	६९
निशोत्तर (म०)	२१४	नेरियम इंडिकुम् (ले०)	६९
निशोथ (हिं०)	२१४	,, ओडोरम् (ले०)	६९
निसिन्दा (बं०)	२१२	नेरियोडोरिन (अं०)	६९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
नेंलुम्बो नूसीफेरा (ले०)	७७
नेवारमूली (हिं०)	३१६
नैनि नैशकर (फा०)	४८
नैनिहाबंदी (फ०)	१५१
नैसर्गिक कर्पूर (सं०)	७२
,, बंशलोचन	३४२
न्यग्रोध (सं०)	२६२
न्हाना गोखरू (गु०)	१३८
[प]	
पंचकोल	१९०
पंचांगुल (सं०)	५५
पंजंगुश्त (फा०)	२१२
पंजासालम	३७२
पंबः (फा०)	७०
पंब:दाना (फा०)	७०
पँवाड़ (हिं०)	१४५
पक्व हरड़	४००
पखरा कत्था (हिं०)	६८
पखानकन्द	२४१
पखानभेद (हिं०)	२४१, २४३, ४०७
पचम्पचा (सं०)	१९०
पचलै (ता०)	२२५
पटतिर (सिं०)	५६
पट्टरञ्जन	३२०
पट्टराग	२२०
पट्टिकालोध्र (सं०, पं०)	३३८
पटोल (सं०, बं०, गु०)	२२६
पठानीलोध (हिं०)	३३८
पडवल (म०)	२२६
पतंग (सं०, हिं०, म०, गु०, द०), पतङ्ग	२२०
पतंग, धुनसरी	२२१
पतंग, लंका	२२१
पतंग, सिंगापुरी	२२१
पतालकोंहड़ा (हिं०, खर०)	३४६
पतालगरुडी (उड़ि०)	३६३
पतीस (पं०, क०)	१४
पतंगी (सिंह०)	२२०

नाम	पृष्ठ
पत्ता अजवायन (हिं०, बं०)	२२२
पत्र (सं०)	१८४
पत्थरचूर	८८
पत्थर का फूल (हिं०)	१५५
पत्राङ्ग (सं०)	२२०
पत्राढ्य (सं०)	१७६
पत्रीकपूर (हिं०)	१०४
पत्रीस (क०)	१४
पथरचूर (हिं०)	२२२, २४१, २४२
पथरसोखा (म०)	२२९
पथरी (हिं०)	२५०
पथ्या (सं०)	३९९
पदमकाठ (हिं०)	२२२
पद्म (सं०)	७७
पद्मक (सं०)	२२२, २०९
पद्मकाठ (हिं०)	२२२
पद्मकाष्ठ (सं०, हिं०, म०, गु०)	२२२
पद्मगंधि (सं०)	२२२
पद्मगुडूची (सं०)	१२७
पद्म (द) च चाल (बेपा०)	३२९
पद्मपत्रक (सं०)	२५१
पद्मबीजाभ (सं०)	२९२
पद्माक (ख)	२२२
पद्मिनी (सं०)	७७
पनडी (हिं०)	२३९
पनरवो (गु०)	२४०
प(पा)पडिया कत्था	६८
पपट्या (हिं०)	२२४
पपाया (म०)	२२४
पपाया (ब) ट्री (अं०)	२२४
पपायोटिन (अं०)	२२५
पपीता (हिं०)	२२४
पपेन (अं०)	२२५
पपैया (हिं०)	२२४
पपैया का तेल (हिं०)	२२५
पप्पलि (ता०)	२२५
पप्पायम् (मल०)	२२५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
पफ्लू (काश्मीर)	२७९
पम्पोश (काश्मीर)	७७
पमाड़ (हिं०)	१४५
पम्बचालन (का०)	३२९
पयारांगा (हिं०)	२४६
पयः प्रसादिनी (सं०)	२१३
परजाता (हिं०)	२२५
परवर, परबल (हिं०)	२२६
,, कृषिजन्य (मीठा)	२२६
,, स्वयंजात या	२२६
,, जगली (कड़ुआ)	२२६
परसियावशाँ (फा०)	३९८
परार (मा०)	२३६
परास (हिं०)	३३२
परिपाठ (म०)	२२९
परुंचिचक्क (मल०)	१५
परूषक (सं०)	२५४, २५५
परोरा (हिं०)	२२६
पर्णबीज (सं०, हिं०)	२४२
पर्णयवानी (सं०)	२२२
पर्पट (सं०)	२२८
पर्पट, जौनपुरी	२२९
पर्पट, पूना	२२९
पर्पट बंगीय	२२९
पर्पट बम्बई	२२९
पर्पट, शोलापुरी	२२९
पर्पटी (हिं०)	२३९
पर्पल टेफ्रोसिया (अं०)	३६०
पर्पल-फ्लीबेन (अं०)	७९
पर्सियन-मेन्ना (अं०)	१६२
,, ,, प्लांट (अं०)	१६२
,, लिलैक (अं०)	२५७
पलक्ष (सं०)	१३४
पलवल (पं०)	२२६
पलस (म०)	२३२
पलसा चा गोंद (म०)	२३२
पलसाची बीज (म०)	२३२

नाम	पृष्ठ
पलाण्डु (सं०)	२५२
पलाश (स) (सं०, हिं०)	२३२
पलाशबीज (सं०)	२३२
पलाश का झाड़ (द०)	२३२
पलाशगाछ (बं०)	२३२
पलाशगोंद (हिं०)	२३२
,, निर्यास (सं०)	२३२, २७५
पलाशी (सं०)	७४
पलास (सं०, हिं०)	२३२
,, का गोंद	२३२, २३३
,, की गोंद	२३२, २३३
,, की लाख	२३३
पलाश गुन्द (बं०)	२३२
पलासपापड़ा (हिं०, द०)	२३२
पलासपापड़ो (गु०)	२३२
पलः (फा०)	२३२
पलता (बं०)	२२६
पश्म पंबः (फा०)	७०
पषानभेद (म०, गु०)	२४१
पसदामा (हिं०)	२३२, २३३
पसरन (हिं०)	२५३
पहाडवेल (म०)	२३४
पांगरा (म०)	२४०
पांडानुस ओडोराटिस्सिमुस (ले०)	१०३
पांडानुस टेक्टोरिउस (ले०)	१०३
पांडेरवो (गु०)	२४०
पांढरा कुड़ा (म०)	१११
पांढरे वेखंड (म०)	३४५
पांदडियो (गु०)	३६२
पाइन-एपल् (अं०)	१५
पाइनीन	३४४
पाइनीन्स	३२४
पाइपर	२४३
पाइपर-रूट (अं०)	२४३
पाइपेरि(री)डीन (अं०)	२४४, २९५
पाइप(पे)रीन (अं०)	२४४, २९५
पाइरेथ्रम रूट (अं०)	[illegible]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
पाइरेथ्रीन (अं०)	६
पाकल (सं०)	११५
पाकल, पाके (ता०)	८४
पाजा (जौनसार, हिमा०)	२२२
पाटका (सं०)	२३६
पाठा (सं०, हिं०)	२३४
,, छोटी	२३४
,, बड़ी	२३५
पाडर (गु०)	२२६
पांडरे वेखंड (म०)	३४५
पाडर, पाडेर (संथा०)	२३६
पाडरी	२३६
पाडल (पं०, म०, गु०)	२३६
पाडावल (म०)	२३४
पाढ़, पाढ़ी (हिं०)	२३४
पाढल (हिं०)	२३६
पाढ़ा (हिं०)	२३५
पाढी (देहरादून, गढवाल)	२३४
,, (छोटी पाठा)	२३५
पाणकंदो (गु०)	८९
पाणलवेरु (मल०)	२३७
पा(प)ताकगरुड (उरि०)	३६३
पातालगरुडी (सं०, हिं०)	२३७
पाति (दि) रि (मल०)	२३६
पातिले(ने)बूं (बं०)	२१६
पाथरकुचि (पं०)	२४२
पाथरचूर (बं०)	२४२
पांदणियो (गु०)	३६२
पान (हिं०, द०, ब०, गु०)	२३८
पान भेद	२३९
पान ओंवा (म०)	२२२
पानडी (हिं०)	२३९
पानवेल (म०)	२३८
पानीकुसुम	३३२
पानीफल (बं०)	३७३
पानीयफल (सं०)	२९२
पापचेलिका	२३४
पापडिया कत्था (हिं०)	६७
पापरा (हिं०)	१२१
पापावरीन (अं०)	२२
पापावेर सांम्नीफेरुम् प्र० नोग्रुम् (ले०)	२०, २१
,, ,, प्र० ग्लेब्रम् (ले०)	२१
पापावेरिया काप्सूली (ले०)	२०
पापी कैप्शूल्ज (अं०)	२०
,, हेड्स (अं०)	२०
पामा (पं०)	४०१
पामिरा टॉडी (अं०)	१७४
,, पाम (अं०)	१७४
पॉमेग्रेट (अं०)	१६
पारसीकयमानी (सं०)	३४५
पारसीकवचा (सं०)	३४५
पारिजात (सं०, म०)	२२५
पारिभद्र (सं०)	२४०
,, भारतीय	,,
पारिस पॉलिफील्ला (ले०)	३४५
पारुल (बं०)	२३६
पार्मेलिआ कम्टस्काडालिस (ले०)	१५५
,, पेर्फोराटा (ले०)	१५५
,, पेर्लाटा (ले०)	१५५
पालकजूही ((हिं०)	२४१
पालसा (हिं०)	२५४
पालिकजुहिया (हिं०)	२४१
पालीकार्पिआ कोरीम्बोसा (ले०)	२२९
पॉलीगोनम् बिस्टार्टा (ले०)	२
,, विविपारुम (ले०)	२
पॉलीगोनिक एसिड (अं०)	३
पालुरू (ल) वम् (मल०)	३०३
पाले किराईत (म०)	९४
पाल्तेमदार (बं०)	२४०
पावल (मल०)	८४
पाषाणभेद (सं०)	२२
पिचु (सं०)	७०
पिंपली (म०)	२२७
पियर (अं०)	२११

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
पिक्रोर्हाइजिन (अं०)	१०६
पिक्रोर्हाइजा कुर्रोआ	१८८
पिडेरीन (अं०)	२५३
पितोहरो	२१४
पित (त्त) पापड़ा (हिं०, म०)	२२८
,, खडसलीआ (गु०)	२२९
,, घाटी (बम्ब०, म०)	२२९
,, जौनपुरी (हिं०)	२२९
,, बम्ब (म०)	२२९
,, पूना और शोलापुरी	२२९
पित्तपापड़ा (गु०)	२२९
पिपल (म०)	२४६
पिपला (रा) मूल (हिं०)	२४३, २४४
पिपलामूल (था०)	२४३
पिपलियाँ, पिपली (द०)	२४३
पिपलीमूल (बं०)	२४३
पि (पी) पली (ला) मूल (हिं०)	२४३
पिपुल (बं०)	२४३
पिप्पल (सं०)	२४६
पिप्पली (सं०)	२४३
पिप्पलीमूल (सं०)	२४३
पिप्ली (नेपा०)	२४६
पियाज़ (फा०, हिं०)	२५२
,, सहराई (फा०)	८९
पियाबाँसा (हिं०)	२४५
पियार (ल) (हिं०)	१५३
पियारांगा (हिं०)	२४६
पियासाल (बं०)	२७४
पिल्पिल् (फा०)	२९५
पिवलाघोत्रा (म०)	३९०
पिशाचकार्पास (सं०)	५१
पिस्टिया स्ट्राटिओटेज (ले०)	१६१
पीआरंग (बम्ब०)	२४६, २९४
पीक्रास्मा क्वासिओइडिस (ले०)	२८८
पीक्रोर्हीजा कुर्रोआ (ले०)	११०, १८८
पीक्रक (फा०)	१२१
पीटूसिंग (को०)	२१२
पीतकार्पास (सं०)	६५
,, ,, निर्यास (सं०)	६५, ६६
पीतपुष्पा (ले०)	६०
पीतबीजा (सं०)	३१७
पीतमूला (सं०)	२९३
पीतरंगा (सं०)	२४६, २७१
पीतारांगा (हिं०)	२४६
पीतसैरेयक (सं०)	२४५
पीनुस लांगीफोलिआ (ले०)	१२३
पीपर (गु०)	२४३
पीपर (हिं०)	२४६
पीपल (र) (हिं०)	२४३
,, छोटी	२४४
पीपल वड़ी	२४४
पीपल-ट्री (अं०)	४६
पीपलो (गु०)	२४६
पीपेर कूबेबा (ले०)	७६
,, चाबा (ले०)	१२६, १४७
,, नीग्रुम (ले०)	२९५
पीपेर बेटेल (ले०)	२३८
,, लांगुम (ले०)	२४३
पीरस कॉम्मूनिस	२११
पीरस मालुस	३८७
पीरेथ्रुम राडिक्स (ले०)	५
पीलाकुसुम	२३२
पीली कपास (हिं०)	६५
पीली जड़ी (हिं०)	२४६
पीलु (सं०, म०), छोटा / बड़ा	२४८
,, का तेल (हिं०)	२४८
,, छोटी (हिं०)	२४८, २४९
,, पुष्प	२४९
पीलुडी (गु०)	२९२
पीलुपर्णी (सं०)	३१५
पीलू (हिं०, प०)	२३१
पीस्टासिआ इन्टेगेरिमा (ले०)	९१
,, लेंजुक (ले०)	९१
लेंटिस्कुस	२९६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
पुटालु (का०)	८९
पुठकण्डा (प०)	१५०
पुतेर, पुतरी (राँची)	१९०
पुदिनः (सं०)	२३२
पुदिना (पं०)	२३२
पुदीना (हिं०)	२४९
,, उद्यानज	२४९
,, जंगली	२४९
,, जल	२४९
,, पहाडी	२४९
,, सत	२५०
पुनर्नवा (सं०)	२५०
,, मूल	२५०
पुनर्नवीन	२५१
पुनीर	११
पुर (सं०)	१३४
पुरइन (हिं०)	७७
पुरुषा (हिं०)	२५४
पुलि (ता०)	४०
पुलिचित (ते०)	१४८
पुलियारै (ता०)	१४८
पुलिवारल (मल०)	१४८
पुल्ल चेचलि (ते०)	१४८
पुष्करमूल (सं०, हिं०)	२५०, २५१
पूग (सं०)	३८०
पूतिकरंज (सं०)	५७
पूतिफली (सं०)	२६८
पूतिहा (सं०)	२४९
पूदनः (फा०)	२४९
पूदानज (अं०)	२४९
पूदिनः (फा०)	२४९
पूदिनः (फा०), कोही, नहरी, बर्री, बुस्तानी	२४९
पूदीनः (फा०)	२४९
पूदीना (हिं०)	२४९
पूनिका ग्रानाटुम (ले०)	१६
पृथुशिम्ब (सं०)	३९२
पृथ्वीका (सं०)	२९१, ४४

नाम	पृष्ठ
पेओनिआ आफ्फीसिनालिस (ले०)	५४
,, एमोडी	५४
पेओनी-रोज (अं०)	५४
पेगानुम हर्माला (ले०)	४०१
पेटारि (ब०)	५६
पेठा (पं०, हिं०, मा०)	११७
पेठोसाओ (सिंध)	११७
पेडालिउम् मूरेक्स (ले०)	१३९
पेडेरिआ फेटीडा (ले०)	२५३
पेन्टोसन (अं०)	१६७
पेपर-ग्रास (अं०)	१८५
पेपर-रूट (अं०)	२४३
पेपर-वर्ट (अं०)	१८५
पेपे (बं०)	२२४
पेपर-लीफ (अं०)	२३८
पेयाज (बं०)	२५२
पेयाविरै (ता०)	८८
पेराला (मल०)	२६९
पेरुं (मल०)	८४
पेरुङ्गुम्पिल (ता०)	१२५
पैवदी आम (द०)	३४
,, आम्ब (हि०)	३४
पोंगामिआ ग्लैब्रा	८१
पोंगामिआ पीन्नाटा (ले०)	८१
पोकर (क०)	२५१
पोजो (माल०)	३२०
पोटाश (अं०)	१५१
पोटास (अं०)	३४२
पोटासियम् क्लोराइड (अं०)	१७२, २५१
,, कार्बोनेट (अं०)	१७२
,, नाइट्रेट (अं०)	२५१
,, बाईकार्बोनेट (अं०)	१७२
,, बाईटार्ट्रेट (अं०)	४२
,, सल्फेट (अं०)	१७२
पोडोफाइलिन (अ०)	२३१
पोडोफिलिन (अ०)	२३१
पोडोफिलोटॉक्सिन	२३१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
पोडोफिलोरेजिन	२३१
पोडोफिल्लुम् पेल्टाटम् (ले०)	२३१
पोडोफिल्लुम पेल्टाटुम्	२३१
पोडोफिल्लुम् हेक्सांड्रुम् (ले०)	२३०
पोतेर (मुंगेर)	१८९
पोदानज (अ०)	२४९
पोन्नाविरम् (मल०)	८८
पोफल (म०)	३८०
पोरजो (मल०)	३२०
पोरियाबेल (देहरा०)	१२७
पोष्कर (क०)	२५१
पोस्त अनार (फा०)	१६
,, ख़शख़ाश (फा०)	२०
,, दाना (हिं०)	२०, २१
,, बेख़ अनार (फा०)	२१
,, ,, (पं०, बं०, फा०)	६२
,, सुमाक (फा०)	१७९
पोस्ता (हिं०)	२०
पोस्ते का तेल (हिं०)	२२
,, दाना (हिं०)	२२
,, की डोडी (हिं०)	२१
,, कोकनार (फा०)	२१
,, ख़शख़ाश (फा०)	२१
पोहकरमूल (हिं०, म०, गु०)	२५१
पोढा (हिं०)	४२
प्टेरोकार्पुस मार्सूपियम (ले०)	२७४
प्टेरोस्पेर्मुम् आसेरीफोलियम्	३०६
प्याज (हिं०)	२५२
,, लाल	२५२
,, सफ़ेद	२५२
प्रकीर्य (सं०)	५७
प्रतिविषा (सं०)	२७३
प्रत्यक्श्रेणी	१८८
प्रपुन्नाट (सं०)	१४५
प्रसारिणी (सं०)	२५३
प्रांस (गु०)	१७२
प्रावृषायणी (सं०)	१०२

नाम	पृष्ठ
प्रिवली चैफ-फ्लावर (अं०)	१५०
प्रियंगु (सं०)	२५३, ५४
प्रियक	२७४
प्रियाल (सं०, हिं०)	१५३
प्रूनुस आमीग्डालुस (ले०)	२६९
,, काम्यूनिस (ले०)	३७
,, डोमेस्टिक (ले०)	३७
प्रूनुस पड्डुम् (ले०)	२२३
,, सेरासोइडेस (ले०)	२२३
प्रूनुस महालेब (ले०)	२५४
प्रूनेल्ला वुल्गारिस	५४
प्रेम्ना इन्टेग्रिफोलिआ (ले०)	९
,, फ्लावेसेन्स (ले०)	१२६
,, बारबेटा (ले०)	९
,, मूक्रोनाटा	९
,, लाटीफोलिआ	९
,, सेर्राटीफोलिआ	९
प्लम्बेजिन	१४९
प्लांटागो आम्प्लेक्सिकाउलिस	४६
,, आरेनारिआ (ले०)	४६
,, ओवाटा (ले०)	४५
,, प्सीलिउम्	४६
,, माजोर (ले०)	४३
,, लांसेओआटा (ले०)	४६
प्लीहघ्न (सं०)	३३१
प्लीहशत्रु (सं०)	३५९
प्लुम्बागो ईंडिका (ले०)	१४८
,, कार्पेसिस (ले०)	१४८
,, जेइलानिका (ले०)	१४८
,, रोजिआ (ले०)	१४८
ल्यूचेआ लांसेओलाटा (ले०)	३२७
प्सेउडाग्रिआ विस्सिडा (ले०)	३६३
प्सोरालेआ कोरीलीफोलिआ (ले०)	२६८
प्सोरालेआ सेमिना (ले०)	२६८
[फ]	
फणिफेन (सं०)	२०
फतरसोआ	२४१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
फरकट (कु०)	३९१
फरफेंदू (हिं०)	३९
फरवाँ (पं०)	१७२
फरसिया (हिं०)	२५४
फरहद (हिं०)	२४०
फरार (खर०)	२४०
फरास (हिं०)	१७२
फरीदबूटी (हिं०)	२३७
फलगुसी (बं०)	२३
फलप्रियंगु (बं०, हिं०)	२५४
फलिनी (सं०)	२५३
फलेपुष्पा (सं०)	१३५
फल्गु (सं०)	४
फल्समाही (अ०)	१०८
फल्सा (बं०)	२५४
फाइकसिन (अं०)	२६९
फाइव-लीव्ड फ्युमिटरी (अं०)	२२८
,, ,, चेस्ट ट्री (अं०)	२१२
फाइटॉस्टेराल (अं०)	३१, ३३४
फॉक्स-नट (अं०)	२९२
फ़ाख़िर (फा०)	२०२
फ़ाग़िर (अ०)	२०२
फागोनिआ आराबिका	२०४
फागोनिआ क्रेटिका (ले०)	२०४
फाजा (जौनसार, हिमा०)	३२२
फायर-फेस ट्री (अं०)	२८८
फारमूसा कपूर (हिं०)	७२
फारबाँ (सिंध)	२५४
फारसी हींग	४०६
फार्बिटिसिन (अं०)	९५
फालसा (हिं०, गु०, म०)	२५४
,, शकरी	२५५
,, शर्बती	२५५
फासेओलुस ट्रीलोबुस (ले०)	३०७
फाल्सः (फा०)	२५४
फॉस्फोरिक अम्ल (अं०)	१७२
,, एसिड (अं०)	३१७

नाम	पृष्ठ
फॉस्फोरिक फिग (अं०)	४
फिग (अं०)	४
फिलैन्थिन (अं०)	२९१
फिसिन (अं०)	४
फिल्फिल (फा०)	२४३
फिल्फिलमूयः (अ०)	२४१
फिल्फिल सफ़ेद	२९६
फिल्फिलीन	२९५
फिल्फिले स्याह (गिर्द) (फा०)	२९५
फीकुस कारिका (ले०)	४
फीकुस ग्लोमेराटा (ले०)	१३६
फीकुस बेंगालेंसिस (ले०)	२६२
फीकुस रेलीजिओसा (ले०)	२४६
फीकुसिन (अं०)	२६९
फील्लांथुस ऊरीनारिआ (ले०)	२९०
,, नीरूरी	२९०
फीवर-नट (अं०)	५७
फुजल/फुज्ल (अ०)	३१६
फुदीनो (गु०)	२४९
फुन्दुके फारसी (फा०)	३२८
फुल्लवा (हिं०)	२९९
फुलूसेमाही (फा०)	१०८
फूट (हिं०)	५१
फूटककड़ी (हिं०)	५९
फूत(द)नज (अ०)	२४९
फू(पू)दानज (अ०)	२१९
फूम (अ०)	३३४
फूमारिआ आफ्फीसिनालिस (ले०)	२२८
फूमारिआ इंडिका	२२८
फूमारिआ पार्वीफ्लोरा	२२८
फूलप्रियंगु (हिं०, बजार)	२५३
फेनिल (सं०)	३२७
फेनू-ग्रीक	३१७
फ़ेरुला नार्थेक्स (ले०)	४०५
फ़ेरुला फीटिडा (ले०)	४०५
फ़ैजन (अ०)	३७७
फोक (सतलज-घाटी)	३९५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
फ्युमेरिक एसिड (अं०)	२२९
फ्युमेरीन (अं०)	२२९
फ्राग्मीटेस कर्का (ले०)	२०५
फ्राग्मीटेस माक्सीमा (ले०)	२०६
फ्रेंग्युलिक एसिड (अं०)	२४१
फ्रेंच लेवेंडर (अं०)	५३
फ्रैंकिन्सेन्स (अं०)	३६५
फ्लावर्स ऑफ कैम्फर (अं०)	७३
फ्लेक्स-सीड (अं०)	२७
फ्लेमिंजिआ चप्पर (ले०)	३६२
फ्लेमिंजिआ सेमीअलाटा	३६२
फ्लैक्स-सीड (अं०)	२७
[ब]	
बंक (ग) (फा०)	१२
बकम (बं०, हिं०, अं०)	२२०
बकमु (ति०)	२२८
बक़लतुल् मलिक (अ०)	२२८
बंग (फा०)	२८३
बंगदीवाना (फा०)	१२
बंगला इलायची (हिं०)	४४
बंगीय त्रायमाण	१८८
बंगीयमूर्वा (सं०)	२८९
बंगीय रोहीतक (सं०)	३०२, ३०३
बंगीय में विदारी	३४७
बंडाल (हिं०)	२५५
बंडाल डोडा	२५५
बंसी जकरान (अ०)	७२
बंदाल (हिं०)	२५५
बदालडोडा (मा०)	२५५
बंसोटा (हिं०)	१३
बकम (अ०, फा०)	२२०
बकमु (ति०)	२२०
बक़लतुल्मलिक (अ०)	२२७
बकुची (हिं०)	२६८
बक़लए यहूदियाँ (अ०)	१९५
बक़लए हामिज़ा (अ०)	१५४
बकाइण (सं०)	२५७
बकाइन (हिं०, देहरा०)	२५७
बकायन (हिं०)	२५७
बकाणा (णि/निंब) (म०)	२५७
बकान लीबड़ो (गु०)	२५७
बकुल (सं०), म०, बं०)	३३२
बखमा, बख्मो	२७३
बघनई (हिं०)	८४
बघरेंड (हिं०)	१५९
बघारणी (गु०)	४०५
बच (हिं०)	३४२
बच (हिं०, बं०)	३४२
बछ (हिं०)	३४२
बछनाग (हिं०)	२५८
बज़दुब: (फा०)	११७
बज़्बाज़ (फा०)	१६४
बज़रुल करफस (अ०)	८२
बज़रुल काहू (अ०)	९७
बज़रुल किन्नब (अ०)	२८४
बज़रुल कुज्बुर (अ०)	२००
बज़रुल ख़शख़ाश (अ०)	२०
बज़रुल खस्स (अ०)	९८
बज़रुल खुम्खुम् (अ०)	१८५
बज़रुल जिरजीर (अ०)	१४६
बज़रुल बंज (अ०)	१२
बज़रुल बस्ल (अ०)	२५२
बज़रुल बालक (अ०)	१८३
बज़रुल बालंकू (अ०)	१८३
बज़रुल हम्माज (अ०)	१५४
बज़रुल हिंदबा (अ०)	९७
बड़ (हिं०)	२६२
बड़ एलाच (बं०)	४४
बड़ एलाची (ब०)	४४
बड़ गूँदा (गु०)	३३७
बड़ गोखरि (बं०)	१३९
बड़ा पीलू	२४८
बड़ा गोखरू (द०)	११९
बड़ा रीठा	३२८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
बड़ा लिसोढ़ा	३३७
बड़ा गोखरू (गोखुर) (हिं०)	१३३
बड़ी कटाई	१३३
बड़ा सालपान (देहरा०)	३६३
बड़ी अजमूद (बम्ब०)	८२
बड़ी इलायची (हिं०)	४४
बड़ी कटेरी (हिं०)	६४
बड़ी दुद्धी (हिं०)	१९७
बड़ी पीपल (हिं०)	२४४
बड़ीमाई	१७२
बड़ी हरड़ (हिं०)	४००
बण (पं०)	२४८
बतीस (पं०)	१४
बदर	५०
बदाम (हिं०)	२६९
बन उड़द (हिं०)	३०५
बनउर्दी (हिं०)	३०५
बन एटकी (संथा०)	२१४
बनकफड़ी (हिं० पं०)	२३०
बनकपास (हिं०)	७१
बनकरेला (बं०)	६०
बनकरैला (हिं०)	८५
बनकाहू (सिंध)	९८
बनजाण (सिंध)	१०
बनजीरी (हिं०)	७९
बननील (बं०)	३५९
बनफ्शा	२५९
बनफशा (सा) (हिं० म० गु०)	२५९
बनफ्शः (फा०)	२५९
बनफ्शा कश्मीरी	२५९
बनफ्शा फारसी	२५९
बनफ्शील (अ०)	२५९
बनफ्सज, फ़रफ़ीर (अ०)	२५९
बनफ्सा (फा०)	२५९
बनबाकरी (जौनसार)	२८७
बनभंटा (हिं०)	६४
बनमाष (हिं०)	३०५
बनमूंग (हिं०)	३०८
बनवान (जौनसार)	२७२
वनश्रृंगाट (सं०)	१३८
बनसरई (अलीगढ़)	३२७
बनसोआ (हिं०)	२२९
बनहट (संथा०)	३९२
बनहाटक (संथा०)	३९२
बन्ध्याकर्कोटकी (सं०)	६०
बबुर (सिंध०)	२६०
बबुल (र) (हिं०)	२६०
बबूर (हिं०)	२६०
बबूल (हिं०)	२६०
बबूल का गोंद (हिं०)	२६०
बब्बूल (सं०)	२६०
बमचूठ (क०)	२७६
बरगद (हिं०)	२६२
बयड़ा (बं०)	२६७
बर (हिं०)	२६२
बरधारो (गु०)	३४७
बरन (हिं०)	१९५
बरना (हिं०, पं०, सहारन पुर)	२६३
बरबरी फटया (हिं०)	६४
बरबरीफ्रूट (अं०)	१९०
बरसाती ककड़ी (हिं०)	५९
बरसियावशाँ (अ०)	३९८
बरियरा (हिं०)	२६४
बरियार (हिं०)	२६४
बरियारा (हिं०)	२६४
बरुण (बं०)	२६३
बरुना (हिं०)	२६३
बरेजद (फा०)	१२३
बर्कुलखिया (अ०)	२८३
बर्ग कश्नीज (अ०)	३०१
बर्ग सूफार (फा०)	३६०
बर्बर (सं०)	२८०
बर्बेरीन	१९२, २१५, २४६, १९७
बर्बेरीन सल्फेट	१९२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
बर्मि (हिं०)	१७६
बर्मीज स्टोरैक्स (अं०)	३५०
बल (फा०)	२७८
बल, बला (गु०)	२६४
बला सं०)	२६४
बलाडुमुर (बं०)	१८८
बलादुर/बिलादुर (फा०)	२८८
बलीलः (फा०)	२६७
बलीलज (अ०)	२६७
बल्सम	३५०, ३५१
बसररासी (क०)	२३५
बसर (सिंध)	२५२
बस्टर्ड-टीक (अं०)	२३२
बस्बासः (फा०)	१६४
बस्क (अ०)	२५२
बहमन अब्यज (अ०)	२६६
बहमनेबर्री (फा०)	३०
बहमन काल (हिं०)	२६६
बहमन सफेद (हिं०)	२६६
बहमने सुफेद (फा०)	२६६
बहमने सुर्ख़ (फा०)	२६७
बहुवार (सं०, पं०)	१३७
बहुपाद (सं०)	२६२
बहुला (सं०)	४४
बहेडा (हिं०)	२६७
बाँझको (हिं०)	६०
बांडक-नट (अं०)	५७
बाँदा	३२७
बाँश (बं०)	३४१
बाँस (हिं०)	३४१
बाँसः (फा०)	१३
बाँसा (हिं०, पं०)	१३
बाकोपा मोन्निएरी (ले०)	२८१
बाकुची (सं०, हिं०)	२६८
बा(भा)खरा (हिं०)	१३८
बाण (सं०)	२४५, ३५९
बादाम, मीठा (हिं०)	२६९
बादाम का तेल (हिं०)	२६९
बादामे फिरंगी (फा०)	९२
बाबची (गु०)	२६८
बाबल (गु०)	२६०
बाबला (बं०)	२६०
बाबलियो (मा०)	२६०
बालबच (हिं०)	३४५
बामुनहाटी (बं०)	२८७
बॉम्बाक्स सेइबा (ले०)	३८६
बॉम्बाक्स मालाबारिका (ले०)	३८६
बॉम्बूसा अरुण्डीनासेआ (ले०)	३४१
बाम्बेक्स मालाबारिकुस् (ले०)	३८६
बॉम्बेक्स सीबा (ले०)	३८६
बायबिडंग (हिं०)	२७०
बारजद (फा०)	१२३
बारबेलोइन (अं०)	१३५
बारींगटोनिआ आकूटांगुला (ले०)	३५८
बारींगटोनिआ रासेमोसा (ले०)	३५९
बारो(बो)पाटुली (उरि०)	२३६
बालानीटेस एजिप्टिआका (ले०)	३८
बालानीटेस रॉक्सबुर्गी (ले०)	३८
बार्ली (अं०)	१७१
बार्लेरिआ क्रीस्टाटा (ले०)	२४५
बार्लेरिआ डीकोटोमा (ले०)	२४५
बार्लेरिआ प्रीओनाटिस (ले०)	२४५
बार्लेरिआ स्ट्रीगोसा (ले०)	२४५
बावची (हिं०, म०, गु०)	२६८
बावडींग (पं०)	२९०
बालक (सं०)	३७७
बालंका (द०)	१८१
बालंकू (अ० में)	१८३
बालंगा (गु०, हि०)	१८३
बालंगू (फा०, बम्ब०)	१८३
बालछड (म०)	१०६
बालछड़ (हिं०)	१५६
बाला (म०)	१२०
बालिगोस्पेर्मम बोंडानुम (ले०)	१८८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
बालो (गु०)	१२०
बाल्समोडेंड्रोन रॉक्सबर्गी (ले०)	१३५
बाल्समोडेंड्रोन मीर्रहा (ले०)	२८०
बास्सिआ लांगीफोलिआ	२९९
बॉहीनिआ वारिएगाटा (ले०)	६१
बॉहीनिआ आकूमिनाटा (ले०)	६२
बॉहीनिआ पर्पूरेआ (ले०)	६२
बॉहीनिआ मालाबरिका (ले०)	६२
बॉहीनिआ रेसीमोसा (ले०)	६२
बाण (सं०)	२४५
बादंगान बर्री (फा०)	६३
बादंजान बर्री या दश्ती (अ०)	६३
बालकडू (म०)	११०
बिदाल (हिं०)	२५५
बिरोफ़ोल्लुम कालीसिनुम (ले०)	२२६
बिलमा (हिं०)	२७३
बिल्मा (हिं०)	२७३
बिजयसार (हिं०)	२७४
बिजासार (हिं०)	२७४
बिजैसार (मा०)	२७४
बिज्ताड़क, बिद्धताडक (बं०)	३४७
बिटर-गोर्ड (अ०)	१७७
बिठरलुफ्फा (अं०)	१८६
बिडङ्ग (सं०)	२७०
बिनौल (हिं०)	७०
बिनौलेका तेल (हिं०)	७०
बिम्बी (सं०)	१०१
बिब्बा (म०)	२८८
बिभीतक (सं०)	३६७
बिरंग काबुली (फा०)	२७०
बिरंज (अ०)	२७०
बिरंज कश्नीज (अ०)	२०१
बिरनी (मीरजापुर)	१२०
बिरोजा (हिं०)	१२३
बिरोजे का तेल (हिं०)	१२३
बिर्मी (बं०, हिं०, पहाड़ी०, बम्ब०)	१७६
बिल्लौरी (पं०, कश०)	२
बिलकथ (का०)	१७८
बिलाईकन्द (हिं०)	३४६
बिल्व (सं०)	२७८
बिबला (म०)	२७४
बिशप्स-वीड (अं०)	११
बिषखपरा (हिं०)	२५०
बिषमुष्टि (–का)-(सं०)	१०८
बिहरोजा (हिं०)	१२३
बिहि (म०)	२७६
बिही (खुरासान)	२७६
बिहीदानः (फा०)	२७६
बिहीदाना (हिं०)	२७६
बीहिदाणा (म०)	२७६
बीख़ कासनी	१९५
बीखे बनफ्शः	२५९
बीखेवाला (फा०)	१२०
बीजक (सं०)	२७४
बीजकनिर्यास	२७४
बीजबंद (हिं०)	२६५
बीजाबोल (हिं०, मा०)	२८०
बीटल-नट (अं०)	३८०
बीटेल (अं०)	२३८
बीया (बिहा०)	२७४
बीयो (गु०)	२७४
बीरण (मिर्जा०)	१२०
बीली (गु०)	२७८
बुक्कम (अ०)	२२०
बुकचिदाना (बं०)	२६८
बुगरा (पं०)	४०७
बुज (को०)	६०
बुढ़ना (हिं०)	१५५
बुन्दुक हिंदी (अ०)	१३४
बुरग (को०)	६०
बूएजहूदान (फा०)	१२८
बूकानानिआ लांज़ान (ले०)	१५३
बूकू (अं०)	५७
बूटेआ गरमी (ले०)	२१२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
बूटेआ फ्रान्डोसा (ले०)	२३२
बूटेआ मोनोस्पेर्मा (ले०)	२३२
बूटेआ सेमिना (ले०)	२३२
बूढ़ी कासमर	१२६
बूढ़ी घासी (संथा०)	२५१
बूहड़ (पं०)	२६२
बृहती (सं०)	६४
बृहती श्वेत (सं०)	६४
बृहद्गोक्षुर (सं०)	१३९
बेख़ कासनी (ए) दश्ती (फ़ा०)	१९५
बेखचीनी (फा०)	१५४
बेख़-दारफिल्फिल (अ०)	२४३
बेख़ महक (फा०)	३०९
बेखेखित्मी (फा०)	११६
बेंगाल-काइनो (अं०)	२३३
बेंगाल क्विन्स (अं०)	२७८
बेंजोइनुम् (ले०)	३४०
बेंजोइन (अं०)	३४०
बेठां गोखरू (गु०)	१३८
बेठी रिंगणी (गु०)	६३
बेलगिरी	२६८, ६९
बेलपाडली	२३४
बेलसोंठ	२६८, ६९
बेडेका (ब०)	२४६
बेंदर (म०)	३४६
बेंदरिया बेल (मा०)	३४६
बेतऊ (हिं०)	६९
बेदमिश्क (हिं०, प०)	२७७
बेदमुश्क (हिं०. पं०)	२७७
बेदेमुश्क (फा०)	२७७
बेदसादा	२५७
बेनउर (हिं०)	७०
बेनीनकासा सेरीफेरा (ले०)	११२
बेनीनकासा हीस्पिडा (ले०)	११२
बेर (हिं०, पं०)	७४
बेरजद (फा०)	१२३
बेतरा सोंठ (हिं०)	३५३
बेन्जोइन (अं०)	३४०
बेन्जोइनुम (ले०)	३४०
बेन्जोइन (अं०)	३४०
बेन्जोइनुम (ले०)	३४०
बेजेनिआ लीगूलाटा	२४१
बेबेरिस आरिस्टाटा (ले०)	१९०
बेबेरिस आशियाटिका (ले०)	१९०
बेबेरिस चित्रिआ (ले०)	१९०, १९१
बेबेरिस लीकिउम्	१९०, १९१
बेलौंजा (संथा०)	३०७
बेलोजों (खर०)	३०७
बेंगाल क्विंस (अं०)	२७८
बेनीनकासा सेरीफेरा (ले०)	११७
बेनीनकासा ह्रिस्पिडा	११७
बेल (हिं०, बं०, म०, पं०)	२७८
बेलेरिक मायरोबेलन (ले०)	२४८
बेहदाना	२७६
बेहहिन्दी (फा०)	२७८
बैनीयन-ट्री (अं०)	२६२
बैम्बू (अं०)	३४१
बैम्बू-मन्ना (अं०)	३४१
बोएर्हाविआ डीफ्फूजा (ले०)	२५०
बोएर्हाविआ रिपेंस (ले०)	४५०
बोकोम (बं०)	२२०
बोडि अजमो (गु०)	८२
बोडो अजमूद (वा०)	१०
बोडी अजमोद (गु०)	१०
बोधिद्रुम (सं०)	२४६
बोप्पयी (ते०)	२०९
बोरास्सुस फ्लाबेल्लिफ़ेर (ले०)	१७४
बोल (स०, हिं०, फा०)	२८०
बोलसरी (गु०)	३२२
बोस्वेल्लिआ फ्लोरीबुण्डा (ले०)	३६५
बोस्वेल्लिआ सेर्राटा (ले०)	३६५
ब्डेल्लिओन (ले०)	१२८
ब्युटिया गम (अं०)	२१७
ब्युटिया सीड्स (अं०)	२१७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
ब्योहार (हिं०)	३३७
ब्रह्मबूटी (का०)	२८०
ब्रह्मा-लोबाँ	३४०
ब्राह्मिका काम्पेस्ट्रिस (ले०)	३६१
ब्राह्मिका जुंसेआ (ले०)	३२५
ब्राह्मणयष्टिका (सं०)	२८७
ब्राह्मबूटी (का०)	२८०
ब्राह्मी (सं०, हिं०, म०)	२८०
ब्राह्मी, बंगीय (बं०)	२८१
ब्रूनेल्ला वुल्गारिस	५४
ब्राह्मी-शाक	२८०
ब्रीओफ़ील्लुम कालीसिनुम	२४२
ब्रीडेलिआ मोन्टाना (ले०)	२५४
ब्रीडेलिआ रेटूसा	२४३
ब्रेजिल-वुड	२८०
ब्लडवेन्ड-सेज (अं०)	२६६
ब्लूमेआ कैम्फर (अं०)	७३
ब्लूमेआ बाल्सामिफ़ेरा (ले०)	७३, १०७
ब्लूमेआ डेंसिफ्लोरा (ले०)	१०७
ब्लूमेआ लासेरा (ले०)	१०७
ब्लेफारिस एडूलिस (ले०)	५०
ब्लैक क्युमिन (अं०)	२९१
ब्लैक कैटेक्यू (अं०)	६७
ब्लैक पेपर (अं०)	२९५
ब्लैडर-डॉक (अं०)	१४६
[भ]	
भंग (हिं०)	२८३
भंगबीज (सं०)	२८३
भँगरा (हिं०)	२८२
भँगरैया (हिं०)	२८२
भँगरैया कृष्ण	२८२
भँगरैया पीत	२८३
भंगरा श्वेत (सं०)	२८३
भंगुरा (स०)	१४
भँड़भाँड (हिं०)	३९५, ३६१, ३९६
भखड़ा (पं०)	१३८
भगूरी कत्था (हिं०)	६८

नाम	पृष्ठ
भङ्गबीज (सं०)	२८५
भङ्गा (सं०)	२८४
भङ्गरा (हिं०)	२८२
भटकटाई (हिं०)	६३
भटकटैया (हिं०)	६३
भद्रदारु (सं०)	१९७
भद्रश्री (सं०)	१४४
भरंगी (पं०)	२८७
भल्लातक (स०)	२८८
भव्य (सं०)	२८३
भसीड़ (हिं०)	७७
भाँग (हिं०, म०, गु०)	२८४
भागरा (हिं०)	२८२
भाँगरो (गु०)	२८२
भाङ् (बं०)	२८३
भाभीरग (हिं०)	२७०
भारंग (म०)	२८७
भारगी (गु०)	२८७
भारङ्गी (हिं०)	२८७
भार्गी, भार्गी (सं०	२८७
भारतीय उस्तुखुदूस	५३
भारतीय रेवंदचीनी	३३०
भारतीय लबान	३९५
भारद्वाजी (सं०)	७१
भालूसुपली (राँची)	३९२
भावरी (संथा०)	२७१
भावल (मल०)	१६३
भिलामां (गु०)	२८८
भिलाँवा (हिं०)	२८८
भिस्सा	७७
भीमराज (बं०)	२८२
भीमसेनी कपूर	७३
भुंइकदम (उड़०)	३०७
भुंइ डुमूर (बं०)	१८८
भुंईआमला (ब०)	२९०
भुंई आँवला (हिं०)	२९०
भुंई आंवली (म०)	२९०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
भुरु कोहलु (गु०)	११७
भूँई का कर्कारू (अ०)	३४६
भुंईरिंगणी (म०)	६३
भूकर्बुदार (सं०)	३३७
भूतकेस (पहाडी)	१५६
भूतजटा (सं०)	१५६
भूतनाशन (सं०)	३६१
भूतिक (सं०)	११
भूधात्री (स०)	२९०
भूनिम्ब (सं०)	१५१
भूमिकूष्मांड (सं०)	३४६
भूम्यामलकी (सं०)	२९०
भूरिछरीला (हिं०)	१५५
भूशेलु (सं०)	३३७
भूसी (हिं०)	४६
भृंगराज (सं०)	२८२
भेरेड (डा) (पं०)	५५
भेलवा (खर०)	२८८
भेला (हिं०, प०, बं०)	२८८
भैंसवान (खर०)	१९०
भैंसा गूगल (हिं०)	१३५
भोंकर (म०)	३३७
भोटीगडी (गु०)	६३
भोंय आँवली (गु०)	२६८
भोंयरिंगणी (गु०)	६३
भोंरिंगणी (गु०)	६३
[म]	
मंदारै (ता०)	६०
मंगरैला (हिं०)	२९१
मंगलौरी इलायची	४३
मंगोष्टीन-आर्यल ट्री (अं०)	११८
मंचूरियन मुलेठी	३१०
मंडूर	३४२
मकरेंगा-काइनो (अं०)	२७५
मको (हिं०, पं०)	२९२
मकोय (हिं०)	२९२
मखत्ताथि (ता०)	१८१
मखान (म०)	२९२
मखाना (हिं०, बं०)	२९१
मखाना का लावा (हिं०)	२९२
मखान्न (सं०)	२९२
मखेट्टि (मल०)	१८१
मग-वर्ट (अ०)	१९
मगासे हिंदी (अ०)	३२०
मग्जकश्नीज (अ०)	२०१
मग्जे बलादुर	२८९
मजारपोश	२५२
मजारमुंड	२५२
मठुरा (पं०)	२५३
मडार-एल्बन (अं०)	३४
मडार फलएविल (अं०)	३४
मडार (अ०)	३२
मण्डूकपर्णी (सं०)	२८०
मत्स्यरोहिणी (सं०)	११०
मदकी (उरान)	२९८
मदनफल (सं०, हिं०)	३२१
मदयन्तिका (सं०)	३१९
मदार (हिं०)	३२
मदार (बं०)	२४०
मदुघ (अथर्व०)	३११
मद्रास-काइनो (अ०)	२७४
मधुक (सं०)	३०९
मधुकसार (सतमुलेठी)	३०९
मधुयष्टी (सं०)	३०९
मधुरअनार	१६
मधुरवाताम (सं०)	२६१
मधुरसा (सं०)	३१५
मधुशिग्रु (सं०)	३६८
मधूक (सं०)	२९८
मधूका ईंडिका	२९८
मधूका लांगीफोलिआ	२९९
मधूका लेटीफोलिआ	२९८
मधूका बूटीरेसिआ	२९९
मधूलक (सं०)	२९९

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
मनवा (हिं०)	७०
मनसागाछ (बं०)	३८८
मनसासिज (बं०)	३८८
मन्दार (सं०)	३३
मन्दार क्षार	३३
मन्दार सफेद	३३
मन्दारीन (अं०)	३४
ममरी (हिं०)	२४३
ममीरा (हिं०)	१८८, २९३
ममीरी (हिं०)	२९४
ममीरो आसामी (हिं०)	२९३
ममीरो चीनी (हिं०)	२९३
ममीरो नकली (हिं०)	२९३
ममीरो (गु०)	२९४
मयूरचूटिया (लाट०, खर०)	२९४
मयूरजूटी (संथा०, रांची०)	२९४
मयूरशिखा (सं०)	२९४
मरडासिग (गु०)	२९६
मरडासिगी (गु०)	२९६
मरवा (फा०)	१९
मरहरी	३१५
मरार (सथा०)	२४०
मरिच (सं०)	२९५, २९६
करिच काली (हिं०)	२९५
मरियादबेल	३४८
मरी (गु०)	२९५
मरूआवेल (हिं०, देह०, मा०)	३१४
मरूरुह (सं०)	८३
मरोरफली (हिं०)	२९६
मर्कटी (सं०)	१०२
मर्ग (फा०)	१९७
मलकक्नी (कुमा०)	३०३
मलबारी इलायची (बम्ब०)	४२
मलबारी एलची (गु०)	४२
मलयज (सं०)	१४४
मलयवचा (सं०)	११४, ३४६
मलाबार काइनो (अं०)	२७४
मलिकुल् बकूल (अ०)	२२८
मवेका (फा०)	३०८
मशिना (बं०)	२७
मषवन (हिं०)	३०५
मस्क-मैलो सीड्स (अ०)	३११
मस्क सीड्स (अं०)	३११
मस्तकीए रूमी	२९७
मस्तकी (अं०)	२९७
मस्तकी रूमी (फा०)	२९७
मस्तुगी (हिं०)	२९७
मम्तुल गौल (अ०)	५६
मस्लून (पं०, कश०	२
महकमतकी (फा०)	३०९
महद्ब (अ०)	११७
महानल (सं०)	२०६
महानिम्ब (सं०)	२५७
महापत्र (स०)	३०३
महापिण्डी	३२२
महाभरी (हिं०)	११४
महाभरीवचा (सं०)	३४६
महामूल (सं०)	२३९
महामेद (क०)	५४
महाराष्ट्रीय मूर्वा	३१५
महालिब (अ०, बम्ब०)	२५४
महावृक्ष (स०)	३८८
महासहा (सं०)	३०५
महिषाक्ष (सं०)	१३४, १३५
महुआ (हिं०)	१७
महुआ-ट्री (अं०)	२९८
महुड़ी (गु०)	२९८
महौषध (सं०)	२५८
माई, कलाँ (फा०)	१६२, १६३
माई, छोटी (भारतीय)	१६३
माई बड़ी	१७२
माओह (जापान)	३९५
माका (म०)	२८२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
माकारांगा पेल्टाटा (ले०)	२७५
माकारांगा रॉक्सबुर्घियाई	२७५
मागधी (सं०)	२४३
मांगीफेरा इंडिका (ले०)	३४
माङ्गामरम् (ता०)	३४
माजुफल (गु०)	३०१
माजू (फा०)	३०१
माजूफल (हिं०)	३०१
माटा (को०)	२५६
माठेरिन	२७६
माड (म०)	२०९
माण्डूकी (सं०)	२८०
मादा कचूर (हिं०)	६२
मादा कुदुंर (हिं०)	३३
माधूका इंडिका (ले०)	२९६
मानक (सं०)	३०३
मानकचू (बं०, आसा०)	३०३
मानकन्द (सं०, हिं०)	३०३
मानसरू (हिं०, हो०)	३०३
मामीरान (अ०, फा०)	२९३
मामीरान चीनी	२९३
मामेख (पं०)	५४
मायंग (जौनसार०)	३०५
मायफल (म०)	३०१
मायरिस्टिका ऑयल	१६४
मायाफल (सं०)	३०१
मायाफलाम्ल	१८५, ३०२
मामुं (गु०)	३०१
मारंग (बडा) लुदम्	३३९
मारगोसा-ट्री (अं०)	२१७
मारवी (थार)	३१४
माराचूटी (हो०)	२९४
मार्कण्डिका (सं०)	३५४
मार्कण्डी (सं०)	३५४
मार्कव (सं०)	२८२
मार्किंग-नट (अं०)	२८८
मार्किंग-नट ट्री (अं०)	२८८

नाम	पृष्ठ
मार्फीन (अ०)	२२, २३
मार्मेलोसिन (अं०)	२५९
मार्सिलिआ क्वाड्रिफिडा (ले०)	३७९
मार्सिलिआ माइनूटा (ले०)	३७९
मार्श-मैलो (अं०)	११९
मार्संडेनिआ टेनासिस्सिमा (ले०)	३१४
मार्संडेनिआ रोइलियाई (ले०)	३१५
मार्संडेनिआ हेमिल्टोनाई	३१५
मालकंगनी (हिं०)	३०३
मालकंगनी का तेल	३०४
मालकांगनी (हिं०, गु०)	३०३
मालकांगोणी (म०)	३०३
माल्लोटस फिलिपेंसिस (ले०)	७८
माल्वा सिल्वेस्ट्रिस (ले०)	१२१
माषानी (बं०)	३०५
माषपर्णी (सं०)	३०५
मांसरोहिणी (सं०)	३००
मास्टिके ले०)	२९७
माहफ़र्फ़ी	१५७
माहुअंग (चीन)	३९५
मि(मी)आसाइला (अ०)	३५०
मिझनी (हिं०)	३०३
मिठीकाठी (सिं०)	३०९
मिद (क०)	५४
मिनका (मा०)	३०८
मिन्था (यू०)	२४९
मिरिस्टिक एसिड (अं०)	२९९
मिरीं (म०)	२९५
मिरीस्टिका आर्जेन्टेआ (ले०)	१६६
मिरीस्टिका फ्राग्रांस (ले०)	१६५
मिरीस्टिका मालाबारिका (ले०)	१६५
मिर्ह (अ०)	२८०
मिश्री (हिं०)	४९
मिष्टवाताद वृक्ष (सं०)	२६९
मिष्ठवाताद (सं०)	२६९
मिष्मीतिक्ता (सं०)	२९३
मिष्मीतीता (आसा०)	२९३

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
मिस्कुर्रम्मा (अ०)	२०६	मुचकुन्द चांपा (बं०)	३०५
मिस्वाकुर्राई (अ०)	१४८	मुचुकुन्द (म०, गु०)	३०५
मिस्री मलेठी	३१०	मुझनी (हिं०)	३०३
मीआ साइला (अ०)	३५०	मुञ्ज (सं०)	३५९
मींजनी (हिं०)	३०३	मुञ्जातक (सं०)	३७२
मीठा इन्द्रजौ (हिं०)	१११	मुण्डिका (सं०)	३०७
मीठा कुडा	१११	मुण्डी (सं०)	३०७
मीठा कूट	११६	मुता (बं०)	३०७
मीठा गोखरू (गु०)	१३८	मुथा (हिं०)	१९५
मीठा चिरायता	१५१	मुदुगुकुरा (ते०)	३०७
मीठा जहर (हिं०)	२५८	मुद्गपर्णी (सं०)	३०७
मीठा तेल (हिं०)	१७९	मुनक्का (हिं०)	३०८
मीठा तेलिया (पं०)	२५८	मुनगा (हिं, उड़ि०, ते०)	३६८
मीठा विष (पं०)	२५८	मुमीरा (हिं०)	२९३
मीठा बदाम (बं०, पं०)	२६९	मुर (अ०)	२८०
मीठा बादाम (हिं०)	२६९	मुरई (हिं०)	३१६
मीठा विष (हिं०)	२५८	मुरगा (संस्था०)	२७४
मीठा सुरिंजान	३८२	मुरङ्गी (सं०)	३६८
मीठीआंवल (ग०)	३५४	मुरमुरिया (बं०)	३०७
मीठी खरखोडी (गु०)	१६९	मुरहरी (मिर्जापुर)	३१५
मीठी जाल (गु०)	२४८	मुरार	७६
मीठी नारंगी	२०९	मुरि (पं०)	३१६
मीठी बच (हिं०)	३४५	मूरिसा (उड़ि०)	३०७
मीठी बदाम (गु०)	२६९	मुरुङ्गी (सं०)	३६८
मीठु तेल (गु०)	१७९	मुरुडशेंग (म०)	३७३
मीठे बादाम का तेल	२७०	मुरेर (हिं०)	२९६
मीमूसोप्स एलेंगी (ले०)	३२२	मुरेरुआ (मीरजा०)	२९६
मीरसीने आफ्रीकाना (ले०)	२७२	मुर्मकेश	२९५
मीरिका नागी (ले०)	९३	मुर्र (अ०)	२८०
मीर्रहा (ले०)	२८०	मुर्रा (हिं०)	२९६
मीष्तोलिया (हिं०)	३५२	मुलहठी (हिं०)	३०९
मुंडी (हिं०, पं०)	३०७	मुला (म०)	३१९
मुक़ल (अ०)	१३४	मुलेठी (हिं०)	३०९
मुगवन (हिं०)	३०७	मुविला (मल०)	३६३
मुगानी (हिं०, बं०)	३०७	मुशली (सं०)	३१३
मुचकुन्द (सं०)	३०५	मुश्कदाना (हिं०, मार०, फा०,)	३११
मुचकुंद (हिं०)	३०५	मुश्कबेद (फा० क०)	२७७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
मुष्कबाला (क०)	३७५
मुष्केजमीं (फा०)	२०७
मुष्कजेरे जमीं (फा०)	२०७
मुसब्बर अदनी	१४१
मुसब्बर अरबी	१४१
मुसब्बर जंजीबार	१४१
मुसब्बर जाफराबादी (काठियावाड़ी)	१४१
मुसब्बर बारबेडोज	१४१
मुसब्बर (हिं०, दे०)	१४१, १४२
मुसब्बर स्कोत्रा	१४२
मुसम्मी	२०९
मुसलीकद (हिं०)	३१२
मुसली	३१२
मुसली, सफेद	३१३
मुसली, स्याह	३१२
मुस्तक (सं०)	२०७
मुस्ता (सं०)	८६, १९५
मूँज (हिं०)	३५९
मूकूना प्रूरिएन्स (ले०)	१०२
मूकूना प्रूरिटा (ले०)	१०२
मूयबखुशा (फा०)	१९
मूरो (हिं०)	२१६
मूर्वा (सं०)	३१४
मूर्वा, महाराष्ट्री	३१५
मूर्वामूल (सं०)	३१५
मूलक (सं०)	३१६
मूलकक्षार (सं०)	३१७
मूला (बर)	३१६
मूली (हिं०)	३१६
मूलीक्षार	३१७
मूलो (गु०)	३१६
मूसली	३१३
मूसली दक्खिनी	३१४
मृदङ्गफल (सं०)	१८६
मृद्वीका (सं०)	३०८
मेंदी (बं०)	[illegible]
मेंहदी (मा०, हि०)	३१९
मेउड़ी (हि०)	२१२
मेउदी (बं०)	३१९
मेकोनिक एसिड (अं०)	२२
मेक्सिकन पॉपी (अं०)	३९६
मेखक (फा०)	३३३
मेड़ासिंगी (बं०)	१२५
मेडेनहेयर (अं०)	३९८
मेथरी (पं०)	३१७
मेथरे (पं०)	३१७
मेथिका (सं०)	३१७
मेथी (हिं०, द०, म०, गु०, पं०)	३१७
मेद (मिर्जापुर)	३२०
मेदालकड़ी (गु०, म०)	३२०
मेदासक (पं०)	३२०
मेन्था (ले०)	२४९
मेन्था पीपेरीटा	२५०
मेन्था विरिडिस (ले०)	२४९
मेन्था साटीवा	२४९
मेन्था स्पीकाटा (ले०)	२४९
मेयन (यू०)	३०९
मेरुआ आरेनारिआ (ले०)	३१५
मेलाफिस चीनेन्सिस (ले०)	३०२
मेलिआ आजाडीराक्टा (ले०)	२१७
मेलिक एसिड (अं०)	३६, ३७, ३७, १९२
मेलीना आर्बोरेआ (ले०)	१२५
मेषशृंगी (सं०)	१३०
मेस (अं०)	१६४
मेसुआ फेरेंआ (ले०)	२०६
मेहँदी, मेहदी (हिं०)	३१९
मैंगो-ट्री (अं०)	३४
मैदालकड़ी (हिं०, मा०)	३२०
मैदासोंठ	३९०
मैनफल (हिं०)	३२१
मैलिक एसिड (अं०)	३०९
मैसूरी इलायची (हिं०)	४३
मोस्टिक (अं०)	२९७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
मैस्टिकीन (अं०)	२९८
मैस्टिकीनिक एसिड (अं०)	२९८
मैस्टिकोनिक एसिड (अं०)	२९८
मोगलाई बेदाण (गु०)	२७६
मोगली बेदाण (म०)	२७६
मोचरस (हिं०, गु०, म०, क०, ता०, ते०, बम्ब०)	३८६
मोचा (ले०)	३८६
मोचास्राव (सं०)	३८६
मोटवा (था०)	३२१
मोंठें गोखरू (म०)	१३९
मोथ (मं०, गु०)	२०८
मोथा (हिं०)	८७, २०८
मोबारक (भा० बा०)	३९८
मोमोर्डिका कोचीन चाइनेन्सिस (ले०)	६०
मोमोर्डिका कारांटिआ (ले०)	८४
मोरंग इलायची (बं०)	४५
मोरटा (घ०, रा० नि०)	३१४
मोरमभड़ा	३१५
मोरवेल (म०, गु०)	३१५
मोरशिखा (गु०)	२९५
मोरिंगा ओलेईफेरा (ले०)	३६८
मोरिंगा कोनकेनेन्सिस (ले०)	३६८
मोरिंगा प्टेरिगोस्पेर्मा (ले०)	३६८
मोशब्बर (बं०)	१४१
मोहड़ा (म०)	२९८
मोहरी (म०)	३२५, ३५२
मौर्वी (सं०)	३१५
मौल्स(सि)री (हिं०)	३२२
मौस (पं०, मा०)	३२२
म्योडी (हिं०)	२१२
म्योटा गोखरू (गु०)	१३९
[य]	
यज्ञडुमुर (बं०)	१३६
यज्ञाङ्ग (सं०)	१३६
यठुर (क०)	४०३
यमानिका (सं०)	११
यमानीसत्व (सं०)	१२
यरन्डी (द०)	५५
यलोकॉटन यलोकॉटन-ट्री (अं०)	६५
यलोपॉपी (अं०)	३९६
यव (सं०)	१७१
यवक्षार (सं०)	१७२
यवतिक्ता (सं०)	९४
यवमण्ड (सं०)	१७२
यवानी (सं०)	११
यवास (सं०)	१६१
यवासशर्करा (सं०)	१६२
यष्टीमधु (बं०)	३०९
यष्टीमधुक (सं०)	३०९
यष्टीमधुकषु (ते०)	३०९
यास (सं०)	१६१
यासशर्करा (सं०)	१६२
युकेलिप्टस (हिं०)	३२३
युग्मपत्र (सं०)	६१
युफॉर्बोन	३७९
यू (अ०)	१७६
यूकेलिप्टस (हिं०)	३२३
यूकेलिप्टस काइनो (अ०)	३२४
यूकेलिप्टस का तेल	२९५
यूजिनोल (अ०)	१६६
यूथिकपर्णी (सं०)	२४१
[र]	
रंगे बादशाह	३२४
रंजन (बं०)	१४३
रक्तअयमानी (अरबी हकीम)	३२२
रकसवा कोंहड़ा (हिं०)	११७
रक्त अपामार्ग	१५०
रक्तकम्बल	१४३
रक्तचन्दन (सं०)	१४३
रक्तकेरू (बं०)	१९६
रक्तनिर्यास (सं०)	१२३, २७६
रक्तपुनर्नवा (सं०)	२५०
रक्तपूरक (सं०)	११८
रक्तफल (सं०)	७७, २६२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
रक्तमातृका (सं०)	३३५
रक्तरोहण (हिं०)	३००
रक्तरोहन	३००
रक्तरोहिडा (बम्ब०)	३३३
रक्तसैरेयक (सं०)	२४५
रक्तिका (सं०)	१२९
रक्षोघ्नी (सं०)	३४२
रज़ (फा०)	३०८
रजनी (सं०)	४०१
रञ्जनी (सं०)	२१९
रतनजोत (हिं०, भा० बाजार)	३२४
रतांजली (गु०)	१४३
रतांबी (को०)	११८
रतियान (फा०)	३२६
रत्ती (हिं०, पं०)	१२९
रत्युं (सिंध)	१२९
रम्यक (सं०)	२५८
रयोंदचीनी (पं०)	३२९
रशुस (बं०)	३३४
रसक्रिया	१९०
रसन (पं०)	३२७
रसवत (हिं०)	१९२, १९०
रसवंती (गु०, ने०)	१९०, १९२
रसाञ्जन (सं०, म०, बं०)	१९०
,, निर्माणविधि	१९२
,, शोधन	१९२
रसोन (सं०)	३३४
रसौत (हिं०)	१९०
राइटिआ टिंक्टोरिआ (ले०)	१११
राइटिआ टोमेंटोसा (ले०)	१११
राई (हिं०, गु०)	३२५
राई सरिषा (बं०)	३२५
राउवॉल्फिआ केनेसेंस (ले०)	३६४
राउवॉल्फिआ डेन्सिफ्लोरा (ले०)	३६४
राउवॉल्फिआ मीक्रान्था (ले०)	३६४
राउवॉल्फिआ सेपेंन्टीना (ले०)	३६३
राखालशशा (बं०)	३९
राजकसेरुक (सं०)	८७
राजजम्बू (सं०)	१६३
राजधत्तूर (सं०)	१९९
राजपाठा (सं०)	२३५
राजबदर (सं०)	५०
राजिका (सं०)	३२५
राजीफल (सं०)	२२६
रॉद्टलेरा (अ०)	७८
रांडिआ डूमेटोरुम (ले०)	३२१
राडारूडी (गु०)	१६९
राणधानी (बं०)	१०
रातुंनागकेशर (गु०)	२०७
रातियानज्, रातीवज (अ०)	३२६
रातीसाटोडी (गु०)	२५०
रानउड़द (म०)	३०५
रानकांदा (म०)	८९
रानदोंडके (तुरई) (म०)	१८६
रानधण (म०)	१०
रानभाल (म०)	३६२
रानमुंग (म०)	३०७
रांनूरेड (को०)	२३४
रानूरैन (संथा)	२४३
रान्धनी (बं०)	१०
राफानुस साटीवुस (ले०)	३१९
रामठ (सं०)	४०५
रामदतुइनियाँ	१५५
रामनामी	६५, ६६
रामपत्री (सं०)	१६५
रामफल (सं०)	१६५
राल (हिं०, द०, म०, गु०)	३२६
राली (संथा०)	२४३
रालीरेड (को०)	२४३
रावन्द (अ०)	३२९
रासन (हिं०)	२५२, ३२७
रासना (गु०)	३२७
रास्ना (सं०)	३२७
रिखड़ालमी (गढ़वाल)	२७२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
रिखपित्ता (देवबन)	२३०
रिंगवर्म-प्लान्ट (अं०)	१४५
रिठे (बं०)	३२८
रिसपित्ता	२३०
रीठा (हिं०)	३२८
,, उत्तर भारतीय	३२८
,, दक्षिणभारतीय	३२८
रुधिर (सं०)	१०४
रुब्बुस्सूस (अं०)	३०९
रुम्मान (अ०)	१६
,, हामिज (अ०)	१६
,, हुलुव्व (अ०)	१६
,, मुज्ज (अ०)	१६
रूई (हिं०)	७०
रूटा ग्राविओलेन्स (ले०)	३७७
रूटिन	३७७
रूबाह (फा०)	२९२
रूमा (मी) मस्तकी (म०, गु०)	२९७
रूमी मस्तगी (हिं०)	२९७
रेंगेवनम् (को०)	१९२
रेउचिनि (बं०)	३२९
रेचकः, रेचकम् (सं०)	१६०
रेचनी (सं०)	२१४
रेची (सं०)	७८
रेजिन, रोजिन (अं०)	३२६
रेजिना (ले०)	३२६
रेठा (पं०)	३२८
रेडबहमन (अं०)	२६६
रेड ह्वैप्टोनिक (अं०)	२६६
रेड सिल्ककॉटन ट्री (अं०)	३८६
रेड सैन्डर्स (अं०)	१४३
रेड सैंडलवुड (अं०)	१४३
रेणुका (सं०)	२१३
रेप (अं०)	३६१
रेबास	३३०
रे (रै) लवाहा (संथा०)	२४५
रेवतचीनी (म०)	३२९

नाम	पृष्ठ
रेवतचीनी (गु०)	३२९
रेवन्द (फा०)	३२९
रेवन्दचीनी (पं०, हिं०)	३२९
रेशए खित्मी (फा०)	११९
रेशएबाला (फा०)	१२०
रेशाख़त्मी (हिं०, बाजार)	११९
रैन (हिं०)	९
रैनी (देहरादून)	७८
रैलावाहा	२४५
रोग़न अरअर (फा०)	४०४
रोग़नकाहू (फा०)	९८
रोग़न कुंजद (फा०)	१७९, १८०
,, केवड़ा (फा०)	१०४
,, खशखाश (फा०)	२१, २२
,, दारचीनी (फा०)	१९४
,, बादाम (तल्ख़)	२७०
,, ,, (शीरीं)	२७०
रोचनी (सं०)	२४९
रोज़ा आल्बा (ले०)	१३३
,, डामास्केना (ले०)	१३३
,, सेंटिफोलिआ (ले०)	१३३
रोटूला आक्वाटिका (ले०)	२४३
रोण (गु०)	३००
रोध्र (सं०)	३३८
रोरी (मीरजापुर)	७८
रोशन (गु०)	३२७
रोशना (हिं०)	३२७
रोहण (हिं०, बं०)	३००
रोहणी (सं०)	३००
रोहणी (गु०)	३००
रोहन (संथा०)	३००
रोहिडा (म०)	३३१
रोहिडो (गु०)	३३१
रोहिणी (सं०)	३००
रोहिनी (को०)	३००
रोहिनो (खर०)	३००
रोहीतक (सं०)	३३१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
,, बंगीय	२३२
रोहेड़ा (हिं०)	३३१
रहस सुक्केडानेआ (ले०)	९२
रहाब्डिआ लीसीओइडेस (ले०)	२४३
रहाम्नुस वीटीई (ले०)	३३२
रहीनाकांथुस कॉम्मूनिस (ले०)	२४१
,, नासूटा (ले०)	२४१
रहुबार्ब (अं०)	३२९
रहुबार्ब-रूट (अं०)	३२९
रहुस कोरिआरिआ (ले०)	१७९
रहुस चीनेन्सिस	३०२
रहुस पार्वीफ्लोरा (ले०)	१७८
रहेउस (रहेई राइजोम) (ले०)	३२९
रहेउम् एमोडी (ले०)	३२९
रहेउम् पाल्माटुम (ले०)	३३०
,, वेब्बिआनुम (ले०)	३३०
[ल]	
लंका की जंगली इलायची	४३
लंका की देशी इलायची	४३
लई (सिं०)	१७२
लक्ष्मण (सं०)	६४
लघुकेशुर (बं०)	८७
लघु दुग्धिका (सं०)	१९६
लघुमूलक (सं०)	३१६
लटजीरा (हिं०)	१५१
लटोरा (हिं०)	१३७
लताकस्तूरिका (सं०)	३११
लताकस्तूरी (बं०, गु०)	३११
लतापुटकी	३०५
लफेड़ा (रा०), (हिं०)	३३७
लबान (अ०)	३४०
लब्नी (अ०)	३५०
लवंग (स०, हिं०, गु०)	३३३
लवंगतैल (सं०, हिं०)	३३४
लवो (मा०)	१७२
लशुन (स०)	३३४
लशुनकल्प	३३४
लशुनकल्प	३३४
लसण (गु०)	३३४
लसूण (म०)	३३४
लसोड़ा (हिं०)	३३७
लहसुन (हिं०)	३३४
लहसुनी सालम	३७२
लहाननायटी (म०)	१९६
लांगली (सं०)	८६
लांगपेपर (अं०)	२४३
लांग-लीव्ड पाइन	१२३
लाइचेन (अ०)	१५५
लाइचेनीन (अं०)	१५५
लाइनेमेरिन (अं०)	२९
लाइपेरीन (अं०)	२९
लाइम (अं०)	२१६
लाई (ही) (हिं०)	३, १७२
लाक (फा०)	३३५
लाक्किफेर लाक्का (ले०)	३३५
लाक्टूकारिउम (ले०)	९८
लाक्टूका विरोसा (ले०)	९८
,, सर्रिओला (ले०)	९८
,, सातिवा (ले०)	९८
,, स्कारिओला (ले०)	९८
लाक्षा (सं०, क०, ते०)	२६७, ३३५
लाक्षादितैल	३३६
लाख (हिं०, म०, गु०)	३३५
लाखन	३१५
लाची (हिं०)	४२, ४४
लाजेनारेआ वुल्गारिस	१७७
लाटाफटकी	३०५
लारोटेटानीन	३२१
लार्ज सेबेस्टन प्लम (अं०)	३३७
लाल इलायची (हिं०)	४४
लालचन्दम (हिं०, गु०)	१४३
लालजड़ी	३२५
लालड़ी (म०)	१२९
लाल नागकेशर (म०, हिं०,)	२०७
लालपोस्ता (हिं०)	२१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
लाल बहमन (हिं०)	२६६
लाल मोअम्बरी (मग़रबी) (फा०)	३२६
लाल शिरीष (हिं०)	३७५
लाल सांवर (म०)	३७५
लाल सेमल (हिं०)	३८६
लाल्लेमांटिआ रॉइलेआना (ले०)	१८३
लावेंडुला बर्मानी (ले०)	५४
लावेंडुला स्टीकास (ले०)	५३
लासोनिआ आल्बा (ले०)	३१९
लासोनिआ इनेर्मिस (ले०)	३१९
लाह, लाही (हिं०)	३३५
लिकोरिस (अं०)	३०९
लिकोरिस रूट (अं०)	३०९
लिक्विडअम्बर ओरिएन्टालिस (ले०)	३५०
लिक्विड-स्टोरैक्स (अं०)	३५०
लिनसीड (अं०)	२७
,, ऑयल (अं०)	२८
,, मील (अं०)	२८
लिंबूं (म०)	२१६
लिसानुल् असाफ़ीर हुलुब्ब (अ०)	१११
लिसानुल् असाफ़ीरुल्मुर्र (अ०)	१११
लिसानुस्सौर (अ०)	१२७
लिसोढ़ा (हिं०), छोटा, बड़ा	३३७
लीट्सेआ ग्लूटीनोसा (ले०)	३२०
लीट्सेआ पॉलीऐन्था	३२१
लींडीपीपर (गु०)	२४३
लीनी-सेमिनी (ले०)	२७
लीनुम् (ले०)	२७
लीनुम ऊसीटाटीस्सिमुम (ले०)	२७
लीनुम कॉन्टूसुम (ले०)	२८
लींबड़ो (गु०), लीमड़ो	२१७
लीमड़ो (गु०)	२१७
लीमूं (द०, अ०, फा०)	२१६
लीमू (द०)	२१६
लीमूए काग़जी (फा०)	२१६
लील (हिं०)	२१९
लीलु करियातुं (गु०)	१४
लीसा (पहाड़ी)	१२३
लुक् (अ०)	३३५
,, मग़्सूल (अ०)	३३६
लुदम् (को०)	३३८
लुफ्फा आकुटांगुला (ले०)	१८६
लुफ्फा आकूटांगुला प्र० आमारा (ले०)	१८६
लुफ्फा एकीवाटा (ले०)	२५५
लुफ्फा प्रावेओलेन्स	२५५
लूँग (मा०)	३३३
लेपरी (कच्छ)	१४०
लेपीडियम ईबेरिस (ले०)	१८५
,, साटिवुम (ले०)	१४६
लेप्टाडेनिआ रेटिकुलाटा (ले०)	१६९
लेसर कार्डेमम (अं०)	४२
लेसर गैलेंगल (अं०)	११३
लोखंडी (गु०)	२९५
लोटूरिडीन	३४०
लोटूरीन	३४०
लोडोइसेआ सेइचेल्लारुम (ले०)	२११
लोदम् (संथा०)	३३८
लोद (मा०)	३३८
लोध (हि०, ब०, था०)	३३८
लोधर (गु०)	२३८
लोध्र (सं०, म०)	३३८
लोधिया (कु०)	३३८
लोबां (ब्रह्मा)	३१०
लोबान (हिं०, बं०, गु०)	३४०
लोबान का सत	३४०
लोबानाम्ल	३४१
लोह (सं०)	७
लोहगासी (को०)	२७८
लोहबान (हिं०, ब०, गु०)	३४०
लोहित पुस्तक (सं०)	१६
लोहिताङ्ग (सं०)	७८
लौंग (हिं०, मा०)	३३३
लौंग के डठल	३३३
लौंग-लीह ड पाइन (अं०)	१२३

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
[व]	
वखमा (म०, बम्ब०, बाजार)	२७३
वखोमो (गु०)	२७३
वख्मो (गु०)	२७३
वघनी (संथा०)	५७
वघलाल (माल०, पं०)	३२१
वघारणी (गु०)	४०५
वचा (सं०)	३४२
वज (अथर्ववेद)	३४५
वज, वज्ज (अ०)	३४२
वज्जे खुरासानी (फा०)	३४४
वनपलाण्डु (सं०)	८९
,, देशी	९०
,, विदेशी	९०
वनवृन्ताक (सं०)	२३०
वज्रकतूना (अं०)	४५
वज्रवल्ली (सं०)	३९९
वज्री (सं०)	३८८
वट (सं०)	२६२
वटगाछ (बं०)	२६२
पटपत्री (सं०)	२४१
वटमरम् (ता०)	२६२
वट्टुमांगमरम (ता०)	३४
वड, वडलो (गु०)	२६२
वत्सनाभ (सं०)	२५८
वनएकटा (संथा०)	२१४
वनहटा (संथा०)	३९२
वनजाण (सिंध)	१०
वनजीरक (सं०), वनजीरी	७९
वनयोजान (बं०)	१०
वनझिंगना (संथा०)	४७
वनतिक्ता (सं०)	२३४
वनमल्ली (उडि०)	२४५
वनमूंग (हिं०)	३०७
वनवृन्ताक	२३०
वनहरिद्रा (सं०)	३१
वन्यकासनी	१९५
वरणो (गु०)	२६३
वरतिक्ता (सं०)	२३४
वरनगोमा (संथा०)	३६७
वरुण (सं०)	२६३
व(ब)र्कुलखियाल (अ०)	२८४
वर्द, वर्दे अहमर (अ०)	१३३
वर्दुर्कम्मान (अ०)	१६
वर्नोनिआ (अं०)	७९
वर्नोनिआ आंथेल्मीं टिकम् (ले०)	७९
वर्म-सीड (अं०)	९९
वर्षाभू (सं०)	२५०
वलेरिक एसिड (अं०)	३२२
वल्लीगुडूची (सं०)	१३१
वसेडो (गु०)	२५०
वह्निज्वाला (सं०)	२०४
वांदा (वांडा) रॉक्सबुर्घिई (ले०)	३२७
वांस (गु०)	३४१
वांसकपूर (गु०)	३४१
वाइल्ड ऐस्पेरेगस (अं०)	३५३
वाइल्ड टर्मेरिक (अं०)	३१
वाइल्ड मैंगो (अं०)	३६
वाइल्ड सूगरकेन (अं०)	९६
वाटर कैल्ट्राप (अं०)	३७३
वाटर चेस्टनट (अं०)	८७
वाट्यालिका (सं०)	२६४
वाध्य (सं०)	११५
वॉमिट-नट (अं०)	१०८
वायवर्णा (म०)	२६३
वायवरणो (गु०)	२६३
वायसी (सं०)	२९२
वायसुरह (इटावा)	३२७
वाराहकर्णी (सं०)	३०
वारिपर्णी, वारिमूली (सं०)	१६१
वालुलवै (ता०)	३०३
वालेरिआना आफ्फीसिनालिस (ले०)	३७५
,, इंडिका (ले०)	३७५
,, जटामांसी (ले०)	३७५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
,, हार्डविक्कीआई (ले०)	३७५
वालेरिआनी ईंडिकी राइजोमा (ले०)	३७५
वावडींग (म०, गु०)	२७०
वाविरंग (हिं०)	२७०
वाह्लीक (सं०)	४०५
विओला ओडोराटा (ले०)	२५९
,, सिनेरेआ (ले०)	२६०
,, सेपेंन्स (ले०)	२६०
विक्षीरिणी (सं०)	१९६
विग्ड-कैल्ट्रोप्स (अं०)	१३८
विगना (हो०)	२१२
विजया (सं०)	२८३
विंटर-चेरी (अं०)	३०
विडङ्ग (सं०, बं०)	२७३
विडालिका	३४६
वितुन्नक (सं०)	२००
विदानिआ कोआगुलान्स (ले०)	३१
विदानिआ सोम्नोफ़ेरा (ले०)	३०
विदारिगन्धा (सं०)	३६२
विदारी (सं०)	१४६
विदारीकन्द (हिं०, गु०)	३४६
विदुल (सं०)	३५९
विदेशी कपास (हिं०)	७०
विधारा, बंगीय (हिं०)	३४७
विरंक काबुली (ज)	२७०
विरंगकाबुली (अ०)	२७०
विलङ्ग, बिलंग	२८८
विलायती क्वाशिया (हिं०)	१३९
,, गोखरू (हिं०)	१६७
विलायती जीरा (हिं०)	१८८
विलायती धेन्शन	२२४
विलायती रेंड (हिं०)	३९१
विलायती सोआ	८६
विशल्या (सं०)	३५६
विशालत्वक् (सं०)	३९
विशाला (सं०)	३८९
विश्वभेषज (सं०)	
विषतिन्दुक (सं०)	१०८
विषमच्छद (सं०)	३५६
विषलाङ्गलिया (बं०)	८६
विषवैरिणी (सं०)	१५७
विषहा, विषवैरिणी (सं०)	१५७
विषैली सुपारी	३८१
विष्णुक्रान्ता (सं०)	३४९
विस(ष)खपरा (हिं०)	२५०
विष (सं०)	२५८
विसमार (सहारनपुर)	१
वीटिस क्वाड्रांगुलारिस (ले०)	३९९
वीटिस वीनीफ़ेरा (ले०)	३०८
वीटेक्स आग्नुस-कास्टुस (ले०)	२१३
,, ट्रिफ़ोलिआ (ले०)	२१३
,, निगुण्डो (ले०)	२१३
वीपिंग निक्टेंथीज (अं०)	२२५
वीरण (सं०)	१२०
वीरणं (ता०)	१२०
वुडुढ (को०)	२५१
वुड-एपल (अं०)	१०६
वूडफोर्डिआ फ्रूटिकोसा (ले०)	२०४
,, फ्लोरिबुण्डा (ले०)	२०४
वूढीघासी (संथा०)	२५३
वृक्षामय (सं०)	३३५
वृक्षाम्ल (सं०)	११८
वृत्तमुण्डकन्द (सं०)	८५
वृत्तारुष्कर (सं०)	९२
वृद्धदारु (सं०)	३४७
वृद्धपीलु (सं०)	२४८
वृश्चीर (सं०)	२५०
वृष (सं०)	१३
वृषजिह्वा (सं०)	१२७
वृहद् अग्निमन्थ (सं०)	९
वेखंड (म०)	३४२
वेटीवेरिआ जीआनीओइडेस (ले०)	१२०
वेडेलिया कालेंडुलासिआ	२८३
वेणारमूल (बं०)	१२०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
वेर्नोनिआ सिनेरेआ (ले०)	३६७
वेल-एम्बिल्ल (सिंह०)	२७१
वैक्स-गोर्ड (अं०)	११७
वैदेही (सं०)	२४३
वोल्फेनिआ (ले०)	१११
व्याकुड(र) (बं०)	६४
व्याघ्रनखी (सं०)	८४
व्याघ्रैरण्ड (सं०)	१५९
[श]	
शंखपुष्पी (सं०, हिं०)	३४९
शंखाहुली (हिं०)	३४९
शंजार (अ०)	३२४
शंबु (ता०)	१६३
शईर (अ०)	१७१
शकर उषर, शकरक,	
शकर कोही (फा०)	३३
शकरमदार (हिं०, उर्दू)	३३
शक्काकुले हिंदी (अ०, फा०, द०)	३१३
शकुलादनी (सं०)	१११
शक्र	१११
शजिना (बं०)	२६८
शज्रतुल्कुत्न (अ०)	७०
शज्रतुल् बित्तीख़ (अ०)	२२५
शज्रतुल् मुर्तअश (अ०)	२४६
,, लौजुलहलो (अ०)	२६९
शटी (सं०, बं०)	६२, ७४
शणबीज (सं०)	९६
शतपत्री (सं०)	१३३
शतपर्वा (सं०)	१९७
शतपर्विका (सं०)	३४२
शतपुष्पा (सं०)	३५०, ३९०
शतमूली (सं०)	३५३
शतवीर्या (सं०)	१९७
शतवेधि (सं०)	२५
शतावर (म०)	३५३
शतावरी (सं०, गु०)	३५३
शत्रावल (देहरादून)	३५३
शवयार (फा०)	१४०
शम्लीज़ (फा०)	३१७
शम्लीत (फा०)	३१७
शर (सं०)	३५९
शरई (पं०)	३५१
शरनोई (जौनसार)	३५३
शरपंखो (गु०)	३५९
शरपुंख (ब०)	३५९
शरपुंखा (सं०)	३५९
शरी (पं०)	३७४
शर्बत केवड़ा	१०४
शर्बत खस	१२०
शल्लकी (सं०)	३६५
शल्लकीनिर्यास	३६५
शलुफा (बं०)	३९०
शहदानः (फा०)	२८३
शहदानज (अ०)	२८३
शहाजिरें (म०)	१६७
शहमहंज़ल (अ०)	४०
शाइका	३
शाकश्रेष्ठा (सं०)	१६९
शाजीरा (बं०)	१६७
शातरा (सिं०, म०, बम्ब०)	२२८
शादावच (बं०)	३१४
शाबर (सं०)	३३८
शारद (सं०)	३५६
शाल (सं०)	३२६
शाल-ट्री (अं०)	३२६
शालनिर्यास (राल)	३२६
शालपर्णी (सं०)	३६२
शालपानी (बं०)	३६२
शालवृक्ष (म०, गु०)	३६२
शालंडो (गु०)	३६५
शाल्मली (सं०)	३८६
,, वेष्ठ (सं०)	३८६
शाहजीरा (फा०)	१६७
शाहजीरं (गु०)	१६७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
शाहतरः (फा०)	२२८
शाहतरज (अ०)	२२८
शाहतरा (फा०, हिं०, गु०, सि०)	२२८
,, देशी (हिं०)	२२८
शिखरी (सं०)	१५०
शिंगाडा (म०)	३७३
शिग्रु (सं०)	३६८
शिञ्जम् (ता०)	४०
शितिवार (सं०)	२९५
शिबः (फा०)	१२०
शिबित्त, शिब्बित (अं०)	३९०
शियालकाँटा (ब०)	३९६
शिरदोडी (म०)	१६९
शिरस (म०)	३७४
शिरसी (म०)	३६१
शिरीष (सं०, बं०)	३७४
शिलापुष्प (सं०)	१५५
शिलारस (हिं०, बं०, म०, गु०) देशी, विदेशी	३५०
शिवण (म०)	१२५
शिवा (सं०)	३९९
शिशुगाछ (बं०)	३५१
शिशुभैषज्या (सं०)	१४
शिसव (म०)	३५१
शीघोड़ा (गु०)	३७३
शीतरः (फा०)	१४८
शीतरज (अं०)	१४८
शीतलचीनी, शीतलमिर्च (हिं०)	७५, ७६
शीमलो (गु०)	३५०
शीरक (फा०)	१९६
शीरपंखा (म०)	३५९
शीरेगियाह (फा०)	१९६
शीवण (गु०)	१२५
शीशम (हिं०, फा०)	३५१
शीह (अं०)	९९
शुकनास (सं०)	३९२
शुक्लकन्दा (सं०)	१४
शुक्लजीरक (सं०)	१६६
शुक्लाजाजी (सं०)	१६६
शुगर-केन (अं०)	४८
शुङ्गी (सं०)	२६२
शुण्ठी (सं०)	३८९
शुल्फा (बं०)	३९०
शुल्ल (फा०)	२७८
शूद (फा०)	३९०
शून्यमध्य (सं०)	२०५
शूप्रक (हिं०)	२४६
शूरण (सं०)	३८५
शू(सू)प्यपर्णी (सं०)	३०७
शूशमीर (अ०)	४२
शृङ्गवेर (सं०)	३८९
शृंगाटक (सं०)	३७३
शृंगी (सं०)	९१
शृङ्गीविष (सं०)	३५२
शेञ्शंदनम् (ता०)	१४३
शेपु (म०)	३९०
शेफालिका (सं०)	२२५
शेरडो (गु०)	४८
शेलारस (गु०)	३५०
शेलु (सं०)	३३७
शेवगा (म०)	३६८
शैबतुल् अजूज़ (अ०)	१५५
शैलेय (सं०)	१५५
शोडी (बं०)	६२
शोणा (बं०)	३९२
शोथघ्नी (सं०)	२५०
शोनीज (फा०)	२९१
शोभाञ्जन (सं०)	३६८
शोरेआ रोबुस्टा (ले०)	३२६
शोकतुल् अक़रब (अ०)	६३
शौण्डी (सं०)	२४३
श्यामकन्दा (सं०)	२७३
श्यामालता (बं०, हिं०)	३७१
श्योनाक (सं०)	३९२
श्रावणी (सं०)	३०७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
श्रीखण्ड (सं०)	११४
श्रीपर्णी (सं०)	१२५
श्रीफल (सं०)	२७८
श्रीवास (सं०)	१२३
श्रीवेष्टक (सं०)	१२३
श्लेष्मातक (सं०)	३३७
श्वदंष्ट्रा (सं०)	१३८
श्वेत काँटा अड़ा (संथा०)	४०७
श्वेतखदिर (सं०)	६८
श्वेतगिरिकर्णिका (सं०)	१८
श्वेतचंदन (बं०, सं०)	१४४
श्वेत दूर्वा (सं०)	१९७
श्वेत पुनर्नवा (सं०)	२५०
श्वेतबला (सं०)	२६५
श्वेतमरिच (सं०)	२९६
श्वेतमुषली (बं०)	३१३
श्वेतवचा (सं०)	३४५
श्वेतवर्षाभू (सं०)	२५०
श्वेतविष्णुक्रांता (सं०)	१८
श्वेतशरपुंखा	३६०
श्वेतशाल्मली (सं०)	७२, ३८७
श्वेतसारिवा (सं०)	३७१
श्वेतसैरेयक (सं०)	२८५
श्वेतापराजिता (सं०)	१८
[ष]	
षड्ग्रन्था (सं०)	३४२
[स]	
संकोच (सं०)	१०४
संखाहुली (हिं०)	३४९
संखू (पं०)	३०३
संगन (हिं०)	३६८
संगेसबूया (फा०)	१४५
संजीत (पं०)	५०
संत्रे (म०)	२०८
संदल (अ०, द०)	१४३
संदले अब्यज़ (अ०)	१४४
,, अह्मर (अ०)	१४३
,, सफ़ेद (अ०)	१४४
,, सुर्ख़ (अ०)	१४३
संलगा (को०, संथाल)	३६५
सखुआ (हिं०)	३२६
सखुवा (था०, खर०)	३२६
सजना (हिं०)	३६८
सडसियारी	२२६
सतअजवायन (हिं०)	७२
सतपिपरमिंट (हिं०)	७२
सतबिरोजा (हिं०)	१२४
सतमुलेठी	३०९
सताप (म०)	३७७
सतावर (हिं०, पं०, था०)	३५३
सतुआ (नेपाल)	३४५
सतुआसोंठ (हिं०)	३९०
सतौना (पं०, हिं०)	३५३
सत्फल (म०)	३५८
सत्यानाशी (हिं०)	३९६
सदापुष्प (सं०)	३४
सदाब (फा०)	३७७
सद्दाब (फा०)	३७७
सनाऽ (अ०)	३५४
सनऽमक्की (अ०)	३५४
सनाय (हिं०)	३५४
सनायमकी (हिं०)	३५४
सनायमक्की (हिं०)	३५४
सनाय मिश्री	३५५
सनूबरे (हिं०)	१९७
सपरोम (को०, संथा०)	२२५
सपिस्तां (फा०)	३३७
सपिस्ताने कलाँ (फा०)	३३७
सप्तपर्ण (सं०)	३५७
सप्पनम् (मल०)	२२०
सप्पन-वुड (अं०)	२२०
सफरचंद (म०)	३८७
सफरजल (अ०)	२७६
सफरजलेहिन्दी (फा०)	२७८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
सफेत(द)मुसली (म०)	३१३
सफेत् जीरे (बं०)	१६६
सफेद चंदन (हिं०)	१४४
,, ,, बुरादा (हिं०)	१४४
,, ,, तेल (हिं०)	१४४
सफेद जीरा (हिं०)	६६
,, बच (हिं०)	३४५
,, बचनाग	८७
सफेद बछनाग (हिं०)	८७
सफेद मरिच (हिं०)	२९६
स (सु) फेद मु (मू) सली (हिं०)	३१३
सफेद मुसली (गु०)	३१३
सफेद शिरीष	३७५
सब्जी (हिं०)	२८३
सब्बारत (अ०)	१४०
संभालू/सम्हालू	२१२
समग़ अरबी (अ०)	२४२
समग़े उषर (अ०)	३३
समग़े पलः (फा०)	२३२
समदरशोष (गु०)	३४७
समन्दरसोख (मा०)	३४७
सम्मुलमार, सम्मुलहिमार (अ०)	६९
समरतुत्तुर्फ़ा (अ०)	१७२
समरसरो कोही (फा०)	४०१
समरुल् कुज्वुरः (अ०)	२००
समरुल्वर्द (अ०)	१३३
समरे गुल (अ०)	१३३
समलपत्ती (हिं०)	३९८
समाक (अ०, फा०)	१७८
समाकदाना (हिं०)	१७८
समुन्दरफल (हिं०)	३५८
समुन्दरफल (हिं०, म०, गु०)	३५८
समुन्दरशोख (हिं०)	३४७
समुन्दरशोख (हिं०, भा० बा०, पं०, सि०)	३५७
समुद्रफल (सं०)	३५८
समुद्रशोक (म०)	३४७
समुद्रशोष (सं०)	३५७

नाम	पृष्ठ
सम्सम् (अ०)	१७९
सम्हालू (हिं०)	२१२
सरई/सलई (हिं०)	३६५
सरगवो (गु०)	३६८
सरघवो (गु०)	३६८
सरपत (हिं०)	३५९
सरपोंखा (हिं०)	३५९
सरफोंका (हिं०)	३५९
सरमलूतुर (संथा०)	२८७
सरल (सं०)	१२३
,, गाछ (बं०)	१२३
सरल, देवदार (हिं०)	१२३
सरलनिर्यास (सं०)	१२३
सरसडो (गु०)	३७४
सरसव (गु०)	३६१
सरसों (हिं०)	३६१
सराल (देहरादून, सहारनपुर)	३४६
सरिवन (हिं०)	३६२
सरिषा (बं०)	३६१
सरोह (पं०)	३७४
सरेयाँ (पं०)	३६१
सरेसडो (गु०)	३७४
सर्जम् (संथा०, को०)	३२६
सर्पगन्धा (भा० बा०)	३६३
सपंद्रंष्ट्रा (सं०) ?	३७७
सर्षप (सं०)	३६१
सलई (हिं०)	३६५
सलई का गोंद (हिं०)	३६५
सला (गढ़०)	१२३
सल्लकी (सं०)	३६५
सवन (गु०)	१२५
सहचर (सं०)	२४५
सहजणो (मा०)	३६८
सहजन	३६८
सहदेइया (हिं०)	४६७
सहदेई (हिं०)	३६७
सहदेवी (सं०, गु०, म०)	३६७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
सहषमूली (मीरजापुर)	२९४
सहस्रवीर्या = दूर्वा (सं०)	१९७
सहिजन (हिं०)	३६८
सॉइमीडा फ़ेबीफ़ूजा (ले०)	३००
साइडोनिन (अं०)	२७७
साउस्सूरेआ लाप्पा (ले०)	११५
साकतुर्शक (फा०)	१५४
साक्सारुम आफ़ीसिनारुम (ले०)	४८
साक्कारुम मुंजा (ले०)	३५९
साक्कापुप सिलिआरे (ले०)	३५९
साक्कारुम् स्पान्टानेउम् (ले०)	९६
साक्कोलाबियम पाप्पिलोमुम (ले०)	३२७
सावसीफ्राजा लिगूलाटा (ले०)	२४१
साखू (हिं०)	३२६
सागरगोटा (हिं०)	५७
साजजे हिन्दी (अ०)	१८४
साजी (कु०)	१५०
सांटालुम आल्बुम (ले०)	१४४
साटी (मा०)	२५०
साठी (पं०, सि०)	३५७
सातरी (हिं०)	३७७
सातवण (गु०)	३५६
सातवीण (म०)	३५६
सादा चन्दन (बं०)	१४४
सापसण (म०)	४७
सापसन (म०)	४७
सापसंद (म०)	४७
सापींडुस ट्रीफोलिआटुस (ले०)	३२८
सापींडुस मुकुरोस्सी (ले०)	३२८
सा(स)फ़िस्तां (अ०)	३३७
सा(शा)बर रोध्र	३३८
साम्राणी (ता०)	३४०
सारिवा (सं०)	३६९
सारिवा कृष्ण (सं०)	३७१
सारिवाद्वय (सं०)	३७१
सार्कोकोलीन (अं०)	३
साल (हिं०)	३२६
सालई, सालय (हिं०)	३६५
साल्प (अफ०)	३७२
सालपान	३६३
सालब (अफ०)	३७२
सालबमिस्री (अ०, अफ०, द०)	३७२
सालम (गु०)	३७२
सालममिछरि	३७२
सालममिस्री (हिं०, म०) । देशी, विदेशी (फारसी)	३७२
सालमालिआ मालाबारिकम (ले०)	३८६
साल्लम्मिछरि (बं०)	३७१
साल्वण (म०, गु०)	३६२
सालप (हिं०, म०)	६३२
सालिक्स काप्रेआ (ले०)	२७७
सालिवमिश्रि (पं०)	३७१
सालीटची भाजी (बम्ब०)	९८
आल्विआ प्लेबीआ (ले०)	३५७
साल्विआ ईजिप्टिका	१८४
साल्विआ प्लेबेआ (ले०)	३४८
साल्विआ लाटाना (ले०)	११६
साल्विआ सांटोलीनीफोलिआ (ले०)	१८४
साल्विआ हेमोटाडेस (ले०)	२६६
साल्वेडोरा ओलेओइडेस (ले०)	२४८
साल्वेडोरा पेर्सिका (ले०)	२४८
साँवल (हिं०)	३७७
सासम (अ०)	३५१
सास्यूरीन (अं०)	११६
साहुल (हिं०)	६१
सिकंजबीन	२१६
सिकोरिउम् इंटुबुस (ले०)	९७
सिकोरिन (अं०)	९८
सिंगाड़ा, सिंघाड़ा (हिं०)	३७३
सिंगिया विष (हिं०)	२५८
सिंगी मोहरा (मरा०)	२५८
सिजद खोरासानी (फा०)	५०
सिजद जोलानी (फा०)	५०
सिजा/जो (संथा०)	२७८
सिटिक (बं०)	२२५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
सिटकी (संथा०)	२१४	सिरीस (हिं०)	३७४
सिटंद (फा०)	४०१	सिरोप (को०, संथा०)	१२०
सिंबल (पं०)	३८६	सिलफोड़ा (हिं०)	२४१
सिटी (खर०)	३१४	सिलियम सीड्स (अं०)	४५
सिट्रुस आउरान्टिफोलिआ (ले०)	२०९	सिलिसिकि एसिड (अं०)	१७२
सिट्रुस आरेन्शिफोलिआ (ले०)	२०२	सिलीविची (संथा०)	२१९
सिट्रुस सीइनेन्सिस (ले०)	२०९	सिल्फड़ा	२४१
सितपाटला (सं०)	२३७	सिल्ला मारीटिमा (ले०)	९०
सिताब (हिं०)	३७७	सिल्ला हिआसींथिना (ले०)	९०
सितालता (सं०)	१९७	सिल्हक (स०)	३५०
सिद्धार्थ (सं०)	३६१	सिसिम्ब्रिउम् ईरियो (ले०)	१२०
सिद्धि (हिं०, बं०)	२८३	सिसेम (अं०)	१७९
सिनुआर (खर०)	२१२	सिसेम ऑयल (अं०)	१७९
सिन्दवार (संथा०)	२१२	सिसेमिआ (अं०)	१८०
सिन्धुवार (सं०)	२१२	सिस्सस क्वाड्रांगुलारिस (ले०)	३९८
सिन्नामोमुम् काम्फोरा (ले०)	७२	सिस्सैम्पेलीन (अं०)	२३५
सिन्नामोनुम् ज़ेइलानिकुम (ले०)	१९३	सिंहली दालचीनी (हिं०)	१९३, १९४
सिन्नामोमुम् तमाला (ले०)	१८४	सींक (हिं०)	१२०
सिन्नामोमुम बर्मानी (ले०)	१९४	सींगियाविष (हिं०)	३५२
सिन्नामोमुम् लूरिरियाई (ले०)	१९४	सी-कोकोनट (अं०)	२११
सिन्नेमन (अं०)	१९३	सिकोरिडम इंटिबुस (ले०)	९७
सिन्नेमन-बार्क (अं०)	१९३	सीकोरिउम् एण्डिविआ (ले०)	९७
सिफेलेन्ड्रा इंडिका (ले०)	१०१	सीक्लेआ पेल्टाटा (ले०)	२३५
सिन्न (अ०, फा०)	१४०	सीजीजिउम कूमिनी (ले०)	१६३
सिप्सिप् (अ०)	१७९	सीट्रुस आउरांटीफ़ोलिआ (ले०)	२१६
सिम्बितिका (सं०)	३८७	सीट्रुस डेकूमाना (ले०)	२५
सिम्बोपोगोन स्कीनान्थुस (ले०)	१५६	सीट्रुस माक्सिमा (ले०)	२५
सियरलठिया (हिं०)	२४	सीट्रुस मेडिका प्र० एसिडा (ले०)	२१६
सियांचिटी (सिंध)	३६१	सीट्रूल्लुस कोलोसींथिस (ले०)	३९
सियामुसली (हिं०)	३१२	सींडाप्सुस आफ़्फ़ीसिनालिस (ले०)	१२७
सियारडण्डा (हिं०)	२४	सीडा आकूटा (ले०)	२६५
सियालकाँटा (बं०)	३१२	सीडा आल्बा (ले०)	२६५
सियालिया (जम्मू)	३४६	सीडा आल्नीफोलिआ (ले०)	२६५
सियाहजीरा, जंगली (फा०)	७९	सीडा कॉर्डिफ़ोलिआ (ले०)	२६४
सिरस (हिं०)	३७४	सीडा रहाम्बीफोलिआ (ले०)	२६४
सिरिंह (सिंध)	३७४	सीडा स्पीनोजा (ले०)	२६५
सिरियारी	२९५	सीडोनिया ओब्लोंगा (ले०)	२७६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
सीडोनिआ बुल्गारिस (ले०)	२७६
सीताब (गु०)	३७७
सीनिप्स गाली-ईफेक्टोरिआ (ले०)	२७८
सीनोडान डाक्टीलॉन (ले०)	१९७
सीन्नामोमुस (ले०)	१९३
सीन्नामोमुम जेइलानिकुम (ले०)	१९३
सीन्नामोमुम बर्मानी (ले०)	१९४
सीपेरुस रोटंडुस (ले०)	२०८
सीपेरुस स्कारिओसुस (ले०)	२०७
सीफल (पं०)	२७८
सीम्प्लोकॉस क्राटेगोइडेस (ले०)	३३९
सीम्प्लोकॉस रासेमोसा (ले०)	३३८
सीम्प्लोकॉस स्पीकाटा (ले०)	३३९
सीर (फा०)	३३४
सीरिअन-रू (अं०)	४०१
सीलान (फा०)	५०
सीलोन लेड-वर्ट (अं०)	१४८
सील्ला ईंडिका (ले०)	९०
सील्ला हिआसिन्था	९०
सीसम (हिं०)	३५१
सीसु (अं०)	३५१
सीसो (हिं०)	३५१
सीस्साम्पेलॉस पारेईरा (ले०)	२३४
सुक्करुल् उषर (अ०)	३३
सुगंधा (सं०)	११४
सुखड (गु०)	१४४
सुगन्धबाला (हिं०, पं)	३७५
सुगन्धा (सं०)	११४
सुजाब (अ०,	३७७
सुंठ (गु०)	३८९
सुंठी (म०)	३८९
सुदाब (हिं०, पं०, फा०)	३७७
सुद्दाब (फा०)	३७७
सुधा (सं०)	३८८
सुनसु नया साग (हिं०)	३७९
सुनिषण्णक (सं०)	३७९
सुनिषिस्मः (सं०)	३७९
सुपर्ब-लिलि (अं०)	८६
सुपारि (बं०)	३८०
सुपारी (हिं०, म०)	३८०
सुपारी का फूल (हिं०)	३८६
सुफेद बहमन (हिं०)	२६६
सुंबुलुत्तीबे हिन्दी, सुंबुले हिंदी (अ०)	१५६
सुमाक	१७८
सुमात्रालोबान (हिं०)	३४१
सुरंगी (म०)	२०७
सुरंजान (हिं०, म०, गु०)	३८२
सुरंजान कडुआ (हिं०, भा० बा०)	३८२
सुरंजान मीठा (हिं०, भा० बा०)	३८२
सुरपर्णिका (सं०)	२०७
सुरपुन्नाग (सं०)	२०७
सुरभिदारुक (सं०)	१२३
सुरभूरुह	१९७
सुरसा (सं०)	१८१
सुरही (कानपुर)	३२७
सुरसिग (हो०)	११२
सुराल (देहरादून)	३४६
सुर्चि (पं०)	१४८
सुलतान मुनक्का (हिं०)	३०८
सुलोमशा (सं०)	१५६
सुवर्चला (सं०)	४०७
सुवा (गु०, पं०)	३९०
सुषुनीशाक	३७९
सुष्नी	३७९
सुस्रवा (सं०)	३६५
सुहांजना (पं०)	३६८
सुहांजिड़ो (सिंध)	३६८
सूआ (सिंध)	३९०
सूक्ष्मैला (सं०)	४२
सूचीपुष्प (सं०)	१०३
सूच्यपर्णी (सं०)	३०७
सूफ़ (सिंध)	३८७
सूम (अ०)	३३४
सूरंजान (भा० बा०)	३८२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
सूरण (सं०, म०, गु०)	३८५
सूरन (हिं०)	३८५
सूरिंजान (फा०)	३८२
सूरिंजाने तल्ख़ (फा०)	३८२
सूरिंजाने शीरीं (फा०)	३८२
सेईबा पेंटांड्रा (ले०)	३८८
सेकटो (गु०)	३६८
सेकरेड लोटस (अं०)	७७
सेकिनगड्डे (कना०)	८५
सेगटा (म०)	३६८
सेंटाउरेआ बेहेन (ले०)	२६६
सेंटोनिका (अं०)	९९
सेंट्राथेरुम आन्थेल्मींटिकुम (ले०)	७९
सेंड (हिं०)	३८८
सेडार (अं०)	१९८
सेड्रुस लीबानी	१९८
सेतकट (बिहार)	१३२
सेताजरका (बिहार)	१३२
सेताण्डोर	१३२
सेतापेटू (बिहार)	१३२
सेतारेपडो (बिहार)	१३२
सेदरडो (गु०)	३६७
सेवेसिओ जेक्वेमान्टिआनुस (ले०)	११६
सेन्टेल्ला एशियाटिका (ले०)	२८०
सेन्टोनिन (अं०)	१००
सेपीरीन (अं०)	२३५
सेफालान्ड्रा ईंडिका (ले०)	१०१
सेंबर (हिं०)	३८६
सेंवल (हिं०)	३८६
सेमर (हिं०)	३८६
सेमल (हिं०)	३८६
सेमलकंद (हिं०)	३८६
सेमलमूसला (हिं०)	३८६
सेमलमूसली (हिं०)	३८६
सेमेकार्पुस आनाकार्डिउम (ले०)	२८८
सेमेन मिरीस्टिका (ले०)	१६४
सेव्य (सं०)	१२०

नाम	पृष्ठ
सेलरी, सेलरी-फ्रूट, सेलरी-सीड (अं०)	८२
सेलास्ट्रुस पानीकुलाटुस (ले०)	३०३
सेलोसिआ आर्गेन्टेआ प्र० क्रीस्टाटा (ले०)	२९५
सेव, सेब (हिं०)	३८७
सेवाम्ला	३६
सेसामुम ओरिएन्टाले	१७९
सेसामुम् इंडिकुम	१७९
सेसालपीनिआ क्रीस्टा (ले०)	५८
सेसालपीनिआ सप्पन (ले०)	२२०
सेसालपीनिआसे (ले०)	४०, ५८
सेस्बानिआ ईजीप्टिआका (ले०)	१६०
सेहुण्ड (सं०, हिं०)	३८८
सैक्रेड-फिग	२४६
सैगन दालचीनी	१९४
सैजन (हिं०)	३६८
सैंटेलिल एसीटेट (अं०)	१४५
सैंटेलोल (अं०)	१४५
सैंडल (अं०)	१४४
सैंडल-वुड (अं०)	१४४
सैरेयक (सं०)	२४५
सैरेयक नील (सं०)	२४५
सैरेयक पीत (सं०)	२४५
सैरेयक रक्त (सं०)	२४५
सैरेयक श्वेत (सं०)	२४५
सैक्रेड-फिग (अं०)	२४६
सैलेप (अं०)	३७२
सैल्विआ ईजीप्टिआका (ले०)	४६
सोअद-कूफी (अ०)	२०६
सोआ (हिं०)	३९०
सोंठ (हिं०)	३८९
सोनकेतकी	१०३
सोनपत्ता (खर०)	३९२
सोना (था०)	३९२
सोनापाठा (हिं०)	३९२
सोनामकी (हिं०)	३५४
सोनामक्की (कों०)	३५४
सोनामुखी (बं०, म०, गु०)	३५४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
सोनैया (हिं०)	२५५
सोप-नट (अं०)	३२८
सोम (सं०)	३९५
सोमकल्पलता (बं०)	३९५
सोम्नीफेरिन (अं०)	३१
सोयमनोई (उड़ि०)	३१
सोया (हिं०)	३९०
सोयीकुरा (ते०)	३९०
सोरही (कानपुर)	३२७
सोरेलिया सीड्स (अं०)	२६८
सोलानुम् इंडिकुम (ले०)	६४
सोलनुम जैन्थोकार्पुम्	६३
सोलानुम डार्बुम (ले०)	६५
सोलानुम् मेलांगेना उप० इन्सानुम् (ले०)	६५
सोलानुम नीग्रुम (ले०)	१९२
सोलानुम सुरादटेंस (ले०)	६३
सोलेनीन, सोलेनिडीन (अं०)	६५
सोवा (मा०)	३९०
सोसन	२५२
सोसन जर्द (फा०)	३४५
सोसो (संथा०)	२८८
सोहांजन (हिं०)	३६८
सोहागा (हिं०)	३३२
सौवीर (सं०)	५१
सौवीरक (सं०)	५१
सौवीर बदर सं०	५१
सौसन	२५२
स्कीपुंस आर्टीकुलाटुस (ले०)	८७
स्कीपुंस कीसूर (ले०)	८७
स्कूटूंन (यू०)	३३४
स्टाफ-ट्री (अं०)	३०३
स्टिफानिया ग्लाबा (ले०)	२३५
स्टिफानिआ हेर्नान्डीफोलिआ (ले०)	२३५
स्टीरायस टोंकिनेन्सिस (ले०)	३४०
स्टीरायस पारालेलोउरम (ले०)	३४०
स्टीरायस बेंजोइन (ले०)	३४०
स्टेरेओस्पेर्मुम क्लीनोइडेस (ले०)	२३६

नाम	पृष्ठ
स्टेरेओस्पेर्मुम टेट्रागोनुम	२३७
स्टेरेओस्पेर्मुम सुआविओलेन्स (ले०)	२३६
स्टेरोल (अं०)	२८२
स्टेर्कूलिआ ऊरेंस (ले०)	६६
स्टैफिलेग्रीन (अं०)	१५०
स्टोन-फ्लावर (अं०)	१५५
स्ट्रिक्नीन (अं०)	१०५
स्ट्रिक्नोस इग्नाटी	२२४
स्ट्रिक्नोस नक्सवॉमिका (ले०)	१०८
स्ट्रिक्नोस पोटाटोरुम् (ले०)	२१३
स्ट्रिक्नोस ब्लैंडा (ले०)	१०९, २१३
स्थिरा (सं०)	३६२
स्थिरायु (सं०)	३८६
स्थूलजीरक (सं०)	२९१
स्थूलवल्कल (सं०)	३३८
स्थूला (सं०)	४४
स्निग्धजीरक (सं०)	४५
स्निग्धपत्र (सं०)	८१
स्नुक् (सं०)	३८८
स्नुही (सं०)	३८८
स्नेक-कुकुंबर (अं०)	५९
स्पॉजेल-सीड्स (अं०)	४५
स्पांडीआस पीन्नाटा (ले०)	३६
स्पांडिआस वांगीफेरा (ले०)	३६
स्पेनिश पेलिटरी (अं०)	३
स्पैनी मुलेठी (हिं०)	३१०
स्प्रेडिंग हॉग-वीड (अं०)	२५०
स्फेरांथुस ईडिकुस (ले०)	३०७
स्मालकैल्ट्रोप्स (अं०)	१३८
स्माल फेनेल (अं०)	२९१
स्मालसेबेस्टन प्लम् (अं०)	३३७
स्मीलाक्स चीना (ले०)	१५४
स्याम-लोबान	३४०
स्याहजीरक	१६७-१६८
स्याहजीरा (हिं०)	१६८
स्याहदानः (फा०)	२९१
स्याहजीरे का तेल (हिं०)	१६८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
स्योनाक (सं०)	३९२
स्वर्णकेतकी (सं०)	१०३
स्वर्णक्षीरी ? (सं०)	३२५, ३६१, ३९६
स्वर्णपत्री (सं०)	३५४
स्वस्तिक (सं०)	३७९
स्वादुकंद (सं०)	३४६
स्वीट आमंड (अं०)	२६९
स्वीट-ताडी (अं०)	१७५
स्वीट-फ्लैग (अं०)	३४३
स्वीट वायोलेट (अं०)	२५९
स्वीट-सेण्टेड ओलिएण्डर (अं०)	६९
स्वीट हर्मोडैक्टिल (अं०)	३८२
स्वेर्टिआ अलाटा (ले०)	१५२
स्वेर्टिआ आंगुस्टिफोलिआ (ले०)	१५१
स्वेर्टिआ चिरेटा (ले०)	१५१
[ह]	
हँइसा (हिं०)	४०५
हं(हिं०)जल (अ०)	३९, ४०
हंसपदी (सं०)	३९८
हंसराज (हिं०, म०, गु०)	३९८
हजंड (को०)	६४
हजाजुस्सज़र (अ०)	१५५
हजारदाना (पं०)	१९६
हजारदानी (पं०)	१९६
हज़्ज़ुल् उक़ाब (अ०)	५७
हड़ (हिं०)	३९९
हड़जोड़ (हिं०)	३९८
हत्मी (तु०)	११९
हन्दकूक़ी (अ०)	२५०
हपुषा (सं०)	४०३
हब्बतुस्सौदा (अ०)	२९१
हब्बुन्नील (अ०)	९५, ९६
हब्बुर्रशाद (अ०)	१४६
हब्बुल् अरअर (अ०)	४०३
हब्बुल् उरूस (अ०)	७६
हब्बुल् क़ल्ब (अ०)	२८८
हब्बुल् क़ुत्न (अ०)	७०

नाम	पृष्ठ
हब्बुल् खत्मी (अ०)	११९
हब्बुल् गुराब (अ०)	१०८
हब्बुल् मि(मुल्क) (अ०)	३११
हब्बुस्सम्मारजल (अ०)	२७६
हब्बे अस्वद (अ०)	२९१
हम्माज़ (अ०)	१५४
हयमार (सं०)	६९
हर (पं०)	३९९
हरजोडी (देहरादून)	२३४
हरड़ (हिं०)	३९९
,, अमृतसरी	४००
,, पीली	४००
हरड़ा (म०)	३९९
हरड़े (गु०)	३९९
हरवल (पं०)	४०१
हरदी (हिं०)	४०१
हरदघल (पं०)	४०१
हरनतूतिया	३८३
हरमर (गु०)	४०१
हरमल (अ०, हिं०, गु०, म०, बं०)	४०१
हरशृंगार (हिं०)	२२५
हरसिंगार (हिं०)	२२५
हरिद्रा (सं०)	४०१
हरियाली (म०)	१९७
हरीतकी (सं०)	३९९
हरी दूर्वा (हिं०)	१९७
हरी घनियाँ (हिं०)	२००
हर्तकी (बं)	३९९
हर्मरो (गु०)	४०१
हर्मलीन (अं०)	४०१
हर्मीन (अं०)	४०१
हर्मेलोल (अं०)	४०१
हर्रे (हिं०)	३९९
हलद (म०)	४०१
हलदर (गु०)	४०१
हलदी (हिं०)	४०१
हलुद (बं०)	४०१

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
हल्दी (हिं०)	४०१
हपुषा (सं०)	४०३
हशीश (अ०)	२८३
हशीशतुस्सुआल (अ०)	१३
हसक (अ०)	१३८
हसक (पं०)	१३८
हसके कबीर (अ०)	१३९
हसीलु(लो)बान (अ०)	३४०
हस्तलुब (फा०)	३४०
हस्तिचिंघाड़ (हिं०)	१३९
हस्तिदन्ती (सं०)	१८९
हाऊबेर (हिं०, पं०)	४०३
हॉग-गम (अं०)	६५
हॉग-प्लम ट्री (अं०)	३६
हाज (अ०)	१६२
हाडजोडा (बं०)	३९८
हाडभांगा (बं०)	३९९
हाडवर्णा (म०, राँची)	२६३
हाडसांकल (गु०)	३९९
हाँड़ीफुटा (ऊ०)	३४६
हातुकेसारी (को०)	२८२
हाथीपीपर (हिं०)	१२६
हायोसायमीन	२००
हारशणगार (गु०)	२२५
हायोसीन	२००
हारहूरा (सं०)	३०८
हॉर्डेउम वुल्गारे (ले०)	१७१
हॉर्स-ग्राम (अं०)	११४
हॉर्स-रैडिश ट्री (अं०)	३६८
हालिम (हिं०, बं०, पुंछ)	१४६
हॉलिया (बं०)	१४६
हालों (हिं०, म०, राजस्थान)	१४६
हाशा (अ०)	१२
हिंग (म०, हिं०)	४०५
हिंगण (म०)	३८
हिंगु (सं०, बं०)	४०५
हिंगुआ (हिं०)	[illegible]
हिंगोट (हिं०)	३८
हिंगोरिया (मा०)	३८
हिंङ् (बं०)	४०६
हिंजल (अ०)	३९, ४०
हिज्जल (सं०)	३५८
हिंद (दि, दु) बाऽ (अ०)	९७
हिंदबाऽबर्री (अ०)	१९५
हिंसा (हिं०)	८४
हिंस्रा (सं०)	४०५
हिओस्सिआमुल नीगेर (ले०)	१३
हिओस्सिआमुस मूटिकुस (ले०)	१२
हिओस्सिआमुस रेटीकुलाटुस (ले०)	१२
हिजल (बं०)	३५८
हिजलीबादाम (बं०)	९२
हिज्जल (सं०)	३५८
हिद (को०)	२७४
हिड्नोकार्पस ऑयल (अं०)	१८२
हिना (फा०)	३१९
हिन्ना (अ०)	३१९
हिबिस्कुस आबेल्माश्कुस (ले०)	३११
हिमालयन चेरी (अं०)	२२३
हिमालयन पेओनी (अं०)	५४
हिरादखण (म०, गु०)	१२२
हिराबोल (म०, गु०)	२८०
हिल्तीत (अ०)	४०५
हिस्ना (सं०)	४०५
हिस्सॉपुस आफिफसिनालिस (ले०)	१७१
हिस्सोप (अं०)	१७१
हींग (हिं०, गु०)	४०५
हीग्रोफिला (ले०)	१७५
हीग्रोफिला स्पीनोसा (ले०)	१७५
हीड्नोकार्पुस कूजिई (ले०)	१८२
हीड्नोकार्पुस लाउरिफोलिआ (ले०)	१८२
हीड्नोकार्पुस वाइटिआना (ले०)	१८२
हीड्रोकोटिल आशिआटिका (ले०)	२८०
हीड्रोकोटिल जावानिका (ले०)	२८२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम	पृष्ठ
हीड्रोकोटिल रोटंडीफ़ोलिआ (ले०)	२८२
हीरा(द)दाखण (म०, गु०)	१२२
हीरादोरवी (हिं०)	१२२
हीराबोल (हिं०)	२८०
हीराहींग (हिं०)	४०६
हील (फा०)	४२
हील उन्सा (फा०)	४२
हीलकलाँ (फा०)	४४
हीलजकर (अ०)	४४
हीलबवा (फा०)	४२
हुजुज़ (अ०)	१९१
हुम्मज़ (अ०)	१५४
हुर्मुल (पं०, अ०)	४०१
हुरहुर (हिं०), सफेद, पीली, बैंगनी	४०७
हुरहुरिया (बं०)	४०७
हुलहुल (हिं०)	४०७
हुल्बः (अ०)	३१७
हूपू (को०)	६५
हूवेर (हिं०)	४०३
हूसी (को०)	२३६
हेज-मस्टर्ड (अं०)	१२०, १२८
हेडीकियम कोरोनारिआ (ले०)	७४
हेडीकियम स्पीकाटुस (ले०)	७४
हेनबेन (अं०)	१२
हेनबेन-सीड्स (अं०)	१२
हेप्पा-टैनिक एसिड (अं०)	३१९
हेमदुग्ध (सं०)	१३६
हेमरम (को०)	३३७
हेमिडेस्टेरोल (अं०)	३७१
हेमिडेस्मोल (अं०)	३७१
हेमिडेस्मस (अं०)	३६९
हेमोडेस्मी राडिक्स (ले०)	३६९
हेमिडेस्मुस (ले०)	३६९
हेमीडेस्मुस इंडिकुस (ले०)	३६९
हेंरडो (ने०)	३९९
हेर्पेस्टिस मोन्निएरा (ले०)	२८०
हेलीक्टेरेस इसोरा (ले०)	२९६
हैंस (हिं०)	४०५
हैमवती (सं०)	३४५
हैमवती वचा (सं०)	३४५
हैमवती, शुक्ला (सं०)	३४५
होपो (संथा०)	६५
होम (ईरान)	३९५
होलारहेना आंटीडीसेन्टेरिका (ले०)	१११
होली वेसिल (अं०)	१८१
ह्रीवेर (सं०)	३७७, ४०९, ४१०
ह्वाइट गोर्ड-मेलन (अं०)	११७
ह्वाइट पॉपी (अं०)	२०
ह्वाइट बिहीन (अं०)	२६६
ह्वाइट रहैपटोनिक (अं०)	२६६
ह्वाइट लेड-वर्ट (अं०)	१४८
ह्वाइट सीड्स (अं०)	२०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Index of Latin and English Names

[A]

Abelmoschus moschatus Medic. 311
Abies webbiana Lindl. 176
Abroma augusta Linn f. 51
Abrus precatorius Linn. 129
Abutilon indicum G. Don. 56
Abutilon hirtum G. Don. 57
Acacia arabica Willd. 260
Acacia catechu Willd. 67
Acacia Tree 242
Acanthaceae (Fam.) 13. 50, 94, 175, 228, 241, 245
Acanthospermum hispidum D.C. 139
Achyranthes aspera Linn. 150
Aconite Root 353
Aconitum chasmanthum Stapf. ex-Holmes. 352
Aconitum ferox Wall. 224
Aconitum heterophyllum Wall. 14
Aconitum napellus 352
Aconitum palmatum D. Don. 273
Acorus calamus Linn. 343
Actinopteris dichotoma Bedd. 294
Actinopteris radiata Bedd. 294
Adenanthera pavonia Willd. 143
Adhatoda 13
Adhatoda vasica Nees. 13
Adiantum capillus-veneris Linn. 398
Adiantum caudatum Linn. 295
Adiantum lunatum Burm. 398
Adiantum venustum Don. 398
Aglaia roxburghiana Miq. 254
Aegle marmelos Correa. 278
Aerva lanata Juss. 242
Ailanthus excelsa 257, 393
Akot-Bach 344
Alhagi camelorum Fich. 162
Alhagi Manna 163
Alhagi maurorum Baker non Desv. 162
Alhagi pseudalhagi Desv. 162
Alkanet 324
Alkanna tinctoria Jausch. 324
Alangium lamarckii Thw. 1
Alangium salvifolium (L. f.) Wang. 1
Albizzia amara Boiv. 375
Albizzia lebbeck Benth. 374
Albizzia marginata Merr. 375
Albizzia odoratissima Benth. 375
Albizzia procera Benth. 375
Allium cepa Linn. 252
Allium sativum Linn. 334
Alocasia indica Schott. 303
Aloe-Wood 7
Aloe barbadensis Mill. 140
Aloe abyssinica 141
Aloe candela-brum Berger. 142
Aloe ferox Mill. 141
Aloe perryi Baker. 141
Aloe succotrina Lam. 142
Aloe vera Tourn. ex-Linn. 140
Aloe vera var. chinensis Baker 141
Aloe vera var. littorralis Koenig ex-Baker. 141
Alpine Knot-Weed 2
Alpinia galanga Willd. 113, 114
Alpinia officinarum Hance 113
Alstonia scholaris R. Br. 356
Althaea officinalis Linn. 119
Altingia excelsa Noronha 350
Amaranthaceae (Fam.) 150, 242
Amaryllidaceae (Fam.) 313
Amorphophallus campanulatus (Roxb.) Blume ex-Decne 385
Amorphophallus sylvaticus Schott. 385
Amomum aromaticum Roxb. 45
Amomum subulatum Linn. 44
Amoora rohituka Wt. and Arn. 332
Ampelidaceae (Fam.) 399
Amygdala dulcis 269

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Anacardiaceae (Fam.) 34, 36, 91, 92, 163, 178, 288, 297
Anacardium occidentale Linn. 92
Anacyclus pyrethrum D.C. 5
Ananas comosus Linn. 15
Ananas sativus Schult. f. 15
Andrographis, Great, Kiryat. 94
Andrographis paniculata Nees. 95
Andropogon schoenanthus L. 156
Andropogon muricatus Retz. 120
Anethum Fructus 390
Aphanamixis polystachya (Wall.)–Parker 332
Apii Fructus 82
Apium graveolens Linn. 10. 82
Apocynaceae (Fam.) 69, 78, 111, 315, 356, 363, 371
Apple 387
Aquilaria agallocha Roxb. 7
Arabian Lavander 53
Arabian Manna-Plant, Persian Plant 102
Arabian Senna 355
Araceae (Fam.) 161, 303
(Aroideae.) 343, 385
Argemone mexicana Linn. 325, 396
Argyreia speciosa Sweet. 347
Areca Nut, Betel-Nut 380
Areca catechu Linn. 380
Areca concinna D.C. 381
Areca nagensis Griff. 381
Areca triandra Roxb. 381
Aristolochiaceae, (Fam.) 47
Aristolochia indica Linn. 47
Aristolochia bracteata Linn. 48
Artemisia 99
Artemisia absinthium Linn. 99
Artemisia cina Berg. 99
Artemisia maritima Linn. 99
Artemisia maritima forma rubicaule. 99
Arundo donax Linn. 193
Asafoetida 405
Ash-coloured Flea-Bane 334
Ash-Gourd 117
Asclepiadaceae. (Fam.) 33, 130, 169, 202, 288, 314, 327, 369, 370, 371
Ash-coloured Flea-bane 367
Asparagus adscendens Roxb. 313
Asparagus racemosus Willd. 353
Asparagus sarmentosus Linn. 314
Astercantha longifolia Nees. 175
Astragalus sarcocola Dymock. 3
Ayapana-tea 26
Azadirachta indica A. Juss. 217
[B]
Bacopa monniera Wettst. 281
Bacopa monnieri Pennell. 281
Balanites aegyptica Linn. 38
Balanites roxburghii Planch. 38
Baliospermum axillare Bl. 188
Baliospermum montanum Willd. Muell. Arg. 188
Balsamodendron mukul Hook ex-Stocks. 134
Balsamodendron myrrh.T. Nees. 280
Balsamodendron roxburghii Arn. 135
Balsam 318, 350
Bamboo 341
Bamboo-Manna 341
Bambusa arundinacea Retz. 341
Bambusa bombos Druce. 341
Banyan Tree 262
Barbados Aloe 140
Barberry fruit or berries 190
Barleria cristata Linn. var. dichotoma 245
Barleria prionatis Linn. 245
Barleria strigosa Willd. 245
Barleria dichotoma Roxb. 245
Barley 171
Barringtonia acutangula Gaertn. 356
Barringtonia racemosa Blume. 357
Bassia butyracea Roxb. 298
Bassia latifolia Roxb. 299
Bassia longifolia Linn. 299
Bastard-Teak 232
Bauhinia acuminata Linn. 62
Bauhinia malabarica Roxb. 62
Bauhinia purpurea Linn. 62
Bauhinia racemosa Lamk. 62
Bauhinia variegata Linn. 61

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Bdellion 134
Bdellium 134
Beleric Myrobalan 267
Bengal-Kino 275
Bengal Quince 278
Benincasa cerifera Savi. 117
Benincasa hispida (Thunb.) Cogn. 117
Benzoin 340
Benzoin, Siam 340
Benzoin, Sumatra 340
Berberidaceae (Fam.) 190, 230
Berberis aristata D.C. 190
Berberis asiatica Roxb. 190, 191
Berberis chitria Lindl. 190, 191
Berberis lycium Royle 190, 191
Bergenia ligulata (Wall.) Engl. 241
Bignoniaceae. (Fam.) 236, 331, 392
Bishop's-Weed 11
Bitter-Gourd 39
Bitter Luffa 186
Bixaceae (Fam.) 66
Black Catechu 67
Black Cumin 291
Black Pepper 295
Bladder-Dock 154
Blepharis edulis Pers. 50
Bloodvened Sage 266
Blumea balsamifera D.C. 73, 107
Blumea Camphor 73
Blumea densiflora D.C. 107
Blumea lacera D.C. 107
Boerhaavia diffusa Linn. 233
Boerhaavia repens Linn. 233
Bokhara Plum 37
Bombacaceae (Fam.) 72, 387
Bombay Senna 355
Bombax ceiba L. 386
Bombax malabaricum D.C. 386
Bonduc-Nut 57
Boraginaceae (Fam.) 127, 128, 243, 254, 337
Borago officinalis L. 222
Borassus flabellifer Linn. 174
Borassus flabelliformis Roxb. 163
Boswellia floribunda 365
Boswellia serrata Roxb. ex-Boleber. 365
Bottle-Gourd, Bitter-Gourd 177
Box-Myrtle 93
Brassica campestris L. 361
Brassica cam. var. dichotoma Watt. 361
Brassica campestrisa glauca 361
Brassica campestris var. toria 361
Brassica juncea Czern & Coss. 325
Bridelia retusa Spreng. 243
Bridelia montana Willd. 251
Bromeliaceae (Fam.) 15
Bryophyllum calycinum Salisb. 242
Buchanania lanzan Spr. 153
Buchanania latifolla Roxb. 153
Buckam 220
Burmese Storax 350
Burseraceae (Fam.) 134, 280, 365, 366
Butea frondosa Koen. ex Roxb. 232
Butea-Kino 275
Butea monosperma (Lamk. Taub.) 232

[C]

Caccinia glauca Savi 127
Caeasalpinaceae (Sub. Fam.) 24, 40, 58, 61, 88, 145, 147, 220, 354
Caesalpinia bonducella Fleming. 58
Caesalpinia cristata Linn. 58
Caesalpinia sappan L. 220
Calamus draco Willd. 122
Calamus Root, Sweet Flag 343
Calendula officinalis L. 105
Callicarpa macrophylla Vahl. 253
Calotropis gigantea R. Br. 32
Calotropis procera R. Br. 32
Caltrap 138
Caltrops 138
Camphor 72
Camphor, Blumea 73
Camphor, Natural 73
Camphor, Synthetic 73
Camphora 72
Cane-sugar 162
Cannabinaceae (Fam.) 284
Cannabis indica Linn. 248
Cannabis sativa Linn. 248
Canscora decussata Schult. 349

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Caper Plant, Edible Caper 75
Capparidaceae (Fam.) 75, 83, 34, 263, 315, 405, 407
Capparis aphylla Roth. 83
Capparis decidua Forsk & Edgew. 83
Capparis horrida Linn. 84
Capparis sepiaria Linn. 405
Capparis spinosa Linn. 75
Capparis zeylanica Linn. 84
Caraway Fruit 167
Caraway Seeds 167
Cardamom 42
Cardamomi Fructus 42
Cardamon, Lesser Cardamon 42
Cardamon, Exhausted 44
Cardamon, Greater 44
Carica papaya Linn. 224
Caricasceae (Fam.) 224
Carthamus tinctorius Linn. 105
Carum bulbocastanum Koch. 168
Carum carvi Linn. 168
Carum copticum Benth. 11
Carum roxburghianum Benth. 10
Carum strictocarpum Benth. 10
Caryophyllaceca (Fam.) 229
Cashew-nut Tree 92
Cassia absus Linn. 147
Cassia acutifolia Delil. 355
Cassia angustifolia Vahl. 354
Cassia Bark 194
Cassia fistula Linn. 24
Cassia occidentalis Linn. 88
Cassia Fruit 24
Cassia sophera Linn. 88
Cassia tora Linn 145
Castor Seed 55
Catechu, Cutch 67
Catechu, Black 67
Cedar 198
Cedrus deodara (Roxb.) Loud. 198
Ced. libani Rich. var. deodara Hook f. 198
Ceiba pentandra Gaertn. 387
Celary, Celery fruit (seed) 81
Celastraceae (Fam.) 304
Celastrus paniculata Willd. 303
Celery-Fruit 82
Celery-Seed 82
Celosia argentea L. var. cristata Voss. 295
Celosia cristata Linn. 295
Centaurea behen Linn. 266
Centella asiatica (Linn.) Uurban. 280
Centratherum anthelminticum (Willd.) Kuntze. 79
Cephalandra indica Naud. 101
Chebulic Myrobalan 399
Chicory Endive 97
China-Root 154
Chirata 151
Chiryata 151
Chir-Pine 123
Chlorophytum arundinaceum Baker. 314
Chlorophytum breviscapum Dalz. 314
Chloroxylon swietenia D C. 332
Chonemorpha macrophylla G. Don. 315
Cichorium endivia Linn. 97
Cichorium intybus Linn. 97
Cinnamomum burmanni Blume 194
Cinnamomum camphora Nees 72
Cinnamomum loureirii 194
Cinnamomum tamala Nees. 184
Cinnamomum zeylanicum Nees. 193
Cinnamon 193
Cinnamon Bark 193
Cinnamon, Ceylon 193
Cinnamon. Jungle 194
Cinnamon, Saigon 194
Cissus quadrangularis L. 399
Citrullus colocynthis Schrad. 39
Citrus aurantifolia (Christm.) Swingle. 216
Citrus aurantium Linn. 209
Citrus decumana L. 25
Citrus maxima (Burm) Merrill. 25
Citrus medica var. acida Watt, 216
Citrus sinensis Linn. 289
Clearing-Nut 109, 213
Clematis gouriana Roxb. 315
Clematis triloba Heyne 315

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Cleome monophylla 408
Cleome viscosa Linn. 408
Clerodendron barbata Wall. 9
Clerodendron phlomides Linn. 9
Clerodendron coriacea Clarke 9
Clerodendron mucronata Roxb 9
Clerodendron serratum (Linn.) Moon. 287
Clerodendron siphonanthus R. Br. 288
Clitoria ternatea Linn. 18
Clove 333
Clove, Blown 334
Clove, Dust 334
Clove, Exhausted 334
Clove Mother 334
Clove-Stalk 333, 334
Cobra's Saffron 206
Coccidee (Fam.) 335
Coccinia indica W & A. 101
Coccinia cordifolia Cogn. 101
Cochin-Kino 274
Cochlospermum gossypium D, C. 65
Cochlospermum religiosum (Linn.) Alston. 65
Cocoanut Fruit 209
Cocoanut Milk 210
Cocoanut Oil 210
Cocoanut Sweet-Toddy 209
Cocoanut tomentum 210
Cocoanut Tree 209
Cocos nucifera L. 209
Colchicum autumnale Linn. 383
Cochicum luteum Baker 382
Colchicum hermodactyle 382
Coleus amboinicus Lour Benth. 222, 242
Coleus aromaticus Benth. 222 242
Colocynth 39
Combretaceae (Fam.) 26, 297, 399
Commiphora molmol Engl. 280
Commiphora myrrha. Nees (Engl.) 280
Commiphora mukul (Hook. ex Stocks) Engl. 134
commiphora roxburghii (Stocks) (Engl.) 135
Commiphora wightii (Arn,) Bhandari(L.) 134
Common Fumitory 228
Common Indian Aloe 140
Common Cress 140
Common Mallow 121
Compositae (Fam.) 5, 19, 26, 72, 79, 97, 98, 99, 105, 107, 115, 116, 195, 251, 252, 266, 282, 293, 307, 327, 367
Coniferae (Fam.) 123, 132, 176, 403,
Convlvulaceae (Fam.) 23, 95, 214, 347, 348, 349
Convolvu.us alsinoides Chois. 349
Convolvulus pluricaulis Chois. 349
Coptidis Radix 293
Coptis 293
Coptis teeta Wall. 188, 293
Cordia dichotoma Forst f. 337
Cordia myxa Linn. 337
Cordia obliqua Willd 837
Cordia rothii Roem. & Schult. 254
Coriander 200
Coriandrum sativum Linn. 300
Cornaceae (Fam.) 1
Costus 115
Costus speciosus (Koen.) 86, 116
Cotton 70
Cotton-Wool 70
Cotton, American 71
Cotton-Capsule 70
Cotton-Plant 70
Cotton-Seed 70
Country-Borage 222
Country-Fig 136
Country-Mallow 56, 264
Cowhaga 102
Cowitch 102
Crab's Claw 91
Crataeva nurvala Buch.-Ham. 263
Crataeva religiosa Hook & Th. 245
Creat 94
Crassulaceae (Fam.) 242
Creeping Dog's-tooth grass 197
Crocus sativus Linn. 104
Crotolaria juncea L. 96
Croton oblongifolius Roxb. 190

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Croton Resin 158
Croton Seeds 158
Croton tiglium Linn. 158
Cruciferae (Fam.) 121, 146, 185, 316, 325, 361
Cryptocoryne spiralis Fisch. 14
Cryptolepis buchanani Roem. & Schult. 371
Cubebae Fructus 76
Cubeb 76
Cucumber Momordica 59
Cucumis melo var. momordica Duthie & Fuller 51
Cucumis melo var. utilissimus Duthie & Fuller 59
Cucumis utilissimus Roxb. 59
Cucurbitaceae (Fam.) 39, 59, 60, 84, 177, 186, 226, 255
Cuddapah Almond 153
Cumin Seeds 166
Cuminum cyminum Linn. 166
Cupuliferae (Fam.) 301
Curacao Aloe 140
Curacao or Barbados Aloes 140
Curculigo orchioides Gaertn. 312
Curcuma aromatica Salisb. 31
Curcuma domestica Vahl. 401
Curcuma longa L. 401
Curcuma zedoaria Roscoe 62
Cus-Cus 120
Cuscuta europea L. 24
Cuscuta reflexa Roxb. 23
Cydonia oblonga Mill. 276
Cydonia vulgaris Pers. 276
Cymbopogon schoenanthus (Linn.) Spreng. 156
Cynips-gallae infectoriae Olivier. 302
Cynodon dactylon Pers, 197
Cyperaceae (Fam.) 87, 207
Cyperus rotundus Linn. 208
Cyperus scariosus R. Br. 207

[D]

Daemonorops draco Blume. 122
Dalbergia latifolia Roxb. 351
Dalbergia sissoo Roxb. 351
Dandelion 195
Datura 199
Datura innoxia Mill & L. 199
Datura metel Auct. non L. 199
Datura stramonium Linn. 199
Delphinium denudatum Wall. 157
Delphinium zalil Ait. 188
Dendrobrium macraei Lindl. 170
Desmoudium gangeticum D. C. 362
Desmodium polycarpum D C. 362
Desmoudium pulchellum Benth. 362
Desmodiuum tiliaefolium G. Don. 362
Devil's Cotton 51
Dhobi's Nut 288
Dilleniaceae (Fam.) 283
Dillenia indica Linn. 283
Diploknema butyracea Roxb. 299
Dipterocarpaceae (Fam.) 72, 326
Dodder 23
Dog-Poison 108
Dolichos biflorus Linn. 114
Downy Grislea 204
Dorema ammoniacum Don, 52
Dracaena cinnabari Balf. f. 122
Dracaena schizantha Baker, 122
Dracocephalum royleanum Benth. 184
Dragon's Blood 122
Dregea volubilis Benth. 315
Drum-Stick Tree 368
Dry Ginger 389
Dryobalanops aromaticus Gaertn. 72

[E]

Eagle-Wood 7
East-Indian Kino 274
East-Indian Root 113
East Indian Screw-Tree 296
Eclipta alba Hassk. 282
Egyptian Lotus, Sacred Lotus 77
Elephant Creeper 347
Elephantopus scaber Linn, 294
Elephant's Foot 385
Elettaria cardamomum Maton 42

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Elettaria cardamomum Maton var. minisculа Burkill. 42
Elettaria cardamomum Maton var-major 43
Embelia ribes Burm. f. 270
Embelia robusta C.B. Clarke 270
Embelia tsjeriam-cottam A.DC. 270, 271
Emblica officinalis Gaertn. 32
Emblic Myrobalan 31
Emetic-Nut 321
Endive, Chicory 97
Endive, Garden 95
Ephedra equisetina Bunge. 395
Ephedra gerardiana Wall. 395
Ephedra nebrodensis Tineo. 395
Ephedra sinica Stapf. 395
Ephedra vulgaris Hook. f, non Rich. 395
Eriodendron anfractuosum D. C. 387
Eucalyptus globulus Labill. 323
Eucalyptus-Kino 275
Eugenia aromaticus (L) Baill. 333
Eugenia caryophyllus (Spr.) Bull. & Harr. 333
Eugenia jambolana Lam. 163
Eulophia compestris Wall. 372
Eulophia nuda Lind. 372
Eupatorium ayapana Vent. 26
Eupatorium triplinerve Vahl. 26
Euphorbiaceae 32, 55, 78, 158, 188, 190, 196, 243, 254, 275, 278, 290, 378, 388, 397
Euphorbia dracunculoides L. 378, 397
Euphorbia hirta Linn. 197
Euphorbia hypericifolia Linn. 197
Euphorbia microphylla 196
Euphorbia neriifolia Linn. 388
Euphorbia nivulia Buch. Ham. 388
Euphorbia pilulifera Auch. non-Linn. 197
Euphorbia thomsoniana Boiss. 397
Euphorbia thymifolia Linn. 196
Euryale ferox Salisb. 292

[F]

Fagonia arabica Linn. 204
Fagonia cretica Linn. 204
Fenu-Greek 317
Feronia elephantum Correa. 106
Feronia limonia Sw. 106
Ferula alliaceous Boiss. 407
Ferula foetida (Bunge.) Regel. 405
Ferula narthex Boiss. 405
Fever-Nut 57
Ficus bengalensis Linn. 244
Ficus carica Linn. 4
Ficus glomerata Roxb. 136
Ficus heterophylla Linn. 188
Ficus racemosa Linn. 136
Ficus religiosa Linn. 264
Fig 4
Filices (Fam.) 398
Five-leaved Chest-tree 212
Five-leaved Fumitory 228
Flacourtiaceae (Fam.) 182
Flemingia chappar Ham. 362
Flemingia semialata Roxb. 362
Formosa Camphor 73
Fox-nut 292
Frankincense/Olibanum 365
Fumaria indica (Haussk.) Pugsley. 228
Fumaria officinalis Linn. 228
Fumariaceae (Fam.) 228

[G]

Galanga Cardamom 114
Gall 172, 301
Gall Aleppo 301
Gall Blue 301
Gall Chinese 302
Gall Crown 302
Gall Japanes 302
Garcinia indica Choisy 118
Garcinia mongostana Linn. 279
Garcinia pedunculata Roxb. 25
Garden Cress 146
Garden Endive 97
Gardenia turgida Roxb. 322
Garden Nightshade 292
Garden Rue 377
Garlic 334
Garuga pinnata Roxb. 366
G(J)ava Galangal 109

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Gentianaceae (Fam.) 151, 187, 349
Gentiana dahurica Fisch. 187
Gentiana decumbens Linn. 188
Gentiana kurroo Royle. 187
Gentiana lutea Linn. 188
Gentiana olivieri Griseb 175
Gentiana tenella Frics 176
Geraniaceae (Fam.) 325, 148
Geranium wallichianum Sweet. 325
Gigantic Swallow-Wort, Madar 32
Gingelly 179
Gingelly Oil 179
Glandulae Rottlerae 78
Gloriosa superba Linn. 86
Glossocardia bosvallia DC, 229
Glossocardia linearifolia Cass. 229
Glycyrrhizae Radix 300
Glycyrrhiza glabra Linn. 309
Glycyrrhiza glabra var. typica Regel. & Herd. 310
Glycyrrhiza glabra var. glandulifera Waldst. & Kit. 310
Glycyrrhiza glabra var. violacea Boiss. 310
Glycyrrhiza uralensis Fisch. 310
Gmelina arborea Linn. 125
Gmelina asiatica Linn. 126
Gnetaceae (Fam.) 395
Goat's Sallow 277
Golden Silk-Cotton Tree 65
Golden-Thread 293
Gossypii Cortex 69
Gossypii Radicis Cortex 69
Gossypium acuminatum 71
Gossypium barbadense Linn. 71
Gossypium herbaceum Linn. 70
Gossypium Semina 69
Gramineae (Fam.) 48, 96, 120, 157, 171, 197, 205, 341, 359
Greater Galangal 114
Grewia asiatica Mast. 255
Grewia hirsuta Vahl, 132
Grewia populifolia Vahl. 133
Grewia sub-inequalis D.C. 255
Grewia tilaefolia Vahl. 133
Gular-Fig 136
Gum Acacia 260
Gum Arabic 260
Gum Benjamin, Benzoin 340
Gum Tragacanth 65
Guttiferae (Fam.) 25, 118, 206, 279
Gynandropsis gynandra Briq. 407
Gynandropsis pentaphylla D.C. 407
Gynocardia odorata R.Br. 182
Gymnema sylvestre Br. 130

[H]

Haemodoraceae (Fam.) 315
Hamamelidaceae (Fam.) 350
Hedge-Mustard 120
Hedychium coronaria Koen. 74
Hedychium spicatum Ham. ex Smith. 74
Helicteres isora Linn. 296
Hellebore 111
Hemidesmi Radix 369
Hemidesmus, Indian Sarsaparilla 369
Hemidesmus indicus R. Br. 369
Henbane 12
Henbane-Seeds 12
Henna-Plant 319
Hermodactyl, Bitter 382
Hermodactyl, Sweet 382
Herpestis monniera H.B. & K. 281
Hibiscus abelmoschus Linn. 311
Himalayan Cherry 222
Himalayan Peony 54
Himalayan Peony-rose 54
Hissop 171
Hog-Gum 65
Hog-Plum Tree 36
Holarrhena antidysenterica (L.) Wall. ex. G. Don. 111
Holy Basil 181
Hordeum distichum Linn. 171
Hordeum sativum 171
Hordeum vulgare Linn. 171
Horse-gram 114
Horse-Radish Tree 368
Hydnocarpus kurzii (King.) 182
Hydnocarpus laurifolia (Dennst.) 182
Hydnocarpus Oil 171

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Hydnocarpus wightianum Blume. 182
Hydrocotyle asiatica Linn. 177, 280
Hydrocotylo javanica Thunb. 282
Hydrocotyle rotundifolia Roxb. 282
Hygrophliia spinosa T. Anders 175
Hyoscyamus muticus Linn. 12
Hyoscyamus niger Linn. 13
Hyoscyamus reticulatus Linn. 12
Hyssopus officinalis Linn. 171

[I]

Ichnocarpus frutescens R. Br. 371
Indian Beech 81
Indian Birth-Wort 47
Indian Butter-tree 298
Indian Cinnamon 184
Indian Dill 390
Indian Dill-Fruit 353
Indian Gentian 187
Indian Hemp 284
Indian Horse-Radish Tree 368
Indian Kino-tree 274
Indian Lilac 217
Indian Liquorice 129
Indian Mustard 325
Indian Olibanum 365
Indian Penny-wort 280
Indian Podophyllum 230
Indian Red-Wood Tree 300
Indian Sarsaparilla 369
Indian Senna, Tinnevelly Senna 354
Indian Sorrel 148
Indian Spike-Nard 156
Indian Squill 89
Indian Valerian 375
Indian Valerian-Root 375
Indian Water-Chest-nut 373
Indigofera argentea L. 220
Indigofera arrecta Hochst. 219
Indigofera articulata Gouan. 220
Indigofera enneaphylla Linn. 220
Indigofera sumatrana Gaertn. 220
Indigofera tinctoria Linn. 219
Indigo-Plant 219

Inula helenium Linn. 252, 358
Inula racemosa Hook. 251, 252
Inula royleana DC. 116
Ipomoea biloba Forsk. 348
Ipomoea digitata R.Br. 347
Ipomoea digitata Linn. 347
Ipomoea hederacea Jack. 95
Ipomoea muricata Jacq. 349
Ipomoea petaloidea Chois. 348
Ipomoea turpethum R. Br. 214
Iridaceae (Fam.) 104, 235
Irideae (Fam.) 243
Iris germanica Linn. 252
Iris pseudo-achorus 243
Iris species 252
Iron-Wood Tree 206
Ispagul 45

[J]

Jambol 163
Jatropha curcas Linn. 159
Java Galangal 114
Jequirity 129
Juglandaceae (Fam.) 6
Juglans regia Linn. 6
Jujube 50
Juniper Berry 403
Juniperus Fructus 403
Juniperus communis Linn. 403
Juniperus macropoda Boiss. 404
Justicia procumbens Linn. 229

[K]

Kalanchoe pinnata Pers. 242
Kapok Oil 72
Karai Gond 66
Kava-ka-tel 182
Khus-Khus 120
King's Cumin 11
Kino-Tree Oil 233
Kiryat 94
Knot-Weed 2
Kokam-Butter Tree 118

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[L]

Labiatae 53 116, 135, 171, 181, 183, 222, 242, 249, 266, 357
Laccifer lacca Kerr. 335
Lactuca sativa Linn. 98
Lactuca scariola Linn, 98
Lactuca serriola 98
Lactuca virosa Linn. 98
Lagenaria vulgaris Sering. 177
Lallemantia royleana Benth. 18
Lauraceae 72, 184, 193, 320
Lavendula bipinnata O Kize 54
Lavendula burmani Benth. 54
Lavendula stoechas Linn. 53
Lawsonia alba Lam. 296
Linn. 319
Lecythidaceae (Fam.) 358
Leguminosae (Fam.) 3, 8,18, 24, 40, 57, 60, 67, 81, 88, 102, 114, 129, 143, 145, 147, 160, 162, 305, 232, 240, 219, 351, 260, 268 317, 375, 354
Lipidium iberis L. 185
Lepidium sativum Linn. 360, 362, 139
Leptadenia reticulata W. & A. 169
Lesser Galangal 113
Leucas cephalotes Spreng. 135
Lichenes 155
Liliaceae (Fam.) 382, 86, 90, 122, 140, 235, 216, 313, 334, 345, 353
Lime 216
Limonia acidissima (L.) Sw. 106
Linaceae (Fam.) 27
Linseed 27
Linseed Crushed, Meal 28
Linseed Oil 22, 28
Linum Contusum 28
Linum usitatissimum Linn. 27
Liquidamber orientalis Mill. 350
Liquid Extract of Gokharu 139
Liquid Storax 350
Liquorice 309
Liquorice Root 309
Litsea chinensis Lam. 320
Litsea glutinosa (Lour.) Robins. 320
Litsea polyantha Juss. 321
Litsea sebifera Pers. 321
Lodoicea maldivica Pers. 211
Lodoicea seychellarum Labill. 211
Loganiaceae (Fam.) 108, 213
Long-leaved Pine 123
Luffa acutangula Roxb. 186
Luffa acutangula Roxb. var. amara (Roxb.) C. B. Cl. 186
Luffa echinata Roxb. 255
Luffa graveolens Roxb. 256
Lump Dragon's Blood 123
Lythraceae (Fam.) 319

(M)

Macaranga Kino. 275
Macaranga peltata Muell. Arg. 275
Macaranga roxburghii Wight. 275
Mace 164
Madar 32
Madhuka butyracea Mac. Bride 298
Madhuka indica Gmel. 298
Madhuka latifolia Roxb. 298
Madhuka longifolia Linn. 299
Madras-Kino 274
Maerua arenaria Hook f. & Th. 315
Mahua Tree, Indian Butter-Tree 298
Maiden-Hair 398
Malabar-Kino 274
Mallotus philippensis Muell. Arg. 78
Malvaceae (Fam.) 56, 70 119, 121, 264, 312
Malva sylvestris Linn. 121
Mangifera indica Linn. 34
Mango Ginger 81
Mango, Grafted 34
Mangosteen-Oil Tree 118
Mango Tree 34

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Margosa Oil 218
Margosa Tree, Neem Tree 217
Marking-Nut 288
Marking-Nut Tree 288
Marsdenia hamiltonii Wight. 315
Marsdenia roylei Wight. 315
Marsdenia tenacissima W. & A. 215, 314
Marsh-Mallow 119
Marsileaceae (Fam.) 379
Marsilea quadrifolia L. 379
Marsilea minuta L. 379
Mastic, Mastich 297
Melaphis chinensis Bell. 302
Melia azedarach Linn. 257
Melia azadirachta Linn. 217
Meliaceae (Fam.) 217, 257, 300
Menispermaceae (Fam.) 131, 234
Mentha piperita Linn. 250
Mentha sativa Linn. 249
Mentha spicata Linn. 249
Mentha viridis Linn. 249
Menthol 72
Mesua ferrea Linn. 206
Mimosaceae (Sub-Family) 260
Mimusops elengi Linn. 322
Momordica charantia Linn. 84
Momordica cochinchinensis Spreng. 60
Monkey-face Tree 78
Mooduoga Oil 233
Moracaceae (Fam.) 136
Moringaceae (Fam.) 368
Moringa concanensis Nimmo. 368
Moringa oleifera Lam. 368
Moringa pterygosperma Gaertn. 368
Mucuna pruriens Baker. 102
Mucuna prurita Hook. 102
Mug-Wort 19
Musk-Mallow 311
Musk-seed 311
Myricaceae (Fam.) 93
Myrica nagi Thunb. 93
Myristica 164
Myrisica argentea Warb. 166
Myristica fragrans Houtt. 164, 275
Myristica malabaricum Lam. 165, 275
Myristicaceae (Fam.) 164
Myrsinaceae (Fam.) 271
Myrsine africana Linn. 272
Myrtaceae (Fam.) 163, 303, 333
Myrrh 280
Myrrha 280

[N]

Nardostachys jatamansi D.C. 156
Neem Oil 217
Neem Toddy 217
Neem Tree 217
Negro-Coffea 88
Negro-Coffea Plant 88
Nelumbium speciosum Wight. 77
Nelumbo nucifera Gaertn. 77
Nerium indicum Mill. 69
Nerium odorum Sol. 69
Nigella sativa Linn. 291
Night Jasmine 225
Nira, Sweet-Toddy 174
Nodding-Reed 205
Nutmeg 164
Nutmeg, Bombay 165
Nutmeg, Fictitious 166
Nutmeg Langor, Wild Nutmeg. 166
Nutmeg Limed 165
Nutmeg Macassar Papua 166
Nutmeg-Oil 166
Nutmeg/Myristic Oil 166
Nux-vomica 108
Nyctaginaceae (Fam.) 250
Nymphaeaceae (Fam.) 77, 292
Nyctanthes arbortristis Linn. 225

[O]

Ochrocarpus longifolia Benth. ex Hook. f. 207
Ocimum basilicum Linn. 181
Ocimum canum Sims. 181
Ocimum gratissimum Linn. 181
Ocimum kiliman-oscharicum 72
Ocimum sanctum Linn. 181

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Oil of Cinnamon 193
Oil of Cubeb 76
Oil of Hydnocarpus 182
Oil of Hyssop 171
Oldenlandia coymbosa L. 229
Oleaceae 225
Oleo-Gum-Resin 52, 366
Oleo-Resin 350
Oleum Cubebae 76
Oleum Gosspii 70
Oleum kiliman-oscharicum 72
Oleum Lini 28
Olibanum, frankincense 365, 366
Olive Oil 22
Onagraceae (Fam.) 373
Onion 252
Onosma bracteatum Wall (L.) 128
Onosma hookeri Clark (L.) 324
Operculina turpethum (L.) Silva-Manso. 214
Opium 20
Opium European 22
Opium Indian 22
Opium Persian 22
Opium Turkish 22
Opium poppy 28
Orange 209
Orchidaceae (Fam.) 170, 372
Orchis latifolia Linn. 372
Orchis laxiflora Linn. 372
Oris-Root 235
Oroxylum indicum Vent. 392
Oxalis acetosella Linn. 148
Oxalis corniculata Linn. 148

[P]

Paederia foetida Linn. 253
Paeonia emodi Wall. 54
Paeonia officinalis Linn. 54
Palmaceae (Fam.) 174, 209, 380
Palmae (Fam.) 122, 211
Palmyra-Palm 174
Palmyra-Toddy 174
Pandanaceae (Fam.) 103
Pandanus tectorius Soland ex.-Parkinson 103
Pandanus odoratissimum Roxb. 103
Papaveraceae (Fam.) 21, 386
Papaver somniferum Linn. 20
Papaver somniferum var. glabrum Boiss. 21
Papaver nigrum DC. 21
Papilionaceae (sub. Fam.) 99, 110, 123 249, 255
Paris polyphylla Smith. 345
Parmelia kamtschadalis Esch. 155
Parmelia perforata 155
Permelia perlata Esch. 155
Pear 211
Pedaliaeeae (Fam.) 139, 179
Padalium murex Linn. 139
Peepal Tree 246
Peganum harmala L. 96, 401
Pellitory Root 5
Pepper, Tailed/Gubeb 76
Pepper-Grass, Pepper-Wort 185
Pepper-Root 227
Persian Lilac 239
Persian Manna, Manna of the desert, 162
Persian Manna-plant, Arabian Manna-plant 162
Peucedanum graveolens Benth. 391
Peucedanum sowa kurz. 390
Pharlbitis Seeds 95
Phaseolus trilobus Ait. 282
Phoenix sylvestris 175
Phragmites karka Trim. 205
Phragmites maxima Blatter & Mc. Cann 193
Phyllanthus emblica L. 32
Phyllanthus niruri Linn. 290
Phyllanthsu. urinaria Linn. 290
Picrasma quassioides Bennett. (L.) 288
Picrorhiza kurroa L. 110, 188, 294
Pinaceae (Fam.) 198
Pinus longifolia Roxb. (L.) 123
Piperaceae (Fam.) 76, 126, 147, 23 , 243, 295

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Piper chaba Hunter. 126, 147
Piper cubeba L. f. 76
Piper longum L. 243
Piper nigrum Linn. 295
Piper-Root 243
Pistacia integerrima Stew. ex-Brandis 91
Pistacia khinjuk. Stocks, 91
Pistacia lentiscus L. 297
Pistia stratiotes L. 161
Plantaginacea (Fam.) 45
Plantago amplexicaulis Cav. 46
Plantago arenaria Waldst. & Kit. 47
Plantago lanceolata Linn. 46
Plantago major Linn. 46
Plantago ovata Forsk. 45
Plantago psyllium Linn. 47
Pluchea lanceolata Oliver. & Hiern 327, 328
Plumbaginaceae (Fam.) 148
Plumbago capensis Thunb. 148
Plumbago indica Linn. 148
Plumbago rosea Linn. 148
Plumbago zeylanica L. 148
Podophyllum emodi Wall. 230
Podophyllum hexandrum Royle. 230
Polycarpaea corymbosa Lamk. 229
Polygonaceae (Fam.) 2, 154, 329
Polygonum bistorta L. 2
Polygonum glabrum Wall. 332
Polygonum viviparum L. 2
Polypodiaceae (Fam.) 295
Pomegranate 16
Pongamia glabra Vent. 81
Pongamia dinnata (L.) Pierre. 81
Pongamia Oil 81
Poppy, Mexican/Yellow 396
Poppy, capsule 20
Poppy, seeds 20
Premna barbata Wall. 9
Premna coriacea Clarke, 9
Premna flavescens L. 126
Premna integrifolia Linn. 9
Paemna latifolia Roxb. 9
Premna mucronata Roxb. 9
Premna serratifolia Linn. 9
Prickly Chaff-flower 150
Prunella vulgaris L. 54
Prunus amygdalus Batsch. var. dulcis (DC.) Kochne 269
Prunus cerasoides D. Don. 223
Prunus communis Arcang. var dulcis Schneid (L.) 269
Prunus communis Huds. 37
Prunus domestica Linn. 37
Prunus mahaleb Linn. 254
Prunus puddum Roxb. ex. Wall. 223
Pseudarthria viscida W. & A. 363
Psoralea Seeds 268
Psoralea corylifolia L. 268
Psosalea Semina 268
Psyllium Seeds 45
Pterocarpus marsupium Roxb. 274
Pterocarpus santalinus Linn. 143
Pterospermum acerifolium Willd. 306
Pueraria tuberosa DC. 346
Punicaceae (Fam.) 16
Punica granatum L. 16
Purple Flea-bane, Vernonia 79
Purple Tephrosia 360
Pyrethrum Radix 5
Pyrus communis L. 211
Pyrus cydonia L. 276
Pyrus malus L. 387

[Q]

Quercus infectoria Oliv. 278
Quince 276
Quince-Seed 276

]R]

Radish 316
Raj Mahal Bow-string 314
Randia dumetorum Lam. 321
Ranunculaceae (Fam.) 14, 54, 157, 246, 258, 273, 291, 352
Rape 361
Raphanus sativus Linn. 316
Rauwolfia canescence Linn. 364

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Rauwolfia densiflora Benth. 364
Rauwolfia micrantha 364
Rauwolfia serpentina Benth. ex-Kurz. 363
Red Bahmen 266
Red Sandal-wood 143
Red Sanders 143
Red Silk-Cotton Tree 386
Red Rhaptonic 266
Resin, rosin 326
Rhabdia lycioides Mart. 243
Rhamnaceae (Fam.) 50, 332
Rhamnus wightii W.&.A. 332
Rheum emodi Wall. 329
Rheum palmatum 330
Rheum webbianum Royle, 329
Rhinacanthus communis Nees. (L.) 241
Rhinacanthus nasutas Kurz. 241
Rhubarb 329
Rhus chinensis Mill. 302
Rhus coriaria L. 168
Rhus parviflora Roxb. 178
Rhus semialata Mirr. 302
Rhus succedanea Linne 92
Ricinus communis L. 55
Ring-worm Plant 145
Rosaceae (Fam.) 37, 133, 212, 223, 269, 276, 387
Rosa alba Linn. 133
Rosa centifolie L. 133
Rosa damescena Mill. 133
Rose 133
Rottlera, Kamela 78
Rotula aquatica Loudo. 243
Rubiaceae (Fam.) 228, 2·3. 321
Rumex hastatus D. Don. 154
Rumex vesicarium Linn. 154
Rutaceae (Fam.) 106, 202, 209, 273, 377, 401
Ruta graveolens Linn. 377

[S]

Saccharum ciliare Andiers. 359
Saccharum munja Roxb. 359
Saccharum officinarum Linn. 48
Saccharum spontaneum Linn. 96
Saccolabium pappilosum Lindl. 327
Sacred-Fig 246
Saffrom 104
Salep 372
Salmalia malabaricum (DC.) Schott. *and Endl.* 386
Sal Tree 327
Salicaceae (Fam.) 277
Salix caprea Linn. 277
Salvadoraceae (Fam.) 248
Salvadora oleoides Decne. 248
Salvadora persica Linn. 248
Salvia aegyptiaca L. var pumila-Hook, f. 46, 184
Salvia hemotodes 266
Salvia plebeia R. Br. 348, 357
Salvia lanata Royle 116
Salvia santolinaefolia Boiss. 184
Sandal-Wood 315
Sansvieria roxburghiana Schult. 315
Santalaceae (Fam.) 144
Santalum album Linn. 144
Santonica 99
Sapindaceae (Fam.) 305, 328, 361
Sapindus mukurossi Gaertn. 328
Sapindus trifoliatus Linn. 328
Sapotaceae (Fam.) 298, 322
Sappan-Wood 220
Saussurea lappa C. B. Clarke 115
Saxifragaceae (Fam.) 242
Saxifraga ligulata Wall. 241
Schleichera oleosa Leur. 336
Schleichera trijuga Willd. 336, 361
Scilla hyacinthina (Roth.) Macob. 90
Scilla indica Baker 90
Scilla maritima Linn. 90
Scindapsus officinalis Schott. 127
Scirpus articulatus 87
Scirpus kysoor Roxb. 87
Scitaminaceae (Fam.) 31, 74, 85, 389
Scotrina Aloes 141

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Scrophulariaceae Fam.) 110, 188, 281
Sea-cocoanut 211
Sebestan Plum, Large 337
Sebestan Plum, Small 337
Semecarpus anacardium L.f. 266
Senecio jacquemonti nus Benth. 116
Senna, Alexandrian 355
Senna, Arabian, Mecca, Bombay 355
Senna, Indian 354
Senna, Tinnevelly 354
Sesamum indicum Linn. 179
Sesamum orientale, Linn. 179
Sesbania aegyptiaca Poir. 160
Sesbania sesban (Linn.) Mend. 160
Shorea robusta Gaertn. f. 326
Sida acuta Burm 265
Sida alba Linn. 265
Sida alnifolia 265
Sida cordifolia Linn. 264, 265
Sida rhombifolia L. 264, 265
Sida spinosa L. 265
Simarubaceae (Fam.) 38, 257, 238, 393
Sisso 351
Sisymbrium irio Linn. 120
Small Caltrops 188
Small Fennel 291
Smilaceae (Fam.) 154
Smilax china Linn. 154
Smilax glab a Roxb. 155
Smilax lanceaefolia Roxb. 155
Smilax macrophylla Roxb. 155
Snake-Cucumber 59
Soap-nut 328
Solanaceae (Fam.) 12, 30, 63, 64, 199, 292
Solanum indicum Linn. 64
Solanum melongana L. var insanum Prain. 65
Solanum nigrum Linn. 292
Solanum surattense Burm. f. 63
Solanum torvum Swartz. 65
Solanum xanthocarpum Schrad. & Lind. 63.
Soymida febrifuga A. Juss. 300
Spanish Pellitory 5
Sphaeranthus indicus Linn. 307
Spogell Seeds 45
Spondias mangifera Willd. 45
Spondias pinnata (L.) Kurz. 36
Spreading Hog-weed 250
Staff-Tree 303
Sterculiaceae (Fam.) 51, 65, 74, 296, 305
Sterculia urens Roxb. 66
Stone-Flower Lichen 155
Strychnos nux-blanda Hill. 109
Strychnos ignatii 224
Strychnos nux-vomica Linn. 108
Strychnos potatorum L.f. 109
Styraceae (Fam.) 340
Styrax benzoin Dryand. 340
Strynax parralleloneuru n Perkins 340
Strynax tonkinensis Craib 340
Sugar-cane 48
Superb Lily 86
Sweet Almond 269
Sweet Flag, Calamus-Root 343
Sweet-scented Oleander 69
Sweet Violet 259
Swertia alata Royle. 152
Swertia angustifolia Buch. Ham. 152
Swertia chirata Buch. Ham. 151
Symplocaceae (Fam.) (Styraceae) 338
Symplocos crataegoides Buch. Ham. 339
Symplocos paniculata Buch. Ham. 339
Symplocos racemosa Roxb. 338
Symplocos spicata Roxb. 339
Syrian Rue 401
Syzygium aromaticum (L.) Merr. et. Perr. 333
Syzygium cumini (L.) Skeels 163

[T]

Tamaricaceae (Fam.) 172
Tamarind 40
Tamarindus indicus Linn. 40
Tamarisk 172
Tamarix aphylla Karst. 173

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Tamarix articulata Vahl. 173
Tamarix dioica Roxb. 173
Tamarix gallica Auct. non L. 172
Tamarix Manna 172
Tamarix troupii Hole. 172
Taraktogenos kurzii King. 182
Taraxacum offictinale Weber. 195
Taxus baccata Linn. 176
Tecoma undulata (G. Don.) Seem. 331
Tecomella undulata (G. Don.) 331
Tephrosia petrosa Blatter & Halb. 360
Tephrosia purpurea (Linn.) Pers. 360
Tephrosia villosa Pers. 360
Teramnus labialis Spreng. 205
Terminalia arjuna W & A. 26
Terminalia belerica Roxb. (L.) 267
Terminalia chebula Retz. 399
Thalictrum foliolosum DC. 188, 246, 294
The Ash-Gourd 117
The Chir-Pine 123
The Common-Mallow 121
The Country-Fig. 136
The Greater Cardamon 44
The Gular-Fig. 136
The Lesser Galangal 114
Thevetia nerifolia Juss. 69
Thymelaceae (Fam.) 7
Thymol 72
Tinospora cordifolia Miers. 131
Tinospora malabarica (Lam.) Miers. 132
Tooth-Ache Tree 202
Tooth-Brush Tree 248
Trachyspermum ammi (L.) Sprague ex Turrill. 11
Trachyspermum roxburghianum (DC.) Sprague. 10
Trapa bispinosa Roxb. 373
Trapa natans L. var. bispinosa (Roxb.) Makino. 373
Trianthema monogyna Linn. 250
Trianthema portulacastrum Linn. 250
Tribulus alatus Delile. 138
Tribulus Fructus 138
Tribulus terrestris Linn. 138
Trichila emetica 322
Trichosanthes anguina L. 227
Trichosanthes cucumerina L. 227
Trichosanthes dioica Roxb. 227
Trigonella foenum-graecum Linn. 317
Turmeric 401
Turmeric rhizome 401
Turmeric Root 401
Tylophora asthmatica A. 327
Tylophora indica Burm. & Merr. 327

[U]

Umbelliferae (Fam.) 10, 11, 52, 82, 166, 167, 200
Umbrella-Tree 103
Uraria hamosa Wall. 363
Urginea coromandeliana Hook, f. 90
Urginea indica Kunth. 89
Urginea maritima Linn. 90
Urticaceae 4, 136, 246, 262
Uva-Ursi 57

[V]

Valerianaceae (Fam.) 156, 375
Valerianae Indicae Rhizoma 375
Valeriana hardwickii Wall. 376
Valeriana indica 375
Valeriana jatamansi Jone. 375
Valeriana officinalis Linn. 376
Valeriana wallichii DC. 375
Vanda roxburghii R. Br. 327
Verbenaceae (Fam.) 9, 125, 212, 253, 288
Vernonia anthelminticum Willd. 79
Vernonia cinerea Less. 367
Vetiveria zizanioides 120
Violaceae (Fam.) 259
Viola cinerea Boiss. 260
Viola odorata Linn. 259
Viola serpens Wall 260
Vitaceae (Fam.) 308, 399
Vitex agnus-castus Linn 213
Vitex negundo Linn. 212
Vitex trifolia Linn. 213
Vitis quadrangularis Wall. 399

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Vitis vinifera Linn. 308
Vomit-nut 108

[W]

Wal-nut 6
Wal-nut Tree 6
Water Chest-nut 87
Water-Cress 146
Water-Soldier 161
Wax-Gourd 117
Wedelia calendulacea Less (L) 283
Weeping Nyctanthes 225
White Behen 266
White Gourd-Melon 117
White Poppy 20
White Poppy capsule 29
White Poppy-Latex 20
White poppy seed 20
White Rhapontic 218
Wild Asparagus 353
Wild Lettuce 98
Wild Liquorice 123
Wild Mango 36
Wild Sugar-cane 94
Wild Turmeric 31
Winged Caltrops 133
Winter-Cherry 30
Withania asvagandha 30
Withania somnifera Dunal. 30
Wolfenia 117
Wood-Apple 106
Woodfordia floribunda Salisb. 204
Woodfordia fruticosa Kurz. 204
Worm-Seed 99
Wrightia tinctoria R. Br. 111
Wrightia tomentosa Roem. & Schult. 111

[Y]

Yellow-Cotton Tree 65

[Z]

Zanthoxylum acanthopodium DC. 203
Zanthoxylum alatum Roxb. 202
Zanthoxylum bucrunga Wall. 203
Zanthoxylum hamiltonianum Wall. 203
Zanthoxylum ovalifolium Wight. 203
Zanthoxylum oxyphyllum Edgew. 203
Zanthoxylum rhetsa DC. 203
Zedoary 62
Zingiberaceae (Fam.) 42, 44, 113 114, 389, 401
Zingiber officinale Rose. 38
Zizyphus sativa Gaertn. 50
Zizyphus vulgaris Linn. 50
Zygophyllaceae (Fam.) 138, 204

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha